खंड 2

खंडवा से थेरवाद

भारत

ज्ञानकोश

ENCYCLOPÆDIA

Britannica

भारत ज्ञानकोश

ENCYCLOPÆDIA
Britannica

भारत ज्ञानकोश

खंड 2

ख से थ

(खंडवा से थेरवाद)

एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड
नई दिल्ली
और
पॉप्युलर प्रकाशन
मुंबई

विषय–सूची

छ

ज

थ

खंडवा

शहर, दक्षिण–पश्चिमी मध्य प्रदेश राज्य, मध्य भारत. उत्तरी भारत से दक्कन क्षेत्र तक जाने वाले प्रमुख सड़क मार्गों पर स्थित इस शहर की पहचान यूनानी भूगोलशास्त्री टॉलेमी के कोंगनबंदा शहर से की जाती है और पारंपरिक तौर पर कहा जाता है कि यह *महाभारत* में वर्णित खांडव वन से घिरा है. 12वीं शताब्दी में यह शहर जैन मत का महत्त्वपूर्ण स्थान था. यह शहर महान पुरातनता का शहर है और यहां पाए जाने वाले अवशेषों से यह सिद्ध भी होता है, जिनमें इसके चारों ओर स्थित चार विशाल तालाब, नक़्क़ाशीदार स्तंभ व जैन मंदिरों के छज्जे शामिल हैं. 1864 से यह शहर मध्य प्रदेश के नवगठित निमाड़ ज़िले का मुख्यालय रहा. 1867 में इसे नगरपालिका बनाया गया.

एक प्रमुख सड़क पर स्थित और मध्य रेलवे के रेल जंक्शन खंडवा शहर में कपास, इमारती लकड़ी और अनाज का व्यापार होता है. कपास की ओटाई, तिलहन व आरा मिलें और अन्य लघु उद्योग यहां महत्त्वपूर्ण हैं. यहां पर एक प्रायोगिक रेशम उत्पादन फ़ार्म, एक सरकारी पॉलीटेक्निक और सागर स्थित डॉक्टर हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय से संबद्ध अनेक महाविद्यालय हैं. जनसंख्या (2001) न.नि. क्षेत्र 1,71,976.

खंभात

नगर, खेड़ा ज़िला, पूर्व–मध्य गुजरात राज्य, पश्चिम–मध्य भारत. यह नगर खंभात की खाड़ी के सिरे पर माही नदी के मुहाने पर स्थित है. यह 15वीं सदी के उत्तरार्द्ध तक मुस्लिम शासन के अंतर्गत एक समृद्ध बंदरगाह था, लेकिन खाड़ी में गाद जमा होने के साथ बंदरगाह का महत्त्व समाप्त हो गया. यह नगर खंभात रियासत की राजधानी था, जिसे 1949 में खैरा (बाद में खेड़ा) ज़िले में मिला दिया गया. खंभात कपास, अनाज, तंबाकू, वस्त्र, क़ालीन, नमक और पत्थर के अलंकरणों का वाणिज्यिक और औद्योगिक केंद्र है. इस क्षेत्र में पेट्रोल की खोज हो चुकी है और 1970 से पेट्रो–रसायन उद्योग का विकास किया जा रहा है. खंभात सड़क और रेलमार्ग द्वारा अन्य जगहों से जुड़ा हुआ है. जनसंख्या (2001) नगर 80,439.

खंभात की खाड़ी

अरब सागर की भोंपू या तुरही की आकृति की खाड़ी, उत्तर की ओर कटती है, गुजरात राज्य का समुद्र तट, पश्चिमी भारत, मुंबई और काठियावाड़ प्रायद्वीप के बीच में स्थित. यह दमन और दीव के समीप मुहाने पर 190 किमी चौड़ी है, लेकिन तेज़ी से 24 किमी तक संकरी हो जाती है. यह खाड़ी साबरमती, माही, नर्मदा और ताप्ती सहित कई नदियों को अपने में समाहित करती है. दक्षिण–पश्चिमी मानसून के सापेक्ष इसकी आकृति

और इसकी अवस्थिति, इसकी ऊंची लहरों (12 मीटर) और प्रवेश करने वाली लहरों की तीव्र गति (6–7 नॉट) का कारण है. शैवाल और रेतीले किनारे नौ–परिवहन के लिए इसे दुर्गम बनाते हैं और खाड़ी में स्थित सभी बंदरगाहों को लहरों व नदियों की बाढ़ द्वारा लाए गए गाद से काफ़ी नुक़सान हुआ है.

खाड़ी की पूर्व दिशा में भरूच (भारत का एक प्राचीनतम बंदरगाह) और सूरत (भारत और यूरोप के बीच का आरंभिक वाणिज्यिक संपर्क स्थल के रूप में पहचाना गया है) हैं. खंभात खाड़ी के मुहाने पर स्थित है. यद्यपि खाड़ी पर स्थित बंदरगाहों का महत्त्व स्थानीय मात्र ही है, लेकिन तेल के मिलने और खोज प्रयासों ने, विशेषकर भरूच के निकट, खाड़ी के मुहाने और बॉम्बे हाई के अपतटीय क्षेत्रों में वाणिज्यिक पुनरुत्थान हुआ है.
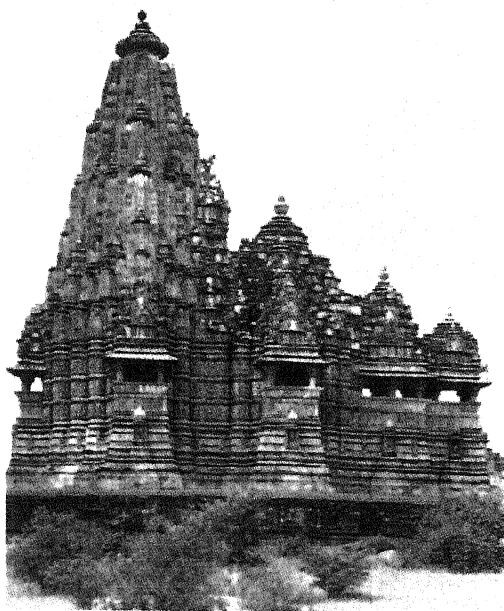
खजुराहो

खजुराहो में कंदर्य महादेव मंदिर, मध्य प्रदेश
सौजन्य : देवांगना देसाई

ऐतिहासिक नगर, प्राचीन नाम 'खर्जूरवाहक', उत्तरी मध्य प्रदेश राज्य, मध्य भारत. यह प्रसिद्ध पर्यटन और पुरातात्विक स्थल है, जिसमें हिंदू व जैन मूर्तिकला से सुसज्जित 25 मंदिर और तीन संग्रहालय हैं. 900 से 1150 ई. के बीच यह चंदेल राजपूतों के राजघरानों के संरक्षण में राजधानी और एक मंदिर नगर था, जो एक विस्तृत क्षेत्र 'जेजाकभुक्ति'– अब मध्य प्रदेश का बुंदेलखंड क्षेत्र –के शासक थे. मूल नगर 21 वर्ग किमी में फैला हुआ था और उसमें 85 मंदिर थे, जो उत्तरवर्ती राजाओं और उनके मंत्रियों द्वारा बनवाए गए थे. 11वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में चंदेलों ने पहाड़ी क़िलों को अपनी गतिविधियों का केंद्र बना लिया, लेकिन खजुराहो का धार्मिक महत्त्व 14वीं शताब्दी तक बना रहा, इसी काल में अरबी यात्री इब्न बतूता यहां योगियों से मिलने आए थे. खुजराहो धीरे–धीरे नगर से गांव में परिवर्तित हो गया और फिर यह लगभग विस्मृति में खो गया.

1838 में एक ब्रिटिश इंजीनियर कैप्टन टी.एस. बर्ट को अपनी यात्रा के दौरान अपने कहारों से इसकी जानकारी मिली. उन्होंने जंगलों में लुप्त इन मंदिरों की खोज की और उनका अलंकारिक विवरण बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के समक्ष प्रस्तुत किया. 1843 से 1847 के बीच छतरपुर के स्थानीय महाराजा ने इन मंदिरों की मरम्मत कराई. मेजर जनरल अलेक्ज़ेंडर कनिंघम ने इस स्थान की 1852 के बाद कई यात्राएं कीं और इन मंदिरों का व्यवस्थाबद्ध वर्णन अपनी *आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया रिपोर्ट्स* में किया. खजुराहो के स्मारक अब भारत के पुरातात्विक सर्वेक्षण विभाग की

देखभाल और निरीक्षण में हैं, जिसने अनेक टीलों की खुदाई का कार्य करवाया है. इनमें लगभग 18 स्थानों की पहचान कर ली गई है. खजुराहो को यूनेस्को से 1986 में विश्व धरोहर स्थल का दर्जा भी मिला. आधुनिक खजुराहो एक छोटा गांव है, जो होटलों और हवाई अड्डे के साथ पर्यटन व्यापार की सुविधा उपलब्ध कराता है.

खजुराहो के एक मंदिर की विभिन्न आकृतियां
सौजन्य : अमेरिकन इंस्टिट्यूट ऑफ़ इंडियन सोसाइटी

25 मंदिरों में से 10 विष्णु को समर्पित हैं, जिसमें उनका एक सशक्त मिश्रित स्वरूप वैकुंठ शामिल है. नौ मंदिर शिव के, एक सूर्य देवता का, एक रहस्यमय योगिनियों (देवियों) का और पांच मंदिर दिगंबर जैन संप्रदाय के तीर्थंकरों के हैं. यहां पर विराजमान बुद्ध की एक विशाल प्रतिमा के प्राप्त होने से यह संकेत मिलता है कि इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म का भी प्रचलन था, भले ही वह सीमित पैमाने पर ही क्यों न रहा हो. शिला पर अंकित हनुमान की एक मूर्ति उनकी भी पूजा होने का संकेत देती है. इस तरह, खजुराहो एक ऐसा धार्मिक केंद्र था, जहां कई संप्रदाय फले–फूले. खजुराहो की हिंदू धार्मिक प्रणाली तंत्र पर आधारित थी, लेकिन कापालिक संप्रदाय के खोपड़ी धारियों (शिव के कापाली स्वरूप के पूजक) से पृथक थी. ये लोग उग्र तांत्रिक नहीं थे, ये परंपरागत रूढ़िवादी और ब्राह्मणवादी धारा के थे, जो वैदिक पुनरुत्थान और पौराणिक तत्त्वों से प्रभावित थे जैसा कि मंदिरों के शिलालेखों से प्रमाण मिलता है.

64 योगिनियों का खुला मंदिर (निर्माण 900) खुरदुरे ग्रेनाइट पत्थर का बना हुआ है, जबकि 10वीं शताब्दी के मध्य में बने नागर शैली के उत्कृष्ट मंदिर, चिकने बलुआ पत्थर से निर्मित हैं. मंदिर तीन समूहों में विभक्त हैं, (1) पश्चिमी मंदिर, जो विशालतम और सर्वश्रेष्ठ हैं, जहां शासक परिवार ने शानदार स्मारक निर्मित किए. इनमें लक्ष्मण या वैकुंठ (अंकित तिथि 954), विश्वनाथ (अंकित तिथि 999) और कंदर्य महादेव (निर्माण 1030 ई.) शामिल हैं, (2) पूर्वी मंदिर, जहां व्यापारियों ने जैन मंदिर बनवाए, जैसे पार्श्वनाथ (निर्माण 950 से 970), आदिनाथ (निर्माण 1075), (3) दक्षिणी मंदिर, जहां वैद्यनाथ शिव मंदिर (34 मीटर लंबा) के अवशेष हैं, जो सबसे विस्तृत है और इसे भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग ने खोज निकाला है.

वास्तु विशेषताएं

विभिन्न धार्मिक संप्रदायों से संबद्ध होने के बावजूद इन मंदिरों में स्थापत्य की शैली में एकरूपता है. ये वास्तुकला की मध्य भारतीय नागर शैली की परंपरा में निर्मित है.

ये चार या पांच भाग या इकाइयों वाली सुसंबद्ध एकीकृत संरचनाएं हैं; ये इकाइयां हैं– गर्भगृह, अंतराल, महामंडप, मंडप और अर्द्ध मंडप. अधिकांश मंदिर पूर्व–पश्चिम धुरी पर बने हुए हैं और उदय होते सूर्य की किरणों का प्रकाश सीधा इन्हें मिलता है. इनमें चारदीवारी नहीं है, जैसा दक्षिण भारत या उड़ीसा के मंदिरों में दिखाई देता है, लेकिन इन सभी मंदिरों का अपना–अपना पृथक चबूतरा है, जो उनकी पवित्र सीमा को निश्चित करता है.

भारतीय मंदिरों की एक अत्यंत विकसित अवस्था खजुराहो के मंदिरों में दृष्टिगोचर होती है. चार विशाल मंदिर संधार हैं, जिनमें आंतरिक प्रदक्षिणा पथ है. कम से कम दो बड़े मंदिर, लक्ष्मण (वैकुंठ) मंदिर और विश्वनाथ मंदिर पांच देवालयों (पंचायतन) वाले मंदिर हैं. मुख्य मंदिर के चबूतरे के चारों कोनों पर चार उप–देवस्थान बने हुए हैं.

रचना प्रारूप

ऊंचे चबूतरे (जगति) के अतिरिक्त, जिस पर ये मंदिर खड़े किए गए हैं, खजुराहो के मंदिरों की अधिसंरचना के तीन प्रमुख अंग हैं– आधार मंज़िल (पीठ), भित्ति या दीवार (जंघा) और छत या शीर्ष (शिखर). आधार मंज़िल में अनेक अलंकृत संरचनाएं या आकृतियां हैं, जो मानवीय क्रियाओं (नरथर), महिमामंडित मुखौटों (कीर्ति मुख) और ज्यामितीय रूपाकंनों को चित्रित करती हैं. दीवार या भित्ति क्षेत्र दो या तीन मूर्ति चित्रण क्षेत्रों में बंटा होता है. यहीं पर हम सुंदर आकृति वाली मूर्तियां– अप्सराएं, कल्पित जीवों, युगलों और दिक्पालों सहित विभिन्न देवी–देवताओं को देख सकते हैं. भूमि के स्तर से ऊपर की ओर असंख्य कटावों और उभारों से होकर मंदिर के ऊपरी शीर्ष तक पहुंचा गया है, जो इसके प्रदर्शनीय प्रभाव में चार चांद लगा देता है.

सहायक संरचनाओं, जैसे द्वारमंडप की छतें आकार में पिरामिडनुमा होती हैं, जबकि मुख्य मंडप का शिखर वक्ररेखीय होता है, जिसके चारों ओर सीढ़ीदार छोटे शिखरों के समूह हैं. वास्तुशिल्पियों ने क्रमशः शीर्ष संरचनाओं को इस प्रकार उभारा है कि सर्वोच्च बिंदु तक पहुंचते–पहुंचते पर्वत जैसी आकृति निर्मित हो जाती है. वास्तव में, खजुराहो के शिलालेख इस मंदिर की तुलना भगवान शिव के वास स्थान कैलाश पर्वत और ब्रह्मांड के केंद्र मेरु पर्वत से करते हैं. खजुराहो के मंदिरों की वास्तु कल्पना हमें ब्रह्मांड के एक प्रारूप के रूप में मंदिर को देखने में मदद करती है. कंदर्य महादेव मंदिर में, जो 31 मीटर ऊंचा और पर्वताकार है, केंद्रीय शिखर के आसपास विन्यासित 84 लघु शिखर हैं. यह निश्चय ही भारतीय मंदिर कला का एक उत्कृष्ट नमूना है.

आंतरिक सौंदर्य

सभी मंदिर आंतरिक और बाह्य, दोनों भागों में पूरी भव्यता के साथ मनोरम नक़्क़ाशी से सजे हैं. मंदिरों की भीतरी छतें जटिल ज्यामितीय और बेलबूटों की नक़्क़ाशी से अलंकृत हैं. स्तंभों की दीवारगीरों पर क्रमशः व्यालों और अप्सराओं की उभारदार मूर्तियां सजी हैं. मुख्य मंडप का द्वार परंपरागत मिथुन (युगल), लताओं या बेलों और
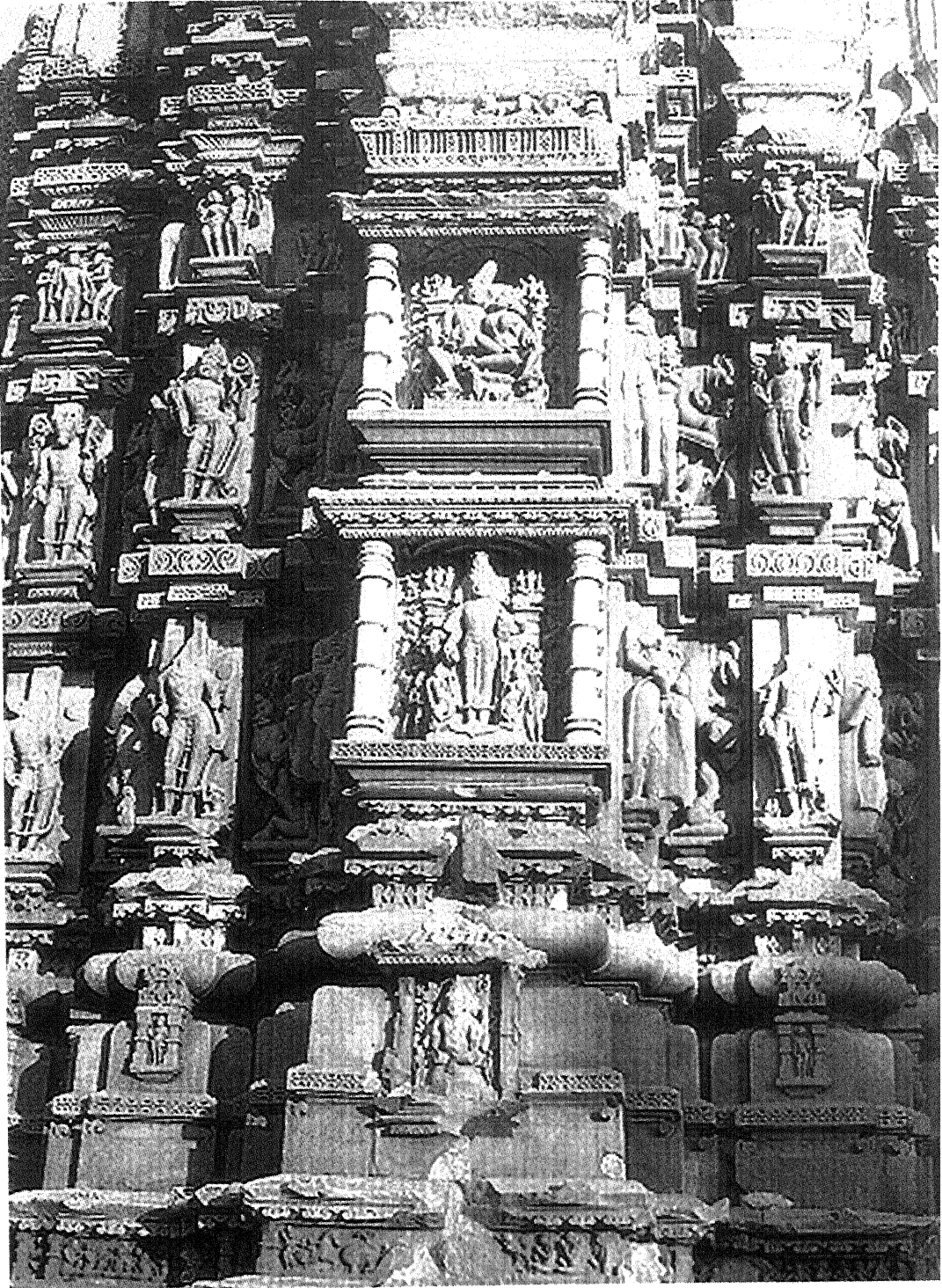
चित्रगुप्त मंदिर, पश्चिमी भाग, खजुराहो, मध्य प्रदेश
सौजन्य : देवांगना देसाई

वामन जैसे शुभ चिह्नों से सजाया गया है. यह द्वारपालों द्वारा रक्षित है और गंगा और यमुना नदी देवियों की मानवाकार मूर्तियों द्वारा इसका पवित्रीकरण किया गया है.

विशाल मंदिरों (लक्ष्मण, विश्वनाथ, कंदर्य, पार्श्वनाथ) के गर्भगृह अपनी आंतरिक प्रदक्षिणाओं के साथ अपनी निर्माण योजना में त्रिआयामी यंत्र (ज्यामितीय आकृति) से मिलते–जुलते हैं, जिनके आठ कोने दिक्पालों द्वारा रक्षित हैं. तीन मुख्य आले मंडप में प्रमुख देवों की उपस्थिति के प्रतीक हैं. प्रतिमाओं की योजना मंदिर के धार्मिक मत से संबद्ध होती है.

शिल्प

मानव शरीर विभिन्न मुद्राओं और भावों में श्रृंगारिक सौंदर्य के साथ दिखाया गया है. शरीर रचना को यूनानी शिल्प शैली के अनुसार मांसल उभारों वाली न दिखाकर उसकी सुंदरता कई कोणों से प्रत्यक्षतः पारदर्शी वस्त्रों में दर्शाई गई है.

मंदिरों पर मूर्तियों का बाहुल्य है. कनिंघम ने केवल एक ही मंदिर कंदर्य महादेव के बाहरी और भीतरी भाग में क्रमशः 646 और 226 मूर्तियों की गिनती की थी. मूर्तिकला को बहुत संतुलित स्थापत्य के साथ एकीकृत किया गया है. मंदिर की समग्र अभिकल्पना में मूर्तिकला से युक्त क्षैतिज पट्टियों को भवन के उत्थान के साथ पूर्णतः संतुलित किया गया है.

देवी–देवता

मूर्तिशिल्प मुख्यतः देवी–देवताओं के हैं. मंडप के भीतरी भाग में संप्रदाय से संबद्ध प्रतिमाएं हैं और मुख्य देवालय और आसपास के ताक़ों में मुख्य देवता की विभिन्न स्वरूप वाली मूर्तियां हैं. दिक्पालों, मातृकाएं, ग्रहों और अन्य कई छोटे देवी–देवताओं, उड़ते हुए विद्याधर, गंधर्व, गणों जैसी अर्द्ध देवों की आकृतियों से मंदिर के विभिन्न भागों को सजाया गया है. देवताओं की सैकड़ों मूर्तियां हाथों में ग्रंथ लिए हुए प्रदर्शित की गई हैं, जो ज्ञान और अध्ययन की महत्ता की सूचक हैं. कई देव, जिनमें विष्णु, शिव, सूर्य और देवी शामिल हैं, योग मुद्रा में विराजमान हैं. अत्यंत भव्य मूर्तियों में, चतुर्भुज मंदिर में स्थापित 2.74 मीटर ऊंची एक प्रतिमा है.

पवित्र और पौराणिक जीव

भगवान शिव के नंदी बैल और विष्णु के अवतार 'वराह' की त्रिआयामी मूर्तियां यहां हैं. वराह की पशु रूप प्रतिमा (950 में निर्मित), जो मंदिर श्रृंखला के पश्चिमी भाग में स्थापित है, एक वैश्विक स्वरूप में प्रदर्शित है. उनके भीमकाय शरीर पर हिंदू देवगणों के 650 देवी–देवता चित्रित हैं. पौराणिक जीव *व्याल* विभिन्न प्रकारों में देखा जा सकता है. सभी अलंकृत मंदिरों में सिंह के शरीर पर विभिन्न पशुओं और पक्षियों के चेहरे जोड़कर प्रदर्शित किया गया है. पौराणिक जलीय जीव मकर (या मगर) अक्सर मेहराबों या ताक़ों को सुसज्जित करते हैं.

शृंगारिक मूर्तियां

खजुराहो न तो कामुक मूर्तिकला का पर्याय है और न *कामसूत्र* नामक ग्रंथ का चित्रांकन. कामुक विषय की मूर्तियां मंदिरों पर बनी हुई कुल मूर्तियों का 10वां भाग भी नहीं हैं, लेकिन इन्होंने आवश्यकता से अधिक ध्यान आकर्षित किया है. शृंगारिक चित्रण शुभ शकुन का सूचक माना जाता था, क्योंकि यह प्रजनन या सृजन का प्रतीक है. यह देशव्यापी विस्तृत परिपाटी का एक भाग था. एक शुभकारक और अमंगल निवारक रूपांकन के तौर पर यह भारत में अधिकांश मंदिरों पर, चाहे वह हिंदू मंदिर हो या बौद्ध या जैन मंदिर, जो 900 से 1300 के बीच निर्मित हुए, बनाए गए हैं. सामान्यतः ये क्षेत्र के स्थापत्य सिद्धांतों के अनुसार निर्मित हैं. खजुराहो में शृंगारिक मूर्तियां मंदिरों की मुख्य दीवार पर बनाई गई हैं, इसलिए ये विशाल और गरिमायुक्त हैं. कलाकारों ने इस प्रचलित विषय–वस्तु का सृजनात्मक उपयोग किया है. विपरीत लिंगों के मिलन के यह प्रदर्शन मंदिरों को जोड़ने वाली उन दीवारों पर अंकित हैं, जो आराधकों के मंडप और ईश्वरीय सत्ता के वास स्थान को जोड़ती हैं. इस प्रकार प्रतीक रूप में कुछ और ही सूचित किया गया है, जो कामोद्दीपक मात्र नहीं है. प्रत्यक्ष अर्थ भले ही कामुक हो, लेकिन अंतर्निहित आशय एक सूक्ष्म योग संबंधी दार्शनिक संकल्पना की अभिव्यक्ति करता है.

अप्सराएं

खजुराहो के शिल्पियों द्वारा नागर शैली के सभी मंदिरों पर, चाहे वे हिंदू मंदिर हों या जैन मंदिर, अप्सराएं उत्कीर्ण हैं. अप्सराएं विभिन्न दैनिक क्रियाकलापों में संलग्न आकृतियों में प्रदर्शित की गई हैं, जैसे शृंगार करते हुए, पैर से कांटा निकालते हुए, पत्र लिखते हुए और बच्चे को गोद में लिए हुए आदि. स्थापत्य विज्ञान के वास्तु ग्रंथ विशेष तौर पर मंदिरों की दीवारों पर स्त्री मूर्तियों की रचना का निर्देश देते हैं. वास्तव में, अप्सराएं भारतीय कला का सर्वव्यापी विषय रही हैं, जो तत्कालीन मंदिरों की दीवारों पर अंकित की गईं. खजुराहो और अन्य मध्यकालीन मंदिरों पर अप्सराएं शुभकारक कला रूपांकन हैं, जिनका उद्भव वानस्पतिक आत्माओं (यक्षिणियों) और उर्वरता की मूर्तियों से हुआ, जो प्रारंभिक भारतीय कला के रूप में सांची, भरहुत और मथुरा में अंकित है.

खजुराहो के कलाकारों का एक प्रिय रूपांकन अप्सरा द्वारा अपने शरीर से चिपके बिच्छू को अलग फेंकने के लिए अपने वस्त्रों को उतारने की मुद्रा है. यह उर्वरता या मादकता का बोध कराने वाली एक काव्यात्मक युक्ति थी. मनोरंजक बात तो यह है कि बिच्छू के लिए संस्कृत शब्द 'खर्जूर' है. बिच्छूधारी अप्सरा को खजुराहो के नाम 'खर्जूरवाहक नगर' से भी जोड़ा जा सकता है. इसके दो अर्थ हैं, 'खजूर के वृक्ष का धारक' या 'बिच्छू का धारक'. मूर्तिकार और कवि, दोनों अपनी कला में द्विअर्थी अभिव्यक्तियों के उपयोग के आदी रहे हैं. वास्तव में खजुराहो की कला का लोकाचार दर्शन अत्यंत परिष्कृत और सुसंस्कृत है.

कंदर्य महादेव मंदिर खजुराहो कला की सर्वाधिक उत्कृष्ट उपलब्धि है, जो अपने कई कंगूरों वाले ब्रह्मांडकीय पर्वत के प्रतीक की कल्पना अपने गर्भगृह में यंत्र के रूप में

सम्मिलित करता है और शैव तात्विक प्रणाली की दृश्यमान अभिव्यक्ति को अपनी मूर्ति प्रणाली में समेटे हुए है. अप्रकट परम सत्य का प्रतीक शिवलिंग मुख्य मंदिर के मध्य में स्थापित है. आसपास के ताक़ों में शिव के विविध क्रमिक स्वरूप प्रदर्शित हैं. संपूर्ण मंदिर एक क्रमबद्ध इकाई है, जिसमें विभिन्न मूर्तियां एक समेकित योजना का भाग हैं. खजुराहो के मंदिर भारतीय कला के उस एक सृजनात्मक क्षण के प्रतीक हैं, जब कला प्रतिभा का धार्मिक आस्थाओं के साथ संयोग हुआ और एक अर्थगर्भित स्वरूप की रचना हुई. जनसंख्या (2001) नगर 19,282.

खड़गपुर

खड़कपुर भी कहलाता है, शहर, दक्षिण–मध्य पश्चिम बंगाल राज्य, पूर्वोत्तर भारत, कसाई नदी के ठीक दक्षिण में स्थित. मूलतः मिदनापुर का रेलवे उपनगर, खड़गपुर आज एक महत्त्वपूर्ण रेल जंक्शन है, जहां कार्यशालाएं व सुनियोजित विशाल रेलवे बस्ती है. चावल मिलों के साथ रसायन, जूते और रेशम के कपड़े का निर्माण यहां के प्रमुख उद्योग हैं. इस शहर में एक मुस्लिम पीर की दरग़ाह है, जिसे मुसलमान और हिंदू समान भाव से पूजते हैं. 1911 में नगरपालिका बने खड़गपुर में एक संग्रहालय व भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आई.आई.टी., 1950 में स्थापित) हैं, जिसे विश्वविद्यालय का दर्जा प्राप्त है. जनसंख्या (2001) 2,07,984; रेलवे क्षेत्र 88,339.

ख़दीजा

(मृ.–619, मक्का, अरब {वर्तमान सऊदी अरब}), पैग़ंबर मुहम्मद (इस्लाम के संस्थापक) की पहली पत्नी. मुहम्मद साहब से जब वह मिलीं, उस समय वह अपने व्यापार की कुशल देखरेख करने के कारण समृद्ध बन चुकी थीं और एक धनवान व्यापारी की विधवा थीं.

मुहम्मद को व्यापार प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त करने के कुछ ही समय बाद ख़दीजा ने उन्हें खाविंद के तौर पर उपयुक्त पाया. इससे पहले उनका दो बार निकाह हो चुका था व दोनों से उनकी औलादें थीं. अधिकांश स्रोतों के अनुसार, निकाह के वक़्त उनकी उम्र लगभग 40 थी, जबकि मुहम्मद लगभग 25 के थे. लेकिन उनका कम से कम छह बच्चों को जन्म देना दर्शाता है कि शायद वह कम उम्र की थीं. जब मुहम्मद साहब को पहले इल्हाम हुए, तो ख़दीजा ने उन्हें सहायता दी व प्रोत्साहित किया और जब कई प्रमुख मक्कावासी उनका विरोध करने लगे, तो वह उनके प्रति वफ़ादार बनी रहीं. जब तक वह जीवित रहीं, मुहम्मद ने और कोई विवाह नहीं किया.

खम्मम

भूतपूर्व खम्मन, शहर, उत्तर–मध्य आंध्र प्रदेश राज्य, दक्षिण–पूर्वी भारत. यह मध्य रेलवे पर वारंगल के दक्षिण–दक्षिणपूर्व में स्थित है. यह शहर एक व्यापारिक और आर्थिक केंद्र है. आसपास के क्षेत्र में चावल, ज्वार, मक्का और दलहन उगाए जाते हैं; कोयला,

रक्तमणि, लौह अयस्क और सिलखड़ी भी यहां मिलते हैं. जनसंख्या (2001) शहर 1,58,022; ज़िला कुल 25,65,412.

ख़याल

हिंदुस्तानी संगीत में, हिंदी गीत पर आधारित दो हिस्सों वाली संगीत शैली, जो रागात्मक एवं लयात्मक आशु गायन के विस्तारित चक्रों के बीच पुनरावृत्त होती है. मानक प्रदर्शन में एक ही राग में एक विलंबित (धीमा) ख़याल के बाद एक द्रुत (तेज़) ख़याल आता है.

ख़याल की ध्रुपद लंबी रागात्मक शैली से संबद्ध है, लेकिन इसमें कम प्रतिबंध हैं. इसके साथ विविध तालों में तबला एवं तानपुरा संगत करते हैं.

खरगौन

नगर, दक्षिण–पश्चिमी मध्य प्रदेश राज्य, मध्य भारत, नर्मदा नदी की सहायक कुंडा नदी के पूर्वी तट पर स्थित. यह एक प्राचीन नगर है और मुग़ल शासनकाल में इसे बीजागढ़ की सरकार में एक महाल का मुख्यालय बनाए जाने पर इसकी महत्ता बढ़ी. अब यहां एक पुराना क़िला और कई मक़बरे व महल हैं. नदी के तट को पत्थर के तटबंध से पक्का कर दिया गया है और घाटों का निर्माण करके सुंदर बनाया गया है. खरगौन स्थित नवग्रह मंदिर प्रसिद्ध है और यहां प्रतिवर्ष दिसंबर और जनवरी में मेले का आयोजन होता है.

खरगौन अपने ज़िले का एक महत्त्वपूर्ण वाणिज्य और व्यापार केंद्र है और यहां कृषि उत्पाद और इमारती लकड़ी का बाज़ार है. यह कपास और अनाज का सुविकसित बाज़ार है. इस शहर में कपास ओटने और गांठ बनाने, चावल और तिलहन मिल और बीड़ी के कारख़ाने हैं. यह स्थान *मोरिंडा टिंकटोरिया* से रंजक उत्पादन के लिए भी जाना जाता है.

इस शहर में एक पुस्तकालय और कई सरकारी महाविद्यालय हैं, जो उज्जैन के विक्रम विश्वविद्यालय से संबद्ध हैं. यहां एक आधारभूत प्रशिक्षण संस्थान और संस्कृतशाला भी है. जनसंख्या (2001) 86,443.

ख़राज

एक विशेष इस्लामी वित्तीय कर, जो 7वीं व 8वीं शताब्दियों में इस्लाम कुबूल करने वाले नए लोगों से लिया जाता था.

ख़राज की अवधारणा का उदय नवविजित इस्लामी क्षेत्रों में ग़ैर मुसलमानों और इस्लाम में नवधर्मांतरित लोगों के दर्जे में परिवर्तन से जुड़ा है. इन क्षेत्रों के मूल यहूदी, ईसाई अथवा पारसी जनसमुदायों को इस्लाम में धर्मांतरित होने अथवा अपनी पुरानी धार्मिक मान्यताओं पर क़ायम रहने की छूट थी. उन लोगों के लिए, जो धर्मांतरण पसंद नहीं करते थे, एक विशेष शुल्क देना आवश्यक था, बहुधा प्रति व्यक्ति कर के रूप में,

जिसे जज़िया कहा जाता था. किंतु जो धर्म परिवर्तन करना चुनते थे, उन्हें सैद्धांतिक रूप से वित्तीय मामले में अन्य मुसलमानों की बराबरी पर रखा जा सकता था.

इस्लामी क़ानून के अंतर्गत, केवल मूलतः मुसलमान अथवा धर्मांतरण द्वारा मुसलमान बने लोग ही ज़मींदार हो सकते थे. इसलिए अपनी कृष्य भूमि रख पाना ग़ैर मुस्लिम कृषकों के लिए धर्म परिवर्तन का पुरस्कार था. धर्म परिवर्तन करने पर कृषकों को अपनी उपज के दसवें भाग के बराबर *उश्र* (दशमांश धर्मशुल्क) देना पड़ता था. सैद्धांतिक रूप से ये धर्मांतरित लोग भूमि के अन्य करों से मुक्त रहते थे. लेकिन उमय्या ख़लीफ़ाओं (शासनकाल, 661– 750) ने, बढ़ती वित्तीय समस्याओं का सामना करने के लिए, नव धर्मांतरितों की भूमि पर उनके *उश्र* के भुगतान के अतिरिक्त एक प्रकार का ख़राज लगाया. ख़राज का यह अतिरिक्त आरोपण अलोकप्रिय था, कई धर्मांतरित लोग मानते थे कि यह इस्लाम के समतावादी सिद्धांतों का उल्लंघन था. ईरान के पूर्वोत्तर प्रांत खुरासान में, ख़राज इकट्ठा करना अबू की 747 ई. की बग़ावत के कारणों में से एक था, जो उमय्या ख़िलाफ़त के पतन का कारण बनी. इसके बाद के ख़लीफ़ा अब्बासी के शासन के प्रारंभिक वर्षों में ख़राज की वसूली बंद हो गई.

खरिया

उड़ीसा और झारखंड राज्यों के छोटा नागपुर इलाक़े में रहने वाले पहाड़ी लोगों के कई समूहों में से एक, पूर्वोत्तर भारत. 20वीं शताब्दी के अंत में इनकी संख्या 2 लाख 80 हज़ार थी. अधिकांश खरिया मुंडा परिवार की दक्षिणी मुंडा भाषा बोलते हैं, जो स्वयं ऑस्ट्रो–एशियाई समूह का हिस्सा है. ये अनिश्चित नृवंश मूल के हैं. खरियों के तीन उपसमूह हैं : पहाड़ी खरिया, ढेलकी और दुध. ये सभी पितृवंशीय हैं, जिसमें परिवार आधारभूत इकाई है और इनका नेतृत्व एक जनजातीय सरकार करती है, जिसमें एक पुजारी, एक मुखिया और गांव के नेता होते हैं. पहाड़ी खरिया एक भारतीय–ईरानी भाषा बोलते हैं, अन्यथा वे एकदम पृथक समूह प्रतीत होते हैं. ढेलकी और दुध, दोनों ही खरिया भाषा बोलते हैं, एक–दूसरे को खरिया के रूप में मानते हैं, लेकिन पहाड़ी खरिया को नहीं मानते हैं.

संख्या में सबसे बड़ी और प्रगतिशील शाखा दुध है; ये शंख और दक्षिण कोल नदियों के किनारे रहते हैं. ढेलकी गंगापुर के निकट केंद्रित है. दोनों स्थायी रूप से गांवों में रहते हैं और गांवों के संघ सामाजिक एकता की भावना को सुदृढ़ करते हैं. ये परंपरागत रूप से अविवाहित पुरुषों व महिलाओं के लिए विशाल पृथक शयनागार बनाते हैं, लेकिन इस प्रथा को ईसाई खरियों ने त्याग दिया है. खरियों के परंपरागत धर्म में एक प्रकार की सूर्य पूजा शामिल है, जिसमें प्रत्येक परिवार का मुखिया अपने वंश की सुरक्षा के लिए बेरो के समक्ष पांच बलियां देता है.

पहाड़ी खरिया उड़ीसा राज्य के सिमलीपाल क्षेत्र के दूरस्थ इलाक़ों में छोटे समूहों में रहते हैं. वे झूम खेती पर निर्भर रहते हैं और चावल व मोटा अनाज उगाते हैं, हालांकि

हमेशा भूमि की कमी की समस्या का सामना करते हैं. ये रेशम के कीट, शहद और मधुमक्खियों का मोम व्यापार के लिए इकट्ठा करते हैं.

खरोष्ठी

पश्चिमोत्तर भारत में लगभग 500 ई. से पहले प्रयुक्त लेखन प्रणाली. खरोष्ठी लिपि में सबसे प्राचीन उपलब्ध अभिलेख 251 ई.पू. का है और नवीनतम ईसा के बाद चौथी से पांचवी शताब्दी का है. इस प्रणाली की उत्पत्ति संभवतः सीरियाई वर्णाक्षरों से हुई, जब पश्चिमोत्तर भारत पर पांचवीं शताब्दी ई.पू. में ईरान का शासन था. लेकिन सीरियाई लिपि एक सामी वर्णमाला है, जिसमें 22 व्यंजन अक्षर हैं, जबकि खरोष्ठी आक्षरिक है और इसमें व्यंजन और स्वर संयोजनों के 252 विभिन्न अक्षर हैं.

दाएं से बाएं और प्रवाही लिपि में लिखी जाने वाली खरोष्ठी लिपि का उपयोग वाणिज्य और ख़ुशनवीसी में होता था. इस पर कुछ हद तक ब्राह्मी का प्रभाव पड़ा, जो उस काल की एक अन्य भारतीय लिपि थी और जिसने अंततः इसका स्थान ले लिया.

ख़लजी वंश

(1290 से 1320), दिल्ली की मुस्लिम सल्तनत में दूसरा शासक परिवार. हालांकि ख़लजी क़बीला लंबे समय से अफ़ग़ानिस्तान में बसा हुआ था, लेकिन अपने पूर्ववर्ती ग़ुलाम वंश की तरह यह राजवंश भी मूलतः तुर्किस्तान का था. इसके तीन शासक अपनी निष्ठाहीनता, निर्दयता और दक्षिण भारतीय हिंदू राज्यों पर अधिकार के लिए जाने जाते थे.

ख़लजी वंश के पहले सुल्तान जलालुद्दीन फ़िरोज़ ख़लजी, ग़ुलाम वंश के अंतिम कमज़ोर बादशाह कैकुबाद के पतन के बाद एक कुलीन गुट के सहयोग से गद्दी पर बैठे. जलालुद्दीन उम्र में काफ़ी बड़े थे और अफ़ग़ानी क़बीले का माने जाने के कारण एक समय वह इतने अलोकप्रिय थे कि राजधानी में घुसने तक का साहस नहीं कर सकते थे. उनके भतीजे जूना ख़ां ने दक्कन के हिंदू राज्य पर चढ़ाई करके एलिचपुर और उसके ख़ज़ाने पर क़ब्ज़ा कर लिया और फिर 1296 में वापस लौटकर उन्होंने अपने चाचा की हत्या कर दी.

अलाउद्दीन ख़लजी के शासनकाल का प्रतिनिधित्व करता एक स्मारक अलाई दरवाजा, महरौली, नई दिल्ली
सौजन्य : यूसुफ़ सईद

जूना ख़ां ने अलाउद्दीन ख़लजी की उपाधि धारण कर 20 वर्ष तक शासन किया. उन्होंने रणथंभौर (1301), चित्तौड़ (1303) और मांडू (1305) पर क़ब्ज़ा किया और देवगिरि के समृद्ध हिंदू राज्य को अपने राज्य में मिला लिया. उन्होंने मंगोलों के आक्रमण का भी मुंहतोड़ जवाब दिया. अलाउद्दीन के सेनापति मलिक काफ़ूर को 1308 में दक्षिण पर विजय के लिए भेजा गया, जहां उन्होंने वारंगल पर क़ब्ज़ा कर लिया, कृष्णा नदी के दक्षिण में होयसल वंश को उखाड़ फेंका और सुदूर दक्षिण में मदुरै पर अधिकार कर

लिया. जब 1311 में मलिक काफ़ूर दिल्ली लौटे, तो वह लूट के माल से लदे थे. इसके बाद अलाउद्दीन और उनके वंश का सितारा डूब गया.

1316 के आरंभ में सुल्तान की मृत्यु हो गई. मलिक काफ़ूर द्वारा सत्ता पर क़ाबिज़ होने की कोशिश उनकी मृत्यु के साथ ही समाप्त हुई. अंतिम ख़लजी शासक कुतुबुद्दीन मुबारक शाह की उनके प्रधानमंत्री खुसरो ख़ां ने 1320 में हत्या कर दी. बाद में तुग़लक वंश के प्रथम शासक ग़यासुद्दीन तुग़लक़ ने खुसरो ख़ां से गद्दी छीन ली.

ख़लीफ़ा

अरबी शब्द, जिसका अर्थ है उत्तराधिकारी, मुस्लिम समुदाय का शासक. जब मुहम्मद साहब की मृत्यु हुई (8 जून 632), तो अबु बक्र ने ख़लीफ़ा रसूल अल्लाह या पैग़ंबर के उत्तराधिकारी के रूप में उनके राजनीतिक और प्रशासनिक कार्यों का उत्तराधिकार संभाला, लेकिन दूसरे ख़लीफ़ा उमर बिन अल–ख़त्तब के काल में ख़लीफ़ा शब्द का इस्तेमाल मुस्लिम राज्य के नागरिक और धार्मिक प्रमुख के रूप में होने लगा. इसी अर्थ में *कुरान* में इस शब्द को आदम और डेविड के लिए भी इस्तेमाल किया गया है, जिन्हें ख़ुदा का उप–राज्य सहायक कहा जाता था.

अबु बक्र और उसके बाद के तीन उत्तराधिकारियों को संपूर्ण या सुनिर्देशित ख़लीफ़ा (अल ख़ुलाफ़ा अर–राशिदून) माना जाता था. उनके बाद दमिश्क के 14 उमायद ख़लीफ़ाओं ने यह उपाधि धारण की, जिसके बाद बग़दाद के 38 अब्बासी ख़लीफ़ा हुए, जिनका वंश 1258 में मंगोलों से पराजित हो गया. 1258 से 1517 तक काहिरा में मामलुक के अंतर्गत अब्बासी वंश के उपाधिधारी ख़लीफ़ा थे, जिसके बाद अंतिम ख़लीफ़ा को ऑटोमन के सुल्तान सलीम I ने बंदी बना लिया. इसके बाद ऑटोमन सुल्तानों ने इस उपाधि पर दावा किया और 3 मार्च 1924 को तुर्की गणतंत्र द्वारा समाप्त किए जाने तक इसका उपयोग किया.

दमिश्क में उमय्या वंश के पतन के बाद इस परिवार की स्पेनी शाखा ने भी ख़लीफ़ा की उपाधि धारण की, जो स्पेन में कोरदोबा पर शासन (755–1031) करते थे. फ़ातिमा (पैग़ंबर की बेटी) और उनके पति अली का वंशज होने का दावा करने वाले मिस्र के फ़ातिमाई शासकों (909–1171) ने भी यह उपाधि धारण की.

सर्वोच्च पद को इमामत या नेतृत्व कहने वाले शिया मुसलमानों के अनुसार, सिर्फ़ वही ख़लीफ़ा जायज़ है, जो पैग़ंबर मुहम्मद का वंशज है. सुन्नी मुसलमानों का दावा है कि यह पद क़ुरैश जनजाति का है, स्वयं पैग़ंबर मुहम्मद भी जिसके सदस्य थे. लेकिन इस दावे ने तुर्की के सुल्तानों के दावे को ख़ारिज कर दिया होता, जो क़ाहिरा के अंतिम अब्बासी ख़लीफ़ा द्वारा सलीम I को यह पद स्थानांतरित करने के बाद से इस पर बने रहे.

ख़ां, अब्दुल ग़फ़्फ़ार

अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ां
सौजन्य : *हिंदुस्तान टाइम्स*

(ज.–1890, उतमंजाई, भारत; मृ.–20 जन. 1988, पेशावर, पाकिस्तान), 20वीं शताब्दी में पख़्तूनों (या पठान; पाकिस्तान और अफ़ग़ानिस्तान का मुसलमान जातीय समूह) के सबसे अग्रणी और करिश्माई नेता, जो महात्मा गांधी के अनुयायी बन गए और उन्हें 'सीमांत गांधी' कहा जाने लगा.

राजनीतिक असंतुष्टों को बिना मुक़दमा चलाए नज़रबंद करने की इजाज़त देने वाले रॉलेट ऐक्ट के ख़िलाफ़ 1919 में हुए आंदोलन के दौरान ग़फ़्फ़ार ख़ां की गांधी से मुलाक़ात हुई और उन्होंने राजनीति में प्रवेश किया; अगले वर्ष वह ख़िलाफ़त आंदोलन में शामिल हो गए, जो तुर्की के सुल्तान के साथ भारतीय मुसलमानों के आध्यात्मिक संबंधों के लिए प्रयासरत था और 1921 में वह अपने गृह प्रदेश पश्चिमोत्तर सीमांत प्रांत में ख़िलाफ़त कमेटी के ज़िला अध्यक्ष चुने गए.

1929 में कांग्रेस पार्टी की एक सभा में शामिल होने के बाद ग़फ़्फ़ार ख़ां ने खुदाई ख़िदमतगार (ईश्वर के सेवक) की स्थापना की और पख़्तूनों के बीच लाल कुर्ती आंदोलन का आह्वान किया. यह आंदोलन भारत की आज़ादी के अहिंसक राष्ट्रीय आंदोलन का समर्थन करता था और इसने पख़्तूनों को राजनीतिक रूप से जागरूक बनाने का प्रयास किया. 1930 के दशक के उत्तरार्द्ध तक ग़फ़्फ़ार ख़ां महात्मा गांधी के निकटस्थ सलाहकारों में से एक हो गए और 1947 में भारत का विभाजन होने तक खुदाई ख़िदमतगार ने सक्रिय रूप से कांग्रेस पार्टी का साथ दिया. उनके भाई डॉक्टर ख़ां साहब (1858–1958) भी गांधी के क़रीबी और कांग्रेसी आंदोलन के सहयोगी थे. 1937 के प्रांतीय चुनावों में कांग्रेस ने पश्चिमोत्तर सीमांत प्रांत की प्रांतीय विधानसभा में बहुमत प्राप्त किया. ख़ां साहब को पार्टी का नेता चुना गया और वह मुख्यमंत्री बने.

देश के विभाजन के विरोधी ग़फ़्फ़ार ख़ां ने पाकिस्तान में रहने का निश्चय किया, जहां उन्होंने पख़्तून अल्पसंख्यकों के अधिकारों और पाकिस्तान के भीतर स्वायत्तशासी पख़्तूनिस्तान (या पठानिस्तान) के लिए लड़ाई जारी रखी. उन्हें अपने सिद्धांतों की भारी क़ीमत चुकानी पड़ी, वह कई वर्षों तक जेल में रहे और उसके बाद उन्हें अफ़ग़ानिस्तान में रहना पड़ा. 1972 में वह पाकिस्तान लौटे. उनका संस्मरण ग्रंथ *माई लाइफ़ ऐंड स्ट्रगल* 1969 में प्रकाशित हुआ.

ख़ां, अमजद अली

(ज.–9 अक्तू. 1945, ग्वालियर, मध्य प्रदेश, भारत), सरोद वादक, जो अपनी वंशावली को सेनिया घराने से जोड़ते हैं और जिन्हें भारत का अग्रणी शास्त्रीय संगीतकार माना जाता है.

सरोद वादक उस्ताद अमजद अली ख़ां एक संगीत समारोह में अपने बेटों, अमान और अयान अली बंगश के साथ
सौजन्य : *द हिंदू*

ग्वालियर के शाही परिवार के संगीतकार हफ़िज़ अली ख़ां के पुत्र अमजद अली ख़ां प्रसिद्ध बंगश वंशावली की छठी पीढ़ी के हैं, जिसकी जड़ें संगीत की सेनिया बंगश शैली में हैं. इस शैली की परंपरा को शहंशाह अकबर के अमर दरबारी संगीतकार मियां तानसेन के समय से जोड़ा जा सकता है. अमजद अपने पिता के ख़ास शिष्य थे, जिन्होंने सेनिया घराना सरोद वादन में परंपरागत तरीक़े से तकनीकी दक्षता हासिल की. ख़ां ने 12 वर्ष की कम उम्र में ही एकल वादक के रूप में पहली प्रस्तुति पेश की.

भारत और विदेश के इन व्यापक प्रदर्शनों को काफ़ी न पाकर अमजद अली ने शास्त्रीय संगीत में अभिनव परिवर्तन के अलावा बच्चों के लिए गायन एवं वाद्य संगीत की रचना की. अमजद की सर्जनात्मक प्रतिभा को उनके द्वारा रचित कई मनमोहक रागों में अभिव्यक्ति मिली. उन्होंने इंदिरा गांधी और राजीव गांधी की स्मृति में क्रमशः राग प्रियदर्शनी और राग कमलश्री की रचना की. उनके द्वारा रचित अन्य रागों में शिवांजली, हरिप्रिया कानड़ा, किरण रंजनी, सुहाग भैरव, ललित ध्वनि, श्याम श्री और जवाहर मंजरी शामिल हैं.

उन्हें कई पुरस्कार और सम्मान मिले : यूनेस्को पुरस्कार और कला रत्न के अलावा 1975 में पद्मश्री, 1989 में संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, 1989 तानसेन पुरस्कार, 1991 में पद्म भूषण.

कलाक्षेत्र परंपरा की भरतनाट्यम नृत्यांगना शुभलक्ष्मी के साथ विवाहित ख़ां के दो बेटे हैं– अमान और अयान अली बंगश. ये दोनों उनके शिष्य भी हैं और सरोद वादन का प्रदर्शन भी करते हैं.

ख़ां, अली अकबर

(ज.–14 अप्रै. 1922, शिबपुर, बंगाल), संगीतकार और माहिर सरोद वादक, पश्चिमी श्रोताओं के समक्ष भारतीय संगीत प्रस्तुत करने में सक्रिय. ख़ां के संगीत की जड़ें भारतीय संगीत की हिंदुस्तानी (उत्तरी) परंपरा में जमी हैं.

अली अकबर को उनके पिता संगीतकार अलाउद्दीन ख़ां ने प्रशिक्षित किया और 14 वर्ष की उम्र में उन्होंने कार्यक्रम देना शुरू कर दिया. वह शीघ्र ही जोधपुर के महाराजा के दरबारी संगीतकार बन गए. 1955 के बाद वायलिन वादक यहूदी मेनुहिन द्वारा उन्हें न्यूयॉर्क के मॉडर्न आर्ट म्यूज़ियम में सरोद वादन का निमंत्रण दिए जाने के उपरांत

उन्होंने पश्चिम में कई कार्यक्रम प्रस्तुत किए, जिनमें बहुधा वह अपने संगीतकार और सितार वादक बहनोई पं. रविशंकर के साथ जुगलबंदी करते थे. संगीतकार के रूप में अली अकबर को उनके फ़िल्म संगीत और कई रागों के रचयिता के रूप में जाना जाता है. उन्होंने कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) (1956) और मरीन काउंटी, कैलिफ़ोर्निया (1967) में संगीत विद्यालय स्थापित किए. इस सरोद वादक का परिवार अपनी वंशावली को मियां तानसेन से जोड़ता है, जो 16वीं सदी के महान संगीतकार और शहंशाह अकबर के दरबारी संगीतज्ञ थे. अली अकबर खां को 1971 में पद्म भूषण और 1988 में पद्म विभूषण सहित कई पुरस्कार प्रदान किए गए हैं.

खांडेकर, विष्णु सखाराम

विष्णु सखाराम खांडेकर
सौजन्य : भारतीय ज्ञानपीठ

(ज.–19 जन. 1898, सांगली, महाराष्ट्र; मृ.–2 सितं. 1976), मराठी भाषा के सुप्रसिद्ध साहित्यकार खांडेकर मेधावी छात्र थे और 1913 में बंबई विश्वविद्यालय से मैट्रिक में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हुए. पुणे जाकर उन्होंने फ़र्ग्युसन कॉलेज में प्रवेश लिया. लेकिन इस बीच उनके पिता दिवंगत हो गए और उनके चाचा ने उन्हें गोद ले लिया. चाचा को उनके शिक्षण पर ख़र्च करना बेकार लगा, इसलिए कॉलेज छोड़कर उन्हें घर लौटना पड़ा. तीन वर्ष वह गंभीर रोगों से पीड़ित रहे और स्वस्थ होने पर 1920 में घर से लगभग 24 किमी दूर शिरोद नामक गांव के स्कूल में अध्यापक हो गए.

नौ वर्ष बाद खांडेकर का मनु मनेरीकर से विवाह हुआ. मनु शिक्षित नहीं थीं, साहित्य के प्रति किसी प्रकार की रुचि भी उनमें न थी; पर वह कुशल गृहिणी थीं. 1933 में एक विषैले सांप द्वारा डसे जाने पर खांडेकर को बहुत कष्ट सहना पड़ा और इसका प्रभाव उनके चेहरे पर बाद तक बना रहा. शिरोद से वह 1938 में कोल्हापुर आ गए और उसके बाद से वहीं रहकर प्रसिद्ध फ़िल्म निर्माता–निर्देशक, अभिनेता मास्टर विनायक के लिए फ़िल्मी पटकथा लिखने में लग गए. कुछ वर्ष बाद मास्टर विनायक की असमय मृत्यु हो जाने पर पटकथा लेखन से उनकी रुचि हट गई और फिर वह अपने लेखन–कार्य में संलग्न हो गए.

खांडेकर को प्रतिकूल स्वास्थ्य के कारण जीवन भर कष्ट भोगने पड़े. उनकी दृष्टि तक चली गई, मगर 78 वर्ष की आयु में भी वह प्रमुख मराठी पत्र–पत्रिकाओं को नियमित रचना–सहयोग दिया करते और साहित्य जगत की प्रत्येक नई गतिविधि से संपर्क बनाए रखते. अपने सुदीर्घ और यशस्वी जीवन में उन्होंने अनेक पुरस्कार व सम्मान प्राप्त किए. *ययाति* के लिए उन्हें साहित्य अकादमी ने भी पुरस्कृत किया और बाद में फ़ेलोशिप भी प्रदान की. भारत सरकार ने साहित्यिक सेवाओं के लिए पद्मभूषण उपाधि से अलंकृत किया. ज्ञानपीठ पुरस्कार द्वारा सम्मानित होने वाले वह प्रथम मराठी साहित्यकार थे.

खांडेकर के लेखों और कविताओं का प्रकाशन 1919 से शुरू हुआ. अपनी उन्हीं दिनों की एक व्यंग्य रचना के कारण उन्हें मानहानि के अभियोग में फंसना पड़ा, पर उससे सारे कोंकण प्रदेश में वह अचानक प्रसिद्ध हो गए. पुणे में उन्हें प्रमुख कवि नाटककार

राम गणेश गडकरी के निकट संपर्क में आने का अवसर मिला. गडकरी और कोल्हटकर के अतिरिक्त, जिन अन्य मराठी लेखकों का विशेष प्रभाव खांडेकर पर पड़ा, वे थे गोपाल गणेश अगरकर, केशवसुत और हरि नारायण आप्टे.

शिरोद में बिताए गए 18 वर्ष खांडेकर के लिए निर्णायक सिद्ध हुए. लोगों की भयानक दरिद्रता और अज्ञान का बोध उन्हें वहीं हुआ. वहीं गांधी जी की विचारधारा की उन पर अमिट छाप पड़ी, जब एक के बाद एक उनके कई मित्र और सहयोगी सत्याग्रह आंदोलन में पकड़े गए.

खांडेकर कला और जीवन के बीच घनिष्ठ संबंध मानते थे. उनकी दृष्टि में कला एक सशक्त माध्यम है, जिसके द्वारा लेखक पूरे मानव–समाज की सेवा कर सकता है. खांडेकर ने साहित्य की विभिन्न विधाओं का कुशल प्रयोग किया है. उनकी लगन का ही फल था कि आधुनिक मराठी लघुकथा एक स्वतंत्र साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित हुई और वैयक्तिक निबंध को प्रोत्साहन मिला. रूपक–कथा नामक एक नए कहानी रूप को भी उन्होंने विकसित किया, जो मात्र प्रतीक कथा या दृष्टांत कथा न होकर और भी बहुत कुछ होती है. अक्सर वह गद्यात्मक कविता जैसी जान पड़ती है. 1959 में, अर्थात खांडेकर के 61वें वर्ष में प्रकाशित *ययाति* मराठी उपन्यास साहित्य में एक नई प्रवृत्ति का प्रतीक बना. स्पष्ट था कि जीवन के तीसरे पहर में भी उनमें नवसृजन की अद्भुत क्षमता थी.

प्रमुख कृतियां : उपन्यास– *देवयानी, ययाति, शर्मिष्ठा, कचदेव.*

खांडेकर को साहित्य अकादमी पुरस्कार, पद्मभूषण और ज्ञानपीठ पुरस्कार (1974) से सम्मानित किया गया.

ख़ां, नुसरत फ़तेह अली

(ज.–13 अक्तू. 1948, लायलपुर {वर्तमान फ़ैसलाबाद}, पाकिस्तान; मृ.–16 अग. 1997), मुस्लिम सूफ़ी भक्ति संगीत की विधा क़व्वाली के महानतम गायक. 1996 में उन्होंने पाया कि वह अमेरिकी मनोरंजन व्यवसाय के केंद्र में पहुंच चुके हैं. उन्होंने फ़िल्मों के लिए गाने रिकार्ड कराए, एम.टी.वी. पर आए और कई धर्मनिरपेक्ष गाने रिकार्ड किए, जिन्हें विशेष रूप से पश्चिमी श्रोताओं ने सराहा. कुछ को ऐसा लगा कि इस प्रकार का गायन सूफ़ी संगीत को जन्म देने वाली आध्यात्मिक विरासत और उनकी जन्मभूमि के लाखों प्रशंसकों के साथ विश्वासघात है, लेकिन नुसरत का मानना था कि उन्होंने कुछ भी छोड़ा नहीं और वह केवल अपने स्वर की गहराइयों को पाने की कोशिश में थे. वह ज़्यादा से ज़्यादा श्रोताओं के साथ अपनी प्रतिभा और संगीत विरासत की भागीदारी के इच्छुक रहे, फिर भी वह संभलकर चलने और अपनी आस्था से समझौता न करने के प्रति भी सतर्क रहे.

उनके पिता फ़तेह अली ख़ां और उनके दो चाचा शास्त्रीय शैली के प्रसिद्ध क़व्वाल थे. नुसरत ने संगीत की शिक्षा अपने पिता से हासिल की, लेकिन 1964 में अपने पिता की

अंत्येष्टि पर गाने के बाद ही क़व्वाली परंपरा के प्रति अपने को समर्पित किया. दो साल बाद उन्होंने अपने चाचाओं के साथ अपनी पहली मंचीय प्रस्तुति दी. 1970 के दशक के शुरू में उन्होंने स्वयं को पूरे पाकिस्तान में अपने समय के उत्कृष्ट क़व्वाल के रूप में स्थापित कर दिया. 1985 में इंग्लैंड में विश्व संगीत सम्मेलन में गाने के बाद उनकी प्रतिभा की चर्चा चारों ओर फैलनी शुरू हो गई और शीघ्र ही वह नियमित रूप से यूरोप भर में प्रदर्शन करने लगे. उन्होंने पहली बार 1989 में अमेरिका का भ्रमण किया और 1992 में वाशिंगटन विश्वविद्यालय में अतिथि कलाकार के रूप में एक साल बिताया.

आमतौर पर तबला, हारमोनियम और साथी गायकों की संगत में ख़ां बहुत ऊंचे सुर (पारिवारिक विशेषता) में गाते थे. उनकी आवाज़ बहुत सशक्त और अत्यंत अभिव्यंजक थी. शायद उनकी सबसे बड़ी विशेषता उनका सुरीला सृजन और लगातार गाने की विलक्षण क्षमता थी. उन्हें दस घंटे तक लगातार गाने के लिए जाना जाता था, हालांकि 1996 तक मधुमेह और उम्र के कारण उनकी ऊर्जा कुछ कम हो गई थी. 1997 में 49 वर्ष की आयु में हृदय गति रुक जाने से उनका निधन हो गया. उनकी असामयिक मृत्यु के कुछ ही पहले एक भारतीय फ़िल्म के लिए उनकी पहली संगीत रचना प्रदर्शित हुई थी.

ख़ां, बिस्मिल्ला

(ज.–21 मार्च 1916, बनारस {वर्तमान वाराणसी}, उत्तर प्रदेश, भारत), सिद्ध शहनाई वादक.

बिस्मिल्ला ख़ां
सौजन्य : *द हिंदू*

परदादा शहनाईनवाज़ उस्ताद सालार हुसैन ख़ां से शुरू यह परिवार पिछली पांच पीढ़ियों से शहनाई वादन का प्रतिपादक रहा है. ख़ां को उनके चाचा अली बक्श 'विलायतु' ने संगीत की शिक्षा दी, जो बनारस के पवित्र विश्वनाथ मंदिर में अधिकृत शहनाई वादक थे. ख़ां ने जटिल संगीत रचना, जिसे तब तक शहनाई के विस्तार से बाहर से माना जाता था, में परिवर्द्धन करके अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया और शीघ्र ही उन्हें इस वाद्य से ऐसे जोड़ा जाने लगा, जैसा किसी अन्य वादक के साथ नहीं हुआ. ख़ां ने भारत के पहले गणतंत्र दिवस समारोह की पूर्व संध्या पर नई दिल्ली में लाल क़िले से अत्यधिक मर्मस्पर्शी शहनाई वादन प्रस्तुत किया. उन्होंने अफ़ग़ानिस्तान, यूरोप, ईरान, इराक, कनाडा, पश्चिम अफ़्रीका, अमेरिका, भूतपूर्व सोवियत संघ, जापान, हांगकांग और विश्व भर की लगभग सभी राजधानियों में प्रदर्शन किया है.

मज़हबी शिया होने के बावजूद ख़ां विद्या की हिंदू देवी सरस्वती के परम उपासक हैं. बनारस हिंदू विश्वविद्यालय और शांतिनिकेतन ने उन्हें डॉक्टरेट की मानद उपाधि प्रदान की है. उन्हें संगीत नाटक अकादमी, मध्य प्रदेश सरकार का तानसेन पुरस्कार और 1994 में पद्म विभूषण प्रदान किया गया. 2001 में उन्हें भारत रत्न से सम्मानित किया गया.

ख़ां, लियाक़त अली

(ज.–1 अक्तू. 1895, करनाल, भारत; मृ.–16 अक्तू. 1951, रावलपिंडी, पाकिस्तान), पाकिस्तान के पहले प्रधानमंत्री. एक ज़मींदार के बेटे लियाक़त अली ख़ां की शिक्षा–दीक्षा अलीगढ़, इलाहाबाद और एक्सेटर कॉलेज, ऑक्सफ़ोर्ड में हुई थी. वह पेशे से बैरिस्टर थे और 1923 में उन्होंने राजनीति में प्रवेश किया. पहले वह संयुक्त प्रांत की प्रांतीय परिषद के लिए और बाद में केंद्रीय विधानसभा के लिए चुने गए. वह मुस्लिम लीग में शामिल हो गए और जल्दी ही जिन्ना के निकट सहयोगी बन गए. उन्होंने क्रमिक रूप से सम्मान अर्जित किया और बाद में पाकिस्तान के लिए संघर्ष के दौरान मुस्लिम समुदाय की प्रशंसा बटोरी; सफलता प्राप्त करने के बाद, जब जिन्ना पहले गवर्नर–जनरल बने, तो प्रधानमंत्री पद के लिए लियाक़त अली ख़ां को स्वाभाविक तौर पर प्रधानमंत्री चुना गया. इस पद पर उनकी उपलब्धियां असाधारण थीं. यदि जिन्ना ने पाकिस्तान की नींव रखी, तो लियाक़त ख़ां ने घरेलू और विदेश संबंधी मुख्य नीतियां बनाकर इसकी स्थापना की. बाद में इन्हीं नीतियों ने देश का मार्गदर्शन किया. जिन्ना की मृत्यु के बाद लियाक़त अली ख़ां को क़ायदे मिल्लत (राष्ट्रनेता) कहा जाने लगा. 1951 में रावलपिंडी में उनकी हत्या कर दी गई.

ख़ाकी

मुख्यतः सैनिक वर्दी के लिए प्रयुक्त हल्का धूसर भूरा कपड़ा. यह सूती, ऊनी, सूत और इन धागों के मिश्रण व कृत्रिम धागों के संयोग से बनाया जाता है और इसमें कई प्रकार की बुनाइयां, जैसे सर्ज भी सम्मिलित हो सकती हैं.

ख़ाकी वर्दियों की शुरुआत सर हैरी बर्नेट लम्स्डेन ने भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक सैनिकों के लिए की थी और ये मैदानी सेवाओं और युद्ध में विशेष रूप से प्रभावशाली सिद्ध हुईं. भारतीय विद्रोह (1857–58) के समय ख़ाकी वर्दियां व्यापक रूप से प्रयोग की गईं और इसके बाद इसे भारत में देशज और औपनिवेशिक ब्रिटिश सेनाओं की वर्दियों के आधिकारिक रंग के रूप में प्रयोग किया गया; बाद में इसे ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य भागों और अन्य राष्ट्रों ने भी अपनाया.

खालसा

(अर्थात शुद्ध, फ़ारसी शब्द ख़ालिस से उत्पन्न), सिक्ख धर्म का प्रधान पंथ. यौवनारंभ आयु में पहुंचने पर अधिकांश सिक्ख लड़कों और लड़कियों को खालसा पंथ में दीक्षित किया जाता है. पाहुलू नामक यह समारोह खालसा के पांच सदस्यों द्वारा किया जाता है, जो भजनों के उच्चारण के साथ–साथ कृपाण की मदद से पानी में शक्कर मिलाते हैं. दीक्षा प्राप्त करने वाले एक ही प्याले से इस पेय को पीते हैं, जो जाति भेद की समाप्ति को दर्शाता है. लड़कों को सिंह और लड़कियों को कौर उपनाम प्रदान किया जाता है.

पुरुष दीक्षितों को पांच ककार धारण करने की शपथ लेनी पड़ती है, जो खालसा पंथ के प्रतीक हैं : केश, कंघा, कच्छा, कड़ा और कृपाण, साथ ही वे तंबाकू या शराब का सेवन न करने, सिर्फ़ झटका मांस (एक ही बार में मारे गए पशु का मांस) खाने और व्यभिचार न करने की भी शपथ लेते हैं.

योद्धा संघ के रूप में खालसा बिरादरी की स्थापना गुरु गोबिंद सिंह ने 1699 में आनंदपुर (पंजाब) में की थी, तब मुग़ल शासनकाल में सिक्खों पर अत्याचार हो रहे थे. कुछ ही दिनों में लगभग 80,000 लोगों को नए पंथ में शामिल कर लिया गया, जल्दी ही इस पंथ ने सिक्ख धर्म के भीतर नेतृत्व की कमान संभाल ली, जो सिक्ख इस पंथ में शामिल नहीं हुए और हजामत बनवाते रहे, उन्हें सहजधारी (ग्रहण करने में धीमे) कहा जाने लगा; खालसा और सहजधारियों के बीच विभेद आज भी बरक़रार हैं.

खालसा संगत

सिक्खों की सभा. संगत (सभा) को समान्यतः साध–संगत (पवित्र लोगों की सभा) कहा जाता है, और इस प्रकार इसमें पवित्रता निहित है. प्रत्येक गुरुद्वारे में संगत अपने प्रशासी निकाय का चुनाव करता है और मतदान द्वारा निर्णय किए जाते हैं. नियमतः महिलाएं बातचीत या कार्यवाही में हिस्सा नहीं ले सकती हैं. अमृतसर में शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति, सिक्ख धर्म का सर्वोच्च प्रशासी निकाय है.

सिक्ख धर्म के पहले भिन्न मतावलंबी, जिन्हें उदासी कहा जाता है, नानक के बड़े बेटे श्रीचंद के अनुयायी थे. यह पंथ तपश्चर्या की ओर प्रवृत्त हो गया और बाद में इसने गुरुद्धारों में महंतों की नियुक्ति की. 1925 में शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधन समिति ने इनका नियंत्रण समाप्त कर दिया. हर राय (सातवें गुरु) द्वारा छोटे पुत्र हरि किशन (आठवें गुरु) को उत्तराधिकारी बनाए जाने पर, बड़े बेटे राम राय के अनुयायी अलग हो गए और वे राम रैया कहलाने लगे. उन्होंने उत्तरांचल राज्य के देहरादून में मुख्यालय स्थापित किया. जो खालसा मानते थे कि जीवित गुरुओं की परंपरा गोबिंद सिंह के साथ समाप्त नहीं हुई है, उन्होंने जीवित गुरु की परंपरा को बनाए रखा. इनमें से बंदाई खालसा (बंदा बहादुर के अनुयायी) का समापन हो गया है, लेकिन नामधारी और निरंकारी अब भी जीवित गुरुओं की पूजा करते हैं.

खासी

पूर्वोत्तर भारत में मेघालय राज्य की खासी और जैंतिया पहाड़ियों के निवासी. खासियों की एक विशिष्ट संस्कृति है. संपत्ति का उत्तराधिकार और जनजातीय शासन का उत्तराधिकार, दोनों मातृवंश के आधार पर होते हैं और मां से सबसे छोटी बेटी को मिलते हैं, हालांकि शासन और संपत्ति का प्रबंधन इन महिलाओं द्वारा चुने गए पुरुषों के हाथ में होता है. यह व्यवस्था कई खासियों के द्वारा ईसाई धर्म अपनाने के बाद, जनजातीय धर्म की पारंपरिक और नए धर्म की मांगों के बीच हुए संघर्ष और स्वयं अर्जित संपत्ति के संबंध में लोगों के द्वारा वसीयत के अधिकार के कारण परिवर्तित हो गई है.

खासी ऑस्ट्रो–एशियाई परिवार की मॉन–ख्मेर भाषा बोलते हैं. ये कई वंशों में विभाजित हैं. धान जीविका का मुख्य साधन है; घाटियों और पहाड़ियों पर बने सीढ़ीदार खेतों में इसकी खेती की जाती है. कई किसान अब भी केवल झूम पद्धति से खेती करते हैं, जिसमें कम उपयोगी जंगल को जलाकर राख में एक या दो वर्षों तक फ़सल उगाई जाती है.

1950 के दशक में ज़िले में स्थापित प्रशासनिक व्यवस्था के अनुसार, खासियों द्वारा चुनी गई परिषदें उपायुक्त के निर्देशन में कुछ हद तक राजनीतिक स्वायत्तता प्राप्त हैं. इसके साथ ही राज्य विधानसभा और संसद में जनजातीय लोगों के प्रतिनिधित्व हेतु इनके स्थान आरक्षित हैं.

खासी पहाड़ियां

भौगोलिक क्षेत्र, मध्य मेघालय राज्य, पूर्वोत्तर भारत. यहां का अधिकांश इलाक़ा पहाड़ी है, जिसमें शिलांग पठार शामिल है; यहां का अपवाह ब्रह्मपुत्र और सूरमा नदियों की सहायक धाराओं द्वारा होता है. दक्षिण में स्थित चेरापूंजी विश्व में सर्वाधिक औसत वर्षा वाला क्षेत्र है. नयनाभिराम सुंदरता के कारण खासी पर्वतीय क्षेत्र को 'पूर्व का स्कॉटलैंड' भी कहा जाता है.

मेघालय की राजधानी शिलांग से बाहर की जनता का अधिकांश हिस्सा कृषि कार्य में संलग्न है, जिसमें घाटियों और पहाड़ की ढलानों पर सीढ़ीदार खेतों में उगाया जाने वाला चावल प्रमुख फ़सल है. इस क्षेत्र के अन्य किसान झूम खेती करते हैं, वे पेड़ों को जलाकर भूमि साफ़ करके एक या दो वर्ष तक खेती करने के बाद अन्यत्र चले जाते हैं. सरकार इस अपव्ययकारी पद्धति को हतोत्साहित कर रही है और बदले में पारंपरिक खेती की भूमि पर स्थायी व्यवस्था पर ज़ोर दे रही है. खासी लोगों की विशेष संस्कृति में मातृवंशीय सामाजिक व्यवस्था की परंपरा है, जो बाहरी धर्मों और आधुनिक क़ानूनी प्रभावों के कारण बदल रही है. पहाड़ी लोगों में से कई ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया है.

खासी भाषा

इसे खसिया, कोसयाह या क्यी भी कहते हैं, मॉन–ख्मेर परिवार की खासी शाखा के कई सदस्यों में से एक, जो अपने आप में ऑस्ट्रो–एशियाई मूल की भाषा है. खासी भाषा भारत के मेघालय राज्य में खासी और जैंतिया पहाड़ियों के आसपास के क्षेत्र में रहने वाले लगभग 9 लाख लोगों द्वारा बोली जाती है. खासी भाषा में भारतीय–आर्य भाषाओं, विशेषकर बांग्ला और हिंदी के कई गृहीत शब्द हैं.

ख़ितान

इस्लाम में, पुरुष का ख़तना या सुन्नत; जिसका अर्थ विस्तारित होकर महिला का परिच्छेदन (शाब्दिक *ख़फ़्द*) भी हो सकता है. मुस्लिम परंपराएं (*हदीस*) ख़ितान को अरबवासियों में एक पूर्व–इस्लामी धार्मिक विधान मानती हैं और इसे मूंछों को बराबर करने, नाख़ून काटने और दांतों को दंतखोदनी से साफ़ करने की श्रेणी में रखती हैं.

इस्लाम की क़ानूनी विचारधाराएं ख़ितान के वास्तविक महत्त्व पर सहमत नहीं हैं. *शाफ़िया* विचारधारा इसे पुरुषों व महिलाओं, दोनों के लिए बंधनकारी (वाजिब) बताती है; जबकि मलिकिया विचारधारा इसे सराहनीय व अनुशंसित (सुन्नत) कहती है, किंतु आवश्यक नहीं मानती. ख़ितान किए जाने की आयु के बारे में कोई मतैक्य नहीं है: कुछ जन्म के सातवें दिन ख़तने की पैरवी करते हैं, कुछ लोग 10 वर्ष की आयु के पहले इसे प्रतिबंधित करते हैं, अन्य केवल इसे वयस्क होने से पूर्व चाहते हैं. मजहबी अनुयायियों में, ख़ितान क़ानूनविदों द्वारा दिए गए महत्त्व से कहीं अधिक लोकप्रिय है. इसकी विशेषताएं प्रत्येक मुस्लिम राष्ट्र में अलग–अलग हैं, किंतु ख़ितान हर जगह एक प्रमुख व प्रख्यात धार्मिक अनुष्ठान है.

ख़िलाफ़त आंदोलन

तुर्की साम्राज्य और इस्लाम के पवित्र स्थलों की सुरक्षा के लिए एक व्यापक आंदोलन. तुर्की का सुल्तान ख़लीफ़ा के रूप में विश्वव्यापी मुस्लिम समुदाय का धार्मिक मुखिया था. इटली (1911) और बाल्कन (1912–13) के आक्रमण और पहले विश्व युद्ध में तुर्की की हार से भारतीय मुसलमानों में डर पैदा हो गया. सेवरी की संधि (अग. 1920) के कारण उनका भय और बढ़ गया, क्योंकि इसके तहत इस साम्राज्य के न केवल ग़ैर तुर्की इलाक़े अलग किए गए, बल्कि तुर्की के कुछ गृह क्षेत्र यूनान और अन्य ग़ैर मुसलमान ताक़तों को दे दिए गए,

ख़लीफ़ा के समर्थन में एक अभियान शुरू किया गया, जिसका नेतृत्व भारत में मौलाना अली व शौक़त अली नामक दो भाइयों और अबुल कलाम आज़ाद ने किया. ये नेता इस वायदे के साथ भारतीय स्वाधीनता के लिए महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन में शामिल हो गए कि ख़िलाफ़त आंदोलन के लिए गांधीजी के समर्थन के बदले वे अहिंसा का रास्ता अपनाएंगे. भारत को धर्मत्यागी भूमि (दर–अल–हर्ब) मानने के कारण 1920 में लगभग 18,000 मुसलमान किसानों के अफ़ग़ानिस्तान प्रस्थान या हिज्रत से इस आंदोलन में बाधा आई. 1921 में मालाबार, दक्षिण भारत, में मुसलमान मोपला विद्रोह की ज़्यादतियों से हिंदू भारत विचलित हो उठा. इससे भी इस आंदोलन की छवि धूमिल हुई. गांधी द्वारा अपना आंदोलन स्थगित करने एवं मार्च 1922 में उनकी गिरफ़्तारी से ख़िलाफ़त आंदोलन और कमज़ोर पड़ गया. 1922 में मुस्तफ़ा कमाल अतातुर्क द्वारा पश्चिमी तुर्की से यूनानियों को भगाने और उसी साल तुर्की के सुल्तान को अपदस्थ करने से यह आंदोलन महत्त्वहीन हो गया और 1924 में उनके द्वारा ख़लीफ़ा की गद्दी समाप्त करने के बाद अंततः यह पूरी तरह ख़त्म हो गया.

खिलौना

शिशु या बच्चे के खेलने की वस्तु. प्रायः किसी खेल में प्रयुक्त होने वाली वस्तु को खिलौना कहते हैं. खिलौने और खेल विभिन्न संस्कृतियों में बहुत पहले से चले आ रहे हैं. ये एकदम सामान्य से अत्यधिक जटिल तक हो सकते हैं, जैसे बच्चे द्वारा चुनी गई साधारण सी डंडी और कठघोड़े की कल्पना से लेकर परिष्कृत और जटिल यांत्रिक

उपकरण तक, जो बच्चों और बड़ों, दोनों का मनोरंजन करते हैं. बहुत से देशों के संग्रहालयों में बहुत सी प्राचीन वस्तुएं रखी हुई हैं, जिनका मूल प्रयोजन तो स्पष्ट नहीं है, लेकिन संभवतः बच्चों ने इन्हें खेल की वस्तुओं के रूप में लिया होगा. प्राचीन काल की पहियों पर बनी मिट्टी की पशु की आकृति, जिसके उपयोग का कोई प्रमाण नहीं मिला है, संभवतः खिलौना ही है. गेंद सबसे प्राचीन खिलौनों में से एक है.

खिलौनों से खेलने के दो प्रकार हैं, अनुकरणात्मक और निर्देशात्मक. सबसे पहला खिलौना संभवतः आत्म–संरक्षण के सहज बोध से विकसित हुआ होगा. बहुत सी मानव संस्कृतियों में युवाओं को सबसे पहले शस्त्रों का उपयोग सिखाया जाता था और मुगदर या लाठी स्पष्टतः खिलौना तलवारों, बंदूकों, टैंकों, हवाईजहाज़ों, नावों और खेल के अन्य सैन्य उपकरणों के आदि प्रारूप हैं. ज़्यादातर खेलों में शारीरिक सक्रियता की आवश्यकता होती थी, जो अभ्यास और युद्ध में निपुणता से ही संभव थी. खिलौना सिपाही और शस्त्र मध्य काल से चले आ रहे हैं. युद्ध तकनीकों में नवीनतम विकास का असर वर्तमान खिलौनों पर भी दिखाई पड़ता है, जैसे विज्ञान कथाओं और चलचित्रों में की गई कल्पना के अनुसार शस्त्र और उपकरण.

गुड़िया एक सामान्य खिलौना है. हर युग और संस्कृति ने बच्चों को मनुष्य या पशु के लघु स्वरूप और रोज़मर्रा के जीवन में काम आने वाली शिल्पकृतियां उपलब्ध कराई हैं. कई गतिहीन खिलौने इस प्रकार के हैं : जीवित प्राणियों या वस्तुओं के लघु स्वरूप, जिनका अनुकरणात्मक या कल्पनात्मक उपयोग किया जा सकता है.

गतिमान खिलौनों में अनेक प्रकार के खिलौने आते हैं. संभवतः बहुत से सामान्य भौतिक नियम के प्रयोग पहले पहल गतिमान खिलौनों के बारे में दिए गए साहित्यिक विवरणों से ज्ञात होने के बाद हुए होंगे. विस्फोटक खिलौनों, शस्त्रों और राकेट का विकास चीनियों के द्वारा सबसे पहले पटाखों के लिए बारूद के प्रयोग से हुआ. संतुलन और प्रतिसंतुलन, घूमना, झूलना, दोलन, उड़ान, अपकेंद्र बल, चुंबकत्व, कमानी और ढेर सारे अन्य उपकरणों और नियमों का उपयोग खिलौनों में होता है. आधुनिक तकनीकी विकास से गतिमान खिलौनों का उत्पादन संभव हुआ है, जैसे बिजली से चलने वाली खिलौना रेल और स्वचालित ट्रक और कार, रेडियो–नियंत्रित हवाईजहाज़, चलने, बोलने और प्रकाश किरणपुंज से सक्रिय होकर करतब दिखाने वाली गुड़िया.

समन्वय और हस्त कौशल का विकास खिलौनों के जोड़–तोड़ के दौरान बचपन के संचित अनुभवों से होता है– कंचे, जैकस्टोन और अन्य खिलौनों में हाथ और शरीर के उपयोग की आवश्यकता पड़ती है. मानसिक दक्षता की शुरुआत बचपन से होती है, जिसके लिए पहेलीयुक्त खिलौने चुनौती पेश करते हैं.

खुकरी सांप

कोलब्राइडी परिवार में *ऑलिगोडॉन* वंश की 50 से 60 प्रजातियों के सांपों में से एक. इन सांपों का नामकरण उनके पिछले बड़े दांतों, जो इसी नाम के गोरखा चाकू के

समान चौड़े और घुमावदार होते हैं, के आधार पर किया गया है. ये पूर्वी और दक्षिण एशिया में पाए जाते हैं.

सभी खुकरी सांप अंडे देते हैं और इनके शरीर की लंबाई सामान्यतः 90 सेमी से कम होती है. पक्षियों और सरीसृपों के अंडे इनका मुख्य आहार हैं.

ख़ुत्बा

ख़ुत्बः भी लिखा जाता है, इस्लाम में ख़ासतौर पर शुक्रवार की नमाज़ के समय, इस्लाम के दो प्रमुख त्योहारों (ईद), संतों के जन्मदिवस के उत्सव (मौलिद) और अतिविशेष अवसरों पर दिया जाने वाला धर्मोपदेश.

ख़ुत्बा, संभवतः इस्लाम अरब के एक प्रमुख जनजातीय प्रवक्ता *ख़ातिब* की उद्घोषणाओं से उद्धृत है, यद्यपि इनमें कोई धार्मिक संदर्भ नहीं है. *ख़ातिब* सुंदर गद्य के माध्यम से अपनी जनजाति के लोगों की श्रेष्ठता व उपलब्धियों का गुणगान व क़बीले के दुश्मनों की कमज़ोरी की निंदा करते थे. 630 में मक्का पर अधिकार करने के पश्चात मुहम्मद ने भी स्वयं को *ख़ातिब* के रूप में प्रस्तुत किया. प्रथम चार ख़लीफ़ा, उमय्या ख़लीफ़ा और उमय्या सूबेदार सभी अपने–अपने इलाक़ों में ख़ुत्बा देते थे, यद्यपि उनका मसौदा तब तक मात्र धार्मिक ही न रहकर प्रशासन के वास्तविक सवालों व राजनीतिक समस्याओं से संबंधित होते थे, कभी–कभी तो सीधे निर्देश ही होते थे. अब्बासियों के काल में, ख़लीफ़ाओं ने स्वयं उपदेश न देकर ख़ातिब का काम क़ाज़ियों (धार्मिक न्यायाधीश) के हाथों सौंप दिया. अब्बासियों के इस्लाम को उमय्याओं की धर्मनिरपेक्षता से मुक्त कराने के पुरज़ोर आग्रह ने संभवतः ख़ुत्बा के धार्मिक महत्त्व को सुदृढ़ बनाने में सहायता की.

खुराना, हर गोबिंद

(ज.–9 जन. 1922, रायपुर, भारत), भारत में जन्मे अमेरिकी जैव रसायनशास्त्री, जिन्हें 1968 में शरीर विज्ञान या चिकित्सा के क्षेत्र में मार्शल डब्ल्यू. नीरेनबर्ग और रॉबर्ट डब्ल्यू. हॉली के साथ उस अनुसंधान के लिए नोबेल पुरस्कार मिला. इस अनुसंधान से यह पता लगाने में मदद मिली कि कोशिका के आनुवंशिक कूट (कोड) को ले जाने वाले न्यूक्लिक अम्ल (एसिड) न्यूक्लिओटाइड्स कैसे कोशिका के प्रोटीन संश्लेषण (सिंथेसिस) को नियंत्रित करते हैं.

खुराना का जन्म एक ग़रीब परिवार में हुआ था. उन्होंने लाहौर में पंजाब विश्वविद्यालय और सरकारी छात्रवृत्ति पर लिवरपूल यूनिवर्सिटी, इंग्लैंड में शिक्षा ग्रहण की. उन्होंने सर अलेक्ज़ेंडर टॉड के तहत कैंब्रिज यूनिवर्सिटी (1951) में शिक्षावृत्ति के दौरान न्यूक्लिक एसिड पर अनुसंधान शुरू किया. वह स्विट्ज़रलैंड में स्विस फ़ेडरल इंस्टिट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी और ब्रिटिश कोलंबिया, कनाडा (1952–59) एवं विस्कौन्सिल, अमेरिका में फ़ेलो और प्राध्यापक पदों पर रहे. 1971 में उन्होंने मैसेच्यूसेट्स इंस्टिट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी के संकाय में कार्यभार संभाला.

1960 के दशक में खुराना ने नीरेनबर्ग की इस खोज की पुष्टि की कि डी.एन.ए. अणु के घुमावदार 'सोपान' पर चार विभिन्न प्रकार के न्यूक्लिओटाइड्स के विन्यास का तरीक़ा नई कोशिका की रासायनिक संरचना और कार्य को निर्धारित करता है. डी.एन.ए. के एक तंतु पर इच्छित अमीनोअम्ल उत्पादित करने के लिए न्यूक्लिओटाइड्स के 64 संभावित संयोजन पढ़े गए हैं, जो प्रोटीन के निर्माण के खंड हैं. खुराना ने इस बारे में आगे जानकारी दी कि न्यूक्लिओटाइड्स का कौन सा क्रमिक संयोजन किस विशेष अमीनो अम्ल को बनाता है.

उन्होंने इस बात की भी पुष्टि की कि न्यूक्लिओटाइड कूट कोशिका को हमेशा तीन के समूह में प्रेषित किया जाता है, जिन्हें प्रकूट (कोडोन) कहा जाता है. उन्होंने यह भी पता लगाया कि कुछ प्रकूट कोशिका को प्रोटीन का निर्माण शुरू या बंद करने के लिए प्रेरित करते हैं. खुराना ने 1970 में आनुवंशिकी में एक और योगदान दिया, जब वह और उनका अनुसंधान दल एक खमीर जीन की पहली कृत्रिम प्रतिलिपि संश्लेषित करने में सफल रहे. डॉक्टर खुराना इस समय जीव विज्ञान एवं रसायनशास्त्र के एल्फ्रेड पी. स्लोन प्राध्यापक और लिवरपूल यूनिवर्सिटी में अवकाश प्राप्त वरिष्ठ व्याख्याता हैं. इस समय वह अन्य बातों के अलावा आंख की शलाका कोशिकाओं में प्रकाशग्राही, रोडोप्सिन के संरचना–फलन और प्रवर्द्धन एवं अनुकूलन में प्रोटीन–प्रोटीन अन्योन्याक्रिया के क्षेत्र में काम कर रहे हैं.

खेड़ा

इसे कैड़ा भी कहते हैं, नगर, पूर्व–मध्य गुजरात राज्य, पश्चिम भारत. यह साबरमती और माही नदियों के बीच निम्नभूमि पर स्थित है. यह शहर पांचवीं शताब्दी से अस्तित्व में है. 18वीं शताब्दी के आरंभ में यह बाबी परिवार के नियंत्रण में चला गया, लेकिन 1763 में मराठों ने इस पर क़ब्ज़ा कर लिया और 1803 में अंग्रेज़ों को सौंप दिया. अब खेड़ा कृषि उत्पादों का व्यापार केंद्र है और यहां कुछ हल्के निर्माण में संलग्न उद्योग स्थापित हैं. यह एक प्रमुख राजमार्ग और पश्चिमी रेलवे के मार्ग पर अहमदाबाद से 32 किमी दक्षिण–दक्षिण पूर्व में स्थित है.

जिस क्षेत्र में खेड़ा स्थित है, वह ज़्यादातर अखंडित मैदानी हिस्सा है, जिसकी ढाल दक्षिण–पश्चिम की ओर है और यह साबरमती व माही नदियों द्वारा अपवाहित होता है. प्रमुख फ़सलों में अनाज, दलहन और कपास शामिल हैं. औद्योगिक गतिविधियों में छपाई, रंगाई, शीशा और सूती वस्त्र निर्माण उल्लेखनीय हैं. खेड़ा को सहकारी दुग्ध उत्पादन केंद्र के रूप में विशेष ख्याति मिली है. इस क्षेत्र में राजमार्ग और रेलमार्ग तंत्र सुविकसित है. जनसंख्यां (2001) 86,443.

ख़ैबर दर्रा

अफ़ग़ानिस्तान और पाकिस्तान के बीच स्थित सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और सुदूर उत्तरी दर्रा. यह काबुल को पेशावर से जोड़ता है. यह दर्रा ऐतिहासिक रूप से पश्चिमोत्तर

दिशा से भारतीय उपमहाद्वीप पर होने वाले हमलों का प्रवेशद्वार रहा है. ख़ैबर नाम शुष्क, खंडित पर्वत शृंखलाओं को भी दिया गया है, जिससे होकर यह दर्रा गुज़रता है और जो स्पिन घर (सफ़ेद कुह) श्रेणी के अंतिम हिस्से का निर्माण करता है. इसे जोड़ने वाले स्कंध के दोनों ओर दो छोटी धाराओं के स्रोत हैं, जिनके तल ख़ैबर महाखड्ड का निर्माण करते हैं. यह संकरा महाखड्ड ख़ैबर दर्रा बनाता है; यह स्लेटी पत्थरों और चूना–पत्थरों की चट्टानों के बीच 180–300 मीटर ऊंचाई पर मुड़ता हुआ पाकिस्तान में जमरूद से कुछ किलोमीटर दूर शादी बगियार मार्ग से ख़ैबर पहाड़ियों में प्रवेश करता है और पश्चिमोत्तर दिशा में लगभग 53 किमी तक जारी रहता है. हफ्तचाह के पुराने अफ़ग़ान क़िले के ठीक बाद यह बंजर 'लोयाह दक्काह' मैदान में खुलता है, जो काबुल नदी तक फैला हुआ है.
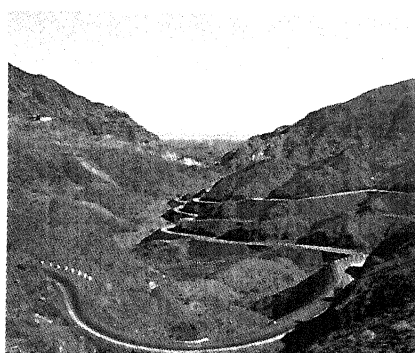
ख़ैबर दर्रा, पाकिस्तान
फ़ोटो : ई.बी. इंकॉ.

इसके दक्षिणी प्रवेश से खड़ी चढ़ाई के बाद यह दर्रा फ़ोर्ट अली मस्जिद तक धीरे–धीरे ऊंचा होता है (967 मीटर), जहां ख़ैबर नदी (ख़ैबर ख़्वार) इस दर्रे को छोड़कर मुड़ जाती है. अली मस्जिद से आठ किमी दूर तक यह दर्रा काफ़ी तंग हो जाता है और इसकी चौड़ाई 183 मीटर से अधिक नहीं रह जाती है, इसके दोनों ओर खड़ी और प्रपाती दीवारें हैं. ज़िटारा गांव से उत्तर की ओर यह दर्रा लगभग एक किमी या अधिक चौड़ी घाटी का रूप ले लेता है, जिसमें क़िले, गांव और बिखरे कृषि भूखंड स्थित हैं. अली मस्जिद से लगभग 16 किमी पश्चिम में लांडी कोटल दुर्ग और छावनी (1,072 मीटर) स्थित हैं; यह इस दर्रे का सबसे ऊंचा स्थान है और यह पेशावर का वैकल्पिक रास्ता होने के साथ–साथ एक महत्त्वपूर्ण बाज़ार भी है. यहां यह शिखर उत्तर में तीन किमी तक चौड़ा हो जाता है, लेकिन मुख्य दर्रा लंदीकोतल से शिनवारी क्षेत्र से होते हुए लंदीख़ाना में उतरता है, जहां यह एक अन्य महाखड्ड से गुज़रकर (अफ़ग़ानिस्तान में) टौर ख़ाम तोरखाम; 701 मीटर में प्रवेश करता है, जहां लालपुरा दक्का की घाटी में अगले 16 किमी तक जाता है.

ख़ैबर दर्रा कारवां के रास्तों और पक्की सड़क से जुड़ा हुआ है. इस दर्रे से होकर जाने वाला रेलमार्ग (उद्घाटन, 1925) जमरूद को लंदीख़ाना से जोड़ता है, जो अफ़ग़ान सीमा पर स्थित है; 34 सुरंगों और 94 पुलों से गुज़रने वाली लाइन ने इस क्षेत्र के परिवहन में क्रांति ला दी. इस दर्रे को सड़क मार्ग से बाहर से भी पार किया जा सकता है, जो जमरूद से 14 किमी उत्तर में पहाड़ों में प्रवेश करता है और लालपुरा दक्का से बाहर निकलता है.

बहुत कम दर्रों का इतना सतत रणनीतिक महत्त्व या इतने ऐतिहासिक सरोकार हैं. जैसा ख़ैबर दर्रे का है. इससे ईरानी, यूनानी, मुग़ल, अफ़ग़ान और अंग्रेज़ सभी गुज़र चुके हैं और सबके लिए यह अफ़ग़ान सीमा पर नियंत्रण के लिए एक प्रमुख बिंदु था. पांचवीं शताब्दी ई.पू. में ईरान के डेरियस I महान काबुल के आसपास के क्षेत्रों को

जीतकर ख़ैबर दर्रे से होते हुए सिंधु नदी तक पहुंचे. दो शताब्दियों के बाद सिकंदर महान के दो सेनापतियों हेफ़ेस्टियन और परडिक्कस ने संभवतः इस दर्रे का इस्तेमाल किया. जब यह क्षेत्र अशोक के राज्य (तीसरी शताब्दी ई.पू.) का हिस्सा था, तब यहां बौद्ध धर्म फला–फूला; काफ़िर कोट (काफ़िरों का दुर्ग), शोपला स्तूप, (इसे ख़ैबर टॉप भी कहते हैं) और अली मस्जिद के पास के स्तूप अब भी बौद्ध अवशेषों के साक्षी हैं. महमूद ग़ज़नी, बाबर, नादिरशाह, अहमद शाह दुर्रानी और उनके पोते शाह ज़मान ने भारत पर आक्रमणों के लिए इस दर्रे का इस्तेमाल किया. 19वीं सदी के आरंभ में पंजाब के सिक्ख शासक रणजीत सिंह ने अपने राज्य को जमरूद तक विस्तृत कर लिया था.

ख़ैबर क्षेत्र में रहने वाले पश्तून अफ़रीदी लोगों ने हमेशा विदेशी नियंत्रण का प्रतिरोध किया और मुग़लों और अंग्रेज़ों द्वारा उनके ख़िलाफ़ कई अभियान छेड़े गए. ख़ैबर में उत्तर की ओर पहला ब्रिटिश आक्रमण 1839 में हुआ और प्रथम आंग्ल–अफ़गान युद्ध में यह दर्रा अफ़रीदियों से होनेवाली कई मुठभेड़ों का केंद्र था. दूसरे आंग्ल–अफगान युद्ध के दौरान 1879 में हुए गंदमक समझौते ने ख़ैबर की जनजातियों को ब्रिटिश नियंत्रण में ला दिया. 1897 में अफ़रीदियों ने इस दर्रे पर अधिकार कर लिया और कई महीनों तक इस पर क़ब्ज़ा बनाए रखा, लेकिन 1897 के तिराह अभियान में उन्हें मात दे दी गई और इस दर्रे की सुरक्षा का इंतज़ाम अंग्रेज़ों के हाथ में चला गया, जिस पर अब पाकिस्तान की ख़ैबर एजेंसी का नियंत्रण है.

खोंड

भारत के उड़ीसा राज्य की पहाड़ियों और जंगलों के निवासी, कोंड, कंध या कोंध भी कहलाते हैं. इनकी संख्या अनुमानतः 8 लाख से अधिक है, जिनमें से लगभग 5 लाख 50 हज़ार द्रविड़ परिवार की कुई और उसकी दक्षिणी बोली कुवी बोलते हैं. अधिकांश खोंड अब चावल की खेती करते हैं, लेकिन अब भी कुट्टिया खोंड जैसे ऐसे कुछ समूह हैं, जो झूम खेती पर निर्भर हैं.

खोंड कई शताब्दियों से पश्चिम, उत्तर और पूर्व की ओर के उड़ियाभाषी और दक्षिण की ओर के तेलुगुभाषी समूहों के संपर्क में हैं. कुछ हद तक उन्होंने अपने पड़ोसियों की भाषाएं और प्रथाएं अपना ली हैं. बउद मैदानों में ऐसे खोंड हैं, जो केवल उड़ियाभाषी हैं; आगे पहाड़ियों में खोंड द्विभाषी हैं; दूरस्थ वनों में केवल कुई बोली जाती है. जाति, अस्पृश्यता और हिंदू देवी–देवताओं के बारे में ज्ञान संबंधी हिंदू प्रथाओं के पालन में एक समान क्रमिक परिवर्तन दिखाई देता है. 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में परसंस्कृतिग्रहण की प्रक्रिया तेज़ी से बढ़ी.

खो–खो

बाह्य खेलों के सबसे प्राचीनतम रूपों में से एक, जिसका उद्‌भव प्रागैतिहासिक भारत में माना जा सकता है. मुख्य रूप से आत्मरक्षा, आक्रमण व प्रत्याक्रमण के कौशल को विकसित करने के लिए इसकी खोज हुई थी. यह एक अनूठा स्वदेशी खेल है, जो

युवाओं में ओज और स्वस्थ संघर्षशील जोश भरने वाला है. यह खेल पीछा करने वाले और प्रतिरक्षक, दोनों में अत्यधिक तंदुरुस्ती, कौशल, गति, ऊर्जा और प्रत्युत्पन्नमति की मांग करता है. खो–खो किसी भी तरह की सतह पर खेला जा सकता है.

प्रत्येक दल में 12 खिलाड़ी होते हैं, मगर खेल के दौरान केवल नौ खिलाड़ी ही मैदान में आते हैं. एक खेल दो पारियों का होता है. एक पारी में प्रत्येक दल को पीछा करने और दौड़ने के लिए सात मिनट मिलते हैं. दल के आठ खिलाड़ी मध्य रेखा पर आठ वर्गों में एक–दूसरे के विपरीत दिशा में मुंह करके बैठते हैं. नौवां खिलाड़ी पीछा करने वाला होता है और दोनों छोर पर लगे खंभों में से किसी एक के पास खेल शुरू करने के लिए तैयार खड़ा होता है. पीछा करने वाले दल को विरोधी खिलाड़ियों में से प्रत्येक को हाथ से छूकर 'पछाड़ना' होता है. प्रतिरक्षक पीछा करने वाले खिलाड़ी से बचते हुए सात मिनट तक खेलने का प्रयास करता है और निशान लगे हुए स्थान से बाहर नहीं जा सकता. पीछा करने वाला खिलाड़ी केंद्र में घुटने मोड़कर बैठे अपने दल के किसी भी खिलाड़ी को पीछा जारी रखने के लिए पीठ पर हाथ से मारते हुए जोर से 'खो' बोलता है. पीछा करने वाले खिलाड़ियों द्वारा रिले दौड़ की तरह दौड़ने से 'खो' की एक श्रृंखला बन जाती है और खिलाड़ी स्थान परिवर्तन करते रहते हैं. पीछा करने वाले क्षेत्र में प्रतिरक्षक खिलाड़ी तीन खिलाड़ियों के समूह में प्रवेश करते हैं. जैसे ही तीसरा खिलाड़ी आउट होता है, तीन अन्य खिलाड़ियों का दूसरा समूह मैदान में प्रवेश करता है. प्रतिरक्षक को तभी 'आउट' घोषित किया जाता है, जब उसे पीछा करने वाला खिलाड़ी छू ले अथवा वह क्षेत्र की सीमाओं से बाहर आ जाए या मैदान में देर से प्रवेश करे. दक्कन जिमख़ाना, पुणे ने 1914 में पहली खो–खो प्रतियोगिता आयोजित की थी. 1959–60 में पहली राष्ट्रीय प्रतियोगिता विजयवाड़ा में भारतीय खो–खो महासंघ (के. के.एफ़.आई.) के तत्वावधान में आयोजित हुई. तब से के.के.एफ़.आई. ने इस खेल को लोकप्रिय बनाने के महती प्रयास किए हैं. इस खेल को अब पूरे देश में विभिन्न स्तरों पर खेला जाता है, जिसमें विद्यालय सहित विभिन्न समूहों के लिए राष्ट्रीय प्रतियोगिता व अंतर विश्वविद्यालय स्तर की प्रतियोगिताएं शामिल हैं. के.के.एफ़.आई. भारतीय ओलिंपिक संघ से संबद्ध है. कलकत्ता में 1987 के दक्षिण एशियाई महासंघ (सैफ़) खेलों में प्रदर्शन खेल के रूप में खो–खो को शामिल किया गया. इन्हीं खेलों के दौरान एशियाई खो–खो संघ की स्थापना हुई, जिसने इस भारतीय खेल को पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल व श्रीलंका में परिचित करवाया. संघ की तकनीकी समिति ने खेल को और आकर्षक बनाने के लिए इसके नियमों में थोड़ा फ़ेरबदल किया. बांग्लादेश ने 1994 से गंभीरता से अभ्यास प्रारंभ किया. पाकिस्तान और श्रीलंका, दोनों ने भारतीय प्रशिक्षकों से अपने–अपने दलों को प्रशिक्षित करवाया. श्रीलंका, पाकिस्तान, बांग्लादेश और नेपाल ने कलकत्ता में 1996 में आयोजित प्रथम एशियाई खो–खो प्रतियोगिता में भाग लिया. श्रीलंका, बांग्लादेश व नेपाल ने कलकत्ता में 1998 व 1999 में नेताजी सुभाषचंद्र अंतर्राष्ट्रीय स्वर्ण कप प्रतियोगिता में भी भाग लिया. अन्य देशों में भी इस खेल को प्रोत्साहन देने के प्रयास जारी हैं.

खोजा

फ़ारसी में ख़्वाजा, 14वीं शताब्दी में फ़ारसी पीर (धार्मिक नेता या शिक्षक) सदरुद्दीन द्वारा हिंदू धर्म से इस्लाम में परिवर्तित और शिया मुसलमानों के निज़ारी इस्माईली पंथ के सदस्यों के रूप में अपनाए गए भारतीय मुसलमानों की जाति. खोजा शब्द कोई धार्मिक पदवी न होकर विशुद्ध रूप से जातिगत विशिष्टता है, जो समूह की हिंदू पृष्ठभूमि से लिया गया है. इसलिए, इनमें सुन्नी खोजा और शिया खोजा होते हैं. इनकी मान्यताएं, प्रथाएं और यहां तक कि भाषा भी अन्य निज़ारी इस्माईलियों के समान है; यद्यपि कोई भी इस जाति में जन्म के अलावा किसी और तरीक़े से शामिल नहीं हो सकता. खोजा प्रमुखतः भारत और पूर्वी अफ़्रीका में रहते हैं. उनकी बड़ी संख्या के निवास वाले हर प्रांत में एक परिषद होती है, जिसके निर्णय राज्य द्वारा क़ानूनी रूप से वैध माने जाते हैं. निज़ारी इस्माईलियों की ही तरह खोजा भी आध्यात्मिक नेता आगा ख़ां के अनुयायी हैं.

ख़्याल

पश्चिमोत्तर भारत के राजस्थान राज्य के कई हिंदुस्तानी लोकनृत्य नाटकों में से एक. ख़्याल नृत्यों का प्रचलन 16वीं सदी से है, जो लोककथाओं एवं पौराणिक कहानियों से अपनी कथावस्तु लेते हैं. इन्हें केवल पुरुष करते हैं. इनकी विशेषता शक्तिशाली शारीरिक गति संचालन है, जिसमें मूकाभिनय एवं गायन शामिल है. ख़्याल के साथ संघात एवं तार वाद्य संगत करते हैं.

ख़्वंदमीर, ग़यासुद्दीन मुहम्मद

फ़ारसी इतिहासकार (ज.–लगभग 1475, हेरात, खुरासान {वर्तमान अफ़ग़ानिस्तान में}; मृ.–1534/37, दिल्ली, भारत), अपने समय के सर्वश्रेष्ठ इतिहासज्ञों में से एक.

फ़ारस के इतिहासकार मीरख़्वंद के पोते ख़्वंदमीर हेरात के तैमूर वंशीय शासक हुसैन बेख़ारा के सबसे बड़े बेटे बदी अल ज़मीं की सेवा में बहाल हुए. जब उज़बेक शासक मुहम्मद शैबानी ने 1507 में हेरात पर क़ब्ज़ा कर लिया, तो ख़्वंदमीर उनके पास राजदूत बनाकर भेजे गए; 1510 में ईरान के सम्राट शाह इस्माईल I सफ़वी द्वारा उज़बेकों की पराजय के बाद शहर पर क़ब्ज़ा करने के भी वह साक्षी थे.

उसके बाद ख़्वंदमीर ने कुछ समय के लिए अवकाश ले लिया और लेखन शुरू किया. अपने पूर्व संरक्षक के सबसे बड़े पुत्र के साथ बिताए गए कुछ समय को छोड़कर ख़्वंदमीर 1528 में भारत रवाना होने तक हेरात में ही टिके रहे. आगरा पहुंचने के बाद वह तैमूरी परंपरा के उत्तराधिकारी और भारत के पहले मुग़ल बादशाह बाबर की सेवा में पहुंचे. वह बाबर के साथ कई अभियानों पर गए. बाबर की मृत्यु के बाद इस इतिहासकार ने उनके पुत्र हुमायूं की भी सेवा की. गुजरात के एक अभियान से लौटते हुए ख़्वंदमीर बीमार पड़े और उनकी मृत्यु हो गई. बहुसर्जक लेखक ख़्वंदमीर की रचनाओं में 1499–1500 में तैमूर वंश के मंत्री और लेखक मीर अली शीर नवाई के लिए लिखा गया

खुलासात–अल–अख़बार (विवरणों का आदर्श); 1524 में पूरा हुआ सामान्य इतिहास *हबीब–अल–सियार* (जीवनियों का मित्र) शामिल हैं. इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण ख़ंड वे हैं, जिनमें सुल्तान हुसैन बेख़ारा और शाह इस्माईल I सफ़वी के राज्यों का ब्योरा है. उनके दादा मीरख़्वंद द्वारा लिखे इतिहास का सातवां और अंतिम भाग *रवादत–अल–सफ़ा* (निष्कलंकता का बगीचा) है और *हुमायूंनामा* (हुमायूं की पुस्तक) में उन्होंने महान मुग़ल साम्राज्य की इमारतों और संस्थाओं का विवरण दिया है.

गंगटोक

शहर, सिक्किम राज्य की राजधानी, पूर्वोत्तर भारत. यह 1,700 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है. गंगटोक (अर्थ, पर्वत का शिखर) ढलानों पर अवस्थित है, जहां सीढ़ीदार खेतों में व्यापक तौर पर मक्का की खेती होती है. राजतंत्र की समाप्ति (1975) से पहले यह सिक्किम राज्य का प्रशासनिक केंद्र था, जिसे भारत में शामिल करके (1975) राज्य का दर्जा दिया गया. गंगटोक मक्का, चावल, दलहन और संतरों का विपणन केंद्र है. 1962 में तिब्बत से लगने वाली सीमा को बंद किए जाने से पहले यह 21 किमी पूर्वोत्तर में स्थित नाथुला (नाथू दर्रा) के ज़रिये भारत–तिब्बत व्यापार मार्ग का एक महत्त्वपूर्ण बिंदु था. गंगटोक से लाहुंग और लाचेन होते हुए उत्तरी सिक्किम राजमार्ग (1962) तिब्बत की सीमा तक जाता है और राष्ट्रीय राजमार्ग दक्षिण–पश्चिम दिशा में भारत की ओर जाता है. गंगटोक में एक अस्पताल, माध्यमिक विद्यालय, अदालत और कुछ आधुनिक दुकानें, होटल व सिनेमाघर हैं.
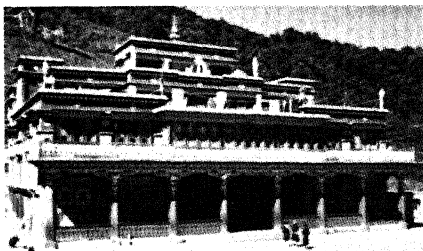
गंगटोक, सिक्किम के नज़दीक रूमटेक का बौद्ध मंदिर
फ़ोटो : एन. मेरिफ़ील्ड–शोस्टल एसोसिएट ई.बी. इंकॉ.

शहर में नामग्याल इंस्टिट्यूट ऑफ़ तिब्बतोलॉजी (1958) नामक शोध केंद्र है, जिसमें महायान बौद्ध मत से संबंधित पुस्तकों और दुर्लभ पांडुलिपियों का विश्व का विशालतम संग्रह मौजूद है. ऑर्किड अभयारण्य स्थल है, जिसमें सिक्किम में पाए जाने वाले 454 प्रजातियों के ऑर्किड हैं; सोने के गुंबद वाले स्तूप से युक्त दो–द्रुल चोर्तेन, जिसमें 108 प्रार्थना चक्र हैं और लघु उद्योग संस्थान कॉटेज इंडस्ट्रीज़ इंस्टिट्यूट (1957) भी यहां अवस्थित हैं. अन्य पर्यटन स्थलों में चोग्याल का महल, गणेश टोक, हनुमान टोक, एंचे मठ, मृग विहार, चिड़ियाघर और ताशी व्यू पॉइंट शामिल हैं. विख्यात रूमटेक बौद्ध मठ यहां से 8 किमी दक्षिण–पश्चिम में स्थित है और निकटस्थ लक्षियामा में शाही अंत्येष्टि स्थल स्थित है. गंगटोक में महत्त्वपूर्ण निर्यात उत्पाद इलायची और उपोष्णकटिबंधीय फलों का सरकारी उद्यान है. दक्षिण में *तादोंग* में प्रायोगिक कृषि केंद्र स्थित है. यहां की आबादी में नेपाली, तिब्बती, लेप्चा और भारतीय लोग शामिल हैं. जनसंख्या (2001) शहर 29,162; पूर्वी ज़िला 2,44,790.

गंग वंश

भारत में इस नाम के दो अलग–अलग, लेकिन दूर के संबंधी राजवंश थे. पश्चिमी गंग वंश का 250 से लगभग 1004 ई. तक मैसूर राज्य (गंगवाडी) पर शासन था. पूर्वी गंग वंश ने 1028 से 1434–35 ई. तक कलिंग पर शासन किया.

पश्चिमी गंग वंश के प्रथम शासक, कोंगानिवर्मन, ने अपने विजय अभियानों से राज्य की स्थापना की, लेकिन उनके उत्तराधिकारियों माधव I और हरिवर्मन ने पल्लवों, चालुक्यों और कदंबों के साथ वैवाहिक और सैनिक समझौतों से अपने प्रभाव क्षेत्रों में वृद्धि की. आठवीं शताब्दी के अंत में एक पारिवारिक विवाद ने गंग वंश को कमज़ोर कर दिया, लेकिन बूतुंग II (लगभग 937–960) ने तुंगभद्रा और कृष्णा नदियों के बीच व्यापक क्षेत्र पर राज्य क़ायम किया. उनका राज्य तलकाड (राजधानी) से वातापी तक फैला हुआ था. चोलों के बार–बार आक्रमण ने गंगवाडी और उनकी राजधानी के बीच संबंध विच्छेद कर दिया और तलकाड लगभग 1004 ई. में चोल राजा विष्णुवर्द्धन के क़ब्ज़े में चला गया. पश्चिमी गंग वंश के अधिकांश लोग जैन धर्म के अनुयायी थे, लेकिन कुछ लोगों ने ब्राह्मणवादी हिंदू धर्म को भी प्रश्रय दिया था. उन्होंने कन्नड़ भाषा में विद्वत्तापूर्ण शैक्षिक कार्यों को बढ़ावा दिया, कुछ उल्लेखनीय मंदिर बनवाए, जंगल साफ़ कर खेती योग्य ज़मीन तैयार करवाई और सिंचाई तथा अंतर्प्रायद्वीपीय व्यापार को बढ़ावा दिया.

पूर्वी गंग वंशों में अंतर्विवाह की शुरुआत हुई और उन्होंने ऐसे समय में चोल और चालुक्य वंशों को चुनौती देना आरंभ किया, जब पश्चिमी गंग यह सब छोड़ने पर विवश हो चुके थे. पूर्वी गंगों का आरंभिक वंश आठवीं शताब्दी से उड़ीसा में सत्तासीन था; लेकिन वज्रास्त III, जिन्होंने 1028 में त्रिकलिंगाधिपति (तीन कलिंगो का शासक) की उपाधि धारण की थी, शायद पहले शासक थे, जिन्होंने कलिंग के तीनों हिस्सों पर एक साथ शासन किया. उनके पुत्र राजराज I ने चोलों और पूर्वी चालुक्यों पर आक्रमण किया और चोल राजकुमारी राजसुंदरी से विवाह करके अपनी सत्ता मज़बूत की. उनके पुत्र अनंतवर्मन कोडगंगदेव का शासन उत्तर में गंगा के उद्गम स्थल से लेकर दक्षिण में गोदावरी के उद्गम स्थल तक फैला हुआ था; उन्होंने 11वीं शताब्दी के अंत में पुरी में विशाल जगन्नाथ मंदिर का निर्माण आरंभ करवाया. राजराज III ने 1198 में गद्दी संभाली. उन्होंने 1206 में उड़ीसा पर आक्रमण करने वाले बंगाल के मुसलमानों का विरोध नहीं किया. लेकिन उनके पुत्र अनंगभीम III ने मुसलमानों को पीछे हटाकर भुवनेश्वर में मेघेश्वर मंदिर की स्थापना की. अनंगभीम के पुत्र नरसिंह I ने 1243 में दक्षिण बंगाल के मुसलमान शासक को हराकर उनकी राजधानी (गौडा) पर क़ब्ज़ा कर लिया और विजय स्मारक के रूप में कोणार्क में सूर्य मंदिर बनवाया. 1264 में नरसिंह की मृत्यु के साथ ही पूर्वी गंग वंश का पतन शुरू हो गया; 1324 में दिल्ली के सुल्तान ने उड़ीसा पर आक्रमण कर दिया और 1356 में विजयनगर ने उड़ीसा के राजाओं को पराजित कर दिया. पूर्वी गंग वंश के अंतिम प्रसिद्ध शासक नरसिंह IV ने 1425 तक शासन किया. उनके उत्तराधिकारी 'पागल राजा' भानुदेव IV के बारे में कोई अभिलेख उपलब्ध नहीं है. उनके मंत्री कपिलेंद्र ने उन्हें सत्ताच्युत करके 1434–35 में सूर्य वंश की नींव रखी. पूर्वी गंग वंश धर्म और कला का महान संरक्षक था और उसके शासनकाल में निर्मित मंदिर हिंदू वास्तुकला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं.

92860
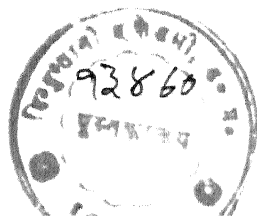
गंगानगर

भूतपूर्व श्रीगंगानगर, शहर, सुदूर उत्तरी राजस्थान राज्य, पश्चिमोत्तर भारत. 1970 केदशक में यह एक कृषि वितरण केंद्र के रूप में तेज़ी से विकसित हुआ. इस शहर में वस्त्र, चीनी और चावल की मिलें हैं. यहां एक मौसम विज्ञान केंद्र तथा राजस्थान विश्वविद्यालय से संबद्ध कई महाविद्यालय हैं. जनसंख्या (2001) शहर 2,10,788; ज़िला कुल 17,88,487.

गंगा नदी

उत्तर भारत के मैदानों की विशाल नदी. भारतीय भाषाओं में तथा अधिकृत रूप से गंगा नाम से मशहूर इस नदी को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उसके अंग्रेज़ीकृत नाम 'द गैंजिज़' से ही जाना जाता है. अनेक सहस्राब्दियों से गंगा हिंदुओं की पवित्र तथा पूजनीय नदी रही है. अपने अधिकांश मार्ग में गंगा एक चौड़ी व मंद धारा है और विश्व के सबसे ज़्यादा उपजाऊ और घनी आबादी वाले इलाक़ों से होकर बहती है. इतने महत्त्व के बावजूद इसकी लंबाई 2,510 किमी है, जो एशिया या विश्व स्तर की तुलना में कोई बहुत ज़्यादा नहीं है.

हिमालय से निकलकर बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली गंगा भारत के लगभग एक–चौथाई भूक्षेत्र को अपवाहित करती है तथा अपने बेसिन में बसे विराट जनसमुदाय के जीवन का आधार बनती है. जिस गंगा के मैदान से होकर यह प्रवाहित होती है, वह इस क्षेत्र का हृदय स्थल है, जिसे हिंदुस्तान कहते हैं. यहां तीसरी सदी में अशोक महान के साम्राज्य से लेकर 16वीं सदी में स्थापित मुग़ल साम्राज्य तक सारी सभ्यताएं विकसित हुईं.

गंगा नदी अपना अधिकांश सफ़र भारतीय इलाक़े में ही तय करती है, लेकिन उसके विशाल डेल्टा क्षेत्र का अधिकांश हिस्सा बांग्लादेश में है. गंगा की प्रवाह की सामान्य दिशा उत्तर–पश्चिमोत्तर से दक्षिण–पूर्व की तरफ़ है और डेल्टा क्षेत्र में प्रवाह आमतौर से दक्षिण मुखी है.

भौतिक विशेषताएं

भू–आकृति

गंगा का उद्‌गम दक्षिणी हिमालय में तिब्बत सीमा के भारतीय हिस्से से होता है. इसकी पांच आरंभिक धाराओं, भागीरथी, अलकनंदा, मंदाकिनी, धौलीगंगा तथा पिंडर का उद्‌गम उत्तराखंड क्षेत्र, जो उत्तर प्रदेश का एक संभाग था (वर्तमान उत्तरांचल राज्य), में होता है. दो प्रमुख धाराओं में बड़ी अलकनंदा का उद्‌गम हिमालय के नंदा देवी शिखर से 48 किमी दूर तथा दूसरी भागीरथी का उद्‌गम हिमालय की गंगोत्री नामक हिमनद के रूप में 3,050 मीटर की ऊंचाई पर बर्फ़ की गुफ़ा में होता है. गंगोत्री हिंदुओं का एक तीर्थ स्थान है. वैसे गंगोत्री से 21 किमी दक्षिण–पूर्व स्थित गोमुख को गंगा का वास्तविक उद्‌गम स्थल माना जाता है.

देव प्रयाग में अलकनंदा और भागीरथी का संगम होने के बाद यह गंगा के रूप में दक्षिण हिमालय से ऋषिकेश के निकट बाहर आती है और हरिद्वार के बाद मैदानी इलाक़े में प्रवेश करती है. हरिद्वार भी हिंदुओं का तीर्थ स्थान है.

नदी के प्रवाह में मौसम के अनुसार आने वाले थोड़े–बहुत परिवर्तन के बावजूद इसके जल की मात्रा में उल्लेखनीय वृद्धि तब होती है, जब इसमें अन्य सहायक नदियां मिलती हैं तथा यह अधिक वर्षा वाले इलाक़ों में प्रवेश करती है. एक तरफ़, अप्रैल से जून के बीच हिमालय में पिघलने वाली बर्फ़ से इसका पोषण होता है, वहीं दूसरी ओर, जुलाई से सितंबर के बीच का मॉनसून इसमें आने वाली बाढ़ों का कारण बनता है. उत्तर प्रदेश राज्य में इसके दाहिने तट की सहायक नदियां, यमुना राजधानी दिल्ली होते हुए इलाहाबाद में गंगा में शामिल होती है तथा टोन्स नदी हैं, जो मध्य प्रदेश के विंध्याचल से निकलकर उत्तर की तरफ़ बहती है और शीघ्र ही गंगा में शामिल हो जाती है. उत्तर प्रदेश में बाईं तरफ़ की सहायक नदियां रामगंगा, गोमती तथा घाघरा हैं.

इसके बाद गंगा बिहार राज्य में प्रवेश करती है, जहां इसकी मुख्य सहायक नदियां हिमालयी क्षेत्र की तरफ़ से गंडक, बूढ़ी गंडक, कोसी तथा घुघरी हैं. दक्षिण की तरफ़ से इसकी प्रमुख सहायक नदी सोन है. यहां से यह नदी राजमहल पहाड़ियों का चक्कर लगाती हुई दक्षिण–पूर्व में फरक्का तक पहुंचती है, जो इस डेल्टा का सर्वोच्च बिंदु है.यहां से गंगा भारत में अंतिम राज्य पश्चिम बंगाल में प्रवेश करती है, जहां उत्तर की तरफ़ से इसमें महानंदा मिलती है (समूचे पश्चिम बंगाल और बांग्लादेश में स्थानीय आबादी गंगा को पद्मा कहकर बुलाती है). गंगा के डेल्टा की सुदूर पश्चिमी शाखा हुगली है, जिसके तट पर महानगर कोलकाता (भूतपूर्व कलकत्ता) बसा हुआ है. स्वयं हुगली में पश्चिम से आकर उसकी दो सहायक नदियां दामोदर व रूपनारायण शामिल होती हैं. बांग्लादेश में ग्वालुंदो घाट के निकट गंगा में विशाल ब्रह्मपुत्र शामिल होती है (इन दोनों के संगम के 241 किमी पहले तक इसे फिर यमुना के नाम से बुलाया जाता है). गंगा और ब्रह्मपुत्र की संयुक्त धारा ही पद्मा कहलाने लगती है और चांदपुर के निकट वह मेघना में शामिल हो जाती है. इसके बाद यह विराट जलराशि अनेक प्रवाहों में विभाजित होकर बंगाल की खाड़ी में समा जाती है. बांग्लादेश की राजधानी ढाका धालेश्वरी नदी की सहायक नदी बूढ़ी गंगा के तट पर स्थित है. जिन नदी शाखाओं से गंगा का डेल्टा बनता है, उसकी हुगली और मेघना के अलावा अन्य शाखाएं पश्चिम बंगाल में जलांगी और बांग्लादेश में माताभंगा, भैरब, काबाडक, गराई–मधुमती तथा अरियल खान हैं.

डेल्टा क्षेत्र में स्थित गंगा की सभी सहायक नदियां और शाखाएं मौसम में परिवर्तनों के कारण अक्सर अपना रास्ता बदल लेती हैं. ये परिवर्तन इधर, विशेषकर 1750 ई. के बाद से ज़्यादा होने लगे हैं. ब्रह्मपुत्र 1785 तक मैमनसिंह शहर के पास से बहती थी; अब यह वहां से 64 किमी पश्चिम में गंगा में मिलती है.

गंगा तथा ब्रह्मपुत्र की नदी घाटियों से बहकर आई हुई गाद से बने डेल्टा क्षेत्र का क्षेत्रफल 60,000 वर्ग किमी है तथा उसका निर्माण मिट्टी, रेत तथा खड़िया की क्रमिक

परतों से हुआ है. यहां पर सड़ी–गली वनस्पति (पीट) लिग्नाइट (भूरे कोयले) की परतें भी उन इलाक़ों में मिलती हैं, जहां पहले घने वन हुआ करते थे. डेल्टा में नहरों के आसपास बाद में प्राकृतिक रूप से बहुत सा खादर भी जमा हुआ है.

गंगा डेल्टा की दक्षिणी सतह का निर्माण तेज़ गति से तथा तुलनात्मक रूप से हाल में बहकर आई गाद की भारी मात्रा से हुआ है. पूरब में समुद्र की तरफ़ इसी गाद के कारण बड़ी तेज़ी से नए–नए भूक्षेत्र (नदी द्वीप) बनते जा रहे हैं, जिन्हें 'चार' कहते हैं. वैसे डेल्टा का पश्चिमी समुद्री तट 18वीं सदी के बाद से लगभग अपरिवर्तित है.

पश्चिम बंगाल की नदियों का प्रवाह बहुत धीमा है और उनसे काफ़ी कम पानी समुद्र में प्रवाहित होता है. बांग्लादेशी डेल्टा क्षेत्र में नदियां चौड़ी तथा गतिमान हैं और उनमें पानी विपुल मात्रा में बहता है. ये नदियां अनेक संकरी खाड़ियों से परस्पर जुड़ी हुई हैं.

वर्षा ऋतु (जून से अक्तू.) में इस इलाक़े में कृत्रिम रूप से निर्मित उच्चभूमि पर बसाए गए गांव कई फ़ीट पानी में डूब जाते हैं. इस मौसम में इन बस्तियों के बीच आवागमन का एकमात्र साधन नौकाएं ही होती हैं.

समूचे डेल्टा क्षेत्र का समुद्रतटीय इलाक़ा दलदली है. यह पूरा क्षेत्र सुंदरबन कहलाता है और भारत व बांग्लादेश, दोनों ने इसे संरक्षित क्षेत्र घोषित कर रखा है.

इस डेल्टा के कुछ हिस्सों में जंगली वनस्पतियों तथा धान से निर्मित पीट की परतें हैं. अनेक प्राकृतिक खाइयों (बिलों) में उस पीट के बनने की प्रक्रिया जारी है, जिसका उपयोग स्थानीय किसान खाद तथा सुखाकर घरेलू तथा औद्योगिक ईंधन के रूप में करते हैं.

जलवायु एवं जल विज्ञान

गंगा के बेसिन में इस उपमहाद्वीप की विशालतम नदी प्रणाली स्थित है. यहां जल की आपूर्ति मुख्यतः जुलाई से अक्तूबर के बीच दक्षिण–पश्चिमी मानसून तथा अप्रैल से जून के बीच ग्रीष्म ऋतु के दौरान पिघलने वाली हिमालय की बर्फ़ से होती है. नदी के बेसिन में मॉनसून के उन कटिबंधीय तूफ़ानों से भी वर्षा होती है, जो जून से अक्तूबर के बीच बंगाल की खाड़ी में पैदा होते हैं. दिसंबर और जनवरी में बहुत कम मात्रा में वर्षा होती है. औसत वार्षिक वर्षा बेसिन के पश्चिमी सिरे में 760 मिमी से लेकर पूर्वी सिरे पर 2,286 मिमी के बीच होती है (उत्तर प्रदेश में गंगा के ऊपरी कछार में जहां औसत वर्षा 762 से 1,016 मिमी होती है, वहीं बिहार के मध्यवर्ती मैदान में यह औसत 1,016 से 1,524 मिमी तथा डेल्टा क्षेत्र में 1,524 से 2,540 मिमी के बीच है). डेल्टा क्षेत्र में मॉनसून के प्रारंभ (मार्च से मई) तथा मानसून के अंत (सितं.–अक्तू.) में ज़ोरदार चक्रवाती समुद्री तूफ़ान आते हैं. इनसे काफ़ी बड़ी मात्रा में मानव जीवन, संपत्ति, फ़सलों तथा पशुओं का नुक़सान होता है. ऐसा ही एक भीषण विनाशकारी तूफ़ान नवंबर 1970 में आया था, जिसमें कम से कम दो लाख और अधिक से अधिक पांच लाख लोगों की मौत हुई थी.

वाराणसी, उत्तर प्रदेश में गंगा नदी में नाव
सौजन्य : यूसुफ़ सईद

चूंकि गंगा के मैदान में उतार–चढ़ाव लगभग न के बराबर है, अतः नदी प्रवाह की गति धीमी है. दिल्ली में यमुना नदी से लेकर बंगाल की खाड़ी के 1,609 किमी के संपूर्ण फ़ासले में भूतल की ऊंचाई में मात्र 213 मीटर की कमी आती है. गंगा–ब्रह्मपुत्र के मैदान का कुल विस्तार 7,77,000 वर्ग किमी है. इस मैदान में मिट्टी की सतह, जो कहीं–कहीं 1,829 मीटर से भी ज़्यादा है, संभवतः 10 हज़ार वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है.

वनस्पति एवं प्राणी जीवन

गंगा–यमुना के इलाक़े में कभी घने जंगल हुआ करते थे. ऐतिहासिक ग्रंथों से पता चलता है कि 16वीं और 17वीं सदी तक यहां जंगली हाथी, गौर, बारहसिंगा, गैंडा, बाघ तथा शेर का शिकार होता था. गंगा के संपूर्ण बेसिन से वहां की मूल प्राकृतिक वनस्पतियां लुप्त हो गई हैं और वहां अब लगातार बढ़ती आबादी का पेट भरने के लिए व्यापक रूप में खेती की जाती है. हिरन, जंगली सूअर, जंगली बिल्लियां तथा कुछ भेड़िए, भालू, सियार और लोमड़ी को छोड़कर जंगली जानवर बहुत कम हैं. डेल्टा के सुंदरबन इलाक़े में बंगाल टाइगर (शेर), मगरमच्छ तथा दलदली हिरन अब भी मिल जाते हैं. नदियों में, ख़ासतौर से डेल्टा क्षेत्र में मछलियां विपुल मात्रा में पाई जाती हैं और स्थानीय निवासियों के भोजन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं. यहां मैना, तोता, कौआ, चील, तीतर और मुर्ग़ाबी जैसे पक्षियों की भी कई क़िस्में पाई जाती हैं. जाड़े के मौसम

में बत्तख़ और चाहा पक्षी ऊंचे हिमालय को पार करके दक्षिण में पानी से घिरे क्षेत्रों की तरफ़ प्रवास करते हैं. बंगाल के इलाक़े में आमतौर से पाई जाने वाली मछलियों में फ़ेदर बैक (*नोटोप्टेरिडी*), वॉकिंग कैटफ़िश, गोरामि (*एनाबैंटिडी*) तथा मिल्कफ़िश (*चैनिडी*), बार्ब (*सिप्राइनिडी*) आदि प्रमुख हैं.

जनजीवन

गंगा के बेसिन के निवासी नृजातीय रूप से मिश्रित मूल के हैं. पश्चिम और मध्य बेसिन में वे मूलतः आर्य पूर्वजों की संतान थे. बाद में तुर्क, मंगोल, अफ़ग़ानी, फ़ारसी तथा अरब लोग पश्चिम से आए और अंतर्मिश्रित हो गए. पूरब और दक्षिण, ख़ासतौर से बंगाल के इलाक़े में तिब्बती, बर्मी तथा विविध नस्ल के पहाड़ी लोग भी मिलते हैं. इनसे भी बाद में आने वाले यूरोपीय लोग यहां न तो बसे और न ही स्थानीय लोगों के साथ विवाह संबंध बनाए.

ऐतिहासिक रूप से गंगा के मैदान से ही हिंदुस्तान का हृदय स्थल निर्मित है और वही बाद में आने वाली विभिन्न सभ्यताओं का पालना बना. अशोक के ई.पू. के साम्राज्य का केंद्र पाटलिपुत्र (पटना), बिहार में गंगा के तट पर बसा हुआ था. महान मुग़ल साम्राज्य के केंद्र दिल्ली और आगरा भी गंगा के बेसिन की पश्चिमी सीमाओं पर स्थित थे. सातवीं सदी के मध्य में कानपुर के उत्तर में गंगा तट पर स्थित कन्नौज, जिसमें अधिकांश उत्तरी भारत आता था, हर्ष के सामंतकालीन साम्राज्य का केंद्र था. मुस्लिम काल के दौरान, यानी 12वीं सदी से मुसलमानों का शासन न केवल मैदान, बल्कि बंगाल तक फैला हुआ था. डेल्टा क्षेत्र के ढाका और मुर्शिदाबाद मुस्लिम सत्ता के केंद्र थे. अंग्रेज़ों ने 17वीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुगली के तट पर कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) की स्थापना करने के बाद धीरे–धीरे अपने पैर गंगा की घाटी में फैलाए और 19वीं सदी के मध्य में दिल्ली तक जा पहुंचे.

गंगा के मैदान में अनेक नगर बसे, जिनमें मुख्य रूप से रूड़की, सहारनपुर, मेरठ, आगरा (मशहूर मक़बरे ताजमहल का शहर), मथुरा (भगवान कृष्ण की जन्मभूमि के रूप में पूजनीय), अलीगढ़, कानपुर, बरेली, लखनऊ, इलाहाबाद, वाराणसी (पवित्र शहर बनारस), पटना, भागलपुर, राजशाही, मुर्शिदाबाद, बर्दवान (वर्द्धमान), कलकत्ता, हावड़ा, ढाका, खुलना और बारीसाल उल्लेखनीय हैं. डेल्टा क्षेत्र में कलकत्ता और उसके उपनगर हुगली के दोनों किनारों पर लगभग 80 किमी क्षेत्र में फैले हैं व भारत के जनसंख्या, व्यापार तथा उद्योग की दृष्टि से सबसे घने बसे हुए इलाक़ों में गिने जाते हैं.

पवित्र नदी, अनुष्ठान और किंवदंतियां

गंगा नदी का धार्मिक महत्त्व संभवतः विश्व की किसी भी अन्य नदी से ज़्यादा है. आदि काल से ही यह पूजी जाती रही है और आज भी हिंदुओं के लिए यह सबसे पवित्र नदी है. इसे देवी स्वरूपा माना जाता है. एक किंवदंती के अनुसार, महान तपस्वी भगीरथ की प्रार्थना पर देवी गंगा को स्वयं भगवान विष्णु ने इस धरती पर भेजा. लेकिन गंगा

जिस वेग से धरती पर अवतरित हुईं, उससे उनके मार्ग में आने वाली हर वस्तु के जलप्लावित होने का ख़तरा था. इसलिए भगवान शिव ने पहले उन्हें अपनी जटाओं में लपेटकर उनके वेग को नियंत्रित और शांत किया. मुक्ति चाहने वाले उसके बाद ही उसमें स्नान कर पाए. हिंदुओं के तीर्थस्थान वैसे तो समूचे उपमहाद्वीप में फैले हुए हैं, तथापि गंगा तट पर बसे तीर्थ हिंदू धर्मावलंबियों के लिए विशेष महत्त्व रखते हैं. इनमें प्रमुख है, इलाहाबाद में गंगा और यमुना का संगम, जहां एक निश्चित अंतराल पर जनवरी–फ़रवरी में कुंभ मेला आयोजित होता है. इस अनुष्ठान के समय लाखों तीर्थयात्री गंगा में स्नान करते हैं. पवित्र स्नान की दृष्टि से अन्य तीर्थ हैं, वाराणसी, काशी और हरिद्वार. कलकत्ता में हुगली नदी भी पवित्र मानी जाती है. तीर्थयात्रा की दृष्टि से गंगा तट पर गंगोत्री और अलकनंदा और भागीरथी का संगम भी महत्त्वपूर्ण हैं. हिंदू अपने मृतकों की भस्म एवं अस्थियां यह मानते हुए गंगा में विसर्जित करते हैं कि ऐसा करने से मृतक सीधे स्वर्ग जाता है. इसीलिए गंगा के तट पर कई स्थानों पर शवदाह हेतु विशेष घाट बने हुए हैं.

अर्थव्यवस्था

सिंचाई

सिंचाई के लिए गंगा के पानी का उपयोग, चाहे बाढ़ का पानी हो या फिर नहरों का, पुरातन काल से प्रचलित है. इस तरह की सिंचाई का उल्लेख धर्मग्रंथों तथा 2,000 से भी ज़्यादा वर्ष पहले लिखे पुराणों में मिलता है. चौथी सदी में यूनान से भारत आए राजदूत मेगस्थनीज़ ने यहां सिंचाई के उपयोग का उल्लेख किया है. 12वीं सदी से मुस्लिम काल में सिंचाई प्रणाली बहुत विकसित थी और मुग़ल बादशाहों ने बाद में बहुत सी नहरों का निर्माण किया. बाद में ब्रिटिश शासकों ने सिंचाई प्रणाली का और भी विस्तार किया.

उत्तर प्रदेश और बिहार स्थित गंगा घाटी के कृषि क्षेत्रों को सिंचाई नहरों की प्रणाली से बहुत लाभ हुआ है. ख़ासतौर से इस विकसित सिंचाई प्रणाली के कारण गन्ना, कपास और तिलहन जैसी नक़दी फ़सलों की पैदावार में वृद्धि संभव हुई. पुरानी नहरें मुख्यतः गंगा–यमुना के दोआब इलाक़े में हैं. ऊपरी गंगा नहर हरिद्वार से शुरू होती है और अपनी सहायक नहरों सहित 9,524 किमी लंबी है. निचली गंगा नहर की लंबाई अपनी सहायक नहरों सहित 8,238 किमी है और यह नरोरा से प्रारंभ होती है. शारदा नहर से उत्तर प्रदेश में अयोध्या की भूमि सींची जाती है. गंगा के उत्तर में भूमि की ऊंचाई अधिक होने से नहरों द्वारा सिंचाई करना कठिन होने के कारण भूमिगत जल पंप द्वारा खींचकर सतह पर लाया जाता है. उत्तर प्रदेश और बिहार के काफ़ी बड़े इलाक़े में हाथ से खोदे हुए कुओं से निकली नहरों द्वारा सिंचाई होती है.

बांग्लादेश में गंगा–कबाडाक योजना मुख्यतः सिंचाई के लिए ही है और उसमें खुलना, जेशोर और कुश्तिया ज़िलों के वे हिस्से आते हैं, जो डेल्टा के कमज़ोर हिस्से हैं, जहां नदियों का मार्ग गाद और घनी झाड़ियों के कारण अवरुद्ध हो चुका है.

इस इलाक़े में कुल वार्षिक वर्षा सामान्यतः 1,524 मिमी से कम होती है तथा शीत ऋतु तुलनात्मक रूप से शुष्क रहती है. यहां की सिंचाई प्रणाली भी नहरों तथा भूमिगत जल खींचने वाले विद्युतचालित उपकरणों पर आधारित है.

नौकायन

प्राचीन काल में गंगा और इसकी कुछ सहायक नदियां, ख़ासतौर से पूरब में, नौकायन के उपयुक्त थीं. मेगस्थनीज़ के अनुसार, चौथी शताब्दी ई.पू. में गंगा और इसकी प्रमुख सहायक नदियों में नौकायन होता था. गंगा के बेसिन में अंतर्देशीय नदी नौकायन 14वीं शताब्दी तक भी फल–फूल रहा था. 19वीं सदी के आते–आते सिंचाई तथा नौकायन के लिए उपयुक्त नहरों की जल परिवहन प्रणाली के प्रमुख मार्ग बन चुके थे. पैडल स्टीमरों के आगमन से अंतर्देशीय परिवहन में जो क्रांति आई, उससे बंगाल और बिहार के नील उद्योग को बहुत बढ़ावा मिला. गंगा में कलकत्ता से इलाहाबाद और उससे आगे यमुना में आगरा तक तथा उधर ब्रह्मपुत्र तक नियमित स्टीमर सेवाएं चलने लगीं.

19वीं सदी के मध्य में रेलमार्गों के बनने से बड़े पैमाने पर जल परिवहन में गिरावट शुरू हो गई. सिंचाई हेतु पानी बहुत ज़्यादा मात्रा में खींच लिए जाने से भी नौकायन विपरीत रूप से प्रभावित हुआ. अब तो नौकायन केवल इलाहाबाद के आसपास के मध्य गंगा बेसिन तक ही सीमित रह गया है, जिसमें से अधिकांश देसी नौकाओं पर आधारित है.

वैसे पश्चिम बंगाल तथा बांग्लादेश अब भी जूट, घास, चाय, अनाज तथा अन्य कृषि और ग्रामीण उत्पादों के परिवहन के लिए जलमार्गों पर निर्भर हैं. बांग्लादेश में चालना, खुलना, बारीसाल, चांदपुर, नारायणगंज, ग्वालुंदो घाट, सिराजगंज, भैरब बाज़ार तथा फेंचूगंज और भारत में कोलकाता, गोलपाड़ा, धुबुरी और डिब्रूगढ़ प्रमुख नदी बंदरगाह हैं.1947 में भारत के विभाजन से बड़े दूरगामी परिवर्तन हुए और कलकत्ता से असम तक अंतर्देशीय जलमार्गों द्वारा पहले बड़े पैमाने पर होने वाला व्यापार लगभग बंद ही हो गया.

बांग्लादेश में अंतर्देशीय जल परिवहन की ज़िम्मेदारी अंतर्देशीय जल परिवहन प्राधिकरण की है. भारत में अंतर्देशीय जलमार्गों का नीति निर्धारण केंद्रीय अंतर्देशीय जल परिवहन मंडल (सेंट्रल इनलैंड वॉटर ट्रांसपोर्ट बोर्ड) करता है, लेकिन राष्ट्रीय जलमार्गों की व्यापक प्रणाली का विकास एवं रखरखाव अंतर्देशीय जलमार्ग (इनलैंड वॉटरवेज़ अथॉरिटी) प्राधिकरण करता है. गंगा के बेसिन में इलाहाबाद से लेकर हल्दिया तक लगभग 1,607 किमी लंबा जलमार्ग इस प्रणाली में शामिल है.

डेल्टा के मुख पर भारत की सीमा के ठीक भीतर फ़रक्का बांध का निर्माण बांग्लादेश और भारत के बीच विवाद का कारण बन गया है. भारत का कहना है कि गाद के जमने तथा खारा पानी घुस आने की वजह से कोलकाता बंदरगाह का पतन हो गया है. कोलकाता की स्थिति में सुधार के लिए खारे पानी को निकालकर और जलस्तर को बढ़ाकर भारत ने फरक्का बैराज से गंगा को मोड़कर ताज़ा पानी हासिल करने की कोशिश की है. अब एक बड़ी नहर द्वारा पानी भागीरथी नदी में लाया जाता है, जो कोलकाता से परे हुगली में समाहित होती है.

बांग्लादेश का कहना है कि नदियों के तटवर्ती देशों की परस्पर समृद्धि के लिए यह ज़रूरी है कि अंतर्राष्ट्रीय नदियों के पानी पर उनका संयुक्त नियंत्रण होना चाहिए. सिंचाई, नौकायन तथा खारे पानी की रोकथाम के लिए गंगा का पानी बांग्लादेश में भी उतना ही आवश्यक है, जितना भारत के लिए. बांग्लादेश के अनुसार, फरक्का बांध ने उसे पानी के एक ऐसे बहुमूल्य स्रोत से वंचित कर दिया है, जो उसकी समृद्धि के लिए आवश्यक है. दूसरी तरफ़, भारत गंगा जल की समस्या के बारे में द्विपक्षीय रवैया अपनाए जाने के पक्ष में है. दोनों देशों के बीच कई अंतरिम समझौते हुए हैं, लेकिन अभी तक इस विवाद का कोई स्थायी हल नहीं निकल पाया है. भारत के असम में ब्रह्मपुत्र के पानी को बांग्लादेश से होकर एक नहर द्वारा गंगा में मोड़ने के प्रस्ताव के जवाब में बांग्लादेश ने सुझाया है कि पूर्वी नेपाल, पश्चिम बंगाल होते हुए एक नहर बांग्लादेश तक बनाई जाए. किसी भी प्रस्ताव को सकारात्मक प्रतिक्रिया नहीं मिली है. 1987 तथा 1988 में बांग्लादेश में आई प्रलयंकारी बाढ़ों, जिसमें 1988 की बाढ़ उस देश के इतिहास की सर्वाधिक विनाशकारी थी, को देखते हुए विश्व बैंक ने इस क्षेत्र के लिए अब बाढ़ नियंत्रण की एक दूरगामी योजना बनाई है.

पनबिजली ऊर्जा

गंगा की लगभग 130 लाख किलोवॉट की अनुमानित जलविद्युत क्षमता का 2/5 हिस्सा भारत में तथा शेष नेपाल में है. इस क्षमता में से कुछ का दोहन भारत ने चंबल और रिहंद नदियों द्वारा किया है.

गंगा का मैदान दुनिया की सबसे घनी आबादी वाला तथा उपजाऊ इलाक़ों में से एक है. चूंकि इस मैदानी क्षेत्र में अवरोध न के बराबर है, गंगा की धारा अधिकांश इलाक़े में चौड़ी व धीमी बहती है. उसके कुल अपवाह बेसिन का 9,75,900 वर्ग किमी क्षेत्रफल, यानी भारत के कुल क्षेत्र का लगभग चौथाई हिस्सा है और उस पर लगभग 50 करोड़ आबादी निर्भर करती है. इस बेसिन की भूमि पर गहन खेती होती है. गंगा प्रणाली की जलापूर्ति आंशिक रूप से जुलाई से अक्तूबर के बीच होने वाली मानसून की वर्षा और अप्रैल से जून के बीच हिमालय पर गर्मी से पिघलने वाली बर्फ़ पर निर्भर करती है.

भारतीय उपमहाद्वीप का यह विस्तृत उत्तर–मध्य खंड, जिसे उत्तर भारतीय मैदान भी कहा जाता है, पश्चिम में ब्रह्मपुत्र नदी घाटी और गंगा के डेल्टा से लेकर सिंधु नदी घाटी तक फैला हुआ है. इस इलाक़े में इस उपमहाद्वीप के सबसे समृद्ध और सघन जनसंख्या वाले क्षेत्र हैं. इस मैदान का अधिकांश हिस्सा गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों द्वारा पूर्व में एवं सिंधु नदी द्वारा पश्चिम में बहाकर लाई गई कछारी मिट्टी से बना हुआ है. मैदान के पूर्वी हिस्सों में कम बारिश व सर्दियां शुष्क होती है, किंतु मानसून की वर्षा इतनी अधिक होती है कि बड़े–बड़े इलाक़ों में दलदल या उथली झीलें बन जाती हैं. ज्यों–ज्यों पश्चिम की ओर बढ़ते हैं, यह मैदान शुष्क होता चला जाता है और अंत में थार के रेगिस्तान में बदल जाता है.

गंगा–यमुना दोआब

पश्चिमी और दक्षिण–पश्चिम उत्तर प्रदेश राज्य के गंगा के मैदान का एक हिस्सा, क्षेत्रफल लगभग 60,500 वर्ग किमी, पूर्वोत्तर भारत. यह गंगा के ऊपरी मैदान के पश्चिम में गंगा और यमुना नदियों के बीच स्थित है. यह दोआब लगभग 800 किमी लंबा और 100 किमी चौड़ा है तथा उत्तर में उच्च हिमालय और दक्षिण में दक्कन के पठार के बीच एक चौड़ी द्रोणिका के रूप में अवस्थित है. इसका निर्माण हिमालय से दक्षिण दिशा की ओर बहने वाली नदियों के अवसाद के जमाव से हुआ है.

दोआब को तीन खंडों में बांटा जा सकता है, ऊपरी, मध्य और निम्न. ऊपरी दोआब उत्तर में हरिद्वार से दक्षिण में अलीगढ़ तक फैला हुआ है. ऊपरी दोआब की ढाल समान है और अनेक धाराएं इसे आड़ी–तिरछी काटती हुई गुज़रती हैं. प्राचीन बाढ़ के मैदानों में द्वितीयक अनुप्रस्थ ढलानों का विकास मध्य दोआब में हुआ. यह भू–आकृति निम्न दोआब तक आते–आते समतल हो जाती है, जहां सिंध, बेतवा और केन नदियां एक–दूसरे के समानांतर बहती हैं. भौगर्भिक दृष्टि से यह समूचा इलाक़ा भारत–गंगा जलोढ़ द्रोणिका का एक हिस्सा है. छोटे खंडों के रूप में पाए जाने वाले वनों में मुख्यतः बबूल और सागौन के वृक्ष हैं. क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान है, सघन कृषि और फ़सल क्रमावर्तन पर आधारित फ़सलों में अनाज, दलहन (फली), गन्ना, फल और सब्ज़ियां शामिल हैं. पशुपालन और डेयरी उद्योग भी महत्त्वपूर्ण हैं. इस क्षेत्र का बड़े पैमाने पर औद्योगिकीकरण हुआ है और यहां चीनी, छापेदार सूती वस्त्र, पंखे, गाड़ियों के रेडिएटर, बिजली के तार, वस्त्र उद्योग की मशीनें, वस्त्र, पीतल और तांबे के बर्तन तथा रेलवे उपकरणों का निर्माण होता है. क्षेत्रीय मुख्यालय सड़क तथा रेलमार्ग से जुड़े हैं और कानपुर व इलाहाबाद में हवाई अड्डे स्थित हैं. मेरठ, अलीगढ़, सहारनपुर और गाज़ियाबाद अन्य महत्त्वपूर्ण नगर हैं. यह दोआब भारत के सबसे उपजाऊ और सघन जनसंख्या वाले क्षेत्रों में से एक है.

गंडक नदी

नदी, नारायणी नदी भी कहलाती है, मध्य नेपाल और उत्तरी भारत में स्थित. यह काली और त्रिशूली नदियों के संगम से बनी है, जो नेपाल की उच्च हिमालय पर्वतश्रेणी से निकलती हैं. इनके संगम स्थल से भारतीय सीमा तक नदी को नारायणी के नाम से जाना जाता है. यह दक्षिण–पश्चिम दिशा में भारत की ओर बहती है और फिर उत्तर प्रदेश–बिहार राज्य सीमा के साथ व गंगा के मैदान में दक्षिण–पूर्व दिशा में बहती है. यह 765 किमी लंबे घुमावदार रास्ते से गुज़रकर पटना के सामने गंगा नदी में मिल जाती है. बूढ़ी गंडक नदी एक पुरानी जलधारा है, जो गंडक के पूर्व में इसके समानांतर बहती है. यह मुंगेर के पूर्वोत्तर में गंगा से जा मिलती है.

गच्छ

जैन धर्म के मूर्तिपूजक दिगंबर समुदाय में भिक्षुओं और उनके अनुयायियों का एक समूह, जो स्वयं को प्रमुख मठवासी गुरुओं का वंशज मानते हैं. हालांकि सातवीं–आठवीं

शताब्दी से लगभग 84 अलग–अलग गच्छों की उत्पत्ति हो चुकी है, लेकिन इनमें से बहुत कम का अस्तित्व आधुनिक क्रम के रूप में विद्यमान है, इनमें खरतार (मुख्यतः राजस्थान में स्थित), तप और अंचल गच्छ शामिल हैं.

हालांकि सिद्धांत और विश्वास के किसी महत्त्वपूर्ण पहलू में ये गच्छ एक–दूसरे से मतभिन्नता नहीं रखते, लेकिन आचारों, विशेषकर धार्मिक तिथिपत्र तथा अनुष्ठानों के मामले में उनकी अपनी अलग–अलग व्याख्याएं हैं और वे स्वयं को अलग–अलग वंशों का भी मानते हैं.

ग़ज़नवी वंश

(977–1186), खुरासान (पूर्वोत्तर ईरान), अफ़ग़ानिस्तान और उत्तर भारत में शासन करने वाला तुर्क वंश.

सुबुक्तगीन (शासनकाल, 977–997) इस वंश के संस्थापक थे. वह भूतपूर्व तुर्क गुलाम थे, जिन्हें सामानी (एक ईरानी मुस्लिम वंश) ग़ज़ना (आधुनिक ग़ज़नी, अफ़ग़ानिस्तान) का सूबेदार मानते थे. सामानी वंश के कमज़ोर होने पर सुबुक्तगीन ने अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली और भारतीय सीमा तक अपने क्षेत्र का विस्तार कर लिया. उनके पुत्र महमूद (शासनकाल, 998–1030) ने विस्तारवादी नीति जारी रखी और 1005 तक सामानी क्षेत्र बंट चुके थे. सामानी साम्राज्य के दो उत्तराधिकारी राज्यों के बीच ऑक्सस नदी सीमा का काम करती थी, जिसके पश्चिम में ग़ज़नवी और पूर्व में क्वारख़ानी शासन करते थे.

महमूद के शासनकाल के दौरान ग़ज़नवी शक्ति अपने चरम तक पहुंची. उनका साम्राज्य ऑक्सस (आधुनिक अमु दरिया) से सिंधु घाटी व हिंद महासागर तक फैला था व उन्होंने पश्चिम में ईरानी नगरों, राय और हमदां को बुयिदों से छीन लिया. महमूद एक धर्मनिष्ठ मुसलमान थे, जिन्होंने ग़ज़नवियों को उनके मूर्तिपूजक तुर्क मूल से इस्लामी वंश में तब्दील कर दिया और इस्लाम की सीमाओं का विस्तार किया. फ़ारसी कवि फ़िरदौसी (मृ.–1020) ने महमूद के दरबार में लगभग 1010 में अपने महाकाव्य *शाहनामा* (राजाओं की गाथा) को पूरा किया.

गजनी (भूतपूर्व गजना), अफगानिस्तान में मसूद III का विजय स्तंभ, 1099–1115 में निर्मित
फोटो : जोसेफिन पॉवल, रोम

महमूद के पुत्र मसूद I (शासनकाल, 1031–1041) अपनी सत्ता और ग़ज़नवी साम्राज्य की अखंडता को बनाए रखने में नाकामयाब रहे. खुरासान और ख्वारिज़्म में सेल्जुक़ तुर्कों ने ग़ज़नवी सत्ता को चुनौती दी. दंडक़ान के युद्ध (1040) में मसूद की क़रारी हार हुई और ईरान व मध्य एशिया के सभी ग़ज़नवी क्षेत्रों पर सेल्जुक़ों का अधिकार हो गया. ग़ज़नवियों के पास केवल पूर्वी अफ़ग़ानिस्तान और उत्तरी भारत का

क्षेत्र बचा, जिन पर 1186 तक वे शासन करते रहे. उसके बाद लाहौर पर गुरियों का क़ब्ज़ा हो गया.

ग़ज़नवी कला के बहुत कम अंश आज मौजूद हैं, लेकिन यह काल ईरान में सेल्जुक़ तुर्कों और भारत में इस्लामी कला पर अपने प्रभाव के लिए महत्त्वपूर्ण है.

ग़ज़नवियों ने अफ़ग़ानिस्तान में क़ल्ह–ए–बस्त के उत्तर में हेलमंद नदी के पठार पर, लश्करी गाह के नज़दीक लश्करी बाज़ार के महल में पहली बार 'चार ऐवान' शिल्प योजना शुरू की. ऐवान एक मेहराबदार सभागार होता है, जो तीन तरफ़ से बंद और चौथी तरफ़ आंगन में खुलता है. चार ऐवानों से घिरे आंगन की शैली सेल्जुक़ मस्जिद वास्तुकला का प्रमुख लक्षण रही और फ़ारस में तैमूरी व सफ़वी कालों तक बराबर चलती रही. मसूद III द्वारा निर्मित विजय मीनार (निर्माण 1099–1115) सेल्जुक़ *तुर्ब* या मक़बरे की मीनार की पूर्ववर्ती है. इसकी दो मूल मंज़िलों में से आज मौजूद एक मंज़िल पर अलंकृत अभिलेख हैं. लश्करी बाज़ार स्थित महल की खुदाई से ऐसे चित्रांकन मिले हैं, जिनकी शैली आरंभिक सेल्जुक़ कलाकृतियों से मिलती–जुलती है.

ग़ज़ल

इस्लामी साहित्य में गीति काव्य की एक शैली, आमतौर पर प्रेम के विषय पर लिखी गई छोटी और सुघड़ कविताएं, जिनमें छंद और तुक, दोनों होते हैं. ग़ज़ल में दो पंक्तियों का छंद (शेर) अर्थ की दृष्टि से संपूर्ण होता है और एक सुसंबद्ध काव्यात्मक अनुभव को व्यक्त करता है. मुख्यतः उर्दू में लिखी जाने वाली ग़ज़ल के प्रिय विषय दर्शन, आध्यात्मिक प्रेम तथा रूहानी अनुभव हैं. उर्दू शायरों ने ग़ज़ल की शुरुआत तो फ़ारसी के उस्तादों की नक़ल करते हुए की, लेकिन बाद में वे कहीं ज़्यादा प्रामाणिक भाषा बोलने लगे. कई शायरों ने भारत के स्थानीय मुहावरे और बिंब अपनाने शुरू कर दिए, हालांकि फ़ारसी का प्रभाव बरक़रार रहा. उदाहरण के लिए, कुछ थोड़े से अपवादों को छोड़ प्रेमी हमेशा पुरुष होता है और मोहब्बत का इज़हार औरतें लगभग कभी नहीं करतीं. माशूक़ के लिए पुल्लिंग के व्याकरण रूपों और उपमाओं के प्रयोग अद्भुत हैं, जबकि अन्यथा, कविता में विपरीत लिंगों के प्रेम का ही वर्णन किया जाता है. फ़ारसी के उस्तादों से ग्रहण की गई यह तथा अन्य विशेषताएं ग़ज़ल के शेरों में व्याख्या की व्यापक संभावनाएं पैदा कर देती हैं.

मक्का के क़ुरैश क़बीले के शायर उमर बिन अबि राबिया (मृ.–लगभग 712/719) की ग़ज़लें सबसे पुरानी मानी जाती हैं. उमर की कविताएं ज़्यादातर उनकी खुद की ज़िंदगी और तजुर्बों पर आधारित हैं और उनकी शैली यथार्थवादी, जीवंत और परिष्कृत है. वे आज के पाठकों में भी लोकप्रिय हैं. आगे चलकर जो चीज़ ग़ज़ल की सनातन विषय–वस्तु बनी, उसकी शुरुआत हेजाज़ के उज़रा क़बीले के एक सदस्य जमील (मृ.–701) ने की थी. जमील के गीतों में पूरी तरह से हताश, आदर्शवादी प्रेमी–प्रेमिका एक–दूसरे से मिलने के लिए तरसते हैं. इन बेहद लोकप्रिय कृतियों की नक़ल न केवल अरबी, बल्कि फ़ारसी, तुर्की और उर्दू शायरी में 18वीं सदी तक होती रही. उर्दू
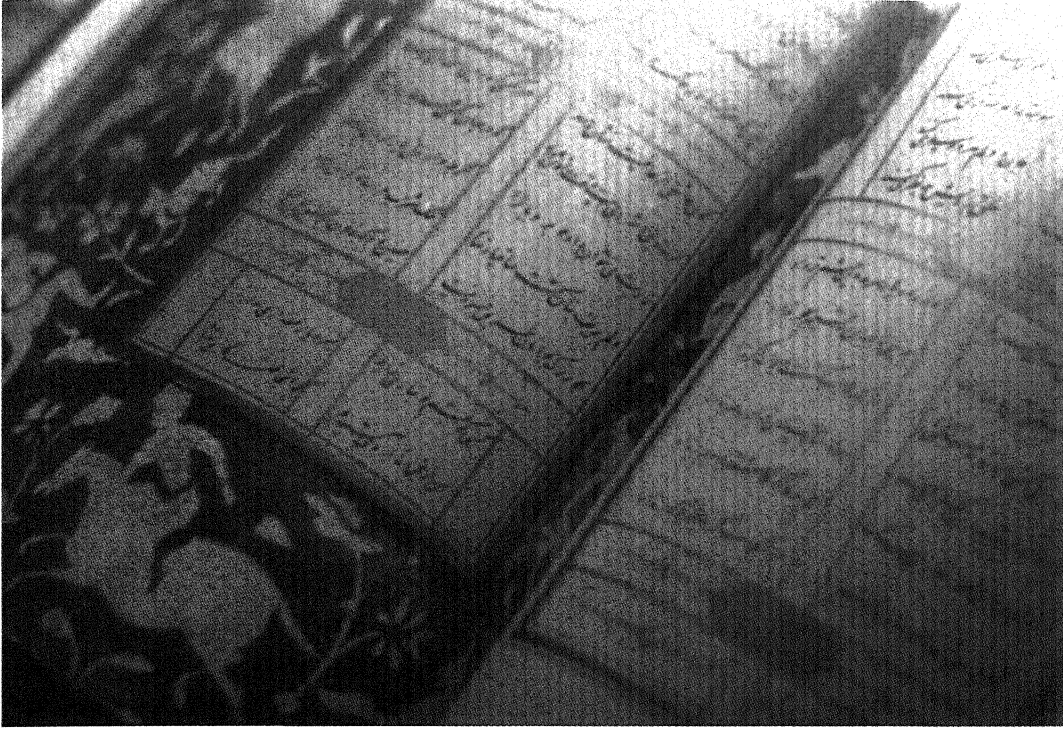
अमीर ख़ुसरो रचित ग़ज़ल की पांडुलिपि
सौजन्य : यूसुफ़ सईद

के महानतम ग़ज़ल लेखकों में से दो, 18वीं सदी के मीर तक़ी मीर तथा 19वीं सदी में मिर्ज़ा असदुल्ला ख़ां ग़ालिब हुए. ये दोनों शायर कई मायनों में एक–दूसरे से बिल्कुल भिन्न थे. मीर या तो बहुत लंबे या बहुत छोटे छंदों का प्रयोग करते थे, सीधी–सादी फ़ारसी रहित ज़ुबान का इस्तेमाल करते थे और अपनी रचनाओं को सिर्फ़ दिल के मामलों तक सीमित रखा. ग़ालिब ने मध्यम लंबाई के छंदों में शायरी की, उनकी भाषा पर फ़ारसी का गहरा प्रभाव था और उसमें उन्होंने व्यापक विचारों और विषयों को समाहित किया. जहां मीर ने चाहत और ग़मगीनी की बात की, वहीं ग़ालिब ने हर चीज़ को शक की निगाह से देखा और किसी को भी सवालिया निशान लगाए बिना नहीं छोड़ा, यहां तक कि अपने जज़्बातों को भी नहीं छोड़ा. इन दोनों शायरों ने आने वाली पीढ़ियों के विचारों और भावनाओं पर अपनी अमिट छाप छोड़ी. ग़ालिब ने उर्दू के अलावा फ़ारसी में भी शायरी की तथा अपने उन ख़तों को भी पुस्तकाकार छपवाया, जिन्होंने उर्दू में आधुनिक गद्य का आग़ाज़ किया. उन्होंने कई ढंग से मध्ययुगीन और आधुनिक सोच के बीच की खाई को पाटा.

दिल्ली और लखनऊ लंबे समय तक उर्दू साहित्य के विकास के दो प्रमुख केंद्र बने रहे. जहां दिल्ली ने मीर, सौदा, इंशा तथा मुशफ़ी जैसी अज़ीम हस्तियां पैदा कीं, वहीं लखनऊ के आतिश, वाजिद अली शाह, नज़ीर अकबराबादी तथा अकबर इलाहाबादी

मशहूर हुए, जिन्होंने ग़ज़ल विधा के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया. दक्षिण में हैदराबाद के दरबार के प्रश्रय ने दाग़ को ग़ज़ल के विकास के लिए प्रोत्साहित किया, वहां ग़ज़ल की शुरुआत वहां के शायर नवाब कुली कुतुब शाह ने की थी. 20वीं सदी के आगमन के साथ उर्दू शायरी में एक नया आंदोलन उभरा. पलायनवादी और रूमानी दौर से निकलकर ग़ज़ल में इक़बाल और हसरत मोहानी के शेरों में आधुनिक तथा क़ौमी रुझान प्रतिबिंबित होने लगा. भारत के बुद्धिजीवियों में समाजवाद की लहर के साथ ही साथ तरक़्क़ीपसंद आंदोलन की जो शुरुआत हुई, उसने ग़ज़ल को एक बिल्कुल अलग रंग दिया. कराची में फ़ैज़ तथा मुंबई में अली सरदार जाफ़री उर्दू शायरी में परंपरा और आधुनिकता का मिश्रण लेकर आए. ग़ज़ल का व्यापक रूप से इस्तेमाल हिंदी सिनेमा में भी हुआ है और मजरूह, शकील, साहिर और जावेद अख़्तर जैसे शायर आज भी सारे देश में बेहद लोकप्रिय हैं.

ग़ज़ल को शायरी की एक लोकप्रिय विधा बनाने में इसके सार्वजनिक प्रस्तुतिकरण, मुशायरों का बहुत बड़ा योगदान है. मुशायरों के अलावा, ग़ज़ल गायकों ने शाही दरबारों तथा सूफ़ी सम्मेलनों में ख़ासी मौजूदगी दर्ज की, जहां ग़ज़लों को विभिन्न साज़ों के साथ पेश किया जाता था. मुग़लों द्वारा दिए गए संरक्षण में ग़ज़ल गायकी की वह विशिष्ट शैली विकसित हुई, जिस पर शास्त्रीय संगीत की ख़याल, ठुमरी और तराना जैसी अन्य शास्त्रीय विधाओं का भी काफ़ी असर रहा.

20वीं सदी के मशहूर ग़ज़ल गायकों में बेगम अख़्तर, मलिका पुखराज़, तलत महमूद, गुलाम अली, मेहदी हसन, जगजीत सिंह, चित्रा सिंह, तलत अज़ीज़, पंकज उधास आदि की गणना होती है.

ग़ज़ाली, अल

पूरा नाम अबू हामिद मुहम्मद बिन मुहम्मद अततूसी अल–ग़ज़ाली, (ज.–1058, तूस, ईरान; मृ.–18 दिसं. 1111, तूस), मुस्लिम धर्मशास्त्री और रहस्यवादी, जिनकी महान कृति *इह्या उलूम अद–दीन* (धार्मिक विज्ञान का पुनरुत्थान) ने सूफ़ीवाद (इस्लामी रहस्यवाद) को रूढ़िवादी इस्लाम का स्वीकार्य अंग बना दिया.

अल ग़ज़ाली का जन्म तूस (पूर्वी ईरान में मशद के पास) हुआ था. उनकी शिक्षा–दीक्षा पहले वहीं हुई और बाद में जोरज़ान तथा निशापुर (नैशाबर) में हुई, जहां अल जुवैनी उनके शिक्षक थे, जिन्हें इमाम अल–हरमेन (दो पवित्र नगरों मक्का और मदीना के इमाम) का ख़िताब मिला था. 1085 में उनकी मृत्यु के बाद अल ग़ज़ाली को सेल्जुक़ सुल्तानों के शक्तिशाली वज़ीर निज़ाम उलमुल्क के दरबार में शामिल होने का निमंत्रण मिला. अल ग़ज़ाली की विद्वत्ता से वज़ीर इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने 1091 में अल ग़ज़ाली को बग़दाद में निज़ामिया मदरसे का प्रमुख उस्ताद नियुक्त कर दिया. 300 से अधिक छात्रों को व्याख्यान देने के साथ–साथ अल ग़ज़ाली अल फ़राबी तथा अविसेना (बिन सिना) के नवअफलातूनवादी दर्शनों में महारत हासिल करते रहे और उनकी समीक्षा करते रहे थे. उन्हें कुछ समय तक आध्यात्मिक कठिनाई से गुज़रना

पड़ा, जिसने उन्हें कुछ समय के लिए व्याख्यान देने के लिए शारीरिक रूप से अक्षम बना दिया.

उन्होंने अपना कार्य नवंबर 1095 में छोड़ दिया और मक्का की तीर्थयात्रा के बहाने बग़दाद से प्रस्थान कर गए. अपने परिवार के लिए इंतजाम करने के उद्देश्य से उन्होंने अपनी संपत्ति बेच दी और निर्धन सूफ़ी या रहस्यवादी का जीवन अपना लिया. दमिश्क और येरूशलम में कुछ समय तक रहने के बाद नवंबर 1096 में मक्का की यात्रा के साथ ही अल ग़ज़ाली तूस में बस गए, जहां वास्तविक मठवासी सामुदायिक जीवन में सूफ़ी शिष्य उनके साथ शामिल हो गए. 1106 में उन्हें निशापुर के निज़ामिया मदरसे में शिक्षण कार्य के लिए लौटने के लिए राजी कर लिया गया. इस निर्णय के पीछे एक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि प्रत्येक शताब्दी के आरंभ में इस्लाम के जीवन का पुनर्नवीकरण करने वाले की संभावना होती है और उनके मित्रों ने तर्क दिया कि सितंबर 1106 से शुरू होने वाली शताब्दी के पुनर्नवीकारक वही हैं. वह 1110 तक निशापुर में व्याख्यान देते रहे, जिसके बाद वह तूस लौट गए, जहां अगले साल उनकी मृत्यु हो गई.

अल ग़ज़ाली को 400 से अधिक कृतियों का श्रेय दिया जाता है, लेकिनं संभवतः उन्होंने इतनी रचनाएं नहीं लिखीं. यही कृतियां भिन्न शीर्षकों से अलग–अलग पांडुलिपियों में पाई जाती हैं, लेकिन कई पांडुलिपियों को अब तक सावधानी से परखा नहीं गया है. कई कृतियों का उन्हें झूठा श्रेय भी दिया गया है और कई अन्य की प्रामाणिकता संदिग्ध है. अब कम से कम 50 असली और मौलिक रचनाएं अस्तित्व में हैं. अल ग़ज़ाली की श्रेष्ठतम कृति *इह्या उलूम अद–दीन* है. 40 किताबों में उन्होंने इस्लाम के सिद्धांतों और आचारों का वर्णन किया है और दिखाया है कि किस प्रकार ये भक्तिपूर्ण जीवन का आधार बन सकते हैं, जो सूफ़ीवाद या रहस्यवाद के ऊंचे स्तरों की ओर ले जाते हैं. *मिश्कत अल–अनवार,* यानी 'प्रकाश का आला' में आध्यात्मिक अनुभूतियों के अन्य प्रकार के संज्ञानों से संबंधों की चर्चा की गई है. आत्मकथात्मक कृति *अल–मुंनक़िद मिन अद्–दलाल* (ठोस मोचक) में अल ग़ज़ाली ने व्यावसायिक जीवन छोड़ने और रहस्यवादी मठवासी बनने के पक्ष में तर्क प्रस्तुत किए हैं.

उनका दार्शनिक अध्ययन तर्कशास्त्रों से शुरू हुआ और *तहाफ़ुत* (दार्शनिकों की असंगति) पर ख़त्म हुआ, जिसमें उन्होंने इस्लामी शिक्षाओं के विरुद्ध कुछ आनुमानिक विचार प्रकट करने वाले अविसेना जैसे दार्शनिकों के ख़िलाफ़ इस्लाम के पक्ष में तर्क प्रस्तुत किए. इस प्रमुख शास्त्र की तैयारी में उन्होंने *मक़सद अल–फ़लसफ़ा* (दार्शनिकों का लक्ष्य) का वस्तुनिष्ठ विवरण प्रकाशित किया. यह पुस्तक यूरोप में प्रभावकारी रही और अरबी से लैटिन में अनूदित होने वाली पहली पुस्तकों (12वीं शताब्दी) में से एक बनी.

उनकी अधिकांश गतिविधियां न्यायशास्त्र और धर्मशास्त्र के क्षेत्र में थी. जीवन के अंतिम वर्षों में उन्होंने सामान्य क़ानूनी सिद्धांतों पर आधारित कृति *अल मुस्तफ़ा* पूरी की. मानक धर्मशास्त्रीय सिद्धांतों पर उनके द्वारा लिखित सारांश (स्पेनी भाषा में अनूदित) *अल–इक़्तिसाद फी अल–लतिक़ाद* (आस्था में सीधा अर्थ) की रचना संभवतः उनके

सूफ़ी बनने से पहले हुई थी, लेकिन प्रामाणिक लेखन में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो यह दर्शाता हो कि वह इन सिद्धांतों को ख़ारिज करते थे, हालांकि वह तार्किक, धार्मिक तथ्यों की प्रणालीबद्ध प्रस्तुति के धर्मशास्त्र को सूफ़ीवादी अनुभव के मुक़ाबले कमतर मानते थे. इसी विचार से उन्होंने इस्माइलियों के उग्र मत के ख़िलाफ़ खंडनात्मक कृति की रचना की और उन्होंने (अगर यह प्रामाणिक है) ईसाई धर्म की आलोचना करते हुए भी पुस्तक लिखी. उन्होंने *काउंसेल फ़ॉर किंग्स* (*नसीहत अल–मुलूक*) नामक पुस्तक भी लिखी.

अल ग़ज़ाली द्वारा अपने शानदार व्यावसायिक जीवन के परित्याग और मठवासी जीवन अपनाने के कारण उनके समकालीनों में कई अनुयायी और आलोचक हुए. पश्चिमी विद्वान उनके आध्यात्मिक विकास के प्रति इतने आकर्षित हुए कि उन्होंने उनके जितने ही महत्त्वपूर्ण मुस्लिम चिंतकों के मुक़ाबले उन पर कहीं अधिक ध्यान दिया.

गणेश

फ़र्रुख़ाबाद में मिली 10वीं सदी की गणेश की नृत्य मुद्रा वाली मूर्ति, लखनऊ राजकीय संग्रहालय, उत्तर प्रदेश
सौजन्य : प्रमोद चंद्रा

गणपति भी कहलाते हैं, हाथी के सिर वाले हिंदू देवता, शिव और पार्वती के पुत्र गणेश को विघ्नहारी माना जाता है और पूजा या प्रत्येक नए कार्य के आरंभ में सबसे पहले इनका आह्वान किया जाता है. इनकी प्रतिमा अक्सर मंदिरों और घरों के प्रवेश स्थल पर दिखाई देती है. गणेश लेखन और अध्ययन के संरक्षक हैं तथा माना जाता है कि व्यास मुनि से विवरण सुनकर इन्होंने ही *महाभारत* की कथा लिखी थी. इन्हें गणों (शिव के अनुचर) का प्रमुख भी कहा जाता है. गणेश को सामान्यतः लाल रंग का दिखाया जाता है; यह लंबोदर हैं, एक गजदंत टूटा हुआ है और इनकी चार भुजाएं हैं, जिनमें पाश, अंकुश, चावल या मिष्ठान्न के पात्र होते हैं और वरदान या रक्षा की मुद्रा होती है. इनका वाहन चूहा है.

इनके जन्म का एक विवरण यह है कि पार्वती ने अपने शरीर के मैल से गणेश की रचना की, ताकि उनके स्नान के समय वह द्वार पर पहरेदारी करें. जब शिव वहां पहुंचे, तो उन्हें यह पता नहीं था कि गणेश उन्हीं के पुत्र हैं. पत्नी के पास जाने से रोके जाने पर शिव क्रुद्ध हो गए. उन्होंने अपने गणों को गणेश से युद्ध के लिए भेजा तथा युद्ध में गणेश का सिर कट गया. पार्वती के दुःख को कम करने के लिए शिव ने वचन दिया कि वह सबसे पहले दिखाई देने वाले जीव का सिर काटकर गणेश के सिर से जोड़ देंगे. सबसे पहले दिखाई देने वाला जीव हाथी था. आधुनिक हिंदू धर्म में गणेश एक पूरक देवता हैं. 20वीं शताब्दी के आरंभ में स्वतंत्रता सेनानी बाल गंगाधर तिलक ने गणेशोत्सव को पुनर्जीवित किया; उनके जन्म का उत्सव (गणेश चतुर्थी) भाद्रपद (अग.–सित.) के शुक्ल पक्ष के चौथे दिन (चतुर्थी) मनाया जाता है और महाराष्ट्र राज्य में इस अवसर पर विशेष उत्साह परिलक्षित होता है.

गणेशन, शिवाजी

शिवाजी गणेशन
सौजन्य : *द हिंदू*

वास्तविक नाम विल्लुपुरम चिनिया पिल्लै गणेशन, (ज.–1 अक्तू. 1927, तमिलनाडु, भारत; मृ.–जुला. 2001, चेन्नई, तमिलनाडु, भारत), तमिल सिनेमा के प्रमुख सितारों में से एक, जिन्होंने 300 से अधिक फ़िल्मों में अभिनय किया है.

गणेशन का आरंभिक लालन–पालन उनकी मां ने किया, क्योंकि स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल होने के कारण उनके पिता जेल आते–जाते रहते थे. स्कूल की पढ़ाई अधूरी छोड़कर गणेशन एक नाटक कंपनी में शामिल हो गए और मंच पर पुरुष और महिला, दोनों की भूमिकाएं करने लगे. अद्भुत बहुआयामी अभिनेता गणेशन ने सी.एन. अन्नादुरै के नाटक *शिवाजी कंदा इंदु राज्यम* में मराठा सरदार शिवाजी की भूमिका निभाते हुए अपनी अमिट छाप छोड़ी. इस ऐतिहासिक चरित्र ने उन्हें उनका फ़िल्मी नाम प्रदान किया. जब अन्नादुरै ने 1949 में द्रविड मुन्नेत्र कषगम (डी.एम.के.) राजनीतिक पार्टी की स्थापना की, तो गणेशन भी पार्टी में शामिल हो गए और डी.एम. की सदाबहार फ़िल्म *पराशक्ति* (1952) से उन्होंने अपने फ़िल्मी जीवन की शुरुआत की. इस फ़िल्म की पटकथा तमिलनाडु के भावी मुख्यमंत्री एम. करुणानिधि ने लिखी थी. गणेशन ने इस फ़िल्म में ऐसी भूमिका निभाई, जिसने उन्हें पार्टी के प्रभावशाली और लोकप्रिय व्यक्तित्व के रूप में स्थापित कर दिया. लेकिन 1950 के दशक के मध्य तक वह डी.एम.के. से अलग हो गए और कांग्रेस पार्टी और जनता दल सरीखे अनेक परस्पर विरोधी राजनीतिक गठबंधनों से गुज़रे. उन्होंने डी.एम.के. की नास्तिक नीतियों से नाता तोड़ लिया और कई पौराणिक फ़िल्मों (*संपूर्ण रामायण, थिरुविलैयाडल* आदि) में अभिनय किया, जिससे अभिनेता के रूप में वह विख्यात हो गए. लेकिन डी.एम.के. से नाता तोड़ने से पहले ही गणेशन ने *थिरुंबी पार* में एक नकारात्मक भूमिका निभाई थी. कुछ वर्षों के बाद उन्होंने *रंगून राधा* में इस प्रयोग को सफलतापूर्वक दुहराया. एम.जी. रामचंद्रन के साथ वह तमिल फ़िल्मी उद्योग पर छाए रहे और कई बार उन्होंने लोकप्रियता तथा बॉक्स ऑफ़िस पर सफलता में रामचंद्रन को भी पीछे छोड़ दिया. धर्मार्थ कार्यों और भारतीय सिनेमा में महती योगदान के लिए उन्हें भारत के राष्ट्रपति द्वारा 1966 में पद्मश्री, 1984 में पद्मभूषण तथा 1996–97 के दादा साहेब फाल्के पुरस्कार से सम्मानित किया गया. 1995 में उन्हें फ़्रांस सरकार के संस्कृति मंत्रालय द्वारा शेवेलियर की उपाधि 'ऑर्डर ऑफ़ द आर्ट्स ऐंड लिटरेचर' प्रदान की गई. यह सम्मान कला और साहित्य के क्षेत्र में सबसे मौलिक और प्रतिभाशाली व्यक्तियों को दिया जाता है.

ग़दर

(उर्दू शब्द, अर्थात क्रांति या बग़ावत), 20वीं सदी के प्रारंभ में भारतीयों, ख़ासतौर से उत्तरी अमेरिका में रहने वाले सिक्खों द्वारा अपने देश, भारत, में ब्रिटिश शासन के ख़ात्मे के लिए छेड़ा गया आंदोलन. इस आंदोलन की शुरुआत में अमेरिका के

कैलिफ़ोर्निया में भारत से प्रवासी लोगों के संगठन, हिंदुस्तानी वर्कर्स ऑफ़ पैसिफ़िक कोस्ट के कामगारों द्वारा की गई थी. प्रथम विश्व युद्ध की शुरुआत के साथ ही बहुत से इंक़लाबी भारत लौटे और उन्होंने 1925 में कई महीनों तक मध्य पंजाब में अतिवादी गतिविधियां चलाईं. इस बग़ावत को अंग्रेज़ों ने जल्द ही कुचल दिया. युद्ध के बाद अमेरिका में यह पार्टी साम्यवादियों और साम्यवाद विरोधियों के बीच विभाजित हो गई. भारत की आज़ादी के बाद 1948 में इस दल को भंग कर दिया गया.
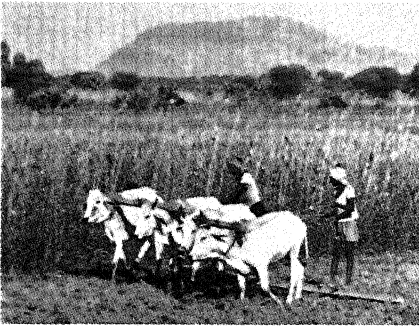
गया, बिहार में हल जोतते किसान
सौजन्य : मिल्ट और जोन मेन– कैमरामैन इंटरनेशनल

गया

शहर, मगध मंडल व मगध विश्वविद्यालय का मुख्यालय, पश्चिम–मध्य बिहार राज्य, पूर्वोत्तर भारत. यह शहर गंगा की सहायक फल्गु नदी के किनारे स्थित है. सड़क, रेल व वायु मार्ग से जुड़ा गया एक बड़ा वाणिज्यिक केंद्र है. यह शहर गंगा के मैदान और छोटा नागपुर के पठार के मिलनस्थल के समीप स्थित है और ग्रीष्म ऋतु में यहां भीषण गर्मी पड़ती है.

गया एक प्रसिद्ध हिंदू धर्मस्थल है, जहां प्रतिवर्ष तीन लाख तीर्थयात्री आते हैं. यहां पर प्रेतशिला पहाड़ी (उत्तर) और बोधगया (दक्षिण) के बीच 45 पवित्र स्थल हैं, लेकिन इनमें से अधिकांश गया में ही है. यहां के प्रमुख मंदिर विष्णुपाद मंदिर का निर्माण मराठा राजकुमारी अहिल्या बाई ने 1787 में करवाया था. अन्य मंदिर पत्थरों के हैं और मंदिरों से पटे रामशिला व ब्रह्मयोनि पहाड़ियों पर स्थित हैं. ब्रह्मयोनि की पहचान गयाशीर्ष पहाड़ी के रूप में की गई, जिस पर बुद्ध ने उपदेश दिया था. गया के 10 किमी दक्षिण में प्रसिद्ध बोधगया गांव है, जहां बुद्ध को परम ज्ञान की प्राप्ति हुई थी. गया में कई पुस्तकालय और मगध विश्वविद्यालय से संबद्ध अनेक महाविद्यालय हैं. यह 1865 में नगरपालिका बना.

सोन, पुनपुन, मोरहार और फल्गु नदियों तथा पटना नहर प्रणाली से सिंचित इसके आसपास के क्षेत्र में अनाज, तिलहन और गन्ने उगाए जाते हैं. इलाक़े में भवन निर्माण में काम आने वाले पत्थर और अभ्रक की खुदाई की जाती है. जनसंख्या (2001) शहर 3,83,197; ज़िला कुल 34,64,983.

गरबा

गुजरात, भारत में उत्सवकालीन लोकप्रिय नृत्य. यह मूल रूप से उर्वरता नृत्य था व बीजों की बुआई से संबद्ध था. आज यह एक साधारण आनंददायक नृत्य है, जिसमें घेरा बनाकर, इधर–उधर झुकते, तालियां बजाते घूमते हैं.

वर्षा ऋतु के बाद दशहरे के त्योहार (सितं./अक्तू.) में लड़कियां कलश लेकर घर–घर जाती हैं और दरवाज़े पर लटके चढ़ावे वाले अलंकृत कलश, गरबी के चारों

ओर नाचती हैं. बाद में वे प्रचुरता और समृद्धि की देवी 'माताजी' की मूर्तियों का चक्कर लगाते हुए नाचती हैं. गरबा होली व वसंतोत्सव पर भी किया जाता है, जब कई गतिविधियां कृष्ण किंवदंतियों पर केंद्रित रहती हैं. गरबा जैसे ही लोकनृत्य भारत के अन्य भागों, विशेषकर तमिलनाडु एवं राजस्थान में किए जाते हैं.

गुजरात का गरबा नृत्य

गरुड़

हिंदू पौराणिक मान्यता के अनुसार, एक विशाल पक्षी और भगवान विष्णु का वाहन. *ऋग्वेद* में सूर्य की तुलना आसमान में एक छोर से दूसरी छोर तक उड़ने वाले पक्षी से की गई है. पौराणिक विवरणों में गरुड़ के जन्म की कथा के अनुसार, उन्हें सूर्य देवता के सारथी अरुण का छोटा भाई बताया गया है. गरुड़ कश्यप और विनता के पुत्र हैं. कश्यप की दूसरी पत्नी कद्रू और उनके पुत्र नागों ने विनता को दासी बनाया था और इसे ही गरुड़ तथा सांपों के बीच चली आ रही शत्रुता का कारण बताया जाता है. नाग इस शर्त पर गरुड़ की माता को मुक्त करने के लिए तैयार हुए कि वह उनके लिए अमरत्व का पेय, अमृत हासिल करेंगे. गरुड़ ने कुछ कठिनाइयों का सामना करते हुए इस कार्य को पूरा किया और स्वर्ग से लौटते हुए उनकी भेंट विष्णु से हुई और उन्होंने उनका वाहन और प्रतीक चिह्न बनना स्वीकार कर लिया.

एक कथा के अनुसार, गरुड़ का रंग मरकत मणि के समान है और चील के सामान चोंच, गोल आंखें, सुनहरे पंख तथा चार भुजाएं हैं. उनकी छाती, घुटने और पैर चील के समान हैं. उन्हें मानवीकृत रूप में पंख और बाज़ की विशिष्टताओं के साथ भी दर्शाया जाता है.

उनके दो हाथ 'अंजलि मुद्रा' में रहते हैं और अन्य दो हाथों में एक छत्र तथा अमृतकलश रहता है. कभी–कभार विष्णु को उनके कंधों पर आरूढ़ दिखाया जाता है. वैष्णवों द्वारा गरुड़ की प्रतिमाओं का उपयोग उनके भक्ति प्रतीक के रूप में किया जाता है और इसी रूप में उन्हें गुप्त काल के सिक्कों पर अंकित किया गया था.

कुछ कथाओं के अनुसार, *रामायण* में वर्णित पक्षीराज गिद्ध, जटायु, गरुड़ के अवतार थे.

हिंदू धर्म के प्रसार के साथ ही गरुड़ की अवधारणा नेपाल तथा दक्षिण–पूर्व एशिया तक पहुंची, जहां अक्सर स्मारकों पर उनका चित्रण किया गया है. कई दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों में उन्हें राजघरानों से भी जोड़ा जाता है और इंडोनेशिया में यह पक्षी राजकीय प्रतीक है. इंडोनेशिया की सरकारी विमान सेवा का यही नाम है.

दक्षिण भारत की 18वीं सदी की गरुड पर सवार विष्णु और लक्ष्मी की कांस्य प्रतिमा, गुइमेत संग्रहालय, पेरिस
फोटो : क्लिक म्यूसिस नेशनॉक्स, पेरिस

गहंबर

पारसी धर्म के छह त्योहार, जो वर्ष भर में अनियत अंतराल पर मनाए जाते हैं, जिनमें ऋतुओं तथा संभवतः संसार की सृष्टि के छह चरणों (स्वर्ग, जल, पृथ्वी, वानस्पतिक विश्व, जंतु विश्व और मनुष्य) का समारोह होता है. प्रत्येक गहंबर पांच दिनों तक चलता है. ये त्योहार निम्नलिखित हैं : मैध्याऔईजारेमाया (मध्य वसंत), जो नववर्ष के 41 दिनों के बाद अर्तवशिष्ठ के महीने में होता है; इसके 60 दिनों के बाद तीर के महीने में मैध्योइशेमा (मध्य ग्रीष्म); इसके 75 दिनों के बाद शतवैरो के महीने में फैतिसहाय्या (फ़सल काटने का समय); इसके 30 दिनों के बाद मित्रा के महीने में अयाथ्रिमा (संभवतः समृद्धि का समय); इसके 80 दिनों के बाद दीन के महीने में मैध्यायिराया (मध्य शरद); और इसके 75 दिनों के बाद वर्ष के अंतिम पांच अंतर्विष्ट या गाथा दिनों में हमासपाथमेदाया (वासंतिक विषुव).

पारसी लोग गहंबर त्योहारों को दो चरणों में मनाते हैं. पहले चार पर्व–चक्र अनुष्ठानों के होते हैं : अफ़्रिंजान, जो प्रेम या प्रशंसा की प्रार्थना है; यजताओं या फ़्रावाशियों के सम्मान में की गई प्रार्थना बाज; प्रमुख पारसी अनुष्ठान यस्ना, जिसमें पवित्र मदिरा हाओमा अर्पित की जाती है और पावी, जिसमें पुरोहित तथा आस्थावान लोग संयुक्त रूप से देवताओं और आत्माओं के सम्मान में प्रार्थना करते हैं. इसके बाद विधिवत भोज होता है, जिसमें पहले के पर्व–चक्रों में अर्पित वस्तुओं को आनुष्ठानिक पवित्रता के साथ खाया जाता है.

गहड़वाल वंश

उत्तर भारत में मुस्लिम विजय से पहले 12वीं–13वीं शताब्दी के कई शासक वंशों में से एक. इसका इतिहास 11वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से 13वीं शताब्दी के मध्य तक का है और इसमें आरंभिक मध्यकालीन उत्तर भारतीय राजनीति के सभी लक्षणों– पारिवारिक संघर्ष और गठबंधन, सामंतवादी राज्य व्यवस्था तथा ब्राह्मणवादी सामाजिक विचारधारा पर निर्भरता के साथ–साथ बाहरी आक्रमणों के ख़तरे की आशंका– का समावेश है.

संभावना है कि यह परिवार मूलतः उत्तर प्रदेश में वाराणसी (भूतपूर्व बनारस)–अयोध्या क्षेत्र का था. बाद में यह कन्नौज से जुड़ा, जो भारत का प्रमुख राजनीतिक केंद्र बना. गहड़वाल के अधिकांश अभिलेख उत्तर प्रदेश में मिले हैं, जो वाराणसी से जारी हुए थे. इस वंश की शक्ति को पहले तीन शासकों, यशोविग्रह, महिचंद्र और चंद्रदेव (लगभग 1089–1103) ने संगठित किया. चंद्रदेव के समय तक गहड़वाल का नियंत्रण क्षेत्र वाराणसी, अयोध्या, कन्नौज और इंद्रस्थानिक (आधुनिक दिल्ली) तक फैल चुका था. उन्होंने गठबंधनों द्वारा और नज़राना अदा करके मुसलमानों के आक्रमण के बढ़ते ख़तरे को दूर करने का प्रयास किया. चंद्रदेव के पुत्र, कन्नौज के राजा मदनपाल (शासनकाल, लगभग 1104–13) के काल तक यह जारी रहा, जिन्हें गज़नवी सुल्तान

मसूद III के समय बंदी बनाया गया और बाद में रिहा कर दिया गया. गोविंदचंद्र (शासनकाल, लगभग 1114–54) के समय में मुसलमानों के आक्रमणों को अस्थाई तौर पर नाकाम कर दिया गया. गोविंदचंद्र ने पूर्व में बिहार के पटना और मुंगेर ज़िलों तक अपने शासन का विस्तार किया. 1168–69 में दक्षिण–पश्चिमी बिहार पर उनके पुत्र विजयचंद्र (शासनकाल, लगभग 1155–69) के एक सामंत का शासन था. अभिलेखों से पता चलता है कि गोविंदचंद्र का कई भारतीय तथा विदेशी शासकों के साथ संबंध था. पाल, सेन और कलचुरी वंश के समकालीन शासकों के साथ संघर्षों के भी संकेत मिलते हैं.

अंततः 12वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मुइज़्ज़ुद्दीन मुहम्मद ग़ोरी के आक्रमणों के समय गहड़वाल राज्य की आंतरिक संरचना की कमज़ोरी उजागर हुई. कुछ सूत्रों के अनुसार, उत्तर प्रदेश और बिहार के कुछ हिस्सों पर क़ब्ज़ा करने वाले जयचंद्र (शासनकाल, लगभग 1170–94) की राजस्थान के चहमानों के साथ गहरी शत्रुता थी. चंदावर (इटावा ज़िला, उत्तर प्रदेश) में मुहम्मद ग़ोरी के साथ एक युद्ध में हारने के बाद वह मारे गए. यद्यपि 1197 तक हरीशचंद्र के शासनकाल (लगभग 1194–?) तक कन्नौज, जौनपुर और मिर्ज़ापुर ज़िलों (उत्तर प्रदेश) में गहड़वाल वंश का शासन बना रहा, लेकिन 13वीं शताब्दी के आरंभ में इस क्षेत्र में मुस्लिम शक्ति का विस्तार हुआ. 13वीं शताब्दी के मध्य में मध्य भारत स्थित नगोद में इस वंश का अंत हुआ, जहां अंतिम ज्ञात गहड़वाल अदक्कमल्ल ने शरण ली थी.

गांधार

ऐतिहासिक क्षेत्र, जो अब पश्चिमोत्तर पाकिस्तान में पेशावर की घाटी है और काबुल और स्वात नदियों की निचली घाटियों तक फैला हुआ है. प्राचीन काल में गांधार भारत, मध्य एशिया तथा मध्य–पूर्व के बीच व्यापारिक चौराहा और सांस्कृतिक मिलन स्थल था. यह इलाक़ा पांचवीं और छठी सदी ई.पू. में अकेमिनियाई के फ़ारस के अधीन था और इसे चौथी सदी ई.पू. में सिंकदर महान ने जीता था. इसके बाद इस पर भारत के मौर्य वंश का शासन रहा और उसी शासनकाल में यह अफ़ग़ानिस्तान और मध्य एशिया में बौद्ध धर्म के प्रचार का प्रमुख केंद्र बना. इसके उपरांत गांधार पर क्रमशः भारतीय यूनानियों, शकों, पार्थियाई तथा कुषाण वंशों का शासन रहा. 11वीं सदी में महमूद ग़ज़नवी द्वारा जीते जाने के बाद इस क्षेत्र पर विभिन्न मुस्लिम वंशों का राज रहा. गांधार की राजधानी मशहूर शहर तक्षशिला थी, जो पेशावर के साथ इस क्षेत्र का एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक और शैक्षणिक केंद्र था. पहली सदी ई.पू. से लेकर छठी–सातवीं शताब्दी तक गांधार उस विशिष्ट कला शैली का केंद्र रहा, जो भारतीय बौद्ध तथा यूनानी–रोमन प्रभावों का मिश्रण थी.

गांधार कला

दृश्य कला की एक शैली, जिसका विकास पहली शताब्दी ई.पू. से सातवीं सदी के बीच आज के पश्चिमोत्तर पाकिस्तान और पूर्वी अफ़ग़ानिस्तान में हुआ. यह शैली यूनानी–रोम

उपदेश देने की मुद्रा में बुद्ध की मूर्ति, गांधार से प्राप्त और लगभग दूसरी सदी में निर्मित, मुंबई, पश्चिम भारत के प्रिंस ऑफ़ वेल्स संग्रहालय में संगृहीत
फ़ोटो : पी. चंद्रा

(ग्रीको–रोमन) मूल की है और कुषाण वंश के शासनकाल में फली–फूली और एक अन्य महत्त्वपूर्ण शैली, मथुरा की कुषाण शैली के समकालीन थी.

गांधार क्षेत्र बहुत पहले से ही सांस्कृतिक प्रभावों का संगम स्थल रहा. सम्राट अशोक के शासनकाल (तीसरी सदी ई.पू.) में यह क्षेत्र गहन बौद्ध धर्म प्रचारक गतिविधियों का केंद्र रहा और पहली शताब्दी में कुषाण वंश के शासकों ने, तब उनके साम्राज्य में गांधार भी आता था, रोम से संपर्क बनाए रखा. गांधार शैली में माला पहने देवदूतों, ट्राइटॉन (यूनानी सूर्यदेव) और किन्नर की अंगूर की बेल जैसी चर्म चित्रावली सहित शास्त्रीय रोमन शैली के प्रमुख तत्त्व और तकनीक को समाहित किया गया. हालांकि मूल प्रतिकृतियां भारतीय ही रहीं.

बुद्ध की प्रतिकृतियों के विकास क्रम पर विद्वानों के बीच असहमति का एक उल्लेखनीय विषय गांधार की भूमिका रहा है. गांधार और मथुरा शैली, दोनों में प्रत्येक ने लगभग पहली शताब्दी में बुद्ध के अपने–अपने विशिष्ट चित्रण को स्वतंत्र रूप से विकसित किया. गांधार शैली ने रोम के धर्म की परंपराओं से प्रेरित होकर बुद्ध का चित्रण रोम की शाही मूर्तियों जैसे वस्त्र धारण किए हुए प्रफुल्ल चेहरे के साथ किया. गांधार और मथुरा शैली ने एक–दूसरे को प्रभावित किया और इनकी सामान्य प्रवृत्ति प्राकृतिक संयोजन से हटकर एक आदर्श अमूर्त बोध की ओर ज़्यादा थी. गांधार शैली के शिल्पकारों ने बुद्ध के जीवन की घटनाओं को निश्चित दृश्यों में संयोजित कर बौद्ध कला में अमिट योगदान दिया.

गांधी, इंदिरा

पूरा नाम इंदिरा प्रियदर्शिनी गांधी, (ज.–19 नवं. 1917, इलाहाबाद, भारत; मृ.–31 अक्तू. 1984, नई दिल्ली), राजनीतिज्ञ, जो लगातार तीन बार (1966–77) और फिर चौथी बार (1980–84) भारत की प्रधानमंत्री बनीं. सिक्ख आतंकवादियों ने उनकी हत्या कर दी.

इंदिरा स्वतंत्र भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की इकलौती संतान थीं. उन्होंने पश्चिम बंगाल में विश्वभारती विश्वविद्यालय और इंग्लैंड की ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी में शिक्षा प्राप्त की तथा 1942 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के एक सहयोगी सदस्य फ़िरोज़ गांधी (मृ.–1960) से विवाह किया. 1955 से वह सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी की कार्यकारी समिति की सदस्य रहीं और 1959 में पार्टी अध्यक्ष चुनी गईं. नेहरू के बाद 1964 में प्रधानमंत्री बने लाल बहादुर शास्त्री ने उन्हें अपनी सरकार में सूचना और प्रसारण मंत्री बनाया.

जनवरी 1966 में शास्त्रीजी की अचानक मृत्यु के बाद श्रीमती गांधी पार्टी की दक्षिण और वाम शाखाओं के बीच सुलह के तौर पर कांग्रेस पार्टी की नेता (और इस तरह प्रधानमंत्री भी) बन गईं. लेकिन उनके नेतृत्व को भूतपूर्व वित्त मंत्री मोरारजी देसाई के नेतृत्व में पार्टी की दक्षिण शाखा से लगातार चुनौती मिलती रही. 1967 के चुनाव में वह कम बहुमत से जीत सकीं और उन्हें देसाई को उप–प्रधानमंत्री स्वीकार करना पड़ा. लेकिन 1971 में उन्होंने रूढ़िवादी पार्टियों के गठबंधन को भारी बहुमत से पराजित किया. श्रीमती गांधी ने 1971 के उत्तरार्द्ध में पूर्वी बंगाल (वर्तमान बांग्लादेश) द्वारा पाकिस्तान से अलग होने के संघर्ष का ज़ोरदार समर्थन किया और भारत की सशस्त्र सेनाओं ने पाकिस्तान पर त्वरित और निर्णायक जीत हासिल की, जिसके फलस्वरूप बांग्लादेश का निर्माण हुआ.

इंदिरा गांधी
फ़ोटो : एपी/वाइड वर्ल्ड

मार्च 1972 में पाकिस्तान पर भारत की जीत के बाद श्रीमती गांधी ने राष्ट्रीय चुनावों में अपनी नई कांग्रेस पार्टी की ज़ोरदार जीत का नेतृत्व किया. कुछ ही समय बाद उनके पराजित समाजवादी प्रतिद्वंद्वी ने उन पर चुनाव नियमों के उल्लंघन का आरोप लगाया. जून 1975 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने उनके ख़िलाफ़ फैसला सुनाया, जिससे उनकी संसद की सदस्यता समाप्त हो जाती और उन्हें छह वर्ष के लिए राजनीति से अलग रहना पड़ता. प्रतिक्रियास्वरूप उन्होंने समूचे भारत में आपातकाल की घोषणा कर दी, अपने राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों को गिरफ़्तार करवा लिया और आपातकालीन शक्तियां हासिल करके व्यक्तिगत स्वतंत्रता सीमित करने संबंधी कई क़ानून बनाए. इस काल में उन्होंने कई अलोकप्रिय नीतियां लागू कीं, जिनमें बड़े पैमाने पर नसबंदी (जन्म नियंत्रण का एक उपाय) कार्यक्रम भी शामिल था. जब लंबे समय तक स्थगित राष्ट्रीय चुनाव 1977 में हुए, तो श्रीमती गांधी और उनकी पार्टी की क़रारी हार हुई, जिसके बाद उन्हें पद छोड़ना पड़ा. जनता पार्टी ने सरकार की बागडोर संभाली.

1978 के आरंभ में श्रीमती गांधी के समर्थक कांग्रेस पार्टी से अलग हो गए और कांग्रेस–इ (इ से इंदिरा) पार्टी की स्थापना की. सरकारी भ्रष्टाचार के आरोप में श्रीमती गांधी कुछ समय तक जेल (अक्तू. 1977 और दिसं. 1978) में रहीं. इन झटकों के बावजूद नवंबर 1978 में वह एक नई संसदीय सीट से चुनाव जीतने में कामयाब रहीं और उनकी कांग्रेस–इ पार्टी धीरे–धीरे फिर मज़बूत होने लगी. सत्तारूढ़ जनता पार्टी में अंतर्कलह के कारण अगस्त 1979 में सरकार गिर गई. जब जनवरी 1980 में लोकसभा (संसद का निचला सदन) के लिए नए चुनाव हुए, तो श्रीमती गांधी और उनकी पार्टी भारी बहुमत से सत्ता में लौट आई. उनके प्रमुख राजनीतिक सलाहकार, उनके पुत्र संजय गांधी भी लोकसभा की एक सीट पर विजयी रहे. इंदिरा और उनके पुत्र के ख़िलाफ़ चल रहे सभी क़ानूनी मुक़दमे वापस ले लिए गए.

जून 1980 में एक वायुयान दुर्घटना में संजय गांधी की मृत्यु ने भारत के राजनीतिक नेतृत्व के लिए इंदिरा गांधी के चुने हुए उत्तराधिकारी को समाप्त कर दिया. संजय की

मृत्यु के बाद इंदिरा ने अपने दूसरे पुत्र राजीव गांधी को पार्टी नेतृत्व के लिए तैयार किया. 1980 के दशक के आरंभ में इंदिरा गांधी को भारत की राजनीतिक अखंडता के ख़तरों से जूझना पड़ा. कई राज्य केंद्र सरकार से अधिक स्वतंत्रता की मांग करने लगे तथा पंजाब में सिक्ख आतंकवादियों ने स्वायत्त राज्य की मांग पर ज़ोर देने के लिए हिंसा का रास्ता अपना लिया. जवाब में श्रीमती गांधी ने जून 1984 में सिक्खों के पवित्रतम धर्मस्थल अमृतसर के स्वर्ण मंदिर पर सेना के हमले के आदेश दिए, जिसके फलस्वरूप 450 से अधिक सिक्खों की मृत्यु हो गई. स्वर्ण मंदिर पर हमले के प्रतिकार में पांच महीने बाद ही श्रीमती गांधी के आवास पर तैनात उनके दो सिक्ख अंगरक्षकों ने गोली मारकर उनकी हत्या कर दी.

श्रीमती गांधी अपने पिता द्वारा शुरू की गई औद्योगिक विकास की अर्द्ध समाजवादी नीतियों पर क़ायम रहीं. उन्होंने सोवियत संघ के साथ नज़दीकी संबंध क़ायम किए और पाकिस्तान–भारत विवाद के दौरान समर्थन के लिए उसी पर आश्रित रहीं.

गांधी–इरविन समझौता

(मार्च 1931), महात्मा गांधी और ब्रिटिश वाइसरॉय लॉर्ड इरविन (बाद में लॉर्ड हैलिफ़ेक्स) के बीच हुआ समझौता, जो भारत में दो प्रमुख नेताओं के मध्य विराम–संधि का परिचायक बना. इस समझौते के फलस्वरूप गांधी जी द्वारा एक वर्ष पूर्व शुरू किए गए अत्यंत प्रभावकारी सविनय अवज्ञा आंदोलन की समाप्ति हुई. इसी आंदोलन के दौरान जवाहरलाल नेहरू को गिरफ़्तार किया गया था.

गांधीनगर

शहर, गुजरात राज्य की राजधानी, पश्चिम भारत. यह अहमदाबाद शहर के 35 किमी पूर्वोत्तर में साबरमती नदी के दाएं तट पर स्थित है. अहमदाबाद से यह मुंबई–दिल्ली राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या–8 द्वारा जुड़ा हुआ है. 1966 में गुजरात की भूतपूर्व राजधानी अहमदाबाद से यहां स्थानांतरित हुई. यह एक नियोजित शहर है, जो 1970 में अहमदाबाद से शासकीय कार्यालय के आने के बाद सक्रिय हुआ. शहर में सड़कों की ग्रिड प्रणाली है तथा यह सेक्टरों में विभाजित है, जो बुनियादी सुविधाओं से युक्त हैं. जनसंख्या (2001) 1,95,891.

गांधीनगर ज़िला

ज़िला और तालुका, भारत के गुजरात राज्य के मैदानी हिस्से में स्थित. ज़िले में जनसंख्या का घनत्व 606 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है. औसत वर्षा 650 मिमी तथा मुख्य फ़सलें चावल, गेहूं, बाजरा हैं. जनसंख्या (2001) ज़िला कुल 13,34,731.

गांधी, मोहनदास करमचंद

उपनाम महात्मा गांधी, (ज.–2 अक्तू. 1869, पोरबंदर, गुजरात, भारत; मृ.–30 जन. 1948), ब्रिटिश शासन के ख़िलाफ़ भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के नेता, राष्ट्रपिता माना जाता है. राजनीतिक और सामाजिक प्रगति की प्राप्ति हेतु अपने अहिंसक विरोध के सिद्धांत के लिए उन्हें अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त है.

मोहनदास अपने पिता की चौथी पत्नी की अंतिम संतान थे. उनके पिता करमचंद गांधी ब्रिटिश शासन के तहत पश्चिमी भारत के गुजरात में एक छोटी सी रियासत की राजधानी पोरबंदर के दीवान थे. उन्होंने बहुत अधिक औपचारिक शिक्षा तो प्राप्त नहीं की थी, लेकिन वह एक कुशल प्रशासक थे और उन्हें सनकी राजकुमारों, उनकी दुःखी प्रजा तथा सत्तासीन कट्टर ब्रिटिश राजनीतिक अधिकारियों के बीच अपना रास्ता निकालना आता था.

गांधी की मां पुतलीबाई अत्यधिक धार्मिक थीं और भोग–विलास में उनकी ज़्यादा रुचि नहीं थी. उनकी दिनचर्या घर और मंदिर में बंटी हुई थी. वह नियमित रूप से उपवास रखती थीं और परिवार में किसी के बीमार पड़ने पर उसकी सेवा सुश्रुषा में दिन–रात एक कर देती थीं. मोहनदास का लालन–पालन वैष्णव मत में रमे परिवार में हुआ और उन पर कठिन नीतियों वाले भारतीय धर्म जैन धर्म का गहरा प्रभाव पड़ा, जिसके मुख्य सिद्धांत, अहिंसा एवं विश्व की सभी वस्तुओं को शाश्वत मानना है. इस प्रकार, उन्होंने स्वाभाविक रूप से अहिंसा, शाकाहार, आत्मशुद्धि के लिए उपवास और विभिन्न पंथों तथा समुदायों को मानने वालों के बीच परस्पर सहिष्णुता को अपनाया.

युवावस्था

मोहनदास एक औसत विद्यार्थी थे, हालांकि उन्होंने यदा–कदा पुरस्कार और छात्रवृत्तियां भी जीतीं. एक सत्रांत–परीक्षा में उनके परिणाम में 'अंग्रेज़ी में अच्छा, अंकगणित में ठीकठाक और भूगोल में ख़राब; चाल–चलन बहुत अच्छा, लिखावट ख़राब' की टिप्पणी की गई थी. 13 वर्ष की आयु में उनका विवाह कस्तूरबा से हुआ और इस वजह से उनके स्कूली जीवन का एक वर्ष बेकार हो गया. वह पढ़ाई व खेल, दोनों में ही प्रखर नहीं थे. बीमार पिता की सेवा करने और घरेलू कामों में मां का हाथ बंटाने से समय मिलने पर उन्हें दूर तक अकेले सैर पर निकलना पसंद था. उन्हीं के शब्दों में उन्होंने 'बड़ों की आज्ञा का पालन करना सीखा था, उनमें मीनमेख निकालना नहीं.' वह किशोरावस्था के विद्रोही दौर से भी गुज़रे, जिसमें गुप्त नास्तिकवाद, छोटी–मोटी चोरियां, छिपकर धूम्रपान और वैष्णव परिवार में जन्मे किसी लड़के के लिए सबसे ज़्यादा चौंकाने वाली बात– मांस खाना शामिल था. उनकी किशोरावस्था उनकी आयु और वर्ग के अधिकांश बच्चों से अधिक हलचल भरी नहीं थी. उनकी युवावस्था की नादानियों का अंतिम बिंदु असाधारण था. हर ऐसी नादानी के बाद वह स्वयं से वादा करते 'फिर ऐसा कभी नहीं' और अपने वादे पर अटल रहते. उनमें आत्मसुधार की लौ

जलती रहती थी, जिसके कारण उन्होंने सच्चाई और बलिदान के प्रतीक प्रहलाद और हरिश्चंद्र जैसे पौराणिक हिंदू नायकों को सजीव आदर्श के रूप में ग्रहण किया.

1887 में मोहनदास ने जैसे–तैसे बंबई यूनिवर्सिटी की मैट्रिक की परीक्षा पास की और भावनगर स्थित सामलदास कॉलेज में दाख़िला लिया. अचानक गुजराती से अंग्रेज़ी भाषा में जाने से उन्हें व्याख्यानों को समझने में कुछ दिक़्क़त होने लगी. इस बीच उनके परिवार में उनके भविष्य को लेकर चर्चा चल रही थी. अगर निर्णय उन पर छोड़ा जाता, तो वह डॉक्टर बनना चाहते थे. लेकिन वैष्णव परिवार में चीरफाड़ के ख़िलाफ़ पूर्वाग्रह के अलावा यह भी स्पष्ट था कि यदि उन्हें गुजरात के किसी राजघराने में उच्च पद प्राप्त करने की पारिवारिक परंपरा निभानी है, तो उन्हें बैरिस्टर बनना पड़ेगा. इसका अर्थ था इंग्लैंड यात्रा और गांधी ने, जिनका सामलदास कॉलेज में ख़ास मन नहीं लग रहा था, इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया. उनके युवा मन में इंग्लैंड की छवि 'दार्शनिकों और कवियों की भूमि, संपूर्ण सभ्यता के केंद्र' के रूप में थी. सितंबर 1888 में वह पानी के जहाज़ पर सवार हुए. वहां पहुंचने के 10 दिन बाद वह लंदन के चार क़ानून महाविद्यालयों में से एक 'इनर टेंपल' में दाख़िल हो गए.

इंग्लैंड

गांधी ने अपनी पढ़ाई को गंभीरता से लिया और लंदन यूनिवर्सिटी मैट्रिकुलेशन परीक्षा में बैठकर अंग्रेज़ी तथा लैटिन को सुधारने का प्रयास किया. राजकोट के अर्द्ध ग्रामीण माहौल से लंदन के महानगरीय जीवन में परिवर्तन उनके लिए आसान नहीं था. जब वह पश्चिमी खान–पान, तहज़ीब और पहनावे को अपनाने के लिए जूझते, उन्हें अटपटा लगता. उनका शाकाहारी होना उनके लिए लगातार शर्मिंदगी का कारण बन जाता था; उनके मित्रों ने उन्हें चेतावनी दी कि इसका दुष्प्रभाव उनके अध्ययन और स्वास्थ्य, दोनों पर पड़ेगा. सौभाग्यवश उन्हें एक शाकाहारी रेस्तरां के साथ–साथ एक पुस्तक मिल गई, जिसमें शाकाहार के पक्ष में तर्क दिए गए थे. वह लंदन वेजीटेरियन सोसाइटी के कार्यकारी सदस्य भी बन गए और उसके सम्मेलनों में भाग लेने लगे तथा उसकी पत्रिका में लिखने भी लगे.
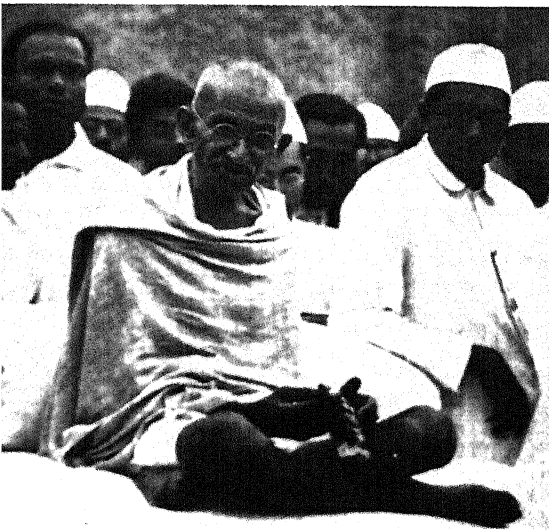
क सभा को संबोधित करते गांधी

इंग्लैंड के शाकाहारी रेस्तरां और आवास–गृहों में गांधी की मुलाक़ात न सिर्फ़ भोजन के मामले में कट्टर लोगों से हुई, बल्कि उन्हें कुछ गंभीर स्त्री–पुरुष भी मिले, जिन्हें उन्होंने *बाइबिल* और *भगवद्गीता* से परिचय कराने का श्रेय दिया. *भगवद्गीता* को उन्होंने सबसे पहले सर एडविन आर्नोल्ड के अंग्रेज़ी अनुवाद

में पढ़ा. परिचित शाकाहारी अंग्रेज़ों में एडवर्ड कारपेंटर जैसे समाजवादी और मानवतावादी थे, जो ब्रिटिश थोरो कहलाते थे; जॉर्ज बर्नार्ड शॉ जैसे फ़ेबियन; और एनी बेसेंट सरीखे धर्मशास्त्री शामिल थे. उनमें से अधिकांश आदर्शवादी थे; कुछ विद्रोही तेवर के भी थे, जो उत्तरवर्ती विक्टोरियाई व्यवस्था के तत्कालीन मूल्यों को नहीं मानते थे. वे सादा जीवन का उपदेश देते थे और भौतिक मूल्यों से ज़्यादा नैतिक मूल्यों को तथा संघर्ष के मुक़ाबले सहयोग को अधिक महत्त्व देते थे. इन विचारों ने गांधी के व्यक्तित्व और बाद में उनकी राजनीति को आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई.

जुलाई 1891 में जब गांधी भारत लौटे, तो उनकी अनुपस्थिति में उनकी माता का देहांत हो चुका था और उन्हें यह जानकर बहुत निराशा हुई कि बैरिस्टर की डिग्री से अच्छे पेशेवर जीवन की गारंटी नहीं मिल सकती. वकालत के पेशे में पहले ही काफ़ी भीड़ हो चुकी थी और गांधी इसमें अपनी जगह बनाने के मामले में बहुत संकोची थे. बंबई (वर्तमान मुंबई) न्यायालय में पहली ही बहस में वह नाकाम रहे. यहां तक कि बंबई उच्च विद्यालय में अल्पकालिक शिक्षक के पद के लिए भी उन्हें अस्वीकार कर दिया गया. इसलिए वह राजकोट लौटकर मुक़दमा करने वालों के लिए अर्ज़ी लिखने जैसे छोटे कामों के ज़रिये रोज़ी–रोटी कमाने लगे. एक स्थानीय ब्रिटिश अधिकारी को नाराज़ कर देने के कारण उनका यह काम भी बंद हो गया. इसलिए उन्होंने दक्षिण अफ़्रीका में नटाल स्थित एक भारतीय कंपनी से एक साल के अनुबंध को स्वीकार करके राहत की सांस ली.

दक्षिण अफ़्रीका

डरबन न्यायालय में यूरोपीय मजिस्ट्रेट ने उन्हें पगड़ी उतारने को कहा; उन्होंने इनकार कर दिया और न्यायालय से बाहर चले गए. कुछ दिनों बाद प्रिटोरिया जाते समय उन्हें रेलवे के प्रथम श्रेणी के डिब्बे से बाहर फेंक दिया गया और उन्होंने स्टेशन पर ठिठुरते हुए रात बिताई; यात्रा के अगले चरण में उन्हें एक घोड़ागाड़ी के गोरे चालक से पिटना पड़ा, क्योंकि यूरोपीय यात्री को जगह देकर पायदान पर यात्रा करने से उन्होंने इनकार कर दिया था; और अंततः 'सिर्फ़ यूरोपीय लोगों के लिए' सुरक्षित होटलों में उनके जाने पर रोक लगा दी गई. नटाल में भारतीय व्यापारियों और श्रमिकों के लिए ये अपमान दैनिक जीवन का हिस्सा थे. जो नया था, वह गांधी का अनुभव न होकर उनकी प्रतिक्रिया थी. अब तक वह हठधर्मिता और उग्रता के पक्ष में नहीं थे, लेकिन जब उन्हें अनपेक्षित अपमानों से गुज़रना पड़ा, तो उनमें कुछ बदलाव आया. बाद में देखने पर उन्हें लगा कि डरबन से प्रिटोरिया तक की यात्रा उनके जीवन के महानतम रचनात्मक अनुभवों में से थी; यह उनके सत्य का क्षण था. फिर कभी उन्होंने अन्याय स्वीकार नहीं किया; एक भारतीय और एक व्यक्ति के रूप में अपने सम्मान की रक्षा की.

प्रिटोरिया प्रवास के दौरान गांधी ने अपने देशवासियों की उन परिस्थितियों का अध्ययन किया, जिसमें वे जी रहे थे और उन्हें उनके अधिकारों तथा कर्तव्यों के बारे में शिक्षित करने का प्रयास किया. उनका दक्षिण अफ़्रीका में लंबे समय तक रहने का

कोई इरादा नहीं था. जून 1894 में जब एक साल का अनुबंध समाप्त होने को आया, तो वह वापस डरबन आकर भारत लौटने को तैयार थे. उनके सम्मान में आयोजित विदाई समारोह में *नटाल मॅर्क्युरि* के पन्ने पलटते हुए उन्हें पता चला कि नटाल लेजिस्लेटिव असेंबली भारतीयों को मतदान के अधिकार से वंचित करने संबंधी एक विधेयक पर विचार कर रही है. गांधी ने अपने मेज़बानों से कहा, 'यह हमारे ताबूत की पहली कील है.' लोगों ने इस विधेयक का विरोध करने में अपनी अक्षमता दिखाई और औपनिवेशिक राजनीति पर अपनी अज्ञानता स्वीकारते हुए गांधी से अपने लिए संघर्ष करने की प्रार्थना की.

18 वर्ष की आयु तक गांधी ने शायद ही कभी समाचार पत्र पढ़ा था. न तो इंग्लैंड के विद्यार्थी काल में और न ही भारत में बैरिस्टरी की शुरुआत में राजनीति में उनकी कभी रुचि रही. वस्तुतः किसी सभा में भाषण देते समय या अदालत में मुवक्किल का बचाव करते हुए वे जैसे ही बोलने खड़े होते, मंचीय भय उन्हें जकड़ लेता था. फिर भी, 1894 में मात्र 25 वर्ष की आयु में वह लगभग रातोंरात एक सफल राजनीतिक आंदोलनकारी बन गए. उन्होंने नटाल की विधायिका और ब्रिटिश सरकार के नाम याचिकाएं लिखीं और उन पर सैंकड़ों भारतीयों के हस्ताक्षर कराए. वह विधेयक को तो नहीं रोक सके, लेकिन नटाल में रहने वाले भारतीयों के कष्टों की ओर नटाल, भारत और इंग्लैंड के अख़बारों का ध्यान आकर्षित करने में सफल रहे. उन्हें डरबन में रहकर वकालत करने और भारतीय समुदाय को एकजुट करने के लिए राज़ी कर लिया गया. 1894 में उन्होंने नटाल इंडियन कांग्रेस की स्थापना की और उसके सक्रिय सचिव बन गए. इस सामान्य राजनीतिक संगठन के माध्यम से उन्होंने बहुजातीय भारतीय समुदाय में एकता की भावना भर दी. उन्होंने सरकार, विधायिका और प्रेस में भारतीयों के कष्टों से संबंधित तर्कपूर्ण वक्तव्यों की झड़ी लगा दी. अंततः उन्होंने महारानी विक्टोरिया की भारतीय प्रजा के साथ उनके ही अफ़्रीका स्थित उपनिवेश में किए जा रहे भेदभाव को दुनिया के सामने उजागर करके साम्राज्य की पोल खोल दी. एक प्रचारक के रूप में उनकी सफलता का प्रमाण यह था कि लंदन के *द टाइम्स* और कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) के *स्टेट्समैन* तथा *इंग्लिशमैन* जैसे अख़बारों के संपादकीय में भी नटाल के भारतीयों के कष्टों पर टिप्पणियां लिखी गईं. 1896 में अपनी पत्नी कस्तूरबा तथा बच्चों को लाने एवं विदेश में रहने वाले भारतीयों के लिए समर्थन जुटाने हेतु गांधी भारत पहुंचे. उन्होंने प्रमुख नेताओं से मिलकर उन्हें बड़े–बड़े शहरों में जनसभाएं संबोधित करने के लिए राज़ी किया.

यह गांधी का दुर्भाग्य था कि उनकी गतिविधियों और वक्तव्यों की ऊटपटांग ख़बरें नटाल पहुंचीं और वहां की यूरोपीय जनता बिगड़ उठी. जनवरी 1897 में डरबन पहुंचने पर उग्र गोरों की भीड़ ने उन पर प्राणघाती हमला कर दिया. ब्रिटिश मंत्रिमंडल में औपनिवेशिक सचिव जोज़ेफ़ चेंबरलेन ने नटाल सरकार को तार भेजकर दोषी व्यक्तियों को गिरफ़्तार करने को कहा, लेकिन गांधी ने हमलावरों पर मुक़दमा करने से इनकार कर दिया. उन्होंने कहा कि यह उनका सिद्धांत है कि व्यक्तिगत क्षति को क़ानूनी अदालत में न ले जाया जाए.

प्रतिरोध और परिणाम

गांधी मनमुटाव पालने वाले व्यक्ति नहीं थे. 1899 में दक्षिण अफ़्रीका (बोअर) युद्ध छिड़ने पर उन्होंने नटाल के ब्रिटिश उपनिवेश में नागरिकता के संपूर्ण अधिकारों का दावा करने वाले भारतीयों से कहा कि उपनिवेश की रक्षा करना उनका कर्तव्य है. उन्होंने 1,100 स्वयंसेवकों की एंबुलेन्स कोर की स्थापना की, जिसमें 300 स्वतंत्र भारतीय और बाक़ी बंधुआ मज़दूर थे. यह एक पंचमेल समूह था : बैरिस्टर और लेखाकार, कारीगर और मज़दूर. युद्ध की समाप्ति से दक्षिण अफ़्रीका के भारतीयों को शायद ही कोई राहत मिली. गांधी ने देखा कि कुछ ईसाई मिशनरियों और युवा आदर्शवादियों के अलावा दक्षिण अफ़्रीका में रहने वाले यूरोपीयों पर आशानुरूप छाप छोड़ने में वह असफल रहे हैं. 1906 में ट्रांसवाल सरकार ने वहां की भारतीय जनता के पंजीकरण के लिए विशेष रूप से अपमानजनक अध्यादेश जारी किया. भारतीयों ने सितंबर 1906 में जोहेन्सबर्ग में गांधी के नेतृत्व में एक विरोध जनसभा का आयोजन किया और इस अध्यादेश के उल्लंघन तथा इसके परिणामस्वरूप दंड भुगतने की शपथ ली. इस प्रकार सत्याग्रह का जन्म हुआ, जो वेदना पहुंचाने के बजाय उसे झेलने, विद्वेषहीन प्रतिरोध करने और बिना हिंसा के उससे लड़ने की नई तकनीक थी.

दक्षिण अफ़्रीका में सात वर्ष से अधिक समय तक संघर्ष चला. इसमें उतार–चढ़ाव आते रहे, लेकिन गांधी के नेतृत्व में भारतीय अल्पसंख्यकों के छोटे से समुदाय ने अपने शक्तिशाली प्रतिपक्षियों के ख़िलाफ़ संघर्ष जारी रखा. सैकड़ों भारतीयों ने अपने अंत:करण और स्वाभिमान को चोट पहुंचाने वाले क़ानून के सामने झुकने के बजाय अपनी आजीविका तथा स्वतंत्रता की बलि चढ़ाना ज़्यादा पसंद किया. 1913 में आंदोलन के अंतिम चरण में महिलाओं समेत सैकड़ों भारतीयों ने कारावास की सज़ा भुगती तथा खदानों में काम बंद करके हड़ताल कर रहे हज़ारों भारतीय मजदूरों ने कोड़ों की मार, जेल की सज़ा और यहां तक कि गोली मारने के आदेश का भी साहसपूर्वक सामना किया. भारतीयों के लिए यह घोर यंत्रणा थी, लेकिन दक्षिण अफ़्रीकी सरकार के लिए यह सबसे ख़राब प्रचार सिद्ध हुआ और उसने भारत व ब्रिटिश सरकार के दबाव के तहत एक समझौते को स्वीकार किया, जिस पर एक ओर से गांधी तथा दूसरी ओर से दक्षिण अफ़्रीकी सरकार के प्रतिनिधि जनरल जॉन क्रिश्चियन स्मट्स ने बातचीत की थी.

जुलाई 1914 में दक्षिण अफ़्रीका से गांधी के भारत प्रस्थान के बाद स्मट्स ने अपने एक मित्र को लिखा था, 'संत ने हमारी भूमि से विदा ले ली है, आशा है सदा के लिए.' 25 वर्ष बाद उन्होंने लिखा, 'ऐसे व्यक्ति का विरोधी होना मेरी नियति थी, जिनके लिए तब भी मेरे मन में बहुत सम्मान था.' अपनी अनेक जेल यात्राओं के दौरान एक बार गांधी ने स्मट्स के लिए एक जोड़ी चप्पल बनाई थी. स्मट्स का संस्मरण है कि उनके बीच कोई घृणा या व्यक्तिगत दुर्भाव नहीं था और जब लड़ाई खत्म हो गई, तो 'माहौल ऐसा था, जिसमें एक सम्मानजनक समझौते को अंजाम दिया जा सकता था.'

ांडी यात्रा की प्रतीति कराती गांधी प्रतिमा
ौजन्य : यूसुफ़ सईद

धार्मिक खोज

गांधी की धार्मिक खोज उनकी माता, पोरबंदर तथा राजकोट स्थित उनके घर के प्रभाव से बचपन में ही शुरू हो गई थी, लेकिन दक्षिण अफ़्रीका पहुंचने पर इसे काफ़ी बल मिला. वह ईसाई धर्म पर टॉल्सटॉय के लेखन पर मुग्ध थे, उन्होंने *कुरान* के अनुवाद का अध्ययन किया और हिंदू अभिलेखों तथा दर्शन में डुबकियां लगाई. सापेक्षिक धर्म के अध्ययन, विद्वानों के साथ बातचीत और धर्मशास्त्रीय कृतियों के निजी अध्ययन से वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सभी धर्म सत्य हैं और फिर भी हरेक धर्म अपूर्ण है, क्योंकि 'उनकी व्याख्या स्तरहीन बुद्धि, कभी–कभी संकीर्ण हृदय से की गई है और अक्सर दुर्व्याख्या हुई है.' *भगवद्गीता,* जिसका गांधी ने पहली बार इंग्लैंड में अध्ययन किया था, उनका 'आध्यात्मिक शब्दकोश' बन गया और संभवतः उनके जीवन पर इसी का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा. *गीता* में उल्लिखित संस्कृत के दो शब्दों ने उन्हें सबसे ज़्यादा आकर्षित किया. एक था अपरिग्रह (त्याग), जिसका अर्थ है, मनुष्य को अपने आध्यात्मिक जीवन को बाधित करने वाली भौतिक वस्तुओं का त्याग कर देना चाहिए और उसे धन–संपत्ति के बंधनों से मुक्त हो जाना चाहिए. दूसरा शब्द है समभाव (समान भाव), जिसने उन्हें दुःख या सुख, जीत या हार, सबमें अडिग रहना तथा सफलता की आशा या असफलता के भय के बिना काम करना सिखाया. ये सिर्फ़ पूर्णता के समोपदेश नहीं थे. जिस दीवानी मुक़दमे के कारण वह 1893 में दक्षिण अफ़्रीका आए थे, उसमें उन्होंने दोनों विरोधियों को न्यायालय से बाहर ही समझौता करने पर राज़ी कर लिया था. उनके अनुसार, एक सच्चे वकील का काम 'विरोधी पक्षों को एकजुट करना' था. जल्दी ही वह मुवक्किलों को अपनी सेवा के ख़रीदार के बजाय मित्र समझने लगे; जो न सिर्फ़ क़ानूनी मामलों में उनकी सलाह लेते थे, बल्कि बच्चे से मां का दूध छुड़ाने और परिवार के बजट में संतुलन जैसे मामलों पर भी राय लेते थे. जब एक सहयोगी ने रविवार को भी मुवक्किलों के आने पर विरोध किया, तो गांधी का जवाब था : 'विपत्ति में फंसे आदमी के पास रविवार का आराम भी नहीं होता.'

क़ानून के पेशे में गांधी की अधिकतम आय 5,000 रुपये प्रतिवर्ष तक पहुंच गई थीं, लेकिन पैसा कमाने में उनकी अधिक रुचि नहीं थी और उनकी बचत अक्सर सार्वजनिक गतिविधियों पर ख़र्च हो जाती थी. डरबन में और फिर जोहेन्सबर्ग में, उन्होंने सदाव्रत खोल रखा था; उनका घर युवा सहकर्मियों तथा राजनीतिक सहयोगियों का ठिकाना बन गया था. यह सब उनकी पत्नी को परेशान करता था, जिनके असाधारण धैर्य, सहनशीलता और आत्मबलिदान के बिना गांधी सार्वजनिक सरोकार के प्रति शायद ही स्वयं को समर्पित कर पाते. जैसे–जैसे वे दोनों परिवार और संपत्ति

के पारंपरिक बंधनों से मुक्त होते गए, उनके निजी व सामुदायिक जीवन का अंतर सिमटता गया.

गांधी सादा जीवन, शारीरिक श्रम और संयम के प्रति अत्यधिक आकर्षण महसूस करते थे. 1904 में पूंजीवाद के आलोचक जॉन रस्किन के *अनटू दिस लास्ट* पढ़ने के बाद उन्होंने डरबन के पास फ़ीनिक्स में एक फ़ार्म की स्थापना की, जहां वह अपने मित्रों के साथ केवल अपने श्रम के बूते पर जी सकते थे. छह वर्ष बाद गांधी की देखरेख में जोहेन्सबर्ग के पास एक नई बस्ती विकसित हुई; रूसी लेखक और नीतिज्ञ के नाम पर इसे *टॉल्सटॉय फ़ार्म* का नाम दिया गया. गांधी टॉल्सटॉय के प्रशंसक थे और उनसे पत्र व्यवहार करते थे. ये दो बस्तियां, भारत में अहमदाबाद के पास साबरमती और वर्धा के पास सेवाग्राम में बनीं, जो अधिक प्रसिद्ध आश्रमों की पूर्ववर्ती थीं.

राष्ट्रवादी भारत के नेता के रूप में उदय

1915 से 1918 तक के काल में गांधी भारतीय राजनीति की परिधि पर अनिश्चितता से मंडराते रहे. इस काल में उन्होंने किसी भी राजनीतिक आंदोलन में शामिल होने से इनकार कर दिया तथा प्रथम विश्व युद्ध में ब्रिटेन के प्रयासों, यहां तक कि भारत की ब्रिटिश फ़ौज में सिपाहियों की भर्ती का भी समर्थन किया. साथ ही वह ब्रिटिश अधिकारियों की उद्दंडता भरी हरकतों की आलोचना भी करते थे तथा उन्होंने बिहार व गुजरात के किसानों के उत्पीड़न का मामला भी उठाया. फ़रवरी 1919 में रॉलेट ऐक्ट पर, जिसके तहत किसी भी व्यक्ति को बिना मुक़दमा चलाए जेल भेजने का प्रावधान था, उन्होंने अंग्रेज़ों का विरोध किया. गांधी ने सत्याग्रह आंदोलन की घोषणा की, इसके परिणामस्वरूप एक ऐसा राजनीतिक भूचाल आया, जिसने 1919 के वसंत में समूचे उपमहाद्वीप को झकझोर दिया. हिंसा भड़क उठी, जिसके बाद ब्रिटिश नेतृत्व में सैनिकों ने अमृतसर में जलियांवाला बाग़ की एक सभा में शामिल लोगों पर गोलियां बरसाकर लगभग 400 भारतीयों को मार डाला और मार्शल लॉ लगा दिया गया. इसने गांधी को अपना रुख बदलने के लिए प्रेरित किया, लेकिन एक साल के भीतर ही वह एक बार फिर उग्र तेवर में आ गए.

1920 के पतझड़ तक गांधी राजनीतिक मंच पर छा गए थे और भारत या शायद किसी भी देश में, किसी राजनीतिज्ञ का इतना प्रभाव कभी नहीं रहा था. उन्होंने 35 वर्ष पुरानी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को भारतीय राष्ट्रवाद के प्रभावशाली राजनीतिक हथियार में बदल दिया. गांधी का संदेश बहुत सरल था; अंग्रेज़ों की बंदूक़ों ने नहीं; बल्कि भारतवासियों की अपनी कमियों ने देश को गुलाम बनाया हुआ है. ब्रिटिश सरकार के साथ उनके अहिंसक असहयोग में न सिर्फ़ ब्रिटिश वस्तुओं, बल्कि भारत में अंग्रेज़ों द्वारा संचालित या उनकी मदद से चल रहे संस्थानों– जैसे विधायिका, न्यायालय, कार्यालय और स्कूल –का बहिष्कार भी शामिल था. इस कार्यक्रम ने देश में जोश फूंक दिया, विदेशी शासन के भय का फंदा काट दिया और इसके फलस्वरूप कानून तोड़कर ख़ुशी–ख़ुशी जेल जाने को तैयार हज़ारों सत्याग्रहियों को गिरफ़्तार कर लिया

1913 में लंदन में जी.डी. बिड़ला, सरोजिनी नायडू और अन्य के साथ गांधी
सौजन्य : *हिंदुस्तान टाइम्स*

गया. फ़रवरी 1922 में यह आंदोलन ज़ोर पकड़ता प्रतीत हुआ, लेकिन पूर्वी भारत के दूरदराज़ के एक गांव चौरी चौरा में हिंसा भड़कने से चिंतित गांधी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन वापस ले लिया. 10 मार्च 1922 को गांधी को गिरफ़्तार कर लिया गया और उन्हें छह वर्षों के कारावास की सज़ा हुई. अपेंडिसाइटिस के ऑपरेशन के बाद फ़रवरी 1924 में उन्हें रिहा कर दिया गया. उनकी अनुपस्थिति में राजनीतिक परिदृश्य बदल चुका था. कांग्रेस पार्टी दो भागों में विभक्त हो चुकी थी. एक चित्तरंजन दास और मोतीलाल नेहरू (भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के पिता) के नेतृत्व में था, जो विधायिकाओं में पार्टी के प्रवेश के समर्थक थे और दूसरा सी. राजगोपालाचारी और वल्लभभाई झवेरभाई पटेल का था, जो इसके विरोधी थे. सबसे दुर्भाग्यपूर्ण बात यह हुई कि 1920–22 के दौरान असहयोग आंदोलन में हिंदुओं और मुसलमानों के बीच मौजूद एकता ख़त्म हो चुकी थी. गांधी ने दोनों समुदायों को समझा–बुझाकर उन्हें शंकाओं तथा कट्टरवाद के घेरे से बाहर निकालने का प्रयास किया. अंततः एक गंभीर सांप्रदायिक हिंसा के बाद 1924 के पतझड़ में उन्होंने तीन सप्ताह का उपवास किया, ताकि लोगों को अहिंसा के मार्ग पर चलने को प्रेरित किया जा सके.

1920 के दशक के मध्य में सक्रिय राजनीति में गांधी ने अधिक रुचि नहीं दिखाई. लेकिन 1927 में ब्रिटिश सरकार ने सर जॉन साइमन के नेतृत्व में एक संविधान

सुधार आयोग का गठन किया, जिसमें किसी भी भारतीय को शामिल नहीं किया गया था. कांग्रेस और अन्य पार्टियों द्वारा आयोग का बहिष्कार किए जाने से राजनीतिक घटनाक्रम तेज़ हुआ. दिसंबर 1928 में कलकत्ता कांग्रेस की बैठक के बाद, जिसमें गांधी ने पूर्ण स्वराज्य के लिए देशव्यापी अहिंसक आंदोलन की धमकी देकर ब्रिटिश सरकार से एक साल के भीतर भारत को अधिराज्य का दर्जा दिए जाने का महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव रखा, कांग्रेस पार्टी पर फिर से गांधी का नियंत्रण हो गया. समाज के निर्धन वर्ग को प्रभावित करने वाले नमक–कर के ख़िलाफ़ उन्होंने मार्च 1930 में सत्याग्रह शुरू किया. ब्रिटिश राज के ख़िलाफ़ गांधी के अहिंसक युद्ध में यह सबसे विशाल और सफल आंदोलन था और इसके फलस्वरूप 60 हजार से अधिक लोग गिरफ़्तार किए गए. एक साल बाद भारत के ब्रिटिश वाइसरॉय लॉर्ड इरविन के साथ बातचीत के बाद गांधी ने एक समझौता स्वीकार कर लिया, सविनय अवज्ञा आंदोलन वापस ले लिया और लंदन में गोलमेज़ सम्मेलन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में शामिल होने के लिए सहमत हो गए. अंग्रेज़ों से सत्ता के हस्तांतरण के बजाय भारतीय अल्पसंख्यकों की समस्या पर केंद्रित यह सम्मेलन भारतीय राष्ट्रवादियों के लिए घोर निराशाजनक था. इसके अलावा, जब दिसंबर 1931 में गांधी स्वदेश लौटे, तो उन्होंने पाया कि उनकी पार्टी को लॉर्ड इरविन के उत्तराधिकारी और राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में सबसे दमनकारी आदेश देने वाले लॉर्ड विलिंगडन का चौतरफ़ा आक्रमण झेलना पड़ रहा है. गांधी को एक बार फिर जेल भेज दिया गया और सरकार ने उन्हें बाहरी दुनिया से अलग–थलग करने तथा उनके प्रभाव को समाप्त करने का प्रयास किया. यह आसान कार्य नहीं था. सितंबर 1932 में बंदी अवस्था में ही गांधी ने ब्रिटिश सरकार द्वारा नए संविधान में अछूतों (दलित हिंदू) को अलग मतदाता सूची में शामिल करके उन्हें अलग करने के निर्णय के ख़िलाफ़ अनशन शुरू किया. इसके फलस्वरूप देश भर में भावनात्मक आवेग उमर पड़ा; हिंदू समुदाय और दलित नेताओं ने मिल–जुलकर तेज़ी से एक वैकल्पिक मतदाता सूची की व्यवस्था की रूपरेखा बनाई और ब्रिटिश सरकार ने इसे मंज़ूरी दे दी. यह अनशन अछूतों के ख़िलाफ़ भेदभाव दूर करने के ज़ोरदार आंदोलन का आरंभ था; गांधी ने उन्हें हरिजन नाम दिया था, जिसका अर्थ होता है, ईश्वर की संतान.

1934 में गांधी ने न सिर्फ़ कांग्रेस के नेता के पद से, बल्कि पार्टी की सदस्यता से भी इस्तीफ़ा दे दिया. उनका मानना था कि पार्टी के अग्रणी सदस्यों ने सिर्फ़ राजनीतिक कारणों से अहिंसा को अपनाया है. राजनीतिक गतिविधियों के स्थान पर अब उन्होंने 'रचनात्मक कार्यक्रमों' के ज़रिये 'सबसे निचले स्तर से' राष्ट्र निर्माण पर अपना ध्यान केंद्रित किया. उन्होंने ग्रामीण भारत को, जो देश की आबादी का 85 प्रतिशत था, शिक्षित करने; छुआछूत के ख़िलाफ़ लड़ाई जारी रखने; हाथ से कातने, बुनने और अन्य कुटीर उद्योगों को अर्द्ध बेरोज़गार किसानों की आय में इज़ाफ़ा करने के लिए बढ़ावा देने और लोगों की आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षा प्रणाली बनाने का काम शुरू किया. स्वयं गांधी मध्य भारत के एक गांव सेवाग्राम में रहने चले गए, जो सामाजिक और आर्थिक विकास के उनके कार्यक्रमों का केंद्र बना.

ध्यान मुद्रा में गांधी की पत्थर की मूर्ति
सौजन्य : यूसुफ़ सईद

अंतिम चरण

दूसरा विश्व युद्ध शुरू होने के साथ ही भारत का राष्ट्रवादी संघर्ष अपने अंतिम महत्त्वपूर्ण चरण में प्रवेश कर गया. भारतीय स्वशासन का आश्वासन दिए जाने की शर्त पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस युद्ध में अंग्रेज़ों का साथ देने को तैयार थी. एक बार फिर गांधी राजनीतिक रूप से सक्रिय हो गए. 1942 के ग्रीष्म में गांधी ने अंग्रेज़ों से तत्काल भारत छोड़ने की मांग की. फ़ासीवादी शक्तियों (एक्सिस), विशेषकर जापान के ख़िलाफ़ युद्ध महत्त्वपूर्ण चरण में था; अंग्रेज़ों ने तुरंत प्रतिक्रिया दिखाई और कांग्रेस के समूचे नेतृत्व को गिरफ़्तार कर लिया और पार्टी को हमेशा के लिए कुचल देने का प्रयास किया. इसके फलस्वरूप हिंसा भड़क उठी, जिसे सख़्ती से दबा दिया गया; भारत और ब्रिटेन के बीच की दूरी पहले से कहीं अधिक बढ़ गई.

1945 में लेबर पार्टी की जीत के साथ ही भारत–ब्रिटेन संबंधों में नए अध्याय की शुरुआत हुई. अगले दो वर्ष के दौरान ब्रिटिश सरकार, मुस्लिम लीग के नेता एम.ए. जिन्ना और कांग्रेस पार्टी के नेताओं के बीच लंबी त्रिपक्षीय वार्ताएं हुईं, जिसके फलस्वरूप 3 जून 1947 को माउंटबेटन योजना तैयार हुई और 15 अगस्त 1947 को दो नए राष्ट्रों, भारत तथा पाकिस्तान, का निर्माण हुआ.

भारत की अखंडता के बिना देश का स्वतंत्र होना गांधी के जीवन की सबसे बड़ी निराशाओं में से एक था. जब गांधी तथा उनके सहयोगी जेल में थे, तो मुस्लिम अलगाववाद को काफ़ी बढ़ावा मिला और 1946–47 में, जब संवैधानिक व्यवस्थाओं पर अंतिम दौर की बातचीत चल रही थी, हिंदुओं और मुस्लमानों के बीच भड़की सांप्रदायिक हिंसा ने ऐसा अप्रिय माहौल बना दिया, जिसमें गांधी की तर्क और न्याय, सहिष्णुता और विश्वास संबंधी अपीलों के लिए कोई स्थान नहीं था. जब उनकी राय के ख़िलाफ़ उप महाद्वीप के विभाजन के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया, तो वह सांप्रदायिक संघर्ष से समाज पर लगे ज़ख़्मों को भरने में तन मन से जुट गए, उन्होंने बंगाल व बिहार के दंगाग्रस्त क्षेत्रों का दौरा किया, इसके शिकार हुए लोगों को दिलासा दिया और शरणार्थियों के पुनर्वास का प्रयास किया. शंका और घृणा से भरे माहौल में यह एक मुश्किल और हृदय विदारक कार्य था. गांधी पर दोनों समुदायों ने आरोप लगाए. जब उनकी बातों का कोई असर नहीं हुआ, तो वह अनशन पर बैठ गए. उन्हें कम से कम दो महत्त्वपूर्ण सफलताएं मिलीं; सितंबर 1947 में उनके उपवास ने कलकत्ता में दंगे बंद करवा दिए और जनवरी 1948 में उन्होंने दिल्ली में सांप्रदायिक

शांति क़ायम कर दी. इसके कुछ दिनों बाद 30 जनवरी की शाम को जब वह एक प्रार्थना सभा में भाग लेने जा रहे थे, तब एक युवा हिंदू कट्टरपंथी नाथूराम गोड्से ने गोली मारकर उनकी हत्या कर दी.

इतिहास में स्थान

गांधी के प्रति अंग्रेज़ों का रुख़ प्रशंसा, कौतुक, हैरानी, शंका और आक्रोश का मिला–जुला रूप था. गांधी के अपने ही देश में, उनकी अपनी ही पार्टी में, उनके आलोचक थे. नरमपंथी नेता यह कहते हुए विरोध करते थे कि वह बहुत तेज़ी से बढ़ रहे हैं; युवा गरमपंथियों की शिकायत थी कि वह तेज़ नहीं हैं; वामपंथी नेता आरोप लगाते थे कि वह अंग्रेज़ों को बाहर निकालने या रजवाड़ों और सामंतों को समाप्त करने के प्रति गंभीर नहीं हैं; दलितों के नेता समाज सुधारक के रूप में उनके सद्भाव पर शंका करते थे और मुसलमान नेता उन पर अपने समुदाय के साथ भेदभाव का आरोप लगाते थे.

हाल में हुए शोध ने गांधी की भूमिका महान मध्यस्थ और संधि कराने वाले के रूप में स्थापित की है. यह तो होना ही था कि जनमानस में उनकी राजनेता–छवि अधिक विशाल हो, किंतु उनके जीवन का मूल राजनीति में नहीं, धर्म में निहित था और उनके लिए धर्म का अर्थ औपचारिकता, रूढ़ि, रस्म–रिवाज और सांप्रदायिकता नहीं था. उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है, 'मैं इन तीस वर्षों में ईश्वर को आमने–सामने देखने का प्रयत्न और प्रार्थना करता रहा हूं.' उनके गहनतम प्रयास आध्यात्मिक थे, लेकिन अपने अनेक ऐसे ही इच्छुक देशवासियों के समान उन्होंने ध्यान लगाने के लिए हिमालय की गुफ़ाओं में शरण नहीं ली. उनकी राय में वह अपनी गुफ़ा अपने भीतर ही साथ लिए चलते थे. उनके लिए सच्चाई ऐसी वस्तु नहीं थी, जिसे निजी जीवन के एकांत में ढूंढ़ा जा सके; वह सामाजिक और राजनीतिक जीवन के चुनौतीपूर्ण क्षणों में क़ायम रखने की चीज़ थी. अपने लाखों देशवासियों की नज़रों में वह महात्मा थे. उनके आने–जाने के मार्ग पर उन्हें देखने के लिए एकत्र भीड़ द्वारा अंधश्रद्धा से उनकी यात्राएं कठिन हो जाती थीं; वह मुश्किल से दिन में काम कर पाते थे या रात को विश्राम. उन्होंने लिखा है कि महात्माओं के कष्ट सिर्फ़ महात्मा ही जानते हैं.

गांधी के सबसे बड़े प्रशंसकों में अल्बर्ट आइंस्टीन भी थे, जिन्होंने गांधी के अहिंसा के सिद्धांत को अणु के विखंडन से पैदा होने वाली दानवाकार हिंसा की प्रतिकारी औषधि के रूप में देखा. स्वीडन के अर्थशास्त्री गुन्नार मिर्डल ने अविकसित विश्व खंड की समस्याओं के सामाजिक, आर्थिक सर्वेक्षण के बाद गांधी को 'लगभग सभी क्षेत्रों में एक ज्ञानवान उदार व्यक्ति' की संज्ञा दी.

गांधी, राजीव

पूरा नाम राजीव रत्न गांधी, (ज.–20 अग. 1944, बंबई {वर्तमान मुंबई}, भारत; मृ.–21 मई 1991, श्रीपेरुंबुदूर, तमिलनाडु), भारत की कांग्रेस (इ) पार्टी के अग्रणी महासचिव

(1981 से) और अपनी मां की हत्या के बाद भारत के प्रधानमंत्री (1984–89). 1991 में उनकी भी हत्या हो गई.

फ़िरोज़ तथा इंदिरा गांधी के पुत्र राजीव तथा उनके छोटे भाई संजय (1946–80) की शिक्षा–दीक्षा देहरादून के प्रतिष्ठित दून स्कूल में हुई थी. इसके बाद राजीव ने लंदन के इंपीरियल कॉलेज में दाख़िला लिया तथा कैंब्रिज विश्वविद्यालय से इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम पूरा किया (1965). भारत लौटने पर उन्होंने व्यावसायिक पायलट का लाइसेंस प्राप्त किया और 1968 से इंडियन एयरलाइन्स में काम करने लगे.

जब तक उनके भाई जीवित थे, राजीव राजनीति से बाहर ही रहे; लेकिन एक शक्तिशाली राजनीतिक व्यक्तित्व के धनी संजय की 23 जून 1980 को एक वायुयान दुर्घटना में मृत्यु हो जाने के बाद तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी राजीव को राजनीतिक जीवन में ले आईं. जून 1981 में वह लोकसभा उपचुनाव में निर्वाचित हुए और इसी महीने युवा कांग्रेस की राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्य बन गए.

जहां संजय को राजनीतिक रूप से 'निर्मम' और 'स्वेच्छाचारी' माना जाता था (1975–77 में उनकी मां द्वारा आपातकाल की घोषणा में उनकी भूमिका प्रमुख मानी जाती है), वहीं राजीव को सौम्य व्यक्ति माना जाता था, जो पार्टी के अन्य नेताओं से विचार–विमर्श करते थे और जल्दबाज़ी में निर्णय नहीं लेते थे. जब 31 अक्तूबर 1984 को उनकी मां की हत्या हुई, तो राजीव को उसी दिन प्रधानमंत्री पद की शपथ दिलाई गई और उन्हें कुछ दिन बाद कांग्रेस (इ) पार्टी का नेता चुन लिया गया. दिसंबर 1984 के आम चुनाव में उन्होंने पार्टी की ज़बरदस्त जीत का नेतृत्व किया और उनके प्रशासन ने सरकारी नौकरशाही में सुधार लाने तथा देश की अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के लिए ज़ोरदार क़दम उठाए. लेकिन पंजाब और कश्मीर में अलगाववादी आंदोलन को हतोत्साहित करने की राजीव की कोशिश का उल्टा असर हुआ तथा कई वित्तीय साज़िशों में उनकी सरकार के उलझने के बाद उनका नेतृत्व लगातार अप्रभावी होता गया. 1989 में उन्होंने प्रधानमंत्री पद से इस्तीफ़ा दे दिया, लेकिन वह कांग्रेस (इ) पार्टी के नेता पद पर बने रहे. आगामी संसदीय चुनाव के लिए तमिलनाडु में चुनाव प्रचार के दौरान एक आत्मघाती महिला के बम विस्फोट में उनकी मृत्यु हो गई. कहा जाता है कि यह महिला तमिल अलगाववादियों से संबद्ध थी.

ग़ाज़ियाबाद

भूतपूर्व गाज़ीउद्दीन नगर, शहर, ग़ाज़ियाबाद ज़िले का प्रशासनिक मुख्यालय, उत्तर प्रदेश राज्य, उत्तरी भारत. 1740 में स्थापित यह शहर नई दिल्ली से 19 किमी पूर्व में ग्रैंड ट्रंक रोड पर स्थित है. आधुनिक गाज़ियाबाद तेज़ी से विकसित हो रहा औद्योगिक शहर है. यहां से कई श्रमिक रोज़ नई दिल्ली आते–जाते हैं और दिल्ली में ग़ाज़ियाबाद में उत्पादित माल का भी विपणन होता है. यहां के निर्माण और प्रसंस्करण उद्योगों में वनस्पति तेल, इलेक्ट्रोप्लेटिंग, परदे, डीज़ल इंजन, साइकिल, रेल के डिब्बे, भारी चेन, पीतल के ब्रैकेट, लालटेन, शीशे का सामान, मिट्टी के बर्तन, पेंट तथा वार्निश और

टाइपराइटर के रिबन शामिल हैं. शहर में दुधेश्वरनाथ और देवी दुर्गा के मंदिर तथा कई बिखरे हुए मुस्लिम भग्नावशेष मौजूद हैं. ग़ाज़ियाबाद में कई शैक्षिक संस्थान हैं, जिनमें इंस्टिट्यूट ऑफ़ मैनेजमेंट टेक्नोलॉजी, ऐडवांस इंस्टिट्यूट ऑफ़ मैनेजमेंट, ए. के.जी. इंजीनियरिंग कॉलेज, ग्रेजुएट स्कूल ऑफ़ बिजनेस ऐंड एडमिनिस्ट्रेशन, इंस्टिट्यूट ऑफ मैनेजमेंट स्टडीज़, इंस्टिट्यूट ऑफ़ प्रोडक्टिविटी ऐंड मैनेजमेंट और एम.एम.एच. महाविद्यालय शामिल हैं. गाजियाबाद सड़क और रेलमार्ग द्वारा उत्तर भारत के महत्त्वपूर्ण शहरों से जुड़ा है.

राज्य के उत्तरी हिस्से में स्थित गाजियाबाद ज़िले (2,600 वर्ग किलोमीटर) की स्थापना 1976 में हुई थी. यह गंगा के ऊपरी मैदान का हिस्सा है, जिसे ऐतिहासिक रूप से सप्त सिंधु (सात नदियां) के पूर्व में स्थित भूमि के रूप में जाना जाता है. यह एक समतलीय मैदानी क्षेत्र है, जिससे होकर बारहमासी नदी धाराएं बहती हैं. यहां की अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान है; फ़सलों में अनाज, दलहन, गन्ना और तिलहन शामिल हैं. उद्योगों में चीनी, शराब, वनस्पति तेल, वस्त्र, काग़ज़, कृषि उपकरण, पंखे, रेडिएटर, बिजली के सामान, रसायन और लोहे तथा स्टील के बर्तनों का उत्पादन होता है. चावल, दाल और वनस्पति तेल की मिलें; हथकरघा बुनाई और रेशम की बुनाई यहां के कुटीर उद्योग हैं. जनसंख्या (2001) न.नि. क्षेत्र 9,68,521; ज़िला कुल 32,89,540.

ग़ाज़ीपुर

नगर, ग़ाज़ीपुर ज़िले का प्रशासनिक मुख्यालय, उत्तर प्रदेश राज्य, उत्तर भारत. वाराणसी के पूर्वोत्तर में गंगा के तट पर बसे इस नगर का प्राचीन नाम गाधीपुर है, जिसे 1330 ई. में मुस्लिम शासक ग़ाज़ी मलिक के सम्मान में ग़ाज़ीपुर किया गया. ब्रिटिश शासन के अंतर्गत यह सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नदी बंदरगाह था, जिसकी पुरानी छावनी में अब एक महाविद्यालय, एक गिरजाघर, एक बाज़ार और ब्रिटिश वाइसरॉय लॉर्ड कॉर्नवालिस (मृ.–1805) की क़ब्र है. ग़ाज़ीपुर में कृषि मंडी है तथा इत्र बनाने और हथकरघा सहित कुछ उद्योग भी हैं. यह नगर एक बड़े सड़क मार्ग तथा दो रेलमार्गों पर स्थित है. ग़ाज़ीपुर ज़िले का क्षेत्रफल 3,381 वर्ग किमी है. यह उस कछारी मैदान में आता है, जहां से गंगा नदी गुज़रती है. बार–बार बाढ़ और सूखे की चपेट में आने के बावजूद इस ग़रीब जिले में कई फसलें होती हैं. जनसंख्या (2001) नगर 95,243; जिला कुल 30,49,337.

गाणपत्य

गूढ़ हिंदू संप्रदाय के सदस्य, जो गजानन गणेश (जिन्हें गणपति भी कहते हैं) को परम देवता मानकर उनकी पूजा करते हैं. लगभग 10वीं शताब्दी में यह संप्रदाय अपने चरम पर था और इसने सभी महत्त्वपूर्ण कार्यों और धार्मिक अनुष्ठानों के प्रारंभ में संतुष्ट किए जाने वाले महत्त्वपूर्ण देवता के रूप में गणेश की स्थापना की. इस संप्रदाय ने

गणेश को समर्पित मंदिर बनवाए, जिनमें सबसे बड़ा, तिरुचिरापल्ली (तमिलनाडु) में चट्टानों को काटकर बनाया गया मंदिर उच्चि–पिल्लैयार कोविल है.

गणेश की पूजा उनकी मूर्ति के समक्ष ध्यान के द्वारा और बिना ध्यान किए फल फूल अर्पित करके, दोनों तरीके से की जाती है. इस संप्रदाय के सदस्य माथे पर गोल लाल टीका लगाते हैं और कंधों पर हाथी का सिर और दांत का चिह्न अंकित करवाते हैं.

गॉन्डोफ़र्नीज़

(उत्कर्ष– पहली शताब्दी), अराकेशिया, काबुल और गांधार (वर्तमान अफ़ग़ानिस्तान व पाकिस्तान) में शासन करने वाले भारतीय–पार्थियन राजा. कुछ विद्वान इनके नाम गॉन्डोफ़र्नीज़ को इनके आर्मेनियाई रूप गेथास्पर या गास्पर भी मानते हैं, जो पूर्व से ईसा मसीह के जन्मोत्सव में पहुंचकर उनकी पूजा करने वाले तीन बुद्धिमान व्यक्तियों में से एक का पारंपरिक नाम है.

गॉन्डोफ़र्नीज़ के बारे में पहली जानकारी अप्रमाणिक *ऐक्ट्स ऑफ़ टॉमस द एपॉसल* के ज़रिये मिलती है, जिसमें कहा गया है कि संत टॉमस गॉन्डोफ़र्नीज़ के दरबार में गए, जहां उन्हें शाही महल बनाने की ज़िम्मेदारी सौंपी गई, लेकिन निर्माण के लिए दी गई राशि को लोक कल्याण में खर्च करने के कारण उन्हें बंदी बना लिया गया. कहानी के अनुसार, इसी दौरान राजा के भाई गैड की मृत्यु हो गई और फ़रिश्तों ने उन्हें स्वर्ग ले जाकर संत टॉमस के अच्छे कर्मों द्वारा निर्मित महल दिखाया; गैड को फिर से जीवन प्रदान किया गया और उन्होंने व गॉन्डोफर्नीज ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया.

गॉन्डोफ़र्नीज़ के सिक्के, जिनमें से कुछ पर उनका भारतीय नाम गुंदफ़र्न अंकित है, यह संभावना दर्शाते हैं कि उन्होंने पूर्वी ईरान और पश्चिमोत्तर भारत, दोनों पर एकछत्र शासन किया होगा. तख़्त–ए–बही (पेशावर के निकट) के अभिलेख के अनुसार, गॉन्डोफ़र्नीज़ ने कम से कम 26 वर्षों तक शासन किया, जो संभवतः 19 से 45 ई. तक रहा.

गायकवाड़ वंश

गायकवार या गाइकवाड़ भी लिखा जाता है, भारतीय शासक परिवार और इसके प्रमुख की उपाधि, जिसकी राजधानी गुजरात राज्य के बड़ौदा (वर्तमान वडोदरा) में थी. यह रियासत 18वीं सदी के मराठा महासंघ का एक ताक़तवर घटक बन गई. गायकवाड़ वंश की स्थापना 1740 में दामाजी I के द्वारा की गई थी. अंतिम गायकवाड़ सयाजीराव III का निधन 1939 में हुआ.

गाय की पवित्रता

हिंदू धर्म में यह विश्वास है कि गाय देवत्व और प्राकृतिक कृपा की प्रतिनिधि है और इसलिए इसकी रक्षा तथा पूजा की जानी चाहिए.
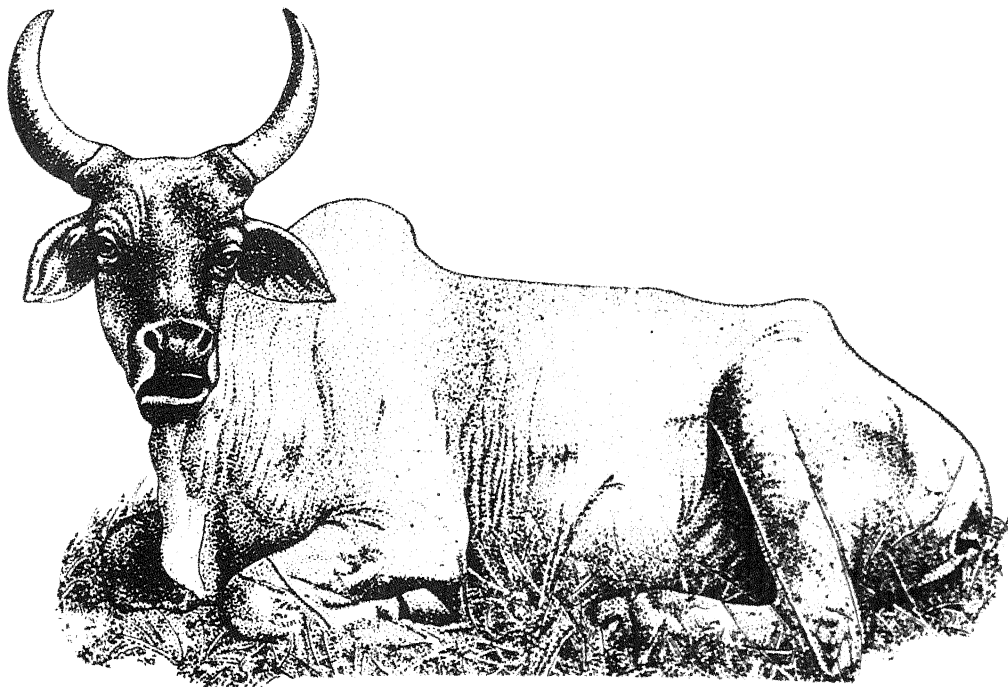
गाय
ई.बी. इंकॉ.

हिंदू धर्म में गाय की पूजा का मूल आरंभिक वैदिक क़ाल में खोजा जा सकता है. भारोपीय लोग, जिन्होंने दूसरी सहस्राब्दी ई.पू. में भारत में प्रवेश किया, पशुपालक थे. पशुओं का बड़ा आर्थिक महत्त्व था, जो वैदिक धर्म में भी दिखाई देता है. यद्यपि प्राचीन भारत में गायों और बैलों की बलि दी जाती थी और उनका मांस खाया जाता था, लेकिन दुधारू गायों की बलि क्रमशः बंद की जा रही थी, जैसे *महाभारत व मनु स्मृति* के हिस्सों में और *ऋग्वेद* में दुधारू गाय को पहले से ही 'अवध्य' कहा गया था. गाय की पूज्यता का संकेत उपचार, शुद्धिकरण और प्रायश्चित के संस्कारों में *पंचगव्य,* गाय के पांच उत्पाद, दूध, दही, मक्खन, मूत्र और गोबर के प्रयोग से मिलता है.

बाद में अहिंसा के आदर्श के उदय के साथ गाय अहिंसक उदारता के जीवन का प्रतीक बन गई. साथ ही इस तथ्य के आधार पर कि उसके उत्पाद पोषण प्रदान करते हैं, गाय को मातृत्व और धरती मां से भी संबद्ध किया गया. गाय को पहले पहल ब्राह्मण (या पुरोहित) वर्ग के साथ भी जोड़ा गया और उसे मारना कभी–कभी (ब्राह्मणों द्वारा) 'ब्रह्म हत्या' जैसा निंदनीय कार्य माना जाता था. ईसा की पहली शताब्दी के मध्य में गुप्त राजाओं द्वारा गाय की हत्या करने पर मृत्युदंड का प्रावधान किया गया और 20वीं सदी में भी कई हिंदू शासकों के राज्यों में गो–हत्या के विरुद्ध क़ानून बने रहे.

गाय का विशिष्ट संबंध कई देवताओं, विशेषकर शिव (जिनका वाहन बैल है), इंद्र (मनोकामना पूर्ण करने वाली गाय, कामधेनु से निकट से संबद्ध), कृष्ण (अपनी युवावस्था में एक ग्वाले) और सामान्य रूप से देवियों के साथ (उनमें से कई के मातृवत गुणों के कारण) जोड़ा जाता है

19वीं शताब्दी के बाद के दशकों में, विशेषकर उत्तरी भारत में एक गो–रक्षा आंदोलन शुरू हुआ, जिसने हिंदुओं को एकीकृत करने और एक समूह के रूप में उन्हें मुसलमानों से अलग करने का प्रयास यह मांग करके किया कि सरकार गो–हत्या पर प्रतिबंध लगाए. राजनीतिक और धार्मिक उद्देश्यों का यह घालमेल समय–समय पर कई दंगों का कारण बना और अंततः 1947 में भारतीय उपमहाद्वीप के विभाजन में भी इसकी भूमिका रही.

ग़ायब

(अरबी शब्द, अर्थात अनुपस्थित या छिपा हुआ), इस्लामी सिद्धांत, विशेषकर इस्ना अशारिया जैसे शिया संप्रदायों में मान्य. यह शब्द 12वें और अंतिम इमाम मुहम्मद अल महदी अल–हज्जा के 878 ई. में विलुप्त होने से संबंधित है.

ग़ायब का आमतौर पर किसी ऐसे व्यक्ति के लिए उपयोग किया जाता है, जिसे ईश्वर ने दुनिया से वापस बुला लिया हो और जो साधारण मनुष्य की आंखों से अदृश्य हो. इस प्रकार के वरदान प्राप्त का जीवन आश्चर्यजनक रूप से ईश्वर द्वारा कई पीढ़ियों, यहां तक कि शताब्दियों लंबा माना जाता है. शिया मुसलमानों का मानना है कि हालांकि उनके इमाम अदृश्य हैं, लेकिन वह अब भी जीवित हैं तथा अपने अनुयायियों को सही रास्ता दिखाने के लिए समय–समय पर मानव समाज में वापस लौटते हैं. शियाओं के अनुसार, महदी का ग़ायब तब समाप्त होगा, जब वह संसार के अंतिम दिनों में आख़िरी बार प्रकट होंगे.

शियाओं के विपरीत सूफ़ियों का मानना है कि ग़ायब का अर्थ दिल में ईश्वर के अलावा किसी और विचार की अनुपस्थिति है. यह शारीरिक अस्तित्व का फ़ानी (गुज़र जाना) होना है. सूफ़ियों के लिए ग़ायब कोई लक्ष्य नहीं है, बल्कि यह एक चरण है, जो स्वतः ईश्वर की उपस्थिति की ओर ले जाता है.

गायोमार्त

अवेस्ताई में गया मारेतान, 'नश्वर जीवन', बाद के पारसी उत्पत्ति साहित्य में पहले मनुष्य और मनुष्य जाति के आदि जनक. गायोमार्त की आत्मा आदियुगीन सांड के साथ उस काल में तीन हज़ार वर्षों तक रही, जब सृष्टि अमूर्त या आध्यात्मिक मात्र थी. उनके अस्तित्व मात्र से सृष्टि पर हमले की इच्छा रखने वाली दुरात्मा अर्हिमन अचल हो गई. इसके बाद अहुर मज़्दा ने गायोमार्त के अवतार की रचना की– सफ़ेद और चमकदार, सूर्य के समान प्रकाशमान –और सभी उत्पन्न वस्तुओं में से सिर्फ़ उनमें तथा आदियुगीन सांड में वह बीज रखा, जिसकी उत्पत्ति अग्नि से हुई थी.

अहुर मज़्दा ने अर्हिमन के आक्रमण से गायोमार्त को राहत के लिए नींद का वरदान दिया. लेकिन 30 वर्षों के आक्रमणों के बाद अर्हिमन ने गायोमार्त का विनाश कर दिया. उनका शरीर पृथ्वी की धातु और खनिजों में परिवर्तित हो गया. स्वर्ण उनका बीज था और उसी से मानवजाति की उत्पत्ति हुई.

गारो पहाड़ियां

भौतिक क्षेत्र, पश्चिमी मेघालय राज्य, पूर्वोतर भारत. इसमें शिलांग पठार का पश्चिमी छोर शामिल है, जिसकी ऊंचाई 1,400 मीटर तक है. ब्रह्मपुत्र नदी की विभिन्न सहायक नदियों द्वारा यहां का जल निकास होता है और यह अत्यधिक बारिश और सघन वनों का इलाक़ा है. इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है. धान, कपास, साल, बांस और लाख प्रमुख उत्पाद हैं. यहां बड़ी मात्रा में कोयला और चूना–पत्थर तथा कुछ मात्रा में पेट्रोलियम भी मिलता है. इस क्षेत्र में रहने वाले वंश एक जटिल मातृवंशीय सामाजिक व्यवस्था का पालन करते हैं. यहां की जनसंख्या मुख्यतः गारो ही है.

ग़ालिब, मिर्ज़ा असदुल्ला ख़ां

मिर्ज़ा असदुल्ला ख़ां ग़ालिब
सौजन्य : भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण

(ज.–27 दिसं. 1797, आगरा, भारत; मृ.–15 फ़र. 1869, दिल्ली), फ़ारसी भाषा में लिखने वाले बेहद मशहूर शायर, जो उर्दू में लिखी गई अपनी शायरी, ख़त और गद्य के लिए समान रूप से विख्यात हैं.

एक जागीरदार परिवार में पैदा हुए ग़ालिब ने अपनी युवावस्था ऐशो–आराम में बिताई, बाद में ब्रिटिश सरकार ने उनके लिए छोटी पेंशन तय की, लेकिन उन्हें निर्धनता और कठिनाई का सामना करना पड़ा. अंततः उन्हें 1850 में मान्यता मिली, जब उन्हें अंतिम मुग़ल बादशाह बहादुर शाह II का शाही शायर नियुक्त किया गया.

ग़ालिब की बेहतरीन शायरी तीन रूपों में लिखी गई है; गज़ल (प्रेमगीत), मसनवी (शिक्षाप्रद या रहस्यात्मक नज़ीर) और क़सीदा (प्रशंसात्मक लेखन). उनकी आलोचना करने वाले उन पर आम आदमी की समझ के परे फ़ारसी की अस्पष्ट और अलंकृत शैली में लिखने का आरोप लगाते थे, किंतु उनका लेखन जनप्रिय हुआ और आज भी है. उनकी शायरी ईश्वर को सर्वशक्तिमान मानती है और दुनिया के दुःख–दर्द का जवाब मांगती है.

गॉल्फ़

एकल प्रतियोगियों द्वारा खेला जाने वाला खेल, जिसका उद्देश्य एक छोटी, सख़्त गेंद को एक छड़ीनुमा क्लब से छेदों की श्रृंखला की ओर व उनके अंदर धकेलना होता है. सबसे कम प्रहारों में गेंद को छेद में डालने वाला खिलाड़ी विजेता बनता है. यह खेल एक खुले मैदान में, जिसमें 9 अथवा 18 प्रहार क्षेत्र व उनके छेद होते हैं, खेला जाता है.

इस खेल का उद्‌भव स्कॉटलैंड में हुआ व इसने अपनी अस्पष्ट प्राचीनता से विश्वव्यापी लोकप्रियता तक का सफ़र तय किया है. इसके खिलाड़ी मात्र मनोरंजन से लेकर टेलीविज़न पर प्रसारित लोकप्रिय व्यावसायिक प्रतिस्पर्द्धाओं तक प्रत्येक स्तर के गॉल्फ़ में भाग लेते हैं. किंतु इसके आकर्षण के बावजूद गॉल्फ़ आम आदमी का खेल नहीं है; इसके लिए अत्यधिक निपुणता व खेल सामग्री में लागत व प्रशिक्षण शुल्क की आवश्यकता है, जिसे कोई सामान्य व्यक्ति शायद सार्थक नहीं मानेगा. इसने इसे उच्च वर्ग का शौक़ बना दिया है.

इस खेल का पहला लिखित उल्लेख 1457 में मिलता है, जब राजा जेम्स II के दरबार ने निर्णय किया कि 'फ़्यूट–बॉल और गॉल्फ़, दोनों की तीव्र निंदा की जानी चाहिए' क्योंकि ये राज्य की रक्षा के लिए आवश्यक धनुर्विद्या के अभ्यास में बाधक थे. ऐसे ही निर्णय 1471 व 1491 में भी पारित किए गए थे; इन क़ानूनों का एक सहज निहितार्थ यह था कि गॉल्फ़ स्कॉटलैंड में मध्य 15वीं शताब्दी से भी पहले एक लोकप्रिय खेल बन चुका था.

इसमें कोई संदेह नहीं है कि एक व्यवस्थित खेल के रूप में गॉल्फ़ का विकास निश्चित रूप से ब्रिटिश था और ब्रिटेन ने खेल के सबसे पहले महान खिलाड़ी पैदा किए. जब स्कॉटलैंड और फिर इंग्लैंड में प्रारंभिक गॉल्फ़ संगठनों या संघों की स्थापना हुई, तब व्यावसायिक खिलाड़ियों का एक समूह उदित हुआ, जिनमें से कई असाधारण गॉल्फ़ खिलाड़ी थे, जो सभी प्रतियोगियों को हराकर अपने समय के सारे लोकप्रिय इनामी मुक़ाबलों को जीत लेते थे. सेंट एंड्रयूज़ रॉबर्टसन को अपने समय का महानतम गॉल्फ़ खिलाड़ी माना जाता था. गॉल्फ़ में जीते जा सकने वाले आर्थिक पारितोषिकों में लगभग 1950 के बाद भारी बढ़ोत्तरी के साथ ही अन्य देशों के खिलाड़ी भी शीर्ष प्रतियोगिताओं में भाग लेने लगे.

खेल की सबसे प्रतिष्ठित प्रतियोगिताएं ब्रिटिश द्वीपों की ओपन व शौक़िया प्रतियोगिताएं, अमेरिका की ओपन, शौक़िया, प्रोफ़ेशनल गोल्फ़र्स एसोसिएशन (पी.जी.ए.) और मास्टर्स हैं. वर्षों से जैक निकलॉस, स्टीव बैलेस्टेरॉस, निक फ़ेल्डो, आर्नल्ड पामर, ग्रेग नॉर्मन, बर्नार्ड लैंगर और हाल में अर्नी एल्स व टाइगर वुड्स ने अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में सर्वोच्चता बनाए रखी है.

भारत में गॉल्फ़

ग्रेट ब्रिटेन के बाहर भारत में प्राचीनतम क्लब, रॉयल कलकत्ता गॉल्फ़ क्लब, की स्थापना 1829 में की गई थी और रॉयल बॉम्बे गॉल्फ़ क्लब लगभग 12 वर्षों बाद अस्तित्व में आया. रॉयल कलकत्ता गॉल्फ़ क्लब ने भारत के लिए एक शौक़िया प्रतियोगिता प्रारंभ की और दोनों संघों ने सुदूर पूर्व में कई संघों का मार्ग प्रशस्त किया.

यद्यपि भारत में यह खेल शेष विश्व में इसकी शुरुआत के काफ़ी पहले आरंभ हुआ था, लेकिन यह देश कुछ विजेता खिलाड़ी पाने के लिए कोशिश ही करता रहा है. 20वीं शताब्दी के अंत में एक पीजीए स्पर्द्धा भारत में आयोजित हुई और लगभग इसी समय कुछ भारतीयों ने अंतर्राष्ट्रीय मुक़ाबलों में अपना स्थान बनाना आरंभ किया.

अली शेर, बसद अली, अर्जुन अटवाल, ज्योति रंधावा और जीव मिल्खा सिंह अंतर्राष्ट्रीय गॉल्फ़ में प्रसिद्ध भारतीय खिलाड़ी हैं और उनके प्रदर्शन ने देश में इस खेल के प्रति काफ़ी रुचि जगाई है. लेकिन किसी भारतीय खिलाड़ी ने अब तक कोई प्रमुख प्रतियोगिता नहीं जीती है या राष्ट्रीय अथवा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर वृहद रूप से ध्यान आकृष्ट नहीं किया है. हाल में बढ़ी इस खेल की लोकप्रियता निश्चित ही एक सकारात्मक संकेत है.

गुइंडे लिंक्स, चेन्नई में खेलते हुए ललिथा बालासुब्रह्मण्यन
सौजन्य : *हिंदुस्तान टाइम्स / पी.टी.आई.*

गावस्कर, सुनील मनोहर

(ज.–10 जुला. 1949, बंबई {वर्तमान मुंबई}, भारत), क्रिकेट में अब तक के महानतम सलामी बल्लेबाज़ों में से एक, जिन्होंने 46 टेस्ट मैचों में भारतीय टीम की कुशलतापूर्वक कप्तानी की. लिट्ल मास्टर (उनके साढ़े पांच फुट क़द के कारण) के उपनाम से विख्यात गावस्कर 16 वर्षों तक क्रिकेट जीवन में सक्रिय रहे. अपना पहला मैच खेलने के कुछ ही वर्षों के भीतर वह भारत की कमज़ोर बल्लेबाज़ी को उठाकर उसका एक मज़बूत आधारस्तंभ बन गए और भारत की अधिकांश पारियां उनके ही खेल पर निर्भर करने लगीं.

सुनील गावस्कर
सौजन्य : *द हिंदू*

गावस्कर ने बंबई में अपने टेस्ट खिलाड़ी चाचा माधव मंत्री के निर्देशन में क्रिकेट खेलना शुरू किया. घरेलू क्रिकेट में उनके प्रभावशाली प्रदर्शन ने जल्दी ही राष्ट्रीय स्तर पर पहचान बना ली और 1971 में वेस्टइंडीज़ के अत्यंत संघर्षमय दौरे के लिए उनका चयन हो गया. न सिर्फ़ इस दौरे में, जिसमें उन्होंने 154.80 रन प्रति मैच की औसत से 774 रन बनाए, बल्कि इसके बाद के दौरों में भी गावस्कर ऐसे बल्लेबाज़ थे, जिन्हें वेस्टइंडीज़ के ख़तरनाक गेंदबाज़ कभी रोक नहीं सके. 34 टेस्ट शतकों के उनके विश्व कीर्तिमान में 13 शतक वेस्टइंडीज़ के ख़िलाफ़ बनाए गए थे. गावस्कर शॉर्टपिच गेंदबाजी का सामना करने में उस्ताद थे और बहुत कम तेज़ गेंदबाज़ उन पर पूरी तरह हावी होने का दावा कर सकते थे. उन्होंने कई कीर्तिमान तोड़े और 236 रन पर नाबाद रहने का अपना भारतीय टेस्ट रिकॉर्ड क़ायम किया, जो काफ़ी समय तक बना रहा. गावस्कर अकेले भारतीय हैं,

जिन्होंने तीन बार टेस्ट मैचों में दो–दो शतक बनाए. ड्राइव और कट करने में माहिर गावस्कर टेस्ट मैचों में 10 हजार रन बनाने वाले पहले खिलाड़ी थे. उनके अलावा सिर्फ़ ऐलन बॉर्डर ऐसा करने में कामयाब हुए हैं.

गिद्दा

परंपरागत ग्रामीण नृत्य, जो पंजाब, भारत और पाकिस्तान की महिलाओं द्वारा त्योहार एवं फ़सल बुआई व कटाई के समय किया जाता है. एक घेरे में आयोजित यह नृत्य महिलाओं की शारीरिक (विशेषकर बाहें एवं हाथ) गति की मनोहारिता तथा इसके साथ गाए जाने वाले लयात्मक गीतों की मधुरता के लिए उल्लेखनीय है.

पंजाब का रंगारंग गिद्दा नृत्य
सौजन्य : पंजाब पर्यटन विभाग

गिरगिट

सरीसृप परिवार *कैमेलियोनटिडी* का एक सदस्य, पुराविश्व का एक समूह, शुरुआत में पेड़ों पर रहने वाली छिपकलियां, जो मुख्यतः अपने शरीर के रंग बदलने की क्षमता, युग्मित अंगुलिकाओं (विपरीत दिशा में दो या तीन के समूह में युग्मित); अग्र दंतमाला (जबड़े के छोर पर उगे दांत) और एक लंबी, पतली तथा फैल सकने वाली जीभ के लिए जानी जाती हैं. नक़ली गिरगिट या एनोल, जो नई दुनिया की *इगुआनिडे* परिवार की छिपकली है, को भी गिरगिट की संज्ञा दी जाती है.

असली गिरगिट दो जातियों में वर्णित हैं : *ब्रूकेसिया* (19 प्रजातियां) और *कैमेलियो* (70 प्रजातियां). इनमें से लगभग आधी प्रजातियां सिर्फ़ मैडागास्कर में पाई जाती हैं; अन्य प्रजातियां आमतौर पर अफ़्रीका में सहारा के दक्षिण में मिलती हैं. पश्चिमी एशिया में दो प्रजातियां पाई जाती हैं, एक दक्षिण भारत और श्रीलंका (भूतपूर्व सिलोन) में और दूसरी प्रजाति (यूरोपीय गिरगिट, *कैमेलियो कैमलियॉन*) निकट पूर्व से पश्चिम की ओर उत्तरी अफ़्रीका से लेकर दक्षिणी स्पेन तक पाई जाती है.

अधिकांश गिरगिट 17–25 सेमी लंबे होते हैं; अधिकतम लंबाई 60 सेमी तक हो सकती है. शरीर दोनों ओर से चपटा होता है; कुछ प्रजातियों में कभी–कभी घुमावदार पूंछ भी पाई जाती है. गिरगिट की बाहर की ओर निकली हुई आंखें एक–दूसरे से भिन्न दिशा में घूम सकती हैं. कुछ गिरगिटों का सिर हेलमेट के आकार का होता है.

कुछ प्रजातियों के सिर पर सुस्पष्ट सजावट होती है, जिसमें सामने की ओर निकले हुए तीन तक सींग हो सकते हैं. ऐसी संरचनाएं अधिक स्पष्टता से या केवल नर गिरगिटों में ही पाई जाती हैं. कम से कम कुछ प्रजातियां तो अपने क्षेत्र की रक्षा करती हैं : प्रमुख नर अपने शरीर को फैलाकर, अपने गले को फुलाकर और सिर की कलग़ियों को खड़ा कर या हिलाकर अपने इलाक़े में घुसने वाले दूसरे नर को चेतावनी

देता है. अगर यह प्रदर्शन घुसपैठिए को रोकने में सफल नहीं होता, तो रक्षक उस पर हमला करता है और अपने जबड़े चटकाता है.

प्रत्येक प्रजाति रंगों की विशेष श्रृंखला में अपना रंग परिवर्तित कर सकती है. यह प्रक्रिया स्वचालित तंत्रिका तंत्र द्वारा नियंत्रित रंग के कणों से भरी कोशिकाओं (मेलानोफ़ोर कोशिकाओं) में कणों के फैलाव या जमाव से होती है. कई गिरगिट तेज़ी से अपनी त्वचा पर उसके रंग से कम या ज़्यादा गहरे हरे, पीले, दूधिया या गहरे भूरे रंग के धब्बे डाल सकते हैं. रंग परिवर्तन प्रकाश और तापमान जैसे पर्यावरणीय कारकों, भय या दूसरे गिरगिट के साथ युद्ध में जीतने या पराजित होने से उत्पन्न भावनाओं से प्रभावित होता है. यह एक आम भ्रांति है कि गिरगिट पृष्ठभूमि से अपना रंग मिलाने के लिए रंग बदलते हैं.

इनका प्रमुख भोजन कीट हैं, लेकिन बड़े गिरगिट पक्षियों को भी खा जाते हैं. अधिकांश प्रजातियां अंडे देती हैं और वृक्ष या झाड़ी पर अपने निवास स्थान से उतरकर एक बार में दो से चालीस तक अंडे, मिट्टी या सड़ती हुई लकड़ियों में दबा देती हैं. अंडों से बच्चे निकलने में तीन महीने का समय लगता है. दक्षिण अफ़्रीका की कुछ प्रजातियां सीधे बच्चों को ही जन्म देती हैं.

गिरनार पहाड़ियां

कठियावाड़ प्रायद्वीप का भौतिक भूभाग, गुजरात राज्य, पश्चिमी–मध्य भारत. गिरनार की एक पहाड़ी की तलहटी में अशोक के शिलालेख (तीसरी शताब्दी ई.पू.) से युक्त एक चट्टान है. मौर्य शासक चंद्रगुप्त (चौथी शताब्दी ई.पू. का उत्तरार्द्ध) द्वारा सुदर्शन नामक झील बनाए जाने का उल्लेख भी इसी शिलालेख में मिलता है. इन दो महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रमाणों के आसपास की पहाड़ियों पर सोलंकी वंश (961–1242) के राजाओं द्वारा बनवाए गए कई जैन मंदिर स्थित हैं.

गिर पर्वतश्रेणी

पश्चिमी गुजरात की निम्न पर्वतश्रेणी, दक्षिणी काठियावाड़ प्रायद्वीप, पश्चिमी–मध्य भारत. यह श्रेणी अत्यधिक ऊबड़–खाबड़ है और दक्षिण में समुद्र की ओर तीखी ढलान तथा उत्तर में भीतरी भूमि की ओर अपेक्षाकृत कम निचली है. यहां से उत्तर दिशा में निचली, संकरी, विभक्त पर्वतश्रेणी फैली हुई है, विशाल गिरनार पहाड़ियों में गोरखनाथ शिखर (1,117 मीटर) स्थित है, जिसे एक मृत ज्वालामुखी माना जाता है. गिर पर्वतश्रेणी की एक पहाड़ी पर गिरनार का प्राचीन जैन मंदिर (ऐतिहासिक नाम रैवट या उलाड़थेट) होने के कारण इस पर्वतश्रेणी को पवित्र माना जाता है. यह मंदिर एक प्रमुख तीर्थस्थल है. यह पर्वतश्रेणी साल और ढाक के वृक्षों से भरे जंगलों से ढकी हुई है.

गिरनार की पहाड़ियों से पश्चिम और पूर्व दिशा में भादस, रोहजा, शतरूंजी और घेलो नदियां बहती हैं. इन पहाड़ियों पर मुख्यतः भील और डुबला लोगों का निवास है. विरल

आबादी वाले इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था में जीविका के लिए की जाने वाली कृषि की प्रधानता है; यहां की फ़सलों में अनाज, मूंगफली और कपास शामिल है. बड़े पैमाने पर कुछ उद्योग हैं, जिनमें वस्त्र तथा लोहे व इस्पात के फ़र्नीचर का निर्माण होता है. कुटीर उद्योगों में बढ़ईगिरी, लकड़ी पर नक़्क़ाशी, पीतल के बर्तनों पर वार्निश का काम, कढ़ाई (काठियावाड़ी नमूनों के रूप में विख्यात) और ऊन की बुनाई शामिल है. एशियाई सिंहों के लिए विख्यात गिर वन राष्ट्रीय उद्यान इसी क्षेत्र में स्थित है. खंबलिया, धारी विसावदर, मेंदरदा और आदित्याणा यहां के प्रमुख नगर हैं.

गिर वन राष्ट्रीय उद्यान

राष्ट्रीय उद्यान, गुजरात राज्य, पश्चिम–मध्य भारत. जूनागढ़ नगर से 60 किमी दक्षिण दक्षिण–पश्चिम में शुष्क झाड़ीदार पर्वतीय क्षेत्र में स्थित इस उद्यान का क्षेत्रफल लगभग 1,295 वर्ग किमी है. यहां की वनस्पति में सागौन, साल और ढाक (*ब्यूटिया फ्रोंडोसा*) जैसे पर्णपाती वृक्षों सहित कांटेदार जंगल शामिल हैं.

गिर वन संरक्षित क्षेत्र की स्थापना 1913 में एशियाई सिंहों के बचे हुए सबसे बड़े समूह को संरक्षण प्रदान करने के लिए की गई थी और इसे 1965 में अभयारण्य का दर्जा दिया गया. स्थापना के बाद से यहां सैकड़ों एशियाई सिंहों का जन्म हो चुका है; यहां

गिर वन में एक शेर
सौजन्य : वेंकट राम नरसैया

आगंतुकों को सुरक्षित गाड़ियों में निर्देशित यात्रा के ज़रिये सिंह दिखाए जाते हैं. यहां के अन्य प्राणियों में तेंदुआ, जंगली सूअर, चित्तीदार हिरन, नीलगाय, चौसिंगा हिरन और चिंकारा शामिल हैं. इस क्षेत्र के मध्य में स्थित विशाल जलाशय में कुछ मगरमच्छ भी हैं. इस उद्यान में तुलसी–श्याम झरने के पास भगवान कृष्ण का एक छोटा सा मंदिर भी है.

गिरिडीह

नगर, झारखंड राज्य, पूर्वोत्तर भारत. यह हज़ारीबाग शहर से 115 किमी पूर्वोत्तर में उसरी नदी के दोनों ओर स्थित है. 1871 में इस नगर तक पूर्वी रेलवे की एक ब्रांच लाइन का निर्माण किया गया, जिससे समीप के कहारबाड़ी, सेरामपुर और बनाईडीह की खदानों से निकले कोयले की ढुलाई का यह महत्त्वपूर्ण केंद्र बन गया. यहां पर देश की प्रमुख अभ्रक उत्पादन कंपनियों के मुख्यालय और विनोबा भावे विश्वविद्यालय से संबद्ध कई महाविद्यालय हैं.

जिस क्षेत्र में गिरिडीह अवस्थित है, वह छोटा नागपुर इलाक़े का हिस्सा है और इसमें पठारों की श्रृंखला साल तथा सहजन और कहीं–कहीं बांस व बबूल के जंगलों से ढकी हुई है. इस क्षेत्र की लाल मिट्टी बराकर और दामोदर नदी की सहायक धाराओं द्वारा अपवाहित है. स्थानीय अर्थव्यवस्था का आधार कृषि है और कृषि भूमि पठारों के समतल शीर्ष और घाटी के मैदानों तक ही सीमित है. यहां की फ़सलों में चावल, मक्का, रागी (बाजरे की एक क़िस्म), सफ़ेद चना और सब्ज़ियां शामिल हैं.

इस क्षेत्र के उद्योगों में धातु के सामान, रसायन, खाद्य पदार्थ, फ़र्नीचर, घरेलू सामान और बिजली के केबल तथा तार का उत्पादन होता है. तांबा, एपाटाइट, कायनाइट, कोयला, अभ्रक और अन्य खनिजों का उत्खनन होता है. इस क्षेत्र के नगरों की स्थापना और विकास का श्रेय खनन तथा औद्योगिक गतिविधियों को जाता है; इस क्षेत्र में रेलवे का निर्माण मुख्य रूप से खनिज संसाधनों के दोहन के लिए ही हुआ था. जनसंख्या (2001) नगर 98,569; ज़िला कुल 19,01,564.

गिरि, वराहगिरि वेंकट

वराहगिरि वेंकट गिरि
सौजन्य : *द हिंदू*

(ज.–10 अग. 1894, बरहामपुर {वर्तमान ब्रह्मपुर}, भारत; मृ.–24 जून 1980, मद्रास {वर्तमान चेन्नई}), राजनेता, 1969 से 1974 तक भारत के राष्ट्रपति.

गिरि ने खल्लीकोट कॉलेज, बरहामपुर में अपनी शिक्षा आरंभ की और फिर क़ानून की पढ़ाई के लिए डबलिन, आयरलैंड गए. वहां वह सिन फ़ीन आंदोलन में शामिल हो गए तथा 1916 में उन्हें देश निकाला दे दिया गया. भारत लौटने पर वह श्रमिक आंदोलन में शामिल हो गए. वह अखिल भारतीय रेलवे कर्मचारी परिसंघ के महासचिव और बाद में अध्यक्ष बन गए और दो बार कांग्रेस पार्टी से संबद्ध ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अध्यक्ष भी रहे. 1937 में जब कांग्रेस पार्टी ने मद्रास राज्य (वर्तमान तमिलनाडु)

में सरकार बनाई, तो गिरि उसमें श्रम एवं उद्योग मंत्री बने. 1942 में कांग्रेस की सरकारों के इस्तीफ़े और ब्रिटिश विरोधी 'भारत छोड़ो' आंदोलन शुरू होने के बाद वह श्रमिक आंदोलन में लौट आए और बाद में अपने सहकर्मियों के साथ गिरफ्तार किए गए.

भारत के आजाद होने के बाद उन्हें सीलोन (वर्तमान श्रीलंका) में उच्चायुक्त बनाया गया और 1952 में वह लोकसभा के लिए निर्वाचित हुए. उन्हें केंद्र सरकार में श्रम मंत्री बनाया गया, लेकिन 1954 में उन्होंने इस्तीफ़ा दे दिया. इसके बाद गिरि को क्रमशः उत्तर प्रदेश, केरल और मैसूर (वर्तमान कर्नाटक राज्य) का राज्यपाल बनाया गया. 1967 में वह उप–राष्ट्रपति निर्वाचित हुए.

1969 में राष्ट्रपति ज़ाकिर हुसैन की मृत्यु के बाद गिरि कार्यवाहक राष्ट्रपति बन गए और उन्होंने राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव लड़ने की इच्छा व्यक्त की. अब तक मुख्यतः रस्मी रहा यह पद, कांग्रेस पार्टी में दलगत संघर्ष के कारण बहुत महत्त्वपूर्ण हो गया था और पार्टी ने दूसरा उम्मीदवार खड़ा किया; लेकिन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने गिरि का समर्थन किया और वह बहुत कम अंतर से निर्वाचित हो गए.

गीतगोविंद

सर कावासजी जहांगीर संगृहीत *गीतगोविंद*, राजस्थानी शैली की चित्रित पांडुलिपि, लगभग 1620 के एक चित्र में राधा की प्रतीक्षा करते कृष्ण
सौजन्य : लेडी कावासजी जहांगीर

लयबद्ध कविता, जिसमें कृष्ण और उनकी प्रेमिका राधा के प्रेम का वर्णन है, यह अपने उच्च साहित्यिक महत्त्व और धार्मिक लालसा, दोनों के लिए विख्यात है. यह वैष्णवों में (भगवान विष्णु के अनुयायी, कृष्ण जिनके एक अवतार थे), विशेष रूप से लोकप्रिय है. इस कविता की रचना जयदेव ने संस्कृत भाषा में की थी, जो बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन (12वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध) के दरबार से संबद्ध थे.

अत्यंत मौलिक प्रवृत्ति की यह कविता, जिसने कई अन्य नक़लों को प्रेरित किया, आठ–आठ पंक्तियों के चौबीस गीतों के गेय पदों से निर्मित है. ईश्वर के लिए भक्त की उत्कंठा के धार्मिक नाटक को मानवीय प्रणय निवेदन और प्रेम के मुहावरों के माध्यम से दर्शाया गया है. दिव्य प्रेमी राधा और कृष्ण की विषय–वस्तु पर आधारित सबसे पुरानी कविता *गीतगोविंद* है. 16वीं शताब्दी के बंगाली संत चैतन्य को इसके श्लोक बहुत प्रिय थे और आज भी समूचे भारत में भजनों और कीर्तनों में इसे गाया जाता है. 17वीं और 18वीं शताब्दी में *गीतगोविंद,* राजस्थानी तथा पहाड़ी शैली के कई सुंदर लघुचित्रों के लिए प्रेरणा का स्रोत भी रहा.

गीतांजलि

प्रख्यात बांग्ला कवि रबींद्रनाथ टैगोर की कविताओं का संग्रह, 1910 में भारत में प्रकाशित. इसका अंग्रेज़ी अनुवाद *गीतांजलि : सॉन्ग ऑफ़रिंग्स* 1912 में डब्ल्यू.बी.

यीट्स की प्रस्तावना के साथ प्रकाशित हुआ. इस उत्कृष्ट कृति के लिए टैगोर को 1913 में साहित्य के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया. टैगोर ने अपनी कविता में प्रकृति का चित्रण किया है और इनकी अधिकांश कविताओं का मुख्य विषय प्रेम है.

गुंटूर

नगर, गुंटूर ज़िले का प्रशासनिक मुख्यालय, पूर्वोत्तर आंध्र प्रदेश राज्य, दक्षिण भारत, कृष्णा नदी के डेल्टा क्षेत्र में स्थित. इस नगर की स्थापना 18वीं शताब्दी के मध्य में फ़्रांसीसियों द्वारा की गई थी, लेकिन 1788 में अंग्रेज़ों का इस पर स्थायी रूप से अधिकार हो गया. 1866 में यहां नगरपालिका का गठन किया गया. रेलवे जंक्शन और व्यापारिक केंद्र गुंटूर की अर्थव्यवस्था पटसन, तंबाकू और चावल की खेती पर निर्भर है. एक कृषि शोध केंद्र के अलावा यहां कई शैक्षणिक संस्थान हैं, जिनमें बापटलाल इंजीनियरिंग कॉलेज, के.एल. कॉलेज ऑफ़ इंजीनियरिंग, आर.वी.आर. कॉलेज ऑफ़ इंजीनियरिंग, विज्ञान इंजीनियरिंग कॉलेज, एम.बी.टी.एस. राजकीय पॉलिटेक्निक, राजकीय महिला पॉलिटेक्निक, गुंटूर मेडिकल कॉलेज, महात्मा गांधी कॉलेज फ़ॉर पोस्ट ग्रेजुएट कोर्सेज़ और आंध्र विश्वविद्यालय से संबद्ध कई महाविद्यालय हैं. निकट ही 12वीं शताब्दी का भरनप्राथ पहाड़ी दुर्ग स्थित है.

गुंटूर ज़िले का क्षेत्रफल 11,377 वर्ग किमी है और पूर्व तथा उत्तर में यह कृष्णा नदी से घिरा है, जिससे निकलने वाली नहरों से आसपास के ज्वार, मिर्च, मूंगफली और तंबाकू के खेतों की सिंचाई होती है. यहां वनस्पति तेल और कपड़ा मिलें, तंबाकू के कारख़ाने तथा एक सीमेंट कारख़ाना स्थित है. यहां अमरावती और नागार्जुनकोंडा में दर्शनीय प्राचीन बौद्ध स्मारक (पहली से तीसरी शताब्दी के) हैं. जनसंख्या (2001) न. नि. क्षेत्र 5,14,707; ज़िला कुल 44,05,521.

गुंडलाकम्मा नदी

पूर्वी–मध्य आंध्र प्रदेश राज्य, दक्षिण भारत. गुंडलाकम्मा नदी पूर्वी घाट की नल्लामलाई पर्वतश्रेणी से निकलती है. पहाड़ों को पारकर यह मैदानी क्षेत्र में प्रवेश करती है और मरकापुर से पूर्वोत्तर दिशा में बहती हुई बंगाल की खाड़ी के कोरोमंडल तट में 225 किमी दूरी के बाद ओंगोले से 19 किमी पूर्व में यह बंगाल की खाड़ी में गिरती है.

गुजरात

भारतीय राज्य, देश के पश्चिमी समुद्र तट पर स्थित. यह पश्चिम और दक्षिण–पश्चिम में अरब सागर, पश्चिमोत्तर में पाकिस्तान, उत्तर में राजस्थान, पूर्व में मध्य प्रदेश और दक्षिण–पूर्व में महाराष्ट्र से घिरा हुआ है. इसकी समुद्री तटरेखा 1,596 किमी लंबी है और राज्य का कोई भी हिस्सा समुद्र तट से 161 किमी से ज़्यादा दूर नहीं है. राज्य का क्षेत्रफल 1,96,024 वर्ग किमी है. गुजरात की राजधानी गांधीनगर राज्य के सबसे बड़े शहर और सूती वस्त्र के विशालतम केंद्रों में से एक है और यह भूतपूर्व राजधानी

रहे अहमदाबाद के उत्तरी सिरे पर स्थित है. यहीं पर महात्मा गांधी ने अपने अभियानों के मुख्यालय के रूप में साबरमती आश्रम का निर्माण किया था.

गुजरात के नाम की उत्पत्ति गुर्जर (हूणों की एक उपजनजाति मानी जाती है) से हुई है, जिन्होंने आठवीं और नौवीं सदी के दौरान इस क्षेत्र पर शासन किया था. राज्य को इसका वर्तमान स्वरूप 1960 में मिला, जब भूतपूर्व बंबई राज्य भाषाई आधार पर महाराष्ट्र और गुजरात में विभाजित हुआ.

भौतिक एवं मानव भूगोल

भू–आकृति

गुजरात अत्यधिक विषमता वाला राज्य है. इसके पश्चिमी तट और मुंबई (भूतपूर्व बंबई) के उत्तर में नम उर्वर चावल उत्पादक मैदानों से लेकर पश्चिमोत्तर में कच्छ के लगभग वर्षाविहीन लवणीय रेगिस्तान हैं. कच्छ ज़िला दक्षिण में कच्छ की खाड़ी तथा उत्तर व पूर्व में पाकिस्तान व मुख्य भारतीय भूमि से कच्छ के रण द्वारा विभाजित है, जिसका वर्णन लगभग 20,720 वर्ग किमी क्षेत्र में विस्तृत एक विशाल लवणीय दलदल के रूप में बेहतर तरीक़े से किया जा सकता है. वर्षा के मौसम में, चाहे कितनी भी कम वर्षा क्यों न हुई हो, रण में बाढ़ आ जाती है और कच्छ एक द्वीप में परिवर्तित हो जाता है; शुष्क मौसम में यह आंधियों से भरा एक रेतीला नमकीन मैदान है. कच्छ के दक्षिण में काठियावाड़ (सौराष्ट्र) का एक बड़ा प्रायद्वीप है, जो कच्छ की खाड़ी और खंभात की खाड़ी के बीच में है. यह भी एक बंजर क्षेत्र है, जिसके समुद्र तट से ऊपर उठते हुए केंद्र में विरल और झाड़ीदार वनों वाला निचला लहरदार पर्वतीय क्षेत्र है. यहां के प्रमुख नगर अपेक्षाकृत उर्वर क्षेत्र में स्थित हैं, जो पहले छोटे–छोटे राज्यों की राजधानी थे. यहां की मिट्टी ज़्यादातर निम्न कोटि की है, जो कई प्रकार की प्राचीन रवेदार चट्टानों से व्युत्पन्न है, लेकिन उत्कृष्ट भवन निर्माण में काम आने वाला पोरबंदर का पत्थर राज्य के मूल्यवान उत्पादों में आता है. मौसमी नालों के अलावा नदियां नहीं हैं. प्रायद्वीप के दक्षिणी किनारे पर भूतपूर्व पुर्तगाली क्षेत्र दीव है. पूर्वोत्तर गुजरात मुख्यतः छोटे मैदानों और छोटी–छोटी पहाड़ियों वाला क्षेत्र है. राज्य का उच्चतम बिंदु गिरनार की पहाड़ी (1,117 मीटर) में है. यहां वर्षा कम होती है और जनवरी में तापमान लगभग हिमांक बिंदु तक पहुंच जाता है, जबकि गर्मी के मौसम में तापमान 48°से. दर्ज किया गया है. यहां की फ़सलों में मुख्यतः ज्वार–बाजरा और थोड़ी मात्रा में कपास है.

मध्य गुजरात के दक्षिणी हिस्से में वर्षा दर अधिक और तापमान में अंतर कम है; और मिट्टी ज़्यादा उपजाऊ है, जो अंशतः दक्कन क्षेत्र के बैसाल्ट चट्टानों से व्युत्पन्न हुई है. इस क्षेत्र का केंद्र वडोदरा (बड़ौदा) शहर है, जो पहले एक समृद्ध और शक्तिशाली राज्य की राजधानी था और जिसका दक्षिणी हिस्सा अब वडोदरा ज़िला है. यहां की महत्त्वपूर्ण नदी नर्मदा है, जो खंभात की खाड़ी में गिरती है. नर्मदा और तापी (ताप्ती) नदी द्वारा गाद जमा किए जाने के कारण खंभात की खाड़ी की गहराई कम हो गई है और यहां के भूतपूर्व बंदरगाहों का पतन हो गया.

दक्षिणी गुजरात में भरूच और सूरत ज़िले अपनी उर्वर मिट्टी और उच्च क़िस्म की कपास की फ़सलों के लिए प्रसिद्ध हैं. तापी नदी पूर्व दिशा से गहरी खाइयों से होकर सूरत से गुज़रती है. दक्षिणी गुजरात का पूर्वी हिस्सा पहाड़ी है. वास्तव में, पश्चिमी घाट के उत्तरी विस्तार के कारण वर्षायुक्त ग्रीष्म मानसूनी हवाओं से अत्यधिक बारिश होती है. इससे आगे दक्षिण में पर्वत वनाच्छादित हैं. इसी क्षेत्र में छोटा डेंग ज़िला है. तटीय मैदानों में जलवायु में लगभग समानता रहती है और यहां 2,000 मिमी के लगभग वर्षा होती है.

गुजरात में वनक्षेत्र मात्र 10 प्रतिशत है, जो मानवीय गतिविधियों के साथ–साथ कम वर्षा को प्रतिबिंबित करती है. अपेक्षाकृत शुष्क क्षेत्रों में झाड़ीदार जंगल पाए जाते हैं, जहां बबूल अकाकिया, करील, भारतीय बेर और दातुनी झाड़ियां (*सेल्वाडोर पर्सिका*) पाई जाने वाली प्रमुख प्रजातियां हैं. 1,016 मिमी वार्षिक वर्षा दर वाली काठियावाड़ उच्चभूमि और पूर्वोत्तर मुख्यभूमि में सागौन, कत्था, गोंद (*बैकलीगम*), कीली वृक्ष (*एक्सलवुड*) और बंगाल किनो (ब्यूटिया गम) जैसे पर्णपाती वृक्ष पाए जाते हैं. पर्णपाती वन अपेक्षाकृत नम दक्षिणी और पूर्वी पहाड़ियों में केंद्रित हैं. इनसे मुलायम टोमेंटोसा (घन–रोम), वेंगाई पादौक (महोगनी जैसा), मालाबार सीमल और हृदयाकार पत्तियों वाले अदीना जैसी क़ीमती लकड़ियां प्राप्त होती हैं. काठियावाड़ का पश्चिमी तट शैवाल के लिए जाना जाता है, जबकि पूर्वी तट से पपाइरस या पटेरा पौधा (*साइपेरस पपाइरस*) पाया जाता है.

काठियावाड़ के गिर राष्ट्रीय उद्यान में एशियाई प्रजाति की एकमात्र जाति भारतीय सिंह है. कच्छ के छोटे रण के पास एक अभयारण्य में शेष बचे हुए भारतीय जंगली गधे पाए जाते हैं. अहमदाबाद के निकट का नलसरोवर पक्षी अभयारण्य साइबेरिया के मैदानों व अन्य स्थानों से शीत ऋतु में लगभग 140 प्रकार के प्रवासी पक्षियों को अपनी ओर आकर्षित करता है. इनमें सारस, ब्राह्मणी बत्तख़, सोनचिरैया, पेलिकन, पनकौवा, आइबिस, लकलक (*स्टॉर्क*), बगुला और वक शामिल हैं. भारत में कच्छ का रण हंसावर (*फ़्लेमिंगो*) का एकमात्र प्रजनन स्थल है. गुजरात में समुद्री और मीठे पानी की मछलियां पकड़ी जाती हैं. पकड़ी जाने वाली मछलियों में पॉम्फ़्रेट सॉलमन, हिल्सा, ज्यूफ़िश (साइएना), झींगा, बॉम्बे डक (खाद्य मछली) और ट्यूना मछली शामिल हैं.

जनजीवन

गुजराती जनसंख्या में विविध जातीय समूह का मोटे तौर पर इंडिक/भारतोद्भव (उत्तरी मूल) या द्रविड़ (दक्षिणी मूल) के रूप में वर्गीकरण किया जा सकता है. पहले वर्ग में नगर ब्राह्मण, भटिया, भदेला, राबरी और मीणा जातियां (पारसी, मूल रूप से फ़ारस से, परवर्ती उत्तरी आगमन का प्रतिनिधित्व करते हैं), जबकि दक्षिणी मूल के लोगों में भंगी, कोली, डबला, नायकदा व मच्छि–खरवा जनजातियां हैं. शेष जनसंख्या में आदिवासी भील मिश्रित विशेषताएं दर्शाते हैं. अनुसूचित जनजाति और आदिवासी जनजाति के सदस्य प्रदेश की जनसंख्या का लगभग पांचवां हिस्सा हैं. यहां डेंग ज़िला पूर्णतः आदिवासी युक्त ज़िला है. अहमदाबाद ज़िले में अनुसूचित जनजाति का अनुपात सर्वाधिक है.
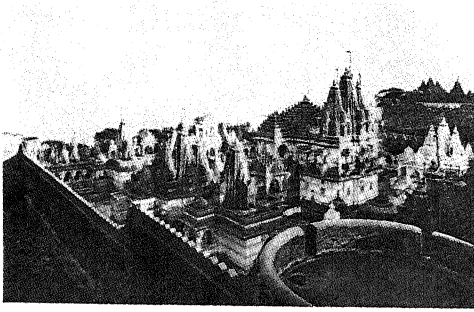
गुजरात के मध्यकालीन शत्रुंजय मंदिर नगर का एक दृश्य

गुजरात में जनसंख्या का मुख्य संकेंद्रण अहमदाबाद, खेड़ा, वडोदरा, सूरत और वल्सर के मैदानी क्षेत्र में देखा जा सकता है. यह क्षेत्र कृषि के दृष्टिकोण से उर्वर है और अत्यधिक औद्योगीकृत है. जनसंख्या का एक अन्य संकेंद्रण मंगरोल से महुवा तक और राजकोट एवं जामनगर के आसपास के हिस्सों सहित सौराष्ट्र के दक्षिणी तटीय क्षेत्रों में देखा जा सकता है. जनसंख्या का वितरण उत्तर (कच्छ) और पूर्वी पर्वतीय क्षेत्रों की ओर क्रमशः कम होता जाता है. जनसंख्या का औसत घनत्व 258 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी (2001) है और दशकीय वृद्धि दर 2001 में 22.48 प्रतिशत पाई गई.

गुजराती और हिंदी राज्य की अधिकृत भाषाएं हैं. दोनों में गुजराती का ज़्यादा व्यापक इस्तेमाल होता है, जो संस्कृत के अलावा प्राचीन भारतीय मूल भाषा प्राकृत और 10वीं से 14वीं शताब्दी के बीच उत्तरी और पश्चिमी भारत में बोली जाने वाली अपभ्रंश भाषा से व्युत्पन्न एक भारतीय–आर्य भाषा है. समुद्र मार्ग से गुजरात के विदेशों से संपर्क ने फ़ारसी, अरबी, तुर्की, पुर्तगाली और अंग्रेज़ी शब्दों से इसका परिचय करवाया. गुजराती में महात्मा गांधी की विलक्षण रचनाएं अपनी सादगी और ऊर्जस्विता के लिए प्रसिद्ध हैं. इन रचनाओं ने आधुनिक गुजराती गद्य पर ज़बरदस्त प्रभाव डाला है.

अधिकांश जनसंख्या हिंदू धर्म को मानती है, जबकि कुछ संख्या इस्लाम, जैन और पारसी धर्म मानने वालों की भी है. राज्य की नीति हमेशा से ही इसकी जनता की धार्मिक सहिष्णुता के कारण विशिष्ट रही है, हालांकि 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में बढ़ते सांप्रदायिक तनाव के कारण दंगे भी हुए हैं.

शहरीकरण की प्रक्रिया ने राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न स्वरूप धारण किए हैं. राज्य का सर्वाधिक शहरीकृत क्षेत्र अहमदाबाद–वडोदरा औद्योगिक पट्टी है. राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या–8 के किनारे उत्तर में ऊंझा से दक्षिण में वापी के औद्योगिक मैदान में एक वृहदनगरीय क्षेत्र (मेगालोपोलिस, अर्थात कई बड़े शहरों वाला एक सतत शहरी क्षेत्र) उभर रहा है. सौराष्ट्र कृषि क्षेत्र में क्रमिक बसाव प्रणाली को देखा जा सकता है, जबकि उत्तर और पूर्व के बाह्य क्षेत्रों में बिखरी हुई छोटी–छोटी बस्तियां हैं, जो शुष्क, पर्वतीय या वनाच्छादित क्षेत्र हैं. आदिवासी जनसंख्या इन्हीं सीमांत अनुत्पादक क्षेत्रों में केंद्रित है.

अर्थव्यवस्था

जलवायु संबंधी प्रतिकूल परिस्थितियां, मृदा और जल की लवणता और चट्टानी इलाके ऐसी भौतिक समस्याएं हैं, जिन्होंने गुजरात की कृषि गतिविधियों को अवरुद्ध किया है. राज्य ज़्यादातर सिंचाई पर निर्भर है. भूजल की उपयोगिता को बढ़ाने की आवश्यकता है, क्योंकि भूमिगत जल का स्तर लगातार गिरता जा रहा है. यह आवश्यक है कि

नर्मदा नहर प्रणाली का परिचालन सिंचाई के लिए हो. मुख्य खाद्य फ़सलों में ज्वार–बाजरा, चावल और गेहूं शामिल हैं. गुजरात में नक़दी फ़सलों का उत्पादन महत्त्वपूर्ण है. इनमें कपास, मूंगफली, तंबाकू, तिलहन, मसाले, फल और शक्कर प्रमुख हैं.

हालांकि ज़्यादातर लोग कृषि में संलग्न हैं, पर यहां एक सुगठित और अपेक्षाकृत समृद्ध वाणिज्यिक समुदाय भी है, जो व्यापार और वाणिज्य में तरक़्क़ी कर रहा है. व्यापार में संलग्न गुजराती लोग देश भर और विदेशों में भी फैले हुए हैं. भारत की औद्योगिक अर्थव्यवस्था में गुजरात का स्थान अग्रणी है. यह राज्य चूना–पत्थर, मैंगनीज़, जिप्सम, कैल्साइट और बॉक्साइट जैसी खनिज संपदा से समृद्ध है. यहां पर लिग्नाइट, क्वार्ट्ज़ युक्त रेत, गोमेद (एगेट) और फ़ेल्सपार के भी भंडार हैं. असम के साथ गुजरात भी एक प्रमुख पेट्रोलियम उत्पादक राज्य है. सोडा ऐश और नमक के मामले में कुल राष्ट्रीय उत्पाद का सर्वाधिक हिस्सा यहीं से आता है. सीमेंट, वनस्पति तेल, रसायन और सूती वस्त्र के उद्योग महत्त्वपूर्ण हैं. औषधि उद्योग वडोदरा, अहमदाबाद और अतुल (वलसाड) में केंद्रित है, जो भारत के कुल उत्पादन के एक बड़े हिस्से का निर्माण करते हैं. कोयाली के निकट स्थित तेल परिशोधनशाला ने आसपास के पेट्रो रसायन उद्योग के तीव्र विकास में भूमिका निभाई है. सहकारी वाणिज्यिक डेयरी उद्योग भी महत्त्वपूर्ण है. दुग्ध उत्पादन में 'श्वेत क्रांति' इसी राज्य में हुई थी और यह भारत के बच्चों के लिए दुग्ध खाद्य के कुल उत्पादन का 4/5 हिस्से का उत्पादन करता है. लघु उद्योगों का नियमित विकास महत्त्वपूर्ण है. मज़दूरों की समस्या पर गांधीवादी मार्ग– सत्य पर दृढ़ निर्भरता, अहिंसा, मध्यस्थता द्वारा समझौता, न्यूनतम मांगें और आख़िरी उपाय के रूप में हड़ताल के प्रयोग –ने गुजरात में औद्योगिक संबंधों पर गहरा प्रभाव डाला है, जिसकी वजह से यह राज्य मज़दूर असंतोष से अपेक्षाकृत स्वतंत्र है.

धुवारन में एक तापविद्युत केंद्र स्थित है. राज्य को महाराष्ट्र राज्य की तारापुर नाभिकीय ऊर्जा इकाई से भी बिजली की आपूर्ति होती है. नर्मदा नदी पर लंबे समय से निर्माणाधीन सरदार सरोवर बांध के सबसे बड़े जलविद्युत उत्पादक बनने की आशा है और इससे विस्तृत सिंचाई सुविधा भी मिलेगी.

सड़क एवं रेल संपर्क अच्छे हैं और तटीय जहाज़ी मार्ग गुजरात के विभिन्न बंदरगाहों को जोड़ते हैं. कांडला एक प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय बंदरगाह है. राज्य के भीतर और देश के अन्य प्रमुख नगरों के लिए गुजरात से वायुसेवा उपलब्ध है.

प्रशासन एवं सामाजिक विशेषताएं

सरकार

राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त राज्यपाल गुजरात के प्रशासन का प्रमुख होता है. मुख्यमंत्री के नेतृत्व में मंत्रिमंडल राज्यपाल को उसके कामकाज में सहयोग और सलाह देता है. राज्य में एक निर्वाचित निकाय एकसदनात्मक विधानसभा है.

उच्च न्यायालय राज्य की सर्वोपरि न्यायिक सत्ता है, जबकि शहरी न्यायालय, ज़िला व सत्र न्यायाधीशों के न्यायालय और प्रत्येक ज़िले में दीवानी मामलों के न्यायाधीशों के न्यायालय हैं.

राज्य को 25 प्रशासनिक ज़िलों में बांटा गया है : अहमदाबाद, अमरेली, बनास कंठा, भरूच, भावनगर, डेंग, गांधीनगर, खेड़ा, महेसाणा, पंचमहल, राजकोट, साबर कंठा, सूरत, सुरेंद्रनगर, वडोदरा, वलसाड, नवसारी, नर्मदा, दोहद, आनंद, पाटन, जामनगर, पोरबंदर, जूनागढ़ और कच्छ. प्रत्येक ज़िले का राजस्व और सामान्य प्रशासन ज़िलाधीश की देखरेख में होता है, जो क़ानून और व्यवस्था भी बनाए रखता है.

स्थानीय प्रशासन में आम लोगों को शामिल करने के लिए 1963 में पंचायत द्वारा प्रशासन की शुरुआत की गई.

स्वास्थ्य

स्वास्थ्य और चिकित्सा सेवाओं में मलेरिया, तपेदिक, कुष्ठ और अन्य संक्रामक रोगों के उन्मूलन के साथ–साथ पेयजल की आपूर्ति में सुधार और खाद्य सामग्री में मिलावट को रोकने के कार्यक्रम शामिल हैं. प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों, अस्पतालों और चिकित्सा महाविद्यालयों के विस्तार के लिए भी क़दम उठाए गए हैं.

शिक्षा

500 या इससे ज़्यादा जनसंख्या वाले लगभग सभी गांवों में सात से ग्यारह वर्ष के सभी बच्चों के लिए प्राथमिक पाठशालाएं खोली जा चुकी हैं. आदिवासी बच्चों को कला और शिल्प की शिक्षा देने के लिए विशेष विद्यालय चलाए जाते हैं. यहां अनेक माध्यमिक और उच्चतर विद्यालयों के साथ–साथ नौ विश्वविद्यालय और उच्च शिक्षा के लिए बड़ी संख्या में शिक्षण संस्थान हैं. अभियांत्रिकी महाविद्यालयों और तकनीकी विद्यालयों द्वारा तकनीकी शिक्षा उपलब्ध कराई जाती है. शोध संस्थानों में अहमदाबाद में फ़िज़िकल रिसर्च लेबोरेटरी, अहमदाबाद टेक्सटाइल इंडस्ट्रीज रिसर्च एशोसिएशन, सेठ भोलाभाई जेसिंगभाई इंस्टिट्यूट ऑफ़ लर्निंग ऐंड रिसर्च, द इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ़ मैनेजमेंट, द नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ़ डिज़ाइन और द सरदार पटेल इंस्टिट्यूट ऑफ़ इकोनॉमिक ऐंड सोशल रिसर्च; वडोदरा में ओरिएंटल इंस्टिट्यूट तथा भावनगर में सेंट्रल साल्ट ऐंड मॅरीन केमिकल रिसर्च इंस्टिट्यूट शामिल हैं.

जन–कल्याण

बच्चों, महिलाओं और विकलांगों, वृद्ध, असहाय, परित्यक्त के साथ–साथ अपराधी, भिखारी, अनाथ और जेल से छूटे लोगों की कल्याण आवश्यकताओं की देखरेख विभिन्न राजकीय संस्थाएं करती हैं. राज्य में तथाकथित पिछड़े वर्ग के लोगों की शिक्षा, आर्थिक विकास, स्वास्थ्य और आवास की देखरेख के लिए एक अलग विभाग है.

सांस्कृतिक जीवन

गुजरात की अधिकांश लोक संस्कृति और लोकगीत हिंदू धार्मिक साहित्य पुराण में वर्णित भगवान कृष्ण से जुड़ी किंवदंतियों से प्रतिबिंबित होती है. कृष्ण के सम्मान में किया जाने वाला *रासनृत्य* और *रासलीला* प्रसिद्ध लोकनृत्य 'गरबा' के रूप में अब भी प्रचलित है. यह नृत्य देवी दुर्गा के नवरात्र पर्व में किया जाता है; इसमें नर्तक–नर्तकियां गाते हुए या एक–दूसरे के साथ तालियां बजाते हुए या डंडियां टकराते हुए एक दायरे में घूमते हुए लयबद्ध तरीक़े से नृत्य करते हैं. एक लोक नाट्य *भवई* भी अभी तक अस्तित्व में है.

गुजरात में शैववाद के साथ–साथ वैष्णववाद भी लंबे समय से फलता–फूलता रहा है, जिनसे भक्ति मत का उद्भव हुआ. प्रमुख संतों, कवियों और संगीतज्ञों में 15वीं सदी में पदों के रचयिता नरसी मेहता, अपने महल को त्यागने वाली 16वीं सदी की राजपूत राजकुमारी व भजनों की रचनाकार मीराबाई, 18वीं सदी के कवि और लेखक प्रेमानंद और भक्ति मत को लोकप्रिय बनाने वाले गीतकार दयाराम शामिल हैं. भारत में अन्य जगहों की तुलना में अहिंसा और शाकाहार की विशिष्टता वाले जैन धर्म ने गुजरात में गहरी जड़ें जमाई. ज़रथुस्त्र के अनुयायी पारसी 17वीं सदी के बाद किसी समय फ़ारस से भागकर सबसे पहले गुजरात के तट पर ही बसे थे. इस समुदाय के अधिकांश लोग बाद में बंबई (वर्तमान मुंबई) चले गए.

गुजरात की वास्तुकला शैली अपनी पूर्णता और अलंकारिकता के लिए विख्यात है, जो सोमनाथ, द्वारका, मोधेरा, थान, घुमली, गिरनार और पालिताना जैसे मंदिरों और स्मारकों में संरक्षित है. मुस्लिम शासन के दौरान एक अलग ही तरीक़े की भारतीय–इस्लामी शैली विकसित हुई. गुजरात अपनी कला व शिल्प की वस्तुओं के लिए भी प्रसिद्ध है. इनमें जामनगर की *बांधनी* (बंधाई और रंगाई की तकनीक), पाटन का उत्कृष्ट रेशमी वस्त्र *पटोला,* इदर के खिलौने, पालनपुर का इत्र, कोनोदर का हस्तशिल्प का काम और अहमदाबाद व सूरत के लघु मंदिरों का काष्ठशिल्प तथा पौराणिक मूर्तियां शामिल हैं.

राज्य के सर्वाधिक स्थायी और प्रभावशाली सांस्कृतिक संस्थानों में महाजन के रूप में प्रसिद्ध व्यापार और कला शिल्प संघ है. अक्सर जाति विशेष में अंतर्गठित और स्वायत्त इन संघों ने अतीत में कई विवादों को सुलझाया है और लोकहित के माध्यम की भूमिका निभाते हुए कला व संस्कृति को प्रोत्साहन दिया है.

इतिहास

राज्य के पूर्वी हिस्से में माही और साबरमती नदी घाटियों में पाषाण काल की मानव बस्तियों के प्रमाण मिलते हैं. ऐतिहासिक काल तीसरी से दूसरी सहस्राब्दी ई.पू. की हड़प्पा (सिंधु घाटी) सभ्यता से जुड़ा हुआ है. इस सभ्यता के केंद्र लोथल, रंगपुर, आमरी, लखबवाल और रोद्ज़ी (अधिकांश काठियावाड़ प्रायद्वीप में) में मिले हैं.

गुजरात का ज्ञात इतिहास इस क्षेत्र में मौर्य वंश के विस्तार से प्रारंभ होता है, जो काठियावाड़ की गिरनार पहाड़ियों की चट्टानों पर उत्कीर्ण सम्राट अशोक (लगभग 250 ई.पू.) के अभिलेखों से प्रमाणित है. मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद गुजरात शक (सीथियन) या पश्चिमी क्षत्रपों (130–390 ई.) के शासन के अंतर्गत आ गया. इनमें महानतम महाक्षत्रप रुद्रदमन ने मालवा, सौराष्ट्र, कच्छ और राजस्थान में एकछत्र राज्य क़ायम किया.

चौथी और पांचवीं सदी के दौरान वल्लभी राज्य के मैत्रक वंश के सत्ता में आने से पहले गुजरात गुप्त साम्राज्य का एक हिस्सा था, जिन्होंने तीन शताब्दियों से भी अधिक समय तक मालवा और गुजरात पर राज्य किया. राज्य की राजधानी वल्लभीपुरा (काठियावाड़ प्रायद्वीप के पूर्वी तट के निकट) बौद्ध, वैदिक और जैन शिक्षा का एक बड़ा केंद्र थी. मैत्रक वंश के बाद गुर्जर–प्रतिहार (कन्नौज के साम्राज्यवादी गुर्जर) सत्ता में आए, जिन्होंने आठवीं और नौवीं शताब्दी के दौरान शासन किया. इनके कुछ ही बाद सोलंकी वंश का शासन हो गया. इसी वंश के दौरान गुजरात की सीमाओं में अधिकतम विस्तार हुआ और आर्थिक व सांस्कृतिक क्षेत्र में उल्लेखनीय विकास हुआ. सिद्धराजा जयसिम्हा और कुमारपाल सबसे प्रसिद्ध सोलंकी राजा थे. प्रख्यात लेखक हेमचंद्र इसी काल (12वीं सदी) मे हुए. इसके बाद के सत्तासीन वघेल वंश के कर्णदेव वघेल लगभग 1299 में दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन ख़लजी से हार गए और गुजरात मुस्लिम शासन के अंतर्गत आ गया गुजरात के पहले स्वतंत्र सुल्तान अहमद शाह थे, जिन्होंने अहमदाबाद (1411) की स्थापना की. 16वीं सदी के उत्तरार्द्ध में गुजरात पर मुग़लों का शासन हो गया, जो मध्य 18वीं सदी तक रहा. इसके बाद राज्य पर मराठों का शासन हो गया.

1818 में गुजरात ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रशासन के अधीन हो गया. 1857–1858 के भारतीय ग़दर के बाद यह राज्य ब्रिटिश ताज के अंतर्गत 25,900 वर्ग किमी क्षेत्रफल वाले गुजरात प्रांत और अनेक स्थानीय राज्यों में बांट दिया गया. 1947 में भारत के स्वतंत्र होने पर कच्छ और सौराष्ट्र राज्यों को छोड़कर समूचे गुजरात को बंबई राज्य में शामिल कर लिया गया. 1956 में बचे दो राज्यों को समाहित कर प्रांत का विस्तार किया गया. 1 मई 1960 को बंबई राज्य को वर्तमान गुजरात और महाराष्ट्र राज्यों में बांट दिया गया.

अप्रैल 1965 को भारत और पाकिस्तान के बीच कच्छ के रण में, जो दोनों देशों के बीच लंबे समय से एक विवादित स्थल था, युद्ध हुआ. 1 जुलाई को दोनों देशों के बीच युद्ध विराम लागू हुआ और विवाद को एक अंतर्राष्ट्रीय न्यायाधिकरण के समक्ष मध्यस्थता के लिए प्रस्तुत किया गया. इस न्यायाधिकरण के फैसले में, 1968 में प्रकाशित, 9/10 हिस्सा भारत को और शेष 1/10 हिस्से का अधिकार पाकिस्तान को दिया गया. गुजरात 1985 में एक बार फिर हिंसा की गिरफ़्त में आ गया, जो अनुसूचित जाति को प्रस्तावित आरक्षण के मुद्दे पर भड़का और अपना स्वरूप बदलकर हिंदू–मुस्लिम दंगा बन गया. यह दौर पांच महीनों तक चला. जनसंख्या (2001) राज्य कुल 5,05,96,992; ग्रामीण 3,16,97,615; शहरी 1,88,99,377.

गुजरात का युद्ध

(21 फ़र. 1849), शेर सिंह की सिक्ख सेना तथा ब्रिटिश–भारतीय सेना, जिसका नेतृत्व ह्यू गफ़, प्रथम बैरन (बाद में प्रथम वाइकाउंट) के बीच गुजरात (जो अब पाकिस्तान में है) में लड़ी गई. द्वितीय सिक्ख युद्ध (1848–49) की यह अंतिम तथा निर्णायक जंग थी, जिसके ज़रिये अंग्रेज़ों ने पंजाब को जीत कर अपने राज्य में शामिल कर लिया था.

अंग्रेज़ सेना ने सिक्खों की तोपों को खामोश करने के लिए तोपख़ाने का प्रयोग किया, फिर सिक्ख रक्षा पंक्तियों को ध्वस्त किया और फिर पीछा कर 50,000 की फ़ौज को तितर–बितर कर दिया. शेर सिंह द्वारा 12 मार्च को हथियार डालने के साथ यह युद्ध समाप्त हुआ. पंजाब को डलहौज़ी के 10वें अर्ल (बाद में प्रथम मार्क्यूज़) जेम्स रैमसे ने ब्रिटिश राज में शामिल किया. इस जंग ने गफ़ की सैन्य ख्याति को पुनः स्थापित किया, क्योंकि इससे पहले सामने से हमला बोलने और तोपख़ाने के इस्तेमाल में विफल रहने के लिए उनकी आलोचना होती थी.

गुजरात में काष्ठशिल्प

गुजरात राज्य में की जाने वाली वास्तुशिल्पीय नक़्क़ाशी. कम से कम 15वीं शताब्दी से गुजरात भारत में लकड़ी की नक़्क़ाशी का मुख्य केंद्र रहा है. निर्माण सामग्री के रूप में जिस समय पत्थर का इस्तेमाल अधिक सुविधाजनक और विश्वसनीय था, इस समय भी गुजरात के लोगों ने मंदिरों के मंडप तथा आवासीय भवनों के अग्रभागों, द्वारों, स्तंभों, झरोखों, दीवारगीरों और जालीदार खिड़कियों के निर्माण में बेझिझक लकड़ी का प्रयोग जारी रखा.

मुग़ल काल (1556–1707) के दौरान गुजरात की लकड़ी की नक़्क़ाशी में देशी एवं मुग़ल शैलियों का सुंदर संयोजन दिखाई देता है. 16वीं सदी के उत्तरार्द्ध एवं 17वीं सदी के जैन काष्ठ मंडपों पर जैन पौराणिक कथाएं एवं समकालीन जीवन के दृश्य तथा काल्पनिक बेल–बूटे, पशु–पक्षी एवं ज्यामितीय आकृतियां उत्कीर्ण की गई हैं; आकृति मूर्तिकला अत्यंत जीवंत एवं लयात्मक है. लकड़ी पर गाढ़े लाल रोग़न का प्रयोग आम था. 19वीं सदी के कई भव्य काष्ठ पुरोभाग संरक्षित हैं, लेकिन उनका अलंकरण पहले की निर्मितियों जैसा ललित और गत्यात्मक नहीं है.

गुजराती भाषा

भारत की प्रमुख क्षेत्रीय भाषाओं में से एक, जिसे भारतीय संविधान की मान्यता प्राप्त है. यह मुख्यतः गुजरात क्षेत्र में तथा भारत के अन्य प्रमुख नगरों में लगभग तीन करोड़ से अधिक लोगों द्वारा बोली जाती है.

ગુજરાતી સાહિત્ય

गुजराती लिपि का नमूना

गुजराती भाषा नवीन भारतीय–आर्य भाषाओं के दक्षिण–पश्चिमी समूह से संबंधित है. इतालवी विद्वान तेस्सितोरी ने प्राचीन गुजराती को प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी भी कहा, क्योंकि उनके काल में इस

भाषा का उपयोग उस क्षेत्र में भी होता था, जिसे अब राजस्थान राज्य कहा जाता है. अन्य नवीन भारतीय–आर्य भाषाओं की तरह गुजराती की उत्पत्ति भी एक प्राकृत भाषा से हुई है. इस भाषा के विकास को कुछ भाषाशास्त्रीय विशेषताओं में परिवर्तन के आधार पर तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है, प्राचीन गुजराती (12वीं–15वीं शताब्दी), मध्य गुजराती (16वीं–18वीं शताब्दी) और नवीन गुजराती (19वीं शताब्दी के बाद). नागरी लिपि का नया प्रवाही स्वरूप नवीन गुजराती को इंगित करता है.

इस भाषा में एक जटिल सामंजस्य (समझौता) प्रणाली है, जो इस तथ्य पर आधारित है कि इसमें तीन लिंग हैं और इसमें ऐरगेटिव केस (जिसमें सकर्मक क्रियाओं के कर्ता व अकर्मक क्रियाओं के कर्म को एक ही भाषाशास्त्रीय स्वरूप के ज़रिये इंगित किया जाता है) भी है. गुजराती भाषा में अन्य नवीन भारतीय–आर्य भाषाओं की अपेक्षा कर्मवाच्यों का अधिक उपयोग होता है. कारणवाचक और कृदंतों के कारण जटिल वाक्य विन्यास प्रस्तुत होता है.

विद्वानों ने भौगोलिक सीमाओं के आधार पर तीन प्रमुख बोलीगत वर्गों का उल्लेख किया है : काठियावाड़ी (सौराष्ट्री), उत्तरी गुजराती और दक्षिणी गुजराती. धर्म, जाति, जातीयता, व्यवसाय, शिक्षा और वर्ग में भिन्नता के कारण एक जटिल बोलीगत स्थिति उत्पन्न होती है, क्योंकि ये सभी कारक एक–दूसरे को आच्छादित करते हैं और बोली की कोई निश्चित विभाजक सीमा नहीं खींची जा सकती है. लेकिन यह उल्लेखनीय है कि कंठ स्वर यंत्रीय आयाम से संबंधित सबसे प्रबल ध्वन्यात्मक विशेषता ने सभी स्वर विज्ञानियों को आकर्षित किया है. यह विशेषता स्पष्ट रूप से दो प्रमुख बोली समूहों को इंगित करती है; संसक्त ध्वनि उच्चारण बोलियां (जिन्हें उच्च कंठ के साथ बोला जाता है) और बड़बड़ाहट वाली बोलियां (जिसे बोलने में बीच–बीच में कंठ स्वर नीचा होता है). इसके अलावा गुजराती में दो स्पष्ट जातीय बोलियां भी हैं : पारसी गुजराती और बोहरी गुजराती.

हालांकि गुजराती का उपयोग विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में शिक्षा के लिए होता है, लेकिन यह उच्च स्तरीय वैज्ञानिक संचार के उपयुक्त नहीं है.

गुजराती साहित्य

भारत की प्रमुख भाषाओं में से एक गुजराती भाषा का साहित्य. गुजराती साहित्य का सबसे पुराना उदाहरण 12वीं शताब्दी के जैन विद्वान और संत हेमचंद्र की कृतियों से मिलता है. 12वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यह भाषा पूर्णरूपेण विकसित हो गई. 14वीं शताब्दी के मध्य काल में लिखी गई रचनाएं अब भी उपलब्ध हैं, जो जैन भिक्षुओं द्वारा गद्य में लिखी गई उपदेशात्मक कृतियां हैं. इसी प्रकार की एक कृति तरुणप्रभा द्वारा लिखित *बालाबोध* (युवाओं के लिए निर्देश) है. इसी काल का जैनेतर ग्रंथ *वसंत–विलास* (वसंत की खुशियां) है. 15वीं शताब्दी के दो गुजराती भक्ति कवि नरसी मेहता और भल्लण (या पुरुषोत्तम महाराज) हैं. भल्लण ने *भागवत पुराण* के 10वें अध्याय को छोटे गीतिस्वरूप में ढाला. भक्ति कवियों में अब तक सबसे प्रसिद्ध संत महिला मीराबाई हैं,

जो छठी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुई थीं. हालांकि मीरा विवाहित थी, लेकिन वह कृष्ण को अपना वास्तविक पति मानती थीं. उनके देवता और प्रेमी के साथ उनके संबंधों की व्याख्या करने वाले गीत भारतीय साहित्य में सबसे जीवंत और रोमांचकारी हैं. ग़ैर भक्ति गुजराती कवियों में प्रेमानंद भट्ट (16वीं शताब्दी) सबसे विख्यात हैं, जिन्होंने पुराण जैसी कहानियों पर आधारित कथात्मक कविताएं लिखी. हालांकि उनकी विषय–वस्तु पारंपरिक थी, लेकिन उनके चरित्र वास्तविक और सशक्त थे तथा उन्होंने अपनी भाषा के माध्यम से साहित्य में नए प्राणों का संचार किया. ब्रिटिश शासन की शुरुआत ने गुजरात में भी साहित्य जगत को प्रभावित किया. 1886 में नरसिंह राव के गीतों के संकलन *कुसुममाला* (फूलों की माला) की रचना हुई. अन्य कवियों में कालापि, कांत और विशेषकर नानालाल शामिल हैं, जिन्होंने मुक्त छंद के साथ प्रयोग किए तथा वह महात्मा गांधी की प्रशंसा करने वाले पहले कवि भी थे. गांधीजी, जो स्वयं भी गुजराती थे, ने कवियों को जनसाधारण के लिए लिखने के लिए प्रेरित किया और इस प्रकार सामाजिक क्रम में बदलाव की भावना रखने वाली कविता के युग का आरंभ हुआ. गांधीजी के जीवन की कई घटनाओं ने कवियों के गीतों को प्रेरित किया. अन्य स्थानों की भांति गुजरात में गांधी के युग ने आर.एल. मेघानी और भोगीलाल गांधी की वर्ग संघर्ष की कविता में प्रगति काल का मार्ग प्रशस्त किया. स्वतंत्रता के बाद कविता का स्वरूप विषयनिष्ठ होता गया, लेकिन आधुनिक स्वरूपों ने पारंपरिक ईश्वर भक्ति और प्रकृति प्रेम की मूल भावना का अतिक्रमण नहीं किया है.

उपन्यासकारों में गोवर्धन राम प्रमुख हैं. उनकी कृति *सरस्वतीचंद्र* को पहला उत्कृष्ट सामाजिक उपन्यास माना जाता है. उपन्यास विधा में भी गांधीवाद के प्रभाव को स्पष्ट रूप से महसूस किया जा सकता है, हालांकि कन्हैयालाल मुंशी का व्यक्तित्व इससे भिन्न था, जो गांधीवादी आदर्शों के आलोचक थे. उन्होंने पुराणों से प्रेरित कई रचनाओं के समान ही संदेश देने के प्रति रुझान प्रदर्शित किया. स्वतंत्रता के बाद आधुनिक लेखकों ने अस्तित्ववादिता, अतियथार्थवादी और प्रतीकात्मक रुझानों को अपना लिया तथा कवियों के समान ही इतरीकरण को प्रकट किया.

गुजराल, इंद्र कुमार

(ज.–4 दिसं. 1919, झेलम, भारत {वर्तमान पाकिस्तान में}), भारतीय राजनीतिज्ञ, जो 21 अप्रैल से 28 नवंबर 1997 तक भारत के प्रधानमंत्री रहे.

एक सुशिक्षित और धनी परिवार में जन्मे गुजराल ने दिल्ली विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की. वह छात्र जीवन से ही राजनीति में सक्रिय हो गए थे और लाहौर छात्र संघ के अध्यक्ष तथा पंजाब छात्र परिसंघ के महासचिव भी रहे. आज़ादी के लिए देशव्यापी संघर्ष के दौरान ब्रिटिश सरकार विरोधी गतिविधियों के कारण गुजराल को दो बार जेल हुई.

इंद्र कुमार गुजराल
सौजन्य : *द हिंदू*

गुजराल 1964 में राज्यसभा के सदस्य बने और 1976 तक उस पर क़ायम रहे. इस काल में उन्होंने इंदिरा गांधी के नेतृत्व वाली कांग्रेस (इ) सरकार

में पांच विभिन्न विभागों में मंत्रिपद भी संभाला. कई अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर उन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व किया और 1970 के दशक में संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रायोजित सम्मेलनों में कई प्रतिनिधि मंडलों में शामिल हुए. 1975 में जब इंदिरा गांधी ने आपातकाल की घोषणा की, तो तत्कालीन सूचना मंत्री गुजराल ने समाचार बुलेटिनों को सेंसर करने की सरकार की मांग को ठुकरा दिया. परिणामस्वरूप उन्हें अपने पद से इस्तीफ़ा देना पड़ा और उन्हें पूर्व सोवियत संघ में राजदूत बना दिया गया; जिस पद पर वह 1976 से 1980 तक रहे.

लोकसभा के लिए पहली बार वह 1989 में निर्वाचित हुए और उन्हें वी.पी. सिंह के नेतृत्व वाली जनता दल सरकार में विदेश मंत्रालय का कार्यभार सौंपा गया. जब 1996 में संयुक्त मोर्चा सरकार सत्ता में आई, तो उन्हें फिर से विदेश मंत्री बनाया गया. अप्रैल 1997 में लोकसभा में 158 के मुक़ाबले 292 मत से तत्कालीन प्रधानमंत्री देवेगौड़ा के ख़िलाफ़ अविश्वास प्रस्ताव पारित हो गया. उनके स्थान पर गुजराल संयुक्त मोर्चा संसदीय दल के नेता चुने गए. कांग्रेस (इ) के समर्थन से गुजराल को 21 अप्रैल को प्रधानमंत्री पद की शपथ दिलाई गई, लेकिन छह महीने के भीतर ही सरकार लोकसभा में विश्वास प्रस्ताव हार गई. मार्च 1998 में अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा पद संभालने तक गुजराल ने कार्यवाहक प्रधानमंत्री की भूमिका निभाई.

गुड़गांव

शहर और ज़िला, दक्षिण–पूर्व हरियाणा राज्य, पश्चिमोत्तर भारत. यह शहर दिल्ली से 30 किमी दक्षिण–पश्चिम में दिल्ली–जयपुर राजमार्ग पर स्थित है और औद्योगिक विकास का एक गलियारा बन चुका है. गुड़गांव में सूती वस्त्र, यंत्रचालित बुनाई और कृषि उपकरणों से संबंधित उद्योग हैं. ज़िले का लगभग 70 प्रतिशत हिस्सा कृषि के अंतर्गत आता है. गेहूं, तिलहन, बाजरा, ज्वार और दलहन महत्त्वपूर्ण फ़सलें हैं. कुल बुआई क्षेत्र का मात्र 38 प्रतिशत सिंचित (हरियाणा में निम्नतम अनुपात) है. लगभग सभी गांव सड़क मार्ग से जुड़े हुए हैं. जनसंख्या (2001) शहर 1,73,542; ग्रामीण 17,100; ज़िला कुल 16,57,669.

गुणस्थान

(संस्कृत शब्द, अर्थात गुण का स्तर), जैन धर्म में आध्यात्मिक विकास के 14 चरण में से एक, जिनसे आत्मा मोक्ष के अपने मार्ग पर गुज़रती है. इस प्रगति को क्रमशः घटते हुए पाप और बढ़ती हुई शुद्धता के रूप में देखा जाता है, जो व्यक्ति को कर्म (पाप और पुण्य) के बंधनों, पुनर्जन्म के चक्र से मुक्त करता है.

विकास के आरंभिक चरण हैं : 1. *मिथ्या–त्व*, शाब्दिक अर्थ, भ्रमित होने की स्थिति; 2. *सस्वादन* या सत्य का स्वाद चखना; 3. *मिश्र* या मन के उचित और अनुचित रूख; 4. *अविरत–त्व* यानी परित्याग (सांसारिकताओं का) बिना सम्यकता (अंतर्दृष्टि की); 5. *देस–विरति*, सांसारिकता से अंशतः वैराग्य; 6. *प्रमत विरति*, कुछ कमियों के साथ वैराग्य; 7. *अप्रमत विरति*, पूर्ण वैराग्य.

अगले सात चरणों में इच्छुक व्यक्ति पवित्र जीवन में प्रवेश करता है : 8. *अ–पूर्व–करण*, उसकी खोज, जिसका अनुभव नहीं किया गया हो; 9. *अ–निवृत्ति–करण*, नहीं लौटने (पुनर्जन्म के चक्र में) की खोज; 10. *सूक्ष्म–संप्राय*, सूक्ष्मता की स्थिति में संक्रमण; 11. *क्षीण–मोह–ता*, भ्रम के दूर होने की स्थिति; 12. *अंतर्योपशांति*, मुक्ति के मार्ग में सभी बाधाओं की समाप्ति. अगर कोई व्यक्ति 12वें चरण में मर जाता है, तो उसकी आत्मा अगले दो चरणों से शीघ्र ही गुज़र जाती है और वह पुनर्जन्म के बिना ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है. 13वें चरण *स–योग–कैवल्य* को मूर्त रूप में ही आत्मिक मुक्ति के रूप में वर्णित किया जा सकता है. इस स्थिति को प्राप्त कर चुका व्यक्ति उपदेश देता है, भिक्षु समुदाय का अंग बनता है तथा तीर्थंकर (संत) बन जाता है. अंतिम यानी 14वां चरण *अ–योग–कैवल्य* मूर्तिमान शरीर के बिना मुक्ति है. इसमें आत्मा सिद्ध हो जाती है और शरीर को छोड़ कर ब्रह्मांड के शीर्ष पर निवास करने के लिए चली जाती है और पुनर्जन्म के चक्र से हमेशा के लिए मुक्त हो जाती है. इस अंतिम मुक्ति को मोक्ष कहा जाता है.

गुतोब भाषा

इसे गदबा भी कहा जाता है, जो भारत की ऑस्ट्रो–एशियाई परिवार से संबद्ध मुंडा भाषाओं में से एक है. इसकी बोलियों में गदबा और गुडवा शामिल हैं. गुतोब भाषा उड़ीसा राज्य के कोरापुट ज़िले और आंध्र प्रदेश के श्रीकाकुलम तथा विशाखापट्टनम ज़िलों में बोली जाती है. अनुमानतः इसे बोलने वालों की संख्या लगभग 32 हज़ार से 54 हज़ार के बीच है.

गुना

शहर, पश्चिमोत्तर मध्य प्रदेश राज्य, मध्य भारत. आगरा–मुंबई (भूतपूर्व बंबई) सड़क मार्ग पर स्थित गुना, सड़क तथा रेल, दोनों साधनों से ग्वालियर, इंदौर और क्षेत्र के अन्य महत्त्वपूर्ण नगरों से जुड़ा हुआ है. 19वीं शताब्दी के मध्य में ग्वालियर कैवॅलरी (घुड़सवार सेना) का सैनिक केंद्र बनने के बाद इसका महत्त्व बढ़ गया. शहर के नगर देवता हनुमान हैं, जिनके मंदिर नगर के पूर्व और पश्चिम में स्थित हैं. नगर तथा उसके आसपास कुछ महत्त्वपूर्ण जैन मंदिर स्थित हैं. 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गुना–बारान रेलवे लाइन के खुल जाने के बाद व्यापारिक केंद्र के रूप में इसका महत्त्व बढ़ा. बीड़ी बनाना और साइकिल निर्माण यहां के मुख्य उद्योग हैं और यह नगर कृषि उत्पादों का एक महत्त्वपूर्ण वितरण केंद्र है. कपास की ओटाई, तिलहन की पेराई और हथकरघा बुनाई यहां के अन्य प्रमुख उद्योग हैं. आसपास के क्षेत्र में उगने वाली फ़सलों में गेहूं, ज्वार, दलहन, मक्का और तिलहन प्रमुख हैं. इस नगर में जीवाजी विश्वविद्यालय से संबद्ध कई महाविद्यालय हैं. जनसंख्या (2001) शहर 1,37,132; ज़िला कुल 16,65,503.

गुप्त काल

एक समय में इतिहासकार गुप्त काल (लगभग 320–540 ई.) को भारत का स्वर्ण युग मानते थे, जिसके दौरान भारतीय साहित्य, कला, वास्तुकला और दर्शन के नियमों की

स्थापना हुई. इसे भौतिक समृद्धि, विशेषकर शहरी अभिजात्य वर्ग में और हिंदू धर्म की पुनर्स्थापना का काल भी माना जाता है. मौर्य काल के बाद और गुप्त काल से पहले के समय के व्यापक अध्ययन से इनमें से कुछ अवधारणाओं पर प्रश्न चिह्न लगाया गया है.

प्रारंभिक कुषाण काल के पुरातात्विक प्रमाणों से अपेक्षाकृत इतनी भौतिक समृद्धि का संकेत मिलता है कि कुछ इतिहासकार गुप्त काल के दौरान शहरी जीवन में गिरावट का तर्क प्रस्तुत करते हैं. गुप्त साहित्य और कला का अधिकांश पूर्ववर्ती काल से लिया गया है और हिंदू धर्म की पुनर्स्थापना का सही समय संभवतः गुप्त काल के बाद का युग है. गुप्त राज्य हालांकि मौर्य राज्य से कहीं कम व्यापक था, लेकिन यह उपमहाद्वीप के उत्तरी अर्द्धांश और मध्यवर्ती क्षेत्र में फैला हुआ था. गुप्त काल को साम्राज्य युग भी कहा जाता है, लेकिन साम्राज्य प्रणाली की विशेषता, प्रशासनिक केंद्रीकरण, मौर्य काल के मुक़ाबले इस काल में कम दिखाई देती है.

अल्पज्ञात गुप्त वंश मगध (दक्षिण बिहार या पूर्वी उत्तर प्रदेश) का था. इस वंश के तीसरे शासक चंद्रगुप्त I ने महाराजाधिराज की उपाधि ग्रहण की. उन्होंने लिच्छवि (उत्तरी बिहार का एक जनजातीय गणतंत्र या कुलतंत्र) राजकुमारी से विवाह किया– यह समारोह सोने के कई सिक्कों में दर्ज है. यह भी कहा जाता है कि अगर गुप्त वंश का शासन प्रयाग (पूर्वी उत्तर प्रदेश का आधुनिक इलाहाबाद) पर था, तो इस वैवाहिक संबंध से उनके क्षेत्र में मगध भी शामिल हो गया होगा. गुप्त काल 320 से शुरू होता है, लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि यह तिथि चंद्रगुप्त द्वारा गद्दी पर बैठने की है या स्वयं को स्वतंत्र मान लेने की.

इलाहाबाद में एक स्तंभ पर लिखी गई समुद्रगुप्त की लंबी प्रशस्ति के अनुसार, चंद्रगुप्त ने अपने बेटे समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी (लगभग 330 ई.) नियुक्त किया. राजकुमार कच के सिक्कों से संकेत मिलता है कि संभवतः गद्दी के अन्य दावेदार भी थे. समुद्रगुप्त ने विभिन्न दिशाओं में आक्रमण किए और परिणामस्वरूप उन्होंने कई विजय हासिल की. सभी जीते हुए क्षेत्रों का विलय नहीं किया गया, लेकिन इस कार्यवाही की व्यापकता ने गुप्त वंश के सैनिक कौशल को स्थापित कर दिया. समुद्रगुप्त ने पाटलिपुत्र (आधुनिक पटना, बिहार) पर भी क़ब्ज़ा कर लिया, जो गुप्त राज्य की राजधानी बना. पूर्वी तट पर नीचे की ओर बढ़ते हुए उन्होंने दक्कन और दक्षिण भारत के राज्यों पर भी विजय प्राप्त की, लेकिन उन्होंने सत्ताच्युत शासकों को फिर से गद्दी सौंप दी.

समुद्रगुप्त ने जिन लोगों को अपने अधीन किया था, उनमें आर्यावर्त (उत्तर भारत) के शासक, कई जंगली सरदार, उत्तरी क्षेत्र के जनजातीय छोटे–छोटे राज्य या गणतंत्र, पूर्व के सीमावर्ती राज्यों के साथ–साथ नेपाल भी शामिल था. समुद्रगुप्त के प्रभाव क्षेत्र में आने वाले सुदूर क्षेत्रों को अधीनस्थ का दर्जा दिया जाता था; इसमें पश्चिमोत्तर के 'राजाओं के राजा', शक, मूरूंड, और सिंहल (श्रीलंका) समेत सभी द्वीपों के राज्य शामिल थे, जिनके नाम इलाहाबाद के अभिलेख में सूचीबद्ध हैं. इससे प्रतीत होता है कि इन अभियानों से गुप्त राज्य की शक्ति का उत्तर और पूर्वी भारत में विस्तार हुआ और मध्य भारत तथा गंगा घाटी के छोटे राजाओं व अल्पतंत्रीय राज्यों को वस्तुतः

समाप्त कर दिया गया. द्वीपों की पहचान कर पाना कठिन है और ये या तो भारत के आसपास या दक्षिण–पूर्व एशिया के हो सकते हैं, जिनके साथ संचार बढ़ चुका था. गंगा घाटी और मध्य भारत सीधे प्रशासनिक नियंत्रण वाले क्षेत्र थे. पूर्वी तटीय क्षेत्रों के अभियान संभवतः इन द्वीपों में मौजूद व्यापार से अर्जित धन को प्राप्त करने की इच्छा से प्रेरित थे. समुद्रगुप्त के सैनिक विजेता की छवि को कविता–प्रेम के उनके उल्लेखों और सिक्कों पर उनके वीणा बजाते चित्रांकन के संदर्भों से पूर्णता मिलती है.

समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारी संभवतः उनके पुत्र चंद्रगुप्त II (लगभग 380 ई.) थे, हालांकि इनके बीच में भी किसी शासक के अस्तित्व के कुछ प्रमाण हैं. चंद्रगुप्त II का प्रमुख अभियान उज्जैन (मध्य भारत) के शक शासकों के ख़िलाफ़ था और इसमें प्राप्त विजय को चांदी के कई प्रकार के सिक्कों में दर्ज किया गया. गुप्तों की रुचि न सिर्फ़ क्षेत्रीय नियंत्रण में थी, बल्कि पश्चिम व दक्षिण–पूर्वी एशिया से व्यापार द्वारा प्राप्त होने वाले धन में भी थी. गुप्त राज्य की उत्तरी दक्कन से लगने वाली सीमा को वाकाटक वंश, जो उस क्षेत्र में सातवाहन वंश के परवर्ती शासक थे, के साथ एक वैवाहिक संबंध के माध्यम से सुरक्षित किया गया. हालांकि चंद्रगुप्त II ने विक्रमादित्य (पराक्रम का सूर्य) की उपाधि ग्रहण की, लेकिन उनका शासनकाल सैनिक अभियानों के मुक़ाबले सांस्कृतिक और बौद्धिक उपलब्धियों से ज़्यादा जुड़ा रहा. एक समकालीन चीनी बौद्ध भिक्षु फ़ाह्यान ने उनके शासनकाल में भारत की यात्रा की और उन पर अपने विचार लिखे.

गुप्त राज्य विभिन्न प्रांतों में विभाजित था, जिन्हें *देश* या *भुक्ति* कहते थे और ये भी छोटी इकाइयों में विभक्त थे, जिन्हें *प्रदेश* या *विषय* कहा जाता था. प्रांतों पर *कुमारामात्यों* के माध्यम से शासन किया जाता था, जो साम्राज्य के बड़े अधिकारी या राजपरिवार के सदस्य होते थे. नगरपालिका समिति (अधिष्ठान–अधिकरण) के गठन से सत्ता के विकेंद्रीकरण का प्रमाण मिलता है. इस समिति में व्यापारिक जगत के अध्यक्ष (नगर–श्रेष्ठि), प्रमुख व्यापारी (सार्थवाह) और कलाकारों व लेखकों के प्रतिनिधि शामिल होते थे. इस काल में सामंत शब्द, जिसका मूल अर्थ पड़ोसी है, को जीते गए सामंती शासकों या मध्यम स्तर के अधिकारियों के लिए प्रयुक्त किया जाने लगा, जिन्हें जायदाद दी जाती थी. कुछ उच्च प्रशासनिक पदों को वंशगत बनाए जाने की भी प्रवृत्ति थी. विजित क्षेत्रों पर मज़बूत नियंत्रण के अभाव में वे फिर से स्वतंत्र होने लगे. इससे बार–बार सैनिक कार्यवाहियां अनिवार्य हो गईं, जिनका राज्य के संसाधनों पर बुरा प्रभाव पड़ा.

पश्चिमोत्तर दिशा से नए आक्रमण का संकेत चंद्रगुप्त के पुत्र और उत्तराधिकारी कुमारगुप्त (लगभग 415–455 ई.) के शासनकाल में मिलता है. यह ख़तरा हूणों से था, जो श्वेत हूणों (हेफ़्थलाइटों) की एक शाखा थे. कुमारगुप्त के बाद गद्दी पर बैठे स्कंदगुप्त (लगभग 455–467) और उनके उत्तराधिकारियों को हूणों के व्यापक आक्रमणों का सामना करना पड़ा. स्कंदगुप्त कुछ समय तक गुप्त शक्ति के प्रदर्शन में सफल रहे, लेकिन उनकी मृत्यु के बाद स्थिति और बिगड़ गई. राज परिवार के मतभेदों ने समस्या को और विकराल बना दिया. इस काल की गुप्त वंशावली में उत्तराधिकारियों की सूची में व्यापक भिन्नता नज़र आती है. छठी शताब्दी के मध्य तक, जब यह वंश लगभग

समाप्ति पर था, उनका राज्य काफ़ी छोटा हो चुका था. उत्तर भारत तथा मध्य भारत के कुछ हिस्से हूणों के नियंत्रण में थे.

गुप्त काल में महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक विकास हुए. संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ कवि कालिदास संभवतः चंद्रगुप्त II के समकालीन थे. इस काल से ही कुछ सबसे पुराने एकल मंदिरों, उदाहरणार्थ देवगढ़ (उत्तर प्रदेश) में स्थित मंदिर, के प्रमाण मिलते हैं. गुप्त काल मूर्ति शिल्प, मानव आकृतियों के संवेदनशील चित्रण के लिए उल्लेखनीय है. इसी काल में निर्मित महरौली (दिल्ली) स्थित लौह स्तंभ, जो 1500 वर्षों से अधिक समय से बिना ज़ंग लगे मौजूद है, तत्कालीन कारीगरों की तकनीकी निपुणता का प्रमाण है.

गुप्त, मैथिलीशरण

(ज.–3 अग. 1886, चिरगांव, झांसी, उत्तर प्रदेश, मृ.–12 दिसं. 1964), हिंदी के प्रख्यात कवि. संभ्रांत वैश्य परिवार में जन्मे मैथिलीशरण गुप्त के पिता का नाम सेठ रामचरण और माता का श्रीमती काशीबाई था. उनके पिता रामचरण एक निष्ठावान प्रसिद्ध रामभक्त थे. रामभक्ति तथा काव्य–रचना गुप्त जी को विरासत में प्राप्त हुई. मुंशी अजमेरी के साहचर्य ने उनके काव्य–संस्कारों को विकसित किया. उनके व्यक्तित्व में प्राचीन संस्कारों तथा आधुनिक विचारधारा दोनों का समन्वय था. इनकी आरंभिक शिक्षा झांसी के राजकीय विद्यालय में हुई किंतु उसमें कवि का मन नहीं रमा और अंततः उन्होंने घर पर ही संस्कृत, हिंदी तथा बांग्ला साहित्य का व्यापक अध्ययन किया.

गुप्त स्वभाव से ही लोकसंग्रही कवि थे और अपने युग की समस्याओं के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील रहे. उनका काव्य एक ओर वैष्णव भावना से परिपोषित था, तो साथ ही जागरण व सुधार युग की राष्ट्रीय नैतिक चेतना से अनुप्राणित भी. लाला लाजपतराय, बालगंगाधर तिलक, विपिनचंद्र पाल, गणेश शंकर विद्यार्थी और मदनमोहन मालवीय उनके आदर्श रहे. महात्मा गांधी के भारतीय राजनीतिक जीवन में आने से पूर्व ही गुप्त का युवा मन गरम दल और तत्कालीन क्रांतिकारी विचारधारा से प्रभावित हो चुका था. *अनघ* से पूर्व की रचनाओं में, विशेषकर *जयद्रथ–वध* और *भारतभारती* में कवि का क्रांतिकारी स्वर सुनाई पड़ता है. बाद में महात्मा गांधी, राजेंद प्रसाद, नेहरू और विनोबा भावे के संपर्क में आने के कारण वह गांधीवाद के व्यावहारिक पक्ष और सुधारवादी आंदोलनों के समर्थक बने. 1936 में गांधी ने ही उन्हें *मैथिली काव्य–मान* ग्रंथ भेंट करते हुए राष्ट्रकवि का संबोधन दिया. महावीर प्रसाद द्विवेदी के संसर्ग से गुप्तजी की काव्य–कला में निखार आया और उनकी रचनाएं *सरस्वती* में निरंतर प्रकाशित होती रहीं. 1909 में उनका पहला काव्य *रंग में भंग* प्रकाशित हुआ. इसके बाद 1909 में उनका दूसरा काव्य *जयद्रथ–वध* आया. *जयद्रथ–वध* की लोकप्रियता ने उन्हें लिखने और प्रकाशन की प्रेरणा दी. 59 वर्षों में गुप्त जी ने गद्य, पद्य, नाटक, मौलिक तथा अनूदित, सब मिलाकर हिंदी को लगभग 74 रचनाएं प्रदान की हैं. जिनमें दो महाकाव्य, 20 खंड–काव्य, 17 गीतिकाव्य, चार नाटक और गीतिनाट्य हैं.

गुप्त जी की प्रसिद्धि का मूलाधार *भारत–भारती* है. *भारत–भारती* उन दिनों राष्ट्रीय स्वतंत्रता–संग्राम का घोषणापत्र बन गई थी. *साकेत* और *जयभारत,* दोनों महाकाव्य हैं. *साकेत* रामकथा पर आधारित है, किंतु इसके केंद्र में लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला हैं. *साकेत* में कवि ने उर्मिला और लक्ष्मण के दांपत्य जीवन के हृदयस्पर्शी प्रसंग तथा उर्मिला की विरह दशा का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है, साथ ही कैकेयी के पश्चाताप को दर्शाकर उसके चरित्र का मनोवैज्ञानिक एवं उज्ज्वल पक्ष प्रस्तुत किया है. *यशोधरा* में गौतम बुद्ध की मानिनी पत्नी यशोधरा केंद्र में हैं. यशोधरा की मनःस्थितियों का मार्मिक अंकन इस काव्य में हुआ है.

विष्णुप्रिया में चैतन्य महाप्रभु की पत्नी केंद्र में है. वस्तुतः गुप्त जी ने रवींद्रनाथ ठाकुर द्वारा बांग्ला भाषा में रचित *काव्येर उपेक्षित नार्या* शीर्षक लेख से प्रेरणा प्राप्त कर अपने प्रबंध काव्यों में उपेक्षित, किंतु महिमामयी नारियों की व्यथा–कथा को चित्रित किया और साथ ही उसमें आधुनिक चेतना के आयाम भी जोडे.

विविध धर्मों, संप्रदायों, मत–मतांतरों और विभिन्न संस्कृतियों के प्रति सहिष्णुता व समन्वय की भावना गुप्त जी के काव्य का वैशिष्ट्य है. *पंचवटी* काव्य में सहज वन्य–जीवन के प्रति गहरा अनुराग और प्रकृति के मनोहारी चित्र हैं, तो *नहुष* पौराणिक कथा के आधार के माध्यम से कर्म और आशा का संदेश है. *झंकार* वैष्णव भावना से ओतप्रोत गीतिकाव्य है, तो *गुरुकुल* और *काबा–कर्बला* में कवि के उदार धर्म–दर्शन का प्रमाण मिलता है. खड़ी बोली के स्वरूप निर्धारण और विकास में गुप्त जी का अन्यतम योगदान रहा.

1952 में गुप्त जी राज्यसभा के सदस्य मनोनीत हुए और 1954 में उन्हें पद्मभूषण अलंकार से सम्मानित किया गया. इसके अतिरिक्त उन्हें हिंदुस्तानी अकादमी पुरस्कार, मंगला प्रसाद पारितोषिक तथा साहित्य वाचस्पति की उपाधि से भी अलंकृत किया गया. काशी विश्वविद्यालय ने उन्हें डी. लिट्. की मानद उपाधि प्रदान की.

प्रमुख कृतियां : *जयद्रथ वध* (1910), *भारत–भारती* (1912), *पंचवटी* (1925), *साकेत* (1933), *यशोधरा* (1932), *विष्णुप्रिया* (1957), *झंकार* (1929), *जयभारत* (1952), *द्वापर* (1936),

गुप्त लिपि

चौथी–छठी शताब्दी की उत्तर भारतीय वर्णमाला से विकसित भारतीय वर्णमाला लेखन पद्धतियों के समूह में से कोई भी (जिन्हें कभी–कभी एक ध्वनि के बदले शब्दांश चिह्नित करने के लिए संशोधित किया गया). उस समय शासन कर रहे गुप्त राज्य ने इसे अपना नाम दिया. यह ब्राह्मी से विकसित हुई और गुप्त राज्य तथा उनके द्वारा जीते गए इलाक़ों में इसका विस्तार हुआ. परिणामस्वरूप गुप्त वर्णमाला बाद में अधिकांश भारतीय लिपियों की पूर्वज बनी (अधिकांशतः देवनागरी के माध्यम से).

मूल गुप्त वर्णमाला में पांच स्वर सहित 37 अक्षर थे और यह बायीं से दायीं ओर लिखी जाती थी. मूल वर्णमाला से गुप्त लिपि के चार उप–प्रकार विकसित हुए : पूर्वी, पश्चिमी, दक्षिणी और मध्य एशियाई. मध्य एशियाई गुप्त लिपि को मध्य एशियाई वक्र गुप्त लिपि और इसके ऐग्नियन और कुचियन प्रकार तथा मध्य एशियाई प्रवाही गुप्त लिपि या खोतानी में वर्गीकृत किया जा सकता है. पूर्वी गुप्त लिपि की पश्चिमी शाखा से सिद्धमातृका लिपि का जन्म हुआ (500 ई.), जिससे देवनागरी लिपि का विकास हुआ (700 ई.), जो आधुनिक भारतीय लिपियों में सबसे अधिक व्यापक है.

गुप्त वंश

पूर्वोत्तर भारत, बाद में बिहार के मगध राज्य के शासक. इन्होंने चौथी शताब्दी के आरंभ से छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक उत्तरी भारत और मध्य एवं पश्चिमी भारत के कुछ हिस्सों पर शासन किया. इस वंश के संस्थापक चंद्रगुप्त I थे. गुप्तकाल के दौरान सभी क्षेत्रों में विकास हुआ. इसी काल में अंकों की दशमलव प्रणाली शुरू हुई, महान संस्कृत महाकाव्य, हिंदू कला, खगोल विज्ञान, गणित तथा धातु विज्ञान भी इस युग की देन है.

गुरखा

नेपाल के शासक घराने का मूल स्थान. गुरखा पर 1559 में लामजुंग के राजा द्रब्य शाह ने क़ब्ज़ा कर वहां अपने वंश का शासन स्थापित किया. उनके वंशज, पृथ्वीनारायण शाह ने विविध जातीय सैन्य दल खड़ा किया, जो गुरखा के नाम से जाना जाने लगा, जिसके बल पर उन्होंने मल्ल राज्य को जीता और कई स्वतंत्र रियासतों को संगठित कर नेपाल राज्य की स्थापना की. ब्रिटेन ने 18वीं सदी के मध्य से इन सैनिकों को अपनी सेना में बड़ी संख्या में भरती किया और 1947 के बाद से यह भारतीय थल सेना की एक महत्त्वपूर्ण रेजिमेंट है.

गुरदासपुर

नगर, ज़िला, पश्चिमोत्तर पंजाब राज्य, पश्चिमोत्तर भारत, पाकिस्तान की सीमा पर. यह शहर अमृतसर–पठानकोट–जम्मू राजमार्ग पर स्थित है तथा मुख्यतः एक प्रशासनिक केंद्र है. पहाड़ों के तराई इलाक़े तक विस्तृत पूर्वोत्तर भाग को छोड़कर यह ज़िला जलोढ़ मैदान का हिस्सा है. यहां की कृषि अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार गेहूं तथा चावल है तथा अन्य फ़सलों में मक्का, गन्ना, तिलहन तथा दलहन शामिल हैं. सामाजिक वानिकी, ख़ासतौर से नीलगिरि तथा पॉपलर वृक्ष लगाने का काम प्रगति पर है. औसत वार्षिक वर्षा 1,016 मिमी होने के कारण गौण फ़सलें उत्तर में बग़ैर सिंचाई के भी पैदा हो जाती हैं. ज़िले में खेती के कुल क्षेत्र का 78 प्रतिशत हिस्सा सिंचित (ज़्यादातर नलकूपों से) है. सारे गांव सड़कों से जुड़े हैं और अधिकांश घरों में बिजली का उपयोग होता है. गुरदासपुर में पंजाब के ईसाइयों का सबसे बड़ा संकेंद्रण है, जिनका लगभग 90 प्रतिशत ग्रामीण इलाक़ों में रहता है. जनसंख्या (2001) नगर 67,455; ज़िला कुल 20,96,889.

गुरमुखी वर्णमाला

ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰ

गुरमुखी लिपि

भारत में सिक्खों द्वारा अपने पवित्र साहित्य के लिए विकसित लेखन प्रणाली. यह लंडा लिपि का आधुनिकृत रूप प्रतीत होता है. लंडा लिपि का उपयोग पंजाबी लहंदा और सिंधी भाषा को लिखने के लिए किया जाता है. लंडा, गुरमुखी तथा पश्चिमोत्तर की दो अन्य लिपियां शारदा और तकरी को मिलाकर एक अंतर्संबंधित समूह का निर्माण होता है, जिनकी उत्पत्ति संभवतः एक ही मूल से हुई है. सिक्ख इतिहास के अनुसार गुरमुखी का अविष्कार दूसरे सिक्ख गुरु अंगद द्वारा 16वीं शताब्दी के मध्य में, लंडा लिपि की कुछ कमियों को दूर करने के उद्देश्य से किया गया था, ताकि पवित्र साहित्य का सटीक लेखन हो सके. इस वर्णमाला में 42 अक्षर हैं, जिनमें 32 व्यंजन और 10 स्वर हैं.

गुरु

(संस्कृत शब्द, अर्थात भारी या महत्त्वपूर्ण, इसलिए आदरणीय या श्रद्धेय), हिंदू धर्म में एक व्यक्तिगत आध्यात्मिक शिक्षक या निर्देशक, जिसने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त कर ली हो. कम से कम उपनिषदों के समय से भारत में धार्मिक शिक्षा में गुरुकुल पद्धति के महत्त्व पर ज़ोर दिया जाता रहा है. प्राचीन भारत की शैक्षिक प्रणाली में वेदों का ज्ञान व्यक्तिगत रूप से गुरुओं द्वारा मौखिक शिक्षा के माध्यम से शिष्यों को दिया जाता था. पारंपरिक रूप से पुरुष शिष्य गुरुओं के आश्रम में रहते थे और भक्ति तथा आज्ञाकारिता से उनकी सेवा करते थे.

बाद में भक्ति आंदोलन के उत्थान के साथ, जो ईष्ट देवता के प्रति भक्ति पर ज़ोर देता है, गुरु और भी अधिक महत्त्वपूर्ण चरित्र बन गए. किसी संप्रदाय के प्रमुख या संस्थापक के रूप में वह श्रद्धा के पात्र थे और उन्हें आध्यात्मिक सत्य का मूर्तिमान जीवित रूप माना जाता था. इस प्रकार उन्हें देवता के जैसा सम्मान प्राप्त था. गुरु के प्रति सेवा भाव और आज्ञाकारिता की परंपरा अब भी विद्यमान है.

गुरुदत्त

(ज.–9 जुला. 1925, बंगलोर, कर्नाटक, भारत; मृ.–10 अक्तू. 1964, बंबई {वर्तमान मुंबई}, महाराष्ट्र), हिंदी सिनेमा के निर्देशक तथा अभिनेता.

कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) में शिक्षा प्राप्त करने के बाद दत्त ने अल्मोड़ा स्थित उदय शंकर की नृत्य अकादमी में प्रशिक्षण प्राप्त किया और उसके बाद कलकत्ता में टेलीफ़ोन ऑपरेटर का काम करने लगे. बाद में वह पुणे (भूतपूर्व पूना) चले गए और प्रभात स्टूडियो से जुड़ गए, जहां उन्होंने पहले अभिनेता और फिर नृत्य–निर्देशक के रूप में काम किया. उनकी पहली फीचर फिल्म *बाज़ी* (1951) देवानंद की नवकेतन फ़िल्म्स के बैनर तले बनी थी. इसके बाद उनकी दूसरी सफल फिल्म *जाल* (1952) बनी, जिसमें वही सितारे (देवानंद और गीता बाली) शामिल थे. इसके बाद गुरुदत्त ने

निर्माता, निर्देशक और अभिनेता गुरुदत्त की एक फ़िल्म का पोस्टर

बाज़ (1953) फ़िल्म के निर्माण के लिए अपनी प्रोडक्शन कंपनी शुरू की. हालांकि उन्होंने अपने संक्षिप्त, किंतु प्रतिभासंपन्न पेशेवर जीवन में कई शैलियों में प्रयोग किया, लेकिन उनकी प्रतिभा का सर्वश्रेष्ठ रूप उत्कट भावुकतापूर्ण फ़िल्मों में प्रदर्शित हुआ.

मुख्य रूप से दत्त की प्रसिद्धि का स्रोत बारीकी से गढ़ी गई, उदास व चिंतन भरी उनकी तीन बेहतरीन फ़िल्में हैं— *प्यासा* (1957), *काग़ज़ के फूल* (1959) और *साहब, बीबी और गुलाम* (1962). हालांकि *साहब, बीबी और गुलाम* का श्रेय उनके सह पटकथा लेखक अबरार अल्वी को दिया जाता है, लेकिन यह स्पष्ट रूप से गुरुदत्त की कृति थी. गुरुदत्त ने *सी.आई.डी.* से वहीदा रहमान का फ़िल्म जगत में परिचय कराया और फिर *प्यासा* तथा *काग़ज़ के फूल* जैसी फ़िल्मों से उन्हें कीर्तिस्तंभ की तरह स्थापित कर दिया. प्रकाश और छाया के कल्पनाशील उपयोग, भावपूर्ण दृश्यबिंब, कथा में कई विषय—वस्तुओं की परतें गूंथने की अद्‌भुत क्षमता और गीतों के मंत्रमुग्धकारी छायांकन ने उन्हें भारतीय सिनेमा के सबसे निपुण शैलीकारों में ला खड़ा किया. शराब की लत से लंबे समय तक जूझने के बाद 1964 में उन्होंने आत्महत्या कर ली और इस प्रकार एक प्रतिभाशाली जीवन का असमय अंत हो गया.

अभिनेत्री गीता बाली के साथ गुरुदत्त
सौजन्य : *हिंदुस्तान टाइम्स*

गुरुद्वारा

(पंजाबी शब्द, अर्थात गुरु का द्वार), भारत के एक धार्मिक समूह सिक्खों का पूजास्थल. गुरुद्वारे में एक छत्र के नीचे एक आसन पर *आदिग्रंथ* की एक प्रति रखी होती है, जो सिक्ख धर्म का पवित्र ग्रंथ है. यह सभाओं के मिलनस्थल, विवाह तथा दीक्षा समारोहों के स्थल की भूमिका भी निभाता है. ऐतिहासिक रूप से अपेक्षाकृत महत्त्वपूर्ण गुरुद्वारे त्योहारों के दौरान तीर्थ बन जाते हैं. गुरुद्वारों के साथ एक लंगर और आमतौर पर एक विद्यालय जुड़ा हुआ होता है.

पंजाब राज्य में अमृतसर में स्थित हरमंदिर या स्वर्णमंदिर प्रमुख गुरुद्वारा है, लेकिन प्रत्येक सिक्ख परिवार घर के एक अलग कमरे को *आदिग्रंथ* के पाठ के लिए समर्पित रखता है और यह कमरा भी गुरुद्वारा कहलाता है. गुरुद्वारे में प्रवेश करते समय श्रद्धालु

को अपने जूते उतार लेने चाहिए, पैर धोने चाहिए और सिर ढकना चाहिए. पूजन या प्रार्थना में सामान्यतः ग्रंथ को खोलने, भजन गाने शास्त्र को पढ़ने तथा उस पर चर्चा करने, प्रार्थना, कड़ाहप्रसाद (गेहूं का आटा, चीनी और शुद्ध घी को समान मात्रा में मिलाकर बनाया गया व्यंजन) का वितरण और विसर्जन शामिल हैं.

मुग़लों द्वारा सिक्खों के उत्पीड़न काल में कुछ गुरुद्वारों का प्रबंधन (और इससे जुड़ी महत्त्वपूर्ण भूमि तथा कोष) हिंदू महंतों के हाथों में चला गया. सिक्खों द्वारा कई वर्षों तक लगातार आंदोलन चलाए जाने के बाद 1925 में ब्रिटिश सरकार ने सिक्ख गुरुद्वारा क़ानून (सिक्ख गुरुद्वारा ऐक्ट, 1925) पारित किया, जिसके ज़रिये गुरुद्वारों का नियंत्रण सिक्खों को लौटा दिया गया. ऐतिहासिक महत्त्व के गुरुद्वारों का नियंत्रण अब शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति नामक संस्था द्वारा किया जाता है.

गुरुद्वारा अनंतपुर साहिब, पंजाब
सौजन्य : सुरेश कुमार

गुर्जर–प्रतिहार वंश

प्रारंभिक मध्यकालीन भारत के दो वंशों में से एक. हरिश्चंद्र एवं उनके वंशजों ने छठी से नौवीं शताब्दी तक सामंत के रूप में मंदौर, मारवाड़ (जोधपुर, राजस्थान) पर शासन किया. नागभट कुल ने आठवीं से ग्यारहवीं शताब्दी के दौरान पहले उज्जैन और बाद में कन्नौज पर शासन किया. अन्य गुर्जर वंश भी मौजूद थे, लेकिन उन्होंने प्रतिहार नाम नहीं अपनाया.

गुर्जरों का मूल अनिश्चित है. आमतौर पर एक मत यह था कि वे हूणों (श्वेत या पूर्वी हूण), जिन्होंने पांचवीं शताब्दी में भारत पर आक्रमण किया था, के आगमन के समय भारत आए थे और ख़ज़रों से जुड़े थे, हालांकि अब बहुत से इतिहासकार मानते हैं कि गुर्जर देशज मूल के थे. गुर्जर नाम का छठी शताब्दी से पहले कहीं उल्लेख नहीं है.

आरंभिक हरिश्चंद्र वंश का परवर्ती व अधिक महत्त्वपूर्ण नागभट वंश से संबंध अनिश्चित है. नागभट I (आठवीं शताब्दी) पौराणिक नायक राम के भाई का वंशज होने का दावा करते थे और इस प्रकार स्वयं को सूर्यवंशी मानते थे. संभवतः वह मालवा पर शासन करते थे और उनके भाई के पोते को 783 में उज्जैन का राजा प्रमाणित किया गया है. उन्हें राष्ट्रकूटों द्वारा पराजित किया गया और उन्होंने व उनके पुत्र ने कुछ समय के लिए राष्ट्रकूट प्रभुत्व को स्वीकार कर लिया था. नौवीं शताब्दी के आरंभ में प्रतिहार, राष्ट्रकूट और पालों से होने वाली जटिल व ठीक से अभिलिखित न होने वाली

लड़ाइयों में नागभट II ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई. लगभग 816 में उन्होंने गां
क्षेत्रों पर हमला कर पाल शासक धर्मपाल के संरक्षण में स्थानीय राजा चक्रयुद्ध
कन्नौज को हथिया लिया और उसे अपनी राजधानी बनाया. नागभट के बाद उनके
रामभद्र (लगभग 833) गद्दी पर बैठे और संक्षिप्त शासनकाल के बाद उनके पुत्र मिहिरभो
(लगभग 836) उत्तराधिकारी बने. भोज और उनके उत्तराधिकारी महेंद्रपाल (शासनका
लगभग 890–910) के शासन में प्रतिहार वंश अपनी समृद्धि व शक्ति के चरम पर पहुं
महेंद्रपाल के शासनकाल में साम्राज्य के अंतर्गत गुजरात व काठियावाड़ से उत्तरी बंगा
तक फैला विस्तृत क्षेत्र गुप्त वंश के मुक़ाबले का था, हालांकि इनमें से अधिकांश साम
राजाओं द्वारा शासित थे. महेंद्रपाल *कर्पूरमंजरी* के रचनाकार राजशेखर के संरक्षक थे.

महेंद्रपाल की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के बारे में स्पष्ट जानकारी नहीं है. प्रतिहा
की शक्ति वंशगत अंतर्द्वंद्वों के कारण कमज़ोर हो गई. इसके अलावा दक्कन के राष्ट्रकू
राजा इंद्र III द्वारा किए गए भारी आक्रमण से भी उनकी शक्ति कम हो गई. इंद्र
कन्नौज को लूट (लगभग 916) लिया. प्रतिहार फिर कभी पहले जैसी अपनी प्रतिष
हासिल नहीं कर पाए. उनके सामंत अधिक शक्तिशाली होते चले गए. एक–एक कर
वे राज्य के प्रति अपनी निष्ठा को नकारते चले गए और दसवीं शताब्दी के अंत त
प्रतिहारों के नियंत्रण में गांगेय दोआब से थोड़ा अधिक क्षेत्र रह गया. उनके अंति
महत्त्वपूर्ण राजा राज्यपाल को ग़ज़ना के महमूद ने 1018 में कन्नौज से निकाल दिय
बाद में वह चंदेल राजा विद्याधर की सेनाओं द्वारा मारे गए. अगली पीढ़ी तक इलाहाबा
ज़िले में एक छोटा प्रतिहार क्षेत्र अस्तित्व में बना रहा.

गुलबर्गा

शहर, पश्चिमोत्तर कर्नाटक (भूतपूर्व मैसूर) राज्य, भारत. मूलतः वारंगल के काकतिय
के राज्य क्षेत्र में शामिल इस नगर को आरंभिक 14वीं शताब्दी में पहले सेनापति उलू
खां और बाद में सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लक़ द्वारा दिल्ली की सल्तनत में शामिल क
लिया गया. सुल्तान की मृत्यु के बाद यह बहमनी राज्य (1347 से लगभग 1424 त
यह इस साम्राज्य की राजधानी था) के अधीन हो गया और इस सत्ता के पतन के बा
बीजापुर के तहत आ गया. 17वीं शताब्दी में मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब द्वारा दक्क
विजय के बाद इसे फिर से दिल्ली सल्तनत में शामिल कर लिया गया, लेकिन 18वं
शताब्दी के आरंभ में हैदराबाद राज्य की स्थापना से यह दिल्ली से अलग हो गया

शहर में कई प्राचीन स्मारक हैं. पूर्वी हिस्से में बहमनी शासकों के मक़बरे हैं; सबर
दर्शनीय भवन एक मस्जिद है, जिसके बारे में कहा जाता है कि स्पेन के कोरडोबा व
आधार पर इसका प्रारूप तैयार किया गया था. गुलबर्गा विश्वविद्यालय से संबद्ध क
कॉलेज यहां हैं, जिनमें रूरल इंजीनियरिंग कॉलेज, पी.डी.ए. कॉलेज ऑफ़ इंजीनियरिंग
कॉलेज ऑफ फार्मेसी, अलबदर डेंटल कॉलेज, के.बी.एन. कॉलेज ऑफ़ इंजीनियरिंग
एम.आर. मेडिकल कॉलेज, एच.के.इ.एस. डेंटल कॉलेज, राजकीय पॉलीटेक्निक, एन.वी
पॉलीटेक्निक और एस.बी. कॉलेज ऑफ़ साइंस शामिल हैं. यहां कला, वाणिज्य, शिक्षा

इंजीनियरिंग, विधि और चिकित्सा विज्ञान के महाविद्यालयों के अलावा एक महिला महाविद्यालय भी है. ये सभी भूतपूर्व गुलबर्गा विश्वविद्यालय से संबद्ध हैं.

मुंबई (भूतपूर्व बंबई) से चेन्नई (भूतपूर्व मद्रास) के मुख्य रेलमार्ग पर स्थित गुलबर्गा कपास के व्यापार का केंद्र है. यहां कपास ओटने और गांठ बनाने के कारख़ाने तथा कताई व बुनाई की मिलें भी हैं. यहां पर आटा और तेल मिलें व पेंट के कारख़ाने हैं. आसपास के क्षेत्र की अधिकांश आबादी कृषि कार्य में संलग्न है. ज्वार, दलहन, कपास और अलसी यहां की प्रमुख फ़सलें हैं. जनसंख्या (2001) शहर 4,27,929; ज़िला कुल 31,24, 858.

गुलमर्ग

सैरगाह नगर, जम्मू–कश्मीर राज्य, उत्तर भारत. लगभग 2,600 मीटर की ऊंचाई पर स्थित गुलमर्ग (अर्थ : फूलों की वादी) से समूची कश्मीर घाटी और नंगा पर्वत का नयनाभिराम दृश्य दिखाई देता है. 8,126 मीटर ऊंचा नंगा पर्वत हिमालय के उच्चतम शिखरों में से एक है. गुलमर्ग के चारों तरफ़ की वृत्ताकार सड़क से घाटी और पर्वतों के समस्त दर्शनीय स्थल देखे जा सकते हैं. यह सैरगाह दुनिया के सबसे ऊंचे गॉल्फ़ मैदान के लिए प्रसिद्ध है साथ ही यहां टेनिस, स्कीइंग तथा पोलो जैसे खेलों की सुविधाएं भी हैं. गुलमर्ग पहले राज्य की सीमा शुल्क तथा निगरानी चौकी भी था. जनसंख्या (2001); क़स्बा 664.

गुलमर्ग का नयनाभिराम घास का मैदान
सौजन्य : सुरेश कुमार
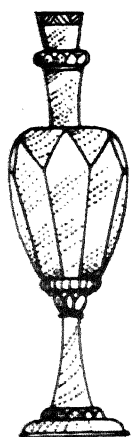
इत्र की शीशी
© 2000, एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (इंडिया) प्रा.लि.

गुलाब का अर्क़

गुलाब का इत्र या गुलाब का तेल भी कहलाता है, इत्र, रंगहीन या हल्का पीला द्रव, ताज़े *रोज़ा डैमासीना* व *रोज़ा गैलिका* और *रोज़ासी* कुल की गुलाब की अन्य प्रजातियों की पंखुड़ियों के आसवन से निकाला गया तेल. गुलाब का तेल उत्कृष्ट इत्र और औषधि–द्रव्य का एक महत्त्वपूर्ण अवयव है. इसका उपयोग ज़ायकेदार बरफ़ी और खुशबूदार मलहम व प्रसाधन सामग्रियों के निर्माण में सुगंधित तत्त्व के रूप में होता है

बुल्गारिया में गुलाब की खेती नम घाटियों में होती है और उनका परवर्ती आसवन एक महत्त्वपूर्ण आधुनिक राष्ट्रीय उपक्रम बन गया है. तुर्की के अनातोलिया में भी आसव का वाणिज्यिक उत्पादन होता है. फ़्रांस के दक्षिण में और मोरक्को में एक उपयुक्त विलायक की सहायता से सेंटिफ़ोलिया गुलाब (*रोज़ा सेंटिफ़ोलिया*) की पंखुड़ियों से अंशतः आसवन, लेकिन मुख्यतः तेल निकाला जाता है. लगभग 113 किग्रा गुलाब से एक औंस प्रचुर सुगंधित अर्क का उत्पादन किया जा सकता है.

इसके मुख्य सुगंधित घटक जेरानिऑल और सिट्रानिऑल हैं.

ग़ुलाम अहमद, मिर्ज़ा

(ज.–लगभग 1839, क़ादियांन, भारत; मृ.–26 मई 1908, भारत), भारतीय मुसलमान नेता, जिन्होंने अहमदिया नामक महत्त्वपूर्ण मुस्लिम संप्रदाय की स्थापना की. एक समृद्ध परिवार के पुत्र गुलाम अहमद ने फ़ारसी और अरबी की शिक्षा प्राप्त की. वकालत करने या ब्रिटिश सरकार की सेवा में जाने के अपने पिता के अनुरोध को ठुकरा कर वह चिंतन और धार्मिक अध्ययन में जीवन व्यतीत करने लगे. उन्होंने दावा किया कि उन्हें दैवी आवाज़ें सुनाई देती हैं और 1889 में उन्होंने घोषणा की कि अल्लाह ने उन्हें बयात (निष्ठा की शपथ) लेने को कहा है. ज़ल्दी ही उनके निष्ठावान शिष्यों का एक छोटा समूह जमा हो गया. उसके बाद उनके प्रभाव और अनुयायियों की संख्या लगातार बढ़ती गई तथा साथ ही मुस्लिम समुदाय में उनका विरोध भी क्रमशः बढ़ता गया.

गुलाम अहमद ने न सिर्फ़ महदी और पैग़ंबर मुहम्मद के पुनर्अवतार (बुरुज़) होने का दावा किया, बल्कि यह भी कहा कि वह धरती पर लौटे ईसा मसीह और भगवान कृष्ण का भी स्वरूप हैं. अहमदिया मान्यताओं में उनकी कई अपेक्षाकृत अरूढ़िवादी शिक्षाओं को शामिल किया गया, जहां उन्होंने ईसाइयों के केंद्रीकृत धर्म प्रचारक संगठनों और विद्यालयों की नक़ल का प्रयास किया, ईसाई तथा मुस्लिम धार्मिक सिद्धांतों से सामंजस्य में उनकी कोई रुचि नहीं थी और प्रत्यक्षतः वह पश्चिमी प्रभावों को उखाड़ फेंकने के अपने संघर्ष में ज़्यादा प्रभावशाली होना चाहते थे. उनके इस उद्देश्य की अस्पष्टता के बावजूद वह एक प्रभावशाली नेता थे और उन्होंने निष्ठावान शिष्यों की मज़बूत संस्था का निर्माण किया. उनकी मृत्यु के पश्चात उनके अनुयायियों ने इस बात पर विवाद खड़ा किया कि उन्होंने सचमुच पैग़ंबर होने का दावा किया था और यदि किया भी था तो पैग़ंबर से उनका क्या तात्पर्य था. उनके अनुयायियों ने एक समुदाय की स्थापना की और नेतृत्व के लिए एक खलीफ़ा का चुनाव किया.

गुलाम वंश

(1206–90), दिल्ली, भारत में सत्तारूढ़ सुल्तानों का वंश, जो लगभग एक शताब्दी तक चला. इनका कुलनाम मुईज़्ज़ी था.

गुलाम वंश की स्थापना कुतुबुद्दीन ऐबक़ ने की थी, जो मुस्लिम सेनापति और बाद में सुल्तान बने मुहम्मद ग़ोरी के पसंदीदा गुलाम थे. कुतुबुद्दीन मुहम्मद के सबसे विश्वस्त तुर्की अधिकारियों में से एक थे और भारत में मुहम्मद के अभियानों की निगरानी करते थे. जब 1206 में मुहम्मद की हत्या हो गई, तो कुतुब ने लाहौर में सत्ता संभाल ली. उन्होंने प्रतिद्वंद्वी गुलाम शासक ताजुद्दीन यलदूज़ के साथ कई बार हुए युद्ध में अपनी स्थिति मज़बूत की और इस दौरान उन्होंने कई बार ग़ज़ना पर क़ब्ज़ा किया व फिर हार गए. अंततः वह एक शुद्ध भारतीय प्रभुसत्ता के रूप में सीमित हो गए. वह 1210 में पोलो खेलते समय दुर्घटनाग्रस्त हो कर मरे और कुछ समय बाद उनके दामाद इल्तुतमिश ने उत्तराधिकार संभाल लिया.

इल्तुतमिश की ताज़पोशी के समय तक इस वंश के नियंत्रण क्षेत्र में कमी आ गई. गुलाम वंश के सबसे महान शासक इल्तुतमिश ने यलदूज़ को हरा कर (1216) मार डाला, बंगाल के सूबेदार को फिर से अधीन कर लिया और निचले सिंध समेत कई नए इलाक़े अपने साम्राज्य में शामिल कर लिए.

इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद उनकी सक्षम बेटी रज़िया ने सुल्तान के रूप में शासन करने की कोशिश की, लेकिन विरोधी तुर्की गुलाम कुलीनों के विरोध के कारण असफल रही. 1246 के बाद सल्तनत पर ग़यासुद्दीन बलबन का नियंत्रण हो गया, जो 1266 से 1287 तक सुल्तान रहे. बलबन के शासनकाल में दिल्ली को मंगोलों के कई आक्रमणों से जूझना पड़ा. 13 जून 1290 को जलालुद्दीन फ़िरोज़ ख़लजी द्वारा सफल विद्रोह के बाद गुलाम वंश का अंत हो गया और ख़लजी वंश सत्तासीन हुआ.

गुलाम वंश के काल में नई दिल्ली में निर्मित कुतुब मीनार
सौजन्य : यूसुफ सईद

गुवाहाटी

शहर, भूतपूर्व गौहाटी, पश्चिमी असम राज्य, पूर्वोत्तर भारत. ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर बसा

एक नैसर्गिक सौंदर्य संपन्न शहर, जिसके दक्षिण में वनाच्छादित पहाड़ियां एक प्राकृतिक रंगभूमि बनाती हैं. 400 ई. में गुवाहाटी हिंदू राज्य कामरूप की राजधानी (प्रागज्योतिषपुर यानी 'ज्योतिषशास्त्र का नगर' के नाम से) हुआ करता था. इसके उल्लेख भारतीय पुराणों में भी हैं. काफ़ी समय तक यह हिंदू तीर्थस्थल तथा शिक्षा का केंद्र भी रहा. सातवीं सदी के महान यात्री ह्वेनसांग ने इस शहर, ख़ासतौर से उसके वनों, सुंदर पर्वत मालाओं तथा वन्यजीवन का उल्लेख किया है. 17वीं सदी में यह नगर बार–बार मुसलमान तथा अहोम शासकों (चीन के युन्नान प्रांत से यहां पहुंची ताई भाषा बोलने वाली जाति) के हाथों में आता–जाता रहा और अंततः 1681 में यह निचले असम के अहोम प्रशासक का मुख्यालय बना तथा 1786 में अहोम राजा ने इसे अपनी राजधानी बना लिया. गुवाहाटी पर 1816 से 1826 तक बर्मियों का क़ब्ज़ा रहा, जब यांदाबू की संधि के द्वारा उन्होंने इसे ईस्ट इंडिया कंपनी को सौंप दिया. 1874 में असम की राजधानी को यहां से 108 किमी दूर शिलांग ले जाया गया. 1973 से गुवाहाटी असम की राजधानी है. दिसपुर के नई राजधानी बन जाने के बाद भी यह शहर न केवल असम, बल्कि समूचे पूर्वोत्तर क्षेत्र का व्यापारिक केंद्र बना हुआ है.

गुवाहाटी में मंदिरों वाली छोटी पहाड़ियां हैं. शहर के बीचोंबीच शुक्लेश्वर की पहाड़ी पर जनार्दन मंदिर है. उसमें स्थापित बुद्ध की प्रतिमा में हिंदू और बौद्ध विशिष्टताओं का अनोखा मिश्रण है. चित्राचल पहाड़ी पर बना नवगढ़ (नवगृह) मंदिर, ज्योतिष और खगोल शास्त्र के अध्ययन का प्राचीन केंद्र था. संभवतः गुवाहाटी का प्राचीन नाम प्रागज्योतिषपुर इसी मंदिर के कारण पड़ा होगा. नगर के केंद्र से 8 किमी के फ़ासले पर पवित्र नीलांचल की पहाड़ी पर स्थित कामाख्या मंदिर सबसे महत्त्वपूर्ण है. यह तांत्रिक अनुष्ठानों तथा वैश्विक मातृसत्ता की प्रतीक शक्ति का उपासना स्थल है. वर्तमान मंदिर का निर्माण मूल मंदिर के 10वीं सदी में ध्वस्त कर दिए जाने पर किया गया था. इस पहाड़ी की चोटी से ब्रह्मपुत्र नदी का नयनाभिराम दृश्य दिखलाई देता है. अन्य महत्त्वपूर्ण स्थल ब्रह्मपुत्र नदी के मयूर द्वीप में स्थित उमानंद (शिव) मंदिर तथा नगर से 12 किमी दूर स्थित वशिष्ठ आश्रम हैं.

गुवाहाटी असम का महत्त्वपूर्ण व्यापार केंद्र तथा बंदरगाह है. यहां एक तेलशोधन संयंत्र और सरकारी फ़ार्म है तथा उद्योगों में चाय तथा कृषि उत्पादों का प्रसंस्करण, अनाज पिसाई तथा साबुन बनाना है. यहां कोई अन्य बड़े उद्योग नहीं हैं. लगभग 17 प्रतिशत आबादी उद्योग, व्यापार तथा वाणिज्य में लगी हुई है तथा उद्योगों पर राजस्थान से आए मारवाड़ियों का एकाधिकार है. यहां की आबादी मिलीजुली है, जिसमें बंगाली, पंजाबी, बिहारी, नेपाली, राजस्थानी तथा बांग्लादेशी शामिल हैं. इसके अलावा यहां सारे पूर्वोत्तर भारत के आदिवासी समुदायों के लोग भी बसते हैं. यहां गुवाहाटी विश्वविद्यालय (स्थापना 1948), अर्ल लॉ कॉलेज, राज्य उच्च न्यायालय, पशु चिकित्सा महाविद्यालय, संग्रहालय तथा प्राणी उद्यान हैं. नगर के आसपास अनेक हिंदू तीर्थस्थलों के अवशेष बिखरे पडे हैं. राज्य का पर्यटन विभाग आसपास के स्थलों की यात्राएं आयोजित करता है. कई स्थानीय मेले तथा उत्सव भी यहां मनाए जाते हैं. सर्दियों में असम चाय उत्सव

मनाया जाता है. यहां हवाई अड्डा और छोटी तथा बड़ी लाइन के रेलमार्ग हैं. बोरझार हवाई अड्डा शहर से 25 किमी की दूरी पर स्थित है. नगर पूर्वोत्तर के अन्य राज्यों के साथ भली–भांति जुड़ा हुआ है. राज्य परिवहन निगम की बसों के अलावा निजी बसें तथा टैक्सियां भी उपलब्ध हैं. वृहत्तर गुवाहाटी की नगर–योजना में 262 वर्ग किमी का क्षेत्र शामिल है. जनसंख्या (2001) न.नि. क्षेत्र 8,08,021.

गुस्ल

इस्लाम में 'मुख्य प्रक्षालन', जिसमें पवित्र जल से समूचे शरीर को धोया जाता है और यह विशिष्ट मामलों में, जीवित तथा मृत, दोनों के लिए आवश्यक है. उद्देश्य की अभिव्यक्ति के साथ ही गुस्ल, प्रत्येक बड़ी आनुष्ठानिक अशुद्धि के बाद ज़रूरी है : मैथुन के बाद, वीर्यपात के बाद, रजस्वला होने या प्रसूति के बाद. जुनुब (अपवित्र) व्यक्ति रोज़मर्रा की नमाज़ नहीं पढ़ सकता, बड़े और छोटे हज के दौरान मक्का में काबा की परिक्रमा नहीं कर सकता, *कुरान* नहीं छू सकता और इसकी आयतें नहीं पढ़ सकता या मस्जिद में नहीं घुस सकता है.

पारंपरिक रूप से, मस्जिद में शुक्रवार की नमाज़ (सलाम–अल–जुमा) से पहले, दो प्रमुख मुस्लिम त्योहारों और हज से पहले भी गुस्ल किया जाता है. शहीदों के अलावा, जो अपनी मृत्यु के तरीक़े के कारण, अपने पापों के लिए माफ़ किए जाते हैं, दफ़नाए जाने से पहले मुसलमानों का गुस्ल आवश्यक है.

गुह्यसमाज–तंत्र

(संस्कृत शब्द, अर्थात समस्त रहस्यों का ग्रंथ), *तथागतगुह्यक* (तथागतत्व {बुद्धत्व} के रहस्य) भी कहलाता है. सभी बौद्धतंत्रों में सबसे पुराना और सबसे महत्वपूर्ण तंत्रों में से एक. ये बौद्ध धर्म के गूढ़ और अत्यंत प्रतीकात्मक स्वरूप तांत्रिक बौद्ध धर्म के आधारभूत साहित्य हैं. बौद्ध धर्म के इस स्वरूप का विकास भारत में हुआ और तिब्बत में यह प्रधान धर्म बन गया. महायान और थेरवाद के साथ तांत्रिक स्वरूप बौद्ध धर्म की मुख्य शाखाओं में से एक है.

परंपरागत रूप से *गुह्यसमाज–तंत्र* का श्रेय साधु असंग को दिया जाता है. वज्रयान परंपरा की शुरुआत में प्रकट हुए इसके अधिकांश प्रतीकवाद ने इस परंपरा के विकास पर आदर्श प्रभाव डाला. पहले 18 अध्यायों में शास्त्र के मंडल की प्रस्तुति है, जो दरअसल अनुष्ठानों तथा ध्यान में काम आने वाली दृश्य छवि है और इसे तांत्रिक शास्त्र का प्रतीकात्मक मूर्तरूप माना जाता है. इस शास्त्र के मंडल के केंद्र में अक्षोभ्य, अर्थात अविचलित बुद्ध स्थित हैं, जो तांत्रिक बौद्ध प्रतीकवाद के मुख्य दिव्य चरित्र हैं. उनके चारों तरफ़, पूर्व में वैरोचन या प्रकाशमान बुद्ध; पश्चिमी स्वर्ग या पवित्र भूमि में निवास करने वाले 'अमिताभ' या अनंत प्रकाश के बुद्ध; उत्तर में 'अमोघसिद्धि' और दक्षिण में 'रत्नसंभव' नामक दिव्य बुद्ध विद्यमान हैं. अन्य अध्यायों में लैंगिक और भीषण प्रतीकवाद, आध्यात्मिक तकनीक, ज्ञानवान बोध की प्रकृति और अन्य केंद्रीय तांत्रिक विषय हैं.

गृह्यसूत्र

प्राचीन हिंदू धार्मिक नियमावलियों में से एक, जिसमें गृहस्थ द्वारा की जाने वाली धार्मिक गृह क्रियाओं का विस्तृत वर्णन है. *श्रौतसूत्रों* (भव्य वैदिक बलियों का वर्णन करने वाले) और *धर्मसूत्रों* (आचरण नियमों का वर्णन करने वाले) को मिलाकर *कल्पसूत्र* बनता है. *कल्पसूत्र* संक्षिप्त सूक्तिग्रंथ हैं, जो *वेदों* (भारत का प्राचीनतम पवित्र साहित्य) की विभिन्न शाखाओं से उदित हुआ है. *गृह्यसूत्रों* में मनुष्य के जीवन की हर अवस्था के संस्कारों का वर्णन है, जिसमें उसके गर्भ में आने से लेकर अंतिम संस्कार, पांच दैनिक महायज्ञ, ऋतु संबंधी संस्कार और गृहनिर्माण या पशुपालन जैसे विशेष अवसरों पर संपन्न संस्कार शामिल हैं.

गेद्रोसिया

सिंधु नदी के पश्चिम में स्थित ऐतिहासिक क्षेत्र, जहां आजकल पाकिस्तान का बलूचिस्तान इलाक़ा है. 325 ई.पू. में सिकंदर महान की सेनाओं को इस स्थान पर मरूस्थल के असर, रसद की कमी और मानसून के कारण भारी नुक़सान उठाना पड़ा था. उन्होंने इस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया था, लेकिन सिकंदर की मृत्यु के बाद उनके सेनापति सेल्यूकस निकेटर को पहले मौर्य शासक चंद्रगुप्त को 500 हाथियों के बदले गेद्रोसिया और हिंदुकुश पर्वत के पूर्व का अपना समूचा क्षेत्र देकर शांति समझौता करने पर मजबूर होना पड़ा. यहां से उनके प्रस्थान के साथ ही भारतीय उपमहाद्वीप में यूनानी अतिक्रमण का प्रथम चरण समाप्त हुआ.

गोंड

मध्य भारत का एक आदिम जाति समुदाय, जिसकी जनसंख्या लगभग 20 लाख है. यह मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, झारखंड तथा उड़ीसा राज्यों में रहते हैं. अलग–अलग क्षेत्र के गोंड गोंडी की भिन्न बोलियों का प्रयोग करते हैं, उन्हें दूसरे क्षेत्र के गोंड समझ नहीं पाते. गोंडी द्रविड़ परिवार की लिपि रहित भाषा है. कुछ गोंड अपनी भाषा भूल गए हैं और अब हिंदी, मराठी या तेलुगु जैसी उस क्षेत्र विशेष की प्रचलित भाषा में ही बात करते हैं.

गोंड लोगों में कोई सांस्कृतिक समानता नहीं है. उनकी सबसे विकसित जाति राजगोंड है, जिसकी कभी एक विस्तृत सामंती व्यवस्था थी. किसी राजघराने से रक्त या विवाह संबंध द्वारा जुड़े स्थानीय राजा छोटे–छोटे ग्राम संकुलों पर अपने अधिकार का प्रयोग करते थे. कुछ राजाओं के छोटे क़िलों को छोड़कर पहले इनकी बस्तियों में नाममात्र का ही स्थायित्व होता था. खेती के लिए ये हल और बैलों का प्रयोग तो करते थे, लेकिन अपने खेत बार–बार नए जंगल साफ़ करते हुए बदलते रहते थे. राजगोंड अब भी हिंदू वर्ण व्यवस्था और रीति–रिवाजों के दायरे के बाहर हैं. वे न तो ब्राह्मणों की श्रेष्ठता स्वीकार करते हैं और न ही गोहत्या को निषिद्ध मानते हैं.

मध्य प्रदेश का बस्तर क्षेत्र जिन तीन प्रमुख गोंड जातियों का मूल निवास है, वे हैं: मुरिया, बाइसनहार्न माड़िया तथा पहाड़ी माड़िया. इनमें से पहाड़ी माड़िया अबूझमाड़ की पहाड़ियों में रहती है और सबसे आदिम जाति है. वे पहाड़ी ढलानों पर जंगल काटकर और जलाकर पारंपरिक झूम खेती करते हैं. इसके लिए वे अब भी हल के बजाय फावड़ों और सब्बलों का इस्तेमाल करते हैं. निश्चित अंतरालों के बाद गांवों की जगह बदली जाती है और प्रत्येक क़बीले के सामूहिक स्वामित्व वाली भूमि कई गांवों में होती है, जिन पर नियंत्रण क्रमबद्ध रूप से हस्तांतरित होता है. माड़ियाओं को बाइसनहॉर्न नाम उनके द्वारा नृत्य के समय पहने जाने वाले शिरोवस्त्र के कारण दिया गया है. यह जाति कम पहाड़ी इलाक़ों में रहती है तथा इनके खेत भी स्थायी होते हैं, जिन्हें वे हल–बैलों से जोतते हैं. मुरिया जाति उनके उन युवा गृहों के लिए जानी जाती है, जिन्हें *घोटुल* कहा जाता है, जिनमें अविवाहित लड़के–लड़कियां बहुत ही व्यवस्थित सामाजिक जीवन जीते हुए नागरिक कर्तव्यों और यौन आचरणों का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं. सभी गोंड जातियों का धर्म क़बीले तथा ग्राम देवता और पूर्वजों की पूजा पर केंद्रित है.

गोंडवाना

मध्य भारत का ऐतिहासिक क्षेत्र, जिसमें मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र राज्य के हिस्से शामिल हैं. गोंड यहां के निवासी हैं, जिनकी जनसंख्या 30 लाख से अधिक है. यह द्रविड़ समूह की एक जनजाति है, जिसका उल्लेख पहली बार 14वीं सदी के मुस्लिम दस्तावेज़ों में किया गया.

14वीं से 18वीं शताब्दी तक इस क्षेत्र पर शक्तिशाली गोंड वंशों का शासन था, जो मुग़ल शासन के दौरान स्वतंत्र या सहायक प्रमुख के तौर पर शासन करते रहे. 18वीं शताब्दी में मराठों द्वारा गोंडों पर जीत हासिल करने के बाद गोंडवाना का बड़ा भाग नागपुर के भोंसले राजाओं या हैदराबाद के निज़ाम के क्षेत्रों में समाहित हो गया. बहुत से गोंडों ने दुर्गम ऊपरी क्षेत्रों में शरण ली और वे जनजातीय आक्रमणकारी बन गए. 1818 और 1853 के मध्य इस क्षेत्र का अधिकांश हिस्सा ब्रिटिश शासन में चला गया, कुछ छोटे राज्यों में गोंड राजा 1947 में भारत के स्वतंत्र होने तक शासन करते रहे.

गोंडा

नगर, उत्तर प्रदेश राज्य, उत्तरी भारत. यह लखनऊ के पूर्वोत्तर में घाघरा नदी की सहायक नदी के किनारे स्थित है. गोंडा कई सड़कों और रेल मार्गों के जंक्शन पर स्थित है और कृषि उत्पादों का व्यापार केंद्र है. यहां के मुख्य उद्योग चावल और चीनी की मिलें हैं.

गोंडा राप्ती तथा घाघरा की अन्य सहायक नदियों द्वारा अपवाहित है और इसके उत्तर में साल (*शोरिया रोबस्टा,* एक अशंकु सदाबहार वृक्ष) वन हैं. इसके कुछ हिस्सों को अक्सर बाढ़ की समस्या से जूझना पड़ता है. यहां की फसलों में अनाज, तिलहन और गन्ना शामिल है; तिलहन की पेराई एक महत्त्वपूर्ण उद्योग है तथा चीनी व शराब का उत्पादन भी होता है. गोंडा के पूर्वोत्तर में बलरामपुर स्थित है. गोंडा शहर में लाल

बहादुर शास्त्री विश्वविद्यालय, राजकीय माध्यमिक विद्यालय, थॉमसन माध्यमिक विद्यालय और राजकीय पॉलीटेक्निक हैं. पश्चिमोत्तर में स्थित सहेठ–महेठ प्राचीन बौद्ध मठों के प्रभावक्षेत्र श्रावस्ती की स्थली हुआ करती थी. जनसंख्या (2001) नगर 1,22,164; ज़िला कुल 27,65,754.

विनायक कृष्ण गोकाक
सौजन्य : भारतीय ज्ञानपीठ

गोकाक, विनायक कृष्ण

(ज.–9 अग. 1909, कर्नाटक; मृ–28 अप्रै. 1992). ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित कन्नड़ भाषा के साहित्यकार.

डॉ. विनायक कृष्ण गोकाक का कन्नड़ साहित्य में निःसंदेह एक विशिष्ट स्थान है. कवि, उपन्यासकार, समालोचक, नाटककार और निबंध लेखक के रूप में आधी से भी अधिक शताब्दी का उनका सक्रिय कार्यकाल 1934 में आरंभ हुआ, जब उनका प्रथम कविता संकलन *कलोपासक* प्रकाशित हुआ.

गोकाक ने कन्नड़ कविता को स्वतंत्रता का उपहार दिया, जिससे नए क्षितिज खुले और नई संभावनाएं जन्मीं. प्राच्य और पाश्चात्य, अतीत और वर्तमान, वर्तमान और भविष्य, मानवतावाद और अध्यात्म तथा राष्ट्रीय और वैश्विक के मध्य सामंजस्य की स्थापना में जीवन भर क्रियाशील गोकाक 'समन्वय' के सिद्धांत पर आरूढ़ थे. अपने गुरु श्री अरबिंद की भांति उनकी आस्था थी कि आत्मिक विकास करते–करते मनुष्य विश्व–मानव के रूप में सिद्ध हो सकता है.

चौथे दशक के आरंभ में काव्य की ओर उन्मुख युवक गोकाक द.रा. बेंद्रे के प्रभाव में आए और उनके नेतृत्व में काव्य के एक नए युग का सूत्रपात करने में संलग्न कवि मंडली के एक सदस्य के रूप में गोकाक ने स्वप्नों और आदर्शों, आध्यात्मिक अभिलाषाओं और काव्यगत प्रेरणाओं की स्वच्छंदवादी कविता का सृजन किया. *कलोपासक* (1934) में नई परंपराओं के गीत संकलित है. *समुद्र गीतेगळु* (1940) की कविताएं एक नई ताज़गी देती हैं और उनमें गोकाक की वह वाणी मुखर हुई है, जिसमें सहज अभिव्यंजना और फक्कड़पन के साथ गीतात्मकता है. स्वातंत्र्योत्तर भारत की नई प्रवृतियों की पूर्ति उन्होंने एक अभिनव काव्य–शैली के सूत्रपात द्वारा की; इस कविता को उन्होंने इलियट, पाउंड और फ्रांसीसी प्रतीकवादियों के अनुसरण में, 'नव्य' कविता कहा. नए विषयों, नई कल्पनाओं, नई लयों, नई वक्रोक्तियों और व्यंग्यों के प्रयोगों से भरपूर *नव्य कवितेगळु* (1950) ने कन्नड़ कविता में एक 'नव्य' युग का सूत्रपात किया.

उनके नाटकों में *जननायक* (1939) और *युगांतर* (1947) उल्लेखनीय हैं. उन्हें कन्नड़ भाषा में आधुनिक समालोचना का 'जनक' कहा जा सकता है. उनकी आरंभिक आलोचनात्मक रचनाओं पर पश्चिम की गहरी छाप है, किंतु उन्होंने शीघ्र ही कॉलरिज, अरबिंद और भारतीय काव्यशास्त्र को मिला कर अपना अलग सिद्धांत ढाल लिया, जिसे वह 'साहित्य का समन्वयकारी रूप' कहते थे.

गोकाक की सर्वोत्कृष्ट रचना उनका महाकाव्य *भारत सिंधु रश्मि* है, जो उनकी 1972 से 1978 तक की निरंतर साहित्य साधना का प्रतिफल है. एक ओर, इस महाकाव्य में विश्वामित्र का आख्यान है, जो क्षत्रिय राजकुमार होकर भी ऋषि बन गए. दूसरी ओर, इसमें आर्य और द्रविड़ समस्याओं के सामरस्य और 'भारतवर्ष' के आविर्भाव की कथा है. इसका दूसरा सूत्रधार राजा सुदास जातियों की समरसता का प्रतीक है और विश्वामित्र वर्णों की समरसता का. अध्यात्म के उदात्त स्तर पर विश्वामित्र का आख्यान जिस बात का प्रतीक है, उसे अरविंद ने 'ईश्वरत्व की ओर मनुष्य का सफल अभियान' कहा है. त्रिशंकु आज के आदमी का प्रतीक है, जिसने स्मृति, मति और कल्पना पर तो विजय प्राप्त कर ली है, किंतु अभी उसे यह जानना है कि अंतःप्रज्ञा ही सिद्धि का एकमात्र साधन है. विश्वामित्र के अतिमानवीय प्रयत्नों के बावजूद त्रिशंकु स्वर्ग में प्रवेश नहीं कर पाता, तो अंत में यह अनुभव करके कि मुक्ति केवल अंतःप्रज्ञा से ही संभव है, वह एक नक्षत्र बन जाता है.

इस महाकाव्य में वैदिक संस्कृति और उसके परिवर्तनशील मूल्यों की ऐसी पुनःप्रस्तुति है कि वे वर्तमान और भविष्य के लिए प्रासंगिक बन गए हैं.

प्रमुख कृतियां : काव्य– *कलोपासक* (1934), *समुद्र–गीतेगळु* (1940), *त्रिविक्रमर आकाशगंगे* (1945), *अभ्युदय* (1946), *द्यावा पृथिवी* (1957), *कोनेय दिन* (1970), *भारत सिंधु रश्मि* (1982); कथा साहित्य– *समरसवे जीवन* (1956), *नव्य भारत प्रवादि नरहरि* (1976); नाटक– *जन–नायक* (1939), *युगांतर* (1947), *मूनिदुर मारि* (1970); समालोचना– *कवि काव्य महोंनति* (1935), *नव्यते* (975), *कलेय नेले* (1978); यात्रा वृत्तांत– *समुद्रदीचेयिंद* (1960), *इंदिल्ल नाळे* (1965); अंग्रेज़ी–काव्य– *द सॉन्ग ऑफ़ लाइफ़ ऐंड अदर पोयम्स* (1947), *इन लाइफ़्स टेंपल* (1965), *कश्मीर ऐंड द ब्लाइंड मैन* (1977); समालोचना– *द पोएटिक अप्रोच टु लैंग्वेज* (1952).

गोखले, गोपाल कृष्ण

(ज.–9 मई 1866, रत्नागिरि ज़िला, भारत; मृ.–19 फ़र. 1915, पूना {वर्तमान पुणे}, महाराष्ट्र), समाज सुधारक, जिन्होंने भारत के अधिकार–वंचित लोगों की भलाई के लिए सांप्रदायिक संगठन की स्थापना की. उन्होंने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के आरंभिक वर्षों में नरमपंथी राष्ट्रवादियों का नेतृत्व भी किया.

गोपाल कृष्ण गोखले
सौजन्य : *हिंदुस्तान टाइम्स*

1902 में गोखले ने राजनीति में प्रवेश के लिए पूना के फ़र्ग्युसन कॉलेज से इतिहास और राजनीतिक अर्थव्यवस्था के प्रोफ़ेसर के पद से इस्तीफ़ा दे दिया. वह इस कॉलेज के संस्थापक सदस्यों में थे. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रभावशाली और आदरणीय सदस्य के रूप में गोखले ने आंदोलन और क्रमिक सुधार के लिए उदार तथा सांवैधानिक आंदोलन पर ज़ोर दिया. तीन वर्ष के बाद उन्हें कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया. उन्होंने सामान्य रूप से ब्रिटिश शासन की

उपलब्धियों की प्रशंसा की, लेकिन वह जिन नीतियों तथा कार्यों को अन्यायपूर्ण मानते थे, उनकी आलोचना करने से भी नहीं चूके. राजनीतिक गतिविधियों के साथ–साथ समाज सुधार के प्रति अपने लगाव के कारण उन्होंने 1905 में सर्वेंट्स ऑफ़ इंडिया सोसाइटी की स्थापना की, जिसके सदस्यों ने स्वयं निर्धन रहकर अधिकार–वंचितों की सेवा की शपथ ली. उन्होंने दलितों या निम्न जाति के हिंदुओं के साथ दुर्व्यवहार का विरोध किया और दक्षिण अफ़्रीका में रहने वाले दरिद्र भारतीयों का मामला भी उठाया.

गोगुंडा युद्ध

इसे हल्दी घाटी का युद्ध (जून 1576) भी कहते हैं. यह युद्ध पश्चिमोत्तर भारत के राजस्थान क्षेत्र में मेवाड़ के राजपूत राणा प्रताप सिंह और जयपुर के राजा मान सिंह के नेतृत्व में राजपूतों और मुग़ल सेना के बीच हुआ. यह युद्ध मुग़ल शहंशाह अकबर द्वारा राजस्थान के अंतिम स्वतंत्र राजपूत राजाओं को अपने अधीन करने का प्रयास था. प्रताप सिंह ने गोगुंडा के क़िले से लगभग 19 किमी दूर उदयपुर के पश्चिमोत्तर में स्थित हल्दी घाटी के दर्रे पर मोर्चा लिया.

इस युद्ध में मुग़ल विजयी हुए, लेकिन गोगुंडा का युद्ध विपरीत परिस्थितियों में वीरतापूर्ण राजपूत प्रतिरोध की एक किंवदंती बन गया. महाराणा प्रताप ने पहाड़ियों में रहते हुए अपनी लड़ाई जारी रखी और 1614 तक मेवाड़ ने अंततः मुग़लों को मान्यता नहीं दी.

गोट्टुवाद्यम

संगीत की कर्नाटक परंपरा का एक महत्त्वपूर्ण वाद्य यंत्र. देखने और ध्वनि में यह वीणा से मिलता–जुलता है, किंतु इसमें अंगुली पट्टिका सपाट होती है. लकड़ी के नाशपातीनुमा आकार के इस वाद्य में छह मुख्य तार होते हैं तथा उसे लकड़ी या सींग के मिज़राब से बजाया जाता है. मुख्यतः यह एकल वाद्य के रूप में बजाया जाता है, इसके वादन में निपुणता प्राप्त करना बड़ा कठिन होता है. उत्तर भारतीय संगीत में विचित्रवीणा उसी सिद्धांत पर बना वाद्य है जिस पर गोट्टुवाद्यम बना है, हालांकि उसकी काया हल्की होने के कारण उसके स्वर में कंपन कम होता है.

गोड्से, नाथूराम विनायक

(ज.–1911, पूना {वर्तमान पुणे}, भारत; मृ.–15 नवं. 1949), हिंदू कट्टरपंथी और महात्मा गांधी के हत्यारे.

पूना के एक ब्राह्मण परिवार में जन्मे गोड्से को हिंदू संस्कृति और विचारधारा पर अत्यधिक गर्व था. वह पूना में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में शामिल हुए और द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान संघ में एक अर्द्ध सैनिक संगठन की स्थापना की. वह हिंदू महासभा की दो पत्रिकाओं, *अग्रणी* और *हिंदू राष्ट्र* का संपादन करते थे. उग्रवादी कार्यकर्ता और हिंदू क्रांतिकारी नेता वीर सावरकर के अनुयायी गोड्से महात्मा गांधी तथा भारतीय

राष्ट्रीय कांग्रेस की नीतियों के कटु आलोचक थे. गांधी पर हिंदू समुदाय को पौरुषहीन बनाने और मुस्लिम समर्थक होने का आरोप लगाते हुए गोड्से ने महसूस किया कि अहिंसा के सिद्धांत के कारण देश कमज़ोर हो रहा है. उन्होंने भारत के विभाजन और हिंदू–मुस्लिम एकता के लिए गांधी के आमरण अनशन को हिंदू राष्ट्र के लिए अपमानजनक व हानिकारक माना.

30 जनवरी 1948 की शाम को नई दिल्ली में एक प्रार्थना सभा में गोड्से ने गोली मारकर गांधी जी की हत्या कर दी. गोडसे ने भागने या स्वयं को मारने की कोशिश नहीं की और उन्हें तुरंत पकड़ लिया गया. गोड्से की पृष्ठभूमि के कारण सरकार को शंका हुई कि गांधी को मारने के षड्यंत्र में महासभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, दोनों शामिल हैं. यद्यपि दोनों संगठनों के नेताओं को गिरफ़्तार किया गया, लेकिन पर्याप्त सबूतों के अभाव में अगस्त 1948 में उन्हें रिहा कर दिया गया. विशेष अदालत में मुक़दमे के दौरान गोड्से ने निपुणतापूर्वक अपने पक्ष में स्वयं दलीलें पेश की और गांधी की हत्या में किसी और के शामिल होने से इनकार किया. बिना किसी क्षमा प्रार्थना या पश्चाताप के उन्होंने अपने जघन्य कृत्य का बचाव करते हुए घोषणा की कि यह हिंदू समुदाय की बेहतरी के लिए किया गया था. गोडसे और उनके सहयोगी नारायण आप्टे को दोषी पाया गया और उन्हें फांसी दे दी गई. अन्य आठ आरोपियों में से सावरकर को बरी कर दिया गया, एक व्यक्ति को क्षमादान दिया गया और अन्य छह को आजीवन कारावास की सज़ा हुई.

गोत्र

एक भारतीय जाति विशेष के भीतर की वह वंश परंपरा, जिसमें पारस्परिक विवाह संबंध वर्जित माना जाता है; क्योंकि मान्यतानुसार इसके सारे सदस्य एक ही मिथकीय पूर्वज की संतान होते हैं. हिंदुओं में वैवाहिक संबंध स्थापित करते समय गोत्र एक महत्त्वपूर्ण तथ्य होता है. इस शब्द (संस्कृत शब्द, अर्थात मवेशियों का बाड़ा) से उस समसामयिक वंश परंपरा का भी संकेत मिलता है, जो एक संयुक्त परिवार के रूप में रहती थी और जिनकी संपत्ति भी साझा होती थी. गोत्र मूल रूप से ब्राह्मणों के उन सात वंशों से संबंधित होता है, जो अपनी उत्पत्ति सात ऋषियों से मानते हैं. ये ऋषि थे : अत्रि, भारद्वाज, भृगु, गौतम, कश्यप, वशिष्ठ और विश्वामित्र. इनमें एक आठवां गोत्र बाद में अगस्त्य ऋषि के नाम से जोड़ा गया, क्योंकि दक्षिण भारत में वैदिक हिंदू धर्म के प्रसार में उनका बहुत बड़ा योगदान था. बाद के युग में गोत्रों की संख्या बढ़ती चली गई, क्योंकि अपने ब्राह्मण होने का औचित्य स्वयं के वैदिक ऋषि के वंशज होने का दावा करते हुए ठहराना पड़ता था.

एक ही गोत्र के सदस्यों के बीच विवाह निषेध का उद्देश्य निहित दोषों को दूर रखने के अलावा यह भी था कि अन्य प्रभावशाली गोत्रों के साथ संबंध स्थापित कर अपना प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ाया जाए. बाद में ग़ैर ब्राह्मण समुदायों ने भी उनके ही जैसी प्रतिष्ठा प्राप्त करने के उद्देश्य से इस प्रथा को अपना लिया. मूलतः क्षत्रियों की भी अपनी वंशावलियां थीं, जिनमें से दो प्रमुख थीं, चंद्रवंश तथा सूर्यवंश, जिनसे क्रमशः संस्कृत

महाकाव्यों, *महाभारत* और *रामायण* के नायक संबद्ध थे. इन महाकाव्यों में इन वंश परंपराओं में बहिर्विवाह की कोई स्पष्ट तस्वीर प्राप्त नहीं होती, क्योंकि वैवाहिक संबंध ज़्यादातर क्षेत्रीय आधारों पर तय होते थे. बाद में क्षत्रियों और वैश्यों ने भी गोत्र की अवधारणा को एक लोकाचार के रूप में अपनाया और इसके लिए उन्होंने अपने निकट के ब्राह्मणों या अपने गुरुओं के गोत्रों को भी अपना गोत्र बना लिया, किंतु यह नई प्रवृत्ति कभी भी बहुत प्रभावी नहीं हो पाई.

गोदपुरा

मंधाता या ओंकारजी भी कहते हैं, गांव और तीर्थस्थल, खंडवा तहसील पश्चिमी मध्य प्रदेश राज्य, मध्य भारत. इंदौर के दक्षिण–पूर्व में स्थित इस गांव का कुछ हिस्सा नर्मदा नदी के दक्षिणी तट पर और कुछ हिस्सा नदी के बीच द्वीप पर स्थित है. ऊंची पहाड़ियों से बने इस द्वीप की लंबाई लगभग 2.5 किमी है और पूर्वी छोर पर स्थित शिखर के समीप से सुदूर पश्चिम में जलसीमा तक फैली एक घाटी इसे दो हिस्सों में विभक्त करती है. इस स्थान का नामकरण दक्षिणी तट पर स्थित गोदर, निरंजनी और दसनामी के कई मठों के आधार पर हुआ है. *स्कंद पुराण* के *वैदूर्य खंड* में इस स्थान का उल्लेख वैदूर्य मणि पर्वत के रूप में किया गया है. 17वें सूर्यवंशी राजा मंधानी द्वारा तपस्या के समय इस जगह पर स्वयं अपनी बलि चढ़ाने पर ओंकार जी द्वारा वरदान दिए जाने से इसका नाम बदलकर मंधाता हो गया. यहां पर नदी के तटों का रंग हरित–नीला है और कहा जाता है कि यह शाणाश्म (हॉर्नस्टोन) स्लेट पत्थर से बना हुआ है.

शिव–पूजन की परंपरा यहां प्राचीन है. गोदपुरा में विख्यात शैव, वैष्णव और जैन मंदिर हैं, जिनमें से अधिकांश शताब्दी के तथा कुछ आधुनिक काल के हैं. अधिकांश प्राचीन मंदिर द्वीप के उत्तरी हिस्से में ओंकार मंदिर के सामने स्थित हैं. द्वीप के दक्षिणी तट पर अमरेश्वर (अमरत्व के देवता) का मंदिर है. ये दोनों मंदिर, 12 महान शिवलिंगों का एक हिस्सा हैं, जो 1024–25 ई. में महमूद ग़ज़नी द्वारा सोमनाथ मंदिर नष्ट किए जाने के समय भारत में मौजूद थे. गोदपुरा में एक अन्य शिवलिंग गौरी–सोमनाथ मंदिर के बाहर स्थित है.
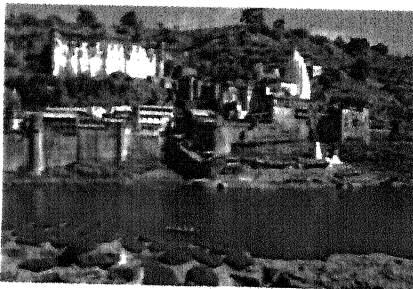
गोदपुरा में नर्मदा नदी के एक द्वीप पर राजा का महल और मंदिर, मध्य प्रदेश
फोटो : क्रिस्टिना गैस्कॉजिन

इस द्वीप पर बने हुए मंदिर शैव मत के हैं, लेकिन उत्तरी किनारे पर वैष्णव और जैन मंदिर भी हैं व दक्षिणी किनारे पर गोदपुरा में ब्रह्मा मंदिरों में से एक मंदिर स्थित है. वंशानुगत रूप से मंधाता के राजा सभी आधुनिक मंदिरों के संरक्षक हैं. वे भिलाल हैं, जो चौहान राजपूत भरत सिंह के वंशज होने का दावा करते हैं. द्वीप के सीढ़ीदार पर्वतीय क्षेत्र पर राजमहल बना हुआ है. गोदपुरा में लगने वाले वार्षिक मेले में 1824 तक धार्मिक श्रद्धालुओं के आत्मबलिदान की घटनाएं होती रहती थी, जिसमें द्वीप के पूर्वी छोर पर बिरखाला की ऊंची चट्टानों से श्रद्धालु नदी में छलांग लगाते

थे. ये बलिदान काल भैरव को समर्पित होते थे, ताकि उनकी अर्द्धांगिनी काली देवी को प्रसन्न करने में सहायता मिल सके. अन्य उल्लेखनीय मंदिरों में, नर्मदा में मिलने वाली कावेरी नदी के उत्तरी किनारे पर स्थित सिद्धेश्वर महादेव तथा अन्य मंदिर शामिल हैं.

अब पुराने मंदिर ज़्यादा नहीं बचे हैं. प्राचीन मंदिरों में मूर्तियों को बुरी तरह से तोड़ा गया है. पुराने क़िलों और गांव के अन्य भवनों में हिंदू वास्तुशिल्प के उत्कृष्ट उदाहरण देखे जा सकते हैं. इनमें से अधिकांश भवन सीमेंट के बिना स्थानीय बैसाल्ट पत्थर और पीले बलुआ पत्थरों से बने हैं. मंधाता गांव पूरी तरह तीर्थयात्रियों से होने वाली आय पर निर्भर है.

गोदावरी नदी

मध्य भारत की एक पवित्र नदी. अरब सागर से 80 किमी दूर पश्चिमी घाट से निकलकर गोदावरी सामान्यतः पूर्व दिशा में दक्कन के पठार के पार महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश की सीमा पर बहने के बाद अंतिम 320 किमी का रास्ता दक्षिण–पूर्व की ओर मुड़कर तय करने के बाद बंगाल की खाड़ी में मिल जाती है. समुद्र में मिलने के पूर्व यह दो धाराओं में विभाजित होती है. उत्तर में गौतमी गोदावरी तथा दक्षिण में इसे वशिष्ठ गोदावरी कहा जाता है. इसकी कुल लंबाई लगभग 1,465 किमी है और अपवाह द्रोणी (बेसीन) 3,13,000 वर्ग किमी है अपने उद्‌गम से लेकर पूर्वी घाट तक गोदावरी नदी लगभग एक समान क्षेत्र से बहती है और मार्ग में इसमें दारना, पूर्णा, मंजरा, प्रन्हिता तथा इंद्रावती नदियां मिलती हैं. पूर्वी घाट के इलाक़े में प्रवेश के बाद यह नदी प्रपातों से युक्त ऊंचे कगारों के बीच बहती है और उसकी चौड़ाई लगातार कम होते हुए मात्र 180 मीटर चौड़ा दर्रा बन जाती है, जिसे गॉर्ज (महाखड्ड) कहा जाता है. नदी के दोनों तरफ़ वनाच्छादित पहाड़ियां पानी के पास से सीधी खड़ी हो जाती हैं. पूर्वी घाट से गुज़रने के बाद नदी फिर से चौड़ी होकर विस्तृत मैदानों में से गुज़रती है, मार्ग में बीच–बीच के उथले द्वीपों का उपयोग तंबाकू की खेती के लिए होता है. इस जगह गोदावरी बहुत ही धीमी बहती है. राजमंड्री से थोड़ा पहले 1948 में सिंचाई और पनबिजली उत्पादन हेतु इस नदी पर एक बांध बनाया गया है.

गोदावरी नदी के ऊपरी इलाक़े शीत और वसंत ऋतु में चूंकि सूखे रहते हैं, वहां इससे कोई सिंचाई नहीं होती. लेकिन उसके मुख पर विकसित सिंचाई नहर प्रणाली नौकायन के लिए भी उपयुक्त है और इसके डेल्टा को कृष्णा नदी के डेल्टा से जोड़ती है. इन दोनों के मिलन ने इस क्षेत्र को भारत के सबसे ज़्यादा उर्वर चावल उत्पादक क्षेत्रों में से एक बना दिया है. अपने पूरे प्रवाह क्षेत्र में हिंदुओं में यह नदी पवित्र मानी जाती है.

गोधरा

नगर, पंच महल ज़िले का प्रशासनिक मुख्यालय, पूर्वोत्तर गुजरात राज्य, पश्चिम–मध्य भारत. गोधरा रेल और सड़क मार्ग का जंक्शन तथा इमारती लकडी और कृषि उत्पाद

का व्यापारिक केंद्र है. यहां के लघु उद्योगों में तेल तथा आटा की मिलें शामिल हैं. जनसंख्या (2001) नगर 1,21,852.

अडूर गोपालकृष्णन
सौजन्य : *द हिंदू*

गोपालकृष्णन, अडूर

(ज.–1941, केरल, भारत), मलयालम फ़िल्म निर्माता, जिन्हें अपनी शैली और विषय–वस्तु की पकड़ पर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय ख्याति मिली.

गोपालकृष्णन ने पूना (वर्तमान पुणे) के फ़िल्म ऐंड टेलीविज़न इंस्टिट्यूट में सिनेमा का अध्ययन किया और 1965 में डिप्लोमा प्राप्त किया. इसके बाद उन्होंने त्रिवेंद्रम (वर्तमान तिरुवनंतपुरम) में चित्रलेखा फ़िल्म सोसाइटी की स्थापना की, जो भारतीय तथा पश्चिमी समांतर फ़िल्मों का प्रदर्शन करती थी और उन्हें बढ़ावा देती थी. 25 वर्षों के फ़िल्मी कैरियर में गोपालकृष्णन ने नौ फ़ीचर फ़िल्मों और कई वृत्तचित्रों का निर्माण किया. कथा प्रस्तुति की कला में महारत हासिल करते हुए गोपालकृष्णन ने फ़िल्म निर्माण की ऐसी शैली का विकास किया, जो आडंबर रहित है. अनेक विषयों को छूने वाले असामान्य कथानकों से गोपालकृष्णन ने समालोचकों और दर्शकों, दोनों को रोमांचित, विमुग्ध और उत्तेजित किया है. उनकी फ़िल्में मानव मन को भी टटोलती हैं और समाज को ग्रसने वाले सामाजिक व राजनीतिक मुद्दों में भी गहरे उतरती हैं.

उनकी पहली फ़िल्म, *स्वयंवरम* (1972) में, जिसके लिए उन्हें सर्वश्रेष्ठ फ़िल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला था, एक शहरी वातावरण में रहने की जटिलताओं का चित्रण किया गया था. इस फ़िल्म में नायक को बाहरी तत्त्वों से जूझते हुए एक सार्थक रिश्ता बनाए रखने के लिए संघर्षरत दिखाया गया है. उनकी दूसरी फ़िल्म, राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त *कोडियेट्टम* (1979) में ग्रामीण जीवन का चित्रण है. यह नायक के निरर्थक भौतिक अस्तित्व से हटकर अधिक संतोषप्रद भावनात्मक अस्तित्व की ओर जाने के प्रयास पर केंद्रित है. गोपालकृष्णन की फ़िल्म *कथापुरुषम* को 1995 में सर्वश्रेष्ठ फ़िल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला.

गोपालकृष्णन द्वारा निर्मित कई वृत्तचित्रों में प्रभावशाली शैली में बनी *इयू गंगा* (गंगा का पानी) भी है, जिसने फ्रांस में *सिनेमा दु रील फ़ेस्टिवल* में *ग्रां प्री* जीता.

गोपुरम

गोपुर भी लिखा जाता है, दक्षिण भारतीय वास्तुशिल्प और हिंदू मंदिर परिसर का प्रवेशद्वार. पहले गोपुर अपेक्षाकृत छोटे होते थे, लेकिन मध्य 12वीं शताब्दी के बाद उन्हें बड़े आकार का बनाया जाने लगा. अंततः विशाल प्रवेशद्वार मंदिर परिसर की मुख्य संरचना बन गए, जो अपने विशद वास्तुशिल्प में गर्भगृह से भी आगे निकल गए. कई बार एक देवालय में कई गोपुरम की श्रृंखला मिलती है, जिनमें से प्रत्येक एक नई परिसर दीवार में प्रवेश कराता है.

सामान्यतः गोपुरम का निर्माण पत्थर के आधार पर और ईंटों से बनी ऊपरी संरचना द्वारा होता है. इसका निर्माण आयताकार विन्यास में होता है और बाहरी दीवारें मूर्तिशिल्पों से ढकी होती हैं, जो बाद के काल में उच्चस्तरीय नहीं रहीं. गोपुरम के बेहतरीन उदाहरण तिरुचिराप्पल्ली (तमिलनाडु) में जंबुकेश्वर मंदिर का सुंदर पांड्य गोपुरम और चिदंबरम् (तमिलनाडु) में स्थित 12वीं–13वीं शताब्दी के शिव मंदिर के अनुक्रमिक गोपुरम हैं.
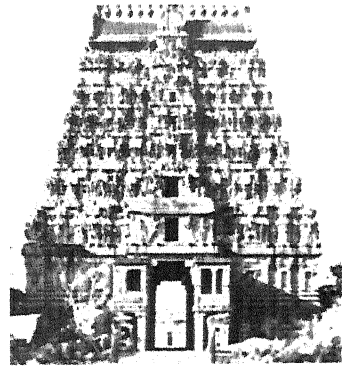
शिव मंदिर का दक्षिणी गोपुरम, चिदंबरम, तमिलनाडु
फोटो : पी. चंद्रा

गोबिंद सिंह, गुरु

मूल नाम गोबिंद राय (ज.–1666, पटना, बिहार, भारत; मृ.– 7 अक्तू. 1708, नांदेड़, महाराष्ट्र), सिक्खों के दसवें व अंतिम गुरु, मुख्यतः सिक्खों के सैनिक संगत, खालसा के सृजन के लिए प्रसिद्ध. गोबिंद सिंह को सैन्य जीवन के प्रति लगाव अपने दादा गुरु हरगोबिंद राय से विरासत में मिला था और उन्हें महान बौद्धिक संपदा भी उत्त्राधिकार में मिली. वह बहुभाषाविद् थे, जिन्हें फ़ारसी, अरबी, संस्कृत और अपनी मातृभाषा पंजाबी का ज्ञान था. उन्होंने सिक्ख क़ानून को और सूत्रबद्ध किया, काव्य रचना की और सिक्ख ग्रंथ *दसम ग्रंथ* (दसवां खंड) लिखने की प्रसिद्धि पाई.

गुरु गोबिंद सिंह

सिक्खों को सुदृढ़ सैन्य आधार प्रदान करना गोबिंद सिंह की महानतम उपलब्धि थी. एक मान्यता के अनुसार, एक सुबह प्रार्थना के बाद वह सिक्ख समूह के समक्ष समाधि लगाकर बैठे. अचानक वह उठे और उन्होंने कहा कि 'मेरे कृपाण को एक शीश चाहिए. कौन आगे बढ़कर पंथ के लिए अपना बलिदान देगा?' भीड़ में भय, घबराहट और अविश्वास की लहर दौड़ गई. अंततः एक व्यक्ति आगे आया और गुरु के साथ तंबू के अंदर चला गया. कुछ देर के बाद गोबिंद सिंह रक्तरंजित कृपाण लेकर बाहर आए और स्वेच्छा से बलिदान करने वाले अन्य व्यक्ति को पुकारा. यह प्रक्रिया पांच लोगों के स्वेच्छा से आगे आने तक चलती रही. उसके बाद सभी पांचों जीवित बाहर आ गए. गोबिंद सिंह तो केवल उनकी आस्था की परीक्षा ले रहे थे. उन्हें *पंज पियारा* (पांच प्रिय) की

उपाधि दी गई और उन्होंने मिलकर सिक्ख सैन्य बिरादरी का केंद्र बनाया, खालसा, जिसकी स्थापना 1699 में हुई.

गोबिंद सिंह ने सिक्खों में युद्ध का उत्साह बढ़ाने के लिए हर क़दम उठाया. उन्होंने वीर काव्य और संगीत का सृजन किया. उन्होंने अपने लोगों में कृपाण, जो उनकी लौह कृपा था, के प्रति प्रेम विकसित किया. खालसा को पुनर्संगठित सिक्ख सेना का मार्गदर्शक बनाकर, उन्होंने दो मोर्चों पर सिक्खों के शत्रुओं के ख़िलाफ़ क़दम उठाए. पहला, मुगलों के ख़िलाफ़ एक फ़ौज और दूसरा, विरोधी पहाड़ी जनजातियों के ख़िलाफ़. उनकी सैन्य टुकड़ियां सिक्ख आदर्शों के प्रति पूर्णतः समर्पित थीं, और सिक्खों की धार्मिक तथा राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए सब कुछ दांव पर लगाने को तैयार थीं. लेकिन गुरु गोबिंद सिंह को इस स्वतंत्रता की भारी क़ीमत चुकानी पड़ी.अंबाला के पास एक युद्ध में उनके चारों बेटे मारे गए. बाद में उनकी पत्नी, मां और पिता भी संघर्ष की भेंट चढ़ गए. वह स्वयं भी एक पश्तो क़बीलाई के हाथों उसके पिता की मौत के प्रतिशोधस्वरूप मारे गए.

गोबिंद सिंह ने स्वयं को अंतिम गुरु घोषित किया. उसके बाद से पवित्र पुस्तक *आदिग्रंथ* को ही सिक्ख गुरु होना था. गुरु गोबिंद सिंह आज भी सिक्खों के मन में वीरता के आदर्श और सिक्ख सैनिक संत के रूप में अंकित हैं.

गोमती नदी

गुमती भी कहलाती है, गंगा की सहायक नदी, मध्यवर्ती उत्तर प्रदेश, उत्तरी भारत. यह उत्तरी उत्तर प्रदेश में पीलीभीत से लगभग 51 किमी पूर्व से निकलती है और पहले 56 किमी तक यह रुक–रुक कर बहती है तथा जोकानी नदी में मिलने के बाद यह बारहमासी बन जाती है. इस बिंदु से नीचे की ओर यह लगभग 800 किमी तक सामान्यतः दक्षिण–पूर्वी दिशा में बहती है और इसके दाएं किनारे पर एकमात्र मुख्य सहायक नदी साई, जौनपुर के पास इसमें मिलती है. इसके बाद सैदपुर में गोमती गंगा में मिल जाती है. लगभग 1,875 वर्ग किमी क्षेत्रफल वाला बेसिन इस नदी द्वारा अपवाहित होता है,

गोमतेश्वर

बाहुबली भी कहा जाता है, जो जैन धर्म के पहले तीर्थंकर ऋषभनाथ के पुत्र थे. उनका सबसे विख्यात चित्रण कर्नाटक में दिगंबर संप्रदाय के केंद्र श्रवणबेलगोला में एक पहाडी की चोटी पर 10वीं शताब्दी में बने विशाल मूर्तिशिल्प के रूप में है. एक ही चट्टान को काटकर बनाई गई यह प्रतिमा 17.5 मीटर ऊंची है और यह विश्व की स्वतंत्र रूप से खडी सबसे बडी प्रतिमाओं में से एक है. प्रत्येक 12 वर्षों के बाद समूची प्रतिमा का आनुष्ठानिक रूप से दही, दूध और घी से अभिषेक किया जाता है.

गोरखनाथ

गोरक्षनाथ भी कहलाते हैं, (उत्कर्ष– 10वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध और आरंभिक 11वीं शताब्दी, भारत), एक हिंदू महायोगी, जिन्हें सामान्यतः नाथ या कनफटा योगी संप्रदाय का संस्थापक माना जाता है, इस संप्रदाय के योगी हठयोग के शारीरिक एवं आध्यात्मिक अनुशासन पर बल देते हैं.

गोरखनाथ की चमत्कारिक शक्तियों के इर्द–गिर्द बहुत सी किवदंतियां उत्पन्न हो गई हैं, जिनके कारण उनका जीवनवृत्त अस्पष्ट है. एक निम्न जाति के परिवार में जन्मे गोरखनाथ संभवतः पंजाब के थे, या उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश भाग वहीं व्यतीत किया और बहुत सी यात्राएं कीं. कहा जाता है कि उनकी भेंट कबीर व नानक जैसे धार्मिक गुरुओं से हुई (हालांकि कालक्रमानुसार यह असंभव है) और उन्होंने समूचे भारत में योग को लोकप्रिय बनाया.

पारंपरिक तौर पर गोरखनाथ को मत्स्येंद्रनाथ का शिष्य माना जाता है, जिन्हें गुरु परंपरा में नाथ योगियों द्वारा पहला मानव गुरु माना जाता है. ऐतिहासिक तौर पर मत्स्येंद्र नाथ, गोरखनाथ से संभवतः तीन शताब्दी पहले अस्तित्व में थे, लेकिन गोरखनाथ द्वारा तांत्रिक या सिद्ध योग की स्थापना के साथ हुए महत्त्वपूर्ण संक्रमण की ओर यह संबंध संकेत करता है. उन्होंने इसकी शृंगारिक और रहस्यात्मक विरासत को कठोर (अतिसंयमित) हठयोग की ओर मोड़ दिया.

गोरखनाथ को बहुत सी संस्कृत रचनाओं का श्रेय दिया जाता है, जिनमें *गोरख संहिता* (गोरख का संग्रह, 13वीं शताब्दी ?) और क्षेत्रीय भाषा में लिखा काव्य *गोरख बानी* (गोरख के वचन) शामिल हैं.

गोरखपुर

शहर, दक्षिण–पश्चिमी उत्तर प्रदेश राज्य, उत्तरी भारत. गोरखपुर राप्ती नदी के किनारे, सड़क और रेल मार्गों के जंक्शन पर स्थित है. नदी के किनारे बने तटबंध नगर को बाढ़ से बचाते हैं.

गोरखपुर की स्थापना लगभग 1400 ई. में हुई थी और एक हिंदू संत के नाम पर इसका नामकरण हुआ था.

बादशाह अकबर के शासनकाल में यह एक महत्त्वपूर्ण सैन्य नगर और प्रभागीय मुख्यालय था. ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने 1801 में शहर और आसपास के क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया; यह सेना के लिए गोरखों का भर्ती केंद्र था. 1934 में भूकंप से इसे नुकसान पहुंचा था. अब गोरखपुर, उद्योग और कृषि उत्पादों का व्यापार केंद्र है. उद्योगों में वस्त्र, छपाई, चीनी मिल, रेलमार्ग का रखरखाव और विनिर्माण शामिल है. 1956 में स्थापित गोरखपुर विश्वविद्यालय से संबद्ध कई महाविद्यालय यहां हैं, जिनमें मदनमोहन मालवीय इंजीनियरिंग कॉलेज, बी.आर.डी. मेडिकल कॉलेज, सेंटर ऑफ

इलेक्ट्रॉनिक्स डिज़ाइन ऐंड टेक्नोलॉजी ऑफ़ इंडिया, राजकीय पॉलीटेक्निक, डी.ए.वी. माध्यमिक विद्यालय, महात्मा गांधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सेंट एंड्रयूज़ कॉलेज और सेंट पॉल्स कॉलेज शामिल हैं. यहां कई संग्रहालय भी हैं. जनसंख्या (2001) न.नि. क्षेत्र 6,24,570; जिला कुल 37,84,720.
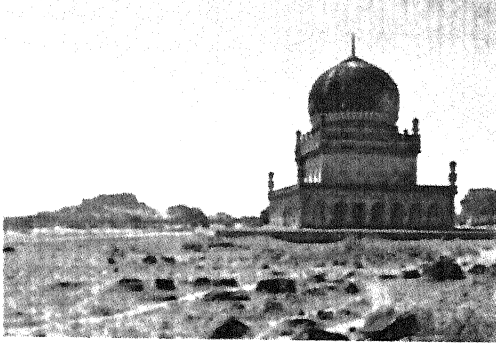
गोलकुंडा के पास कुतुबशाही राजवंश का मकबरा, आंध्र प्रदेश
फ़ोटो : क्रिस्टिना गैस्कॉजिन

गोलकुंडा

एक क़िला व भग्नशेष नगर, हैदराबाद के 8 किमी पश्चिम में स्थित, उत्तर–मध्य आंध्र प्रदेश राज्य, दक्षिण भारत. 1512 से 1687 तक यह दक्कन की पांच मुस्लिम सल्तनतों में से एक कुतुबशाही राज्य की राजधानी था. गोलकुंडा का क्षेत्र गोदावरी व कृष्णा के निचले क्षेत्रों से लेकर बंगाल की खाड़ी के तट तक फैला हुआ है. 1687 में मुग़ल बादशाह औरंगजेब ने उस समय शासन कर रहे कुतुबशाही वंश को उखाड़ फेंका और गोलकुंडा को मुग़ल साम्राज्य (1526–1857) में मिला लिया गया.

क़िले का दायरा 5 किमी है और इसमें पत्थर की चिनी हुई दीवारें, महल और मस्जिदें हैं. कुतुबशाही मक़बरे अभी तक ज्यों के त्यों हैं. ऐतिहासिक रूप में गोलकुंडा हीरों के लिए विख्यात था. इनमें सबसे मशहूर है– कोहेनूर, जिसे निकटवर्ती पहाड़ियों की संगुटिक चट्टानों से निकाला गया था.

गोलमेज़ सम्मेलन

(1930–32), ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत के भावी संविधान पर विचार करने के लिए बुलाई गई बैठकों की शृंखला. भारत सरकार अधिनियम, 1919 के कामकाज की साइमन कमिशन द्वारा 1927 में की गई समीक्षा के फलस्वरूप यह सम्मेलन बुलाया गया. साइमन कमिशन की समीक्षा रिपोर्ट 1930 में प्रकाशित की गई. लंदन में आयोजित सम्मेलन के तीन सत्र थे.

पहले सत्र में (12 नवं. 1930–19 जन. 1931) सभी भारतीय राज्यों और दलों के 73 प्रतिनिधि शामिल हुए, सिवाय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के, जिसने उस समय सरकार के विरुद्ध सविनय अवज्ञा आंदोलन छेड़ रखा था. पहले सत्र की प्रमुख उपलब्धि थी– संसदीय व्यवस्था के लिए आग्रह करना, जिसे रियासतों के राजकुमारों सहित सभी ने स्वीकार किया, संघीय व्यवस्था का सिद्धांत और संवैधानिक विकास के लक्ष्य के लिए डोमिनियन (अधिराज्य) दर्जे का आग्रह. दूसरे सत्र (सितं.–दिसं. 1931) में कांग्रेस का प्रतिनिधित्व महात्मा गांधी ने किया, इसमें संवैधानिक अथवा सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व पर कोई सहमति नहीं हो सकी. तीसरा सत्र (17 नवं–24 दिसं. 1932) छोटा और कम महत्त्वपूर्ण था. इसमें न कांग्रेस और न ही ब्रिटिश लेबर पार्टी ने भाग लिया. सम्मेलन

के विचार–विमर्श का परिणाम था– भारत सरकार अधिनियम, 1935, जिसमें प्रांतीय स्वायत्तता और संघीय प्रणाली की व्यवस्था भी थी, जिसे कभी लागू नहीं किया गया.

गोवर्धन

(17वीं शताब्दी, भारत), एक प्रख्यात मुग़ल चित्रकार, जो शाही सेवा में लगे एक हिंदू चित्रकार भवानी दास के पुत्र थे. उनकी कलाकृतियां अकबर, जहांगीर और शाहजहां के शासनकाल की हैं. आज भी मौजूद उनकी कई कलाकृतियां उन्हें गहरे व ऐंद्रिक रंगों और कोमल रेखांकनों के प्रति लगाव रखने वाले महान सक्षम चित्रकार के रूप में स्थापित करने के लिए पर्याप्त हैं. ब्रिटिश संग्रहालय में रखे *बाबरनामा* के चित्रकारों में से गोवर्धन एक थे और भारत के रामपुर स्थित रज़ा पुस्तकालय में संगृहीत कलाकृति *गुलाबपाशी की सभा,* तिथियांकन 1615, उन्हीं की रचना है. कई अमेरिकी और यूरोपीय संग्रहालयों में सुरक्षित जहांगीर एलबमों में उनके द्वारा बनाए गए रूपांकन मौजूद हैं. गिने–चुने मुग़ल चित्रकारों ने ही भारत की विविध मानव आकृतियों को इतनी अंतर्दृष्टि से उकेरा है.

गोवा

भारतीय राज्य, क्षेत्रफल 3,702 वर्ग किमी, समुद्र तट की ओर एक द्वीपयुक्त, मुंबई (भूतपूर्व बंबई) से 400 किमी दक्षिण में मुख्यभूमि में स्थित. यह उत्तर में महाराष्ट्र राज्य, पूर्व व दक्षिण में कर्नाटक राज्य और पश्चिम में अरब सागर से घिरा है और पणजी इसकी राजधानी है. पूर्व में पुर्तगालियों के नियंत्रण में रहा गोवा 1962 में भारत का अंग बना और 1987 में इसे राज्य का दर्जा मिला.

भौतिक एवं मानव भूगोल

105 किमी समुद्री तट वाले गोवा में रेतीले तट, मुहाने व अंतरीप हैं. इसके भीतरी हिस्से में निचले पठार और लगभग 1,220 मीटर ऊंचे पश्चिमी घाटों (सह्याद्रि) का एक हिस्सा है. गोवा की दो प्रमुख नदियों, मांडोवी व ज़ुआरी, के मुहाने में गोवा का द्वीप (इल्हास) स्थित है. इस त्रिकोणीय द्वीप का शीर्ष अंतरीप एक चट्टानी मुहाना है, जिस पर दो लंगरगाह हैं. यहां पर तीन शहर हैं, मर्मगाव या मार्मुगोवा (वास्कोडिगामा सहित), मडगांव और पणजी (नवगोवा). पुराने गोवा शहर का ज़्यादातर हिस्सा ध्वस्त हो चुका है, लेकिन गोवा के शेष भारत में विलय के बाद से ही इसकी अच्छी देखरेख की जाती रही है. मूलतः पुराने गोवा का ही एक उपनगर पणजी भी मांडोवी के बाएं तट पर स्थित है. यह एक सुनियोजित शहर है, जो भव्य चर्चों, मुख्य पादरी के महल, सचिवालय,
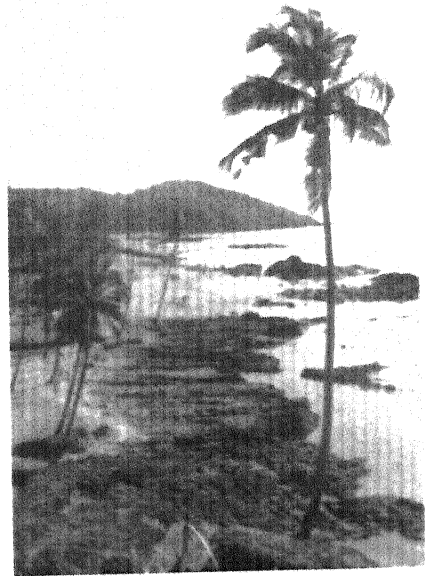
गोवा का समुद्र तट
सौजन्य : एंथनी जोन

बाज़ार और कोंकण रेलमार्ग पर स्थित रेलवे स्टेशन से लगे एक विशाल बस अड्डे से युक्त है. पुराने गोवा में बॉम जीसस का विशाल गिरजाघर (16वीं सदी में निर्मित) और एक विश्व स्मारक स्थित है, जिसमें सेंट फ्रांसिस ज़ेवियर के अवशेष सुरक्षित रखे गए हैं. यहां पर कैथॅलिक धर्मपीठ (16वीं शताब्दी) भी है.

राज्य में स्कूल से लेकर कॉलेज व तकनीकी संस्थानों तक विभिन्न श्रेणी के शिक्षण व प्रशिक्षण संस्थान हैं. पणजी के नज़दीक ही गोवा विश्वविद्यालय स्थित है. घाट और पोत गोदी गतिविधियों से परिपूर्ण है और इससे अलग मिरामर तट है, जहां दक्षिणी ध्रुव के बारे में अपने शोधों व अभियानों के लिए प्रसिद्ध समुद्र विज्ञान संस्थान स्थित है. अंतरीप पर भव्य सरकारी भवन स्थित है. यहां पर एशिया का विशालतम समुद्र विज्ञान भवन बनाने की योजना बनाई जा रही है. शहरी विकास में विस्तार हुआ है और मांडोवी से पोर्वोरिम तक फैला है.

अंतरीप से परिरक्षित और आधुनिक जलरोधी व घाट से सुसज्जित मर्मगाव मुंबई व कोषिकोड (भूतपूर्व कालीकट, केरल) के बीच सबसे श्रेष्ठ बंदरगाह है. यह लौह–अयस्क व मैंगनीज़ के निर्यात के सर्वथा अनुकूल है. वास्कोडिगामा शहरी क्षेत्र व मडगांव से गुज़रने वाली रेलवे लाइन इसे कर्नाटक में लोंडा होकर जाने वाली मुख्य दक्षिण रेलवे से जोड़ती है. उत्तर से दक्षिण को जाने वाली नई कोंकण रेलवे गोवा के अतिरिक्त आर्थिक विकास में सहायता करती है.

गोवा की जलवायु एकरूप है और यहां जून से सितंबर के बीच दक्षिण–पश्चिमी मॉनसून से वर्षा होती है.

गोवा के कृषि उत्पादों में चावल, दलहन, नारियल, काजू और आम शामिल हैं. ये फ़सलें गोवा के जीवन व जीविका के लिए काफ़ी महत्त्वपूर्ण हैं. निचले पठार और पश्चिमी घाट के ढलान वनाच्छादित हैं. सागौन, बांस और काजू महत्त्वपूर्ण आर्थिक उत्पाद हैं. यद्यपि इन्हें फिर से उगाने के प्रयास किए जा रहे हैं, लेकिन लौह–अयस्क व मैंगनीज़ की खुली खदानें पर्यावरण के लिए गंभीर ख़तरा पैदा करती हैं.

यहां मत्स्य उद्योग महत्त्वपूर्ण है, सरकारी नीतियों व रियायतों ने औद्योगिक क्षेत्र के ज़रिये गोवा के तीव्र औद्योगिकीकरण को बढ़ावा दिया है. उर्वरक, रसायन, दवा, लोहा और चीनी उद्योग यहां के बड़े उद्योग हैं. यहां पर मध्यम व लघु उद्योग भी हैं, जिनमें पारंपरिक हस्तशिल्प उद्योग शामिल है. औद्योगिक उत्पादों का भारत व विदेश में अच्छा बाजार है.

जनजीवन

गोवा की जनसंख्या में हिंदुओं व ईसाइयों की संख्या सर्वाधिक है. प्रशासन व जनजीवन की भाषा पुर्तगाली थी. पुर्तगाली शासन और आर्थिक स्थितियों के कारण ही गोवावासियों ने न केवल भूतपूर्व पुर्तगाली–अफ़्रीकी बस्तियों की ओर, बल्कि शेष भारत की ओर भी प्रवास किया. पुर्तगाली संस्कृति का प्रभाव उनके नामों, उपनामों, चर्चों की शैलियों व मकानों में दिखता है. गोवा का सांस्कृतिक परिदृश्य दिलचस्प वैषम्य प्रस्तुत

करता है. पश्चिमी समुद्री तट और मुहाने सड़क किनारे की सलीबों, चर्चों से चिह्नित हैं और रोमन कैथॅलिक ईसाई जीवन पद्धति के कारण विशिष्ट लगते हैं; तो टीलेदार व पहाड़ीदार पूर्व हिंदू मंदिरों व वेदिकाओं और कुछ आदिवासियों सहित मुख्यतः हिंदू आबादी से अलग दिखते हैं. निश्चित रूप से यहां एक मिश्रित 'गोवानी' संस्कृति विकसित हुई है, जो देदीप्यमान व पुनरुत्थानित कोंकणी भाषा में व्यक्त होती है.

गोवा में एक समारोह में मुखौटा लगाए हुए लोग
सौजन्य : *द हिंदू*

पर्यटन

गोवा में पर्यटन एक फलता–फूलता उद्यम है; इसके लंबे रेतीले तट, तटीय वनस्पतियों व नारियल के पौधों से भरे समुद्री किनारे, पुराने होटल और डाबोलिम हवाई अड्डा भारी संख्या में विदेशी पर्यटकों, बल्कि अब तो भारतीय पर्यटकों को भी आकर्षित करता है. लेकिन इससे गोवा के प्राकृतिक पर्यावरण के लिए ख़तरा भी पैदा होता है.

प्रशासन

गोवा के राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा पांच वर्ष के लिए की जाता है. वह दमन व दीव तथा दादरा एवं नगर हवेली केंद्रशासित क्षेत्र का भी प्रशासक होता है. गोवा
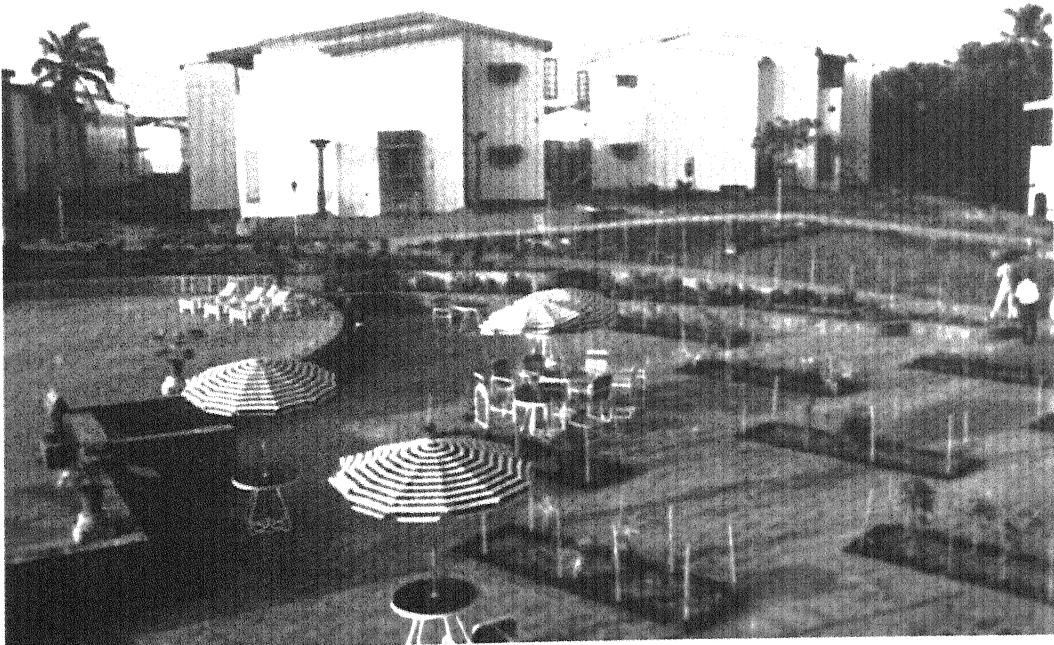
गोवा में एक समुद्रतटीय रिज़ॉर्ट
सौजन्य : *द हिंदू*

विधानसभा में 40 सीटें हैं. चुनाव द्वारा चुनी गई गोवा की लोकप्रिय सरकार प्रजातांत्रिक मूल्यों और जनता के कल्याण के लिए प्रतिबद्ध है.

इतिहास

गोवा का प्राचीन हिंदू शहर, जिसके अवशेष का एक अंश ही बचा हुआ है, का निर्माण द्वीप के सुदूर दक्षिणी बिंदु पर हुआ था और यह आरंभिक हिंदू दंतकथाओं और इतिहास में प्रसिद्ध था. पुराणों और कुछ अभिलेखों में इसका नाम गोवे, गोवपुरी व गोमत के रूप में आता है. मध्यकालीन अरबी भूगोलविद् इसे सिंदाबूर या संदाबूर के नाम से और पुर्तगाली वेल्हा गोवा के रूप में जानते थे. दूसरी शताब्दी से 1312 तक इस पर कदंब वंश और 1312 से 1367 तक दक्कन के मुस्लिम आक्रमणकारियों का शासन रहा. इसके बाद इस पर विजयनगर के हिंदू साम्राज्य का क़ब्ज़ा हो गया और बाद में बहमनी वंश ने इसे जीत लिया, जिन्होंने 1440 में पुराने गोवा की स्थापना की.

गोवा का एक पुराना गिरजाघर
सौजन्य : एंथनी जॉन

1482 के बाद बहमनी राज्य के विभाजन के बाद गोवा बीजापुर के मुस्लिम शासक यूसुफ़ आदिल खां के अधीन आ गया, जो पुर्तगालियों के भारत आगमन के समय इसके शासक थे. इस शहर पर मार्च 1510 में अल्फ़ांसो दे अल्बुक़र्क़ के नेतृत्व में पुर्तगालियों का आक्रमण हुआ. गोवा बिना किसी संघर्ष के पुर्तगालियों के क़ब्ज़े में आ गया और अल्बुकर्क ने एक विजेता की तरह इस शहर में प्रवेश किया.

हजारों पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र, गोवा का समुद्र तट
सौजन्य : एंथनी जॉन

तीन महीने बाद यूसुफ़ आदिल ख़ां 60 हज़ार की सेना लेकर वापस लौटे और बंदरगाह के मार्ग पर क़ब्ज़ा कर लिया और पुर्तगालियों को मई से अगस्त तक अपने जहाज़ों पर रुकने पर मजबूर कर दिया, इसके बाद ही मानसून की समाप्ति के कारण वे वापस समुद्र में पहुंच सके. नवंबर में अल्बुक़र्क़ ज़्यादा बड़ी सेना के साथ लौटे और एक दुःसाहसी प्रतिरोध पर विजय पाकर उन्होंने शहर पर पुनः क़ब्ज़ा कर लिया और सभी मुसलमानों को मार डाला तथा एक हिंदू तिमोजा को गोवा का प्रशासक नियुक्त किया.
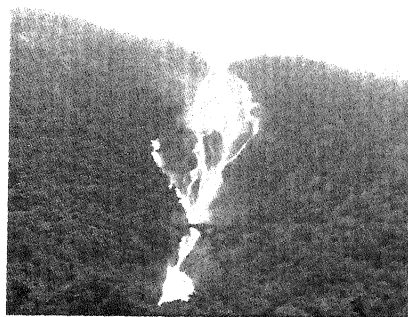
झरना, गोवा

गोवा पुर्तगालियों का एशिया में पहला क्षेत्रीय क़ब्ज़ा था. अल्बुक़र्क़ और उनके उत्तराधिकारियों ने द्वीप के 30 ग्रामीण समुदाय के संविधान और रीति–रिवाजों में लगभग किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया, सिवाय सती प्रथा के, जिसे उन्होंने समाप्त कर दिया.

गोवा पूर्व दिशा में समूचे पुर्तगाली साम्राज्य की राजधानी बन गया. इसे लिस्बन के समान नागरिक अधिकार दिए गए और 1575 से 1600 के बीच यह उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचा. इसके बाद भारतीय सीमा में डच आगमन के साथ गोवा का पतन होने लगा. 1603 और 1639 में शहर डच बेड़े के द्वारा घेर लिया गया, हालांकि इस पर कभी क़ब्ज़ा नहीं हो सका और 1635 में एक महामारी के कारण तबाह हो गया. 1683 में मुग़ल सेना ने इसे मराठा आक्रमणकारियों के क़ब्ज़े में जाने से बचाया और 1739 में पूरे क्षेत्र पर इन्हीं आक्रमणकारियों का हमला हुआ और नए वाइसरॉय के बेडे के अनपेक्षित आगमन के कारण ही बच सका.

प्रशासन के मुख्यालय को पहले मोर्मूगांव (वर्तमान मर्मगांव) और फिर 1759 में पंजिम (अब पणजी) ले जाया गया. स्थानीय निवासियों के पुराने गोवा से नए गोवा को प्रवास का मुख्य कारण हैज़ा नामक महामारी थी. 1695 और 1775 के बीच पुराने गोवा की जनसंख्या 20,000 से 1,600 के बीच झूलती रही और 1835 में इस शहर में केवल कुछ पादरी, नन और गिरजाघरवासी ही रह गए.

19वीं सदी में नेपोलियन के पुर्तगाल पर क़ब्ज़े के कारण 1809 में अंग्रेज़ो का अस्थायी अधिकार; कॉन्डे डि टोरेस नोवास का गवर्नर काल (1855–1864), जिन्होंने कई सुधारों की शुरुआत की और शताब्दी के दूसरे अर्द्धांश में हुए सैनिक विद्रोह जैसी घटनाओं ने यहां की बस्तियों को प्रभावित किया. इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण 3 सितंबर 1895 में हुआ विद्रोह है, जिसने पुर्तगाल को एक अभियान दल भेजने पर मजबूर कर दिया. इस अभियान दल के साथ आए अल्फ़ांसो हेनरीक़्स डुक्यू डि ओपॉर्टो ने मार्च से मई 1896 में गवर्नर के अधिकारों का प्रयोग किया.

1948 और 1949 में भारत के गोवा पर दावे के बाद पुर्तगाल पर गोवा और इस उपमहाद्वीप में उसके अन्य संपत्तियों को छोड़ने का दबाव बढ़ता गया. 1954 के मध्य में गोवा के राष्ट्रवादियों ने दादरा और नगर हवेली की बस्तियों पर कब्जा कर लिया और भारत समर्थक

प्रशासन की स्थापना की. एक अन्य संकट की घड़ी तब आई, जब भारत के सत्याग्रहियों (अहिंसक प्रदर्शनकारी) ने गोवा में घुसने का प्रयास किया. पहले पहल तो सत्याग्रहियों को वापस भेज दिया गया, लेकिन बाद में, जब बहुत ज्यादा संख्या में लोगों ने सीमा पार करने का प्रयत्न किया, तो पुर्तगाली अधिकारियों को बल प्रयोग करना पड़ा और कई मौतें हुईं. इससे 18 अगस्त 1955 को पुर्तगाल और भारत के बीच राजनीतिक संबंध टूट गए. भारत और पुर्तगाल के बीच का तनाव 18 दिसंबर 1961 को अपने चरम पर पहुंचा और नौसेना एवं वायुसेना की मदद से भारतीय सेना ने गोवा, दमन और दीव पर क़ब्ज़ा कर लिया. 1962 में संविधान संशोधन द्वारा पुर्तगाली भारत को भारतीय गणराज्य में शामिल कर लिया गया. जनसंख्या (2001) राज्य कुल 13,43,998; ग्रामीण 6,75,129; शहरी 6,68,869.

इंदिरा गोस्वामी
सौजन्य : भारतीय ज्ञानपीठ

गोस्वामी, इंदिरा

(ज.–14, नवं. 1942, गुवाहाटी, असम). ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित असमिया भाषा की सुप्रसिद्ध लेखिका.

असम के एक पारंपरिक वैष्णव परिवार में जन्मी इंदिरा गोस्वामी का बचपन शिलांग और गुवाहाटी में बीता. उनका विवाह कम उम्र में ही हो गया था. जब इंदिरा की उम्र केवल 24 वर्ष की थी, सरकारी विभाग में कार्यरत उनके पति कश्मीर में एक दुर्घटना में मारे गए. इस दुर्घटना ने उनकी जीवनयात्रा को गहरा झटका दिया.

इंदिरा की शिक्षा–दीक्षा गुवाहाटी में हुई. उन्हें शंकरदेव छात्रवृत्ति प्राप्त हुई, जिसके अंतर्गत उन्होंने अपना शोधकार्य वृंदावन (उत्तर प्रदेश) में पूरा किया. गुवाहाटी विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की उपाधि के लिए उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास की *रामचरितमानस* और माधव कंदली की असमिया *रामायण* का तुलनात्मक अध्ययन किया. उनकी महत्त्वपूर्ण पुस्तक *रामायण फ्रॉम गंगा टु ब्रह्मपुत्र* 1996 में प्रकाशित हुई. 1999 में तुलसीदास और उनके कृतित्व पर अमेरिका में आयोजित एक सम्मेलन में इंदिरा गोस्वामी को अंतर्राष्ट्रीय तुलसी पुरस्कार से सम्मानित किया गया.

इंदिरा गोस्वामी की रचनाओं में वीभत्स से उदात्त तक विभिन्न विषय सम्मिलित हैं. उनमें संवेदनशीलता है, परंतु भावुकता नहीं है. उनके लेखन में पाठक को अपने साथ बहा ले जाने की क्षमता है. शैलीगत चमत्कारों का प्रयोग न करते हुए वे अपनी लेखनी की सहज गति से मानवीय यातना और शोषण की पृष्ठभूमि में अद्‌भुत कथाएं बुनती हैं. उनकी कहानियों में जीवन की पूरी प्रामाणिकता और ऊष्मा है. उनकी सभी रचनाओं में उनकी निजी ज़िंदगी की कसमसाहट और वेदना से उपजी कथा–दृष्टि देखी जा सकती है.

इंदिरा गोस्वामी को असमिया साहित्य में मामोनी रायसम गोस्वामी के नाम से जाना जाता है. इंदिरा की पहली कृति *चिनाबेर स्रोत* में कश्मीर के मज़दूरों की दुर्दशा का वर्णन है. 1983 में उनके उपन्यास *मामरे धरा तरोवाल* पर साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया. इस उपन्यास मे मजदूरों के शोषण का चित्रण है और एक मजदूर हड़ताल

का वर्णन है, जो कंपनी के मालिकों की चालाकी और भ्रष्ट यूनियन नेताओं के कारण असफल हो जाती है.

स्त्री होने की विवशता से जुड़ी प्रथाओं और रूढ़ियों में जकड़ी–छटपटाती विधवाओं, परंपरा की सड़ी–गली दीवारों की आड़ में जारी देह–व्यापार तथा पाखंडी भद्रलोक को इंदिरा ने बहुत ध्यान से देखा और पहचाना है. अपने उपन्यास *नीलकंठी ब्रज* में उन्होंने विधवाओं की त्रासदी को मुखर किया है.

दक्षिण कामरूप के अभिजात्य परिवारों का जीवंत चित्रण जब उनके उपन्यास *उने खौवा हौदा* में किया गया, तो असमिया साहित्य में तहलका सा मच गया. इस उपन्यास पर आधारित असमिया फ़िल्म को कई राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार मिले.

चिन्नमस्ता उपन्यास में उन्होंने पशुबलि के ख़िलाफ़ प्रभावशाली ढंग से लिखा है.

उनकी प्रसिद्ध आत्मकथा *अधलिखा दस्तावेज* में 1970 तक के उनके जीवन की झलक देखने को मिलती है. अपने जीवन की घटनाओं और पात्रों को जिस साफ़गोई और ईमानदारी से इंदिरा गोस्वामी प्रस्तुत करती हैं, वह किसी भी लेखक के लिए ईर्ष्या का विषय हो सकता है. अद्‌भुत वर्णन शैली पाठक को आरंभ से अंत तक बांधे रखती है.

प्रमुख कृतियां : *नीलकंठी ब्रज* (1976), *मामरा धरा तरोवाल* (1980), *अहिरॉन* (1988), *उने खौवा हौदा* (1988), *अधलिखा दस्तावेज* (1988).

इंदिरा गोस्वामी को साहित्य अकादमी पुरस्कार (1983), असम साहित्य सभा पुरस्कार (1988), भारत निर्माण पुरस्कार (1989), कथा सम्मान (1993), कमल कुमारी फ़ाउंडेशन राष्ट्रीय पुरस्कार (1996), अंतर्राष्ट्रीय तुलसी पुरस्कार (1999), ज्ञानपीठ पुरस्कार (2000) से सम्मानित किया गया है.

गौड़

प्राचीन शहर, राज्य और एक साहित्यिक शैली, गौर भी कहलाता है. व्याकरणविद् पाणिनी (पांचवी शताब्दी ई.पू.) ने पहली बार इसका उल्लेख किया और इसके पूर्वी भारत में स्थित होने का अनुमान लगाया जाता है.

संस्कृत साहित्य में गौड़ नाम का इस्तेमाल सामान्यतः वर्तमान पूर्वी भारत में इसी नाम के एक राज्य के लिए किया गया है. पुराणों व अन्य स्रोतों में राज्य के रूप में इसका अधिक स्पष्ट उल्लेख हुआ है. यह पश्चिम बंगाल में गंगा नदी के दक्षिणी क्षेत्र से साम्य रखता है. व्यापक अर्थों में यह नाम अक्सर बंगाल के पश्चिमी भाग बंग (वर्तमान बांग्लादेश) के विरोध के रूप में प्रयुक्त हुआ है. प्रारंभ से ही गौड के निवासी समुद्रयात्री के रूप में जाने जाते थे. साहित्य में गौड़ या गौडी काव्य शैली (प्राच्य नाम से भी प्रसिद्ध) की व्याख्या दंडी ने अपने ग्रंथ *काव्यादर्श* में की है.

गौर

जंगली सांडों के वर्ग से संबंधित जंगली मवेशियों की कुछ प्रजातियों में से एक. विश्व में चार वंशों से संबंधित जंगली सांडों की कुल नौ प्रजातियां तथा 21 उपप्रजातियां हैं. इनमें एशियाई भैंस, अफ़्रीकी भैंस, सामान्य मवेशी तथा जंगली भैंस शामिल हैं. इन जंगली सांडों के पूर्वजों की उत्पत्ति एशिया में 20 लाख वर्ष पूर्व मानी जाती है.

गौर (*बॅस गौरस*)
फोटो : जे.ए. हैंकॉक – फोटो रिसर्चर्स

गौर को सामान्यतः भारतीय जंगली भैंस माना जाता है. यह *बोविडी* उपकुल के *आर्टिओडैक्टाइला* गण से संबंधित है. यह पूर्वी जैव–भौगोलिक क्षेत्र तक सीमित सबसे विशाल जीवित गोवंश प्रजाति है. *बॅस गौरस गौरस* (भारत और नेपाल), *बॅस गौरस रीडी* (म्यांमार और हिंदचीन) और *बॅस गौरस हुबकी* (दक्षिणी थाईलैंड के क्रा के जलडमरूमध्य तथा पश्चिमी मलेशिया) गौर की आमतौर पर पाई जाने वाली तीन मुख्य उपप्रजातियां हैं.

भारत में गौर की संख्या अधिकांशतः अलग–अलग छोटे क्षेत्रों में– पश्चिमी घाटों के पहाड़ी हिस्सों, मध्य भारतीय उच्च भूमि और उत्तर–पूर्वी हिमालय में है. गौर दक्षिणी बिहार और पश्चिम बंगाल तथा दक्षिण–पूर्वी प्रायद्वीप के जंगलों में भी पाए जाते हैं. इनका आवास भी इनके विस्तार के समान भिन्न है. इनका विस्तार पूर्वोत्तर के सदाबहार और बांस के जंगलों से लेकर मध्य भारत के सूखे पतझड़ी क्षेत्रों तथा पश्चिमी घाटों के नमी वाले पतझड़ी क्षेत्रों तक है. इन क्षेत्रों में गौर 2,000 मीटर तक की ऊंचाई पर अपेक्षाकृत निर्विघ्न क्षेत्रों में निवास करते हैं. गौर सांडों का वज़न 600–1,000 किग्रा तक और कंधे तक ऊँचाई 1.6 से 1.9 मीटर तक होती है, जबकि मादा ऊंचाई में 10 सेमी छोटी तथा वज़न में नर से एक चौथाई होती है. गौर की सर्वाधिक आकर्षक विशेषताओं में से एक, उसके कंधों के ऊपर मांसपेशीयुक्त रीढ़ है, जो पीठ के मध्य से ढलुआ अचानक नीचे आ जाती है. इसे सामान्यतः कूबड़ के रूप में जाना जाता है, जो पृष्ठस्थ मेरूदंड का विस्तार है. नर और मादा, दोनों के सींग होते हैं. नरों के सींग विशेष रूप से आधार से बड़े, अधिक उभरे हुए तथा नोक पर कम घुमावदार होते हैं. सींगों के बीच ऊंचा और उठा हुआ मस्तक होता है.

बूढ़े नरों के दो प्रमुख चर्म आवरण (झालरदार मांस) होते हैं. यह चर्म आवरण ठोढ़ी पर छोटा तथा गर्दन पर बड़ा व झूलता हुआ होता है. जन्म के समय बछड़े का रंग हल्का सुनहरा पीला होता है, जो आयु के साथ धीरे–धीरे बदलता है. अल्पवयस्क तथा मादाओं का रंग भूरा तथा प्रौढ़ नरों का स्याह काला होता है. मस्तक स्लेटी होता है, दोनों अग्रपाद तथा पृष्ठपाद घुटनों तक सफ़ेद या हल्के पीले होने से लगता है, जैसे वह लंबे मोजे पहने है. गौर में सूंघने और सुनने की तीव्र शक्ति होती है, किंतु उसकी दृष्टि क्षमता अपेक्षाकृत कम विकसित होती है.

गौर की दल–संरचना बहुत अस्थिर तथा परिवर्तनशील होती है. झुंड में दो से 16 पशु तक की संख्या होती है. लेकिन कभी–कभी यह 20 से अधिक भी हो सकती है. झुंड

में सामान्यतः मादाएं तथा कुछ बछड़े एक या दो वयस्क सांड तथा अल्पवयस्क सदस्य होते हैं. युवा सांड कभी–कभी कुंवारों का झुंड बनाने के लिए इकट्ठा हो जाते हैं. परिपक्व सांड सामान्यतः एकांत प्रकृति के होते हैं और केवल प्रजनन–काल में ही झुंड में शामिल होते हैं. सामान्यतः वयस्क मादाएं ही दल का नेतृत्व करती हैं. मादा और बच्चे झुंडों में ही रहते हैं. मां और बछड़े के बीच अटूट रिश्ता होता है. गौर सामान्य आहारी है, किंतु वह शुष्क मौसम में थोड़ा–बहुत और मॉनसून में जमकर चरना पसंद करता है. उसके आहार में मुख्यतः पेड़ की कोंपलें तथा पत्ते, जड़ी–बूटी, कलियां, फल, बांस के नरम बीज, झाड़ियां, घास और पेड़ की छाल होती है. वह बीच–बीच में नमक चाटने जाता है. गौर को पानी रोज़ चाहिए और ग्रीष्म में वह दिन में दो बार भी पानी के क्षेत्र में चले जाते हैं. दोपहर में वे घने पेड़ की छाया में विश्राम करते हुए जुगाली करते हैं. सामान्यतः आहार ग्रहण का समय सुबह और शाम होता है. औसतन वे प्रतिदिन 15–18 घंटे चरते हैं. गौर प्रकृति से शर्मीले होते हैं और यदा–कदा ही लड़ते हैं. वे फुफकारते हैं और चौकन्ना होने पर 'फू' की ध्वनि निकालते हैं. मैथुनकाल में नर तीव्र कामोदीप्त आवाज़ें निकालते हैं, जो बहुत दूर तक सुनी जा सकती हैं. जब नर आवेश में मादा की ओर उन्मुख होता है, तो वह होंठों को ऊपर की ओर मोड़कर प्रेम–प्रदर्शित करता है. मैथुनकाल भी विभिन्न नस्लों के अनुसार बदलता है, परंतु उसके निश्चित चरम बिंदु होते हैं. कुछ गौर साल भर प्रजनन करते हैं. मध्य भारत में चरम मैथुन काल मार्च से मई तक है. मादा आठ से नौ महीने तक गर्भधारण करने के बाद एक बछड़े को जन्म देती है. जुड़वां पैदाइश दुर्लभ है. मादा जन्म देने के लिए झुंड से दूर चली जाती है और कुछ दिन बछड़े के साथ ही रहती है, बाद में वह फिर झुंड में आ जाती है. नवजात बछड़ा जन्म के कुछ घंटों बाद ही सक्रिय हो जाता है और मां के साथ ही रहता है. पांच से आठ महीने तक वह मां का ही दूध पीता है और फिर वनस्पति खाने लगता है. गौर के प्राकृतिक भक्षक बाघ और तेंदुआ हैं.

भारतीय वन्यजीवन सुरक्षा अधिनियम (1972) की अनुसूची–I के अनुसार, गौर लुप्तप्राय जीव है तथा इसे कन्वेंशन ऑन इंटरनेशनल ट्रेड इन एनडेन्जर्ड स्पीशीज़ ऑफ़ वाइल्ड फ़ॉना ऐंड फ़्लोरा (सी.आई.टी.ई.एस.) के परिशिष्ट–I में भी शामिल किया गया है. ऐक्शन प्लान ऑफ़ आई.यू.सी.एन. फ़ॉर एशियन वाइल्ड कैटल ऐंड बफ़ेलोज़ स्टेटस रिपोर्ट (आई.यू.सी.एन.–इंटरनेशलन यूनियन फ़ॉर कन्ज़रवेशन ऑफ़ नेचर ऐंड नेचुरल रिसोर्सेज़) के अनुसार, भारत में गौर की संख्या 5,000 से 10,000 के बीच है. गौर में कुछ पशु रोगों के मामले में कम प्रतिरोधक क्षमता है. गौर की संख्या पैर और मुंह के रोगों यथा प्लेग तथा गिल्टी रोग से बहुत तेज़ी से कम हुई है. भारत में घरेलू जीवों से संक्रमित रोगों से अन्य वन्य पशु उतने प्रभावित नहीं हुए हैं, जितने गौर. जानवरों का अधिक शिकार, पुराने समय में क्रीड़ा–आखेट और आवास की कमी मुख्य कारण हैं, जिनके चलते गौर की संख्या घटी है. इसका बलिष्ठ और भव्य रूप मानव–मन को झकझोर देता है. घास के खुले क्षेत्रों में विचरण तथा नमक चाटने की इसकी आदतों ने इसे पार्कों और अभयारण्यों में पर्यटकों का आकर्षण केंद्र बना दिया है.

ग्यालज़िंग

गेज़िंग भी कहलाता है, नगर, दक्षिण–पश्चिमी सिक्किम राज्य, उत्तर भारत. उत्तरी भारत के सिक्किम राज्य के दक्षिण–पश्चिमी हिस्से में स्थित. गेज़िंग रांगित नदी के ठीक पश्चिम में राथोंग–कालेत सम्मिलन पर अवस्थित है. इस नगर में एक अस्पताल, एक विश्राम भवन, उच्चतर माध्यमिक विद्यालय और एक छोटी पनबिजली परियोजना है. जनसंख्या (2001) नगर 828.

ग्रंथ वर्णाक्षर

दक्षिण भारत की लेखन पद्धति, जिसका विकास पांचवीं शताब्दी में हुआ और यह अब भी प्रचलन में है. ग्रंथ में लिखा गया आरंभिक अभिलेख पांचवी–छठी शताब्दी का है और यह पल्लव (आधुनिक चेन्नई के निकट) राज्य के ताम्रपत्रों और प्रस्तर स्मारकों पर उत्कीर्ण है. इन अभिलेखों में वर्णाक्षर के जिस स्वरूप का उपयोग हुआ है, उसे आरंभिक ग्रंथ के रूप में वर्गीकृत किया जाता है. सातवीं शताब्दी के मध्य से आठवीं शताब्दी के अंत तक इस्तेमाल की जाने वाली लिपि को मध्यग्रंथ कहते हैं और इसके बारे में भी ताम्र व प्रस्तर अभिलेखों के माध्यम से ही जानकारी मिलती है. नौवीं से चौदहवीं शताब्दी तक इस्तेमाल की गई लिपि को संक्रमण ग्रंथ कहते हैं. लगभग 1300 ई. के बाद से आधुनिक लिपि का उपयोग हो रहा है. वर्तमान काल में इसके दो प्रकारों का उपयोग हो रहा है : ब्राह्मण या वर्गाकार और जैन या वर्तुलाकार. मूलतः इस लिपि का उपयोग संस्कृत लिखने के लिए होता था, लेकिन इसके बाद के प्रकारों का इस्तेमाल दक्षिण भारत की स्थानीय द्रविड़ भाषाओं को लिखने के लिए होने लगा. तुलु–मलयालम लिपि ग्रंथ का एक प्रकार है, जो आठवीं या नौवीं शताब्दी से प्रचलित है. संभावना है कि आधुनिक तमिल लिपि भी ग्रंथ से ही उत्पन्न हुई होगी, लेकिन यह निश्चित नहीं है. इस लिपि में 35 अक्षर हैं, जिसमें पांच स्वर हैं और यह बाएं से दाईं ओर लिखी जाती है.

ग्राम देवता

ग्रामीण भारत में व्यापक तौर पर पूजे जाने वाले लोक देवता का प्रकार. संभवतः महिला आकृतियों के तौर पर ग्राम देवताओं का उद्‌भव कृषि देवों के रूप में हुआ. दक्षिण भारत एवं अन्य भागों में पशुबलि देकर महामारी भगाने, फ़सल नष्ट होने और प्राकृतिक विपदाओं से बचाने के लिए उनको प्रसन्न करना आज भी जारी है. आधुनिक हिंदू धर्म के ब्राह्मण देवताओं के साथ–साथ ग्राम देवताओं का अस्तित्व भी है. कई ग्राम देवता शुद्धतः स्थानीय देवता हैं. किसी स्थान की आत्माओं (चौराहे, सीमा रेखा), हिंसक या अकाल मृत्यु प्राप्त लोगों की आत्माओं और वृक्ष व सर्प आत्माओं को भी ग्राम देवता माना जाता है. साधारण मंदिरों या गांव के किसी पेड़ के नीचे बने चबूतरे पर और कभी–कभार भव्य भवनों में मिट्टी की मूर्तियों या आकारहीन पत्थर के रूप में स्थापित कर इनकी पूजा की जाती है. अपवादस्वरूप अयनार एक नर देवता हैं, जिन्हें दक्षिण भारत में ग्राम रक्षक माना जाता है और जिनका मंदिर अन्य देवियों के मंदिरों

से हमेशा अलग रखा जाता है. ऐसे ही एक अन्य देवता, जिन्हें धर्मठाकुर, धर्मराज और धर्मराय के नाम से जाना जाता है, बंगाल के गांवों में मिलते हैं.

ग्वालियर

शहर, उत्तर मध्य प्रदेश राज्य, मध्य भारत. एक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित ग्वालियर एक रेलवे जंक्शन है. यह अपने पुरातन ऐतिहासिक संबंधों, दर्शनीय स्थलों और एक बड़े सांस्कृतिक, औद्योगिक और राजनीतिक केंद्र के रूप में जाना जाता है. इस शहर को उसका नाम उस ऐतिहासिक पत्थरों से बने क़िले के कारण दिया गया, जो एक अलग–थलग, सपाट शिखर वाली, 3 किमी लंबी तथा 90 मीटर ऊंची पहाड़ी पर बना है. इस नगर का उल्लेख गोप पर्वत, गोपाचल दुर्ग, गोपगिरि, गोपदिरी के रूप में हुआ है, इन सभी नामों का मतलब 'ग्वालों की पहाड़ी' होता है. यह नगर सामंती रियासत ग्वालियर का केंद्र था, जिस पर 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में मराठों के सिंधिया वंश का शासन था. रणोजी सिंधिया द्वारा 1745 में इस वंश की बुनियाद रखी गई और महादजी (1761–94) के शासनकाल में यह अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंचा. उनके अधीन क्षेत्र में सामान्य हिंदुस्तान के मुख्य हिस्से तथा मध्य भारत के कई हिस्से शामिल थे और उनके अधिकारी जोधपुर तथा जयपुर सहित अनेक स्वतंत्र राजपूत शासकों से भी नज़राना वसूल करते थे. दौलतराव के शासनकाल में अंग्रेज़ों ने अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई और 1840 के दशक में इस क्षेत्र में पूरा प्रभाव क़ायम किया. 1857 के विद्रोह के दौरान ग्वालियर के सिंधिया शासक अंग्रेज़ों के प्रति वफ़ादार बने रहे, किंतु उनकी सेना ने विद्रोहियों का साथ दिया.

ग्वालियर का किला
सौजन्य : यात्राइंडिया डॉट कॉम

पठारी इलाक़े में स्थित यह क्षेत्र सांक (शंख) नदी द्वारा कई जगहों पर प्रतिच्छेदित है और घने जंगल से आच्छादित है. नगर तीन भिन्न बस्तियों से बना है : पुराना ग्वालियर, जो पर्वतीय क़िले के उत्तर में है और जहां मध्ययुगीन शौर्य के कई जीवंत स्मारक मौजूद हैं; क़िले के दक्षिण में स्थित लश्कर 1810 में दौलतराव सिंधिया की फ़ौजी छावनी बना था; पूर्व में मुरार, जो अंग्रेज़ों की छावनी था. समूचा इलाक़ा उस ग्वालियर प्रस्तर–प्रणाली से बना है, जिसमें निचले पार में उत्तरमुखी ढलान अभ्रकयुक्त चूना–पत्थर, स्फटिक, बलुआ तथा स्लेटी पत्थर, तथा ऊपरी मुरार शृंखला में स्लेट, चूने, चिकने फीतेदार सूर्यकांत (जैस्पर) तथा शोण (हॉर्नस्टोन) पत्थर की पट्टियों से बनी है. शहर के आसपास मिलने वाले खनिजों में मैंगनीज़, लौह अयस्क, कांच रेत (ग्लास सैंड), चिकनी मिट्टी तथा शोरा हैं. आसपास का क्षेत्र शुष्क पर्णपाती वनस्पतियों से आच्छादित है तथा खेती नदी घाटी में होती है जहां मिट्टी गहराई तक पाई जाती है. ग्वालियर के आसपास के जंगलों में विभिन्न क़िस्मों के जानवर और पक्षी पाए जाते हैं, जिनमें चीतल, हिरन, भूरे तीतर, चाहा तथा काला हिरन शामिल हैं. ग्वालियर की जलवायु मॉनसूनी है और वहां कटिबंधीय अतिरेक लिए सूखापन रहता है. वर्षाकाल साल दर साल बदलता रहता है और बारिश केवल वर्षा ऋतु में ही होती है. वर्षा की अनिश्चितता तथा पानी

की किल्लत के कारण यहां तालाबों और बांधों में पानी संचय करना ज़रूरी हो जाता है. ग्वालियर शहर में कोई 12 तालाब हैं और उनके अलावा अनेक चट्टानों को काटकर बनाए गए जलाशय और कुएं हैं, जिनसे शहर को निरंतर पानी की आपूर्ति होती रहती है. भारत में पहाड़ी क़िलों का पतन अक्सर पानी की कमी के कारण ही हुआ. इस तथ्य की रोशनी में ग्वालियर के क़िले की यह विशेषता अनोखी है. इसी पक्ष ने इस क़िले को अजेय बना दिया था.

ग्वालियर एक ऐसा महत्त्वपूर्ण व्यापारिक और औद्योगिक केंद्र है, जहां से कृषि उत्पाद, वस्त्र, इमारती पत्थर तथा लौह अयस्क बाहर भेजे जाते हैं. लगभग एक–चौथाई आबादी कामगार हैं, जिसमें से 91 प्रतिशत पुरुष तथा 9 प्रतिशत स्त्रियां हैं. इनमें से दो–तिहाई लोग नौकरी और प्रशासनिक क्षेत्र में तथा एक–चौथाई ग़ैर घरेलू निर्माण, व्यापार, वाणिज्य, निर्माण, परिवहन तथा संचार में लगे हुए हैं. नगर के प्रमुख उद्योगों में जूट, सिगरेट, कपास तथा रेयॉन के वस्त्र, प्लास्टिक, कांच, माचिस, आटा–मैदा, चीनी के अलावा पत्थर तराशना, मिट्टी के बर्तन बनाना, चमड़ा पकाना तथा उसके खिलौने बनाना शामिल है. ग्वालियर इंजीनियरिंग वर्क्स संयंत्र में रेल–इंजनों तथा डिब्बों की मरम्मत के अलावा अस्तपाल–उपकरण, बांधों के लिए इस्पात के द्वार सहित कई विविध उपकरण बनाए जाते हैं. ग्वालियर में गलीचे, दरी, होज़री, बिस्कुट, अनाज और तेल की मिलों, आरा मिलों तथा लोहा ढालने जैसे छोटे पैमाने के भी कई उद्योग हैं.

ग्वालियर रियासत का इलाक़ा आज़ादी के बाद 1948 में स्वतंत्र भारत के मध्य भारत राज्य में शामिल कर लिया गया. यह नगर 1956 में नए मध्य प्रदेश राज्य में शामिल होने तक मध्य भारत की शीतकालीन राजधानी रहा. प्रशासनिक दृष्टि से यह अब भी एक महत्त्वपूर्ण केंद्र है.

सड़क तथा रेल मार्गों से भलीभांति जुड़े हुए इस शहर से महत्त्वपूर्ण राज्य तथा राष्ट्रीय राजमार्ग गुज़रते हैं. यहां सिंधियाकालीन छोटी लाइन (नैरो गेज) रेलमार्ग का मुख्यालय है और यह मध्य रेलवे के दिल्ली–मुंबई प्रमुख मार्ग पर स्थित है.

ग्वालियर में जीवाजी विश्वविद्यालय (1964) और इससे संबद्ध कला, विज्ञान, वाणिज्य, चिकित्सा तथा कृषि महाविद्यालय हैं और नगर में साक्षरता की दर काफ़ी ऊंची है. ग्वालियर में संगीत की यशस्वी परंपरा रही है और उसकी अपनी ख़ास शैली रही है, जो ग्वालियर *घराना* के नाम से प्रसिद्ध है.

नगर के भीतर और आसपास के दर्शनीय स्थलों में ग्वालियर का क़िला, आठ तालाब, छह महल, छह मंदिर, एक मस्जिद तथा अन्य इमारतें हैं. तेली का मंदिर (11वीं सदी), गुजरी महल (लगभग 1500 ई.), सास–बहू का मंदिर (1093) हिंदू स्थापत्य कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं. किले की दीवार के नीचे चट्टान से तराशी हुई 18 मीटर ऊंची प्रतिमाएं (15वीं सदी), महल तथा लश्कर के स्मारक, अबुल फ़ज़ल अल्लामी का मक़बरा, फूल बाग तथा जयविलास महल समृद्ध कला एवं संस्कृति के अन्य ऐतिहासिक उदाहरण हैं. जनसंख्या (2001) न.नि. क्षेत्र 8,26,919; ज़िला कुल 16,29,881.

घ

घग्घर नदी

नदी, उत्तरी भारत. घग्घर नदी पश्चिमोत्तर हिमाचल प्रदेश राज्य की शिवालिक पर्वतश्रेणी से निकलती है और हरियाणा से होती हुई दक्षिण–पश्चिम दिशा में लगभग 320 किमी तक बहती है, जहां इससे सरस्वती नदी मिलती है. ओटु बैराज के बाद घग्घर नदी को हाकरा नदी के नाम से जाना जाता है, जो थार के रेगिस्तान में विलुप्त हो जाती है. सिरसा के ठीक दक्षिण–पश्चिम में इससे दो सिंचाई नहरों का पानी मिलता है, जो राजस्थान तक फैली हैं. घग्घर संभवतः सिंधु नदी की सहायक नदी थी. इसका मौसमी बहाव मानसूनी बरसात पर निर्भर करता है.

घट–पल्लव

भारतीय कला का महत्त्वपूर्ण आलंकारिक तत्त्व, जिसमें फूल और पत्तियों से भरा एक कलश होता है. वैदिक साहित्य में यह जीवन का प्रतीक, वनस्पति का स्रोत है, जो अब भी मान्य है. भारतीय कला में लगभग आरंभ से ही यह तत्त्व विद्यमान था और सभी कालों में इसका प्रमुखता से उपयोग हुआ पांचवीं शताब्दी से विशेषकर उत्तरी भारत में, घट–पल्लव का उपयोग वास्तुशास्त्र में स्तंभ के आधार और शीर्ष के रूप में होने लगा तथा 15वीं शताब्दी तक इस प्रकार का उपयोग जारी रहा.

नगदा, राजस्थान के सास मंदिर का 10वीं सदी का घट–पल्लव युक्त बलुकाश्म भित्ति स्तंभ
फोटो : पी. चंद्रा

बौद्ध, हिंदू और जैन धर्मों में भरे हुए घड़े (पूर्ण घट या पूर्ण कलश) का उपयोग देवता अथवा सम्मानित अतिथि के आनुष्ठानिक चढ़ावे के लिए भी होता है; पवित्र प्रतीक के रूप में धर्मस्थलों और भवनों की सज्जा में भी इसका उपयोग होता है. पात्र को पानी, वनस्पति और अक्सर एक नारियल से भर दिया जाता है और इसके चारों ओर पवित्र धागा बांधा जाता है. समृद्धि और जीवन के स्रोत के प्रतीक के रूप में पूर्ण कलश (आनुष्ठानिक वस्तु और आलंकारिक तत्त्व, दोनों अर्थों में) को हिंदू मान्यता के संदर्भ में समृद्धि और सौभाग्य की देवी श्री या लक्ष्मी का प्रतीक भी माना जाता है.

घटम

एक भारतीय संगीत वाद्य. यह मूलतः एक विशेष प्रकार की मिट्टी से और बड़ी सावधानी से पकाकर बनाया गया पात्र होता है. घटम का उपयोग आमतौर पर लोकसंगीत में होता है, किंतु अब यह कर्नाटक संगीत में भी लोकप्रिय हो गया है. कर्नाटक संगीत में वादक घटम को अपने पेट पर औंधा रखकर अंगुलियों और हथेलियों से बजाता है. कश्मीर में इस वाद्य को *नूत* कहा जाता है और इसे सीधा रखकर ही बजाया जाता है.

घराना

(परिवार), हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत की विशिष्ट शैली. चूंकि हिंदुस्तानी संगीत बहुत विशाल भौगोलिक क्षेत्र में विस्तृत है, कालांतर में इसमें अनेक भाषाई तथा शैलीगत बदलाव आए. इसके अलावा शास्त्रीय संगीत की गुरु–शिष्य परंपरा में प्रत्येक गुरु या उस्ताद अपने हाव–भाव अपने शिष्यों की जमात को देता जाता है. इस तरह, घराना किसी क्षेत्र विशेष का प्रतीक होने के अलावा, व्यक्तिगत आदतों की पहचान बन गया है. यह परंपरा ज़्यादातर संगीत शिक्षा के पारंपरिक तरीक़े (जिसमें शिष्य गुरु के घर पर ही रहकर प्रशिक्षण प्राप्त करता था) तथा संचार सुविधाओं के अभाव के कारण फली–फूली, क्योंकि इन परिस्थितियों में शिष्यों की पहुंच संगीत की अन्य शैलियों तक बन नहीं पाती थी.

घाघरा नदी

नेपाली नाम कोरियाला, (चीनी में कुंग–चियाओ हो), गंगा की प्रमुख वामतटीय सहायक नदी, जो हिमालय के तिब्बती क्षेत्र से करनाली नदी के नाम से जानी जाती है और नेपाल के दक्षिण–पूर्वी क्षेत्र से होकर बहती है. दक्षिण दिशा में शिवालिक पहाड़ियों से गुज़रकर यह दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है, जो भारतीय सीमा के दक्षिण में जाकर फिर से एकीकृत होकर वास्तविक घाघरा नदी बनती है. यह दक्षिण–पूर्व दिशा में उत्तर प्रदेश और बिहार राज्यों से होकर बहती है, जहां 970 किमी के बाद छपरा के पास यह गंगा नदी में मिल जाती है. कुवानो, राप्ती और छोटी गंडक सहित इसकी सभी प्रमुख सहायक नदियां उत्तर के पहाड़ों से निकलकर घाघरा में मिलती हैं. गंगा और उसकी सहायक नदियों की सहायता से यह उत्तर बिहार में विशाल जलोढ़ मैदान का निर्माण करती है. इसके निचले हिस्से में इसे सरजू (दूसरी शताब्दी के यूनानी भूगोलविद टॉलेमी द्वारा साराबोस के रूप में उल्लिखित) और देवहा नदी भी कहते हैं.

घाट

दो पर्वत श्रृंखलाएं, जो प्रायद्वीपीय भारत के दक्कन के पठार के पूर्वी और पश्चिमी किनारे बनाती हैं. हिंदी में घाट का अर्थ नदी किनारे बनी सीढ़ियां या पर्वतीय दर्रा होता है.इसके बहुवचन रूप को अंग्रेज़ी भाषा में पूरे पर्वत को समाहित करने के लिए अपना लिया गया है. इस शब्द से नदी किनारे धार्मिक उद्देश्य से स्नान के लिए निर्मित सीढ़ीदार संरचना और नौका के आवागमन स्थल का भी संदर्भ मिलता है.
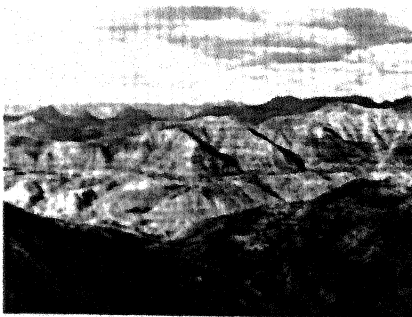
महाराष्ट्र में पश्चिमी घाट
फोटो : डेविड वेन्नर– नैन्सी पॉमर एजेंसी

ये दो पर्वत श्रृंखलाएं क्रमशः बंगाल की खाड़ी और अरब सागर के समुद्री तट के लगभग समानांतर हैं, जिनसे ये एक समतल तटीय भूमि द्वारा अलग हैं. पूर्वी घाट में कई असमरूपीय व असंबद्ध पर्वतखंड शामिल हैं, जिनकी औसत

ऊंचाई लगभग 600 मीटर है और शिखरों की ऊंचाई 1,200 मीटर या इससे अधिक है. इस श्रृंखला में 160 किमी चौड़ा एक दर्रा भी है, जिससे होकर कृष्णा और गोदावरी नदियां तट तक पहुंचती हैं. पर्वतीय ढलानों में विरल वन हैं, जिनसे बहुमूल्य लकड़ी प्राप्त होती है.

पूर्वोत्तर से दक्षिण–पश्चिम की ओर पूर्वी घाट में कई असतत निचली श्रृंखलाएं सामान्यतः बंगाल की खाड़ी के समानांतर हैं. महानदी और गोदावरी नदियों के बीच के दंडकारण्य क्षेत्र में एक विशाल पर्वत इकाई है, जो क्षरित होकर पुनः कायाकल्प हुए एक प्राचीन पर्वत श्रृंखला का अवशेष है. इस संकरी पर्वत श्रृंखला में एक केंद्रीय कटक है, जिसका उच्चतम शिखर, अर्माकोंडा (1,680 मीटर), आंध्र प्रदेश में है. आगे दक्षिण–पश्चिम की ओर पहाड़ियां ओझल होती जाती हैं, जहां गोदावरी नदी 64 किमी लंबे एक महाखड्ड से होकर इन पहाड़ियों के चारों ओर घूमती है. दक्षिण–पश्चिम दिशा में और आगे कृष्णा नदी के पार पूर्वी घाट एरामला, नल्लामला, वेलिकोंडा और पालकोंडा सहित छोटी पहाड़ियों की एक श्रृंखला प्रतीत होता है. चेन्नई (भूतपूर्व मद्रास) के दक्षिण–पश्चिम में पूर्वी घाट जावडी और शेवरॉय पहाड़ियों के रूप में जारी रहता है, जिसके बाद ये पश्चिमी घाट से मिल जाता है.

पश्चिमी घाट, जो संभवतः भ्रंश कगार हैं, दक्कन पठार के पश्चिमी सिरे के शिखर हैं. उनकी समुद्रवर्ती तीखी ढलान जलधाराओं व खड्ड जैसी घाटियों द्वारा गहराई से विभक्त हैं, लेकिन भूमि की ओर की ढलान कम ढालू हैं और चौड़ी परिपक्व घाटियों के लिए मार्ग बनाती हैं. यह श्रृंखला उत्तर की ओर ताप्ती नदी तक और दक्षिण की ओर भारत के दक्षिणतम बिंदु कुमारी अंतरीप तक फैली हुई है. पहाड़ियों की ऊंचाई उत्तर में 914 मीटर से 1,524 मीटर तक और गोवा के दक्षिणी क्षेत्र में 914 मीटर से कम है तथा सुदूर दक्षिण में ये फिर से ऊंची होती चली जाती हैं व डोडाबेट्टा पर्वत पर ऊंचाई 2,637 मीटर है. पालघाट (पालक्काड) दर्रा मुख्य पश्चिमी घाट को उसके दक्षिणवर्ती विस्तार से अलग करता है, जो दक्षिणी घाट के रूप में भी जाना जाता है, क्योंकि पश्चिमी घाट में दक्षिण–पश्चिम मॉनसून से काफ़ी बारिश होती है. यह एक मुख्य जलविभाजक का निर्माण करता है; पठार के अंदरूनी भूतल पर अपेक्षाकृत हल्की बारिश होती है. अधिक वर्षा के कारण समुद्रवर्ती ढलानों पर सघन वन हैं, जिनमें बांस, सागौन और अन्य कई बहुमूल्य वृक्ष शामिल हैं. पश्चिमी घाट की कुछ नदियों पर विद्युत उत्पादन के लिए बांध बनाए गए हैं. पहाड़ों पर कई पर्वतीय आरामगाह स्थित हैं.

घी

मूलतः दुग्ध वसा, गाय के दूध में प्राकृतिक वसा संघटक और मक्खन का प्रमुख अवयव. शुद्ध घी पिघले हुए मक्खन के ऊपर आ जाता है और इसे बाहर निकाला जा सकता है तथा बिना प्रशीतित किए कई महीनों तक रखा जा सकता है. घी का उपयोग भोजन बनाने और ख़ास व्यंजनों में किया जाता है.

रासायनिक रूप से घी अनिवार्यतः पॉल्मिटिक, ओलिइक, मेरिस्टिक और स्टीआरिक जैसे अम्लवसीय अम्लों से निकाले गए ट्राइग्लिसराइड के मिश्रण का बना होता है. घी के वसीय अम्ल का संयोजन इसे उत्पन्न करने वाले पशु के आहार के अनुसार भिन्न होता है. घी में इन अम्लों की मात्रा की गणना में रीचर्ट–मिस्सल या रीचर्ट–वोलनी संख्या महत्त्वपूर्ण है.

च

चंडी

चंडिका भी कहलाती हैं, हिंदुओं की देवी शक्ति का दानव–विनाशिनी रूप, जो पूर्वी भारत में विशेष रूप से लोकप्रिय हैं. चंडी को विभिन्न नामों से जाना जाता है, जैसे महामाया और अभया और यह, विशेषकर देवी महामाया की, स्थानीय मान्यताओं तथा संस्कृत परंपरा में संयुक्त रूप में प्रस्तुत होती हैं. उनकी प्रस्तुति शक्ति के दूसरे रूप दुर्गा के समान ही है. उन्हें आठ या दस भुजाओं से युक्त सिंह की सवारी करता हुआ दर्शाया जाता है. सैकड़ों लोककथाओं और गीतों में उनके पराक्रमों का वर्णन है. वह *चंडीमंगल* नामक मध्यकालीन बांग्ला साहित्य की केंद्रीय चरित्र हैं, जिनमें से सबसे विख्यात कृति मुकुंदराम चक्रवर्ती (लगभग 16वीं शताब्दी) की है.

चंडीगढ़

भारत का एक शहर और केंद्रशासित प्रदेश. नई दिल्ली से लगभग 265 किमी उत्तर में स्थित, केंद्रशासित प्रदेश चंडीगढ़, पूर्व दिशा में हरियाणा राज्य तथा बाक़ी सभी दिशाओं में पंजाब राज्य से घिरा हुआ है. इस केंद्रशासित प्रदेश की कार्यपालिका का प्रमुख पंजाब का राज्यपाल है और उसे 'प्रशासक' निर्दिष्ट किया गया है. उसकी सहायता के लिए भारत शासन द्वारा एक वरिष्ठ अधिकारी, 'प्रशासक के सलाहकार' के रूप में नियुक्त किया जाता है. चंडीगढ़ शहर, इसी नाम के केंद्रशासित प्रदेश की राजधानी है. यह पंजाब और हरियाणा, दोनों राज्यों की भी राजधानी है.

केंद्रशासित प्रदेश, चंडीगढ़ का गठन 1 नवंबर 1966 को हुआ था. इसमें केंद्रशासित प्रदेश चंडीगढ़ शहर, तीन क़स्बे और आसपास के कई गांव शामिल हैं, जो 114 वर्ग किमी क्षेत्र में फैले हैं. चंडीगढ़ नाम की उत्पत्ति चंडी मंदिर से हुई है, जो मनी माजरा क़स्बे के समीप स्थित है.

चंडीगढ़ में सरकारी भवन
सौजन्य : *हिंदुस्तान टाइम्स*

प्राकृतिक एवं मानव भूगोल

चंडीगढ़ भारतीय–गांगेय मैदान में शिवालिक पहाड़ियों के ठीक दक्षिण में तथा दो मौसमी पहाड़ी धाराओं, सुखना चो और पटियाली राव के बीच
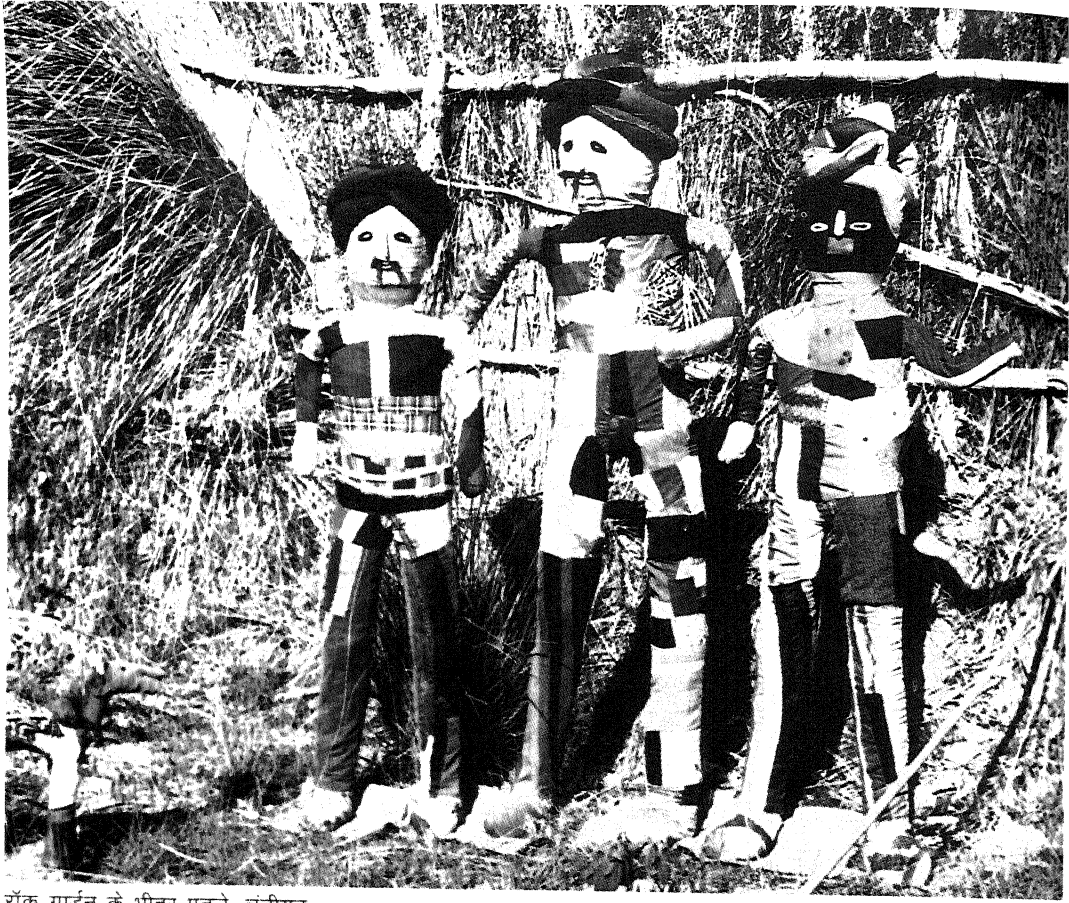
रॉक गार्डन के भीतर पुतले, चंडीगढ़
सौजन्य : टी.एस. बेदी, *हिंदुस्तान टाइम्स*

स्थित है. यह भूमि समतल तथा जलोढ़ मिट्टी का एक उपजाऊ क्षेत्र है. इसकी ग्रामीण कृषि भूमि पर गेहूं, मक्का और चावल उगाए जाते हैं. चंडीगढ़ शहर केंद्रशासित प्रदेश के आधे से अधिक क्षेत्र में फैला हुआ है. प्रारंभ से ही योजनाबद्ध इस शहर का निर्माण 1940 के दशक के उत्तरार्द्ध में शुरू हुआ. इस शहर में बुनियादी ढांचा आधुनिक है तथा जनसंख्या का घनत्व तुलनात्मक रूप से कम है. इसमें 50 से अधिक आयताकार सेक्टर हैं, जिन्हें नागरिक सुविधाओं की दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाया गया है; प्रत्येक सेक्टर एक–दूसरे से चौड़ी सड़कों द्वारा विभक्त हैं, जिन पर शहर का तीव्रगामी यातायात निर्भर है. शहर में उपलब्ध आधुनिक सुविधाएं न केवल आसपास के गांवों, बल्कि भारत के अधिकांश शहरों से भी बहुत अलग हैं.

मुख्य शासकीय भवन, नागरिक सचिवालय, विधानसभा भवन व उच्च न्यायालय शहर के उत्तरी भाग में सेक्टर–1 में स्थित हैं, जबकि अधिकांश कर्मचारी दक्षिणी भागों में रहते हैं. पूर्वोत्तर भाग में एक बड़ी कृत्रिम झील, सुखना झील है, जो चंडीगढ़ की मुख्य सैरगाह एवं मनोरंजन स्थल बन गई है. दक्षिण–पूर्व में औद्योगिक क्षेत्र है, जो एक

हरित पट्टी के द्वारा आवासीय क्षेत्र से अलग है, जिसमें उन्नत क़िस्म के आम के पेड़ लगाए गए हैं. यहां विभिन्न (धुआं रहित) उद्योग हैं, जिनमें महत्त्वपूर्ण हैं– इलेक्ट्रॉनिक्स, औषधि निर्माण, स्वच्छता उपकरण और विद्युत उपकरण. शहर में कई उच्च शिक्षण संस्थाएं हैं, जिनमें 1947 में स्थापित पंजाब विश्वविद्यालय, स्नातकोत्तर चिकित्सा शिक्षा एवं शोध संस्थान, पंजाब अभियांत्रिकी महाविद्यालय और शासकीय चिकित्सा महाविद्यालय शामिल हैं.

इस केंद्र शासित प्रदेश की जनसंख्या का लगभग 3/4 भाग हिंदू और 1/5 हिस्सा सिक्ख है. मुसलमानों, ईसाइयों और जैनों का जनसंख्या में अनुपात बहुत कम है. चंडीगढ़ के प्रत्येक छह में से एक व्यक्ति अनुसूचित जाति का है. हिंदी और पंजाबी यहां सबसे ज़्यादा बोली जाने वाली भाषाएं हैं.

इतिहास

1947 में भारत के विभाजन के तत्काल बाद भारतीय पंजाब में एक उपयुक्त स्थान पर नई राजधानी के निर्माण की योजनाएं बनने लगीं, जब ब्रिटिश भारतीय पंजाब प्रांत को दो भागों में विभाजित किया गया : पश्चिमी पंजाब, जो पाकिस्तान के हिस्से में था और उसमें तत्कालीन प्रांतीय राजधानी लाहौर भी शामिल था और पूर्वी पंजाब, जो भारत के हिस्से में था, मगर इसका कोई प्रशासकीय, व्यापारिक या सांस्कृतिक केंद्र नहीं था. कई विकल्पों (अमृतसर, जालंधर, फ़िल्लौर, लुधियाना, शिमला, अंबाला और करनाल) पर विचार करने के बाद 1948 में पंजाब सरकार ने चंडीगढ़ के वर्तमान स्थल का चयन किया. इसके पक्ष में कई अन्य कारणों में सबसे कम अनुमानित विकास लागत एक निर्णायक तत्त्व था. इस निर्णय के साथ यह आशा की जा रही थी कि नई भव्य राजधानी राज्य में आधुनिकता का प्रतीक बनेगी, भारतीय पंजाबियों के आहत आत्मगौरव के ज़ख़्मों को भरेगी और मुस्लिम बहुल पाकिस्तान से बेघर हुए हज़ारों हिंदू तथा सिक्ख शरणार्थियों को शरण देगी. पंजाब की नई राजधानी के लिए चयनित स्थल, हिमालय की तलहटी में मनोरम स्थान पर था, इसके लिए 58 गांवों के लगभग 21,000 लोगों को पुनर्स्थापित करने की आवश्यकता पड़ी. शहर की योजना स्विट्ज़रलैंड में जन्मे वास्तुविद् ली कर्बुज़िए ने तैयार की, उनकी सहायता मैक्सवेल फ्राइ, जेन ड्र्यू और कई भारतीय वास्तुविदों और नगर योजनाकारों ने की. मुख्य योजना के प्रथम चरण में 1 से 12 और 14 से 30 सेक्टर और द्वितीय चरण में 31 से 47 सेक्टर शामिल थे. ये चरण 5 लाख जनसंख्या के लिए अभिकल्पित किए गए थे, जो अब इससे अधिक हो चुकी है. सेक्टर 48 से 56 का विकास, तृतीय चरण के एक भाग के रूप में किया जा रहा है. 1951 में राजधानी कॉम्प्लेक्स के साथ शहर का निर्माण शुरू हुआ और बराबर जारी है. एक नियोजित और बढ़ती आवश्यकताओं की पूर्ति के केंद्र के रूप में शहर विकास कर रहा है.

1966 में पूर्व पंजाब के भाषाई आधार पर दो नए राज्यों : पंजाबीभाषी पंजाब और हिंदीभाषी हरियाणा के रूप में पुनर्गठन के साथ ही केंद्रशासित प्रदेश चंडीगढ़ अस्तित्व में आया. पंजाब और हरियाणा राज्य से घिरे शहर को केंद्रशासित प्रदेश की राजधानी

के अतिरिक्त पंजाब व हरियाणा, दोनों राज्यों की संयुक्त राजधानी भी बनाया गया. 1986 के पंजाब समझौते की शर्तों के अनुसार संपूर्ण केंद्रशासित प्रदेश को पंजाब में मिला लिया जाना था, जबकि फ़ाज़िल्का और अबोहर विकास खंड के कुछ हिंदीभाषी गांवों को पंजाब से हरियाणा को हस्तांतरित किया जाना था; हालांकि कई कारणों से यह योजना क्रियान्वित नहीं की जा सकी. जनसंख्या (2001) न.नि. क्षेत्र 8,08,796; ज़िला कुल 9,00,914.

चंडीदास

चंडीदास (उत्कर्ष– 14वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से 15वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक, बंगाल, भारत), एक कवि, जिनके रामी धोबिन को संबोधित प्रेमगीत मध्य काल में बेहद लोकप्रिय थे. उनके गीत मानव व दिव्य प्रेम के बीच समानता खोजते थे तथा वैष्णव व सहज्या धार्मिक आंदोलनों के प्रेरणास्रोत भी थे

चंडीदास के गीतों की लोकप्रियता के कारण उनके गीतों से मिलते–जुलते गीतों की रचना प्रारंभ हुई, जिससे कवि की सुस्पष्ट पहचान स्थापित करने में कठिनाई होती है. इसके साथ ही उनके जीवन से बहुत सी किंवदंतियां भी जुड़ गईं. उनकी कविताओं से पता चलता है कि कवि गांव के पुरोहित (बांकुरा ज़िले के छतना गांव या वीरभूम ज़िले के नन्नूर में) थे. उन्होंने निम्न जाति की रामी के प्रति अपने प्रेम को सबके सामने उद्घोषित कर परंपरा को तोड़ा था. प्रेमी उनके संबंध को दिव्य प्रेमियों, श्रीकृष्ण और राधा के आध्यात्मिक मिलन के समान पवित्र मानते थे. चंडीदास द्वारा मंदिर के कार्यों के साथ–साथ रामी के प्रति अपना प्रेम बनाए रखने के कारण उनका परिवार उनसे रुष्ट हो गया. गांव के ब्राह्मणों को प्रसन्न करने के लिए एक भोज का आयोजन किया गया, लेकिन रामी के अचानक पहुंच जाने से उलझन पैदा हो गई.

इसके बाद के घटनाक्रम को लेकर किंवदंतियों के कारण भ्रम उत्पन्न होता है. एक किंवदंती के अनुसार, चंडीदास ने विष्णु का रूप धारण कर लिया. एक अन्य के अनुसार, उन्हें पुरोहित के पद से हटा दिया गया और उन्होंने विरोध में आमरण अनशन किया, किंतु अंतिम संस्कार के समय वह पुनर्जीवित हो गए. तीसरी किंवदंती के अनुसार, (संभवतः रामी द्वारा लिखित कविताओं पर आधारित) गौर के नवाब की बेगम उनकी ओर आकृष्ट हो गई थी. इसी कारण नवाब के आदेश पर हाथी के पीछे बांधकर कोड़े लगाए जाने से उनकी मृत्यु हुई.

चंडीदास के काव्य का बाद के बांग्ला साहित्य, कला और धार्मिक चिंतन पर गहरा प्रभाव पड़ा. 16वीं शताब्दी के सहज्या पंथ के सहज्या (संस्कृत शब्द, अर्थात प्राकृतिक) आंदोलन में इंद्रियों के माध्यम से धार्मिक अनुभवों को पाने की कोशिश की गई, जिसमें निम्न जाति की स्त्री या किसी अन्य की पत्नी से सामाजिक अस्वीकृति के बावजूद, गहनतम प्रेम की प्रशंसा की गई.

चंदन

सैंटेलम वंश (कुल *सैंटेलेसी*) का एक अर्द्ध परजीवी पौधा, विशेष रूप से असली या सफ़ेद चंदन *सैंटेलम एल्बम* की खुशबूदार लकड़ी. *सैंटेलम* की क़रीब दस प्रजातियां दक्षिण–पूर्वी एशिया और दक्षिणी प्रशांत के द्वीपों में फैली हुई हैं.

कई अन्य लकड़ियों का असली चंदन के विकल्प के रूप में इस्तेमाल किया जाता है. लाल चंदन मटर कुल (*फ़ेबेसी*) के दक्षिण–पूर्वी एशियाई पेड़ *टेरोकार्पस सैंटिलिनस* की लाल रंग की लकड़ी से निकाला जाता है. यह प्रजाति किंग सॉलोमन के मंदिर में इस्तेमाल किए गए चंदन का स्रोत रही होगी.

एक असली चंदन का पेड़ लगभग 10 मीटर की ऊंचाई तक बढ़ता है; इसकी चर्मिल पत्तियां जोड़े में व शाखा पर एक–दूसरे की विपरीत दिशा में होती हैं. यह अन्य पेड़ों की प्रजातियों की जड़ों पर आंशिक रूप से परजीवी होता है. पेड़ और जड़ में पीले रंग का सुगंधित तेल होता है, जिसे चंदन का तेल कहते हैं, जिसकी गंध सफ़ेद रसदारू से बनाए गए नक़्क़ाशीदार बक्सों, फ़र्नीचर तथा पंखों जैसी वस्तुओं में सालों तक बनी रहती है. यह तेल लकड़ी के वाष्प आसवन से प्राप्त किया जाता है और इत्र, साबुन, मोमबत्ती, धूप–अगरबत्ती और परंपरागत औषधियों में इस्तेमाल किया जाता है. पिसे चंदन की लेई का उपयोग ब्राह्मण तिलक लगाने के लिए और छोटी–छोटी थैलियों में भरकर कपड़ों को सुगंधित करने के लिए करते हैं. चंदन के पेड़ों को प्राचीन काल से उनके पीले रंग के अंतःकाष्ठ के लिए उगाया जाता रहा है, जो पूर्व के दाह संस्कारों और धार्मिक कर्मकांडों में मुख्य भूमिका निभाता है. यह पेड़ बहुत धीमी गति से बढ़ता है, इसके अंतःकाष्ठ के आर्थिक रूप से उपयोगी मोटाई तक पहुचंने के लिए सामान्यतः तक़रीबन तीस साल का समय लगता है.

चंदरनगर

शहर, चंदननगर भी कहलाता है, हुगली ज़िला, दक्षिण–पश्चिमी पश्चिम बंगाल राज्य, पूर्वोत्तर भारत, हुगली नदी के ठीक पश्चिम में, कोलकाता शहरी संकेंद्रण का एक हिस्सा. यह रेल व सड़क मार्ग से कोलकाता व बर्द्धमान से जुड़ा है. 1673 में फ़्रासीसियों द्वारा बसाए और व्यावसायिक रूप से विस्तार दिए गए इस शहर पर 1757 व फिर 1794 में अंग्रेज़ों ने क़ब्ज़ा कर लिया, लेकिन 1815 में इस पर दुबारा फ़्रांस का आधिपत्य हो गया. 1949 के जनमत संग्रह के अनुसार इसका भारत में विलय हुआ. चंदरनगर में बर्द्धमान विश्वविद्यालय से संबद्ध अनेक महाविद्यालय हैं. जनसंख्या (2001) न.नि. क्षेत्र 1,62,166.

चंदेल

गोंड (जनजातीय) मूल का राजपूत वंश, जिसने उत्तर–मध्य भारत के बुंदेलखंड पर कुछ शताब्दियों तक शासन किया. प्रतिहारों के पतन के साथ ही चंदेल नौवीं शताब्दी में सत्ता में आए. उनका साम्राज्य उत्तर में यमुना (जमुना) से लेकर सागर (मध्य प्रदेश, मध्य
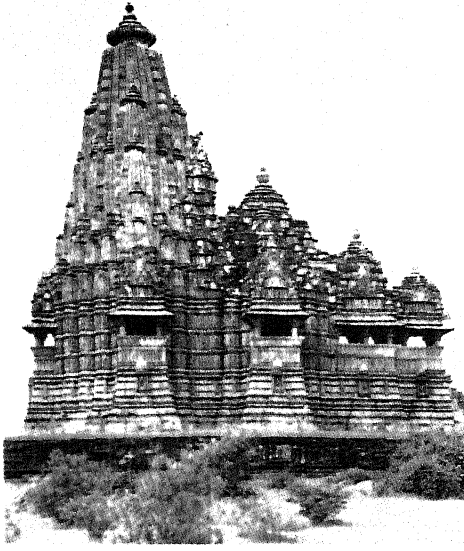
खजुराहो मंदिर, खजुराहो, चंदेलों के संरक्षण में निर्मित
सौजन्य : अमेरिकन इंस्टिट्यूट ऑफ़ इंडियन स्टडीज़, नई दिल्ली

भारत) तक और धसान नदी से विंध्य पहाड़ियों तक फैला हुआ था. सुप्रसिद्ध कलिंजर का क़िला, खजुराहो, महोबा और अजयगढ़ उनके प्रमुख गढ़ थे. चंदेल राजा नंद या गंड ने लाहौर में तुर्कों के ख़िलाफ़ अभियान में एक अन्य राजपूत सरदार जयपाल की मदद की, लेकिन ग़ज़ना (ग़ज़नी) के महमूद ने उन्हें पराजित कर दिया था. 1023 में चंदेलों ने कलिंजर गंवा दिया. 1082 में अजमेर के राजपूत शासकों ने उन्हें मात्र जागीरदारी पर पहुंचा दिया. अंततः चंदेलों का स्थान बुंदेलों ने ले लिया खजुराहो के मंदिर निर्माण के लिए ही चंदेल संभवतः सबसे अधिक विख्यात हैं, जिनकी वास्तुकला और मूर्तियों का अलंकरण विशिष्ट है.

चंद्रकीर्ति

(उत्कर्ष– 600 से 650 ई.), बौद्ध तर्कशास्त्र के प्रासंगिक मत के मुख्य प्रतिनिधि. चंद्रकीर्ति ने बौद्ध साधु नागार्जुन के विचारों पर *प्रसन्नपद* नामक प्रसिद्ध टीका लिखी. हालांकि नागार्जुन की व्याख्या में पहले से कई टीकाएं थीं, लेकिन चंद्रकीर्ति की टीका इनमें सबसे प्रामाणिक बन गई, मूल रूप से संस्कृत में संरक्षित यह एकमात्र टीका है (अन्य टीकाएं सिर्फ़ तिब्बती अनुवादों में उपलब्ध हैं).

चंद्रगिरि

नगर, दक्षिण–पूर्वी आंध्र प्रदेश राज्य, दक्षिण–पूर्वी भारत. यह चेन्नई (भूतपूर्व मद्रास) से लगभग 130 किमी पश्चिमोत्तर में स्थित है. दक्षिण भारत में विजयनगर के अराविडु वंश के साथ संबंध के कारण चंद्रगिरि ऐतिहासिक रूप से महत्त्वपूर्ण है. तालिकोटा के युद्ध (1565) में इस वंश का शासन समाप्त हो गया और विजयनगर पर दक्कन की संयुक्त मुस्लिम सेना का क़ब्ज़ा होने पर अराविडु के तत्कालीन राजा ने चेन्नई से लगभग 320 किमी पश्चिमोत्तर में स्थित पेनुकोंडा में शरण ली.

1585 में अराविडु वंश की राजधानी को चंद्रगिरि ले जाया गया, जहां 1000 ई. का एक दुर्ग मौजूद था, जिसे बेहतर बनाया गया. वहां राजाओं ने स्वयं को और अपने जीर्णशीर्ण साम्राज्य को 1646 तक बचाए रखा, जिनके बाद चंद्रगिरि पर गोलकुंडा (आधुनिक हैदराबाद) के सुल्तान का क़ब्ज़ा हो गया, फिर मुग़लों ने इस स्थान को हासिल किया (1687). 1939 में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने अराविडु वंश के अंतिम राजा के एक आश्रित से मद्रासपटनम नामक स्थान पर एक दुर्ग और कारख़ाना बनाने की इजाज़त ली, जो सेंट जॉर्ज फ़ोर्ट और मद्रास नगर के रूप में विकसित हुआ. इस दुर्ग में एक संग्रहालय है, जिसमें मूर्तिशिल्प तथा शस्त्रों का रोचक संग्रह है.

चंद्रगुप्त I

(शासनकाल, लगभग 320–335 ई.), भारतीय राजा, गुप्त साम्राज्य के संस्थापक. गुप्त वंश के पहले ज्ञात शासक श्रीगुप्त के पोते चंद्रगुप्त I, जिनका प्रारंभिक जीवन अज्ञात है, मगध (दक्षिण बिहार) के स्थानीय प्रमुख बने. तीसरी शताब्दी के अंतिम वर्षों में भारत में अनेक राजशाही और ग़ैर राजशाही स्वतंत्र राज्य थे. ऐसा लगता है कि गुप्त और लिच्छवि, जिनका नियंत्रण उत्तरी बिहार और शायद नेपाल पर था, ने पड़ोसी राज्यों पर भी शासन किया. चंद्रगुप्त ने लिच्छवि वंश की कुमारदेवी के साथ 308 में विवाह करके अपनी शक्ति और साम्राज्य का विस्तार किया. उन्होंने सोने के विशेष सिक्के जारी किए, जिनमें एक तरफ़ राजा और रानी व दूसरी तरफ़ सिंह पर विराजमान एक देवी के साथ 'लिच्छवि' शब्द अंकित था. 320 से शुरू हुए और अनेक शताब्दियों तक मान्य, गुप्त युग का आरंभ चंद्रगुप्त I के राज्याभिषेक या फिर उनके विवाह से माना जाता है. चंद्रगुप्त I के शासनकाल के अंत तक गुप्त साम्राज्य संभवतः प्रयाग (आधुनिक इलाहाबाद) और साकेत (आधुनिक अयोध्या) सहित पूर्वी उत्तर प्रदेश की ओर फैल चुका था. उन्होंने 'महाराजाधिराज' की उपाधि ग्रहण की और संभवतः अपने पुत्र समुद्रगुप्त के लिए विजय अभियान की आधारशिला रखी.

चंद्रगुप्त I की सीथियन विजय की बात का शायद कोई आधार नहीं है, न ही इस बात की संभावना है कि उन्होंने लिच्छवि साम्राज्य के राजा को मारकर विजय पाई या चंद्रगुप्त के उत्तराधिकारी ने उनकी हत्या की. पारंपरिक तौर पर माना जाता है कि सिंहासन त्याग रहे चंद्रगुप्त I ने अपने सभासदों और परिवार के सदस्यों की बैठक आयोजित की, जिसमें समुद्रगुप्त को औपचारिक रूप से अपने पिता का उत्तराधिकारी चुना गया.

चंद्रगुप्त II

विक्रमादित्य (शासनकाल, लगभग 380–415) के नाम से भी जाना जाता है, उत्तर भारत के शक्तिशाली शासक, समुद्रगुप्त के पुत्र और चंद्रगुप्त I के पोते. परंपरा के अनुसार, उन्होंने अपने कमज़ोर बड़े भाई की हत्या कर सत्ता हासिल की थी. उन्हें विरासत में विशाल साम्राज्य मिला और अपने पिता की विस्तारवादी नीति को उन्होंने जारी रखा. 388 से 409 तक उन्होंने पश्चिमी भारत में गुजरात व सौराष्ट्र तथा मध्य भारत में राजधानी उज्जैन सहित मालवा को अपने अधीन कर लिया. ये क्षेत्र मूल रूप से मध्य एशियाई सीथियन जनजाति के वंशज शक प्रमुखों द्वारा शासित थे. उन्होंने अपनी बेटी प्रभावती का विवाह उत्तरी दक्कन के वाकाटक वंशी राजा रुद्रसेन II से किया. रुद्रसेन की मृत्यु के बाद प्रभावती संरक्षक के रूप में कार्य करने लगी और इस प्रकार दक्षिण में गुप्त साम्राज्य का प्रभाव बढ़ गया. चंद्रगुप्त II ने कर्नाटक के एक साम्राज्य के साथ भी संभवतः वैवाहिक संबंध स्थापित किए. उन्हें सामान्यतः दिल्ली की कुवत–उल–इस्लाम मस्जिद में लोहे के स्तंभ पर उत्कीर्ण संस्कृत अभिलेख में प्रशंसित राजा चंद्र माना जाता है.

चंद्रगुप्त ने सोने और चांदी, दोनों के सिक्के जारी किए, जिनमें से कुछ पर उनकी उपाधि विक्रमादित्य (पराक्रम का सूर्य) अंकित है. उनका संबंध उज्जैन और पाटलिपुत्र से रहा और उनके शासनकाल में संभवतः दोनों नगर काफ़ी समृद्ध बने. पारंपरिक तौर पर उन्हें ज्ञान का संरक्षक माना जाता है. उनके दरबार के विद्वानों में खगोलशास्त्री वराहमिहिर और संस्कृत कवि तथा नाटककार कालिदास थे. चीनी बौद्ध यात्री फ़ाह्यान ने चंद्रगुप्त के शासनकाल के दौरान भारत में छह वर्ष (405–411) बिताए और उनकी प्रशासन प्रणाली, दान एवं औषधि वितरण के उपायों व लोगों की धर्मनिष्ठता की खुलकर सराहना की, हालांकि फ़ाह्यान को राजा के विषय में सीधी जानकारी नहीं थी. चंद्रगुप्त एक श्रद्धावान वैष्णव थे, लेकिन बौद्धों व जैनों, दोनों के प्रति भी वह सहिष्णु थे.

चंद्रगुप्त मौर्य

(शासनकाल, 321–297 ई.पू.), मौर्य साम्राज्य के संस्थापक तथा भारत के ज़्यादातर हिस्सों को एक प्रशासन के अंतर्गत संगठित करने वाले प्रथम सम्राट. उन्हें देश को कुप्रशासन से बचाने और विदेशी प्रभुत्व से मुक्त करवाने का श्रेय जाता है, उन्होंने अपनी अकाल पीड़ित जनता के दुःख में अन्न त्यागकर मृत्यु का वरण किया.

सीमा संघर्ष में पिता की मृत्यु के बाद निराश्रित परिवार में चंद्रगुप्त का जन्म हुआ. वह प्रवासी मौर्यों के मुखिया थे. उनके मामा ने उन्हें एक चरवाहे के पास छोड़ दिया, जिसने उन्हें अपने पुत्र की तरह पाला. बाद में उन्हें एक शिकारी को बेच दिया गया, जहां उन्हें पशुओं की देखभाल करनी होती थी. एक ब्राह्मण कूटनीतिज्ञ, चाणक्य (कौटिल्य भी कहलाते हैं) द्वारा ख़रीदकर उन्हें तक्षशिला (अब पाकिस्तान में) ले जाया गया, जहां उन्होंने सैन्य और सौंदर्यशास्त्रीय कलाओं की शिक्षा प्राप्त की. एक जनश्रुति के अनुसार, सिकंदर महान से एक मुलाक़ात के बाद जब वह सो रहे थे, तब एक शेर ने उनके शरीर को चाटते हुए उन्हें धीरे से जगा दिया और उनमें राजकीय गरिमा की आशा को प्रोत्साहित किया. चाणक्य जैसे सलाहकार की सहायता से उन्होंने सैनिकों को एकत्रित किया, जनसमर्थन अर्जित किया और नंद वंश के सेनापति भद्रसाल के नेतृत्व वाली सेना को एक रक्तरंजित युद्ध में हराकर नंद वंश की निरंकुशता को समाप्त किया.

चंद्रपुर

भूतपूर्व चंदा, शहर, पूर्वी महाराष्ट्र राज्य, पश्चिम भारत, वर्धा नदी की एक सहायक नदी के तट पर स्थित. चंद्रपुर का अर्थ है, 'चंद्रमा का घर.' 12वीं से 18वीं शताब्दी तक चंद्रपुर गोंड वंश की राजधानी था. बाद में नागपुर के मराठा भोंसले ने इसे जीत लिया. 1854 से 1947 में भारत के स्वतंत्र होने तक यह ब्रिटिश मध्य प्रांत का हिस्सा था.

प्रमुख रेल तथा सड़क मार्ग पर स्थित यह शहर आसपास के क्षेत्रों में उगने वाले कपास, अनाज और अन्य फ़सलों का वाणिज्यिक केंद्र है. स्थानीय खनिजों पर आधारित उद्योगों में कोयले की कई खानें तथा शीशे का सामान बनाने के उद्योग शामिल हैं.

यह शहर रेशम के कपड़े और अलंकृत चप्पलें जैसी विलास–वस्तुओं के उत्पादन के लिए भी विख्यात है. यहां चंद्रपुर इंजीनियरिंग कॉलेज है. चंद्रपुर के उत्तर में ताडोबा राष्ट्रीय उद्यान स्थित है. इसके 45 किमी दक्षिण में मानिकगढ़ वन पर्यावरण सैरगाह है. यहां कई प्रकार के बांस व दूसरे वृक्ष, बाघ, तेंदुआ, जंगली कुत्ते, भालू, गौर, सांबर, मुंतजाक हिरन जैसे जानवर व अनेक प्रजातियों के जंगली पक्षी पाए जाते हैं.

चंद्रपुर ज़िले का पर्वतीय क्षेत्र वनाच्छादित है और यहां जनजातीय समुदाय बसे हुए हैं. बल्लारपुर में एक महत्त्वपूर्ण ताप विद्युतगृह है; यहां स्थित काग़ज़ निर्माण उद्योग भी विख्यात है. जनसंख्या (2001) न.पा. क्षेत्र 2,97,612.

चंद्रशेखर

चंद्रशेखर

(ज.–17 अप्रै. 1927, इब्राहीम पट्टी, बलिया, उत्तर प्रदेश, भारत), समाजवादी नेता, नवंबर 1990 से जून 1991 तक भारत के प्रधानमंत्री.

एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार में जन्मे चंदशेखर की प्रारंभिक शिक्षा गांव में ही हुई और 1951 में इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से राजनीतिशास्त्र में एम.ए. किया. छात्र जीवन से ही राजनीति में सक्रिय रहे चंद्रशेखर का रुझान प्रारंभ से ही समाजवादी विचारधारा की ओर रहा और आचार्य नरेंद्र देव और जयप्रकाश नारायण से वह काफ़ी प्रभावित रहे. 1962 में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के टिकट पर वह पहली बार राज्यसभा के लिए चुने गए. बाद में वह कांग्रेस पार्टी में शामिल हो गए और अपनी निर्भिकता व बेबाकी के लिए 'युवा तुर्क' कहलाए, लेकिन 1973 में जयप्रकाश नारायण के आंदोलन का समर्थन करने के कारण तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी से मतभेद हुआ और वह आपातकाल (25 जून 1975) की घोषणा के बाद गिरफ़्तार कर लिए गए.

1977 में जनता पार्टी के टिकट पर चंद्रशेखर पहली बार लोकसभा के लिए बलिया निर्वाचन क्षेत्र से चुने गए और 1977 में वह जनता पार्टी के अध्यक्ष भी बने. 1983 में कन्याकुमारी से नई दिल्ली तक की उनकी 'भारत यात्रा' काफ़ी चर्चित हुई. 1990 में भाजपा द्वारा सरकार से समर्थन वापस लेने के कारण राष्ट्रीय मोर्चा सरकार का पतन हो गया और राष्ट्रपति ने मध्यावधि चुनाव टालने के लिए नई सरकार बनाने की सभी संभवनाओं को टटोलने के बाद 10 नवंबर 1990 को श्री चंद्रशेखर को प्रधानमंत्री पद की शपथ दिलाई, जिनकी पार्टी को कांग्रेस ने समर्थन दिया था. चंद्रशेखर एकमात्र ऐसे प्रधानमंत्री रहे हैं, जो इस पद पर पहुंचने से पहले केंद्र या राज्य में कभी मंत्री नहीं रहे. शिष्ट संसदीय आचरण के लिए उन्हें सर्वश्रेष्ठ सांसद के सम्मान से सम्मानित किया गया है.

चंद्रशेखर, सुब्रह्मण्यम

(ज.–19 अक्तू. 1910, लाहौर {वर्तमान पाकिस्तान}; मृ.–21 अग. 1995, शिकागो, इलिनोएस, अमेरिका), भारतीय मूल के अमेरिकी खगोल भौतिकविद, जिन्हें विशालकाय नक्षत्रों के
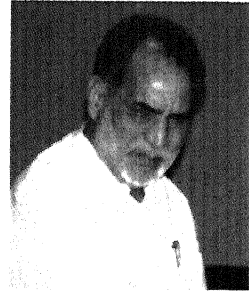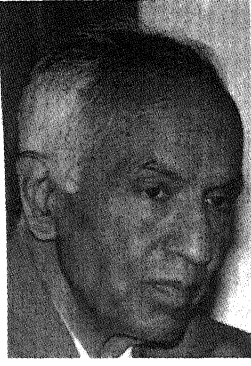
सुब्रह्मण्यम चंद्रशेखर
सौजन्य : *द हिंदू*

परवर्ती विकास चरणों पर, आज स्वीकृत सिद्धांत प्रतिपादित करने के लिए विलियम ए. फ़ाउलर के साथ 1983 में भौतिक विज्ञान का नोबेल पुरस्कार दिया गया.

चंद्रशेखर, सर चंद्रशेखर वेंकट रमन के भतीजे थे, जिन्हें 1930 में भौतिकी का नोबेल पुरस्कार मिला था. उनकी शिक्षा–दीक्षा प्रेज़िडेंसी कॉलेज, मद्रास विश्वविद्यालय और केंब्रिज के ट्रिनिटी कॉलेज में हुई. 1933 से 1937 तक वह ट्रिनिटी में पदासीन भी रहे.

1930 के दशक के आरंभ तक वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुंच चुके थे कि समूचे हाइड्रोजन को हीलियम में बदल देने के बाद तारों की ऊर्जा का क्षय होने लगता है और वे अपने ही गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव से सिकुड़ने लगते हैं. इन्हें 'सफ़ेद बौना' तारा कहा जाता है और ये सिकुड़कर लगभग पृथ्वी के आकार के हो जाते हैं तथा उनके अणुओं के इलेक्ट्रॉन और केंद्रक बेहद ऊंचे घनत्व की अवस्था में इकट्ठा हो जाते हैं. चंद्रशेखर ने इसके बारे में खोज की और एक सीमा का निर्धारण किया, जिसे *चंद्रशेखर लिमिट* कहते हैं. इसके अनुसार, सूर्य से 1.44 गुना अधिक द्रव्यमान वाला कोई भी तारा 'सफ़ेद वामन' (व्हाईट ड्वार्फ़) नहीं बनता, बल्कि उसमें संकुचन जारी रहता है और अधिनवतारा (सुपरनोवा) विस्फोट में इसका गैसीय आवरण जलता रहता है तथा यह न्यूट्रॉन तारा बन जाता है. इससे भी अधिक विशालकाय तारों में संकुचन की प्रक्रिया जारी रहती है और वे 'ब्लैक होल' बन जाते हैं. इन गणनाओं से अंततः सुपरनोवा, न्यूट्रॉन तारों और ब्लैक होल को समझने में मदद मिली.

चंद्रशेखर शिकागो विश्वविद्यालय में काम करने लगे और खगोल भौतिक विज्ञान के सहायक प्रोफ़ेसर (1938) से खगोल भौतिक विज्ञान के मॉर्टन डी. हल विशिष्ट प्रोफ़ेसर के पद तक पहुंचे तथा 1953 में अमेरिकी नागरिकता प्राप्त की. उन्होंने परिमंडल में विकिरण और सूर्य की सतह पर संवहन से ऊर्जा के स्थानांतरण पर महत्त्वपूर्ण काम किया. उन्होंने ब्लैक होल के लिए गणितीय सिद्धांत विकसित करने का प्रयास किया, जिसका उल्लेख *द मैथेमेटिकल थ्योरी ऑफ़ ब्लैक होल्स* (1983) में है.

चंद्रशेखर को 1953 में रॉयल एस्ट्रोनॉमिकल सोसाइटी स्वर्ण पदक और 1962 में रॉयल सोसाइटी का रॉयल मेडल प्रदान किया गया. उनकी अन्य पुस्तकें हैं– *एन इंट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ़ स्टेलर स्ट्रक्चर* (1939), *प्रिंसिपल्स ऑफ़ स्टेलर डायनैमिक्स* (1942), *रेडिएटिव ट्रांसफ़र* (1950), *हाईड्रोमैगनेटिक स्टेबिलिटी* (1961) तथा *ट्रूथ ऐंड ब्यूटी : एस्थेटिक्स ऐंड मोटिवेशन्स इन साइंस* (1987).

चंपक

(*माइकेलिया चंपका*), मैग्नोलिया (*मैग्नोलिएसी*) परिवार का एशियाई वृक्ष. लगभग 30 मीटर ऊंचे चमकदार पत्तों वाले पिरामिड के आकार के वयस्क वृक्षों में तारों के आकार के खुशबूदार पीले फूल होते हैं, जो चंपा इत्र और पीले रंजक के निर्माण में काम आते

हैं. उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में प्रायः चौड़ी सड़कों के किनारे इसे लगाया जाता है और हिंदू मंदिरों के प्रांगण में भी इसे उगाया जाता है, क्योंकि यह भगवान विष्णु के लिए पवित्र माना जाता है. इस वृक्ष की छाल चिकनी और स्लेटी रंग की होती है, सदाबहार पत्ते अंडाकार और 25 सेमी लंबे होते हैं और लगभग 6.5 सेमी के पीले से नारंगी रंग के संकरी पंखुड़ियों वाले फूल वसंत और शरद ऋतु में खिलते हैं. सिंदूरी या भूरे रंग के बीज लंबी डंडियों में भरे रहते हैं. चंपा की लकड़ी पर अच्छी तरह से पॉलिश की जा सकती है और यह नाव, ढोल तथा धार्मिक प्रतिमाएं बनाने के काम आती है. भारत में, जहां इसे पवित्र माना जाता है, शायद ही कभी इसे काटा जाता हो. इससे संबंधित प्रजाति *माइकेलिया कॉम्प्रेसा* है, जो 12 मीटर ऊंचा जापानी वृक्ष है, जिसमें 2.5 सेमी के खुशबूदार पीले फूल होते हैं.

चंपक (*माइकेलिया चंपका*)
फ़ोटो : डब्ल्यू.एच. हॉज

चंपा

प्राचीन भारतीय नगर, अंग राज्य (आधुनिक बिहार के पूर्वी हिस्से में स्थित) की राजधानी. मुंगेर के पूर्व में गंगा नदी के दक्षिणी तट पर स्थित इसी नाम के दो गांवों के रूप में इसकी पहचान थी. इस जगह के पुरातात्विक अवशेषों के बारे में कोई जानकारी नहीं है.

प्राचीन बौद्ध साहित्य में अक्सर चंपा की चर्चा बुद्ध के समय (छठी से पांचवीं शताब्दी ई.पू.) में उत्तर भारत के छह प्रमुख शहरों में की गई है. दूर से होने वाले व्यापार का यह केंद्र था और इसके नाम पर अन्नाम (वियतनाम) में एक राज्य का भी नाम पड़ा.

चंबल नदी

नदी, उत्तर भारत. चंबल यमुना नदी की मुख्य सहायक नदी है और मध्य प्रदेश राज्य के पश्चिम में विंध्य पर्वतमाला के ठीक दक्षिण में महू से निकलती है. अपने उद्गम से उत्तर में यह राजस्थान राज्य के दक्षिण–पूर्वी भाग में बहती है. पूर्वोत्तर में मुड़कर यह कोटा के पृष्ठ भाग तथा राजस्थान–मध्य प्रदेश की सीमा के समानांतर बहती है; पूर्व–दक्षिणपूर्व में सरककर यह उत्तर प्रदेश–मध्य प्रदेश सीमा के एक हिस्से का निर्माण करती है और उत्तर प्रदेश में बहते हुए 900 किमी की दूरी तय करके यमुना नदी में मिल जाती है. बनास, काली सिंध, शिप्रा और पार्वती इसकी मुख्य सहायक नदियां हैं. चंबल के निचले क्षेत्र में 16 किमी लंबी पट्टी, बीहड़ क्षेत्र है, जो त्वरित मृदा अपरदन का परिणाम है और मृदा संरक्षण का एक प्रमुख परियोजना स्थल है.

चंबा

नगर, पश्चिमोत्तर हिमाचल प्रदेश राज्य, उत्तरी भारत. यह नगर दो पर्वत चोटियों के बीच रावी नदी द्वारा निर्मित ऊंचे टीले पर स्थित है. निचले टीले पर प्रसिद्ध *चौगान* है,
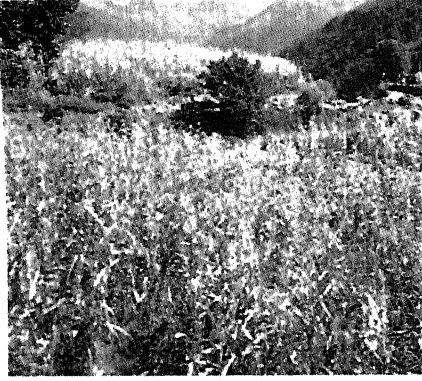
चंबा के पहाड़ी इलाके में मक्का के खेत, हिमाचल प्रदेश
फोटो : बी. भंसाली– शोस्टल/ई.बी. इंकॉ.

जहां जन समारोह व उत्सव आयोजित किए जाते हैं. यहीं सरकारी कार्यालय और भूरी सिंह संग्रहालय भी स्थित है. ऊंचे टीले पर आवासीय क्षेत्र हैं और अधिक ऊंची ढलानों पर भवन बनाए गए हैं. चंबा में कपड़ा बुनाई और औषधि निर्माण सहित कुछ उद्योग हैं और यहां कृषि उत्पाद का सक्रिय व्यापार भी होता है. यह क्षेत्र 10वीं सदी के मंदिरों के लिए विख्यात है. आसपास के क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था भी पूर्ण रूप से कृषि आधारित है और यहां बड़े वनाच्छादित क्षेत्र भी हैं. स्वतंत्र चंबा राज्य की स्थापना छठी शताब्दी में हुई थी और 1846 में ब्रिटिश भारत का हिस्सा बनने से पहले यह क्षेत्र विभिन्न कालों में कश्मीर, मुग़ल और सिक्ख शासन के अंतर्गत रहा. 1948 में इसे हिमाचल प्रदेश में मिला लिया गया. जनसंख्या (2001) न.पा. क्षेत्र 20,312.

चकमा

दक्षिण–पूर्वी बांग्लादेश के चटगांव क्षेत्र में निवास करने वाली सबसे बड़ी जनजातीय जनसंख्या, 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में इनकी संख्या 3,50,000 थी. चकमा कसलांग और मध्य कर्णफूली घाटी में निवास करते हैं और प्रजातीय रूप से दक्षिण–पश्चिम बर्मा के मंगोल अराकानियों से संबंधित हैं; ये मग, टीपरा और तेंचुंग्य जैसी छोटी जनजातियों से बहुत अधिक समानता लिए हुए जीवन व्यतीत करते हैं. अंशतः बंगाली संस्कृति को ग्रहण करने से उनकी मौलिक संस्कृति धीरे–धीरे धुंधली पड़ती जा रही है. चकमाओं ने अपनी मौलिक बर्मी भाषा को त्याग दिया है और अब वे एक बांग्ला बोली बोलते हैं. राज्य व्यवस्था के अभाव में चकमाओं ने वंश व्यवस्था द्वारा अपनी सुरक्षा की है, जो चटगांव क्षेत्र की अन्य जनजातियों में नहीं पाया जाता. ये मिश्रित झूम और स्थायी कृषि करते हैं और चावल के साथ–साथ बाजरा, मक्का और सरसों उगाते हैं. पारंपरिक तौर पर कृषि के लिए ये लोग कुदाल का उपयोग करते थे, किंतु हाल में इन्होंने हल का प्रयोग शुरू किया है. महिलाएं अपने परिवार की आय में मदद करने और पहनने के लिए एक विशेष प्रकार का कपड़ा बुनती हैं. जीववाद, हिंदू धर्म और बौद्ध धर्म का पालन करने वाले चकमा अब लगभग पूर्ण रूप से बौद्ध हो गए हैं. बौद्ध परंपरा, जैसे वर के गांव में वधू के आगमन पर सूअर की बलि देना, अब सूअर का मांस खाने जैसे रिवाजों के साथ घुलमिल गई है. यह एक ऐसी प्रथा है, जिसे बंगाली घृणा से देखते हैं.

चक्र

(संस्कृत शब्द, अर्थात पहिया), शरीर के कई तथाकथित 'ऊर्जा केंद्रों' में से एक, जिनका हिंदू धर्म और तांत्रिक बौद्ध धर्म के कुछ रूपों की मनोवैज्ञानिक–शारीरिक प्रक्रियाओं में प्रमुख स्थान है. चक्रों को केंद्र बिंदु माना जाता है, जिस पर ऊर्जा और शारीरिक प्रक्रियाएं मिलती हैं तथा एक–दूसरे से अभिक्रिया करती हैं. मनुष्य के शरीर के 88

हज़ार काल्पनिक चक्रों में से छह प्रमुख चक्र लगभग रीढ़ की हड्डी या मेरूरज्जु के आसपास स्थित हैं और खोपड़ी के शीर्ष पर स्थित एक अन्य चक्र सबसे महत्त्वपूर्ण है. इन सात प्रमुख चक्रों में (बौद्ध धर्म में चार) से प्रत्येक चक्र विशेष रंग, आकार, ज्ञानेंद्री, प्राकृतिक तत्त्व, देवता और मंत्र से संबंधित है. इनमें से सबसे निचला चक्र (मूलाधार) रीढ़ की हड्डी के अंत में स्थित है और सबसे ऊपर स्थित (सहस्रार) चक्र, जो सिर के शीर्ष पर स्थित है, सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है. मूलाधार एक रहस्यात्मक दैवी शक्ति (कुंडलिनी) को घेरे हुए है और यौगिक तकनीकों के ज़रिये मनुष्य इसे क्रमशः एक–एक चक्र ऊपर उठाता हुआ सहस्रार तक पहुंचता है, जिसके परिणामस्वरूप आत्मदीप्ति प्राप्त होती है.
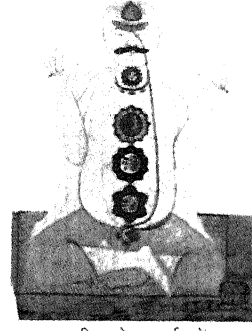
चक्र, शरीर के ऊर्जा केंद्र

चक्रवर्ती

संस्कृत, विश्व शासक की प्राचीन भारतीय अवधारणा, जो संस्कृत के चक्र, अर्थात 'पहिया' और वर्ती, यानी 'घूमता हुआ' से उत्पन्न हुआ है. इस प्रकार, चक्रवर्ती को ऐसा शासक माना जा सकता है, 'जिसके रथ का पहिया हर जगह घूमता हो' या 'जिसकी गति को कोई रोक न सके.' पहिए के घूमने को धार्मिकता और नैतिक सत्ता के चक्र– धर्म से भी जोड़ा जा सकता है, जैसा बौद्ध धर्म में होता है. बुद्ध का सारनाथ का उपदेश विधि का घूमता हुआ चक्र है और एक चक्रवर्ती से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने राज्य में सदाचारिता या धार्मिकता के चक्र का घूर्णन सुनिश्चित करेगा.

बौद्ध और जैन स्रोतों में तीन प्रकार के धर्मनिरपेक्ष चक्रवर्तियों का उल्लेख है : *चक्रवाल चक्रवर्ती,* प्राचीन भारतीय सृष्टिशास्त्र में वर्णित सभी चार महाद्वीपों पर राज करने वाला राजा; *द्वीप चक्रवर्ती,* सिर्फ़ एक महाद्वीप पर राज करने वाला राजा, जो पहले वाले से कम शक्तिशाली होता है; और *प्रदेश चक्रवर्ती,* एक महाद्वीप के किसी हिस्से के लोगों पर शासन करने वाला राजा, जो स्थानीय राजा का समकक्ष होता है. 'चक्रवाल चक्रवर्ती' की उपाधि ग्रहण करने वाले सबसे पहले सम्राट अशोक (तीसरी शताब्दी ई.पू.) थे. अशोक ने अपने अभिलेखों में चक्रवर्ती उपाधि का उल्लेख नहीं किया है. बाद के साहित्य में उनका इस रूप में वर्णन मिलता है. उस काल के बौद्ध और जैन दार्शनिकों ने 'चक्रवाल चक्रवर्ती' की अवधारणा को सदाचारी और नैतिक क़ानूनों को बनाए रखने वाले राजा के साथ, जोड़ दिया. धर्मनिरपेक्षता में 'चक्रवर्ती' को बुद्ध के समकक्ष माना जाता है, उन्हें बुद्ध के समान ही कई गुणों से जोड़ा जाता है.

चटनी

कई भारतीय व्यंजनों के साथ परोसी जाने वाली स्वादिष्ट लेई. चटनी बहुत तेज़ मसालों या उनके मिश्रणों और फलों, सब्ज़ियों या जड़ी–बूटियों के मिश्रण से तैयार की जा सकती है. व्यावसायिक तौर पर बनने वाली चटनियां सामान्यतः आम या अन्य फलों, प्याज़, किशमिश, चीनी और मसालों को पकाकर तैयार की जाती है. भारतीय व्यंजन

एक या अधिक चटनियों के साथ परोसे जाते हैं. पश्चिम में चटनियां ठंडे मांस के साथ भी खाई जाती हैं.

बंकिमचंद्र चटर्जी
सौजन्य : *हिंदुस्तान टाइम्स*

चटर्जी, बंकिमचंद्र

बांग्ला नाम बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय, (ज.–26/27 जून 1838, नैहाटी के पास, बंगाल, भारत; मृ.–8 अप्रै. 1894, कलकत्ता {वर्तमान कोलकाता}), भारतीय लेखक, जिनके उपन्यासों ने बांग्ला भाषा में गद्य को साहित्यिक माध्यम के रूप में सुस्थापित कर दिया और भारत में यूरोपीय प्रतिमान के आधार पर कथा साहित्य की एक शैली के सृजन में योगदान दिया.

एक रूढ़िवादी ब्राह्मण परिवार में जन्मे बंकिमचंद्र की शिक्षा–दीक्षा हुगली कॉलेज तथा कलकत्ता के प्रेज़िडेंसी कॉलेज एवं कलकत्ता विश्वविद्यालय में हुई थी और वह इसके प्रारंभिक स्नातकों में से एक थे. 1858 से लेकर 1891 में सेवानिवृत्त होने तक उन्होंने इंडियन सिविल सर्विस में डिप्टी मजिस्ट्रेट के पद पर काम किया.

बंकिमचंद्र की युवावस्था की कुछ रचनाएं एक समाचार पत्र *संवाद प्रभाकर* में प्रकाशित हुई थीं और 1858 में उन्होंने *ललित ओ मानस* नामक कविता संग्रह प्रकाशित किया. कुछ अर्से तक उन्होंने अंग्रेज़ी में भी लिखा तथा उनका उपन्यास *राजमोहन्स वाइफ़* 1864 में धारावाहिक रूप से *इंडियन फ़ील्ड* में प्रकाशित हुआ. उनकी पहली उल्लेखनीय बांग्ला रचना *दुर्गेशनंदिनी* नाम का उपन्यास था, जिसमें एक राजपूत नायक और बंगाली नायिका का चित्रण है. अपने आप में यह सामान्य स्तर का है, लेकिन दार्शनिक देबेंद्रनाथ टैगोर के शब्दों में, इसने बांग्लाभाषी हृदय को झकझोर दिया और इस प्रकार बांग्ला उपन्यास का जन्म हुआ. हृदयविदारक तांत्रिक साधनाओं की पृष्ठभूमि युक्त प्रेम कथा *कपालकुंडला* का प्रकाशन 1866 में; और बंगाल में प्रथम मुस्लिम आक्रमण के कालखंड का चित्रण करने वाली *मृणालिनी* का प्रकाशन 1869 में हुआ.

बंकिमचंद्र के युगप्रवर्ती समाचार पत्र *बंगदर्शन* का प्रकाशन 1872 में आरंभ हुआ और बाद के अपने कुछ उपन्यासों को उन्होंने इसमें धारावाहिक रूप में प्रकाशित किया. विधवा–विवाह की समस्या पर आधारित *विषवृक्ष* और *इंदिरा* का प्रकाशन 1873 में हुआ; *युगालांगुरिया* का 1874 में; *राधारानी* तथा *चंद्रशेखर* 1875 में; *रजनी* 1877 में; *कृष्णकांतेर विल*, जिसे लेखक ने अपना महानतम उपन्यास माना, का प्रकाशन 1881 में हुआ; 1882 में *आनंदमठ* प्रकाशित हुआ, जिसमें ईस्ट इंडिया कंपनी की मुस्लिम शक्तियों के ख़िलाफ़ संन्यासियों के विद्रोह का चित्रण है; 1884 में डकैतों की पृष्ठभूमि पर आधारित *देवी चौधरानी* और अंततः 1886 में वैवाहिक उलझाव तथा मुसलमानों के आतंक के ख़िलाफ़ हिंदुओं के संघर्ष को चित्रित करने वाले उपन्यास *सीताराम* का प्रकाशन हुआ.

बंकिमचंद्र के उपन्यास पढ़ने में रोचक हैं, लेकिन इनमें से कुछ को संरचनात्मक रूप से दोषपूर्ण माना जाता है. अलग–अलग खंड सही ढंग से नहीं जुड़ सके, इसकी

जिम्मेदारी किसी हद तक इनके धारावाहिक प्रकाशन पर भी थी. उपन्यासों के कथानक का विकास बहुधा संयोग या परालौकिक हस्तक्षेप पर निर्भर करता है और चरित्र चित्रण पर अक्सर प्रबल उपदेशात्मक उद्देश्य हावी हो जाता है. फिर भी बंकिम की उपलब्धियां इन तकनीकी ख़ामियों से कहीं बढ़कर हैं. उनके समकालीनों के लिए उनका स्वर, मानो पैग़ंबर का स्वर था; उनके वीर हिंदू नायक उनकी देशभक्ति और जातिगत अभिमान की भावना को जगा देते थे. उनमें राष्ट्रवाद और हिंदूवाद एकाकार हो गया था और उनके विश्वास का सार उनके उपन्यास *आनंदमठ* के गीत *वंदेमातरम्* में रूपायित हो गया, जो आगे चलकर हिंदू भारत के स्वाधीनता संघर्ष का मूलमंत्र और नारा बन गया.

चमार

उत्तर भारत में बहुतायत में पाई जाने वाली जाति, जिसका वंशानुगत व्यवसाय, चमड़ा साफ़ करना है; इस नाम की उत्पत्ति संस्कृत शब्द चर्मकार या 'चमड़े का काम करने वाला' से हुई है. सुसंगठित पंचायतों से 150 से अधिक उपजातियों की पहचान होती है. चूंकि उनका कार्य उन्हें मृत पशुओं का व्यापार करने पर मजबूर करता है, चमार एक अत्यधिक अपवित्र जाति के रूप में पहचान के कलंक से पीड़ित हुए हैं. सामान्यतः उनका निवास हिंदू जाति के गांवों के बाहर होता है. प्रत्येक बस्ती का एक मुखिया (प्रधान) होता है और बड़े शहरों में प्रधान की अध्यक्षता में ऐसे एक से अधिक समुदाय होते हैं. विधवा को पति के छोटे भाई से या उसी उपजाति के किसी विधुर से पुनर्विवाह की अनुमति है. जाति का एक हिस्सा संत शिव नारायण की शिक्षा का पालन करता है और उनका उद्देश्य अपनी सामाजिक स्थिति को ऊपर उठाने के लिए अपने रीति–रिवाज़ों का शुद्धिकरण करना है. आज भी कई लोग चर्मकारी का परंपरागत व्यवसाय करते हैं और बहुत से लोग खेतिहर मज़दूर हैं.

चष्टन

एक शक (सीथियन के लिए संस्कृत शब्द) क्षत्रप, जिन्होंने उपमहाद्वीप के पश्चिमी हिस्से (गुजरात और सिंध सहित) में एक साम्राज्य की स्थापना की, जो दो–तीन शताब्दियों तक सत्ता में रहा. टॉलेमी ने दूसरी शताब्दी के दौरान चष्टन साम्राज्य का उल्लेख किया है. संभवतः उन्होंने दक्षिण में दक्कन के अपने समकालीन सातवाहन साम्राज्य का दमन करके अपनी शक्ति बढ़ाई. उनके पोते रुद्रदमन I ने 130 ई. के बाद शासन किया, जो इस साम्राज्य के सबसे महत्त्वपूर्ण शासक थे. भर्तृदमन के पुत्र विश्वसेन की मृत्यु के साथ 304–305 में इस साम्राज्य का पतन हो गया. चौथी शताब्दी में इस साम्राज्य के महत्त्व पर संदेह है, लेकिन इसके एक सदस्य, संभवतः रुद्रसिम्हा III की पहचान शक राजा के रूप में की गई, जिनकी चंद्रगुप्त II (गुप्त साम्राज्य) ने 388 ई. में शक साम्राज्य की राजधानी को तहस–नहस करने के दौरान हत्या कर दी थी.

चांडाल

भारत में लोगों का एक वर्ग, जिसे सामान्यतः जाति से बाहर तथा अछूत माना जाता है. प्राचीन विधि संहिता *मनु स्मृति* के अनुसार, इस वर्ग का उदय एक ब्राह्मण (वर्ण या चतुष्वर्गीय प्रणाली में सबसे उच्च वर्ग) महिला और एक शूद्र (सबसे निम्न वर्ग) पुरुष के मिलाप से हुआ था. आधुनिक समय में बंगाल में कृषक, मछुआरे और नाविकों की जाति विशेष के लिए इस शब्द का उपयोग किया जाता है, वह अधिकतर नामशूद्र कहलाते हैं. कुछ विद्वानों का मत है कि नामशूद्र की उत्पत्ति बिहार की राजमहल पहाड़ियों में निवास करने वाली एक आदिम जनजाति से हुई है.

चाईबासा

नगर, झारखंड राज्य, पूर्वोत्तर भारत. यह सुवर्णरेखा नदी की सहायक रारू नदी के पश्चिमी तट पर स्थित है. सड़क मार्ग और कृषि–व्यापार केंद्र के रूप में विख्यात चाईबासा खनन उद्योग (विशेषकर क्रोमियम अयस्क) में भी बहुत हद तक लगा हुआ है. यहां शल्क–लाक्षा (चपड़ी) का निर्माण होता है और रेशम उत्पादन भी एक महत्त्वपूर्ण गतिविधि है. चाईबासा में 1875 में नगरपालिका का गठन हुआ. जनसंख्या (2001) 63,615.

चाणक्य

(उत्कर्ष– तीसरी शताब्दी ई.पू.), कौटिल्य या विष्णुगुप्त के नाम से भी प्रसिद्ध, ब्राह्मणवादी राजनेता और विद्वान, जिन्होंने राज–व्यवस्था पर संस्कृत के शास्त्रीय विवेचन ग्रंथ *अर्थशास्त्र* की रचना की. *अर्थशास्त्र* में वह सब कुछ संकलित है, जो तब तक 'अर्थ' (संपत्ति और भौतिक संपन्नता) पर लिखा गया था. हाल के अध्ययन बताते हैं कि यह एक संकलित ग्रंथ है, जिसमें शती दर शती कुछ न कुछ जुड़ता चला गया है.

जन्म से ब्राह्मण चाणक्य के बारे में माना जाता है कि उन्होंने तक्षशिला (वर्तमान पाकिस्तान) में शिक्षा प्राप्त की, जिसमें चिकित्सा और खगोलशास्त्र का अध्ययन भी था और भारत में ज़रथुस्त्र द्वारा शुरू की गई यूनानी और फ़ारसी शिक्षा के तत्त्वों से भी वह परिचित थे.

कौटिल्य, मौर्य वंश के पहले शासक चंद्रगुप्त (लगभग 321–297 ई.पू.) के सलाहकार थे और संभवतः उन्होंने शक्तिशाली नंद साम्राज्य को पाटलिपुत्र (आधुनिक पटना, बिहार) से उखाड़ने में भी चंद्रगुप्त की मदद की थी.

ऐसा माना जाता है कि *अर्थशास्त्र* का उपयोग मौर्य प्रशासन की विधान पुस्तिका के रूप में किया गया. इसके 15 खंडों में से प्रत्येक खंड प्रशासन के किसी न किसी पहलू से संबंधित है. अन्य बातों के अलावा इसमें समाज के सभी वर्गों के बीच गुप्तचरी की व्यापक

व्यवस्था के विकास का जिक्र और राजनीतिक हत्याओं का भी प्रावधान है. कई शताब्दियों तक ग़ायब इस ग्रंथ की पांडुलिपि अंततः 1905 में खोजी व प्रकाशित की गई.

अनेक लोग चाणक्य की तुलना मैकियावेली और कई अरस्तू व प्लेटो से करते हैं. जहां उनकी निर्ममता एवं चालाकियों की आलोचना की गई, वहीं उनकी राजनीतिक समझ और मानव प्रकृति के ज्ञान की प्रशंसा भी की गई है, लेकिन यह बात मान्य है कि उन्होंने मौर्य साम्राज्य की विशिष्ट प्रशासनिक व्यवस्था के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया.

चार आर्य सत्य

(पालि में चत्तरी–आरिया–सच्चाणी, संस्कृत में चत्वारि–आर्य–सत्यानि), बौद्ध धर्म के धार्मिक सिद्धांत का मूल तत्त्व, जिसका प्रतिपादन गौतम बुद्ध ने बोधत्व प्राप्ति के कुछ समय बाद भारत में बनारस (वाराणसी) के पास मृग उद्यान में अपने प्रथम उपदेश में किया था. ये चार सत्य हैं : 1. दुःख का अस्तित्व, 2. दुःख का कारण या दुःख–समुदय, 3. इसका उन्मूलन किया जा सकता है, या दुःख निरोध और 4. इसे प्राप्त करने के लिए मार्ग (मग्ग) है, जिसे अष्टांगिक मार्ग कहते हैं.

इन चार सत्यों को बौद्ध धर्म के सभी मतों के लोग समान रूप से स्वीकार करते हैं. दुःख के कारणों की व्याख्या 12 स्वतंत्र चरणों (पत्तिका समुप्पाद) के एक सूत्र में की गई है, जो आने और होने के अनंत चक्र का निर्माण करते हैं. पुनर्जन्म से मुक्ति और दुःखभोग के अंत से ही इस चक्र को तोड़ा जा सकता है.

चारण

भारत के पश्चिमी गुजरात राज्य में रहने वाले व हिंदू जाति की वंशावली का विवरण रखने वाले वंशावलीविद्, भाट और कथावाचक. ये राजस्थान की राजपूत जाति से अपनी उत्पत्ति का दावा करते हैं और संभवतः मिश्रित ब्राह्मण तथा राजपूत वंश से उत्पन्न हो सकते हैं. इनके कई रिवाज उत्तरी भारत में उनके प्रतिरूप भाटों से मिलते–जुलते हैं. दोनों समूह वचनभंग के बजाय मृत्यु के वरण को अधिक महत्त्व देने के लिए विख्यात हैं. चारण, योद्धा तथा राजाओं से संबंधित कथागीतों की रचना एक विशिष्ट पश्चिमी राजस्थानी बोली में करते हैं, जिसे डिंगल कहा जाता है, जिसका प्रयोग किसी अन्य उद्देश्य के लिए नहीं किया जाता.

चार्नोक, जॉब

(मृ.–10 जन. 1693, कलकत्ता {वर्तमान कोलकाता}, भारत), कलकत्ता के अंग्रेज़ संस्थापक और ईस्ट इंडिया कंपनी के विवादास्पद प्रशासक.

1655–56 में भारत पहुंचने पर चार्नोक का पहला पड़ाव वर्तमान कोलकाता के उत्तर में क़ासिम बाज़ार था, फिर पटना, बिहार में और अंततः 1686 में हुगली नदी के समीप स्थित हुगली में वह ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रमुख प्रतिनिधि बने. बंगाल के मुगल

प्रतिनिधि से ख़तरा होने पर 1690 में वह अपनी गतिविधियां वहां से 43 किमी दक्षिण में स्थित सुतानती से संचालित करने लगे, जहां वर्तमान कोलकाता है. चार्नोक की भारतीय नेताओं तथा अपने वरिष्ठ अधिकारियों से अक्सर अनबन हो जाती थी और उन पर कई बार कुप्रबंधन, चोरी, भारतीय क़ैदियों पर अत्याचार व संदिग्ध नैतिक आचरण के आरोप लगे. एक बार तो उन्हें बर्ख़ास्त करने की भी सिफ़ारिश की गई. वह एक भारतीय विधवा के साथ रहते थे, जिसे उन्होंने सती होने से बचाया था. उन दोनों के कई संतानें हुईं.

चार्वाक

लोकायत भी कहलाता है, (संस्कृत शब्द, अर्थात सामान्यतः विश्व में फैले हुए या सांसारिक), व्युत्पत्ति अनिश्चित, संभवतः किसी प्रधान समर्थक के नाम पर आधारित, पवित्र शास्त्र वेदों, आत्म–अनश्वरता और परलोक की अवधाराणाओं को नकारने वाला भौतिकतावादी उपदार्शनिक भारतीय मत. ज्ञान (प्रमाण) के मान्यता प्राप्त साधनों में चार्वाक सिर्फ़ 'प्रत्यक्ष अनुभव' को स्वीकार करते हैं. उन्होंने पूर्ण अवसरवाद का पक्ष लिया और साहित्य में उन्हें कई बार राजकुमारों को संबोधित करता हुआ दिखाया गया है, जिसमें वह आग्रह करते हैं कि वे सिर्फ़ स्वहित में ही कार्य करें. इस प्रकार उन्होंने ऐसा बौद्धिक वातावरण बनाया, जिसमें कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* जैसी कृति की रचना हो सकी. एक वैकल्पिक और अधिक सुदृढ़ ऐतिहासिक मान्यता यह हो सकती है कि लोकायत आम आदमी की प्राथमिक अभिरुचि– सांसारिक, अस्तित्व के साथ जुड़ी दैनंदिन क्रियाएं अधिक भौतिक समृद्धि तथा अन्य –से संबंध रखने वाले विभिन्न मतों के लिए उपयोग में लाया जाने वाला एक विस्तृत शब्द था. सांख्य और योग मतों के विपरीत वे भौतिकतावादी थे. चार्वाक लोकायत का अपेक्षाकृत अतिवादी रूप था.

हालांकि मध्यकालीन युग तक वैचारिक मत के रूप में चार्वाक या लोकायत का लोप हो चुका था, लेकिन जैन, बौद्ध और शास्त्रीय हिंदू दर्शन साहित्य में इसके खंडन के विस्तृत प्रयासों से किसी ज़माने में इसकी महत्ता प्रमाणित होती है. यही साहित्य इस सिद्धांत की जानकारी के प्रमुख स्रोत भी हैं.

चालुक्य वंश

इस नाम के दो प्राचीन भारतीय वंश थे. पश्चिमी चालुक्यों ने पहले 543 से 757 तक और दुबारा लगभग 975 से 1189 तक दक्कन (प्रायद्वीपीय भारत) पर सम्राट के रूप में शासन किया. पूर्वी चालुक्यों ने लगभग 624 से 1070 तक वेंगी (पूर्वी आंध्र प्रदेश में) पर शासन किया.

पुलकेशिन I, जो पहले बीजापुर ज़िले में पट्टडकल के अदने से सरदार थे, का शासनकाल 543 में शुरू हुआ. उन्होंने वातापी (आधुनिक बादामी) के पहाड़ी दुर्ग पर कब्ज़ा करके मोर्चाबंदी की और कृष्णा तथा तुंगभद्रा नदियों के दोआब एवं पश्चिमी घाटों पर भी अधिकार कर लिया. सुदूर उत्तर में सफल सैनिक अभियानों के बाद उनके

पुत्र कीर्तिवर्मन I (शासनकाल, 566–597) ने कोंकण के महत्त्वपूर्ण बंदरगाह पर क़ब्ज़ा कर लिया. उसके बाद इस वंश ने पश्चिमोत्तर और प्रायद्वीप के पूर्वी हिस्सों की उपजाऊ भूमि पर अपना ध्यान केंद्रित किया. पुलकेशिन II (शासनकाल, लगभग 610–642) ने गुजरात व मालवा के कुछ हिस्सों पर अधिकार कर लिया और उत्तर भारत के राज्य कन्नौज के राजा हर्ष को पराजित किया तथा नर्मदा नदी को दोनों राज्यों की सीमा निर्धारित किया गया. लगभग 624 में पुलकेशिन II ने विष्णुकुंडियों से वेंगी राज्य जीतकर अपने भाई कुब्ज़ विष्णुवर्द्धन को दे दिया, जो पहले पूर्वी चालुक्य शासक बने.

पल्लवों ने 641–647 में दक्कन पर हमला करके वातापी पर अधिकार कर लिया, लेकिन 655 तक चालुक्य वंश ने इसे वापस जीतकर गुजरात में अपनी सत्ता का विस्तार किया. 660 तक उन्होंने नेल्लोर ज़िले की भूमि भी ले ली थी. विक्रमादित्य I (शासनकाल, 655–680) ने लगभग 670 में तत्कालीन पल्लव राजधानी कांचीपुरम (प्राचीन कांची) पर अधिकार कर लिया. एक अन्य चालुक्य शासक विक्रमादित्य II (शासनकाल, 733–746) ने 742 में इस नगर पर पुनः क़ब्ज़ा कर लिया, लेकिन फिर छोड़ दिया. उनके उत्तराधिकारी कीर्तिवर्मन II को राष्ट्रकूट वंश के शासकों ने 757 में गद्दी से हटा दिया.

975 में जब अंतिम राष्ट्रकूट राजा का पतन हुआ, तो तैल ने पश्चिमी चालुक्य वंश II की नींव रखी, जो अधिक केंद्रीकृत राजधानी कल्याणी के लिए जाने गए. मालवा के परमार वंश को पराजित करना उनकी प्रमुख उपलब्धि थी.

चोल राजा राजराज I ने 993 में दक्षिणी दक्कन पर आक्रमण कर दिया और 1021 तक पठारी क्षेत्रों में चोलों के हमले होते रहे. कई उतार–चढ़ावों के बाद बिज्जला के नेतृत्व में कलचुरी वंश ने चालुक्यों से सत्ता छीन ली. 1156 में गद्दी पर बैठने के बाद बिज्जला ने 1167 तक शासन किया. फिर सोमेश्वर IV ने चालुक्य वंश को पुनर्स्थापित किया, लेकिन 1189 में देवगिरि के यादवों (या सेवुनों), द्वारसमुद्र के होयसलों और दक्कन के तेलुगुभाषी राज्य वारंगल के शासक काकतियों ने इस पर क़ब्ज़ा कर लिया.

कुब्ज विष्णुवर्द्धन के वंशजों को वेंगी की संपत्ति के लिए लगातार संघर्षरत रहना पड़ा और वे दक्कन के सम्राटों तथा चोल राजाओं के संघर्ष में मोहरे बने रहे. अंततः चोलों ने इस वंश को अपना लिया और दोनों देश कुलोत्तुंग I (राजेंद्र II) के नेतृत्व में एक हो गए. कुलोत्तुंग I (राजेंद्र II) का शासनकाल 1070 में प्रारंभ हुआ.

चाहा

तटीय पक्षी के कुल *स्कोलोपेसाइडी* (गण *कैरैड्रीफॉर्मीज़*) की लगभग 20 प्रजातियों में से एक. विश्व भर के शीतोष्ण और गर्म इलाक़े के नम चरागाहों और दलदल में चाहा पाए जाते हैं. ये छोटे पैर, लंबी चोंच वाले गठीले पक्षी होते हैं, जिन पर भूरी, काली व सफ़ेद धारियां और लकीरें होती हैं. इनके पंख नुकीले और इकहरे तथा आंखें पीछे की तरफ़ होती हैं. इनकी चोंच लचीली होती है, जो कीचड़ में कीडे ढूंढने के काम आती है.

चाहा प्रजनन के समय एकांत पसंद करते हैं, लेकिन प्रवास करते समय पंक मैदानों में अन्य तटीय पक्षियों के साथ समूह में दिखाई देते हैं. अधिकतर जातियों में प्रणय निवेदन करने वाला नर गोल–गोल घूमता हुआ ऊंचा उड़ता है और फिर अपनी पूंछ के पंखों को हवा में फड़फड़ाते हुए ज़मीन पर स्थित मादा की तरफ़ तेज़ी से आता है. प्रणय निवेदन सामान्यतः शाम के धुंधलके, चांदनी रात या बदली भरे दिनों में होता है.

सामान्य रूप से पाया जाने वाला चाहा *गेलाइनेगो* (कभी–कभी *केपेला*) *गेलाइनेगो* अपनी प्रजाति के एक पक्षी वुडकॉक से मिलता–जुलता है और चोंच सहित लगभग 30 सेमी लंबा होता है. यह एक आखेट पक्षी है, जो दहलाने वाली चीख़ मारते हुए अचानक प्रकट होता है, घुमावदार उड़ान भरते हुए छिपने के लिए अचानक तेज़ी से उतरता है. शीतोष्ण इलाक़ों में रहने वाली प्रजातियों में उत्तरी अमेरिका की विल्संस चाहा, यूरेशियाई चाहा और दक्षिण अमेरिकी चाहा शामिल हैं.

उत्तरी यूरोप का बड़ा चाहा (*जी. मेडिया*) भारी बदन का होता है और इसके अंदरूनी हिस्सों में धारियां होती हैं. अन्य जातियों में भारत का तीखी पूंछ चाहा (*जी. स्टेनुरा*) और यूरेशिया का जैक चाहा *(लिम्नोक्रीप्टीज़ मिनिमा*) शामिल हैं.

चिकनकारी

भारत में की जाने वाली उत्कृष्ट व महीन कसीदाकारी का एक प्रकार, जो सामान्यतः सादे मलमल पर सफ़ेद सूती धागे से की जाती है. इस शैली की उत्पत्ति अनिश्चित है, किंतु यह ज्ञात है कि 18वीं शताब्दी में यह बंगाल राज्य (वर्तमान बांग्लादेश) से लखनऊ, उत्तर प्रदेश पहुंची, जो 20वीं सदी से अब तक इसके उत्पादन का मुख्य केंद्र है.

अवध के नवाबों के संरक्षण में *चिकनकारी* ने दुर्लभ श्रेष्ठता प्राप्त की. प्रभावोत्पादकता के लिए यह डिज़ाइन की सादगी पर निर्भर है, प्रतीकों की संख्या सीमित है और कार्य की उत्तमता बारीक व एकरूप कसीदाकारी से आंकी जाती है. टांकों की संख्या भी सीमित है. सबसे अधिक प्रचलित हैं– रफ़ू का टांका, उल्टा साटिन टांका, लंबा साटिन टांका, जाली का काम और दरज़ का काम. इस कला पर ख़त्म हो जाने का ख़तरा मंडरा रहा था, किंतु 20वीं शताब्दी में बढ़ी मांग ने इसके पुनरुत्थान में योगदान दिया.

चिकमगलूरु

नगर, भूतपूर्व चिकमगलूर, दक्षिण–पश्चिम कर्नाटक राज्य, दक्षिणी भारत. यह नगर कॉफ़ी प्रसंस्करण और व्यापार का महत्त्वपूर्ण केंद्र है. स्थानीय कॉफ़ी, इलायची और कालीमिर्च के बाग़ानों में इस्तेमाल के लिए यहां उर्वरक को संसाधित किया जाता है. इसके इर्द–गिर्द का इलाक़ा वनाच्छादित उच्चभूमि (अधिकांश बाबा बूदन की पहाड़ियों और पश्चिमी घाट की पूर्वी ढलान की शक्ल में) की प्राकृतिक संपदा से संपन्न है, जो सागौन की लकड़ी के स्रोत हैं तथा कॉफ़ी के विस्तृत बाग़ानों के आश्रय हैं. लाख की वस्तुएं और बेंत के उत्पाद यहां के प्रधान स्थानीय हस्तशिल्प हैं. साइलेंट वैली आरामगाह (रिज़ॉर्ट चिकमगलूरु) ज़िले में ही स्थित है. जनसंख्या (2001) 1,01,022.

चिकित्साशास्त्र

मानव शरीर की आंतरिक संरचना

स्वास्थ्य की देखरेख तथा रोग के रोकथाम, उपशमन एवं उपचार से संबद्ध कार्यविधि.
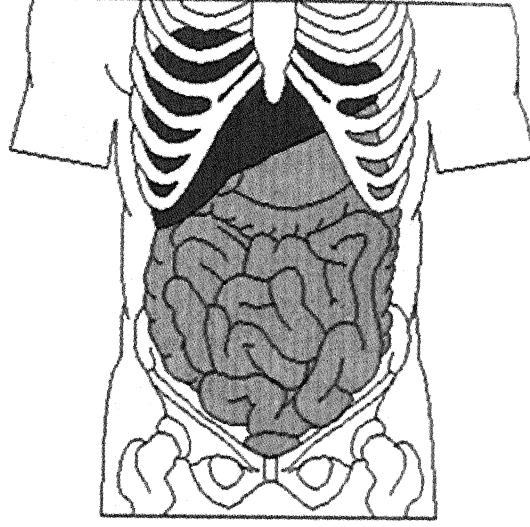
विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ.) ने 1978 में सोवियत संघ में आयोजित अपने अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में अलमाटी (कज़ाकिस्तान की राजधानी) स्वास्थ्य घोषणापत्र जारी किया, जिसका उद्देश्य सरकारों को स्वास्थ्य सेवाओं की ऐसी योजनाएं बनाने में मदद देना है, जो समाज के सभी स्तरों के लोगों तक पहुंच सकें. घोषणापत्र में फिर से पुष्टि की गई है कि स्वास्थ्य, जो पूर्ण शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक कल्याण की अवस्था है, न कि केवल रोग या अशक्तता की अनुपस्थिति, एक मूलभूत मानवाधिकार है. स्वास्थ्य के उच्चतम संभावित स्तर को प्राप्त करना सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण विश्वव्यापी सामाजिक लक्ष्य है. इसको हासिल करने के लिए स्वास्थ्य क्षेत्र के अलावा अन्य कई सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों के प्रयासों की आवश्यकता है. अपने व्यापकतम स्वरूप में चिकित्सा का पेशा, अर्थात उपचार एवं संवर्धन, इस आदर्श से संबद्ध है.

चिकित्सा एवं शल्यक्रिया का 1800 से पहले का इतिहास

आदि चिकित्सा एवं जनश्रुति

अलिखित इतिहास की व्याख्या आसान नहीं है और यद्यपि आदिम मानव के रेखाचित्रों, अस्थि अवशेषों एवं शल्य उपकरणों से काफ़ी कुछ जाना जा सकता है, लेकिन रोग एवं मृत्यु के प्रति उसके मानसिक रवैये का पुनर्निमाण करना कठिन है. यह संभव लगता है कि तार्किकता के स्तर पर पहुंचते ही मनुष्य ने भूल–चूक और सुधार के ज़रिये मालूम कर लिया कि किस पौधे का भोजन के रूप में उपयोग किया जाए, उनमें से कौन से विषैले हैं तथा किनकी औषधीय उपयोगिता है. लोक औषधि या घरेलू दवाएं, मुख्य रूप से वनस्पति उत्पाद या जड़ी–बूटियां, इसी तरह से अस्तित्व में आईं तथा अब भी प्रचलन में हैं.

लेकिन यह पूरी कहानी नहीं है. मनुष्य ने पहले मृत्यु एवं रोगों को प्राकृतिक घटना नहीं माना. जुकाम या कब्ज़ जैसी आम बीमारियां अस्तित्व के हिस्से के रूप में स्वीकार की गईं तथा जो जड़ी–बूटियां उपलब्ध थीं, उन्हीं से उनका उपचार किया गया.

गंभीर और अक्षमकारी रोगों को एकदम भिन्न वर्ग मे रखा गया था. ये अलौकिक या पराप्राकृतिक व्युत्पत्ति वाले थे. ये दुश्मनों के जादू–टोने से, किसी दुष्ट राक्षस के घर

करने से या किसी कुपित देवता का काम माना जाता था, जिन्होंने पीड़ित व्यक्ति के शरीर में तुंबी (सुई) पत्थर या कीड़ा प्रवेश करा दिया था या सामान्यतः पीड़ित की आत्मा जैसा कुछ निकाल लिया था. इसके लिए किए जाने वाले उपचार में प्रतिरोधी जादू, झाड़–फूंक, मरहम, चूसकर बाहर निकालने या अन्य साधनों से कुपित आत्मा को शरीर में उसकी निर्धारित जगह वापस भेजने के लिए मनाना या दुरात्मा को बाहर निकालना (चाहे वह सुई हो या राक्षस) शामिल थे.

कपाल भेदन नामक एक अद्भुत विधि का प्रयोग भी शरीर से रोगों के निकालने के लिए होता था, जिसमें रोगी की खोपड़ी में 2.5 से 5 सेमी का आरपार छेद बनाया जाता था. ब्रिटेन, फ़्रांस, यूरोप तथा पेरु में पुराऐतिहासिक काल की ऐसी खोपड़ियां मिली हैं. कई में घाव भरने और मरीज़ के ठीक होने के चिह्न भी दिखाई देते हैं. अल्जीरिया, मेलानेसिया व संभवतः अन्य स्थानों के आदिम लोगों में यह विधि बरक़रार है, हालांकि अब यह तेज़ी से खत्म हो रही है.

आधुनिक विज्ञान से पहले जादू–टोना एवं धर्म ने चिकित्सा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई. वानस्पतिक औषधि लेने या मुख–उपचार के साथ–साथ झाड़–फूंक, नाच, मुख–विकृति एवं जादू की प्रक्रिया भी अपनाई जाती थी. सम्मोहन एवं तावीज़ों का इस्तेमाल प्राचीन काल से चला आ रहा है, जो आज भी प्रचलित है.

आधुनिक विज्ञान की शुरुआत से पहले घावों एवं टूटी हड्डियों के इलाज के अलावा चिकित्सक मनुष्य का आमतौर पर शरीर के साथ–साथ आत्मारूपी एक सामाजिक प्राणी के तौर पर उपचार करते थे. उपचार एवं औषधि का शरीर पर कोई उचित प्रभाव न पड़ने के बावजूद यदि चिकित्सक एवं रोगी को उनके असर पर विश्वास होता, तो रोगी अच्छा महसूस करता था. यह कथित मनोवैज्ञानिक असर आधुनिक नैदानिक चिकित्सा में भी लागू होता है.
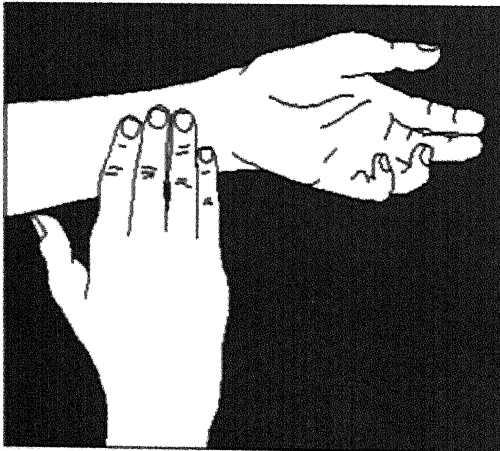
वैकल्पिक चिकित्सा में नब्ज़ देखना

भारत में परंपरागत चिकित्सा एवं शल्यक्रिया

भारतीय चिकित्सा का एक लंबा इतिहास है. इसकी प्रारंभिक अवधारणाएं वेदों में वर्णित हैं; विशेष रूप से *अथर्ववेद* के छंदोबद्ध अध्यायों में, जिसका संभावित कालांकन दूसरी सहस्राब्दी ई.पू. हो सकता है. बाद के लेखकों के अनुसार, आयुर्वेद कहलाने वाली चिकित्सा प्रणाली धन्वंतरी ने ब्रह्मा से प्राप्त की तथा धन्वंतरी को औषधियों के देवता का स्थान दिया गया. बाद के समय में उनके दर्जे का धीरे–धीरे ह्रास हुआ, जब तक कि उन्हें एक सांसारिक राजा नहीं माना गया, जिनकी मृत्यु सर्पदंश से हुई.

वैदिक चिकित्सा का काल क़रीब 800 ई.पू. में समाप्त हुआ. वेदों में रोगों के उपचार के लिए जादू–टोना तथा परंपरागत रूप से बीमारियों का कारण माने जाने वाले प्रेतों को भगाने के लिए मंत्रों (झाड़–फूंक) का भंडार है. प्रमुख उल्लिखित दशाएं हैं– ज्वर, खांसी, क्षय, दस्त, जलोदर, फोड़ा, दौरा, अर्बुद (ट्यूमर) एवं त्वचा रोग (कुष्ठ रोग सहित). उपचार के लिए सुझाई गई जड़ी–बूटियां अनेकानेक हैं. भारतीय चिकित्सा के स्वर्णिम युग (800 ई.पू. से लगभग 1000 ई. तक) की विशेषता *चरक संहिता* एवं *सुश्रुत संहिता* जैसे चिकित्सा प्रबंधों की रचना है, जिसके लेखक क्रमशः एक वैद्य चरक तथा एक शल्य चिकित्सक सुश्रुत हैं. अनुमानों के अनुसार, *चरक संहिता* के वर्तमान स्वरूप में इसका कालांकन प्रथम शताब्दी है, हालांकि इससे पहले के भी पाठांतर थे. *सुश्रुत संहिता* संभवतः प्रथम सदी ई.पू. रची गई होगी, लेकिन इसका वर्तमान स्वरूप सातवीं सदी में निर्धारित हुआ. कुछ कम महत्त्व के ग्रंथों का श्रेय वाग्भट्ट को दिया गया है. बाद की सभी भारतीय चिकित्सा रचनाएं इन ग्रंथों पर आधारित थीं.
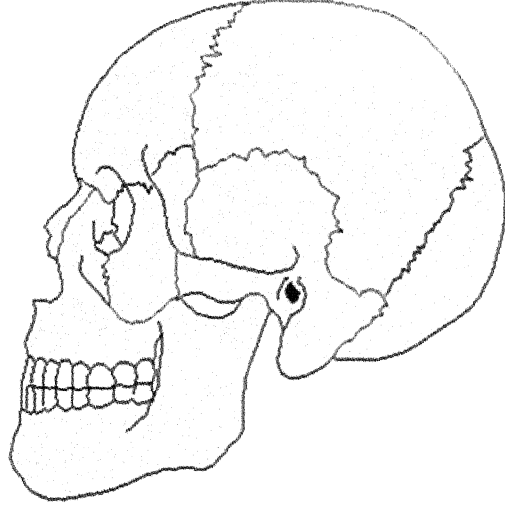
आंतरिक औषधि विज्ञान के अंतर्गत मानव खोपडी का अध्ययन

चूंकि हिंदुओं में शव को काटना वर्जित था, इसलिए शरीर–रचना विज्ञान का उनका ज्ञान सीमित था. *सुश्रुत संहिता* में सलाह दी गई है कि शव को टोकरी में रखकर सात दिन तक नदी में डुबोए रखना चाहिए. इसको निकालने पर अंगों को बिना काटे अलग किया जा सकता है. इस अपरिष्कृत विधि के परिणामस्वरूप हिंदू शरीर–रचना विज्ञान में पहले अस्थियों तथा फिर मांसपेशियों, स्नायु एवं जोड़ों पर बल दिया गया. तंत्रिकाओं, रक्त वाहिकाओं तथा आंतरिक अंगों के बारे में जानकारी बहुत अपूर्ण रही.

हिंदुओं का विश्वास था कि शरीर में तीन बुनियादी तत्त्व हैं, तीन दैवी ब्रह्मांडीय शक्तियों का लघु जगतीय स्वरूप, जिन्हें उन्होंने आत्मा (वात), कफ़ एवं पित्त (यूनानियों के द्रव्यों के साथ तुलनीय) कहा. स्वास्थ्य इन तीनों मूलभूत द्रव्यों के सामान्य संतुलन पर निर्भर करता है. शरीर के सात प्राथमिक घटक– रक्त, मांस, वसा, अस्थि, मज्जा, वसालसिका (क्षारण) एवं वीर्य –मूल तत्त्वों की अभिक्रिया से बनते हैं. माना जाता था कि वीर्य शरीर के सभी हिस्सों में बनता है न कि किसी एक हिस्से या अंग विशेष में.

चरक एवं सुश्रुत, दोनों ने बहुत से रोगों के होने की बात कही (सुश्रुत के अनुसार, 1,220). उन्होंने रोगों का मोटा वर्गीकरण दिया है. सभी रचनाओं में 'ज्वर', जिसकी विभिन्न क़िस्मों का वर्गीकरण किया गया है, को महत्त्वपूर्ण माना गया है. क्षय रोग (विशेष रूप से फुप्फुसीय तपेदिक) स्पष्टतः व्याप्त था तथा हिंदू वैद्य इन घातक प्रतीत होने वाले रोगों के लक्षण जानते थे. चेचक का वर्णन इलाज के साथ किया गया है तथा चेचक का टीका लगाया जाता था.

हिंदू वैद्य रोग की पहचान के लिए सभी पांचों इंद्रियों का प्रयोग करते थे. श्रवण शक्ति का प्रयोग श्वसन के स्वरूप, स्वर में परिवर्तन तथा हड्डियों के टूटे सिरों के रगड़ने से उत्पन्न घर्षण की आवाज़ पहचानने के लिए किया जाता था. ऐसा प्रतीत होता है कि उनके पास अच्छी नैदानिक समझ थी और पूर्वानुमानों पर उनके निबंधों में लक्षणों का स्पष्ट ज़िक्र है, जिनका बहुत महत्त्व है. लेकिन वैदिक काल के अंत तक झाड़–फूंक का प्रचलन रहा; इस प्रकार चिकित्सक को लाने भेजे गए संदेशवाहक की स्वच्छता, वाहन के स्वरूप या रोगी तक पहुंचने के दौरान वैद्य को रास्ते में मिले लोग जैसे आकस्मिक तथ्यों से वैद्य के पूर्वानुमान प्रभावित हो सकते थे.

आहार संबंधी उपचार महत्त्वपूर्ण था तथा किसी भी चिकित्सा से पहले किया जाता था. बाह्य एवं आंतरिक रूप से वसा का काफ़ी इस्तेमाल किया जाता था, सक्रिय उपचार की सबसे महत्त्वपूर्ण विधियों को 'पांच प्रक्रियाएं' (पंचतंत्र) कहा जाता था : वमनकारी, विरेचक, जल वस्ति (एनीमा), तेल वस्ति एवं नसवार का उपयोग. अतः श्वसन के साथ–साथ जोंक चूषण (जलौका उपचार), तुंबी या सिंगी लगाकर रक्त निकालने का उपचार एवं रक्तस्रवण का भी अक्सर इस्तेमाल होता था.

भारतीय औषधिशास्त्र व्यापक था तथा इसमें मुख्य रूप से वानस्पतिक औषिधियों का इस्तेमाल होता था, जो सभी स्थानीय पौधों से मिलती थी. चरक को 500 जड़ी–बूटियों की जानकारी थी और सुश्रुत को 760 की. लेकिन जंतु औषधि (जैसे विभिन्न जानवरों का दूध, अस्थियां एवं पित्तअश्मरी) तथा खनिजों (गंधक, संखिया, सीसा, कॉपर सल्फ़ेट, सोना) का भी उपयोग किया जाता था. वैद्य अपनी वनस्पति स्वयं एकत्रित करते एवं उनसे औषधि तैयार करते थे. उनमें से इलायची एवं दालचीनी अंततः पश्चिमी औषधकोश में पहुंचे.

हिंदुओं की कठोर धार्मिक आस्थाओं के कारण उपचार में स्वच्छता के उपाय महत्त्वपूर्ण थे. एक दिन में दो बार भोजन की व्यवस्था थी, भोजन के स्वरूप, भोजन से पहले और बाद में पिए जाने वाले पानी की मात्रा तथा मसाले के इस्तेमाल की नसीहतों के साथ नहाने व त्वचा की देखभाल के स्पष्ट निर्देश थे, साथ ही कुछ पेड़ों की टहनियों से दांत साफ़ करने, बदन पर तेल मालिश करने तथा नेत्र धोने के बारे में भी दिशा–निर्देश थे. शल्य क्रिया में प्राचीन हिंदू चिकित्सा चरम पर पहुंच गई थी. हिंदू शल्यचिकित्सा की शल्य क्रिया में अर्बुद (ट्यूमर) को काटना, फोड़े पर चीरा लगाना एवं मवाद बाहर निकालना, उदर में द्रव को निकालने के लिए छेदन, अवांछित पदार्थों को शरीर से निकालना, बवासीर के घावों का इलाज, टूटी हड्डी पर खपची लगाना, अंगोछेदन, सीज़ेरियन शल्यक्रिया तथा घावों पर टांके लगाना शामिल था.

बहुत तरह के शल्य उपकरण प्रयुक्त किए जाते थे. सुश्रुत के अनुसार, शल्यचिकित्सक के पास विभिन्न ख़ूबियों वाले 20 धारदार एवं 101 भोथरे उपकरण होने चाहिए. उपकरण ज़्यादातर इस्पात के थे. शल्य क्रिया के दर्द निवारक मंदक के रूप में मद्य–आसव (एल्कोहॅल) का इस्तेमाल किया जाता था तथा रक्तस्राव गरम तेल और तारकोल से रोका जाता था.

भारतीय चिकित्सक, विशेष रूप से दो प्रकार की शल्य क्रियाओं में निपुण थे. मूत्राशय (वेसिकल केल्कुलस) की पथरी प्राचीन भारत में आम थी और शल्यचिकित्सक अक्सर पार्श्व शल्य क्रिया से पथरी निकालते थे. उन्होंने सुघट्य शल्य (प्लास्टिक सर्जरी) की भी शुरुआत की.

व्यभिचार के लिए नाक काटना निर्धारित दंड था तथा इसकी मरम्मत रोगी के गाल या माथे से आवश्यक आकार एवं आकृति के ऊतक के टुकड़े को निकालकर कटी नाक पर लगाकर की जाती थी. इसका परिणाम काफ़ी कुछ संतोषजनक होता था. आधुनिक शल्यक्रिया निश्चित रूप से अप्रत्यक्ष तौर से इस प्राचीन स्रोत से प्रभावित है. भारतीय शल्यचिकित्सक मोतियाबिंद का इलाज लेंस को निकालकर या विस्थापित करके करते थे, ताकि दृष्टि में सुधार किया जा सके.

चिकित्सा की विशेष पद्धति एवं क्षेत्र

चिकित्सा में विशेषज्ञता

द्वितीय विश्व युद्ध के शुरू होने तक कई प्रमुख चिकित्सा विशेषज्ञताओं की पहचान संभव हो गई थी, जिनमें आंतरिक चिकित्सा, प्रसूति एवं स्त्री रोग विज्ञान, बाल रोग चिकित्सा, रोग विज्ञान, निश्चेतना विज्ञान, नेत्र रोग विज्ञान, शल्यक्रिया, अस्थि शल्यचिकित्सा, सुघट्य शल्य (प्लास्टिक सर्जरी), मनोरोग एवं तंत्रिका विज्ञान, विकिरण चिकित्सा तथा मूत्र रोग चिकित्सा शामिल हैं. रक्त विज्ञान भी अध्ययन का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र था तथा सूक्ष्म जैविकी एवं जैव रसायन, चिकित्सा से संबद्ध प्रमुख विशेषताएं थीं. द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से चिकित्सा विज्ञान में ज्ञान की विस्फ़ोटक वृद्धि तथा चिकित्सा में प्रयुक्त प्रौद्योगिकी में बहुत ज़्यादा प्रगति हुई. इन गतिविधियों के कारण ज़्यादा से ज़्यादा विशेषताएं हासिल करने को बढ़ावा मिला. मुख्य रूप से सूक्ष्मदर्शी के उपयोग से रोग विज्ञान के ज्ञान में अत्यधिक विस्तार हुआ. इसी प्रकार सूक्ष्म जैविकी में, जिसमें जीवाणु विज्ञान शामिल है, विषाणु विज्ञान (विषाणुओं का अध्ययन) एवं कवक विज्ञान (चिकित्सा में खमीर एवं कवकों {फ़ंगस} का अध्ययन) जैसे उपक्षेत्रों के विकास से विस्तार हुआ. कभी–कभी रोग विषयक रसायन या रासायनिक रोग विज्ञान कहलाने वाले, जैव रसायन, ने रोग की जानकारी के बारे में योगदान दिया, विशेष रूप से आनुवंशिकी के क्षेत्र में, जहां कुछ अत्यधिक कठिन बीमारियों के उपचार के लिए आनुवंशिक अभियांत्रिकी महत्त्वपूर्ण कारक बन गई. इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी के विकास से दूसरे विश्व युद्ध के बाद रक्त विज्ञान का भी विस्तार हुआ. विशेष रूप से मानसिक विकार एवं मानसिक विकलांगता तथा मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र जैसे क्षेत्रों ने भी चिकित्सा विज्ञान में योगदान किया, नैदानिक औषधकोष विज्ञान से ज़्यादा कारगर दवाओं के निर्माण तथा दवाओं के ग़लत असर की पहचान में मदद मिली. हाल में स्थापित विशेषज्ञताओं में रोकथाम चिकित्सा, भौतिक चिकित्सा एवं पुनर्वास, परिवार चिकित्सा तथा आणविक चिकित्सा शामिल हैं. अमेरिका में प्रत्येक चिकित्सा विशेषज्ञ को एक परिषद द्वारा प्रमाणपत्र दिया जाना अनिवार्य है, जिसमें जिस विशेषज्ञता के

लिए प्रमाणपत्र मांगा गया है, उसी के विशेषज्ञ सदस्य होते हैं. अधिकांश देशों में किसी भी प्रकार की समकक्ष विशेष प्रामाणिकता की आवश्यकता होती है.

गहनता एवं व्यापकता में ज्ञान के विस्तार ने चिकित्सा की नई पद्धतियों के विकास को बढ़ावा दिया है, जिनके लिए उच्च स्तर की दक्षता की ज़रूरत है, जैसे अंग प्रत्यारोपण एवं खून चढ़ाना. निश्चेतना विज्ञान (एनस्थीटिक्स) का क्षेत्र काफ़ी जटिल हो गया है, क्योंकि उपकरणों एवं अचेतनकारकों में सुधार हुआ है. नई प्रौद्योगिकी ने सूक्ष्म शल्य–कर्म, लेसर किरण शल्य क्रिया एवं लेंस आरोपण (मोतियाबिंद रोगियों के लिए) की शुरुआत की है; सभी के लिए विशेषज्ञ की निपुणता की ज़रूरत है. रोग की सटीक पहचान में काफ़ी सुधार हुआ है; विकिरण विज्ञान में प्रगति, पराध्वनि (अल्ट्रासाउंड) का इस्तेमाल, कंप्यूटरीत अक्षीय टोमोग्राफ़ी (कैट स्कैन) तथा आणविक चुंबकीय अनुनाद प्रतिबिंबिकरण (न्यूक्लियर मैग्नेटिक रेसोनेन्स इमेजिंग) चिकित्सा क्षेत्र में विशेषज्ञता के लिए आवश्यक प्रौद्योगिकी में विस्तार के उदाहरण हैं.

ज़्यादा कारग़र सेवा के लिए विशेषज्ञ शल्यचिकित्सक एवं विशेषज्ञ चिकित्सक का आपस में मिल–जुलकर काम करना अब आम बात है, जैसे हृदय रोगों के लिए. इस व्यवस्था का लाभ यह है कि वे अत्यधिक प्रशिक्षित परिचारकाओं, शल्य वैज्ञानिकों, शल्य कक्ष तकनीशियनों आदि के समूहों को आकर्षित कर सकते हैं और इस प्रकार रोगियों की सेवा में बेहद सुधार ला सकते हैं. लेकिन ऐसी विशेषज्ञताएं काफ़ी ख़र्चीली हैं तथा इनके लिए संस्थानों के बढ़ते बजट के एक बड़े हिस्से की आवश्यकता है. यह ऐसी स्थिति है, जिसका वित्तीय असर अंततः नागरिक पर पड़ता है. इसलिए यह उनकी लागत पर प्रश्न उठाता है. उदाहरण के तौर पर, विकासशील देशों की सरकारें सामान्यतः पाती हैं कि ज़्यादा लोगों को बुनियादी स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराने में कम लागत आती है.

चिचिंडा
सौजन्य : के.टी. अचाया

चिचिंडा

तेज़ी से बढ़ने वाली तुरई कुल (*कुकुरबिटेसी*) की दो लताओं (*ट्रिकोसेंथीज़ एंगूइना* और *टी. कुकुमेरोइडीज़*) में से एक, दक्षिण–पूर्वी एशिया और ऑस्ट्रेलिया में मूल रूप से पाया जाने वाला, लेकिन अपने खाने योग्य अजीब आकार के फलों के कारण विश्व भर में पैदा किया जाता है. चिचिंड़े के एक पौधे में दो या तीन शाखित प्रतान होते हैं, सफ़ेद फूल, जिनकी पंखुड़ियों पर लंबी धारियां होती हैं और पहली जाति में लंबे हल्के धारीदार हरे फल लगते हैं, अक्सर 1.5 से 2 मीटर लंबे, जो प्रत्येक सिरे पर पतले होते हैं. *टी. कुकुमेरोइडीज़* के 5 से 8 सेमी लंबे अंडाकार फल होते हैं, जिन्हें सुखाने के बाद साबुन के विकल्प के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है.

चिड़ियाघर (प्राणी उद्यान)

इसे जैविक उद्यान भी कहा जाता है. यह वह स्थान है, जहां जंगली जानवरों और कुछ मामलों में पालतू पशुओं को विशेष प्रकार की व्यवस्था के अंतर्गत बंदी अवस्था में रखा जाता है. इन स्थानों पर पशुओं पर प्राकृतिक उद्यानों या संरक्षित क्षेत्रों के मुक़ाबले ज़्यादा ध्यान दिया जाता है. लंबे समय से स्थापित अधिकांश प्राणी उद्यानों में पशुओं का सामान्य संग्रह ही होता है, लेकिन अपेक्षाकृत हाल में स्थापित उद्यान विशेष प्राणी समूहों में विशेषज्ञता रखते हैं– उदाहरण के लिए, नरवानर (प्राइमेट), बड़े विडाल, उष्णकटिबंधीय पक्षी या मुर्ग़ाबियां, समुद्री अकशेरुकी प्राणी, मछलियों और समुद्री स्तनपायी जीवों को जलजीवशाला में रखा जाता है. अंग्रेज़ी में ज़ू शब्द का पहली बार उपयोग लंदन में 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ज़ूलॉजिकल गार्डन के संक्षिप्त शब्द के रूप में किया गया था. प्रारंभिक चिड़ियाघरों की स्थापना के बारे में कोई जानकारी नहीं है, लेकिन संभव है कि पशुओं को पालतू बनाने के आरंभिक प्रयासों से उनका संबंध था. वर्तमान इराक़ के क्षेत्र में 4500 ई.पू. में कबूतरों को पकड़कर रखा जाता था और उसके दो हज़ार वर्षों के बाद भारत में हाथियों को अर्द्ध पालतू बनाया गया था. मिस्र में सक्करा स्थित 2500 ई.पू. के मक़बरों पर अंकित चित्रों में चौसिंगा समेत एडेक्स और ऑरिक्स हिरन, कुरंग (गज़ेल) और साकिन या जंगली बकरी गले में पट्टा पहने हुए हैं. चीन में संभवतः 1150 ई.पू. में हुई साम्राज्ञी तांकी ने संगमरमर की एक विशाल 'हिरनशाला' बनवाई थी. वेन वांग, जो 1000 ई.पू. से कुछ पहले सत्तारूढ़ थे, ने 1,500 एकड़ के सीमा क्षेत्र में चिड़ियाघर बनवाया था, जिसे उन्होंने लिंग–यू या 'बुद्धिमत्ता का बाग़' की संज्ञा दी थी.

बाइबिल में उल्लिखित राजा *सॉलोमन*, जो 1000 ई.पू. में शासन करते थे, एक कृषक–जीवविज्ञानी थे. उनके बाद अगले 600 वर्षों तक अन्य शाही चिड़ियाघरों के प्रबंधकों ने, जिनमें असीरिया के सेमिरामिस और अशुरबनिपाल तथा बेबीलोनिया के राजा नेबुचाड्रेजा भी शामिल थे, उनका अनुसरण किया.

यूनान में सातवीं शताब्दी ई.पू. में बंदी जानवरों का संग्रह किया जाता था और चौथी शताब्दी ई.पू. तक संभवतः सभी नहीं, तो अधिकांश यूनानी नगरों तथा राज्यों में ऐसी संग्रहशालाएं अस्तित्व में आ गई थीं. अरस्तू (384–322 ई.पू.) चिड़ियाघरों से भलीभांति परिचित थे; उनके प्रख्यात शिष्य सिकंदर महान ने अपने सैनिक अभियानों के दौरान पकड़े गए कई जानवर यूनान भेजे थे.

मिस्र और एशिया के आरंभिक चिड़ियाघर मुख्यतः जनता के प्रदर्शन के लिए थे, अध्ययन गौण था, लेकिन अरस्तू के समकालीन यूनानी लोग अध्ययन और प्रयोगों में ज्यादा रुचि रखते थे. रोमवासियों के पास दो तरह के जानवरों का संग्रह था, एक अखाड़े के लिए और दूसरा, जिन्हें व्यक्तिगत चिड़ियाघरों और दड़बों में रखा जाता था. रोमन साम्राज्य के पतन के साथ चिड़ियाघरों का भी ह्रास हुआ, लेकिन आठवीं शताब्दी के सम्राट चार्लमैग्ने और 12वीं शताब्दी के हेनरी I ने जीव–जंतुओं को संगृहीत किया

था. यूरोप में फ़िलिप VI के पास 1333 में लुव्रे, पेरिस में एक प्राणी संग्रह था और हाउस ऑफ़ बोरबोन के कई सदस्य वरसेलेस में जंतु संग्रह रखते थे.

नई दुनिया में हेरनान कोट्स ने मेक्सिको में 1519 में एक शानदार चिड़ियाघर की खोज की. इसमें शिकार होने वाले पक्षियों, स्तनपायी जंतुओं और सरीसृपों का इतना विशाल संग्रह था कि उसकी देखरेख के लिए 300 पालकों की आवश्यकता होती थी. आधुनिक चिड़ियाघरों की शुरुआत 1752 में वियना के शोनब्रुन महल में शाही प्राणी संग्रहालय की स्थापना के साथ मानी जाती है. आज भी मौजूद यह संग्रह, जनता के लिए 1765 में खोला गया था. 1775 में मैड्रिड के रॉयल पार्क में एक चिड़ियाघर की स्थापना की गई और इसके 18 वर्षों के बाद पेरिस में जार्डिन द प्लांते नामक प्राणी संग्रहालय की शुरुआत हुई. लंदन की जूलॉजिकल सोसाइटी ने अपने गठन के दो वर्ष के बाद 1828 में रीजेंट पार्क में एक संग्रहशाला की स्थापना की.

19वीं शताब्दी के मध्य तक दुनिया भर में चिड़ियाघर स्थापित होने लगे थे. इनमें से 40 से अधिक, जो आज भी विद्यमान हैं और जिनमें से अधिकांश यूरोप में हैं, 100 वर्षों से अधिक पुराने हैं. द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद से दुनिया भर में तेजी से चिड़ियाघरों की स्थापना हुई, जिनमें से कई का उद्देश्य जंतुओं का अध्ययन नहीं, बल्कि जनता का मनोरंजन और वाणिज्यिक लाभ था. आज दुनिया में जनता के लिए उपलब्ध प्राणी संग्रहों की ठीक–ठीक संख्या ज्ञात नहीं है, लेकिन यह 1000 से अधिक है.

भारत में प्राणी उद्यान

वेदों, उपनिषदों, पुराणों और *रामायण* तथा *महाभारत* महाकाव्यों से प्रमाणित है कि प्राचीन समय से ही पशुओं को पालतू बनाकर रखा जाता है.

मुग़ल शासकों, ख़ासकर अकबर और जहांगीर ने बंधन में जानवरों को पालने के व्यवस्थित तरीक़ों का पालन किया. अकबर के पास लगभग 1000 चीते थे, जिन्हें उन्होंने काले हिरन के शिकार के लिए प्रशिक्षित किया था, जिस प्रकार पश्चिम में कुत्तों को लोमड़ियों और अन्य पशुओं के शिकार के लिए प्रशिक्षित किया जाता था.

भारत में पहले आधुनिक चिड़ियाघर की स्थापना 1855 में ब्रिटिश शासकों द्वारा मद्रास (वर्तमान चेन्नई) में की गई थी. इसके बाद कई रियासतों तथा ब्रिटिश शासनाधीन क्षेत्रों में चिड़ियाघर बने : त्रिवेंद्रम (1857), जूनागढ़ और बंबई (वर्तमान मुंबई) (1863), हैदराबाद (1872), जयपुर तथा कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) (1875), मैसूर (1892), लखनऊ (1921), त्रिचूर, उदयपुर तथा बीकानेर (1935). इस समय देश में 200 से अधिक चिड़ियाघर हैं.

भारत के चिड़ियाघरों में जंतुओं के प्रदर्शन के लिए पश्चिमी देशों में लोकप्रिय तकनीक और शैलियां अपनाई गई हैं. कार्ल हेगेनबेक का प्राकृतिक प्रदर्शन का तरीक़ा– पिंजरों को हटाकर जंतुओं को खाइयों से घेरकर रखने की प्रणाली –जर्मनी में 1905 में शुरू हुआ था. कुछ ही वर्षों

के अंदर भारत के कुछ रजवाड़ों के चिड़ियाघरों में इस प्रणाली को अपना लिया गया. लेकिन हेगेनबेक शैली को पूर्णरूपेण 1956 में दिल्ली के चिड़ियाघर में अपनाया गया, इसके बाद 1959 में हैदराबाद में इसे लागू किया गया.

पहले भारत में चिड़ियाघरों को मुख्यतः मनोरंजन और शासकों के सम्मान में बनवाया जाता था. 1950 के दशक से संरक्षण, शिक्षा, शोध (सांस्कृतिक और पारिस्थितिकीय) को प्रमुखता दी गई, जबकि पर्यटन तथा मनोरंजन गौण हो गए. आजकल ख़ासतौर पर विषयप्रधान और विशिष्ट प्रदर्शनों पर बल दिया जा रहा है. उदाहरण के लिए, जूनागढ़ के चिड़ियाघर में भारतीय सिंह और भारतीय जंगली गधे; तिरुवनंतपुरम में शेरपूंछ बंदर; गुवाहाटी में हुलॉक गिबन और हैदराबाद में भेड़िए आकर्षण का केंद्र हैं.

संपूर्ण भारत में विभिन्न आकार के चिड़ियाघर हैं. कई छोटे व बड़े शहरों तथा नगरों में निजी प्राणी संग्रह लोकप्रिय हैं, जहां उन्हें शौक़िया तौर पर और पालतू जंतुओं के व्यापार के लिए स्थापित किया गया है. अधिकांश मामलों में जानवरों को इतने बड़े पिंजरों में ही रखा जाता है, जिनमें वे मात्र जीवित रह सकें.

जैविक उद्यानों में पिंजरों के मुक़ाबले ज़्यादा बड़े घेरों में जानवरों का प्रदर्शन किया जाता है. इन घेरों को प्राकृतिक स्वरूप देने के लिए तालाब, पेड़, शाखाओं और गुफ़ाओं की व्यवस्था की जाती है. ये छोटे शहरों में स्थित हैं और कुछ नगरों में पुराने समय से चले आ रहे हैं.

प्राणी उद्यानों में जनता को शिक्षित करने और मनोरंजन के लिए सामूहिक प्रदर्शन के उद्देश्य से पिंजरों के इर्द–गिर्द भलीभांति व्यवस्थित बगीचा होता है. यहां प्रभावशाली प्रदर्शन के लिए विभिन्न जानवरों के समूहों को तालाबों, गुफ़ाओं और चट्टानों से युक्त बड़े घेरों में रखा जाता है. खाइयां रुकावट का काम करती हैं. भारत के कई बड़े नगरों में प्राणी उद्यान हैं.

सफ़ारी पार्क, जिन्हें 'चिड़ियाघर का उलट' कहा जाता है, का क्षेत्रफल 12 हेक्टेयर से 20 हेक्टेयर तक विस्तृत होता है. इस पूरे क्षेत्र को अनछुआ छोड़ दिया जाता है; केवल यहां आने वालों के लिए सुरक्षित वाहनों में सैर के लिए रास्ते बनाए जाते हैं, जहां से वे जानवरों को उनके प्राकृतिक आवास में देख सकते हैं. हैदराबाद (आंध्र प्रदेश), दिल्ली, बंगलोर (कर्नाटक), भोपाल (मध्य प्रदेश) और गिर वन (गुजरात) में सिंह, बाघ, गौर, विभिन्न मृग प्रजातियों और भालुओं के लिए इस तरह के उद्यान बनाए गए हैं.

दिल्ली, हैदराबाद (आंध्र प्रदेश), पटना (बिहार), मैसूर (कर्नाटक) और कोलकाता (पश्चिम बंगाल) में सरीसृप गृह, पक्षी गृह, निशाचर–आगार, जलजीवशाला, कीटशाला और बाल प्राणी उद्यान के रूप में विशेष प्रदर्शन की व्यवस्था की गई है. ठंडे क्षेत्रों के जानवरों को रखने के लिए, जैसे शिमला (हिमाचल प्रदेश), नैनीताल (उत्तरांचल) और दार्जिलिंग (पश्चिम बंगाल) में अधिक ऊंचाई की विशेषतायुक्त चिड़ियाघरों का विकास किया गया है.

जीव उद्यानों में जीवित जंतुओं, डायनासोर, व्हेल, कीटों और हाथियों की जीवंत प्रतिकृतियों, सचित्र आलेखों और आंकड़ों के ज़रिये प्रागैतिहासिक काल से अब तक जीवन के क्रमिक विकास

को दर्शाया जाता है. हैदराबाद (आंध्र प्रदेश), पटना (बिहार), कानपुर (उत्तर प्रदेश), दार्जिलिंग (पश्चिम बंगाल) में जीव उद्यान लोकप्रिय हैं.

जानवरों का प्रदर्शन कई तरीक़ों से किया जा सकता है. एक व्यवस्थित या वर्गीकरण पर आधारित प्रदर्शन से जीव विज्ञान के आधार पर संबंधित प्रजातियों, जैसे बंदरों, चौसिंगों, मृगों, पक्षियों तथा बड़े विडालों की प्रजातियों के बीच समानता और भिन्नता दिखाई जाती है. भौगोलिक आधार पर चिड़ियाघर में प्रदर्शन में जानवरों को उनकी उत्पत्ति के महाद्वीप (उदाहरण के लिए, एशिया, अफ़्रीका और दक्षिण अमेरिका), उनके आवास क्षेत्र (टुंड्रा, शीतोष्ण, उपोष्ण और विषुवतीय क्षेत्र), भौगोलिक क्षेत्र (हिंद–मलेशियाई, हिमालय, पुराउत्तरध्रुवीय और ऑस्ट्रेलियाई) के अनुसार प्रदर्शित किया जाता है. यह व्यवस्था 1960 के दशक में शुरू हुई और इसके आधार पर पुराने चिड़ियाघरों का पुनरोद्धार किया गया. इस तरह से अब आवास क्षेत्र का भी प्रदर्शन उपलब्ध है, जिसमें जानवरों को उनके प्राकृतिक वातावरण, जैसे मरुस्थल, जंगल, पहाड़, सवाना, घास के मैदान, पानी, दलदल और ध्रुवीय क्षेत्रों में उनके प्राकृतिक तौर पर संबंधित विविध शिकारी और शिकार के संबंधों का प्रदर्शन किया जाता है, जैसे त्रिपुरा में लोकप्रियता के आधार पर या बिना किसी क्रम के, सबसे ज़्यादा देखे जाने वाले जानवरों, जैसे बंदर, चीता, हाथी, पांडा को चुनकर आसानी से आवागमन योग्य क्षेत्रों में प्रदर्शित किया जाता है. प्रकृति पर आधारित प्रदर्शन में समान आदतों वाले प्राणियों, उड़ने वाले, तैरने वाले, बिलों में रहने वाले तथा पेड़ों पर चढ़ने वाले को साथ रखा जाता है और इसमें प्रजाति मुख्य आधार नहीं होती है. उदाहरण के लिए, चमगादड़ों को पक्षियों के साथ तथा मछलियों को मगरमच्छों के साथ रखकर ऐसा किया जा रहा है और यह कई नए चिड़ियाघरों में तथा पुनरोद्धार के बाद पुराने चिड़ियाघरों में काफ़ी लोकप्रिय हो रहा है.

स्थान की अनुकूलता के अनुसार विभिन्न प्रदर्शनों के संयोजन को अपनाया जाता है. अभी मौजूद चिड़ियाघरों में स्थान की उपलब्धता इस सिद्धांत को अपनाए जाने का प्रमुख कारण है, जबकि प्राणी एवं वनस्पति उद्यान की अवधारणा लोकप्रिय हो रही है, जिसमें पौधे और जानवर एक दूसरे पर निर्भर व संबंधित होते हैं. यह अवधारणा उन क्षेत्रों में अपनाई गई, जहां चिड़ियाघर के लिए जंगल के इलाक़े लिए गए हैं, जैसे तिरुपति एवं विशाखापट्टनम (आंध्र प्रदेश), भोपाल (मध्य प्रदेश), बानरघाटा (कर्नाटक) और वंदालुर (तमिलनाडु) में स्थानीय वनस्पति तथा जंतुओं को प्राथमिकता दी गई है.

चितपावन

कोंकणस्थ भी कहलाने वाली, पश्चिम भारत के महाराष्ट्र राज्य और कोंकण (गोवा का क्षेत्र) की एक ब्राह्मण जाति. इन ब्राह्मणों ने पूना के पेशवा के शासनकाल (1713–1818) में प्रशासक के रूप में महाराष्ट्र में उल्लेखनीय प्रतिष्ठा प्राप्त की. पेशवा भी इसी जाति के थे. इनके गोरे रंग और हल्की सुर्ख आंखों ने इस अनुमान को जन्म दिया कि ये तूफ़ान में नष्ट हुए जहाजों के यूरोपीय मल्लाहों के वंशज हैं. यद्यपि अनेक चितपावन ब्राह्मणों ने प्रशासनिक क्षेत्र में जाने की परंपरा जारी रखी है, किंतु अन्य दूसरे पेशों व पुरोहिताई में भी ये सक्रिय हैं.

चित्तूर

शहर, दक्षिणी आंध्र प्रदेश राज्य, दक्षिण भारत. चेन्नई (भूतपूर्व मद्रास) शहर से 130 किमी पश्चिम–पश्चिमोत्तर में स्थित यह शहर सड़क तथा व्यापार केंद्र है. चावल और तिलहन की पेराई यहां के मुख्य उद्योग हैं. भारतीय सेलखड़ी का अधिकांश हिस्सा निकटस्थ पहाड़ों से ही प्राप्त होता है. इसके इर्द–गिर्द का क्षेत्र मुख्यतः कडप्पा पर्वतों के पास पेन्नेरु नदी के किनारे चित्तूर बेसिन का है. प्राकृतिक संसाधन बहुत कम हैं और सिर्फ़ ज्वार, मूंगफली और बाजरा ही उल्लेखनीय कृषि उत्पाद हैं. जनसंख्या (2001) 1,52,966.

चित्तौड़गढ़

नगर, चित्तौड़ भी कहलाता है, दक्षिण–मध्य राज्य, पश्चिमोत्तर भारत. सड़क व रेलमार्गों से जुड़ा यह नगर एक कृषि व्यापार केंद्र है. चित्तौड़गढ़, जो पहले राजपूतों के मुखिया चित्रांग के नाम पर चित्रकूट कहलाता था, एक पहाड़ी ढलान की तलहटी में स्थित है. यहां चितौड़ का क़िला भी है. आठवीं शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी तक यह मेवाड़ राज्य की राजधानी तथा सिसौदिया राजपूतों का गढ़ रहा. इस पर तीन बार मुस्लिम आक्रमणकारियों, अलाउद्दीन ख़लजी (1303), गुजरात के बहादुर शाह (1534–35) और मुग़ल सम्राट अकबर (1567–68) द्वारा आक्रमण किया गया. यहां के रक्षकों ने हर बार आत्मसमर्पण करने के बजाय स्वयं के लिए मृत्यु तथा अपने परिवार के लिए जौहर (सामूहिक आत्मदाह) को चुना. अकबर द्वारा चित्तौड़गढ़ पर क़ब्ज़े के बाद (1568) मेवाड़ की राजधानी उदयपुर स्थानांतरित कर दी गई. चित्तौड़ के क़िले में अनेक महल, जैन व हिंदू मंदिर तथा यश और कीर्ति के प्रतीक, उत्कृष्ट नक़्क़ाशीदार जैन स्तंभ हैं, जिनका निर्माण क्रमशः 12वीं व 15वीं शताब्दी में हुआ था. नगर में राजस्थान विश्वविद्यालय से संबद्ध एक शासकीय महाविद्यालय है. आसपास के क्षेत्र में पहाड़ों की एक शृंखला है, जो उत्तर से दक्षिण तक विस्तृत है और एक संकरी व बंद घाटी का निर्माण करती है. कृषि यहां का मुख्य व्यवसाय है. गेहूं, मक्का, ज्वार, तिलहन, कपास और गन्ना मुख्य फ़सलें हैं. यहां लौह अयस्क तथा चूना–पत्थर का उत्खनन भी होता है. जनसंख्या (2001) ज़िला कुल 18,02,656.

विजय स्तंभ, चित्तौडगढ़, राजस्थान
फ़ोटो : स्टेफ़नी कॉमन डिंकिंस फ़ोटो रिसर्चर्स

चित्रदुर्ग

चितलदुर्ग भी कहलाता है, नगर, पूर्वी कर्नाटक राज्य, दक्षिण भारत. यह हग्गरी नदी घाटी में स्थित, कपास के व्यापार का केंद्र और रेलवे टर्मिनल है. यहां कपास की ओटाई तथा गांठ बनाने के उद्योग और एक विशालकाय दुर्ग है, जिसका निर्माण 18वीं शताब्दी में मैसूर के हैदर अली ने करवाया था. इसके पश्चिम में दूसरी शताब्दी के नगर चंद्रवल्ली के अवशेष हैं. आसपास के क्षेत्रों में चावल, गन्ना और कपास की खेती

की सिंचाई के लिए हग्गरी नदी पर बने वाणीविलास सागर बांध से पानी मिलता है. जनसंख्या (2001) 1,22,594.

चिदंबरम

नगर, पूर्वी–मध्य तमिलनाडु राज्य, दक्षिण–पूर्वी भारत. यह उपजाऊ कोलेरून नदी घाटी में, चेन्नई–तंजावुर सड़क व रेलमार्ग पर स्थित है. नगर में रेशम तथा सूती हथकरघा बुनाई तथा सिले–सिलाए वस्त्र उद्योग भी हैं, किंतु मुख्यतः यह एक खाद्य प्रसंस्करण केंद्र है. इसके नाम की उत्पत्ति तमिल शब्दों, चिट्ट (बुद्धिमत्ता) और आंपलम (वातावरण) से हुई तथा यह नटराज के रूप में भगवान शिव को समर्पित एक हिंदू मंदिर से संबंधित है. मंदिर में कई कांस्य प्रतिमाएं हैं, जो संभवतः 10वीं–12वीं सदी के चोल काल की हैं. इसमें प्रवेश के लिए भव्य गोपुरम हैं और इसका सभागृह 1,000 से अधिक स्तंभों पर टिका है. इस नगर में अन्नामलाई विश्वविद्यालय स्थित है और यह हिंदू धार्मिक शिक्षा का केंद्र है. जनसंख्या (2001) नगर 58,968.

चिनाब नदी

नदी, पश्चिमोत्तर भारत व पूर्वी पाकिस्तान, भारत के हिमाचल प्रदेश राज्य में हिमाचल हिमालय में दो धाराओं (चंद्रा व भागा) के संगम से उत्पन्न. यह पश्चिम की ओर
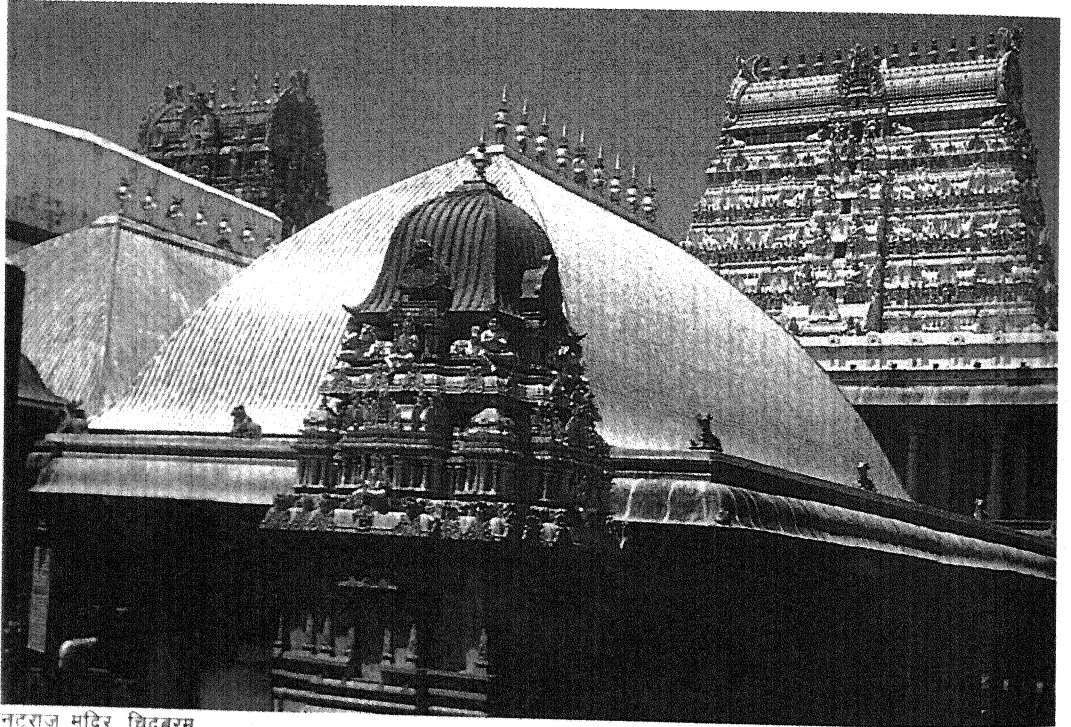
नटराज मंदिर, चिदंबरम
सौजन्य : तमिलनाडु पर्यटन विभाग

जम्मू–कश्मीर से होते हुए शिवालिक की पहाड़ियों की तीखी ढलानों व लघु हिमालय के बीच से बहती है. फिर पाकिस्तान के दक्षिण–पश्चिम में सिंधु नदी की सहायक नदी सतलुज में मिल जाती है. यह लगभग 974 किमी लंबी है और अनेक सिंचाई नहरों को जलापूर्ति करती है.

चिन्मयानंदस्वामी

चिन्मयानंदस्वामी
सौजन्य : *द हिंदू*

(ज.–8 मई 1916, एर्णाकुलम, केरल, भारत; मृ.–3 अग. 1993, सैन डियागो, कैलिफ़ोर्निया, अमेरिका). पूरा नाम स्वामी चिन्मयानंद सरस्वती, मूल नाम बालाकृष्ण मेनन, आध्यात्मिक चिंतक और वेदांत दर्शन के विश्व प्रसिद्ध विद्वान.

केरल के सामंतवादी परिवार में जन्मे मेनन का लालन–पालन पारंपरिक और सांस्कृतिक वातावरण में हुआ. स्कूल की पढ़ाई समाप्त करने के बाद उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय में विधि और अंग्रेज़ी साहित्य का अध्ययन किया. विविध रुचियों वाले मेनन विश्वविद्यालय स्तर पर अध्ययन के साथ–साथ अन्य गतिविधियों में भी संलग्न रहते थे. 1942 में वह आज़ादी के राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल हो गए और उन्हें कई महीने जेल में रहना पड़ा. स्नातक उपाधि प्राप्त करने के बाद उन्होंने नई दिल्ली के समाचार पत्र *नेशनल हेरॉल्ड* में पत्रकार की नौकरी कर ली तथा विभिन्न विषयों पर लिखने लगे. व्यावसायिक रूप से अच्छे प्रदर्शन के बावजूद मेनन अपने तात्कालिक जीवन से असंतुष्ट व बेचैन थे तथा जीवन एवं मृत्यु और आध्यात्मिकता के वास्तविक अर्थ के शाश्वत प्रश्नों से घिरे हुए थे.

इनका उत्तर ढूंढ़ने के लिए उन्होंने भारतीय तथा यूरोपीय, दोनों दर्शनशास्त्रों का गहन अध्ययन शुरू किया. स्वामी शिवानंद के लेखन से गहन रूप से प्रभावित होकर मेनन ने सांसारिकता का परित्याग कर दिया और 1949 में शिवानंद के आश्रम में शामिल हो गए. वहां उनका नामकरण स्वामी चिन्मयानंद सरस्वती किया गया, जिसका अर्थ था 'पूर्ण चेतना के आनंद से परिपूर्ण व्यक्ति'. अगले आठ वर्षों का समय उन्होंने वेदांत गुरु स्वामी तपोवन के निर्देशन में प्राचीन दार्शनिक साहित्य और अभिलेखों के अध्ययन में बिताया. इस दौरान चिन्मयानंद को अनुभूति हुई कि उनके जीवन का उद्देश्य वेदांत के संदेश का प्रसार और भारत में आध्यात्मिक पुनर्जागरण लाना है.

पुणे से आरंभ करके उन्होंने सभी मुख्य नगरों में ज्ञान–यज्ञ (धार्मिक और दार्शनिक प्रवचन) करना शुरू किया. आरंभ में पुरोहित वर्ग ने उपनिषदों और *भगवद्गीता* के पवित्र ज्ञान के मुक्त प्रसार का विरोध किया, क्योंकि उस समय तक यह ज्ञान ब्राह्मणों के लिए सुरक्षित था. चिन्मयानंद तक हर व्यक्ति की पहुंच थी. वह सत्संगों (धार्मिक सभाओं) में पुरुषों और स्त्रियों से मिलते तथा उन्हें आध्यात्मिक मार्गदर्शन देते. उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि वेदांत का उद्देश्य मनुष्य के दैनंदिन जीवन में उसे क्रमशः अधिक सुखी और संतुष्ट बनाना है, जो व्यक्ति को भीतर से स्वतः आध्यात्मिक जागरण
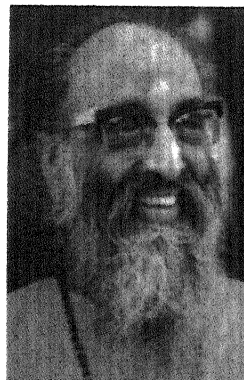
की ओर प्रवृत्त करता है. दैनिक जीवन के उदाहरणों की सहायता से वह गूढ़ दर्शन को सामान्य और तर्कपूर्ण ढंग से समझाते थे.

उन्होंने चिन्मय मिशन की स्थापना की, जो दुनिया भर में वेदांत के ज्ञान के प्रसार में संलग्न है. साथ ही यह संस्था कई सांस्कृतिक, शैक्षिक और सामाजिक कार्यों की गतिविधियों की भी देखरेख करती है. 1993 में शिकागो में विश्व धर्म संसद में उन्होंने हिंदू धर्म का प्रतिनिधित्व किया, एक शताब्दी पहले स्वामी विवेकानंद को यह सम्मान मिला था. कैलिफ़ोर्निया में सैन डियागो में दिल का घातक दौरा पड़ने से चिन्मयानंद ने महासमाधि प्राप्त की और सांसारिक जीवन से मुक्त हो गए.

चिपको आंदोलन

1973 में उत्तर प्रदेश के वनों में एक शांत, अहिंसक विरोध प्रदर्शन, जिसमें व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए वनों की अंधाधुंध कटाई को रोकने के लिए महिलाएं वृक्षों से चिपककर खड़ी हो गई थीं. यह आंदोलन सैकड़ों विकेंद्रित तथा स्थानीय स्वतःस्फूर्त प्रयासों का परिणाम था. इस आंदोलन की नेता और कार्यकर्ता मुख्यतः ग्रामीण महिलाएं थीं, जो अपने जीवनयापन के साधन व समुदाय को बचाने के लिए तत्पर थीं. पर्यावरणीय विनाश के ख़िलाफ़ शांत अहिंसक विरोध प्रदर्शन इस आंदोलन की अद्वितीय विशेषता थी.

उत्तर प्रदेश में इस आंदोलन ने 1980 में तब एक बड़ी जीत हासिल की, जब तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने प्रदेश के हिमालयी वनों में वृक्षों की कटाई पर 15 वर्षों के लिए रोक लगा दी. बाद के वर्षों में यह आंदोलन उत्तर में हिमाचल प्रदेश, दक्षिण में कर्नाटक, पश्चिम में राजस्थान, पूर्व में बिहार और मध्य भारत में विंध्य तक फैला. उत्तर प्रदेश में प्रतिबंध के अलावा यह आंदोलन पश्चिमी घाट और विंध्य पर्वतमाला में वृक्षों की कटाई को रोकने में सफल रहा. साथ ही यह लोगों की आवश्यकताओं और पर्यावरण के प्रति अधिक सचेत प्राकृतिक संसाधन नीति के लिए दबाव बनाने में भी सफल रहा.

चिल्का झील

अनूप (लैगून) झील, पूर्वी उड़ीसा राज्य, पूर्वी भारत, तलवार जैसे एक संकरे भूखंड से बंगाल की खाड़ी से अलग. यह भारत की सबसे भव्य और विशालतम लवण जलीय झील है. यह 72 किमी लंबी, 8–21 किमी चौड़ी तथा लगभग 2 मीटर गहरी और लगभग 1,100 वर्ग किमी क्षेत्र में फैली है. दिसंबर से जून के शुष्क महीनों के अलावा, जब समुद्र का लवणीय जल एक छोटे मार्ग से झील में प्रवेश करता है, दया और भार्गवी नदियां झील को पानी की आपूर्ति करती हैं. विशाल मानसूनी ज्वारों द्वारा गाद से भर दिए जाने से पहले चिल्का किसी समय सागर की एक खाड़ी थी. हरिताभ द्वीपों, हनीमून आईलैंड और ब्रेकफ़ास्ट आईलैंड जैसे ख़ूबसूरत नामों वाले द्वीपों से सजी इस झील में, जलीय वनस्पति की विभिन्न क़िस्में हैं. यह साइबेरिया जैसे दूरस्थ स्थानों से आने वाले प्रवासी पक्षियों के लिए अभयारण्य और शीतकालीन सैरगाह के रूप में भी

चिल्का झील
सौजन्य : डी.के. सिंह

जानी जाती है. देव कालीजई का प्रसिद्ध मंदिर कालीजई द्वीप पर स्थित है, जो दक्षिण–पूर्वी रेलवे के रंभा रेलवे स्टेशन से लगभग 16 किमी की दूरी पर स्थित है. चिल्का झील में शिकार, नौका विहार तथा मछली पकड़ने का आनंद लिया जा सकता है. इसके तट के आसपास मत्स्य उद्योग और नमक के खेत हैं. इस झील में केकड़े, बांगड़ा (मैकरेल) मछली और झींगों की खोज में रोजाना सैकड़ों नावें चलती हैं.

चिश्तिया

भारत और पाकिस्तान में एक मुस्लिम सूफ़ी पंथ, जिसका नाम चिश्त गांव पर पड़ा, जहां इसके प्रवर्तक सीरिया के अबु इशाक़ बस गए थे.

12वीं शताब्दी में इसे भारत में ख़्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती लाए और चिश्तिया भारत के सबसे लोकप्रिय रहस्यवादी पंथों में से एक बन गया. इसमें शुरू में सबसे ज़्यादा बल वहदत अल–वजूद या ईश्वर के साथ एकाकार होने के सूफ़ी सिद्धांत को दिया गया. ईश्वर आराधना से विमुख करने वाली हर भौतिक वस्तु को त्याज्य माना गया. इसमें सांसारिक जुड़ाव की बिल्कुल अनुमति नहीं दी गई और सस्वर या मौन रहकर ईश्वर का नाम–जाप (जिक्र जाहिरी, जिक्र खफी) चिश्ती मत का आधार बना. इसके मतावलंबी

शांतिवादी थे. आज भी प्रारंभिक अनुयायियों के आदर्शों में श्रद्धा बनी हुई है, लेकिन 'संपत्ति का स्वामित्व' जैसे आचार संशोधनों को स्वीकार कर लिया गया है.

चिश्तिया इतिहास में महान शेख़ों (लगभग 1200–1356) का काल महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है. इस काल में उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा राजपूताना के उत्तरी प्रांतों में ख़ानक़ाहों की केंद्रीकृत संचालन व्यवस्था स्थापित हुई. 14वीं शताब्दी से ये ख़ानक़ाहें प्रांतीय संस्थान बन चुकी थीं. यही इसकी विभिन्न प्रशाखाओं की मूल जड़ें हैं. 15वीं शताब्दी में रूदावली की सबीरिया प्रशाखा तथा 18वीं शताब्दी में दिल्ली में निज़ामिया प्रशाखा को यहीं से पुनर्जीवन मिला.

चीता

इसे शिकारी तेंदुआ (*अकीनोनिक्स जुबाटस*) भी कहते हैं. यह *फ़ीलिडी* परिवार का छरहरा, लंबी टांगों वाला विडाल है, जो दक्षिणी मध्य और पूर्वी अफ़्रीका के खुले मैदानों में पाया जाता है. मध्य–पूर्व में भी इसका आवास था, लेकिन वहां से यह विलुप्त हो चुका है. कम दूरी तक दौड़ने में चीता धरती का सबसे तेज़ जानवर है और यह प्रति घंटा 100 किमी की गति से दौड़ सकता है. इसकी लंबी टांगों और मज़बूत पिछले पुट्ठों से ज़ाहिर होता है कि यह दौड़ने के लिए ही बना है. इसके पंजे, जो खिंचाव उपलब्ध कराते हैं, आंशिक रूप से ही सिकोड़े जा सकते हैं और इन पर रक्षात्मक आवरण भी नहीं होता है. इस प्रकार यह अन्य विडालवंशियों से भिन्न है.

चीते की लंबाई 140 सेमी तक होती है, इसके अलावा पूंछ 75–80 सेमी लंबी होती है. कंधों तक इसकी औसत ऊंचाई 80 सेमी और वज़न 50–60 किग्रा होता है. जन्म से लेकर तीन महीने तक शावक चीते की खाल पर आकर्षक गहरे रंग के धब्बे और सिर, गर्दन तथा पीठ पर लंबे नीले–स्लेटी बाल होते हैं. वयस्क के खड़े खुरदरे रोएं ऊपरी हिस्से में बालुई पीले और निचले हिस्से में सफ़ेद होते हैं और अनेकानेक छोटे काले धब्बों से भरे होते हैं; दोनों आंखों के कोने से काले रंग की रेखा चेहरे के नीचे तक जाती है. किंग चीता, कभी जिसे ग़लती से एक अलग प्रजाति (*ए. रेक्स*) माना जाता था, एक ऐसी क़िस्म है, जिसमें धब्बे आंशिक रूप से आपस में मिलकर धारियों का निर्माण करते हैं.
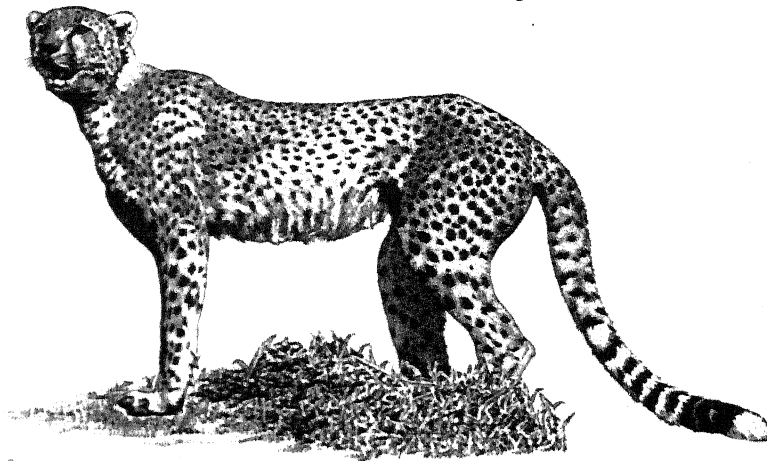
चीता
सौजन्य : सेंटर फॉर एन्वायर्नमेंट एजुकेशन, अहमदाबाद

चीता अकेले या छोटे समूहों में शिकार करता है. आमतौर पर यह सवेरे या दोपहर बाद शिकार करता है, पहले सावधानी से दबे पांव शिकार (आमतौर पर छोटा बारहसिंगा) तक पहुंचता है और एक आख़िरी तेज़ दौड़ में उसे दबोच लेता है. एशिया में काफ़ी अर्से से इसे पकड़कर पालतू बनाया जाता रहा है, जहां शिकार खेलने में इसका उपयोग होता है, लेकिन बंधन में यह शायद ही कभी प्रजनन करता है. लगभग 95 दिनों की गर्भावस्था के बाद मादा दो से चार शावकों को जन्म देती है.

चीता *अकीनोनिक्स* जाति के अंतर्गत एकमात्र प्रजाति है. चीते की अफ़्रीकी नस्ल सापेक्ष रूप से असामान्य है. एशियाई नस्ल (*ए. जुबाटस वेनाटिकस*) को *रेड डेटा बुक* में लगभग पूरी तरह विलुप्तप्राय प्राणी के रूप में दर्ज किया गया है और यह अपने पहले के अधिकांश इलाक़ों से विलुप्त हो चुका है.

चीनी मोम

चीनी कीट मोम या कीट मोम भी कहलाता है. यह सफ़ेद या पीला–सफ़ेद दानेदार मोम होता है, जो जलंगीर वसा (स्पर्मसेटी) से समानता रखता है, किंतु अधिक कठोर, अधिक भुरभुरा और उच्च गलनांक वाला होता है; यह चीन व भारत में सामान्यतः पाए जाने वाले खपड़ी कीट (*सेरोप्लास्ट्स सेरीफ़ेरस)* और चीन व जापान में पाए जाने वाले इसी के एक संबंधी कीट, *एरीकेरस पे–ला* द्वारा कुछ वृक्षों की शाखाओं पर संगृहीत किया जाता है. कीट और उसके स्राव को एकत्र किया जाता है तथा कच्चा मोम प्राप्त करने के लिए उसे पानी के साथ उबाला जाता है. कीटों का खोखला शरीर, जो तल में जम जाता है, सूअरों के भोजन के रूप में इस्तेमाल किया जाता है.

चीनी मोम का उपयोग मुख्यतः मोमबत्ती बनाने, पॉलिश करने तथा काग़ज़ की सरेस के रूप में होता है. चीन में इस मोम का इस्तेमाल औषधि के रूप में होता है. गला बैठने, दर्द, कृमियों और अवसाद की दवा (खाने वाली) के रूप में इसका इस्तेमाल किया जाता है. यह टूटी हुई हड्डियों को जोड़ने में मदद करता है. बाह्य रूप से यह घावों के उपचार के लिए मरहम के रूप में काम में लाया जाता है.

चुरू

नगर, चुरू ज़िले का प्रशासनिक मुख्यालय, राजस्थान राज्य, पश्चिमोत्तर भारत. चुरू ऊन, ज्वार–बाजरा, चना, गाय–भैंस व नमक का स्थानीय बाज़ार है और यहां के कुटीर उद्योगों में हथकरघा, मिट्टी के बर्तन तथा चमड़े के उद्योग शामिल हैं. जाटों (उत्तरी भारत का खेतिहर समुदाय) के एक सरदार चुरू द्वारा 1620 में स्थापित इस नगर में एक अस्पताल और राजस्थान विश्वविद्यालय से संबद्ध एक महाविद्यालय है.

16,829 वर्ग किमी क्षेत्रफल वाला चुरू ज़िला एक अर्द्ध शुष्क रेतीला मैदानी क्षेत्र है, जिसमें पूर्वोत्तर में बहने वाली कतली एकमात्र नदी है. ज़िले के दक्षिण–पश्चिम में अस्थायी रेतीले टीले बगार क्षेत्र का हिस्सा हैं, जहां व्यापक स्तर पर भेड़, गाय–बैल

और ऊंट पालन होता है. चुरू में कई हवेलियां हैं, विशेषकर कोठार और कन्हैया हवेली प्रसिद्ध हैं, जिनमें ढोला–मारू, सस्सी–पुनु और अन्य लोकनायकों के आदमक़द चित्र लगे हैं. अन्य दर्शनीय स्थलों में सालासर बालाजी का मंदिर, रतनगढ़ क़िला (1820) और 1,000 से अधिक दरवाजों वाली छह मंज़िली सुराणा हवेली शामिल हैं. चुरू के पास के पर्यटक स्थल ताल छप्पर में लुप्तप्राय हो रही मृग प्रजाति, काला हिरन (ब्लैक बक), पाई जाती है और यह कई प्रवासी पक्षियों का भी आश्रय स्थल है. बाजरा, चना, और दलहन प्रमुख फ़सलें हैं. यहां खड़िया मिट्टी (जिप्सम) की खानें भी हैं. जनसंख्या (2001) नगर 97,627.

चेंगलपट्टु

नगर, पूर्वोत्तर तमिलनाडु राज्य, दक्षिण–पूर्वी भारत. यह चेन्नई (भूतपूर्व मद्रास) नगर से लगभग 56 किमी दक्षिण–पश्चिम में स्थित है. पलार नदी के तट पर स्थित चेंगलपट्टु एक रेलवे जंक्शन है और उत्तरी कोरोमंडल तट के लिए वाणिज्यिक केंद्र की भूमिका निभाता है. यहां मद्रास विश्वविद्यालय से संबद्ध एक मेडिकल स्कूल और अन्य महाविद्यालय हैं. इसके नाम का अर्थ है, 'लाल कमल फूलों का शहर.'

चेंगलपट्टु के दक्षिण–पूर्व में महाबलीपुरम के निकट रेतीली धरती में एक नख़लिस्तान
फ़ोटो : बी.एस. ओझा – टॉम स्टेक ऐंड एसोसिएट्स

चेंगलपट्टु का इतिहास दूसरी शताब्दी ई.पू. के आरंभिक चोल वंश से शुरू होता है. विजयनगर के शासकों (शासनकाल, 1336–1565) द्वारा बनवाया गया दुर्ग इस शहर का सबसे प्रमुख भवन है. लगभग 1640 में इस शहर पर गोलकुंडा के मुस्लिम शासक का अधिकार हुआ और 1752 में अंग्रेज़ सैनिक रॉबर्ट क्लाईव ने इस पर क़ब्ज़ा कर लिया. इसके आसपास का इलाक़ा मुख्य रूप से चावल की खेती वाला क्षेत्र है, इसका अपवाद सिर्फ़ हिंद महासागर का रेतीला तट क्षेत्र है, जहां व्यापक रूप से कैसुएरिना या फराश के वृक्ष उगाए गए हैं. इस क्षेत्र में कई ऐतिहासिक स्थल और स्मारक हैं, जिनमें निकटस्थ महाबलीपुरम (वर्तमान मामल्लपुरम) में पल्लव शासकों द्वारा निर्मित कई मंदिर शामिल हैं. इस क्षेत्र पर आक्रमण करना आसान था और यहां की उपजाऊ कृषि योग्य भूमि पर क्रमशः विजयनगर, मुस्लिम, मराठा तथा ब्रिटिश सेनाओं ने अधिकार किया. अब इसकी महत्ता चेन्नई के खाद्यान्न उत्पादक भीतरी प्रदेश के रूप में है. जनसंख्या (2001) 62,631.

चेंचु

दक्षिण भारत के लोग, संख्या लगभग 24,000, आंध्र प्रदेश राज्य के निवासी. ये लोग क्षेत्र की द्रविड़ भाषा तेलुगु की एक भिन्न बोली बोलते हैं. इनके घास–फूस से बने गोल घर, क्षेत्र में रहने वाले अन्य लोगों के घरों से अलग होते हैं. कुछ चेंचु अपना भोजन शिकार द्वारा और जंगलों से खाद्य पदार्थ, विशेषकर कंद एकत्र करके प्राप्त

करते हैं. धनुष और बाण, धातु के शीर्ष वाली खुदाई की छड़, कुल्हाड़ी और साधारण चाकू उनके हथियार हैं. चेंचु भारत के मूल निवासियों में से हैं, जो प्रभावशाली हिंदू सभ्यता से सबसे ज़्यादा अलग–थलग हैं. इनके रीति–रिवाज बहुत कम और साधारण हैं; धार्मिक और राजनीतिक विशिष्टताएं भी नगण्य हैं. छोटे संयुग्मी परिवारों का बाहुल्य है, जिनमें महिलाओं को पुरुषों के बराबर दर्जा हासिल है और वे परिपक्वता के बाद ही विवाह करती हैं.

अधिकांश चेंचु बढ़ते कृषक समुदाय के कारण कृषि तथा वन मज़दूर बन गए हैं और अपनी घुमंतू, भोजन एकत्र करने वाली जीवन शैली से बाहर आ गए हैं. अधिकांश लोगों ने हिंदू देवताओं और प्रथाओं को अपना लिया है और उन्हें अपेक्षाकृत ऊंची जातीय हैसियत प्राप्त है.

चेट्टि

दक्षिण भारत में व्यापक रूप से फैला जाति समूह, जो मोटे तौर पर उत्तर भारत में व्यापारिक जातियों के ऐसे ही एक समूह 'बनिया' से मिलता–जुलता है. ये मुख्यतः वाणिज्यिक व्यापार में दक्षता रखते हैं, जैसे महाजन, साहूकार, मध्यस्थ, दुकानदार और व्यापारी. ये एक विशेष व्यापारिक शब्दावली का प्रयोग करते हैं, जिसमें आमतौर पर अंकों के गूढ़ नाम होते हैं. कुछ चेट्टि जातियों में स्पष्टतः आर्थिक कारणों से 10 या 15 वर्षों के अंतराल पर सामूहिक विवाह आयोजित किए जाते हैं. इस तरह के विवाह कार्यक्रम कई महीने चल सकते हैं.

चेन्नई

शहर, भूतपूर्व मद्रास, तमिलनाडु राज्य की राजधानी, दक्षिणी भारत, बंगाल की खाड़ी के कोरोमंडल तट पर स्थित. मद्रास मछुआरों के गांव मद्रासपटनम का छोटा रूप था, जहां ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने 1639–40 में एक क़िले और व्यापारिक चौकी का निर्माण किया था. उस समय सूती कपड़े की बुनाई एक स्थानीय उद्योग था और अंग्रेज़ों ने बुनकरों तथा स्थानीय व्यापारियों को क़िले के आसपास बसने के लिए बुलाया. 1652 तक फ़ोर्ट सेंट जॉर्ज फ़ैक्ट्री को प्रेज़िडेंसी (अध्यक्ष द्वारा शासित एक प्रशासकीय इकाई) की प्रतिष्ठा मिल गई और 1668 और 1749 के बीच कंपनी ने अपने नियंत्रण का विस्तार किया. 1801 के लगभग अंतिम स्थानीय शासक से उसकी शक्तियां छीन ली गईं और अंग्रेज़ दक्षिण भारत के स्वामी बन गए, तब मद्रास उनकी प्रशासकीय तथा व्यापारिक राजधानी बन गया.

मद्रास का विकास बिना किसी योजना के 17वीं शताब्दी के भारतीय आवासों और क़िले के चारों ओर हुआ. इसके उत्तर तथा पश्चिमोत्तर में औद्योगिक क्षेत्र हैं. मुख्य आवासीय क्षेत्र पश्चिम तथा दक्षिण में और पुराने गांव मध्य भाग में हैं. द्रविड़ शैली में बने सात बड़े मंदिर शहर के सबसे विशिष्ट भवन हैं, जो जॉर्ज टाउन, मायलापोर और ट्रिप्लीकेन में स्थित हैं. ब्रिटिश काल की इमारतों में, चेपक पैलेस, यूनिवर्सिटी सीनेट हाउस (दोनों दक्कन मुस्लिम शैली में), विक्टोरिया टेक्निकल इंस्टिट्यूट और उच्च न्यायालय भवन

अन्ना स्मारक, चेन्नई
सौजन्य : तमिलनाडु पर्यटन विभाग

(दोनों भारतीय–मुस्लिम शैली में) सबसे आकर्षक माने जाते हैं. कई आधुनिक ऊंची इमारतें भी बन गई हैं.

चेन्नई के उद्योगों में वाहन उद्योग, एक विद्युत अभियांत्रिकी कारख़ाना, रबर व उर्वरक कारखाने और एक तेल शोधन कारख़ाना शामिल है. चमड़ा, लौह अयस्क और सूती वस्त्र चेन्नई से निर्यात की जाने वाली मुख्य वस्तुएं हैं. गेहू, मशीनें, लोहा तथा इस्पात और कपास का आयात किया जाता है.

चेन्नई मे अनेक शिक्षण संस्थाएं हैं. राज्य चिकित्सा महाविद्यालयों, अभियांत्रिकी एवं तकनीकी महाविद्यालयों, कॉलेज ऑफ़ कर्नाटिक म्यूज़िक, कॉलेज ऑफ़ आर्ट्स ऐंड क्राफ्ट्स और शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालयों में व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त की जा सकती है. मद्रास विश्वविद्यालय (1857) भी इसी शहर में स्थित है, जिसमें कई आधुनिक शोध केंद्र हैं. यहां इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी, सेंट्रल लेदर रिसर्च इंस्टिट्यूट और वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद की क्षेत्रीय प्रयोगशालाएं आदि अनेक उल्लेखनीय वैज्ञानिक संस्थाएं हैं. कृषि विकास के क्षेत्र में एम.एस. स्वामीनाथन रिसर्च फाउंडेशन एक अग्रणी संस्थान है.

सांस्कृतिक संस्थाओं में मद्रास संगीत अकादमी शामिल है, जो कर्नाटक संगीत (बंगाल की खाडी के दक्षिणी कोरोमंडल तट और दक्कन के पठार के बीच स्थित क्षेत्र का

प्रसिद्ध संगीत) को प्रोत्साहन देने के लिए समर्पित है. कलाक्षेत्र नृत्य और संगीत का केंद्र है तथा मायलापोर स्थित रसिक रंजिनी सभा रंगमंचीय कलाओं को प्रोत्साहन देती है. एक उपनगरीय क्षेत्र, कोडमबक्कम, अपने कई फ़िल्म स्टूडियो के कारण दक्षिणी भारत का हॉलीवुड कहलाता है. तीन रंगशालाएं– चिल्ड्रन्स थिएटर, अन्नामलाई मनरम और म्यूज़ियम थिएटर प्रसिद्ध हैं मद्रास शासकीय संग्रहालय में इतिहास और तमिलनाडु के भौतिक पक्षों का प्रदर्शन किया गया है. फ़ोर्ट म्यूज़ियम में ईस्ट इंडिया कंपनी की पुरानी वस्तुओं का लघु संग्रह है तथा नेशनल आर्ट गैलरी में चित्रों का संग्रह है. जनसंख्या (2001) 42,16,268.

वेल्लुवरकोट्टम, संत कवि तिरुवल्लुवर का स्मारक, चेन्नई

चेर वंश

तमिलाकम (दक्षिण भारत) के तीन प्रमुख राजघरानों में से एक, जो मालाबार (पश्चिम) तट और भीतरी क्षेत्र में केंद्रित था. अन्य दो में से एक पांड्य थे, जिनकी राजधानी मदुरै (तमिलनाडु) थी और दूसरे चोल थे, जो कावेरी घाटी तथा तंजावुर से जुड़े थे. करूर (तिरुचिराप्पल्ली ज़िला) के निकट प्राप्त दूसरी शताब्दी के चेर अभिलेखों में इर्रूमपोरै जाति का संदर्भ मिलता है. संगम (आरंभिक तमिल) साहित्य में चेर प्रमुखों के नामों का उल्लेख है, जिनका काल निर्धारण पहली सदी है. कहा जाता है कि उनमें से नेदुंजेरल अदान ने यवन (यूनानी या विदेशी) जहाज़ों पर आक्रमण किया और फिरौती के लिए यवन व्यापारियों को बंधक बनाया. उनके पुत्र सेनगुतुवन, जिनका कविताओं में काफ़ी गुणगान किया गया है, का उल्लेख गजबाहु के श्रीलंका में शासन के संदर्भ में भी मिलता है, जिनकी तिथि या तो दूसरी शताब्दी के पहले चतुर्थांश की है या फिर आख़िरी, जो इस बात पर निर्भर है कि वह पूर्ववर्ती गजबाहु हैं या परवर्ती.

चेरापूंजी

गांव, पूर्वी खासी पहाड़ी ज़िला, मेघालय राज्य, पूर्वोत्तर भारत. यह शिलांग से लगभग 55 किमी दक्षिण–पश्चिम में शिलांग पठार पर स्थित है. यह विश्व में दर्ज दूसरे सर्वाधिक औसत वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र के रूप में विख्यात है. यहां 74 वर्षों तक 11,430 मिमी की दर से बारिश हुई. इससे अधिक बारिश का कीर्तिमान सिर्फ हवाई के माउंट वैयालेआल का है, जहां 11,684 मिमी का औसत है. इसके अतिरिक्त यहां अगस्त 1860 से जुलाई 1861 तक 12 महीनों में सबसे अधिक कुल वर्षा 26,467 मिमी और जुलाई 1861 में यहां अब तक एक महीने में हुई सबसे अधिक बारिश, 9,296 मिमी

आदिवासी और ग्रामीण झोपड़िया, चेरापूंजी, मेघालय
फोटो डेविड चन्नर– नैन्सी पॉमर एजेंसी

का भी कीर्तिमान है. यहां अधिक वर्षा होने का कारण पठार के दक्षिणी छोर पर इस गांव की अवस्थिति है, जहां से मानसून दक्षिणी ढलान पर ऊपर उठकर तेज़ी से ठंडा होता है और भारी मात्रा में संघनित पानी छोड़ता है.

1864 में शिलांग को राजधानी बनाए जाने से पहले चेरापूंजी स्वतंत्र खासी राज्यों की राजधानी थी; यहां अब भी खासी जनजातियों का निवास है, जो अधिकांशतः ईसाई हैं और जिनमें मातृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था पाई जाती है. चेरापूंजी इस क्षेत्र के कृषि उत्पादों का व्यापार केंद्र है और इसके निकट ही चेरा कोयला खान है. यहां की आबादी मुख्यतः खासी है. जनसंख्या (2001) 10,086.

चैतन्य

पूरा नाम श्रीकृष्ण चैतन्य, गौरांग भी कहलाते थे, मूल नाम विश्वंभर मिश्र, (ज.–1485, नबद्वीप, बंगाल, पूर्वोत्तर भारत; मृ.–1533, पुरी, उड़ीसा), हिंदू अध्यात्मवादी संत, जिनके भावप्रवण गीतों तथा नृत्य के माध्यम से की जाने वाली कृष्ण आराधना का बंगाल में वैष्णववाद पर गहरा प्रभाव पड़ा.

ब्राह्मण पुत्र चैतन्य का लालन–पालन भक्ति व स्नेह के परिवेश में हुआ. उन्होंने संस्कृत ग्रंथों का गहन अध्ययन किया और पिता की मृत्यु के पश्चात अपना एक विद्यालय खोला. 22 वर्ष की आयु में अपने पिता के श्राद्ध के लिए की गई गया की तीर्थयात्रा में चैतन्य को गहन धार्मिक अनुभव हुए, जिनसे उनका संपूर्ण व्यक्तित्व और दृष्टिकोण ही बदल गया. ईश्वर अनुरक्त व्यक्ति बनकर वह नबद्वीप लौटे, जिसका सांसारिक बंधनों से कोई सरोकार न था.

शीघ्र ही चैतन्य की एक भक्तमंडली बन गई और उन्होंने सामूहिक धार्मिक आराधना, कीर्तन का आरंभ किया. इसमें समवेत स्वर में मंत्रोच्चार तथा ईश्वर की स्तुति की जाती थी, साथ ही प्रायः नृत्य भी किया जाता था और भक्त अंततः समाधि की चरमावस्था में पहुंच जाता था. 1510 ई. में चैतन्य ने औपचारिक रूप से संन्यास लिया और अपना नाम श्रीकृष्ण चैतन्य रख लिया. उनकी इच्छा वृंदावन (कृष्ण के बाल्यकाल तथा युवाकाल की क्रीड़ास्थली) जाने की थी, लेकिन अपनी माता के आग्रह पर वह पुरी में रहने पर सहमत हो गए, जहां उनके अनुयायी आसानी से उनके संपर्क में रह सकते थे.

यद्यपि चैतन्य ने स्वयं कोई धर्मशास्त्र या धार्मिक आचार नहीं लिखे, तथापि उनके द्वारा प्रमुख शिष्यों के चुनाव और उनको दिए आदेशों से उनके जीवनकाल में ही प्रमुख वैष्णव संप्रदाय का जन्म हुआ, जिसे आमतौर पर चैतन्य संप्रदाय अथवा गौड़ीय संप्रदाय कहा जाता है. चैतन्य के लगातार और लंबे भाव–विह्वल धार्मिक अनुभवों ने उनके स्वास्थ्य को प्रभावित किया. खुद को पड़ने वाले दौरों की चैतन्य ने मिरगी के

दौरों के रूप में पहचान की. उनकी मृत्यु की सही तिथि तथा परिस्थितियों के बारे में जानकारी नहीं है, लेकिन चैतन्य मान्यता के अनुसार, भक्ति की चरमावस्था में उन्होंने पुरी के महासागर में जल समाधि ले ली थी.

चैतन्य आंदोलन

(बंगाली गौड़ीय संप्रदाय, 'गौड़ मत'), हिंदू धर्म का अत्यंत भावनात्मक स्वरूप, जो 16वीं शताब्दी से बंगाल और पूर्वी उड़ीसा में फला–फूला. इसका नामकरण मध्ययुगीन संत चैतन्य (1485–1533) के नाम पर हुआ, भगवान कृष्ण के प्रति जिनके भावप्रवण समर्पण ने इस आंदोलन को प्रेरित किया. चैतन्य के लिए कृष्ण और उनकी प्रेमिका राधा की कथाएं ईश्वर और मानव आत्मा के आपसी प्रेम की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति थीं. भक्ति अन्य सभी धार्मिक आचारों के ऊपर पहुंच गई और इसे दैवी इच्छा के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण के रूप में ग्रहण किया गया.

चैतन्य आंदोलन की शुरुआत संत के जन्मस्थान नबद्वीप (बंगाल) में हुई. आरंभ से ही सामूहिक गायन के रूप में कीर्तन (या संकीर्तन) आराधना का पसंदीदा और विशिष्ट स्वरूप था. इसमें सरल भजनों के गायन और ईश्वर के नाम का जाप शामिल होता है, जिसके साथ ढोल व मंजीरा बजाया जाता है. इस गीत–संगीत की तान पर कई घंटों तक झूमने से सामान्यतः धार्मिक आनंदातिरेक की स्थिति उत्पन्न हो जाती है.

चैतन्य न तो धर्मशास्त्री थे और न ही लेखक. आरंभ में उनके अनुयायियों का संगठन, उनके निकट सहयोगियों नित्यानंद और अद्वैत का कार्य था. इन तीनों को तीन प्रभु कहा जाता है और उनकी प्रतिमाएं संप्रदाय के मंदिरों में स्थापित हैं.

छह गोस्वामियों (धार्मिक गुरु, शाब्दिक अर्थ गुरुओं के स्वामी) के नाम से प्रसिद्ध चैतन्य के छह शिष्यों के समूह ने आंदोलन के लिए धर्मशास्त्र की रचना की. चैतन्य के अनुरोध पर यह विद्वान समूह मथुरा के निकट वृंदावन में बस गया, जो राधा–कृष्ण की किंवदंतियों का स्थल है. छह गोस्वामियों ने संस्कृत में विशाल धार्मिक और भक्ति साहित्य की रचना की, जिसमें आंदोलन के सिद्धांतों और आनुष्ठानिक आचारों को परिभाषित किया गया. वृंदावन और मथुरा के तीर्थस्थलों की पुनर्स्थापना सभी वैष्णवों (भगवान विष्णु के भक्त) के लिए महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी. हालांकि ऐसा प्रतीत होता है कि उनके जीवनकाल में भी चैतन्य की कृष्ण के अवतार के रूप में पूजा की जाती थी, लेकिन एक शरीर में कृष्ण और राधा, दोनों के अवतार के सिद्धांत को बाद के धार्मिक बंगाली लेखकों ने प्रणालीबद्ध तरीक़े से विकसित किया.

इस संप्रदाय के वर्तमान नेता, जिन्हें गोस्वामी कहा जाता है, चैतन्य के आरंभिक शिष्यों और सहयोगियों के वंशज (कुछ अपवाद समेत) हैं. योगियों को वैरागी कहा जाता है. इस समूह में स्वर्गीय ए.सी. भक्तिवेदांत भी थे, जो स्वामी प्रभुपाद के रूप में विख्यात थे और उनका विश्वास था कि चैतन्य के प्रति निष्ठा से विश्व के सभी लोगों का कल्याण होगा. वह इंटरनेशनल सोसाइटी फ़ॉर कृष्णा कांशसनेस (इस्कॉन) के संस्थापक

थे, जिसे सामान्यतः 'हरे कृष्णा' कहा जाता है, जो विश्व भर में चैतन्य आंदोलन के विश्वासों और आचारों को स्थापित करने का प्रयास कर रही है.

चैत्य

(संस्कृत शब्द, अर्थात 'दर्शनीय', इस प्रकार 'पूजनीय'), बौद्ध धर्म में पवित्र स्थान या वस्तु. मूलतः चैत्य को सांसारिक आत्माओं का प्राकृतिक वास माना जाता था और अक्सर उन्हें वृक्षों के छोटे झुरमुटों या एक वृक्ष में ही अवस्थित मान लिया जाता था. लगभग 200 ई.पू. के आसपास के जैन और बौद्ध साहित्य के अनुसार घुमक्कड़ भारतीय योगी स्थानीय तीर्थयात्रियों से भिक्षा मांगने और चैत्यों में निवास करने वाले देवताओं के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए चैत्यों के पास एकत्र होते थे. बाद में चैत्य शब्द का विशेष अर्थ भिक्षु वैरागियों के मिलने का स्थान या ध्यानकुंज तथा जनसाधारण के लिए तीर्थस्थल हो गया.
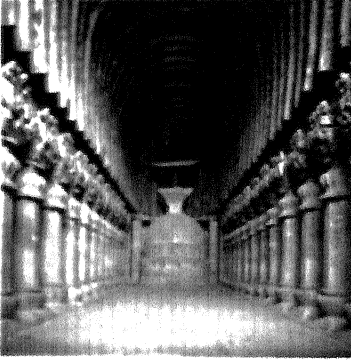
पुणे के निकट कार्ले चैत्य का सभा भवन, महाराष्ट्र
फोटो : ई.बी. इंको

ऐसा प्रतीत होता है कि इसके बाद के वर्षों में ध्यान और तीर्थस्थल माने जाने वाले ये कुंज अधिक स्थायी और संभवतः काष्ठीय संरचना में परिवर्तित हो गए, जिनमें वहां आने वाले लोग निवास करते थे. दूसरी शताब्दी ई.पू. से आठवीं शताब्दी तक चैत्यों को सीधे पश्चिमी घाट के शैल कगारों पर उत्कीर्ण किया गया, जो अपने काष्ठीय आदि प्रारूप से मिलता–जुलता था. उदाहरण के लिए, गुफाओं की छत पर शहतीर की तरह की आकृति उत्कीर्ण की गई है. इन स्थायी चैत्यों की विशेषता में एक केंद्रीय चौकोर मध्यभाग शामिल है, जो छत को सहारा देने वाले स्तंभों की दो कतारों के द्वारा दोनों तरफ पार्श्व वीथि से अलग होता है. अक्सर इस क्षेत्र की परिरेखा या परिधि पर छोटे ध्यान कक्षों की कतार होती है और कमरे के एक छोर पर एक अर्द्ध वृत्ताकार कक्ष स्थित होता है. अक्सर इन अर्द्ध वृत्त कक्षों में स्तूप स्थित होता है, जो गुंबदयुक्त संरचना है, जिसमें पवित्र वस्तुएं संरक्षित की जाती हैं और बौद्ध संप्रदाय के पूजन का केंद्र बिंदु है.

पश्चिम भारत में पुणे (पूना) के पास पहली शताब्दी के अंतिम वर्षों में निर्मित कार्ले का उत्कृष्ट चैत्य–कक्ष, शास्त्रीय कक्षों का एक बेहतरीन उदाहरण है.

चोल वंश

दक्षिण भारत के इस तमिल शासक वंश की पुरातनता अज्ञात है, लेकिन यह प्राचीन संगम कविताओं के समय (लगभग 200 ई.) विद्यमान था. मौर्य सम्राट अशोक के अभिलेखों में चोलों का उल्लेख उनके साम्राज्य के दक्षिण में स्वतंत्र निवासियों के रूप

गंगैकोंडचोलपुरम, तमिलनाडु में मूर्ति

में हुआ है. इस राजवंश का उत्कर्ष कावेरी की समृद्ध घाटी में हुआ था. उरैयूर (वर्तमान तिरुचिराप्पल्ली {त्रिचिनापल्ली}) इस वंश की प्राचीनतम राजधानी थी और पुहार इसका प्रमुख बंदरगाह था.

पौराणिक राजा कारैकाल एक ऐसे पूर्वज थे, जिनके माध्यम से चोलों ने उरैयूर परिवार से संबंधित होने का दावा किया. चोल देश (कोरोमंडल) दक्षिण में वैगई नदी से उत्तर में तोंडईमंडलम तक फैला हुआ था, जिसकी राजधानी कांची (कांचीपुरम) में अवस्थित थी.

नौवीं शताब्दी के बाद से चोलों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त है. उस समय वे अपने अन्य समकालीनों, जैसे पल्लवों व पांड्यों के साथ होने वाले संघर्षों में विजयी होकर उभरे. उनका कालानुक्रम तय करना कुछ कठिन है. विजयालय (शासनकाल, 850–870) ने पल्लवों, जो संभवतः पहले उनके अधिपति थे, को हराकर उनके क्षेत्रों पर क़ब्ज़ा करना शुरू किया और आदित्य I (शासनकाल, 870–907) ने इसका और विस्तार किया. आदित्य I के उत्तराधिकारी परांतक (शासनकाल, 907–953) ने मदुरै (पांड्य वंश की राजधानी) पर क़ब्ज़ा किया व श्रीलंका (सीलोन) पर चढ़ाई की. पश्चिमी दक्कन के राष्ट्रकूटों के ख़िलाफ़ उनके अभियानों को मिश्रित सफलता ही प्राप्त हुई.

इस वंश के सर्वाधिक सफल राजाओं में राजराज I (शासनकाल, 985–1014) की गिनती होती है, जो एक कुशल प्रशासक थे. उन्होंने वेंगी (आंध्र प्रदेश) की रक्षा की और पश्चिमी गंगों का दमन करके गंगवाडी क्षेत्र (कर्नाटक राज्य) पर क़ब्ज़ा कर लिया. 996 तक उन्होंने केरल (चेर देश) को जीत लिया और उत्तरी श्रीलंका पर भी क़ब्ज़ा कर लिया. अपनी विजय के उपलक्ष्य में उन्होंने तंजावुर (तंजौर) में महान बृहदीश्वर मंदिर का निर्माण करवाया. 1014 तक राजराज ने लक्कदीव (वर्तमान लक्षद्वीप) और मालदीव के द्वीपों पर भी क़ब्ज़ा कर लिया.

उनके पुत्र व उत्तराधिकारी राजेंद्र चोल देव I (शासनकाल, 1014–44) ने मदुरै की गद्दी पर अपने एक पुत्र को बैठा दिया, सीलोन का अभियान पूरा किया, दक्कन पर क़ब्ज़ा किया (1021), उत्तर भारत की ओर एक अभियान दल भेजा और पूर्वी भारत के शासक महिपाल को पराजित किया तथा गंगा जल लेकर आए. अपनी उपलब्धि के उपलक्ष्य में उन्होंने एक नया शहर गंगैकोंडचोलपुरम बनवाया. उन्होंने मलय प्रायद्वीप और द्वीपसमूह के कुछ हिस्सों पर भी विजय प्राप्त की. उन्होंने दक्षिण–पूर्वी एशिया में भी नौसैनिक अभियान दल भेजे.

उनके पुत्र राजाधिराज (शासनकाल, 1044–54) ने पांड्यों, चेरों और चालुक्यों से लोहा लिया, लेकिन चालुक्यों के ख़िलाफ़ कोप्पम की लड़ाई में वह मारे गए. चोल शासक वीरराजेंद्र (शासनकाल, 1063–69) ने स्थिति संभालने कि कोशिश की, किंतु उनकी मृत्यु ने चोल शक्ति को क्षीण कर दिया.

इसके बाद गद्दी पर कुलोत्तुंग I (शासनकाल, 1070–1122) बैठे, जिन्हें चोल और पूर्वी चालुक्य, दोनों के राज्य उत्तराधिकार में मिले थे. उन्होंने अपना ध्यान पूर्वी तट को संगठित करने में लगाया. कुलोत्तुंग ने राज्य की आर्थिक खुशहाली सुनिश्चित की और सीमा शुल्क को समाप्त करने के कारण वह शंड्गम तविर्त् (करों को हटाने वाला) के नाम से जाने गए. लेकिन पांड्यों के मामलों में हस्तक्षेप के प्रयासों के कारण चोल कमजोर पड़े. 1216 से होयसलों ने चोल शक्ति को उत्तरोत्तर क्षीण करना शुरू कर दिया, जिनकी शुरुआत चोलों के सामंतों के रूप में हुई थी, लेकिन उन्होंने धीरे–धीरे स्वतत्रता प्राप्त कर ली थी. पांड्यों ने इस स्थिति का लाभ 1257 में चोल क्षेत्र को जीतकर उठाया. 1279 के बाद चोल वंश का कोई संदर्भ प्राप्त नहीं होता.

चोल साम्राज्य कृषि के विस्तार के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध रहा है और यह विस्तार अक्सर शासकों व उनके सामंतों द्वारा संरक्षित मंदिरों के आसपास केंद्रित था. वहां स्थानीय प्रशासनिक निकायों के होने का भी प्रमाण मिलता है. राज्य विभिन्न ज़िलों (नाडु) में बंटा हुआ था और उन्हें छह प्रांतों या मंडलों में वर्गीकृत किया गया था. चोल मंदिर अपने आकार व विस्तृत वास्तुकला अलंकरण के लिए विख्यात हैं. यह धर्म के भक्ति मार्ग, विशेषकर शैव और वैष्णव मतों के विकास का काल था, जिसका प्रमाण धार्मिक साहित्य के पदों में मिलता है.

चौथ

भारत में 17वी और 18वीं शताब्दी में एक ज़िले की राजस्व मांग (या वास्तविक संग्रहण) की एक चौथाइ उगाही को चौथ कहा जाता था. यह कर ऐसे ज़िले से लिया जाता था, जहां मराठे मार्गाधिकार या स्वामित्व चाहते थे. यह नाम संस्कृत शब्द से लिया गया है, जिसका अर्थ है, 'एक–चौथाई.'

व्यावहारिक रूप में चौथ अक्सर हिंदू या मुसलमान शासकों द्वारा मराठों को खुश रखने के लिए दिया जाने वाला शुल्क था, ताकि मराठे उनके प्रांतों में उपद्रव न करें या उनके जिले में घुसपैठ से दूर रहें. मराठों का दावा था कि इस भुगतान के बदले में वे दूसरों के आक्रमणों से उनकी रक्षा करते थे. लेकिन बहुत कम हिंदू या मुसलमान राजा चौथ के भुगतान को इस नज़र से देखते थे. चूंकि शासक पूरा राजस्व वसूलने की कोशिश करते थे, इसलिए नियमित राजस्व मांग के साथ इस भार के जुड़ने से इसे दमनकारी माना जाता था. इसके फलस्वरूप भारत में हिंदू और मुसलमान, दोनों में ही मराठों की लोकप्रियता घटी.

चौधरी, नीरद सी.

(ज.–23 नव. 1897, किशोरगंज, पूर्वी बंगाल {वर्तमान बांग्लादेश}; मृ.–1 अग. 1999, ऑक्सफोर्ड, इंग्लैंड), भारत में जन्मे लेखक और विद्वान, जिनकी अंतिम पुस्तक *थ्री हॉर्समेन ऑफ द न्यू एपोकैलिप्स* (1997) का प्रकाशन उनके सौवें जन्मदिन से कुछ ही दिन पहले हुआ.

नीरद सी. चौधरी
सौजन्य : *द हिंदू*

वकील पिता और निरक्षर माता के बेटे चौधरी का शेक्सपीयर तथा संस्कृत के शास्त्रीय ग्रंथों पर समान अधिकार था. वह अपनी संस्कृति के ही समान पश्चिमी संस्कृति के भी प्रशंसक थे. वह एक पांडित्यपूर्ण, लेकिन जटिल व सनकी व्यक्ति थे और उनकी सबसे सटीक व्याख्या ग़लत स्थान पर ग़लत समय में जन्मे व्यक्ति के रूप में की जा सकती है.
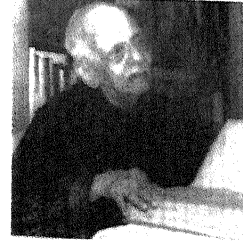
भारत के साहित्यिक परिदृश्य पर उनका आगमन विवादों से घिरा हुआ था. वह ब्रिटिश शासन के प्रति वफ़ादार थे और उन्होंने अपनी पहली पुस्तक *द ऑटोबायोग्राफ़ी ऑफ़ एन अननोन इंडियन* (1951) को ब्रिटिश साम्राज्य को समर्पित किया था. उनका दृढ़ विश्वास था कि 'हममें जो कुछ भी अच्छा तथा जीवंत है', वह दो सौ वर्ष पुराने औपनिवेशिक शासन के दौरान ही पोषित और विकसित हुआ है. अपनी असुरक्षाओं से जूझने की कोशिश कर रहे नव–स्वतंत्र राष्ट्र में, जहां उपनिवेश विरोधी भावनाएं चरम पर थीं, उनकी कृति का स्वागत नहीं हुआ. वह अस्वीकार्य व्यक्ति बन गए और उन्हें बौद्धिक यंत्रणाएं झेलनी पड़ी. व्यवस्था ने उनके प्रति काफ़ी कड़ा रुख अपनाया और उन्हें ऑल इंडिया रेडियो से बाहर निकाल दिया गया, जहां वह प्रसारक तथा राजनीतिक टिप्पणीकार के रूप में कार्यरत थे.

चौधरी को 'अंतिम ब्रिटिश साम्राज्यवादी' और 'अंतिम भूरा साहब' कहा गया और उनकी कृति की लगातार आलोचना की गई तथा भारत के साहित्यिक जगत से उन्हें निष्कासित कर दिया गया. स्वनिर्वासन के तौर पर 1970 के दशक में वह इंग्लैंड रवाना हो गए और विश्वविद्यालय शहर ऑक्सफ़ोर्ड में बस गए. उनके लिए यह घर लौटने के समान था. लेकिन यह घर उस इंग्लैंड से काफ़ी भिन्न था, आदर्श रूप में चौधरी जिसकी कल्पना करते थे.

इंग्लैंड में भी वह उतने ही अलग–थलग थे, जितने भारत में. अंग्रेज़ों ने उन्हें सम्मान दिया, उन्हें ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय से मानद डॉक्टरेट की उपाधि मिली. उन्हें महारानी की ओर से मानद सी.बी.ई. से सम्मानित किया गया, लेकिन वे लोग उनकी दृढ़ भारतीयता के साथ ब्रिटिश साम्राज्य के पुराने वैभव की उनकी यादों के क़ायल नहीं हो पाए. चौधरी भी इंग्लैंड में पिछले कुछ वर्षों में हुए आमूलचूल परिवर्तन को स्वीकार नहीं कर पाए और मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता के पूर्ण अभाव से काफ़ी निराश हुए, क्योंकि इसी विशेषता ने एक समय में इंग्लैंड को महान राष्ट्र बनाया था. उनकी ये भावनाएं उनकी कृतियों और उनकी आत्मकथा के अंतिम खंड *दाई हैंड, ग्रेट एनार्क* (1987) में प्रदर्शित होती हैं, जो उन्होंने 90 वर्ष की आयु में लिखी थी. उन्होंने लिखा कि 'अंग्रेज़ों की महानता हमेशा के लिए समाप्त हो गई है'. उनके निबंधों की अंतिम पुस्तक *थ्री हॉर्समेन ऑफ द न्यू एपोकैलिप्स* भारतीय नेतृत्व और राष्ट्र के पतन के बारे में टिप्पणी है.

बाद के वर्षों में नीरद को अपने देशवासियों की प्रशंसा मिली, जिन्होंने पहले उन्हें ग़लत समझा था और उनकी अनदेखी की थी. एक अधिक परिपक्व, सर्वदेशीय और आत्मविश्वास से युक्त उच्च वर्ग ने उनकी आत्मकथा के अंतिम खंड की प्रशंसा की.

उन्होंने फिर से बांग्ला में लिखना शुरु किया और बाद में उन्हें कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) में एक साहित्यिक पुरस्कार से सम्मानित किया गया.

चौरसिया, हरिप्रसाद

(जं.–1 जुला. 1938, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत), हिंदुस्तानी शास्त्रीय परंपरा के विलक्षण बांसुरी वादक, जिन्होंने साधारण बांस से बनी बांसुरी को सार्वभौमिक पहचान दिलवाई.

हरिप्रसाद चौरसिया
सौजन्य : द हिंदू

अपनी पीढ़ी के अन्य संगीतज्ञों की तरह चौरसिया ने संगीतकारों के परिवार में जन्म नहीं लिया था. हालांकि उन्होंने अपने पेशेवर पहलवान पिता को ख़ुश करने के लिए आशुलिपि और कुश्ती सीखी, लेकिन उन्होंने चोरी–छिपे पंडित राजाराम से हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत की तालीम भी ली. प्रारंभ में ही बनारस (वर्तमान वाराणसी) के एक प्रसिद्ध बांसुरी वादक पंडित भोलानाथ को सुनने के बाद उन्होंने बांसुरी को चुना. चौरसिया उनके शिष्य बन गए और आठ वर्षों तक कठोर प्रशिक्षण लिया. 1958 में वह कलाकार और संगीतकार के रूप में आकाशवाणी, कटक से जुड़े. बंबई (वर्तमान मुंबई) स्थानांतरण के बाद चौरसिया ने फ़िल्म उद्योग और संगीत सभाओं, दोनों में अनेक प्रस्तुतियां कीं. चौरसिया ने आगे की शिक्षा सुरबहार कलाकार अन्नपूर्णा देवी से प्राप्त की, जो स्व. उस्ताद अलाउद्दीन ख़ां की बेटी थीं और हिंदुस्तानी परंपरा के 'समझौता न करने वाले शास्त्रीय शुद्धिवादियों' में से एक थीं.

सेनिया *घराने* (पारिवारिक संगीत परंपरा) के चौरसिया ने वर्षों की प्रयोगवादिता तथा *रियाज* के बाद एक समृद्ध शैली विकसित की है और कम ही लोग उनकी तकनीकी निपुणता एवं संगीत में विविधता की बराबरी कर सकते हैं. उनका बांसुरी वादन में आलाप (एक राग का सुनिश्चित प्रारंभ और विकास), और जोड़ (विशेष ख़याल प्रस्तुति में स्वर संगम) का अद्वितीय रूपांतर, उत्तर भारतीय शास्त्रीय बांसुरी वादन में उनकी पूर्ण विशेषज्ञता को प्रदर्शित करता है.

चौरसिया की शैली यद्यपि श्रोताओं में बहुत लोकप्रिय है, मगर शुद्धतावादियों के आदर्शों के अनुरूप नहीं है और उनके आलोचक रागों की उनकी प्रस्तुति को अत्यधिक स्वच्छंदतावादी मानते हैं. किंतु यह पंडित चौरसिया को हतोत्साहित नहीं करता, जिनके प्रयास शास्त्रीय और लोकप्रिय संगीत के बीच सेतु का कार्य कर रहे हैं. संगीत में उनके विशिष्ट योगदान के लिए 1984 में उन्हें संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार और 1992 में भारत सरकार के पद्म भूषण पुरस्कार से सम्मानित किया गया.

चौरी चौरा

गांव, पूर्वी संयुक्त प्रांत (वर्तमान उत्तर प्रदेश, उत्तर–मध्य भारत), जो राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान ब्रिटिश भारत की पुलिस तथा राजनीतिक कार्यकताओं के बीच हिंसक घटना

के कारण चर्चा में आया. 4 फ़रवरी 1922 को स्थानीय पुलिस और ख़िलाफ़त आंदोलन व भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के समर्थकों के बीच अप्रत्याशित संघर्ष हुआ. क्रुद्ध भीड़ ने स्थानीय पुलिस थाने को आग लगा दी और 22 पुलिसकर्मी (सभी भारतीय), जिन्होंने भीड़ के कोप से बचने के लिए स्वयं को अंदर बंद कर लिया था, ज़िंदा जल गए. यह घटना महात्मा गांधी द्वारा चलाए गए असहयोग आंदोलन पर एक आघात थी. इस घटना से विचलित महात्मा गांधी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन को स्थगित कर दिया, जो बारदोली, गुजरात से शुरू किया जाने वाला था. आंदोलन के स्थगन के लिए महात्मा ने कारण बताया कि देश का वातावरण आज़ादी के अहिंसक संघर्ष के लिए उपयुक्त नहीं है.

छतरपुर

नगर, उत्तर–मध्य मध्य प्रदेश राज्य, मध्य भारत. इसकी पूर्वी सीमा के पास से सिंघारी नदी बहती है. आरंभ में पन्ना सरदारों द्वारा शासित इस नगर पर 18वीं शताब्दी में कुंवर सोन सिंह का अधिकार हो गया. यह चारों ओर से पहाड़ों से घिरा है और वृक्षों, तालाबों तथा नदियों की बहुतायत के कारण अत्यंत दर्शनीय स्थल है. राव सागर,

छतरपुर मंदिर में भगवान शिव की प्रतिमा
सौजन्य : हिंदुस्तान टाइम्स

प्रताप सागर और किशोर सागर यहां के तीन महत्त्वपूर्ण तालाब हैं. यह नगर एक प्रमुख सड़क जंक्शन है और कृषि उत्पादों तथा कपड़ों का व्यापारिक केंद्र है. बुंदेल राजा छत्रसाल ने 1707 में इसकी स्थापना की थी. उन्होंने मुग़लों की सत्ता का सफलतापूर्वक विरोध किया था. यह नगर अंग्रेज़ों की मध्य भारत एजेंसी की भूतपूर्व छतरपुर रियासत की राजधानी भी था. यहां 1908 में नगरपालिका का गठन हुआ. छतरपुर में एक संग्रहालय, अधिकारियों की आधुनिक कॉलोनी और रीवा के अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय से संबद्ध महाविद्यालय व एक विधि विद्यालय भी है.

इसके आसपास का क्षेत्र धसान तथा केन नदियों के बीच का उपजाऊ मैदान है, जिसके दक्षिण में कहीं–कहीं 450 मीटर तक ऊंची वनाच्छादित पहाड़ियां हैं. यहां की पुरानी औद्योगिक गतिविधियों में चीनी और नमक का बाज़ार, टाट–पट्टी निर्माण, छोटे पैमाने पर उत्पादित काग़ज़, साबुन, पीतल, लोहे के बर्तन और अपरिष्कृत छुरी–कांटे का निर्माण शामिल है. आधुनिक उद्योगों में इनके अलावा क़ालीन, दरी, कंबल, कांसे के बर्तन तथा सोने–चांदी के आभूषण व लकड़ी पर नक़्क़ाशी, प्रलाक्षाकर्म, लाख की वस्तुएं, मोटे सूती वस्त्र 'गज़ी' की बुनाई और कपड़ों पर छपाई का काम शामिल है. जनसंख्या (2001) ज़िला कुल 14,74,633.

छत्तीसगढ़

भारतीय गणराज्य का 26वां राज्य, 1 नवंबर 2000 की मध्यरात्रि को अस्तित्व में आया. उत्तर के हिंदीभाषी अंतःस्थल को प्रभावित करने वाले पहले प्रमुख पुनर्गठन में 31 जुलाई 2000 को छत्तीसगढ़ की स्थापना के लिए लोकसभा ने मध्य प्रदेश पुनर्गठन विधेयक पारित किया. यह विधेयक राज्यसभा द्वारा 9 अगस्त को पारित किया गया. अन्य दो राज्यों, उत्तरांचल और झारखंड के विपरीत छत्तीसगढ़ को अपने गठन के दौरान किसी भी तरह की हिंसा या आंदोलन का सामना नहीं करना पड़ा. नए राज्य के अस्तित्व में आने से पूर्वी मध्य प्रदेश के छत्तीसगढ़ क्षेत्र के स्थानीय लोगों की मनोकामनाएं पूरी हो गईं.

हालांकि राज्य का दर्जा हासिल करने का अभियान 1970 के दशक में शुरू हुआ, लेकिन इसकी जड़ें लगभग 80 वर्ष पुरानी थीं, जब स्थानीय नेताओं ने क्षेत्र की एक अलग सांस्कृतिक पहचान का दावा करना शुरू कर दिया था. 90 के दशक के आरंभ में इस मांग ने विभिन्न राजनीतिक दलों के घोषणापत्र में किए गए वादों में एक बार फिर अभिव्यक्ति पाई. विशेषकर 1996 और 1998 के चुनावों के दौरान एक अलग राज्य के वादे से स्थानीय लोगों से वोट हासिल करने के लिए इसे एक चुनावी मुद्दा बनाया गया. नए राज्य का क्षेत्रफल 1,35,194 वर्ग किमी और जनसंख्या 2,07,95,956 है.

राज्य का दर्जा मिलने के कुछ ही मिनटों बाद अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के प्रवक्ता अजित जोगी को नवनियुक्त राज्यपाल दिनेश नंदन सहाय ने पहले मुख्यमंत्री के रूप में शपथ दिलाई. छत्तीसगढ़ (36 क़िले) नाम का प्रयोग पहले लगभग 750 ई. में स्थापित हैहय वंश के रतनपुर क्षेत्र के लिए किया जाता था. ब्रिटिश शासन के

अंतर्गत छत्तीसगढ़ में ईस्टर्न स्टेट्स एजेंसी के तहत 14 स्थानीय (सामंती) रियासतों के उपखंड शामिल थे. रायपुर इस एजेंसी का मुख्यालय था.

भौतिक एवं मानव भूगोल

भू–दृश्य

छत्तीसगढ़ मैदान महानदी बेसिन में स्थित है. यह बेसिन समुद्र तल से 250 मीटर से 300 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है. यह लंबे अपक्षरण के परिणामस्वरूप उत्पन्न भौगोलिक विविधताओं वाला संरचनात्मक मैदान है. पर्वत शिखर, लहरदार दोआब और दोमट मिट्टी की पट्टियों से युक्त किनारों वाली नदी घाटियां इस क्षेत्र की विशेषताएं हैं. लगभग 160 किमी चौड़ा यह क्षेत्र छोटा नागपुर पठार (उत्तर), मैकाल पर्वतश्रेणी (पश्चिम), रायगढ़ पहाडियों (पूर्वोत्तर), रायपुर उच्चभूमि (दक्षिण–पूर्व) और बस्तर के पठार (दक्षिण) से घिरा हुआ है. उच्चभूमि में ज़्यादातर अपरदित पठार हैं, जो मैकाल पर्वतश्रेणी और दंडकारण्य पर्वतमाला में 700 मीटर की ऊंचाई तक उठते हैं. भारत में ब्रिटिश शासन की समाप्ति तक यह क्षेत्र लगभग विलग ही था. दक्षिणी पठार और उत्तरी मैदानों को जोड़ने वाले दो महत्त्वपूर्ण मार्गों के बीच स्थित यह क्षेत्र एक जंगली और आदिवासी प्रदेश था, जो कभी स्थानीय सामंती राजकुमारों के नियंत्रण में था (जिनकी राजधानी के गढ़ों के कारण इस क्षेत्र का यह नाम पड़ा).

भूकंपीय गतिविधियां

छत्तीसगढ़ में भूकंपीय गतिविधियां अपेक्षाकृत कम हैं. उत्तरी ज़िले नर्मदा–सोन घाटी में स्थित हैं, जबकि बस्तर और दंतेवाड़ा के दक्षिणी ज़िले आंशिक रूप से गोदावरी बेसिन में स्थित हैं. रायगढ़ ज़िला महानदी बेसिन में स्थित है. आंध्र प्रदेश की सीमाओं से लगे उत्तरी ज़िलों में बहुत कम तीव्रता वाले भूकंप दर्ज किए गए हैं. रायगढ़ ज़िले के आसपास के क्षेत्रों में भी कुछ हल्के झटके महसूस किए गए हैं.

जलवायु

छत्तीसगढ़ में जलवायु मॉनसून की प्रकृति पर निर्भर करती है. यहां मौसम को मुख्य रूप से ग्रीष्म (मार्च से मई), शीत (नवं. से फ़र.) और अंतरिम दक्षिण–पश्चिम मॉनसून के वर्षा के महीनों (जून से सितं.) में बांटा जा सकता है. ग्रीष्म ऋतु गर्म और शुष्क रहती है, तेज़ हवाएं चलती हैं तथा राज्य के लगभग सभी हिस्सों में औसत तापमान कम से कम 29°से. रहता है, कुछ स्थानों पर यह 48°से. तक पहुंच जाता है. शीत ऋतु सामान्यतः सुहावनी व शुष्क रहती है तथा दिसंबर और जनवरी में राज्य के उत्तरी हिस्से में उल्लेखनीय वर्षा होती है.

राज्य की औसत वार्षिक वर्षा लगभग 1,117 मिमी है. सामान्यतः वर्षा 1,140 से 1,525 मिमी तक होती है.

अपवाह और मृदा

छत्तीसगढ़ में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रायद्वीपीय नदी महानदी का उद्‌गम स्थल है. यह रायपुर ज़िले के सिहावा गांव के पास से निकलती है. यह पश्चिम की ओर 200 किमी बहकर बिलासपुर में शिवरीनारायण से 13 किमी पहले शिवनाथ नदी से मिलती है. इसके बाद यह पूर्व की ओर उड़ीसा में प्रवेश करती है. संबलपुर के निकट सीमा पर हीराकुड बांध बनाया गया है. इसके बाद महानदी पूर्व दिशा में आगे बहती हुई उड़ीसा में ईब नदी से मिलती है. प्रदेश में इससे मिलने वाली अन्य नदियों में इंद्रावती, अरपा, केलो, खरून और मांड प्रमुख हैं.

छत्तीसगढ़ में मुख्यतः दो क़िस्म की मिट्टी, काली और दोमट पाई जाती है. इसके अलावा कम उर्वर रेतयुक्त लाल से पीली मिट्टियां भी पाई जाती हैं.

वनस्पति एवं प्राणी जीवन

पूर्वी और दक्षिण–पूर्वी किनारों से अंदर की ओर बढ़ने पर वनस्पति शुष्क नम पर्णपाती से शुष्क पर्णपाती में परिवर्तित होती जाती है, जिसमें अक्सर ह्रास के कारण स्थानीय झाड़ियां बच जाती हैं. सर्वाधिक मूल्यवान वृक्षों में सागौन, साल, बांस, सलाई और तेंदू हैं. सलाई से निकलने वाला रेशा इत्र और औषधि बनाने के काम आता है.

यहां के वनों में शेर, धारीदार भेड़िए, चीता, गौर, चीतल, भालू, जंगली भैंस, सांभर, रीछ, जंगली सूअर, चौसिंगा हिरन और काली बत्तख़ के साथ–साथ कई प्रजातियों के पक्षी पाए जाते हैं. राज्य में अनेक राष्ट्रीय वनोद्यान और वन्य प्राणी अभयारण्य हैं, जिनमें इंद्रावती, समरसोत, बादलकोट, गोमरदाह, उदांती, सीतानदी और बैरमगढ़ प्रमुख हैं. इंद्रावती राष्ट्रीय उद्यान में शेरों के लिए वन्यजीव अभयारण्य भी है.

जनसंख्या

2001 की जनगणना के अनुसार, नवगठित राज्य छत्तीसगढ़ की जनसंख्या 1 मार्च 2001 तक 2,07,95,956 थी. 1991–2001 के दशक में राज्य की जनसंख्या में इसी अवधि के राष्ट्रीय औसत 21.34 प्रतिशत के मुक़ाबले 18.06 प्रतिशत की वृद्धि हुई. लैंगिक अनुपात पिछली जनगणना (1991) के 985 से बढ़कर 990 हो गया. राज्य की कुल साक्षरता दर 1991 के 42.91 प्रतिशत से बढ़कर 2001 में 65.18 प्रतिशत हो गई. पुरुष साक्षरता दर (77.86 प्रतिशत) महिलाओं (52.40 प्रतिशत) की तुलना में कहीं ज़्यादा है.

जनजीवन

राज्य की एक–तिहाई से ज़्यादा जनसंख्या अनुसूचित जाति और जनजातियों की है. तीन–चौथाई से अधिक जनसंख्या ग्रामीण है, लेकिन जनसंख्या का वितरण अत्यधिक असमान है. शेष लोग मुख्यतः रायपुर, दुर्ग, भिलाई, कोरबा, बिलासपुर और रायगढ के शहरी क्षेत्रों में रहते हैं. सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शहरी विकास दक्षिण–पूर्व और पूर्व के

खनिज संपदा से समृद्ध, लेकिन अविकसित ज़िलों (ख़ासकर दुर्ग, रायपुर और सरगुजा) में मुख्य रूप से सार्वजनिक क्षेत्र में हुए भारी निवेश के कारण हुआ है. बड़े शहरी संकेंद्रणों में रायपुर, दुर्ग–भिलाईनगर, बिलासपुर और रायगढ़ आते हैं. इन शहरों में अपेक्षाकृत सुविकसित औद्योगिक आधार है.

आवश्यक रूप से एक कृषि प्रधान राज्य होने के कारण जनवरी से जून महीनों के दौरान, जब कृषि संबंधित गतिविधियां रुक जाती हैं, बड़ी संख्या में कृषि मज़दूर हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश और अन्य स्थानों की ओर प्रवास कर जाते हैं, जहां दैनिक मजदूरी के अवसर उपलब्ध होते हैं.

भाषा

राज्य की आधिकारिक राजभाषा, हिंदी राज्य में व्यापक रूप से बोली भी जाती है. दूसरी सबसे प्रचलित भाषा छत्तीसगढ़ी बोली है. हिंदी की बोलियों में अवधी, बघेली, बुंदेली और मालवी शामिल हैं. भील लोग भीली और गोंड गोंडी बोलते हैं. मराठी, उर्दू, उडिया, गुजराती और पंजाबी भी काफ़ी लोगों द्वारा बोली जाती है. तेलुगु, बांग्ला, तमिल और मलयालम भाषाएं भी बोली जाती हैं.

यहा के ज़्यादातर लोग हिंदू हैं, हालांकि मुसलमान, जैन, ईसाई और बौद्धों की भी अच्छी–ख़ासी संख्या है. यहां एक छोटा सा सिक्ख समुदाय भी है.

अर्थव्यवस्था

छत्तीसगढ़ भारत के खनिज समृद्ध राज्यों में से एक है. यहां पर चूना–पत्थर, लौह अयस्क, तांबा, फ़ॉस्फ़ेट, मैंगनीज़, बॉक्साइट, कोयला, एसबेस्टॅस और अभ्रक के उल्लेखनीय भंडार हैं.

छत्तीसगढ़ में लगभग 52.5 करोड़ टन का डोलोमाइट का भंडार है, जो पूरे देश के कुल भंडार का 24 प्रतिशत है. यहां बॉक्साइट का अनुमानित 7.3 करोड़ टन का समृद्ध भंडार है और टिन अयस्क का 2,700 करोड़ टन से भी ज़्यादा का उल्लेखनीय भंडार है. छत्तीसगढ़ में ही कोयले का 2,690.8 करोड़ टन का भंडार है. स्वर्ण भंडार लगभग 38,05,000 किलो क्षमता का है. यहां भारत का सर्वोत्तम लौह अयस्क मिलता है, जिसका 19.7 करोड़ टन का भंडार है. बैलाडीला, बस्तर, दुर्ग और जगदलपुर में लोहा मिलता है. भिलाई में भारत के बडे इस्पात संयंत्रों में से एक स्थित है. राज्य में 75 से भी ज्यादा बडे और मध्यम इस्पात उद्योग हैं, जो गर्म धातु, कच्चा लोहा, भुरभुरा लोहा (स्पंज आयरन), रेल–पटरियों, लोहे की सिल्लियों और पट्टियों का उत्पादन करते हैं.

खनिज संपदा से ही छत्तीसगढ़ को सालाना 600 करोड़ रुपये से ज़्यादा का राजस्व प्राप्त होगा. रायपुर जिले के देवभोग में हीरे के भंडार हैं. यहां हीरों की तलाश शुरू हो गई है और लगभग दो वर्षों में इसका खनन आरंभ हो जाने पर राज्य को 2,000 करोड़ रुपये सालाना का अतिरिक्त राजस्व मिलने की उम्मीद है.

छत्तीसगढ़ अपनी आवश्यकता से अधिक ऊर्जा का उत्पादन करता है. यहां कोयला समृद्ध कोरबा में तीन तापविद्युत संयंत्र हैं और अन्य कई संयंत्र लगाने की योजना है. साउथ ईस्टर्न कोलफ़ील्ड्स लिमिटेड कोयले के विशाल भंडार वाले क्षेत्रों में खोज कर रहा है. छत्तीसगढ़ में तेंदू पत्ते का भारत के कुल उत्पादन का 70 प्रतिशत होता है.

एक औद्योगिक क्षेत्र और कई विकासशील औद्योगिक नगर वाले छत्तीसगढ़ का आर्थिक परिवेश आधुनिक है. भिलाई, बिलासपुर, रायपुर, रायगढ़ और दुर्ग राज्य के मुख्य शहर हैं. भिलाई की रेलवे लाइन के पूर्व और पश्चिम में शहरी विस्तार हुआ है. कोरबा, राजनांदगांव और रायगढ़ अन्य विकासशील शहरी केंद्र हैं. सीधे नहरों से सिंचित क्षेत्र भी हैं. इस क्षेत्र का ग्रामीण आधार कमज़ोर है और यहां के भीतरी इलाके अभी तक घोर ग्रामीण तथा अविकसित हैं. शहरी केंद्रों का क्षेत्रीय जनजातीय अर्थव्यवस्था पर बहुत कम प्रभाव पड़ा है.

उद्योग

छत्तीसगढ़ अभी तक अपने संसाधनों का संपूर्ण लाभ नहीं उठा पाया है. औद्योगिकीकरण हो रहा है, लेकिन उसकी गति धीमी है. बड़े और मध्यम पैमाने के उद्योग केंद्र सामने आ रहे हैं. प्रमुख बड़े उद्योग सरकारी हैं, जिनमें भिलाईनगर का लौह एवं इस्पात संयंत्र शामिल है. सुनियोजित विकास के अंग के रूप में रायपुर और भिलाईनगर को औद्योगिक क्षेत्र के रूप में स्थापित किया गया है. सूक्ष्म इलेक्ट्रॉनिक्स उपकरण और उच्च प्रौद्योगिकी ऑप्टिकल फ़ाइबर के निर्माण जैसे अन्य आधुनिक उद्योगों को भी स्थापित किया गया है. निजी उद्योगों में सीमेंट कारख़ाने, कागज़, चीनी और कपड़ा (सूती, ऊनी, रेशम और जूट) मिलों के साथ–साथ आटा, तेल और आरा मिलें भी हैं. यहां पर सामान्य इंजीनियरिंग वस्तुओं के साथ–साथ रासायनिक खाद, कृत्रिम रेशे और रसायन उत्पादन की भी कुछ इकाइयां हैं.

राज्य की लघु उद्योग इकाइयों का राष्ट्रीय परिदृश्य पर प्रभाव छोड़ना बाकी है. लेकिन हथकरघा उद्योग यहां फल–फूल रहा है और साड़ी बुनने, ग़लीचे व बर्तन बनाने तथा सोने व चांदी के तारों की कशीदाकारी जैसे पारंपरिक काम यहां किए जाते हैं.

कृषि

एक विस्तृत और लहरदार प्रदेश छत्तीसगढ़ में चावल और अनाज की खेती होती है. निम्नभूमि में चावल बहुतायत में होता है, जबकि उच्चभूमि में मक्का और मोटे अनाज की खेती होती है. क्षेत्र की महत्त्वपूर्ण नक़दी फ़सलों में कपास और तिलहन शामिल हैं. बेसिन में आधुनिक कृषि तकनीकों का प्रचलन धीमी गति से हो रहा है. कृषि की दृष्टि से यह एक बेहद उपजाऊ क्षेत्र है. यह देश का 'धान का कटोरा' कहलाता है और 600 से ज़्यादा चावल मिलों को अनाज की आपूर्ति करता है. कुल क्षेत्र का आधे से कम क्षेत्र कृषि योग्य है, हालांकि स्थलाकृति, वर्षा और मिट्टी में विविधता के कारण इसका वितरण असमान है. यहां की कृषि की विशेषता कम उत्पादन और खेती की पारंपरिक विधियों का प्रयोग है.

मवेशी और पशुपालन महत्त्वपूर्ण हैं, मवेशियों में गाय, भैंस, बकरी, भेड़ और सूअर शामिल हैं. यहां बिलासपुर स्थित बकरी व गाय के कृत्रिम प्रजनन और संकरण केंद्र जैसे कई केंद्र इन जानवरों की संख्या और गुणवत्ता बढ़ाने में लगे हैं.

परिवहन

छत्तीसगढ़ देश के अन्य भागों से सड़क, रेल और वायुमार्ग से भलीभांति जुड़ा है. यहां रायपुर और बिलासपुर में हवाई अड्डे हैं. राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 6 और 200 इससे होकर गुजरते हैं. कुछ प्रमुख रेलमार्ग राज्य से होकर गुज़रते हैं और बिलासपुर, दुर्ग, रायपुर, मनेंद्रगढ तथा चांपा महत्त्वपूर्ण रेल जंक्शन हैं.

सरकार और प्रशासन

छत्तीसगढ़ को मध्य प्रदेश से अलग कर 1 नवंबर 2000 को राज्य के रूप में गठित किया गया. राज्य में कुल 16 जिले हैं. राज्य का संवैधानिक प्रमुख राज्यपाल है, जिसकी नियुक्ति भारत का राष्ट्रपति करता है. राज्यपाल को मुख्यमंत्री के नेतृत्व में मंत्रिपरिषद का सहयोग और परामर्श मिलता है, जो निर्वाचित विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होती है.

नई विधानसभा में 90 विधायक हैं, जो 1998 के विधानसभा चुनाव में निर्वाचित (जब राज्य मध्य प्रदेश का एक अंग था) होकर आए थे और नवंबर 2003 तक बने रहेंगे. इसी तरह मध्य प्रदेश के 40 लोकसभा सदस्यों में 11 छत्तीसगढ़ से थे, जो अब नए राज्य का प्रतिनिधित्व करते हैं. इस राज्य से राज्यसभा के पांच सदस्य हैं.

राज्य की राजनीतिक राजधानी रायपुर में और उच्च न्यायालय बिलासपुर में है. उच्च न्यायालय का प्रमुख मुख्य न्यायाधीश है.

प्रत्येक जिला एक प्रशासनिक इकाई है, जिसका प्रमुख ज़िलाधीश होता है. ज़िलाधीश कार्यकारी और न्यायिक अधिकार, दोनों को प्रयोग में लाता है.

नक्सलवादी गतिरोध

छत्तीसगढ का एक हिस्सा नक्सलवादियों के नियंत्रण में है और बस्तर संभाग के कई क्षेत्रों में प्रशासन का कोई ज़ोर नहीं चलता. इस कारण इस उर्वर क्षेत्र के विकास में अवरोध आया है.

संसाधन और ऊर्जा

छत्तीसगढ़ खनिज संपदा के मामले में संपन्न है, हालांकि इन संसाधनों का अब तक समुचित उपयोग नहीं हो पाया है. यहां पर लौह अयस्क, मैंगनीज़ बॉक्साइट, चूना–पत्थर, डोलोमाइट, तांबा, टिन और कोयले के विशाल भंडार हैं.

यह राज्य पनबिजली के संभावित संसाधनों से परिपूर्ण है. मुख्य जलविद्युत परियोजनाओं (अन्य राज्यों के साथ संयुक्त रूप से विकसित) में बिहार व उत्तर प्रदेश के साथ

बाणसागर और उड़ीसा के साथ महानदी पर हीराकुड बांध शामिल है. हसदेव–बागो ताप विद्युत परियोजना भी इसी राज्य में है.

इतिहास

छत्तीसगढ़ अत्यंत प्राचीन काल से अस्तित्व में है, तब यह दक्षिण कोसल के नाम से जाना जाता था. आर्य इसी रास्ते से दक्षिण की ओर गए थे. यह एक आदिवासी बहुल इलाक़ा है, लेकिन भारत के इतिहास में छत्तीसगढ़ का ज़िक्र हमेशा मध्य प्रदेश के एक अंग के रूप में किया गया. क्षेत्र के रूप में यह मध्य प्रदेश के अन्य हिस्सों से अलग ही रहा. यह राज्य अपने जनक राज्य के इतिहास का साझीदार है.

छत्तीसगढ़ का मैदान

मध्य भारत का मैदान, ऊपरी महानदी बेसिन क्षेत्र, छत्तीसगढ़ राज्य, मध्य–पूर्व भारत. यह बेसिन समुद्र तल से 300 और 250 मीटर की ऊंचाई के बीच स्थित है. यह एक निर्मित मैदान है, जिसमें लंबे समय से पेड़ों की कटाई के कारण स्थलाकृति में विविधता पाई जाती है. टीले, लहरदार प्राकृतिक संरचनाएं और चिकनी मिट्टी से घिरी घाटियां यहां की विशेषताएं हैं. यह मैदान लगभग 160 किमी चौड़ा है और यह छोटा नागपुर पठार (उत्तर), मैकाल पर्वतश्रेणी (पश्चिम), रायगढ़ पहाड़ियों (पूर्वोत्तर), रायपुर उच्चभूमि (दक्षिण–पूर्व) और बस्तर के पठार (दक्षिण) से घिरा हुआ है. उच्चभूमि में अधिकांशतः मिट्टी के कटाव से बनी पठारी संरचनाएं हैं, जिनकी ऊंचाई मैकाल पर्वतश्रेणी और दंडकारण्य पहाड़ियों में 7,00 मीटर तक हैं. यह क्षेत्र भारत में ब्रिटिश शासन के आने तक लगभग अलग–थलग पड़ा रहा. यह उत्तरी पठार को दक्षिणी पठार से जोड़ने वाले दो महत्त्वपूर्ण मार्गों के बीच स्थित है और यह जंगली तथा जनजातीय क्षेत्र है, जिस पर स्थानीय रियासती रजवाड़ों का नियंत्रण था (जिनकी राजधानी के दुर्गों के नाम पर इस क्षेत्र का नामकरण हुआ). पहले रतनपुर के हैहय वंश के क्षेत्र को छत्तीसगढ़ (36 दुर्ग) कहा जाता था. इस वंश की स्थापना 750 ई. में हुई थी. ब्रिटिश शासन के तहत छत्तीसगढ़ के राज्य पूर्वी प्रांतीय एजेंसी के अंतर्गत 14 रियासतों की उपएजेंसी थे. इस एजेंसी का मुख्यालय रायपुर था.

स्वतंत्रता के बाद ही इस क्षेत्र के समृद्ध खनिज संसाधनों ने यहां विकास का मार्ग प्रशस्त किया. कोयले के प्रचुर भंडार तथा लौह अयस्क, बॉक्साइट, मैंगनीज़ और व्यापारिक खड़िया मिट्टी के भंडारों ने इस क्षेत्र के विकास में मदद की. यह एक विस्तृत ऊबड़–खाबड़ भूभाग है और यहां धान तथा अन्य अनाजों के समृद्ध मैदान हैं, हालांकि अन्य प्रकार की खेती की दृष्टि से यह एक कमज़ोर कृषि क्षेत्र है. निचले इलाक़ों में प्रमुखतः चावल, जबकि ऊपरी क्षेत्रों में मक्का और मोटे अनाजों की खेती होती है. कपास और तिलहन इस क्षेत्र की प्रमुख वाणिज्यिक फ़सलें हैं. इस बेसिन में कृषि की आधुनिक तकनीकों का प्रचलन बहुत धीमी गति से हो रहा है. पूर्वी और दक्षिण–पूर्वी सीमा से भीतरी क्षेत्रों में जाने पर वनस्पति शुष्क नम पर्णपाती से शुष्क पर्णपाती में परिवर्तित हो जाती है. कहीं–कहीं वनस्पति विरल हो जाती है, जिसके कारण झाड़ीदार क्षेत्रों का निर्माण हो गया है.

इसका आर्थिक रूप आधुनिक है, क्योंकि यहां एक औद्योगिक क्षेत्र और कई विकासशील औद्योगिक शहर हैं. रायपुर, भिलाई, बिलासपुर, रायगढ़ और दुर्ग यहां के प्रमुख शहर हैं. भिलाई के पूर्व और पश्चिम में रेलवे लाइन के किनारे शहर का विस्तार हुआ है. कोरबा, राजनांदगांव और रायगढ़ अन्य विकासशील शहरी केंद्र हैं. सीधे नहरों से सिंचित भूमि क्षेत्र भी हैं. इस क्षेत्र का ग्रामीण आधार कमज़ोर है और यहां के भीतरी इलाके अभी तक घोर ग्रामीण तथा अविकसित हैं. शहरी केंद्रों का क्षेत्रीय जनजातीय अर्थव्यवस्था पर बहुत कम प्रभाव पड़ा है. दूरी, विलगता, दुर्गम भू–प्रदेश और स्थानीय भावनाओ ने रायपुर को क्षेत्रीय केंद्र बनाने और प्रशासनिक विकेंद्रीकरण की मांग को बढ़ावा दिया. इसके फलस्वरूप 1 नवंबर 2000 को नए राज्य छत्तीसगढ़ का गठन किया गया, जिसकी राजधानी रायपुर को बनाया गया.

छपरा

शहर, पूर्वोत्तर भारत में बिहार राज्य के सारण संभाग और ज़िले का प्रशासनिक मुख्यालय, जो घाघरा तथा गंगा नदी के संगम के समीप स्थित है. 18वीं शताब्दी में डच, फ्रांसीसी, पुर्तगाली और अंग्रेज़ों द्वारा यहां शोरा परिष्करण इकाइयों की स्थापना के बाद छपरा नदी तट पर स्थित बाज़ार के रूप में विकसित हुआ. 1864 में यहां नगरपालिका का गठन हुआ. यह शहर प्रमुख रेल तथा सड़क मार्ग से जुड़ा है तथा एक कृषि व्यापार केंद्र है. शोरा और अलसी तेल प्रसंस्करण यहां के प्रमुख उद्योग हैं. इस शहर में कई पार्क, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, बिहार विश्वविद्यालय से संबद्ध कई महाविद्यालय और कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय से संबद्ध एक महाविद्यालय स्थित है. जनसंख्या (1991) 136,877.

छाछ

मूलतः मक्खन को मथकर वसा निकालने के बाद बचा हुआ तरल. आजकल इससे आशय पतला किए गए और मथे हुए दही से है, जिसका इस्तेमाल समूचे दक्षिण एशिया में एक शीतल पेय पदार्थ के रूप में किया जाता है.

मलाई उतरे हुए दूध की ही तरह संवर्द्धित छाछ मुख्य रूप से पानी (लगभग 90 प्रतिशत), दुग्ध शर्करा लैक्टोज़ (लगभग 5 प्रतिशत) और प्रोटीन केसीन (लगभग 3 प्रतिशत) से बनी होती है. कम वसा के दूध की बनी हुई छाछ में घी अल्प मात्रा (2 प्रतिशत तक) में होता है. कम वसा और वसारहित, दोनों प्रकार की छाछ में जीवाणु कुछ लैक्टोज़ को लैक्टिक अम्ल में बदलते हैं, जो दूध को खट्टा सा स्वाद दे देता है और लैक्टोज़ के पाचन में मदद करता है. समझा जाता है कि जीवित जीवाणु की अधिक संख्या अन्य स्वास्थ्यवर्द्धक और पाचन संबंधी लाभ भी देती है.

पश्चिम में पुडिंग और आइसक्रीम जैसे ठंडे मीठे व्यंजन उद्योग में उपयोग के लिए छाछ को गाढ़ा किया या सुखाया जाता है. विभिन्न भारतीय भाषाओं में इसे मट्ठा और मोरू कहा जाता है.

छिंदवाड़ा

नगर, दक्षिण–मध्य मध्य प्रदेश राज्य, मध्य भारत, कुलबेहरा की धारा बोदरी के तट पर स्थित. यह 671 मीटर की ऊंचाई पर सतपुड़ा के खुले पठार पर स्थित है और उपजाऊ कृषि भूमि से घिरा है, जिसमें बीच–बीच में आम के बाग़ हैं और इसके पश्चिमोत्तर में कम ऊंचाई वाले ऊबड़–खाबड़ पहाड़ तथा दक्षिण में नागपुर के मैदानों की ओर ढलान है. पठार के दक्षिणी और पूर्वी हिस्से में चौराई गेहूं के उपजाऊ मैदान हैं. नागपुर का मैदान कपास और ज्वार की खेती का समृद्ध इलाक़ा है और इस समूचे क्षेत्र का सबसे संपन्न और सर्वाधिक आबादी वाला हिस्सा है. वैनगंगा, पेंच और कन्हन नदियां इस क्षेत्र को अपवाहित करती हैं. यहां की मिट्टी बजरीयुक्त और जल्दी सूखने वाली है. अपेक्षाकृत कम बारिश के बावजूद यहां का मौसम विशेष रूप से स्वास्थ्यवर्द्धक और ख़ुशनुमा है. इस नगर का नामकरण 'छिंद', यानी खजूर के वृक्ष के नाम पर हुआ है. यहां मिट्टी से निर्मित एक दुर्ग है, जहां 1857 के विद्रोह से पहले सेना का शिविर था. 1867 में इस नगर की नगरपालिका का गठन हुआ.

यह रेल और सड़क के महत्त्वपूर्ण जंक्शन पर बसा हुआ है. इसके इर्द–गिर्द के पठारी क्षेत्र में कोयला, मैंगनीज़, जस्ता, बॉक्साइट और संगमरमर का खनन होता है. कपास का व्यापार और कोयले की ढुलाई इस नगर की मुख्य गतिविधियां हैं. कपास ओटाई तथा आरा मिलें यहां के मुख्य उद्योग हैं. पठार में व्यापक पैमाने पर पशुपालन होता है. स्थानीय स्तर पर यह नगर मिट्टी के बर्तन तथा जस्ता, पीतल व कांसे के आभूषण और चमड़े की मशक के निर्माण के लिए विख्यात है. यहां जलापूर्ति के लिए कोई निर्माण नहीं है और पानी कुओं तथा लालबाग़ व एशबर्नर जैसे जलाशयों से प्राप्त किया जाता है. यह नगर स्थानीय व्यापार का केंद्र है और पशु, अनाज तथा इमारती लकड़ी की बिक्री के लिए यहां साप्ताहिक हाट लगती है.

यहां सागर विश्वविद्यालय से संबंद्ध महाविद्यालय हैं. बारकुही से ठीक पश्चिमोत्तर में एक खनन विद्यालय है. गोंड वंश की पुरानी राजधानी देवगढ़ छिंदवाड़ा नगर के पास ही स्थित है. जनसंख्या (2001) ज़िला कुल 18,48,882.

छींट

सादा बुना हुआ, छपा हुआ या पक्के रंगों से रंगा, सूती कपड़ा, सामान्यतः एक अत्यधिक चमकदार व एकसार महीन छापे वाला कपड़ा. वास्तव में, 'शिट्ज़' (हिंदी शब्द छींट से ही आया है, जिसका अर्थ है धब्बेदार) भारत में उत्पादित चित्तीदार या रंगी हुई छींट थी. आधुनिक कपड़े का निर्माण सामान्यतः एक हल्की पृष्ठभूमि पर विभिन्न रंगों से किया जाता है तथा इसका उपयोग सजावट व सुसज्जित परिधानों में किया जाता है. चमकहीन छींट को छापेदार कपड़ा (क्रिटोन) कहते हैं.

छोटा नागपुर का पठार
सौजन्य : युसूफ सईद

छोटा नागपुर

पठार, झारखंड राज्य, पूर्वी भारत. यह पठार पूर्व कैंब्रियन युगीन (5,40,000,000 वर्ष से भी अधिक पुरानी) चट्टानों से बना है. रांची, हज़ारीबाग और कोडरमा के पठारों का संयुक्त नाम छोटा नागपुर है, जिसका क्षेत्रफल 65,509 वर्ग किमी है. इसका बड़ा हिस्सा रांची का पठार है, जिसकी औसत ऊंचाई 700 मीटर है. छोटा नागपुर का समूचा पठार उत्तर में गंगा और सोन के बेसिन और दक्षिण में महानदी के बेसिन के बीच स्थित है; इसके मध्य भाग में पश्चिम से पूर्व दिशा में कोयला क्षेत्र वाली दामोदर घाटी गुज़रती है. वहां से बहने वाली कई धाराओं ने उच्चभूमि को स्थलीप्राय (अपरदन के कारण लगभग मैदान जैसा बन चुका क्षेत्र) बना दिया है, जिसमें कहीं–कहीं पहाड़ियां हैं.

सदियों से भारी पैमाने पर होने वाली खेती ने पठार की अधिकांश प्राकृतिक वनस्पति को नष्ट कर दिया है, इसके बावजूद अब भी कुछ महत्त्वपूर्ण वन बचे हुए है. टसर रेशम और लाख जैसे वन उत्पाद आर्थिक रूप से महत्त्वपूर्ण हैं. भारत में खनिज संसाधनों का सबसे महत्त्वपूर्ण संकेंद्रण छोटा नागपुर में है. दामोदर घाटी में कोयले के विशाल भंडार हैं और हज़ारीबाग जिला, विश्व में अभ्रक के प्रमुख स्रोतों में से एक है. अन्य खनिज हैं– तांबा, चूना–पत्थर, बॉक्साईट, लौह अयस्क, एस्बेस्टॅस और ऐपाटाइट (फ़ॉस्फ़ेट उर्वरक के उत्पादन में उपयोगी). बोकारो में एक विशाल तापविद्युत संयंत्र और इस्पात कारखाना है. इस पठार से गुजरने वाले रेलमार्ग इसे दक्षिण–पूर्व में कोलकाता (भूतपूर्व कलकत्ता) और उत्तर में पटना से जोडते हैं और दक्षिण तथा पश्चिम के अन्य नगरों से भी संपर्क उपलब्ध कराते है

जंगबहादुर

(ज.–18 जून 1817, काठमांडू, नेपाल; मृ.–25 फ़र. 1877, काठमांडू), 1846 से 1877 तक नेपाल के प्रधानमंत्री और वास्तविक शासक. उन्होंने वहां शक्तिशाली राणा वंश के आनुवंशिक प्रधानमंत्रियों की परंपरा स्थापित की और 1951 तक यह पद उनके वंशजों के पास ही रहा.

जंगबहादुर साहसी और योग्य व्यक्ति थे. उन्होंने अत्याचारी गगन सिंह की हत्या कर नेपाल की सत्ता पर अधिकार जमाया. गगन सिंह ने 1846 में छोटी रानी के साथ मिलकर स्वयं प्रधानमंत्री बनने और रानी के बेटे को राजगद्दी पर बैठाने का षड्यंत्र किया था. बाद में जंगबहादुर ने राजा और रानी, दोनों को अपदस्थ करके देश निकाला दे दिया, क्योंकि उन्होंने जंगबहादुर की हत्या करने का प्रयत्न किया था. जंगबहादुर को आजीवन प्रधानमंत्री मनोनीत कर दिया गया और वंशानुगत उपाधि 'राणा' प्रदान की गई 1850–51 के दौरान वह इंग्लैंड गए और जीवन भर अंग्रेजों के पक्के दोस्त रहे.

जंगबहादुर की कूटनीतिक सूझबूझ और समझौतावादी नीति की सहायता से नेपाल स्वतंत्र बना रहा, जबकि समूचा भारतीय उपमहाद्वीप ब्रिटिश शासन के अधीन हो गया था. 1857 के भारतीय विद्रोह के दौरान उन्होंने अंग्रेज़ों की मदद के लिए गोरखा सैनिकों का दस्ता भेजा और ब्रिटिश सेना में गोरखा ब्रिगेड रखने की परंपरा स्थापित की. उन्होंने अपने देश का प्रशासन सुधारने तथा उसका आधुनिकीकरण करने की दिशा में भी बहुत काम किया और पुरानी दंड संहिता में संशोधन किया. यद्यपि उन्होंने सती प्रथा समाप्त करने की कोशिश की, लेकिन उन्हीं की तीन पत्नियां उनकी चिता में जलकर सती हो गईं.

वंशानुगत प्रधानमंत्री नियुक्त होने के बाद जंगबहादुर को लगा कि देश की सुरक्षा के लिए उनके बाद पूरी तरह वयस्क और योग्य व्यक्ति को ही शासन संभालना चाहिए. इसीलिए उन्होंने ऐसा उत्तराधिकार आदेश तैयार कराया, जिसके अनुसार प्रधानमंत्री पद पिता के बाद आवश्यक रूप से बेटे को न मिलकर परिवार के ही एक भाई से दूसरे भाई को मिल सकता था. दूसरी पीढ़ी में यह पद सभी भाइयों के बेटों को आयु के क्रम में और इसी तरह आने वाली पीढ़ियों तक चलता रहा. इस प्रकार जंगबहादुर की मृत्यु होने पर उनके छोटे भाई राणा उदीप सिंह प्रधानमंत्री बने. 20वीं शताब्दी के पहले 50 वर्ष तक राणा परिवार के लोग ही प्रधानमंत्री पद पर रहे, आखिरी वंशानुगत प्रधानमंत्री मोहन 1951 में सेवानिवृत्त हुए. बाद में भी राणा परिवार बहुत प्रभावशाली और शक्तिशाली बना रहा. फरवरी 1970 में युवराज बीरेंद्र ने, जो 1972 में नेपाल नरेश बने, राणा परिवार की कन्या से विवाह किया, जो उनकी महारानी बनी.

जंगली सूअर

सूअर प्रजाति *सुस स्क्रोफा, सुइडी* कुल का जंगली सदस्य. पालतू सूअरों, गिनी पिग और कई अन्य स्तनधारी प्राणियों के नरों के लिए भी 'बोर' (जंगली सूअर) शब्द का उपयोग होता है.

वाइल्ड बोर, जिसे यूरोपीय वाइल्ड बोर भी कहा जाता है, जंगली सूअरों में सबसे बड़ा होता है. यह पश्चिमी और उत्तरी यूरोप, उत्तरी अफ़्रीका, भारत, अंडमान द्वीप समूह और चीन में पाया जाता है. इसे अमेरिका और न्यूज़ीलैंड भी ले जाया गया है (जहां यह स्थानीय जंगली प्रजातियों में घुलमिल गया है). इसके शरीर पर कड़े बाल होते हैं, रंग धूसर, काला या भूरा होता है और कंधे तक इसकी ऊंचाई 90 सेमी तक होती है. अकेले रहने वाले बूढे नरों को छोड़कर, जंगली सूअर झुंडों में ही निवास करते हैं. ये तेज, निशाचर, सर्वभक्षी और अच्छे तैराक होते हैं. इनके दांत पैने और बाहर की ओर निकले होते हैं. हालांकि यह आक्रामक जानवर नहीं है, फिर भी ख़तरनाक साबित हो सकता है.

अपनी शक्ति, गति और भयंकरता के कारण पुराने ज़माने से ही जंगली सूअर पीछा करके शिकार किया जाने वाला सबसे पसंदीदा जानवर रहा है. यूरोप और भारत के कुछ हिस्सों में अब भी कुत्तों की मदद से इसका शिकार किया जाता है, लेकिन भालों का स्थान अब बंदूकों ने ले लिया है.
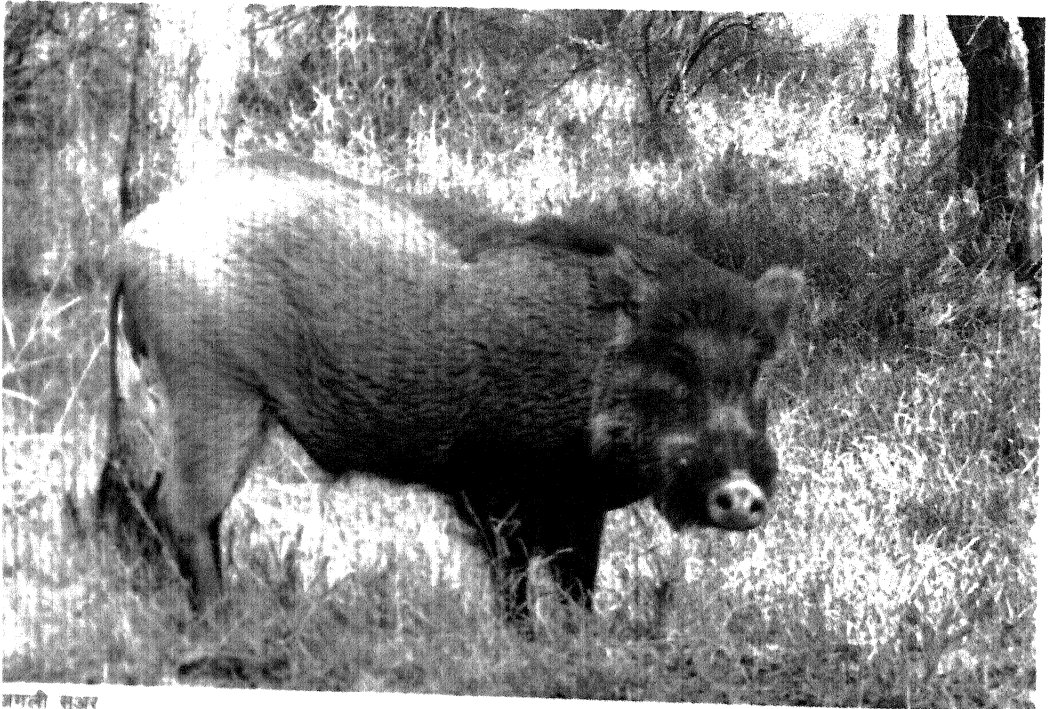
जंगली सूअर
सौजन्य : विवेक

यूरोप में जंगली सूअर राजसी शिकार के चार पशुओं में से एक है और यह इंग्लैंड के राजा रिचर्ड III का विशेष चिह्न है. काफ़ी समय तक खाद्य पदार्थ के रूप में जंगली सूअर के सिर को विशिष्ट व्यंजन का दर्जा प्राप्त था.

ज़कात

अरबी भाषा का शब्द, मुसलमानों द्वारा देय एक अनिवार्य कर, इस्लाम के पांच स्तंभों में से एक. ज़कात संपत्ति की पांच श्रेणियों– खाद्यान्न; फल; ऊंट, मवेशी, भेड़–बकरियां; सोना–चांदी और चल संपत्ति –पर लगाया जाता है, जो एक वर्ष के स्वामित्व के बाद प्रतिवर्ष देय होता है. धार्मिक क़ानून के हिसाब से आवश्यक कराधान वर्ग के अनुसार, परिवर्तनीय है. ज़कात से लाभान्वित होने वालों में ग़रीब और ज़रूरतमंद, इसके संग्राहक और 'वे जिनके दिलों पर मरहम लगाना आवश्यक है'– उदाहरणार्थ, असंतुष्ट कुटुंबी, कर्ज़दार, जिहादी (धर्मयोद्धा) और तीर्थयात्री शामिल हैं.

ख़िलाफ़त के तहत ज़कात का संग्रहण और व्यय राज्य का कार्य था, लेकिन धर्म निरपेक्ष कराधान के बढ़ने के साथ जकात को नियंत्रित और संपूर्णतः संगृहीत करना उत्तरोत्तर कठिन होता गया. सऊदी अरब जैसे देशों को छोड़कर, जहां शरीयत (इस्लामी क़ानून) का सख़्ती से पालन होता है, आधुनिक इस्लामी विश्व में इसे व्यक्ति विशेष पर छोड़ दिया गया है.

क़ुरान और *हदीस* (मुहम्मद साहब के वचन) सदक़ा अथवा स्वैच्छिक दान पर भी बल देते हैं, जो ज़कात की ही तरह, ज़रूरतमंदों के लिए होता है.

जगदलपुर

नगर, छत्तीसगढ़ राज्य, मध्य भारत, इंद्रावती नगर के दक्षिण में स्थित. यह बस्तर का प्रमुख शहर है. घने जंगलों से घिरा यह शहर सड़क मार्ग द्वारा रायपुर, सिरोंचा, जयपुर और कांकेर से भलीभांति जुड़ा हुआ है. यहां बड़े पैमाने पर कृषि व्यापार होता है. कभी–कभी इसे बस्तर भी कह दिया जाता है. यह पहले भूतपूर्व बस्तर रियासत की राजधानी था. यहां पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय से संबद्ध महाविद्यालय है. जनसंख्या (2001) शहर 73,687.

जगन्नाथ

(संस्कृत शब्द, अर्थात संसार के स्वामी), वह स्वरूप, जिसमें कृष्ण भारत के सर्वाधिक प्रसिद्ध धार्मिक केंद्रों में से एक उडीसा राज्य के पुरी, पश्चिम बंगाल राज्य मे श्रीरामपुर के एक उपनगर बल्लभपुर और पूर्वी भारत के छोटे–छोटे केंद्रों में पूजे जाते हैं. पुरी में 12वीं सदी का जगन्नाथ मंदिर नगर के बीच स्थित है. इसके गर्भगृह में अपरिष्कृत रूप से तराशी लकडी की जगन्नाथ, उनके भाई बलभद्र (बलराम) और बहन सुभद्रा की मूर्तियां हैं. कुछ विद्वानों ने मंदिर की मूर्तियों के त्रिविध स्वरूप मे बौद्ध प्रभाव को

माना है. पुरी में विष्णु के 10 अवतारों के आधुनिक स्वरूपों में सामान्यतः स्वीकृत बुद्ध की जगह जगन्नाथ को 10वां अवतार माना गया है.

कई वार्षिक त्योहारों में सबसे महत्त्वपूर्ण रथयात्रा है, जो आषाढ़ (जून–जुला.) के शुक्ल पक्ष की द्वितीया को आयोजित होती है. मूर्तियों को लकड़ी के रथों में रखा जाता है, जो इतने भारी होते हैं कि इनको खींचने के लिए सैकड़ों श्रद्धालुओं को ज़ोर लगाना पड़ता है और इसे गहरे बलुई रास्ते से भगवान के ग्रामीण धाम तक लाया जाता है. इस यात्रा में कई दिन लग जाते हैं और इस उत्सव में हज़ारों श्रद्धालु हिस्सा लेते हैं. अतीत में इस यात्रा की ख़बरों को बढ़ा–चढ़ाकर पेश किया जाता था, हालांकि दुर्घटनाएं आम हैं और कभी–कभी कोई उत्तेजित श्रद्धालु रथ के नीचे कूदने का प्रयास करता है. अंग्रेज़ी भाषा का 'जगरनॉट', जिसका अर्थ अपने रास्ते में आने वाली सभी चीजों को कुचलने वाली शक्ति से है, जगन्नाथ से बना है.

जजमानी प्रथा

भारत में एक ग्रामीण समुदाय के अंतर्गत विभिन्न जातियों के परिवारों के बीच एक सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था, जिसके अनुसार एक परिवार दूसरे को संपूर्ण रूप से कुछ नियत सेवाएं देता है, जैसे कर्मकांड संपन्न करवाना, हजामत बनाना या कृषि हेतु मज़दूरी करना. ये संबंध पीढ़ियों तक जारी रहते हैं और भुगतान सामान्यतः नक़द की अपेक्षा फसल के एक नियत भाग के रूप में किया जाता है. संरक्षक परिवार को जजमान (संस्कृत शब्द यजमान, यानी त्यागी संरक्षक, जो पुजारियों का उपयोग कर्मकांड कराने हेतु करता है) और आश्रित परिवार जजमानी कहलाते हैं. संरक्षक परिवार स्वयं दूसरे का आश्रित हो सकता है, जिसे वह कुछ सेवाओं के लिए संरक्षित करता है और जिसके द्वारा वह भी कुछ सेवाओं हेतु संरक्षण पाता है. वंशानुगत प्रवृत्ति कुछ प्रकार की बंधुआ मज़दूरी को बढ़ाती है, क्योंकि वंशानुगत संरक्षकों की सेवा पारिवारिक बाध्यता है.

जजाऊ का युद्ध

(12 जून 1707), बादशाह औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के लिए हुई यह निर्णायक लड़ाई आगरा से दक्षिण की ओर कुछ मील दूर यमुना नदी के किनारे लड़ी गई थी. इसमें औरंगज़ेब के एकमात्र जीवित सबसे बड़े बेटे बहादुर शाह को सत्ता मिली.

3 मार्च 1707 को औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद काबुल, अफ़ग़ानिस्तान में सूबेदार पद पर आसीन बहादुर शाह और उनके भाई आज़म शाह में युद्ध शुरू हुआ. सावधानी और तेज़ी से की गई तैयारियों और तेज़ चालों से बहादुर शाह ने 12 जून को आगरा पहुंचकर शाही खज़ाने पर कब्ज़ा कर लिया. हालांकि निश्चित संख्या की जानकारी नहीं है, लेकिन दोनों पक्षों के पास 1,00,000 से अधिक योद्धा थे और बहादुर शाह तोपख़ाने के मामले में ज़्यादा सशक्त थे. अपनी तोपों के कारण और आज़म शाह के कुछ सहयोगियों द्वारा साथ छोड़े जाने और तेज गर्मी के मौसम में पानी की कमी ने बहादुर शाह का साथ दिया. इसमें आज़म शाह और उनके बेटे बीदर बख़्त, दोनों की मृत्यु हो गई.

जज़िया

जिज़या भी लिखा जाता है, वैयक्तिक या सामुदायिक कर, जिसे प्रारंभिक इस्लामी शासकों ने अपनी ग़ैर मुस्लिम प्रजा से वसूल किया. इस्लामी क़ानून ने ग़ैर मुसलमान प्रजा को दो श्रेणियों में विभक्त किया था– मूर्तिपूजक और ज़िम्मी ('संरक्षित लोग' या 'ग्रंथों के लोग', यानी वे लोग, जिनके धार्मिक विश्वासों का आधार पवित्र ग्रंथ होते हैं, जैसे ईसाई, यहूदी और पारसी). मुस्लिम शासकों ने ज़िम्मियों के साथ सहिष्णुतापूर्वक व्यवहार किया और उन्हें अपने धर्म का पालन करने की इजाज़त दी. इस संरक्षण के बदले और अधीनता के चिह्न के रूप में ज़िम्मियों को एक ख़ास व्यक्ति कर चुकाना आवश्यक था, जो जज़िया कहलाया. कर की दर व उसकी वसूली के तरीक़े हर प्रांत में बहुत अलग–अलग थे और वे स्थानीय इस्लाम–पूर्व के रिवाजों से अत्यधिक प्रभावित थे. सिद्धांततः कर के धन का इस्तेमाल दान और तनख़्वाह व पेंशन बांटने के लिए होता था. वास्तव में जज़िया से एकत्र किए गए राजस्व को शासक के निजी कोष में जमा किया जाता था. आमतौर पर ऑटोमन शासक जज़िया से एकत्र धन का इस्तेमाल अपने सैन्य ख़र्चों के लिए करते थे.

सिद्धांततः धर्मांतरण कर इस्लाम को अपनाने वाले व्यक्ति को जज़िया अदा करने की ज़रूरत नहीं थी. हालांकि उमय्या ख़लीफ़ाओं (661–750) ने बढ़ते वित्तीय संकट का सामना करने के लिए इस्लाम को स्वीकार करने वाले नए लोगों के साथ–साथ ज़िम्मियों से भी जज़िया की मांग की थी. नए मुस्लिमों के प्रति यह भेदभाव ख़ुरासान में अबू मुस्लिम विद्रोह (747) और उमय्या वंश के पतन का कारण बना.

जन्माष्टमी

भाद्रपद (अग.–सितं.) महीने के कृष्णपक्ष के आठवें दिन (अष्टमी) भगवान कृष्ण के जन्मदिवस पर आयोजित हिंदू त्योहार. कृष्ण कथा में आठ की संख्या का भी महत्त्व है, क्योंकि कृष्ण भगवान विष्णु के दस अवतारों में से आठवें हैं और देवकी के आठवें पुत्र हैं.

इस अवसर पर कृष्ण के बचपन और किशोरावस्था से जुड़े स्थलों, मथुरा तथा वृंदावन में विशेष तौर पर भव्य आयोजन होते हैं, जिनमें श्रद्धालु उनके जन्म के पारंपरिक समय मध्यरात्रि तक जागरण कर उपवास रखते हैं. इसके बाद कृष्ण की मूर्ति को पानी और दूध से नहलाया जाता है, उन्हें नए वस्त्र पहनाए जाते हैं और उनकी पूजा की जाती है. मंदिरों और घरों में पूजास्थलों को फूलों–पत्तों से सजाया जाता है; भगवान को पहले मिष्ठान्न चढ़ाया जाता है, जिसे बाद में प्रसाद के रूप में वितरित कर दिया जाता है. कृष्ण के श्रद्धालु झांकियां सजाते हैं, जिसमें बालक कृष्ण की सुरक्षा के लिए, उन्हें उनके जन्म स्थान मथुरा से, यमुना नदी के पार गोकुल ले जाने के दृश्य होते हैं. गोकुल कृष्ण के बचपन का क्रीड़ास्थल रहा. साथ ही भगवान की छोटी मूर्तियों, अन्य चरित्रों और प्राणियों व पक्षियों को भी प्रदर्शित किया जाता है. गलियों में ऊंचे खंभों पर दूध से भरी मटकियां लटकाई जाती हैं, पुरुष एक–दूसरे पर चढ़ कर मटकियों

को फोड़ते हैं. यह कृष्ण द्वारा बचपन में ग्वालबालों के साथ खेले गए खेल की छवि है, जिसमें वह माताओं द्वारा बच्चों की पहुंच से ऊपर लटकाए गए दही और मक्खन चुराकर खाया करते थे. यह त्योहार सामूहिक नृत्य और गायन का भी अवसर है, जो स्थानीय और शास्त्रीय परंपराओं का सम्मिलन दर्शाता है.

जफ़र बिन मुहम्मद

जफ़र अस्सादिक (अरबी शब्द, अर्थात भरोसेमंद ज़फ़र) भी कहलाते थे, (ज.– 699 / 700 या 702 / 703, मदीना, अरब {वर्तमान सऊदी अरब}; मृ.– 765, मदीना), पैग़ंबर मुहम्मद के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी या इस्लाम की शिया शाखा के छठे इमाम और सभी शिया संप्रदायों द्वारा मान्य अंतिम इमाम. धार्मिक रूप से, उन्होंने सीमित पूर्वनियति का समर्थन किया और कहा कि *हदीस* (पैगंबर के पारंपरिक उद्‌गार) अगर *कुरान* विरोधी हैं, तो उन्हे खारिज कर देना चाहिए.

ज़फर, पांचवें इमाम मुहम्मद अल–बाक़िर के पुत्र और चौथे ख़लीफ़ा अली के पड़पोते थे, जो शिया संप्रदाय के संस्थापक और पहले इमाम माने जाते हैं. मातृपक्ष की ओर से जफर पहले खलीफा अबू बक्र के वंशज थे, जिन्हें आमतौर पर शिया लोग अनधिकृत मानते हैं. इससे यह समझा जा सकता है कि वह पहले दोनों ख़लीफ़ाओं की आलोचना कभी क्यों सहन नहीं कर सके.

इसमें कुछ शक है कि कुछ 'भूमिगत आंदोलनों' को छोड़कर समग्र धार्मिक नेता या इमाम की शिया अवधारणा 10वीं सदी के पहले वास्तविक रूप में निरूपित हो चुकी थी. मगर शिया लोगों द्वारा यह निश्चित तौर पर महसूस किया जा रहा था कि ख़लीफ़ा द्वारा अपनाया जाने वाला इस्लाम के राजनीतिक नेता का पद अली के प्रत्यक्ष वंशजों को मिलना चाहिए. इसके अलावा यह राजनीतिक नेतृत्व, धार्मिक नेतृत्व से स्पष्ट रूप से अलग नहीं था और उमय्या शासन के अंत में ख़लीफ़ाओं ने कई बार अपनी प्रभुसत्ता को सुदृढ करने के लिए प्रवचनों का उपयोग करते हुए मस्जिद में उपदेश दिए. परिणामस्वरूप, 731 से 743 के बीच अपने पिता की मृत्यु के बाद ज़फ़र ख़लीफ़ा पद के संभावित दावेदार और उमय्याओं के लिए संभावित ख़तरा थे.

उमय्या शासन को पहले ही दूसरे शत्रु तत्त्वों से ख़तरा था, जिनमें अरब प्रभुता से नाखुश ईरानी भी शामिल थे. धार्मिक, जातिगत और राजनीतिक उद्देश्यों के मिश्रण से ईरान में शिया मत फैला, जिससे विरोध और भी बढ़े. हालांकि 749–750 का सफल विद्रोह, जिसने उमय्याओं को उखाड़ फेंका था, पैग़ंबर के एक चाचा के वंशज अब्बासी वंश के नेतृत्व में हुआ था. नए शासक वंश की स्थापना अब्बासियों ने की, न कि अली के परिवार ने.

नए खलीफा स्वाभाविक रूप से जफर को लेकर चिंतित थे. अल–मंसूर (शासनकाल 754–775) उन्हें अपनी नई राजधानी बगदाद में रखना चाहते थे, जहां वह उन पर नजर रख सकें. जफर ने मदीना में रहना पसंद किया और इसे उन्होंने पैग़ंबर के इस

कथन के आधार पर सही ठहराया कि जो व्यक्ति भविष्य निर्माण के लिए घर छोड़ता है, वह कामयाबी हासिल कर सकता है, पर जो घर पर ही रहता है, उसे लंबी उम्र हासिल होती है. विद्रोही अलीद् मुहम्मद बिन अब्द अल्लाह की 762 में हार और मृत्यु के बाद जफ़र ने ख़लीफ़ा के बग़दाद बुलावे को मंजूर करना ठीक समझा. हालांकि, थोड़े समय रुकने के बाद उन्होंने अल–मंसूर को यह विश्वास दिलाया कि वह किसी के लिए ख़तरा नहीं हैं और तब उन्हें मदीना लौटने दिया गया, जहां उनकी मृत्यु हुई.

बाद के शिया वर्णनों से ज़फ़र का सही मूल्यांकन कठिन हो गया, जो प्रत्येक इमाम को एक तरह से अतिमानव के रूप में चित्रित करते हैं. राजनीति से बाहर रहने वाले और खुले तौर पर इमाम के पद की दावेदारी न करने वाले ज़फ़र बेशक़ राजनीतिक रूप से चतुर और बौद्धिक रूप से सक्षम थे. उन्होंने अपने आसपास विद्वान शिष्यों को एकत्र कर लिया था, जिनमें चार मान्य इस्लामी क़ानून विचारधारा में से दो, हनीफ़िया व मलिकिया के संस्थापक अबू हनीफ़ा और मलिक बिन अनस व मुताज़िली विचारधारा के संस्थापक वासिल बिन अता शामिल हैं. यूरोप में ज़ेबर के नाम से पहचाने जाने वाले कीमियागर ज़बीर बिन हय्यां इतने ही प्रसिद्ध थे, जिन्होंने अपने कई वैज्ञानिक विचारों का श्रेय ज़फ़र को दिया और यहां तक कहा कि उनकी कई रचनाएं ज़फ़र की शिक्षाओं और उनके द्वारा लिखे सैकड़ों प्रबंधों के सारांश ही हैं. ज़फ़र के नाम से मिलने वाली आधा दर्जन धार्मिक पांडुलिपियों को विद्वान सामान्य तौर पर अप्रामाणिक मानते हैं. ऐसा लगता है कि वह एक ऐसे शिक्षक थे, जिन्होंने लेखन का काम दूसरों के लिए छोड़ दिया.

कई मुस्लिम लेखकों ने तीन मूलभूत धार्मिक विचारों का श्रेय उन्हें दिया है. पहला, उन्होंने पूर्व नियति के प्रश्न पर मध्य मार्ग अपनाया, वह कहते हैं कि खुदा ने कुछ चीज़ों पर अंतिम फ़ैसले दिए, लेकिन कुछ को मनुष्य पर छोड़ दिया. यह एक समझौता है, जिसे विस्तृत रूप से स्वीकारा गया है. दूसरा, *हदीस* की पद्धति के बारे में उन्होंने घोषणा की कि *क़ुरान* (इस्लामी धर्मग्रंथ) के विरोधी नियमों को अस्वीकार किया जाना चाहिए, चाहे कोई भी प्रमाण उस नियम का समर्थन करे. तीसरा, उन्होंने मुहम्मद के पैग़ंबर रूप में धार्मिक उपदेशों को उस प्रकाश की किरण की तरह वर्णित किया, जो आदम से पहले बनीं थीं और मुहम्मद से उनके वंशजों को प्राप्त हुई थी.

ज़फ़र की मृत्यु के बाद शिया संप्रदाय में विभाजन हुए. उनके सबसे बड़े बेटे, इस्माईल की मृत्यु उनसे पहले हो गई थी, लेकिन वर्तमान में 'सात इमामों को मानने वालों' का प्रतिनिधित्व मुख्य रूप से इस्माईलियों (इस्माईल के अनुयायियों) द्वारा किया जाता है, जो यह मानते हैं कि इस्माईल केवल ग़ायब हुए हैं और एक दिन ज़रूर प्रकट होंगे. उनके तीन अन्य बेटे भी इमाम पद के दावेदार थे, जिनमें से मूसा अल–काज़िम को व्यापक मान्यता मिली थी. इस्माईल को मान्यता नहीं देने वाला शिया संप्रदाय, मुख्य रूप से '12 इमामों को मानने वाले' कहलाया. वे ज़फ़र के बाद से 12वें इमाम, जो अदृश्य हो गए थे और क़यामत (फ़ैसले) के दिन जिनके लौटने की उम्मीद है, तक के उत्तराधिकारियों को मान्यता देते हैं.

जबलपुर

शहर, मध्य मध्य प्रदेश राज्य, मध्य भारत. नर्मदा नदी के उत्तर में निचली पहाड़ियों से घिरे चट्टानी बेसिन में झीलों और मंदिरों के बीच स्थित है. पुराणों और किंवदंतियों के अनुसार जबलपुर का संबंध जाबालि ऋषि से है, जिनके बारे में कहा जाता है कि वह यहीं निवास करते थे. 1781 के बाद ही मराठों के मुख्यालय के रूप में चुने जाने पर इस नगर की महत्ता बढ़ी, बाद में यह सागर और नर्मदा क्षेत्रों के ब्रिटिश कमीशन का मुख्यालय बन गया. यहां 1864 में नगरपालिका का गठन हुआ था.

नगर से 18 किमी दक्षिण–दक्षिणपश्चिम में नर्मदा नदी बहती है. धुआंधार जलप्रपात निर्मित करने के बाद नदी विख्यात संगमरमर की चट्टानों के क्षेत्रों से गुज़रती है, जो पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र हैं. एक पहाड़ी पर मदन महल स्थित है, जो लगभग 1100 ई. में राजा मदन सिंह द्वारा बनवाया गया एक पुराना गोंड महल है. इसके ठीक पश्चिम में गढ़ है, जो 14वीं शताब्दी के चार स्वतंत्र गोंड राज्यों का प्रमुख नगर था. भेड़ाघाट, ग्वारीघाट और जबलपुर से प्राप्त जीवाश्मों से संकेत मिलता है कि यह प्रागैतिहासिक काल के पुरापाषाण युग के मनुष्य का निवास स्थान था. मदन महल, नगर में स्थित कई ताल और गोंड राजाओं द्वारा बनवाए गए कई मंदिर इस स्थान की प्राचीन महिमा की जानकारी देते हैं. इस क्षेत्र में कई बौद्ध, हिंदू और जैन भग्नावशेष भी हैं. अन्य पर्यटन स्थलों में संगमरमर की चट्टानों, धुआंधार जलप्रपात, चौंसठ योगिनी मंदिर, देवताल और रानीताल शामिल हैं.

राज्य के सबसे बड़े शहरों में से एक जबलपुर एक प्रमुख सड़क और रेल जंक्शन पर स्थित है. यह नगर सामरिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है, यहां तोपगाड़ी बनाने का केंद्रीय कारखाना, शस्त्र निर्माण कारख़ाना और एक शस्त्रागार स्थित है. यहां के प्रमुख उद्योगों में खाद्य प्रसंस्करण, आरा मिल और विभिन्न निर्माण शामिल हैं.

इसके आसपास के क्षेत्रों में नर्मदा नदी घाटी के पश्चिमी छोर पर स्थित एक अत्यधिक उपजाऊ, गेहूं की खेती वाला इलाक़ा हवेली शामिल है. चावल, ज्वार, चना और तिलहन आसपास के क्षेत्रों की अन्य महत्त्वपूर्ण फ़सलें हैं. यहां लौह अयस्क, चूना–पत्थर, बॉक्साइट, चिकनी मिट्टी, अग्निसह मिट्टी, शैलखड़ी, फ़ेल्सपार, मैंगनीज़ और गेरू का व्यापक पैमाने पर खनन होता है.

जबलपुर में साक्षरता, संस्कृति, सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों की लंबी परंपरा रही है. यह अंग्रेज़ी, हिंदी और उर्दू के कई लेखकों, प्रकाशकों व मुद्रकों का आवास क्षेत्र रहा है. इस नगर में सरकारी और निजी क्षेत्र के कई शैक्षणिक संस्थान हैं, जिनमें जवाहर लाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, एम.पी. भोज मुक्त विश्वविद्यालय, कॉलेज ऑफ़ एग्रीकल्चर इंजीनियरिंग, फ़ैकल्टी ऑफ़ मैनेजमेंट स्टडीज़, कॉलेज ऑफ़ मटीरियल मैनेजमेंट, जी.एस. कॉलेज ऑफ़ कामर्स ऐंड इकोनॉमिक्स, एम.डी.एच. कॉलेज ऑफ़ होमसाइंस फॉर विमेन, गवर्नमेंट मेडिकल कॉलेज और यूनिवर्सिटी

इंस्टिट्यूट ऑफ़ मैनेजमेंट शामिल हैं. इस नगर में उच्च–न्यायालय भी स्थित है. जनसंख्या (2001) न.नि. क्षेत्र 9,51,469; छावनी क्षेत्र 66,482; ज़िला कुल 21,67,469.

जमशेदपुर

शहर, पूर्वी सिंहभूम ज़िला, झारखंड राज्य (बिहार से अलग होकर बना नवगठित राज्य), पूर्वोत्तर भारत, सुवर्णरेखा और खरकई नदियों के संगम पर स्थित. टाटानगर के नाम से जाने जाने जाते इस शहर की स्थापना 1907 में उद्योगपति दोराबजी जमशेदजी टाटा ने की थी, जो तेज़ी से एक महत्त्वपूर्ण नगर बन गया. राज्य का दूसरा सबसे बड़ा शहर जमशेदपुर महत्त्वपूर्ण रेल और सड़क जंक्शन है. यहां के उद्योगों में भारत का प्रमुख लोहा और इस्पात का कारख़ाना, वाहन संयोजन कारख़ाना, कृषि उपकरणों का निर्माण, कलई किए हुए लोहे के बर्तन, तथा रेल इंजन के पुर्जे बनाने के कारख़ाने शामिल हैं. यहां नेशनल मेटलर्जिकल लेबोरेट्री स्थित है. यहां के शैक्षणिक संस्थानों में ज़ेवियर लेबर रिलेशन्स इंस्टिट्यूट (एक्स.एल.आर.आई.), महात्मा गांधी मेमोरियल मेडिकल कॉलेज और स्नातक स्तर के कई महाविद्यालय शामिल हैं. एक्स.एल.आर.आई. जमशेदपुर भारत के सर्वश्रेष्ठ अग्रणी प्रबंधन स्कूलों में से एक है. जनसंख्या (2001) शहर 5,70,349.

जमालपुर

नगर, मध्य बिहार राज्य, पूर्वोत्तर भारत, मुंगेर घाट (पहाड़ियों) की तराई में गंगा नदी के पास स्थित. इस नगर की स्थापना 1862 में एक रेलवे बस्ती के रूप में हुई थी. यहां रेल इंजीनियरिंग की विशाल कार्यशालाएं और लोहे व इस्पात के बड़े ढलाईघर स्थित हैं. दक्षिण–पश्चिम में स्लेट पत्थर की खदानें है. जमालपुर में तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय से संबद्ध महाविद्यालय हैं. यहां 1883 में नगरपालिका का गठन हुआ. जनसंख्या (2001) 96,659.

ज़मींदार

भारत में ज़मीन का मालिक या क़ाबिज़. मूलतः फ़ारसी से व्युत्पन्न इस शब्द का व्यापक रूप से प्रयोग उन सभी जगहों पर हुआ, जहां मुग़ल या अन्य भारतीय मुस्लिम राजवंशों द्वारा फ़ारसी प्रभाव फैलाया गया. इस शब्द से कई अर्थ जुड़े हुए थे. बंगाल में इसका प्रयोग ऐसे वंशानुगत कर वसूलने वालों के रूप में होता था, जो राज्य के लिए वसूले गए राजस्व में से 10 प्रतिशत अपने पास रखने के अधिकारी होते थे. 18वीं सदी के अंत में ब्रिटिश सरकार ने इन ज़मींदारों को भू–स्वामी बना दिया और इस तरह बंगाल और बिहार में एक ऐसा कुलीन भूपति वर्ग सामने आया, जो 1947 में भारत की आज़ादी तक बना रहा.

उत्तरी भारत के कुछ हिस्सों (मसलन उत्तर प्रदेश) में, ज़मींदार शब्द से तात्पर्य एक ऐसे बड़े भू–स्वामी से होता था, जिसे भूमि पर संपूर्ण स्वामित्व अधिकार प्राप्त होते थे. उत्तर भारत में इससे भी ज़्यादा प्रचलित अर्थ में ज़मींदार ज़मीन जोतने वालों या गांवों

की गोचर भूमियों के साझा उत्तराधिकारियों को कहा जाता था. मराठा इलाक़ों में यह नाम सामान्यतः सभी वंशानुगत राजस्व अधिकारियों के लिए प्रयोग किया जाता था.
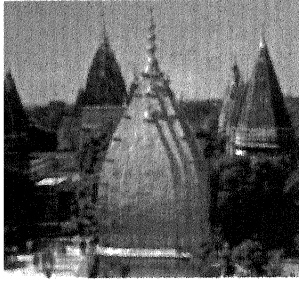
ुवीर मंदिर, जम्मू, जम्मू-कश्मीर
ोटो : विद्याव्रत

जम्मू

शहर, जम्मू–कश्मीर राज्य की शीतकालीन राजधानी, उत्तर भारत. यह श्रीनगर के दक्षिण में तवी नदी के किनारे स्थित है और इसके उत्तर में शिवालिक पर्वतश्रेणी है. एक समय डोगरा राजपूत वंश की राजधानी रहा जम्मू 19वीं शताब्दी में रणजीत सिंह के राज्य का हिस्सा बन गया. अब यह रेलमार्ग से जुड़ा है और एक निर्माण केंद्र है. इस शहर में जम्मू विश्वविद्यालय (स्थापना 1969), कश्मीर विश्वविद्यालय और शेरे कश्मीर यूनिवर्सिटी ऑफ़ एग्रीकल्चरल साइंस ऐंड टेक्नोलॉजी स्थित है. इसके आसपास के क्षेत्रों में गेहूं, चावल, मक्का और जौ की खेती होती है. जनसंख्या (2001) न.पा. क्षेत्र 3,78,431; छावनी क्षेत्र 30,107; ज़िला कुल 15,71,911.

जम्मू–कश्मीर

एक भारतीय राज्य, जो भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी भाग में पश्चिमी पर्वतश्रेणियों के निकट स्थित है. पहले यह भारत की बड़ी रियासतों में से एक था. यह पूर्वोत्तर में सिक्यांग के उइघर स्वायत्त क्षेत्र व तिब्बती स्वायत्त क्षेत्र (दोनों चीन के भाग) से, दक्षिण मे हिमाचल प्रदेश व पंजाब राज्यों से, पश्चिम में पाकिस्तान और पश्चिमोत्तर में पाकिस्तान अधिकृत भूभाग से घिरा है.

भौतिक और मानव भूगोल

भू–आकृति

राज्य का 90 प्रतिशत से अधिक भाग पहाड़ी क्षेत्र है. इस क्षेत्र को भौगोलिक आकृति की दृष्टि से इसे सात भागों में बांटा गया है, जो पश्चिमी हिमालय के संरचनात्मक घटकों से जुड़े हैं. दक्षिण–पश्चिम से पूर्वोत्तर तक इन क्षेत्रों में मैदान, निचली पहाड़ियां, पीर पंजाल पर्वत श्रेणी, कश्मीर की घाटी, वृहद हिमालय क्षेत्र, ऊपरी सिंधु घाटी और कराकोरम पर्वत श्रेणी शामिल हैं. जलवायु की दृष्टि से इसमें पूर्वोत्तर की आल्पीय (पहाड़ी) जलवायु से लेकर दक्षिण–पश्चिम में उपोष्ण तक की विविधता है. औसत वार्षिक वर्षा उत्तर में 75 मिमी से लेकर दक्षिण–पूर्व में 1,150 मिमी तक है.

मैदान

जम्मू क्षेत्र में संकीर्ण मैदानी प्रदेश की विशेषता तराइयों से निकली जलधाराओं द्वारा जमा अवसाद और दोमट मिट्टी व लोएस (वायु द्वारा लाकर जमा की गई मिट्टी) से ढके

डल झील में हाउसबोट, श्रीनगर, जम्मू–कश्मीर
सौजन्य : रईस अख़्तर

एकदम अलग हो चुके अपरदित चट्टान से निर्मित रेतीले जलोढ़ पंखों के अंतःबंधन हैं, जो अभिनूतन (प्लीस्टोसीन) युग (यानी 10 हज़ार से 16 लाख वर्ष पुराना) के हैं. यहां वर्षा 380 से 500 मिमी वार्षिक तक होती है. गर्मी के मौसम में (जून से सितं. में) जब मॉनसूनी हवाएं चलती हैं, तब तेज़ लेकिन अनियमित फुहारों के रूप में वर्षा होती है. अंदरुनी इलाक़ा पेड़ों से पूरी तरह विहीन हो गया है और कंटीली झाड़ियां या मोटी घास ही यहां की मुख्य वनस्पति है.

तराई क्षेत्र

हिमालय की तराइयों से, जिनकी ऊंचाई 610 से 2,134 मीटर तक है, बाहरी और भीतरी प्रक्षेत्र निर्मित हैं. बाहरी परिक्षेत्र की रचना बलुआ पत्थर, चिकनी मिट्टी, पंक और संपिंडित चट्टानों से हुई है. ये क्षेत्र हिमालय की वलन गतिविधि से प्रभावित होकर और अपरदन के कारण लंबे पर्वतीय कटकों और घाटियों (दून) के आकार के हो गए हैं. अंदरुनी प्रक्षेत्र अधिक भीमकाय तलछटी चट्टानों से, जिसमें मिओसीन युग (लगभग 53 से 237 लाख वर्ष पूर्व) के लाल बलुआ पत्थर शामिल हैं, से बना है जिनके मुड़ने, टूटने और क्षरित होने से खड़ी ढलान वाले पर्वत स्कंधों व पठारों का निर्माण हुआ. नदी घाटियों की कटान तीखी व सीढ़ीदार है और भ्रंशों से ऊधमपुर तथा पुंछ जैसे

जलोढ मिट्टी के बेसिन बन गए हैं. ऊंचाई के साथ–साथ वर्षा बढ़ती जाती है और ऊंचाई बढने के साथ निचली झाड़ीदार भूमि का स्थान देवदार और चीड़ के जंगल ले लेते हैं.

पीर पंजाल पर्वत श्रेणी

पीर पंजाल पर्वतश्रेणी हिमालय से संबद्ध पहली पर्वत श्रृंखला है. इसकी औसत शीर्ष रेखा 3,810 मीटर ऊंची है, जिसमें कोई–कोई चोटी 4,572 मीटर तक ऊंची है. ग्रेनाइट, शैल, क्वार्ट्ज़ व स्लेट से बनी चट्टानों वाली यह पर्वतश्रेणी अभिनूतन (प्लीस्टोसीन) युग में कई बार उत्थान तथा दरार पड़ने जैसी भौगोलिक घटनाओं का शिकार हुई और ग्लेशियरों से प्रभावित हुई. इस पर्वतमाला पर शीत ऋतु में काफ़ी बर्फ़ गिरती है और गर्मी में काफी बारिश होती है. इसमें विशाल चरागाह क्षेत्र हैं, जो वृक्ष क्षेत्र से ऊपर की तरफ़ हैं.

कश्मीर की घाटी

कश्मीर की घाटी एक गहरा तथा विषम बेसिन है, जो पीर पंजाल और विशाल हिमालय पर्वत श्रेणी के पश्चिमी छोर के बीच में स्थित औसतन 1,600 मीटर की ऊंचाई वाली है. अभिनूतन (प्लीस्टोसीन) युग के दौरान यह कभी करेवा झील की तलहटी थी. अब यह ऊपरी झेलम नदी द्वारा जमा की गई तलछट और जलोढ़ मिट्टी से भरी हुई है. मिट्टी और पानी की स्थितियों में उल्लेखनीय विविधता है. जलवायु की दृष्टि से यहां लगभग 750 मिमी वार्षिक वर्षा होती है, कुछ तो ग्रीष्म कालीन मॉनसूनी हवाओं से और कुछ शीत ऋतु में कम दाब की प्रणाली से संबद्ध हवाओं से होती है. अक्सर हिमपात का साथ वर्षा और ओले देते हैं. ऊंचाई के कारण तापमान काफ़ी परिवर्तित हो जाता है. श्रीनगर में न्यूनतम औसत तापमान जनवरी में 2°से. होता है और अधिकतम औसत तापमान जुलाई में 31°से. तक रहता है.

2,134 मीटर की ऊंचाई तक देवदार, नीला चीड़, अखरोट, विलो (शरपत), एल्म (चिराबेल व हिमरोई) और पॉप्लर के जंगल पाए जाते हैं; 2,134 से 3,200 मीटर की ऊंचाई पर फर, चीड तथा स्प्रूस जैसे शंकुधारी वृक्षों के जंगल मिलते हैं, 3,200 से 3,658 मीटर की ऊंचाई पर भोज (बर्च) वृक्षों की बहुतायत है और 3,658 मीटर की ऊंचाई पर हरे–भरे मैदान हैं जिनमें बुरुश वृक्ष (रोडोडेंड्रॉन), बौने विलो और मधुमालती लताएं होती हैं.

वृहद हिमालय प्रक्षेत्र

भू–विज्ञान की दृष्टि से जटिल और स्थलाकृति की दृष्टि से विशाल वृहद हिमालय में 6,096 मीटर से अधिक तक ऊंचाई वाली कुछ पर्वत श्रेणियां हैं, जिनके बीच–बीच में बहुत गहरी घाटियां हैं. अभिनूतन (प्लीस्टोसीन) युग में यह क्षेत्र भारी ग्लेशियरों के अंतर्गत आता था और ग्लेशियरों के अवशेष व हिमक्षेत्र रहे होने के चिह्न अभी भी यहां मौजूद हैं. इस प्रक्षेत्र में गर्मी के महीनों में दक्षिण–पश्चिमी मॉनसूनी हवाओं से कुछ वर्षा होती है. इसके निचले ढलान वनाच्छादित हैं. लेकिन हिमालय एक जलवायु विभाजक

जैसा है. इस ओर भारतीय उपमहाद्वीप की मानसूनी जलवायु है और दूसरी ओर मध्य–एशिया की शुष्क महाद्वीपीय जलवायु.

ऊपरी सिंधु घाटी

ऊपरी सिंधु नदी की घाटी की एक सुपरिभाषित भौगोलिक विशेषता है, जो भूगर्भीय संरचना की प्रवृत्ति के अनुसार है. यह तिब्बत की सीमा से पश्चिम की ओर आगे बढ़ते हुए पाकिस्तानी भू–भाग में उस बिंदु तक जाती है, जहां विशाल नंगा पर्वत का चक्कर काटकर दक्षिण की ओर इसके आरपार कटे महाखड्ड की ओर जाती है. ऊपरी भागों में यह नदी दोनों तरफ़ बजरी की सीढ़ीनुमा संरचनाओं से घिरी है. प्रत्येक सहायक नदी मुख्य घाटी में बाहर निकलते हुए एक जलोढ़ पंख बनाती है. लेह नगर इसी प्रकार के एक जलोढ़ पंख पर स्थित है और समुद्री सतह से 3,500 मीटर की ऊंचाई पर है. यहां की जलवायु की विशेषताएं हैं : वर्षा का लगभग न होना, सूर्य की किरणों का तीखापन और तापमान के दैनिक व वार्षिक अंतरों में भारी उतार–चढ़ाव. यहां पर जीवन आसपास के पर्वतों से पिघले हुए पानी पर निर्भर है. यहां की वनस्पति पहाड़ी (आल्पीय, यानी वृक्षों के उगने की सीमारेखा के ऊपर की वनस्पति) है, जो पतली परत वाली मिट्टी पर उगती है.

कराकोरम पर्वत श्रेणी

ग्रेनाइट–पट्टिताश्म का विशाल पर्वत पिंड, कराकोरम शृंखला, भारतीय क्षेत्र से पाकिस्तानी भूमि तक फैली हुई है. इसमें संसार की सर्वोच्च चोटियों में से कुछ हैं, जिसमें से एक के–2 है, जिसकी ऊंचाई 8,611 मीटर है. कम से कम 30 अन्य चोटियां 7,315 मीटर से अधिक ऊंची है. यह पर्वतमाला, जो बड़े भारी ग्लेशियरों से पटी पड़ी है, शुष्क और वीरान पठारों से ऊपर उभरी हुई है. विषम तापमान और विखंडित चट्टानों के मलबे इसकी विशेषताएं हैं. कराकोरम को 'दुनिया की छत' कहा जाना बिल्कुल उचित प्रतीत होता है.

प्राणी जीवन

जंगली जानवर, जिनमें साइबेरियाई साकिन (आइबेक्स), लाल लद्दाखी जंगली भेड, दुर्लभ कश्मीरी हिरन (हंगुल) शामिल हैं, दकिंघम राष्ट्रीय उद्यान में पाए जाते हैं इनके अलावा काले और भूरे रंग के रीछ, कई शिकार सुलभ चिड़ियाएं और बडी संख्या में प्रवासी बत्तख़ें भी यहां पाई जाती हैं.

जनजीवन

ग्रामीण बस्तियां

भू–आकृति की विविधता के कारण इस क्षेत्र में लोगों के व्यवसायों में भी भारी विविधता पाई जाती है. लोगों के पंजाब से आकर बसने की दीर्घकालीन प्रवृत्ति के
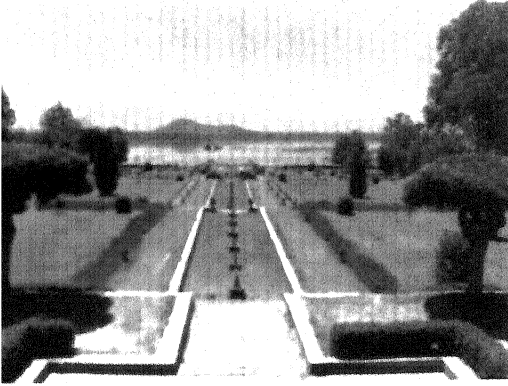
शात उद्यान श्रीनगर
जिन्य : सुरेश कुमार

कारण मैदानों और तराइयों में कृषि बस्तियां हैं. लोग और उनकी संस्कृति, दोनों ही पंजाब के पड़ोसी क्षेत्रों और पश्चिम की अन्य निम्नभूमि के समरूप है. जहां जलोढ़ मिट्टी और सिंचाई के लिए पानी की उपलब्धि ने खेती को संभव बनाया है. जैसा कि दूनों और निचली घाटियों में हुआ. जनसंख्या गेहूं और जौ की फ़सलों पर निर्भर है. यह फ़सल वसंत (रबी) में काटी जाती है और चावल तथा मक्का ग्रीष्म के अंत (ख़रीफ़) की फ़सलें हैं साथ ही पशुपालन भी होता है. घाटी के ऊपरी हिस्सों में जनसंख्या विरल है और मक्का की खेती, पशुपालन और वन्य उपजों पर निर्भर है. दक्षिणी मैदानी बाज़ारों के लिए दूध और शुद्ध घी के उत्पादन के लिए वसंत में ऊंचे चरागाहों की ओर प्रवास ज़रूरी होता है. शीत ऋतु में पहाड़ियों के निवासी निचले क्षेत्रों में लौट आते हैं और शासकीय वनों या लकड़ी की मिलों में काम करते हैं. खेतिहर छोटी बस्तियों और गांवों की बहुतायत है. जम्मू और उधमपुर जैसे नगर ग्रामीणों और आसपास के इस्टेट के लिए बाज़ार केंद्र व प्रशासनिक मुख्यालय का काम करते हैं.

जम्मू क्षेत्र

महाराजाओं की शीतकालीन राजधानी रहा जम्मू राज्य का दूसरा सबसे बड़ा शहर है. यह डोगरा सत्ता का परंपरागत केंद्र रहा था. जम्मू की कुल जनसंख्या का दो–तिहाई से अधिक हिस्सा हिंदुओं का है. इनमें से अधिकांश इस अंचल के दक्षिण–पूर्वी भाग में निवास करते हैं. सांस्कृतिक तथा मानव विज्ञान और भाषाई दृष्टि से भी ये लोग पंजाब के पंजाबीभाषी लोगों से निकट से संबंधित हैं. बहुत से लोग डोगरी भाषा बोलते हैं. सिक्खों मे भी अधिकांश जम्मू क्षेत्र में रहते हैं. लेकिन पश्चिमोत्तर में मुसलमानों का अनुपात बढ गया है और पश्चिमी नगर पुंछ तथा आसपास के क्षेत्रों में मुसलमानों की बहुलता है.

घाटी और पहाड़ी क्षेत्रों के कश्मीरी लोग

कश्मीर की घाटी और उसके आसपास के ऊंचाई वाले क्षेत्र (मुख्य कश्मीर) ने सदा से अपनी अलग पहचान बनाए रखी है. जनसंख्या का अधिकांश भाग मुस्लिमों का है, जो सांस्कृतिक और मानव विज्ञान की दृष्टि से पाकिस्तानी इलाक़े के गिलगित ज़िले के पश्चिमोत्तर के ऊंचे क्षेत्र के लोगों से निकटतम रूप से संबंधित है. कश्मीरी भाषा संस्कृत से प्रभावित है और गिलगित की विभिन्न पहाड़ी जनजातियों द्वारा बोली जाने वाली भारतीय–आर्य भाषाओं की दर्दीय शाखा की है. जनसंख्या का बड़ा भाग घाटी के निचले इलाक़े में रहता है. जम्मू–कश्मीर राज्य का सबसे बड़ा शहर श्रीनगर झेलम नदी पर स्थित है.

लद्दाख

वृहद हिमालय पर्वत नृजातीय, सांस्कृतिक और भौतिक दृष्टि से एक विशाल विभाजक है, जो पूर्वोत्तर की ओर कम जनसंख्या वाले क्षेत्र लद्दाख (जिसे कभी–कभी 'छोटा तिब्बत' भी कहते हैं) को बांटता है. पूर्व में लेह के आसपास के निवासी मुख्यतः तिब्बती पूर्वजों और भाषा (लद्दाखी) वाले बौद्ध हैं. लेकिन पश्चिम में कारगिल के आसपास जनसंख्या मुख्यतः मुस्लिम है और इस्लाम की शिया शाखा की है.

अर्थव्यवस्था

अधिकांश लोग जीवन निर्वाह के लिए कृषि में लगे हैं और चावल, मक्का, गेहूं, जौ, दालें, तिलहन तथा तंबाकू सीढ़ीनुमा पहाड़ी ढालों पर उगाते हैं. कश्मीर की घाटी में बड़े–बड़े बाग़ों में सेब, नाशपाती, आड़ू, शहतूत, अखरोट और बादाम उगाए जाते हैं. कश्मीर की घाटी भारतीय उपमहाद्वीप के लिए एकमात्र केसर उत्पादक है. गूजर और गद्दी ख़ानाबदोशों द्वारा भेड़, बकरी, याक व खच्चरों को पाला और ऋतु प्रवास किया जाता है. कश्मीर के प्रसिद्ध पश्मीना का उत्पादन यहीं पाली जाने वाली बकरियों से होता है. रेशमपालन भी बहुत प्रचलित है.

राज्य की अर्थव्यवस्था ऐसे हस्तकला उद्योगों, जैसे हथकरघा से स्थानीय रेशम व ऊन की बुनाई, गलीचा और दरी बुनना, लड़की पर नक़्क़ाशी, काग़ज़ की लुगदी की कारीगरी आदि पर निर्भर है. परिशुद्धता की जांच करने वाले उपकरण, धातु के बर्तन, खेल का सामान, फ़र्नीचर, माचिस और राल व तारपीन मुख्य औद्योगिक उत्पादन हैं. पर्यटन यहां का प्राचीनतम उद्योग है. इस ऊबड़–खाबड़ और वनाच्छादित क्षेत्र में यातायात एक महत्त्वपूर्ण समस्या है. जम्मू भारत के उत्तरी रेलवे का अंतिम स्टेशन है.

संसाधन और कृषि

इस क्षेत्र में खनिज और जीवाश्म ईंधन के साधन सीमित हैं. इनका अधिकांश भाग जम्मू क्षेत्र में संकेंद्रित है. प्राकृतिक गैस के छोटे भंडार जम्मू के निकट पाए जाते हैं. बॉक्साइट और जिप्सम के भंडार ऊधमपुर ज़िले में हैं. अन्य खनिजों में चूना–पत्थर, कोयला, जस्ता और तांबा शामिल हैं.

कश्मीरी जनसंख्या का अधिकांश भाग विविध तरीक़ों की खेती में लगा हुआ है, जिन्हें स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप ढाला गया है. चावल, जो यहां का मुख्य भोजन है, मई में बोया जाता है और सितंबर में काटा जाता है. मक्का, ज्वार, बाजरा, दलहन (फलियां जैसे मटर, सेम तथा मूंग) कपास और तंबाकू, चावल के साथ गर्मी की मुख्य फसलें हैं, जबकि गेहूं व जौ वसंत की प्रमुख फ़सलें हैं. कई शीतोष्ण फल व सब्जियां शहरी बाज़ारों के नज़दीकी क्षेत्रों में उगाई जाती हैं या काफ़ी पानी वाले क्षेत्रों में, जहां की भूमि अच्छी तरह सिंचित और उपजाऊ है. कश्मीर की घाटी में बड़े–बडे बागों में सेब, नाशपाती, आड़ू, अखरोट, बादाम और चेरी उगाए जाते हैं. कश्मीर की घाटी भारतीय

उपमहाद्वीप में केसर की एकमात्र उत्पादक है. झील के किनारों पर विशेष तौर पर सब्ज़ियों और फूलों की गहन खेती होती है. ऐसा ही पुनर्प्राप्त दलदली ज़मीन या तैरते हुए बगीचों में किया जाता है. भूमि पर जनसंख्या का दबाव सब जगह प्रकट होता है और सभी उपलब्ध संसाधनों का उपयोग किया जाता है. झील और नदियां मछलियां, सिंघाड़े तथा जलविद्युत उपलब्ध कराती हैं और इनका उपयोग यातायात के लिए भी होता है, जो पर्यटकों के लिए मुख्य आकर्षण भी हैं. पर्वतों से कई प्रकार की लकड़ी प्राप्त होती है और वहीं भेड़ों और दुग्ध उत्पादक जानवरों को चरागाह मिलते हैं.

लद्दाख में खेती सिंधु, श्योक और सुरु नदियों की घाटियों जैसी कुछ मुख्य घाटियों में ही सीमित है. यहां छोटे–छोटे सिंचित भूखंडों में जौ, कुटु, शलजम और सरसों की खेती की जाती है. 1970 में कृषि वैज्ञानिकों द्वारा परिचित कराए गए पौधों के कारण कई बाग और सब्जियों के खेत पनप गए हैं. चरागाहों में याक का पालन प्रोत्साहित किया जा रहा है. इस क्षेत्र में कश्मीरी बकरी का पालन होता है, जिससे पश्मीना मिलता है और यह बढ़िया किस्म के शॉल आदि वस्त्र बनाने के काम आता है.

व्यापार और उद्योग

लेह सहित अधिकांश महत्त्वपूर्ण नगरों और गांवों में बिजली है. बिजली पैदा करने के लिए जलविद्युत और तापविद्युत संयंत्र लगाए गए हैं, जो स्थानीय कच्चे माल पर
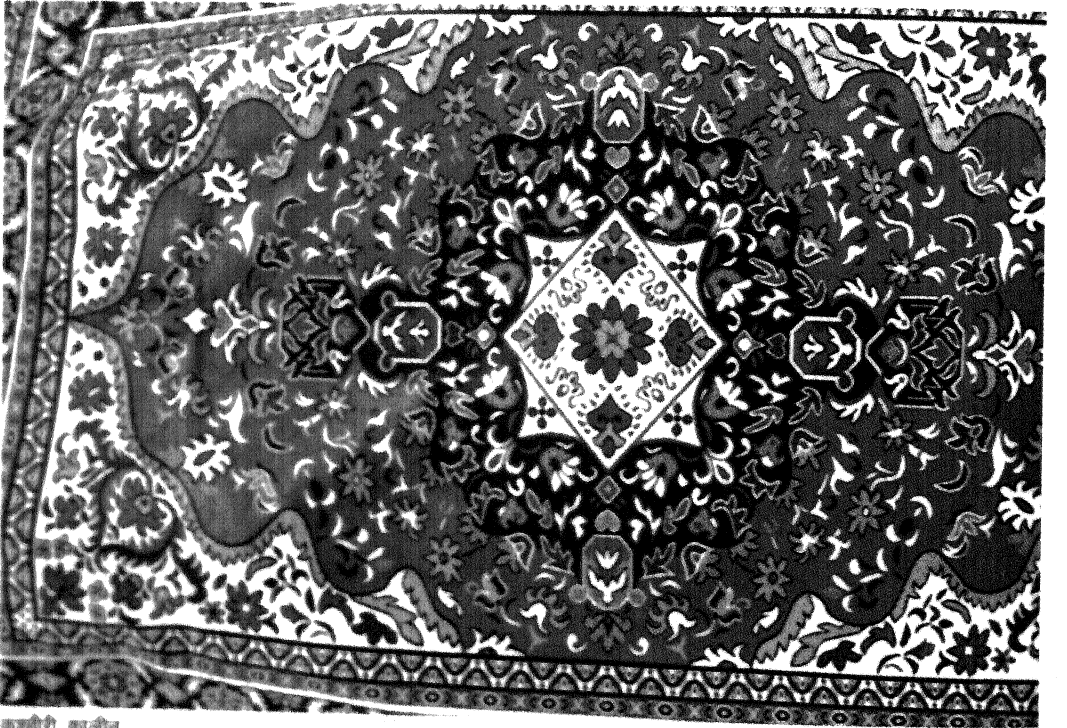
कश्मीरी कालीन
सौजन्य : सुरेश कुमार

आधारित उद्योगों को बिजली की आपूर्ति करते हैं. चिनेनी और सलाल में मुख्य विद्युत केंद्र हैं, जो ऊपरी सिंधु और निचली झेलम नदियों पर हैं. उरी जलविद्युत परियोजना का पहला चरण भी प्रारंभ किया गया है. भूमि सुधार किए गए हैं, अन्न का उत्पादन बढ़ा है और 1947 के बाद मुख्य निर्यात वस्तुओं, लकड़ी, फल और सूखे मेवे व दस्तकारी के उत्पादन की मात्रा बहुत बढ़ी है. धातु के बर्तन, परिशुद्धता के उपकरण, खेल का सामान (विशेषतः क्रिकेट के बल्ले), फ़र्नीचर, कशीदाकारी, माचिस, राल और तारपीन इस राज्य के प्रमुख औद्योगिक उत्पाद हैं.

श्रीनगर में कई कृषि मंडियां, फुटकर विक्रय केंद्र और इनसे जुड़े हुए उद्योग हैं. उद्योग भी अब ग्रामीण कारीगरी से आगे बढ़े हैं और अब इनमें स्थानीय रेशम, कपास और ऊन की हस्तकरघों पर बुनाई, गलीचे बुनना, लकड़ी पर नक़्क़ाशी और चमड़े का काम शामिल हैं. चांदी और तांबे के काम और आभूषण–निर्माण सहित इन सभी उद्योगों को राज दरबार की उपस्थिति के कारण पहले बढ़ावा मिला था और अब मुख्यतः पर्यटन व्यापार से मिलता है. साथ ही, पश्चिम हिमालयी व्यापार में श्रीनगर द्वारा अर्जित महत्त्वपूर्ण स्थिति के कारण भी इन उद्योगों को प्रोत्साहन मिला है. गत समय में यह शहर एक तरफ़ पंजाब क्षेत्र के उत्पादनों और दूसरी तरफ़ कराकोरम के पूर्वी पठारी क्षेत्र, पामीर और लद्दाख श्रेणियों के बीच पुनर्निर्यात केंद्र की भूमिका निभाता था. अभी भी पश्चिमोत्तर की ओर गिलगित तक राज दियंगन दर्रे से होकर और पूर्वोत्तर की तरफ़ ज़ोजि दर्रे से होकर लेह तक व आगे भी मार्ग उपलब्ध हैं. हस्तकला उत्पाद भी लद्दाख में महत्त्वपूर्ण हैं, विशेषकर कश्मीरी शॉलें, गलीचे और कंबल.

यातायात और पर्यटन

भारतीय संघ सरकार ने जम्मू–कश्मीर में राजमार्गों और संचार सुविधाओं के विकास पर भारी विनियोग किया है. देश के विभाजन और कश्मीर पर भारत–पाकिस्तान विवाद के कारण श्रीनगर से झेलम की घाटी होते हुए रावलपिंडी का मार्ग अवरुद्ध हो गया. इसके कारण एक लंबे और अधिक कठिन गाड़ी मार्ग को, जो बनिहाल दर्रे से होकर जाता था, सभी मौसमों में उपयोग योग्य राजमार्ग में बदलना ज़रूरी हो गया. इसी में शामिल है 'जवाहर सुरंग' (1959) का निर्माण, जो एशिया की सबसे लंबी सुरंग है. मगर यह सड़क कई बार तीखे मौसम के कारण दुर्गम हो जाती है, जिसके कारण घाटी में आवश्यक वस्तुओं की कमी हो जाती है. एक सड़क श्रीनगर को कारगिल और लेह से मिलाती है. जम्मू उत्तर रेलवे का अंतिम स्टेशन है. श्रीनगर और जम्मू वायुमार्ग से दिल्ली और दूसरे भारतीय शहरों से जुड़े हुए हैं. श्रीनगर से लेह, लेह–जम्मू और लेह–दिल्ली के बीच भी वायुसेवाएं उपलब्ध हैं.

पर्यटन सुविधाओं में काफ़ी सुधार किए गए हैं, यद्यपि संभावनाओं का अभी भी काफ़ी उपयोग करना शेष है. पर्यटन का लद्दाख पर महत्त्वपूर्ण सामाजिक–आर्थिक प्रभाव पड़ा है. यह 1970 तक बाहरी लोगों से सामान्यतः कटा रहा था. (1974 में 500 पर्यटक आए और 1992 में 16,018). ऐतिहासिक और धार्मिक स्थलों के अलावा पर्यटकों के आकर्षण

के केंद्र हैं– जैसे गुलमर्ग में आइस स्केटिंग केंद्र, जो बारामूला के दक्षिण में पीर पंजाल श्रेणी में स्थित है और पहलगाम, जो लिद्दर नदी के किनारे स्थित है. गंधक के सोते, जो जोड़ों के दर्द और गठिया रोगों के शीघ्र इलाज के लिए प्रसिद्ध हैं, लेह के निकट चुमथंग में और नोबरा व पूगा (चागथंग) में स्थित हैं, पर्यटकों को आकर्षित करते हैं.

प्रशासन एवं सामाजिक विशेषताएं

विभाजन से पहले यह संपूर्ण क्षेत्र जम्मू और कश्मीर के प्रांत व सीमावर्ती राज्यों लद्दाख, बाल्टिस्तान तथा गिलगित एजेंसी को समाविष्ट किए हुए था. मुज़फ़्फ़राबाद, कोटली और मीरपुर जिले के साथ–साथ उत्तरी क्षेत्रों में शामिल पुंछ, बाल्टिस्तान, असतौर और गिलगित एजेंसी, जो अब पाकिस्तान अधिकृत क्षेत्र है, के हिस्से हैं. यह संपूर्ण क्षेत्र लद्दाख (लेह) ज़िला और अनंतनाग, बारामूला, श्रीनगर, पुलवामा, बड़गाम, कुपवाड़ा और कारगिल ज़िला, जो श्रीनगर प्रांत के हैं और जम्मू प्रांत के ज़िले जम्मू, कठुआ, उधमपुर, राजौरी, डोडा और पुंछ का कुछ भाग, ये सभी भारत के जम्मू–कश्मीर राज्य के भाग हैं.

जम्मू–कश्मीर राज्य का संघ सरकार में एक विशेष दर्जा बना हुआ है. भारत के शेष राज्य भारतीय संविधान का पालन करते हैं, लेकिन जम्मू–कश्मीर का अपना पृथक संविधान (1956 में स्वीकृत) है, जो भारतीय गणराज्य का अभिन्न अंग होने की पुष्टि करता है. संघ सरकार के पास प्रतिरक्षा, विदेश नीति एवं संचार के मामलों में प्रत्यक्ष वैधानिक अधिकार हैं और नागरिकता, सुप्रीम कोर्ट के क्षेत्राधिकार और आपातकालीन शक्तियों के मामलों में अप्रत्यक्ष प्रभाव हासिल हैं.

जम्मू–कश्मीर के संविधान के अंतर्गत, राज्य के राज्यपाल की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाती है. प्रशासनिक अधिकार निर्वाचित मुख्यमंत्री और मंत्रिमंडल के पास होते हैं. विधानसभा के दो सदन हैं– विभिन्न क्षेत्रों के 87 प्रतिनिधियों से गठित विधानसभा और 36 सदस्यीय विधान परिषद. राज्य से छह निर्वाचित प्रतिनिधि सीधे भारतीय संसद की लोकसभा में भेजे जाते हैं और विधानसभा व विधानपरिषद द्वारा संयुक्त रूप से निर्वाचित छह सदस्य राज्यसभा में भेजे जाते हैं. उच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश और 11 अन्य न्यायाधीश होते हैं, जो भारत के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं. कश्मीर की घाटी के निवासी उर्दू या कश्मीरी बोलते हैं. कश्मीरी भाषा भारतीय– आर्य वर्ग की दर्दीय शाखा की है और लोकगीतों व साहित्य से समृद्ध है. शिक्षा हर स्तर पर निःशुल्क है. साक्षरता की दर, विशेषकर लेह में, राज्य के औसत के बराबर है. उच्च शिक्षा के दो केंद्र हैं, दोनों 1969 में स्थापित हुए थे. ये हैं– कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर और जम्मू विश्वविद्यालय. चिकित्सा सेवा राज्य भर में फैले हुए अस्पतालों और दवाख़ानों द्वारा प्रदान की जाती है. 1982 में स्थापित चिकित्सा विज्ञान का एक उच्च स्तरीय विशेषज्ञ संस्थान श्रीनगर में है. इसके अलावा दो कृषि विश्वविद्यालय भी श्रीनगर और जम्मू में क्रमशः 1982 व 1999 में स्थापित किए गए थे. लद्दाख में स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता अपेक्षाकृत कम है. इनफ्लूऐंजा, दमा और पेचिश स्वास्थ्य संबंधी सामान्य समस्याएं हैं. हृदय रोग, कैंसर व क्षयरोग के मामले भी घाटी में बढ़ रहे हैं.

इतिहास

एक दंतकथा के अनुसार, कश्यप नामक ऋषि ने कश्मीर की भूमि को एक विशाल झील से मुक्त या पुनर्प्राप्त किया था. इसलिए यह पुनर्प्राप्त भूमि 'कश्यपमार' के नाम से जाने जानी लगी, जो बाद में 'कश्मीर' हो गया. सम्राट अशोक (लगभग 265–238 ई.पू.) ने इसे बौद्ध धर्म से परिचित कराया और बाद में यह क्षेत्र हिंदू संस्कृति का प्रमुख केंद्र बन गया. 1346 तक हिंदू राजवंशों की एक शृंखला ने कश्मीर पर शासन किया, इसके बाद वह मुस्लिम शासन के अधीन हो गया. 1819 में यह पंजाब के सिक्ख शासन के अंतर्गत आया और 1846 में डोगरा राजवंश के अधीन हो गया.

बौद्ध धर्म और हिंदू धर्म जम्मू–कश्मीर में काफ़ी पहले पहुंच गए थे. नौवीं से बारहवीं शताब्दी में, संभवतः इस क्षेत्र ने हिंदू संस्कृति के केंद्र के रूप में काफ़ी महत्त्व प्राप्त कर लिया था. 14वीं शताब्दी में यह मुस्लिम शासन के अंतर्गत आया और पांच शताब्दियों तक इसी प्रकार रहा. इसके बाद सिक्ख और फिर डोगरा (पहाड़ी राजपूत) शासकों ने 19वीं सदी में इस पर आधिपत्य स्थापित किया.

अपने वर्तमान स्वरूप में जम्मू–कश्मीर का अंचल, 1846 से रूपायित हुआ, जब प्रथम सिक्ख युद्ध के अंत में लाहौर और अमृतसर की संधियों के द्वारा जम्मू के डोगरा शासक राजा गुलाब सिंह एक विस्तृत, लेकिन अनिश्चित से हिमालय क्षेत्रीय राज्य, जिसे 'सिंधु नदी के पूर्व की ओर व रावी नदी के पश्चिम की ओर' शब्दावली द्वारा परिभाषित किया गया था, के महाराजा बनाए गए. अंग्रेज़ों के लिए इस संरक्षित देशी रियासत की रचना ने उनके साम्राज्य के उत्तरी भाग को सुरक्षित कर दिया था, जिससे वे 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के दौरान सिंधु नदी तक और उसके आगे बढ़ सकें. इस प्रकार यह राज्य एक जटिल राजनीतिक मध्यवर्ती (बफ़र) क्षेत्र का भाग बन गया, जिसे अंग्रेज़ों ने उत्तर में अपने भारतीय साम्राज्य और रूसी व चीनी साम्राज्य के बीच स्थापित कर दिया था. गुलाब सिंह को इस पर्वतीय अंचल पर शासनाधिकार मिल जाने से लगभग एक–चौथाई सदी से पंजाब के सिक्ख साम्राज्य की उत्तरी सीमा रेखा के पास की छोटी–छोटी रियासतों के बीच चल रही मुहिम और कूटनीतिक चर्चा का अंत हो गया.

19वीं सदी में इस अंचल के सीमा–निर्धारण के कुछ प्रयास किए गए, लेकिन सुस्पष्ट परिभाषा करने के प्रयत्न अक्सर इस भूभाग की प्रकृति और ऐसे विशाल क्षेत्रों के कारण, जो स्थायी बस्तियों से रहित थे, सफल नहीं हो पाए. उदाहरणार्थ सुदूर उत्तर में महाराजा की सत्ता कराकोरम पर्वतश्रेणी तक फैली हुई थी, लेकिन उसके आगे तुर्कीस्तान और मध्य एशिया के सिंक्यांग क्षेत्रों की सीमा रेखा पर एक विवादास्पद क्षेत्र बना रहा और सीमा रेखा कभी निश्चित नहीं हो पाई. इसी प्रकार की शंकाएं उस सीमा क्षेत्र के बारे में रहीं, जो उत्तर में अक्साई चीन को आसपास से घेरे हुए है और आगे जाकर तिब्बत की सुस्पष्ट सीमा रेखा से मिलता है और जो सदियों से लद्दाख क्षेत्र की पूर्वी सीमा पर बना हुआ था. पश्चिमोत्तर में सीमाओं का स्वरूप 19वीं शताब्दी के आख़िरी दशक में अधिक स्पष्ट हुआ, जब ब्रिटेन ने पामीर क्षेत्र में सीमा निर्धारण

संबंधी समझौते अफ़ग़ानिस्तान और रूस के साथ संपन्न किए. इस समय गिलगित, जो हमेशा कश्मीर का भाग समझा जाता था, रणनीतिक कारणों से 1889 में एक ब्रिटिश एजेंट के तहत एक विशेष एजेंसी के रूप में गठित किया गया.

जनसंख्या (2001) राज्य कुल 1,00,69,917; ग्रामीण 75,64,608; शहरी 25,05,309.

जयदेव

(उत्कर्ष– 12वी शताब्दी, बंगाल, भारत), सुप्रसिद्ध संस्कृत काव्य *गीतगोविंद* (गोपाल कृष्ण के गीत) के कवि, जिनके प्रभाव से भक्तिवाद लोकप्रिय बना. केंदुली गांव में जन्मे जयदेव, भोजदेव नामक ब्राह्मण के पुत्र थे. जयदेव का विवाह पद्मावती से हुआ था. वह राजा लक्ष्मणसेन (शासनकाल, लगभग 1178–1205) के नवद्वीप दरबार से संबद्ध थे.

गीतगोविंद में दिव्य गोपाल, कृष्ण के गोपियों (ग्वालों की बेटियों और पत्नियों) में सबसे प्रिय राधा के प्रति प्रेम का वर्णन है. इस काव्य में नाटकीय शैली में प्रियतम का आकर्षण, विछोह, ललक और सखी के माध्यम से मिलाप दर्शाया गया है. *गीतगोविंद* में गेय कविता–छंदों को 24 छोटे–छोटे गीतों में गूंथा गया है.

कई शताब्दियों से जयदेव के जन्मस्थान पर, उनके सम्मान में वार्षिक समारोह आयोजित किए जाते रहे हैं, जिनमें उनका काव्य पढ़ा जाता है. *गीतगोविंद* के गीत आज भी मंदिरों में उत्सवों और कीर्तनों में गाए जाते हैं.

जयपुर

शहर, राजस्थान राज्य की राजधानी, पश्चिमोत्तर भारत. पहाड़ियों से घिरे, परकोटे (दक्षिण को छोड़कर) वाले इस शहर की स्थापना 1727 में महाराजा सवाई जय सिंह ने की थी, ताकि आमेर के बदले इस स्थान को जयपुर रियासत (राजपूतों द्वारा 12वीं शताब्दी में स्थापित) की राजधानी बना सकें. अपनी सुंदरता के लिए विख्यात यह शहर सुव्यवस्थित योजना के आधार पर निर्मित हुआ है; यहां के भवन मुख्यतः गुलाबी रंग के हैं और इसलिए इसे 'गुलाबी शहर' (पिंक सिटी) भी कहा जाता है.

जयपुर में प्रमुख सड़क, रेल और वायुसंपर्क उपलब्ध हैं और यह वाणिज्यिक व्यापार केंद्र है. यहां के उद्योगों में इंजीनियरिंग और धातुकर्म, हथकरघा बुनाई, आसवन व शीशा, होजरी, क़ालीन, कंबल, जूतों और दवाइयों का निर्माण प्रमुख हैं. जयपुर के विख्यात कला व हस्तशिल्प में आभूषणों की मीनाकारी, धातुकर्म व छापेवाले वस्त्र के साथ–साथ पत्थर, संगमरमर व हाथीदांत पर नक़्क़ाशी शामिल है.

यहां के प्रमुख भवनों में सिटी पैलेस, 18वीं शताब्दी में बना जंतर–मंतर, हवामहल, रामबाग पैलेस और नाहरगढ़ शामिल हैं. अन्य सार्वजनिक भवनों में एक संग्रहालय और एक पुस्तकालय शामिल हैं. जयपुर में 1947 में स्थापित राजस्थान विश्वविद्यालय स्थित है.
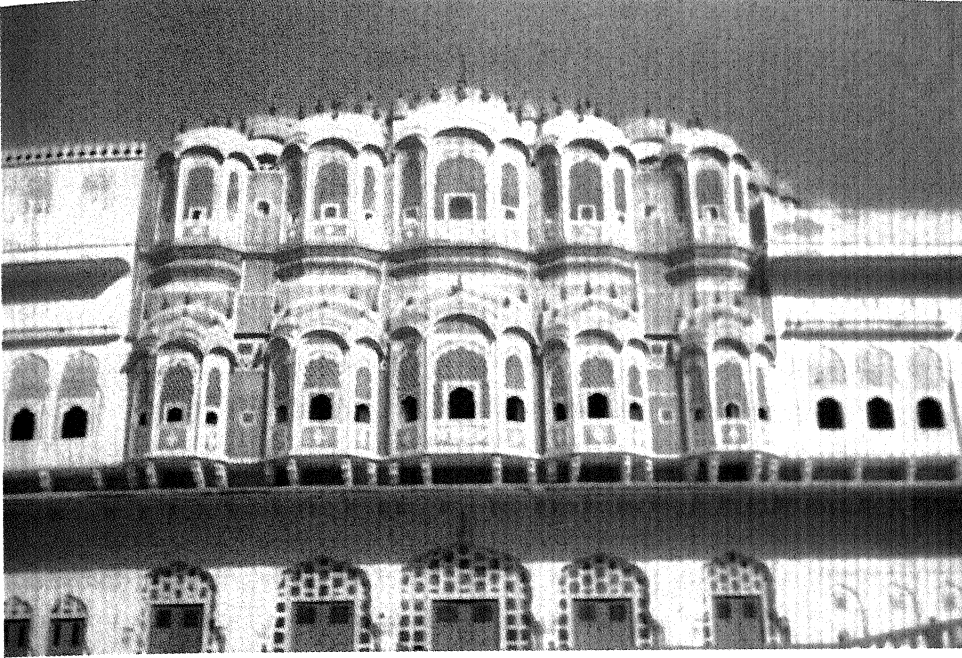
हवा महल, जयपुर, राजस्थान
सौजन्य : नीरजा पद्मनाभन

यह शहर पूर्व व दक्षिण में उपजाऊ जलोढ़ मैदान और उत्तर व पश्चिम में पहाड़ी शृंखलाओं तथा रेगिस्तानी क्षेत्र से घिरा हुआ है. बाजरा, जौ, चना, दलहन और कपास इस क्षेत्र की मुख्य फ़सलें हैं; लौह अयस्क, बेरिलियम, अभ्रक, फ़ेल्सपार, संगमरमर, तांबा और रक्तमणि का खनन होता है. जनसंख्या (2001) न.नि. क्षेत्र 23,24,319; ज़िला कुल 52,52,388.

जयवर्द्धने, जे.आर.

पूरा नाम जूनियस रिचर्ड जयवर्द्धने, (ज.–17 सितं. 1906, कोलंबो, सीलोन {वर्तमान श्रीलंका}; मृ.–1 नवं. 1996, कोलंबो), वकील और नौकरशाह, जो 1978 से 1989 तक श्रीलंका के राष्ट्रपति रहे.

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के पुत्र जयवर्द्धने ने कोलंबो के सीलोन लॉ कॉलेज से 1932 में स्नातक की उपाधि प्राप्त की और 1943 तक वकालत की. वह सीलोन नेशनल कांग्रेस पार्टी में शामिल हो गए और 1943 में राज्य परिषद के चुनाव में विजयी हुए. 1948 में, जब सीलोन ब्रिटिश शासन से स्वतंत्र हुआ, तो जयवर्द्धने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उदारवादी यूनाइटेड नेशनल पार्टी (यू.एन.पी.) द्वारा गठित सरकार में वित्त मंत्री बने. डी.एस. सेनानायके और फिर उनके पुत्र डडली सेनानायके के नेतृत्व में वह पार्टी के दूसरे प्रमुख नेता बन गए. वह वित्त मंत्री (1948–53, 1960), खाद्य और कृषि मंत्री (1953–56) और राज्यमंत्री (1965–70) जैसे महत्त्वपूर्ण पदों पर रहे. 1973 में

कनिष्ठ सेनानायके की मृत्यु के बाद जयवर्द्धने यू.एन.पी. के नेता बन गए और 1977 के चुनाव में उनके नेतृत्व में पार्टी ने भारी विजय प्राप्त की.

प्रधानमंत्री के रूप में जयवर्द्धने ने संविधान में संशोधन करके श्रीलंका में केवल औपचारिक के बजाय कार्यकारी राष्ट्रपतित्व की स्थापना की और 1978 में वह देश के पहले निर्वाचित राष्ट्रपति बने. राष्ट्रपति के रूप में सरकारी नौकरशाही में भारी कटौती तथा कोलंबो के उत्तर में मुक्त व्यापार क्षेत्र की स्थापना जैसे क़दम उठाकर उन्होंने निजी क्षेत्र को पुनर्जीवित किया और समाजवाद की ओर जाते हुए देश की दिशा उलट दी. 1982 में उन्हें छह वर्षों के दूसरे कार्यकाल के लिए राष्ट्रपति चुन लिया गया.

लेकिन इस बीच जयवर्द्धने श्रीलंका के सिंहली बौद्ध बहुसंख्यक और हिंदू तमिल अल्पसंख्यकों के बीच लंबे समय से चले आ रहे तनाव की ओर समुचित ध्यान देने में विफल रहे. 1980 के दशक के आरंभ में विभिन्न तमिल संगठनों ने अलग तमिल राज्य की मांग के समर्थन में छापामार विद्रोह शुरू कर दिया. जयवर्द्धने ने तमिल अलगाववाद का विरोध किया और सैनिक शक्ति व बातचीत के ज़रिये विद्रोह को समाप्त करने की नाकाम कोशिश की. राष्ट्रपति के दूसरे कार्यकाल के बाद वह 1989 में सेवानिवृत्त हो गए.

जयशंकर प्रसाद

(ज.–1889, वाराणसी, उत्तर प्रदेश; मृ.–15 नवं. 1937, वाराणसी), आधुनिक हिंदी साहित्य के शीर्ष कवि, नाटककार, उपन्यासकार व कहानीकार. वाराणसी के नामी तंबाकू व्यापारी सुंघनी साहू के इस वंशज ने मानव–मानस के संधान को अपनी रचनात्मकता के केंद्र में रखते हुए भारत के पौराणिक और ऐतिहासिक अतीत को समसामयिक विषय बनाया. उनका जन्म भारतीय सामाजिक–राजनीतिक इतिहास के जिस दौर में हुआ, वह एक ओर सांस्कृतिक पुनर्जागरण का, तो दूसरी ओर गहरी राजनीतिक उथल–पुथल का काल था. सामंती सामाजिक व्यवस्था की सर्वोत्तम परंपराएं उन्हें विरासत में मिलीं और जीवन के आरंभ में ही उन्होंने उस वैभव को बुरी तरह डगमगाते देखा.

विद्याप्रेमी, दानवीर सुंघनी साहुओं के यहां विद्वानों, संगीतज्ञों, कवियों, वैद्यों, साधु–संतों, पहलवानों, पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत के पठानों और नेपाल–भूटान के कस्तूरी व्यापारियों का आना–जाना रहता था. प्रचलित ब्रज काव्य के अलावा उर्दू–हिंदी कविता से भी जयशंकर का परिचय पिता की बैठकों में हो रहा था. 11वें वर्ष में पिता और 16वें वर्ष में बड़े भाई को खोकर किशोर कवि (वह ब्रजभाषा में कविता लिखने लगे थे) पर अपने पारिवारिक व्यापार को चलाने की ज़िम्मेदारी आ पड़ी. कुछ ही वर्षों में कुटुंब की आर्थिक स्थिति मजबूत करके उन्होंने अपनी निलंबित साहित्यिक रचनात्मकता के लिए भी अवकाश जुटा लिया.

उनका काव्य संग्रह *प्रेम पथिक* 1910 में ही सुधी पाठकों का ध्यान खींच चुका था, लेकिन *झरना* (1918) ने कवियों की कई पीढ़ियों को उद्वेलित किया. छायावाद की

संवेदना और भावबोध के अंकुर इस संग्रह में स्पष्ट थे. *आंसू* (1926) ने उन्हें निर्विवाद रूप से हिंदी के शीर्षस्थ कवि के रूप में स्थापित कर दिया, यह अपने युग की सबसे लोकप्रिय रचना सिद्ध हुई. इसके बाद क़रीब 11 वर्ष की अवधि उनकी रचनात्मक उर्वरता का काल रही. अपने युग के सबसे बौद्धिक और दार्शनिक कवि ने अतीत की निर्मम पड़ताल करके अपने युग की समस्याओं को एक नया परिप्रेक्ष्य दिया. उनके ऐतिहासिक– पौराणिक चरित्रों राज्यश्री, हर्ष, अजातशत्रु, चाणक्य, ध्रुवस्वामिनी, चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, मनु, श्रद्धा, इड़ा आदि के आत्मद्वंद्व किसी भी युग, किसी भी देश के नीतिवान व्यक्ति के आत्मद्वंद्व हैं. इसीलिए उनकी 'अपील' सार्वभौमिक है.

प्रसाद की ख्याति कवि–नाटककार के रूप में अधिक है, लेकिन वह उतने ही समर्थ उपन्यासकार और कथाकार भी थे. वह भारतीय जीवन और आचरण के गंभीर समालोचक थे, उपन्यास *कंकाल* (1929) और सरसरी तौर पर रूमानी दिखती कहानी *गुंडा* भारतीय समाज की उस निर्विवेक पतनशील प्रवृत्ति की पड़ताल करते हैं, जो उसकी दासता का कारण बनी रही है.

कामायनी (1936) प्रसाद के कृतित्व का कीर्तिस्तंभ है. इतिहास, मिथक, मनोविज्ञान और समकालीन घटनाचक्र को ऐतिहासिक–पौराणिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करके उसके गहरे और क्रांतिकारी हलों को व्यापक रूप से स्वीकार्य बनाने के उनके निजी घटक इस रचना में अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में उपस्थित है. अपनी रचनात्मकता के शिखर पर कुल 47 वर्ष की आयु में घातक रोग यक्ष्मा से अपने जन्मस्थल पर ही प्रसाद का देहावसान हो गया.

प्रमुख कृतियां : कविता– *प्रेम पथिक* (1910), *कानन–कुसुम* (1912), *चित्राधार* (1918), *झरना* (1918), *आंसू* (1926), *लहर* (1935), *कामायनी* (1936); नाटक– *करुणालय* (1912), *राज्यश्री* (1915), *उर्वशी : चंपू काव्य* (1909), *सज्जन* (1910), *प्रायश्चित* (1915), *विशाख* (1921), *अजातशत्रु* (1922), *जन्मेजय का नागयज्ञ* (1926), *कामना* (1927), *स्कंदगुप्त* (1928), *एक घूंट* (1930), *चंद्रगुप्त* (1931), *ध्रुवस्वामिनी* (1933); कहानी– *छाया* (1912), *प्रतिध्वनि* (1926), *आकाशदीप* (1929), *आंधी* (1031), *इंद्रजाल* (1936); उपन्यास– *कंकाल* (1929), *तितली* (1934), *इरावती* (1938); चिंतन– *काव्यकला तथा अन्य निबंध* (1938).

ज़रथुस्त्र

प्राचीन ईरानी, ज़रदुश्त या ज़रतुश्त भी कहलाते हैं, (ज.–628 ई.पू. संभवतः रेजेज़, ईरान; मृ.–लगभग 551 ई.पू., स्थल अज्ञात), ईरानी धार्मिक सुधारक और ज़रथुस्त्रवाद या पारसी धर्म (जैसा यह भारत में जाना जाता है) के संस्थापक.

जीवन

ज़रथुस्त्र की ऐतिहासिक रूप से प्रामाणिक जीवन कथा उपलब्ध नहीं है और उनके जीवनकाल के बारे में कई मत हैं. प्रारंभिक यूनानी उन्हें प्राचीनतम पैगंबर मानते हैं

और उनका काल 6000 ई.पू. के आसपास बताते हैं. ज़रथुस्त्रीय परंपरा के अनुसार, उनका उत्कर्ष काल ईरान पर सिकंदर की विजय (330 ई.पू.) से 258 साल पहले या 588 ई.पू. था. इस तिथि को कई पश्चिमी विद्वान भी मानते हैं, लेकिन *गाथाओं* और *ऋग्वेद* के प्रारंभिक हिस्से की भाषाई तुलना से निकाली गई तारीख़ों पर आधारित तीसरा मत सबसे अधिक संभाव्य लगता है. पश्चिमी विद्वानों ने *ऋग्वेद* का कालांकन 1500 से 1200 ई.पू. के बीच किया है, जिसके आधार पर ईरानी और पारसी विद्वानों ने ज़रथुस्त्र का समय भी लगभग वही माना है. लेकिन ज़रथुस्त्र के लिए परंपरागत रूप से मान्य तारीखें 628–551 ई.पू. हैं.

पहलवी अनुश्रुति के अनुसार ज़रथुस्त्र का पारिवारिक नाम स्पितमा (अत्यधिक श्वेत) था. वह कई घोडों के स्वामी, पोरोश्स्पा और एक ग्वालिन दुग़दोवा के पुत्र थे. 20 वर्ष की आयु मे ज़रथुस्त्र ने जीवन के अर्थ की खोज के लिए घर छोड़ दिया. विश्व में मृत्यु और दुख क्यों हैं और विश्व में बुराई कैसे आई जैसे सवाल उन्हें परेशान करते रहे. 10 साल तक ज़रथुस्त्र जीवन की समस्याओं पर चिंतन–मनन करते रहे. उन्हें उशी–दारेन (प्रकाश एवं चेतना प्रदान करने वाला) पर्वत पर ज्ञान प्राप्त हुआ और नए धर्म की शिक्षा देने के लिए वह मनुष्यों के बीच लौट आए.

उनके द्वारा पहले धर्मांतरित व्यक्ति उनके अपने रिश्ते के भाई मैध्योमाओघ (मैध्योमाह) थे. ये दोनों गाव–गाव घूमे, लेकिन किसी ने भी नया धर्म स्वीकार नहीं किया. अंततः वह बैक्ट्रिया राज्य (आधुनिक अफ़ग़ानिस्तान) पहुंचे, जहां उन्होंने वहां के शासक कुमार कावा विश्तष्पा, उनके दरबारी और आम लोगों को धर्मांतरित किया.

कहा जाता है कि ज़रथुस्त्र ने बैक्ट्रियाई दरबार के एक मंत्री फ़्राशाओश्त्र की पुत्री से शादी की. उनके छह बच्चे हुए. अगले 30 वर्ष तक ज़रथुस्त्र अपने धर्मप्रचार अभियान मे लगे रहे, तिब्बत और चीन तक की यात्रा की और अपने धर्म की शिक्षा दी. 77 वर्ष की उम्र मे जब वह बाख़ (आधुनिक काबुल) में अग्नि मंदिर में प्रार्थना कर रहे थे, इराक के एक हत्यारे ने छुरा मारकर उनकी हत्या कर दी.

ज़रथुस्त्र के उपदेश

सूत्रों के अनुसार, ज़रथुस्त्र संभवतः एक पुरोहित थे. उन्हें प्रज्ञावान प्रभु, अहुर मज़्दा का इलहाम हुआ और प्रभु द्वारा सत्य का उपदेश देने की नियुक्ति के बाद लगता है कि जिस क्षेत्र में ज़रथुस्त्र ने उपदेश दिए वहां के नागरिक तथा धार्मिक अधिकारियों ने उनका विरोध किया. यह स्पष्ट नहीं है कि ये अधिकारी उनकी मातृभूमि से थे या कोरास्मिया (मध्य एशिया में अराल सागर के दक्षिण का क्षेत्र) के राजा विश्तष्पा के धर्मांतरण से पहले उस इलाके से. अहुर मज़्दा द्वारा उदघाटित सत्य पर पूर्ण विश्वास रखते हुए ज़रथुस्त्र ने पुराने बहुदेववादी ईरानी धर्म को उखाड फेंकने का प्रयास नहीं किया; लेकिन उन्होंने अहुर मज़्दा को उस धर्म के राज्य में केंद्र में रखा, जिसमें अमरता और आनंद का आश्वासन था. यद्यपि उन्होंने प्राचीन ईरानी धर्म में व्याप्त सामाजिक और आर्थिक मूल्यों के

आधार पर ही सुधार लाने का प्रयास किया, लेकिन ज़रथुस्त्र की शिक्षा का शुरू में उन्होंने विरोध किया, जिन्हें ज़रथुस्त्र ने द्रेगवंत (असत्य के अनुयायी) कहा.

अहुर मज़्दा और परोपकारी अनश्वरगण (देवता)

ज़रथुस्त्र की शिक्षाएं, जैसे ऊपर कहा गया, अहुर मज़्दा पर केंद्रित हैं, जो सर्वोच्च देवता हैं और मात्र वही पूजनीय हैं. *गाथाओं* के अनुसार, वह भौतिक एवं आध्यात्मिक जगत, स्वर्ग और पृथ्वी, दोनों के रचयिता हैं. वह प्रकाश और अंधकार के क्रमिक स्रोत, संप्रभु विधिकर्ता और प्रकृति के केंद्र के साथ–साथ नैतिक व्यवस्था के प्रवर्तक और संपूर्ण विश्व के निर्णायक हैं. भारतीय वेदों (हिंदू धर्मग्रंथ, जिनकी धार्मिक पृष्ठभूमि *गाथाओं* के समान है) में पाए जाने वाले बहुदेववाद के प्रकार पूर्णतः अनुपस्थित हैं; उदाहरणस्वरूप *गाथाओं* में किसी देवी का उल्लेख नहीं है, जो अहुर मज़्दा के शासन की साझीदार हो. वह छह या सात अस्तित्वों या हस्तियों से घिरे हैं और बाद की *अवेस्ता* ने अमेषा स्पेंता को 'परोपकारी अनश्वर' कहा और समूची गाथाओं में अमेषा स्पेंता के नाम अक्सर आते रहते हैं. इन्हें ज़रथुस्त्र के विचारों और ईश्वर की उनकी अवधारणा की विशेषताएं माना जा सकता है. *गाथाओं* के शब्दों में, अहुर मज़्दा स्पेंता मैन्यु (पवित्र आत्मा) अश वहिश्ठ (न्याय, सत्य), वोहु मानिक (सदाचारी विचार) और आरमैती (स्पेंता आरमैती, भक्ति) के पिता हैं. इस समूह की अन्य तीन हस्तियां (अस्तित्व) अहुर मज़्दा के गुणों का साकार रूप हैं. ये हैं, क्षहत्र वैर्य (वांछित क्षेत्र), हौर्वतत (संपूर्णता) और ऐमेरेतत (अमरता). लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वे भी अहुर मज़्दा की सृष्टि नहीं हैं. इन हस्तियों के अच्छे गुण अहुर मज़्दा के अनुयायी भी प्राप्त और धारण कर सकते हैं, यानी देवताओं और मनुष्यों, दोनों के लिए समान नैतिक सिद्धांत का पालन अनिवार्य है. यदि अमेषा स्पेंता देवताओं के कार्यों को प्रदर्शित करने के साथ–साथ प्रज्ञावान प्रभु के अनुयायियों को एक सूत्र में बांधने वाली व्यवस्था भी बनाते हैं, तो अहुर मज़्दा की दुनिया और उनके अनुयायियों (आशावानों) की दुनिया एक–दूसरे के नज़दीक आ जाती है. पारसी धर्म का अत्यंत महत्त्वपूर्ण युगांतक–विषयक पक्ष, क्षहत्र (क्षेत्र) की अवधारणा द्वारा अच्छी तरह प्रदर्शित किया गया है. इसके साथ बारंबार 'वांछित' विशेषण आता है; यह वह राज्य है, जिसे अभी आना है.

एकेश्वरवाद एवं द्वैतवाद

ज़रथुस्त्र की शिक्षाओं का विशिष्ट एकेश्वरवाद सुस्पष्ट द्वैतवाद से अवरोधित होता जान पड़ता है. अंग्र मैन्यु (अहिर्मन) प्रज्ञावान प्रभु का एक विरोधी है, जो बुराई के सिद्धांत का मूर्तरूप हैं और जिनके अनुयायी, जिन्होंने स्वतंत्र रूप में उन्हें चुना, भी दुष्ट हैं. यह नैतिक द्वैतवाद ज़रथुस्त्र ब्रह्मांडिकी में गहरे पैठा हुआ है. उन्होंने समझाया कि शुरुआत में दो आत्माओं की बैठक हुई, जो *गाथाओं* के शब्दों में, 'जीवन या जीवन नहीं' के बीच चुनाव के लिए स्वतंत्र थे. इस मूल चुनाव से एक अच्छे और एक बुरे सिद्धांत की उत्पत्ति हुई. पहले के अनुरूप न्याय और सत्य का राज्य है; दूसरे के अनुरूप द्रुज (असत्य का राज्य) है, जिसमें दैव, दुष्ट आत्माएं (मूलरूप से प्रमुख प्राचीन

भारतीय–ईरानी देवता) रहते हैं. फिर भी ब्रह्मांडोत्पत्तीय और नैतिक द्वैतवाद के ऊपर एकेश्वरवाद ही बना रहता है, क्योंकि अहुर मज़्दा ही उन दोनों आत्माओं के पिता हैं, जो केवल अपने चयन एवं निर्णय के ज़रिये दो प्रमुख विपरीत सिद्धांतों में विभाजित हुईं.

यह संदेश कि प्रज्ञावान प्रभु, अमेषा स्पेंता अंततः दुष्ट आत्मा पर विजय पाएंगे, अर्थात ब्रह्मांडीय एवं नैतिक द्वैतवाद का अंत होगा, ज़रथुस्त्र के मुख्य धार्मिक सुधार का आधार था. उनका एकेश्वरवादी समाधान पुराने कठोर द्वैतवाद को हल करता है. लेकिन द्वैतवादी सिद्धांत ज़रथुस्त्र के बाद के समय में फिर तीव्रता से उभरता है. ऐसा अहुर मज़्दा की कीमत पर ही होता है, जो तब होरमज़्द कहलाने लगे थे और जिन्हें उनके विरोधी अंग्र मैन्यु (अर्हिमन) के स्तर तक नीचे लाया गया था. काल के आरंभ में विश्व अच्छाई और बुराई के राज्यों में बंटा था. इनमें से एक को चुनने के बारे में प्रत्येक मनुष्य को फैसला करना ही पड़ता है. वह स्वतंत्र है और उसे प्रज्ञावान प्रभु और उसके शासन या अंग्रा मैन्यु, असत्य में से एक को चुनना होता है. आध्यात्मिक हस्तियों के साथ भी यही बात सत्य है. वे भी अपने चुनाव के अनुसार अच्छे या बुरे हैं. मनुष्य अपनी निर्णय की स्वतंत्रता के कारण अंततः अपने भाग्य के लिए ज़िम्मेदार है. अपने अच्छे कर्मों के ज़रिये धर्मनिष्ठ व्यक्ति (आशावान) संपूर्णता और अमरत्व जैसे चिरस्थायी फल पाता है. जो असत्य का चुनाव करता है, वह अपनी ही अंतरात्मा और प्रज्ञावान प्रभु के न्याय द्वारा प्रताडित होता है और अत्यधिक दयनीय स्थिति में रहता है. यह स्थिति काफ़ी हद तक ईसाइयों की प्रज्ञ ईश्वर के न्याय से, जो नरक की ईसाई अवधारणा के समकक्ष है. अवेस्ताई आस्था के अनुसार, एक बार मनुष्य ने फ़ैसला कर लिया, तो उससे वापस लौटना या हटना संभव नहीं है. इस प्रकार विश्व दो शत्रु समूहों में बंटा है, जिसके सदस्य दो युद्धरत क्षेत्र हैं. एक ओर प्रज्ञावान प्रभु के साथ अपने पशुओं की देखभाल करने वाले और एक निश्चित सामाजिक व्यवस्था में रहने वाले किसान हैं. दूसरी ओर द्रेगवंत व्यवस्थित कृषि और पशुपालन के दुश्मन चोर, लुटेरे ख़ानाबदोश हैं.

युगांत विषयक धारणएं

प्रारंभिक प्रार्थनाएं, *गाथाएं*, जिनमें से कई ज़रथुस्त्र द्वारा रचित हैं, युगांत–वैज्ञानिक चिंतन से परिपूर्ण हैं. लगभग प्रत्येक अध्याय में जीवन के बाद मनुष्य के संभावित भाग्य का कुछ न कुछ उल्लेख है. प्रत्येक कार्य, वाणी और विचार को मृत्यु के बाद के अस्तित्व से संबद्ध माना जाता है. सांसारिक स्थिति बाद की स्थिति से जुड़ी है, जिसमें प्रज्ञावान प्रभु अच्छे कार्यों, वाणी और विचारों को पुरस्कृत करेंगे और बुराई को दंडित करेंगे. अपना संदेश देने में ज़रथुस्त्र को यह सदकर्म की ओर प्रेरित करने का सबसे सशक्त माध्यम लगा. मृत्यु के बाद मनुष्य की आत्मा को प्रतिदान (चिन्वत) के पुल से गुजरना जरूरी है, जिससे सभी डरते और घबराते हैं. अहुर मज़्दा के निर्णय के बाद अच्छे लोग चिरस्थायी आनंद व प्रकाश के राज्य में प्रवेश करते हैं और बुरे लोगों को संत्रास तथा अंधकारमय क्षेत्र में ढकेल दिया जाता है. लेकिन ज़रथुस्त्र इससे भी आगे जाते हैं तथा गोचर जगत के अंतिम चरण की घोषणा 'सर्जन की अंतिम पाली' के रूप

में करते हैं. अंतिम चरण में अर्हिमन का विनाश हो जाएगा, विश्व का चमत्कारिक ढंग से नवीनीकरण होगा और अच्छे मनुष्यों का वास होगा, जो स्वर्गिक आनंद में रहेंगे. पारसी धर्म के परवर्ती स्वरूपों में मृतक को पुनर्जीवित करने की धारणा है, जिसके कुछ आधार *गाथाओं* में पाए जा सकते हैं. मृतकों के पुनर्जीवन के माध्यम से विश्व का नवीनीकरण प्रज्ञावान प्रभु के अनुयायियों को अंतिम परितोष प्रदान करता है.

उपासना संबंधी सुधार

ज़रथुस्त्र ने अर्हिमन या उसके अनुयायियों, देवों के सम्मान में बलि देने से मना किया है, जिन्हें पूर्व–ज़रथुस्त्रीय काल से अनिष्टकारी देवता माना जाने लगा था. संभवतः जरथुस्त्र ने पाया कि व्याप्त धार्मिक परंपराओं में पशु--बलि की प्रथा के साथ मादक पेय पदार्थों (हाओम) को जोड़ना व्यभिचारपूर्ण अति में परिणत हो जाता है. कुछ विद्वानों के अनुसार, अपने सुधारों में जरथुस्त्र ने सभी प्रकार की पशु--बलि बंद नहीं कराई, बल्कि केवल इनके साथ किए जाने वाले व्यभिचारपूर्ण एवं मादक अनुष्ठानों को बंद कराया. हाओम आहुति को भी प्रतीकात्मक चढावा समझा जाता था, यह अख़मीरीकृत पेय मदिरा या नशीली जड़ी–बूटी हो सकती थी. ज़रथुस्त्र ने प्राचीन अग्नि उपासना क़ायम रखी. यह उपासना और इसके विभिन्न अनुष्ठान बाद में और फैल गए व मागी पुरोहित वर्ग ने इन्हें एक निश्चित क्रम प्रदान किया. इसका केंद्र शाश्वत लौ का अग्नि मंदिर था, जिसे निरंतर पुरोहित सेवा और हाओम आहुति से जोड़ा गया.

प्रभाव एवं मूल्यांकन

विश्तष्पा के धर्मांतरण के बाद ज़रथुस्त्र राजा के दरबार में रहे. अन्य अधिकारियों को धर्मांतरित किया गया और संभवतः ज़रथुस्त्र की एक पुत्री ने राजा के एक मंत्री जमस्प से शादी की. अनुश्रुति के अनुसार, ज़रथुस्त्र 77 साल तक जीवित रहे, जिससे संकेत मिलता है कि लगभग 551 ई.पू. में उनकी मृत्यु हुई. उनकी मृत्यु के बाद उनके बारे में कई किंवदंतियां बनीं. इन किंवदंतियों के अनुसार, उनके जन्म पर प्रकृति हर्षित हो उठी थी. उन्होंने कई देशों में प्रवचन दिया, पवित्र अग्नियां संस्थापित कीं और एक पवित्र युद्ध में भाग लिया. उन्हें पुरोहितों, योद्धाओं और कृषकों के साथ–साथ कुशल कारीगरों और चिकित्सकों के आदर्श के रूप में देखा जाने लगा. यूनानियों के लिए वह दार्शनिक, गणितज्ञ, जादूगर या ज्योतिषी थे. यहूदी और ईसाई उन्हें ज्योतिषी, जादूगर, पैग़ंबर या प्रधान विधर्मी मानते थे. 18वीं सदी तक जरथुस्त्र के जीवन और प्रभाव का अधिक विद्वत्तापूर्ण मूल्यांकन सामने नहीं आया.

जरथुस्त्रवाद

प्राचीन विद्वानों के अनुसार, जरथुस्त्र या जोरास्टर, जैसा कि प्राचीन ईरान के इस पैगंबर को यूनानी कहते थे, की शिक्षाएं पारसी धर्म की उत्पत्ति प्राचीन फारस (वर्तमान ईरान) में हुई. प्राचीन फारसी लोग और भारत के उत्तरी आर्य आक्रमणकारियो के पूर्वज एक

ही वंश के थे और पारसी धर्म से पहले ईरान के धर्म व वैदिक धर्म में उनके देवताओं और अनुष्ठानों के आधार पर महत्त्वपूर्ण समानताएं देखी जा सकती हैं. पारसी धर्म में जीवन और ज्ञान के देवता अहुर मज़्दा ज़रथुस्त्र–पूर्व ईरान के देवगणों में से एक थे.

मूल अवधारणा

गाथाओं में ज़रथुस्त्र ने स्वयं को ज़ाओतर, यानी अनुष्ठान का प्रधान पुरोहित और मंत्रीय प्रार्थनाओं की रचना तथा उनके गायन में कुशल बताया है. उन्होंने शक्ति के पवित्र शब्द मंथ्राने–दुतिम का संदेशवाहक होने का भी दावा किया है. उन्होंने स्वयं को एरेशी (संस्कृत में ऋषि) भी कहा है, जिसे मालूम है, 'क्या होगा या नहीं होगा' ज़रथुस्त्र ने रतू (संस्कृत में गुरु), अर्थात ज्ञानी मार्गदर्शक होने का भी दावा किया, जिसे दो विपरीत गुटों, आशावानों (सत्य के अनुयायी) और द्रेगवंतों (असत्य के अनुयायी) के बीच निर्णय करने के लिए अहुर मज़्दा ने नियुक्त किया है. मनुष्य आशावानों और द्रेगवंतों के बीच विभाजित है. इन दोनों ताकतों के बीच युद्ध तब समाप्त होगा, जब काल की समाप्ति होगी और फ्राशोकेरेती, यानी सृष्टि का नवीनीकरण होगा.

ज़रथुस्त्र संभवतः पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने एकेश्वर, जीवन ओर प्रज्ञा के स्वामी अहुर मज़्दा की पूजा के विचारों, कार्यों और शब्दों से करने की शिक्षा दी. अहुर मज़्दा अपनी दैवी हस्तियों, अमेषा स्पेंता (अनश्वर प्रकाशमय या परोपकारी अनश्वर) के माध्यम से संसार पर शासन करते हैं.
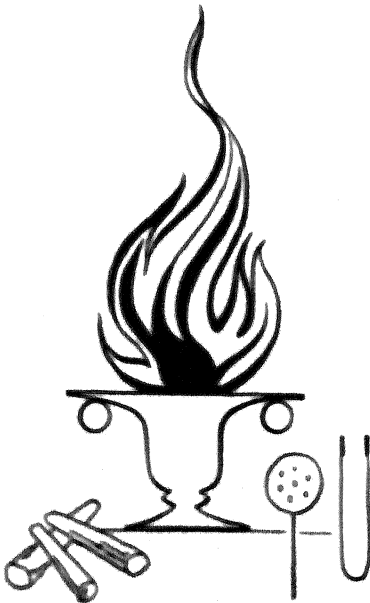
अफरघन पारसियों का आनुष्ठानिक अग्नि पात्र
सौजन्य पीलू नानावटी

ज़रथुस्त्र के अनुसार, एक अविनाशी जीवन अहु हमेशा रहता है, जो शाश्वत प्रकाश अनग्र राओचाओं में अभिव्यक्त होता है. प्रकाश और जीवन को जोड़ना मज़्दा यानी ज्ञान है. यह यहूदी, ईसाई और इस्लाम धर्मों से अलग है, जो कहते हैं कि मूल रूप से अंधकार व्याप्त था और प्रकाश नया था.

जो भी अच्छा है, स्पेंता मैन्यु (उदार आत्मा), पवित्र आत्मा से मिलता है और यह अहुर मज़्दा का एक हिस्सा है. प्रतिकूल या विनाशकारी आत्मा अंग्रा मैन्यु (विनाशक आत्मा) या अर्हिमन है, जिसका मूल स्वरूप उसकी मुख्य विशेषता, द्रुज या असत्य से अभिव्यक्त होता है. ज़रथुस्त्र ने इन दो आत्माओं की नीति कथा का उपयोग करके बुराई की उत्पत्ति की व्याख्या की. यह एक अनुश्रुति थी, जिससे प्राचीन फ़ारसी लोग पहले से ही परिचित थे. ये युग्म आत्माएं, अच्छी और बुरी, एक–दूसरे की विरोधी हैं. दुष्ट मानसिकता निकृष्टतम काम करती है, जबकि अच्छी आत्मा सत्य को चुनती है.

इस प्रकार पारसी धर्म में मानवीय–चयन प्रधान सिद्धांत है. फिर भी धार्मिक व्यक्ति को बुराई के चयन से बचने के प्रयास

में अकेला नहीं छोड़ा जाता है. अहुर मज़्दा इस व्यक्ति के पास अमेषा स्पेंता– अश (सत्य, न्याय, ब्रह्मांडीय नियम और व्यवस्था), वोहु मानिक (धर्मनिष्ठ चिंतन या अच्छा मन), क्षहत्र वैर्य (वांछित प्रभुत्व या संप्रभुता, सत्ता और राज्य), एर्मेती (प्रेममय भक्ति), हौर्वातात (संपूर्णता) और ऐमेरतात (अमरत्व) को भेजता है, जो प्रत्येक व्यक्ति को सत्य चुनने और इस पर क़ायम रहने में मदद करते हैं. मृत्यु के बाद प्रत्येक आत्मा को न्याय के पुल, चिन्वत पुल, को पार करना पड़ता है. अच्छी और प्रेममयी आत्मा के लिए पुल चौडा हो जाता है, ताकि गीत गृह गारो देमन में जाना आसान हो जाए. दुष्ट के लिए पुल संकरा होकर उस्तरे की धार जैसा बन जाता है और आत्मा अंतिम फ़ैसले की प्रतीक्षा करते हुए रसातल में गिर जाती है.

गारो देमन की आनंददायी स्थिति में प्रवेश का विशेषाधिकार प्राप्त करने के लिए मनुष्य को अपने अच्छे मन और सत्य का अनुसरण करना अनिवार्य है. द्रुजो देमन या असत्य का घर मानसिक यातना की स्थिति है, जिसमें दुष्ट आत्मा मृत्यु के बाद रहती है.

पारसी धर्म में अग्नि प्रमुख भूमिका निभाती है. प्रतिष्ठित होने के बाद यह दैवी प्रतीक बन जाती है. इसलिए पारसी मंदिरों में आग को कभी बुझाया नहीं जाता, क्योंकि अग्नि सत्य की गवाह है.

पवित्र ग्रंथ

पारसी धर्म के पवित्र ग्रंथों को संयुक्त रूप से *अवेस्ता* कहते हैं. कभी सासेनियाइयों के पास उपलब्ध रहे व्यापक साहित्य के अब कुछ हिस्से ही बचे हैं. इन रचनाओं में 21 *नस्क* या संकलन शामिल हैं, जिनमें धर्म, औषधि और शासन कला प्रत्येक पर सात–सात संकलन हैं. जरथुस्त्र द्वारा रचित एकमात्र रचना *गाथाओं* या प्रार्थनाओं की ही जानकारी उपलब्ध है. ये जटिल पद्य की पुरातन शैली में लिखे गए हैं, जिन्हें आज समझ पाना कठिन है. यूनानी इतिहासकार प्लिनी ने *हर्मिप्पस* (220 ई.पू.) के हवाले से बताया कि जरथुस्त्र ने 'पद्य की 10 लाख पंक्तियां' लिखीं; इनमें से 5 गाथाओं में विभाजित केवल 17 प्रार्थनाएं विद्यमान हैं. *गाथाएं यस्ना* (वैदिक शब्द यज्ञ) का हिस्सा हैं, जो अवेस्ताई में 72 अध्यायों वाली पूजा पद्धति संबंधी रचना है.
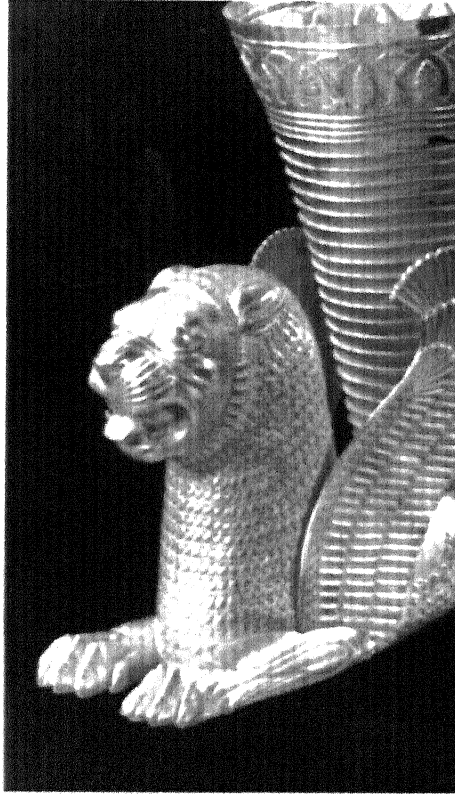
एक पारसी अग्नि पात्र
सौजन्य : पीलू नानावटी

जिस भाषा में *गाथाएं* लिखी गई हैं, वह अज्ञात है; कुछ विद्वान इसे गेथिक अवेस्तन कहते हैं, ताकि बाद में लिखी रचनाओं की भाषाओं मानक अवेस्ताई, पहलवी और पज़ेंद से उसका भेद किया जा सके. पारसियों की दैनिक प्रार्थना की पुस्तक *खोर्द* या *खोर्देह अवेस्ता* (लघु *अवेस्ता*) कहलाती है. *खोर्दा* में तीन *नाइएश* या प्रशंसा की प्रार्थनाएं हैं– सूर्य के लिए, मिथ्र (न्यायी नायायाधीश) के लिए और अग्नि के लिए इसके अतिरिक्त लंबे भजन *यश्त* भी हैं, जिनमें से कुछ प्रतिदिन और कुछ विशेष अवसरों पर गाए जाते है.

आज भी प्रयोग में आने वाली दो महत्त्वपूर्ण रचनाएं हैं, *वेंदिदाद* और *विस्पेरद*. *वेंदिदाद* में मिथक, शुद्धिकरण संहिता और धार्मिक प्रथाओं का वर्णन है. यह अनुष्ठानों और नियमों की संहिता है और 19वां *नस्क* कहलाती है. *विस्पेरद* अहुर मज़्दा और आध्यात्मिक व भौतिक, दोनों जगतों के गुरुओं को समर्पित पूजा पद्धति का विस्तार है.

पारसी धर्म का विस्तार

जरथुस्त्र की मृत्यु के बाद (551 ई.पू.) उनकी शिक्षाएं धीरे–धीरे बैक्ट्रिया और फ़ारस मे फैली. तीसरी सदी में फ़ारस में सासेनियाई राजवंश के उदय के साथ पारसी धर्म को मान्यता मिलने लगी और इसे देश का आधिकारिक धर्म बना दिया गया. इसके पुरोहितों के पास काफ़ी अधिकार आ गए; *अवेस्ता* का संकलन और अनुवाद स्थानीय भाषा पहलवी में किया गया.

633 ई. में अरब मुसलमानों का आक्रमण शुरू होने पर इराक़ को और फिर 651 ई. में ईरान को जीत लिया गया. अग्नि मंदिर नष्ट किए गए, धार्मिक ग्रंथ जलाए गए और लोगों को बलपूर्वक धर्मांतरित किया गया. कई लोग भागकर रेगिस्तान या पहाड़ों में छिप गए. अन्य दक्षिण ईरान के प्राचीन राज्य पर्सिस (अब फ़ार्स कहलाने वाला क्षेत्र) चले गए और वहां उन्होंने स्वयं को सुरक्षित कर लिया. कुछ अन्य हॉरमुज़ खाड़ी पर स्थित हॉरमुज़ तक पहुंच गए. वहां वे 100 साल रहे और गुप्त रूप से पालदार जहाज़ बनाते रहे. अंततः वे जहाज़ से भारत रवाना हुए और गुजरात में काठियावाड़ के सिरे पर मछुआरों के दिऊ गांव पहुंचे. भारतीय पारसी इन्हीं प्रारंभिक बसने वालों के वंशज हैं. पारसी शब्द का अर्थ पर्सिस से आया व्यक्ति है. पारसीपन या पारसीवाद का ज़िक्र धर्म के लिए नहीं, बल्कि विशिष्ट पारसी लोकोक्तियों, व्यवहार–वैचित्र्य, प्रहसन और हास्य के लिए होता है.

इस समय भारत में पारसियों का एक छोटा समुदाय है, उनकी संख्या घट रही है. वे मुख्य रूप से पश्चिमी तट, कोलकाता (भूतपूर्व कलकत्ता), चेन्नई (भूतपूर्व मद्रास) और दिल्ली में रहते हैं. इसके विपरीत 19वीं सदी के मध्य में ईरान से भारत आए जरथुस्त्री (पारसी) एक बढ़ता हुआ समुदाय है. दोनों समूह पारसी अग्नि मंदिरों में पूजा करते हैं और पारसी धर्म के रीति–रिवाजों का पालन करते हैं.

नवजोत, सुद्रेह और कुस्ति

धर्म की पर्यावरणीय चेतना को मूर्त रूप देने वाले समारोह. पृथ्वी के चतुर्थांशों को आहुतियों से लेकर व्यापक *यस्ना* समारोह तक, मनुष्य और ब्रह्मांड के बीच अंतर्संबंध के संपूर्णतावादी दृष्टिकोण को प्रदर्शित करते हैं.

सबसे महत्त्वपूर्ण समारोह *नवजोत* (धर्म में दीक्षा) है. पारसी माता–पिता से पैदा होने के बावजूद बच्चे को पारसी बनने के लिए स्वयं धर्म चुनना और इस पर क़ायम रहना ज़रूरी है. प्राचीन ईरान की तरह आज भी बच्चे के 15 वर्ष का होने पर *नवजोत* आयोजित किया जाता है.

नवजोत, पारसियों का दीक्षा समारोह
सौजन्य : पीलू नानावटी

नवजोत समारोह में बच्चे को पवित्र क़मीज़ *सुद्रेह* और पवित्र करधनी *कुस्ति* से पहनाए जाते हैं. कमीज़ को *वोहु मानिक* वस्त्र, यानी अच्छे मन का वस्त्र कहा जाता है. *कुस्ति* को अच्छी ऊन के 72 धागों से बुनकर बनाया जाता है, जो *यस्ना* के 72 अध्यायों का प्रतिनिधित्व करते हैं. सिरे पर के फुंदने ऊन के 24 धागों से बुने जाते हैं. ये *विस्पेरद* के 24 अध्यायों के प्रतीक हैं. *कुस्ति* उत्तम धर्म का प्रतीक है. *सुद्रेह* धर्म के सफ़ेद रंग का होता है और सूत का बना होता है. तस्मे वाला *सुद्रेह* 19वीं सदी में प्रचलन में आया. इसकी विशेषता अंग्रेज़ी के वी आकार के गले के नीचे स्थित छोटा किस्सेह–इ–कर्फ़ेह या गरेबां (सदकर्मों की ज़ेब) है, जिसमें पीछे फांक होती है. गरेबां पारसियों को याद दिलाता है कि अहुर मज्दा की अच्छाई की तुलना में मानवीय प्रयास अत्यंत छोटे हैं. गरेबा को अच्छे कर्मों से भरा जाना चाहिए और हर रात अहुर मज्दा की कृपा के लिए उनके सामने प्रस्तुत किया जाना चाहिए. गले के पीछे एक और छोटी जेब होती है, जो *गर्दयू* (गिर्दो) कहलाती है. प्रतीकात्मक रूप से इसमें धारक की उपलब्धियां होती हैं. *तिरि* कहलाने वाले तीन धागे *सुद्रेह* के दाएं हाथ के निचले कोने पर त्रिकोण में सिले होते हैं, जो धर्म के आदर्श वाक्य–अच्छे विचार, अच्छे शब्द और अच्छे कार्य का प्रतिनिधित्व करते हैं.

कुस्ति को विशेष प्रार्थना के साथ कमर पर बांधते हैं, जिसमें *गाथाओं* के दो भजन शामिल हैं. *सुद्रेह* और *कुस्ति* को जीवन भर पहनना होता है. मृत्यु के समय भी शव

अहुर मज़्दा का पत्थर पर अंकन
सौजन्य : पीलू नानावटी

के लिए नया *सुद्रेह* उपलब्ध न हो पाने की स्थिति में पुराने फटे हुए *सुद्रेह* में लपेटा जाता है.

भारतीय सार्वजनिक जीवन में योगदान

हालांकि भारत और ईरान के बीच व्यापार संबंध और राजनैतिक संपर्क आरंभिक काल से रहे हैं, भारत में पारसी आठवीं से दसवीं सदी के दौरान आकर बसे, जबकि ईरानी लगभग 19वीं सदी के मध्य में यहां पहुंचे. ईरानियों ने चाय की छोटी दुकानें खोलकर मामूली शुरुआत की. इसके बाद कृषि व औषधि क्षेत्र में प्रवेश किया और आज यह एक फलता–फूलता समुदाय है. पारसियों ने नारियल और ताड़ के पेड़ उगाने वाले फल उत्पादक और कृषकों के रूप में शुरुआत की और फिर बड़े व्यवसायों में आ गए. सूरत के वाडिया परिवार ने जहाज़–निर्माता के रूप में नाम कमाया और शाही नौसेना को युद्ध पोतों की आपूर्ति की. इस परिवार के एक सदस्य अर्देशिर कर्सेतजी वाडिया (1808–77) ने युद्ध पोतों में भाप के इंजन का पहली बार इस्तेमाल किया और बंबई (वर्तमान मुंबई) में गैस से रोशनी की भी शुरुआत की. वह रॉयल सोसाइटी ऑफ़ लंदन द्वारा 1941 में फ़ेलो (सदस्य) चुने जाने वाले पहले भारतीय थे.

तीन पारसियों ने राजनीति में विशेष रूप से ख्याति प्राप्त की, दादाभाई नौरोजी (1825–1917), फ़िरोज़शाह मेहता (1845–1915) और दिनशॉ वाचा. वाणिज्य और उद्योग के क्षेत्र में जमशेदजी नौसेरवानजी टाटा (1839–1904) का योगदान उल्लेखनीय है. उन्होंने भारत के लौह और इस्पात उद्योग की आधारशिला रखी, लोनावला में पनबिजली परियोजना स्थापित की और बंगलोर में भारतीय विज्ञान संस्थान की स्थापना के लिए वह उत्तरदायी थे, हालांकि यह उनकी मृत्यु के बाद स्थापित किया गया. टाटा परिवार के वंशज जहांगीर रतनजी दादभाई टाटा ने 1932 में टाटा एयरलाइन्स के साथ देश भर में नागरिक उड्डयन की शुरुआत की, जो बाद में विकसित हो कर इंडियन एयरलाइन्स और एयर इंडिया इंटरनेशनल में बदल गया. दोनों का 1953 में राष्ट्रीयकरण कर दिया गया.

एक अन्य पारसी होमी जहांगीर भाभा (1909–66) अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त परमाणु वैज्ञानिक थे. 1941 में 31 वर्ष की उम्र में वह रॉयल सोसाइटी ऑफ़ लंदन के फ़ेलो चुने गए. वह टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ़ फ़ंडामेंटल रिसर्च और भारतीय परमाणु आयोग के संस्थापक थे. उनके समकालीन दाराशॉ वाडिया (1883–1969) भूगर्भशास्त्र के प्रवर्तक थे, जिन्होंने हिमालय की प्रमुख श्रेणियों का मानचित्रण किया और इस दौरान क़ीमती पत्थर लहसुनिया (बेरिल) भी खोज निकाला. नानाभाई अर्देशर मूस (1859–1936) विद्युत चुंबकत्व के क्षेत्र में अग्रणी थे और उन्होंने भारत की दो प्रयोगशालाएं स्थापित कीं, जो अब भारतीय भू–चुंबकत्व संस्थान (इंडियन इंस्टि्टयूट ऑफ़ जियोमैग्नेटिज़्म) का हिस्सा हैं. औषधि क्षेत्र में जाल कावशॉ पेमास्तर (1908–80) ने कैंसर अनुसंधान में उत्कृष्ट कार्य किया. 1959 में भारत सरकार ने उन्हें मुंह और ग्रसनी के कैंसर के रोगविज्ञान के क्षेत्र में अग्रगामी कार्य तथा उनके इलाज के लिए साधारण तकनीक विकसित करने के लिए पद्मभूषण से सम्मानित किया. हृदयरोग विज्ञान में रुस्तम जाल वकील (1911–74) का काम उल्लेखनीय है. नेत्ररोग विज्ञान में जमशेदजी नौसेरवानजी दुग्गन (1884–1558) अग्रणी थे, जिस तरह दिल्ली में श्रॉफ़ नेत्र अस्पताल के संस्थापक सोराबजी पी. श्रॉफ़ (1878–1964) रहे. 1914 में स्थापित यह अस्पताल दक्षिण–पूर्व एशिया में कई वर्षों तक अपनी तरह का एक ही अस्पताल रहा.

कला के क्षेत्र में जुबिन मेहता अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त संगीत संचालक हैं; जहांगीर सबाला के चित्रों को व्यापक मान्यता मिली है और पीनाज़ मसानी गज़ल गायन के लिए प्रसिद्ध हैं. अबन ई. मिस्त्री प्रथम प्रसिद्ध पारसी तबला वादक हैं.

जलगांव

शहर, उत्तरी महाराष्ट्र राज्य, दक्षिण–पश्चिम भारत. यह मुंबई–नागपुर सड़क और मुंबई–इलाहाबाद रेलमार्ग पर स्थित है. यह 19वीं शताब्दी से पहले महत्त्वपूर्ण नहीं था, पर इसके बाद इसने व्यापारियों और बुनकरों को आकर्षित किया, जिससे 1860 तक यहां 400 से अधिक हथकरघे स्थापित हो गए. 19वीं शताब्दी के अंत से यह लगातार

विकसित हुआ और अब यह ख़ानदेश कपास उत्पादन क्षेत्र के मुख्य वाणिज्यिक केंद्रों में से एक है. इसकी नॉर्दर्न यूनिवर्सिटी से कई महाविद्यालय संबद्ध हैं.

आसपास का क्षेत्र दक्कन के पठार के उत्तरी किनारे पर ताप्ती नदी घाटी के निकट है. इसके उत्तर में सतपुड़ा पर्वतमाला है, जिसकी चोटियां 1,000 मीटर तक ऊंची हैं. ताप्ती घाटियों में पर्वतों की तीव्र ढलाने हैं, जिनकी तेज़ धारा वाली सहायक नदियों ने व्यापक अनुपयोगी भू–भाग की रचना की है. ताप्ती के दक्षिण में भूमि थोड़ी वलयदार है और क्रमशः ऊंची उठकर नदी बेसिन से 180 मीटर की ऊंचाई पर ऊपर अजंता पर्वतमाला का निर्माण करती है. यह क्षेत्र ख़ानदेश कपास क्षेत्र के एक भाग के रूप में महत्त्वपूर्ण है, यहां मोटा अनाज और तिलहन भी उगाया जाता है. केला दूर–दूर तक बिकने वाली सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नक़दी फ़सल है. पिछले कुछ समय से जलगांव ज़िला अधिक उन्नतिशील और औद्योगिक हो गया है. यहां भुसावल के निकट फकेरी में ताप बिजलीघर है. यहां रक्षा उत्पादन, वनस्पति तेल, सूती धागे के निर्माण व बुनाई और चीनी प्रसंस्करण से संबंधित उद्योग हैं. अब ताप्ती, बोरी व गिरना नदियों और छोटी नदियों पर भी सिंचाई परियोजनाएं स्थापित हैं. ये मौसमी और अपर्याप्त वर्षा से पड़ने वाले दबावों को घटाती हैं. जनसंख्या (2001) न.पा. क्षेत्र 3,68,579; ग्रामीण क्षेत्र 5,848; ज़िला कुल 36,79,936.

जलदापारा वन्यजीव अभयारण्य

वन्यजीव अभयारण्य, पश्चिम बंगाल राज्य, पूर्वोत्तर भारत. यह संरक्षण स्थल 1941 में ख़ासतौर पर विशाल भारतीय गैंडे की रक्षा के लिए स्थापित किया गया था. यह राज्य के उत्तरी भाग में भूटान की सीमा के निकट 217 वर्ग किमी क्षेत्र में फैला है और तोरसा नदी व इसकी सहायक नदियों के द्वारा विच्छेदित समतल मैदानों के जंगलों से युक्त है. जंगल मुख्यतः बिखरे हुए सागौन और ऊंची घास के हैं. अभयारण्य में दलदलों के हिरन, तेंदुए, सांबर, काकड़, पाढ़ा, जंगली सूअर, जंगली मुर्ग़ी, मोर, बटेर और कुछ हाथी और बाघ हैं. अभयारण्य में सवारी के लिए हाथी उपलब्ध हैं.

जलपाईगुड़ी

नगर, इसी नाम के ज़िले का मुख्यालय, तिस्ता नदी के पश्चिम में, पश्चिमोत्तर बंगाल राज्य, पूर्वोत्तर भारत. यह राज्य का मुख्य कृषि वितरण केंद्र है और रेल व सड़क मार्ग द्वारा दार्जिलिंग, सिलिगुड़ी तथा सैदपुर (बांग्लादेश) से जुड़ा है. जूट के गट्ठर बनाना, आरा मशीन और माचिस निर्माण यहां के प्रमुख उद्योग हैं. यहां रेलवे कार्यशाला भी हैं. 1885 में जलपाईगुड़ी में नगरपालिका का गठन हुआ था और यहां आनंद चंद्र कॉलेज और उत्तरी बंगाल विश्वविद्यालय से संबद्ध जलपाईगुड़ी गवर्नमेंट इंजीनियरिंग कॉलेज समेत कई महाविद्यालय स्थित हैं.

जलपाईगुड़ी जिला क्षेत्र तिस्ता नदी द्वारा विभक्त दो भिन्न क्षेत्रों से मिल कर बना है. पश्चिम की ओर स्थित इसका क्षेत्र किंचित लहरदार, धान के विशाल खेतों और

झाड़ीदार जंगलों वाला है, जहां सघन आबादी है और चावल, जूट, व गन्ने की उपज होती है. पूर्व में पश्चिमी द्वार नामक उपपर्वतीय क्षेत्र है, जहां सिंकुला पहाड़ों में स्थित छह दर्रे हैं, जो भूटान तक जाते हैं. यहां सघन संरक्षित वन और विस्तृत चाय बाग़ान हैं; इस क्षेत्र में तंबाकू, जूट, तिलहन और आलू की भी खेती होती है. कोयला, ताम्र अयस्क, चूना–पत्थर और डोलोमाइट का भी खनन होता है. जनसंख्या (2001) नगर 1,00,212; ज़िला कुल 34,03,204.

जलासिक्त भूमि

यह एक स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र है, जिसमें जल निकास की उचित व्यवस्था न होने के कारण धीमी गति से प्रवाहित होता हुआ या ठहरा हुआ पानी मिट्टी को सांद्रित करता रहता है. मिट्टी और वनस्पति जीवन के आधार पर जलासिक्त भूमि को कर्दम, कच्छ या दलदली भूमि के रूप में वर्गीकृत किया जाता है. जलासिक्त क्षेत्र कई प्रकार के होते हैं, जैसे उत्तरी शीतोष्ण क्षेत्रों की पीट कर्दम भूमि से लेकर उष्णकटिबंधीय क्षेत्र के मैंग्रोव जंगलों तक, मौसमी तालाबों, दलदलों से लेकर बाढ़ के मैदानों तथा तटीय दलदलों तक, छिछली झीलों और बड़े जलागारों के किनारों से लेकर खारे पानी की झीलों व समुद्रतालों तक और नदियों के मुहानों से लेकर तटीय खारे दलदलों तक. रेगिस्तान में मरुद्यान, समुद्री शैवाल की क्यारियां और मूंगे की चट्टानें भी जलासिक्त क्षेत्र ही हैं. धान के खेतों तथा मछलियों के तालाब मनुष्यों द्वारा निर्मित और प्रबंधित जलासिक्त क्षेत्र हैं. एक हेक्टेयर से कम से लेकर हज़ारों हेक्टेयर तक के इन विभिन्न क्षेत्रों के दो प्रमुख लक्षण हैं– एक, साल भर या कुछ महीनों तक भूमि पानी से भरी हुई या पानी में डूबी रहती है और दो, जलासिक्त भूमि का जीवतंत्र तथा अनुकूलन अपने जीवन के कम से कम एक हिस्से के दौरान पानी ठहरने या उसमें भूमि के डूबने पर निर्भर या इसके लिए अनुकूलित होता है.

दुनिया के सभी जलवायु क्षेत्रों में जलासिक्त भूमि पाई जाती है और अनुमानतः यह भूमि की सतह का लगभग छह प्रतिशत हिस्सा घेरे हुए है. इन क्षेत्रों ने इतिहास के आरंभ से मानवजाति को सहारा दिया है और सभ्यता के विकास में निर्णायक भूमिका निभाई है. वस्तुतः पहली मानव बस्ती के बसने का बड़ी नदियों के बाढ़ के मैदान में खेती की शुरुआत से निकट का संबंध रहा है. दुनिया के सभी हिस्सों में जलासिक्त क्षेत्रों के कई पौधे और जंतु, मानव भोजन का प्रमुख स्रोत रहे हैं. भारतीय मिथकों, संस्कृति और इतिहास में जलासिक्त क्षेत्र (जिसे संस्कृत में अनूप कहा जाता है) और इसका जीव तंत्र इतना महत्त्वपूर्ण था कि इन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था. कमल, हंस, कछुआ और मछली ऐसे ही सुविदित प्रतीक हैं और विभिन्न देवी–देवताओं से संबंधित हैं. यमुना नदी के बाढ़ का मैदान भगवान कृष्ण की बाल लीलाओं का क्षेत्र रहा है. सरकंडों से घिरी उथली झीलों, कमल तथा कुमुद जैसे फूलों व सारस पक्षी के झुंडों के शांत भू–दृश्यों ने बहुत से कवियों और लेखकों को प्रेरित किया है. आज भी दुनिया की आधी से अधिक आबादी को भोजन के लिए जलासिक्त क्षेत्र से मछली और चावल प्राप्त होता है.

जहां एक ओर भारतीय संस्कृति में जलासिक्त क्षेत्रों को देवताओं का निवास माना जाता था, पश्चिमी दुनिया इसे प्रेतात्माओं का बसेरा, रोगों का गढ़ और आर्थिक विकास में बाधा मानती थी. इसलिए विकास के नाम पर जलासिक्त क्षेत्रों को सुखाकर और भरकर कृषि योग्य बनाया गया. नदियों पर बांध बना कर उन्हें नियंत्रित किया गया और नहरें बनाई गई, जिससे जलासिक्त क्षेत्र समाप्त हो गए. दुनिया के आधे से अधिक प्राकृतिक जलासिक्त क्षेत्र कई देशों में 'विकास' की भेंट चढ़ चुके हैं. अंततः 1960 के दशक में जलासिक्त क्षेत्रों को जलीय पक्षियों की कई प्रजातियों (बत्तख़, पनडुब्बी चिड़िया, जलमुर्ग़ी, बगुला, सारस और राजहंस) के आवास क्षेत्र के रूप में स्वीकार किया गया. इनमें से कई हज़ार पक्षी हर साल सर्दियों में ठंडे उत्तरी क्षेत्रों से दक्षिण के गर्म जलासिक्त क्षेत्रों की ओर प्रव्रजन करते हैं. वैज्ञानिक अध्ययनों से जलासिक्त क्षेत्रों के कई अन्य फ़ायदों की जानकारी मिली, जिनके बारे में पहले पता नहीं था या उनकी अनदेखी की जाती थी. इस नई जागरूकता के फलस्वरूप जलासिक्त क्षेत्र पहले और अब तक के एकमात्र आवासीय क्षेत्र बने, जिसके संरक्षण को 1971 में रामसर (ईरान) में हुए अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में स्वीकार किया गया.

जलासिक्त क्षेत्र महत्त्वपूर्ण पर्यावरणीय और पारिस्थितिकीय भूमिका निभाते हैं, जिसकी वजह से वे अमूल्य संसाधन बन गए हैं. वे अपनी जैव विविधता में बहुत समृद्ध हैं, क्योंकि पृथ्वी पर रहने वाले जीवों में से लगभग 15 प्रतिशत इन्हीं क्षेत्रों में रहते हैं. सभी वर्गीकरण समूहों के जीवधारी, एककोशीय शैवाल से लेकर प्रहरिता (*लिवखर्ट*) तक; मॉस, फ़र्न, काष्ठीय *एंजियोस्पर्म*, एककोशीय प्राणी से स्तनधारी प्राणी तक और कई प्रकार के जीवाणु तथा कवक, सभी जलासिक्त क्षेत्रों में पाए जाते हैं. इन क्षेत्रों में सामान्यतः मॉस, फ़र्न, बांस जैसी दलदलीय घास (कैटटेल) और नरकुल वनस्पति पाई जाती है; विभिन्न जलासिक्त क्षेत्रों में शंकुधारी और खजूर जाति के वृक्षों के साथ–साथ पानी के भीतर डूबे हुए, तैरने वाले पत्तों से युक्त जड़दार शाकीय पौधे तथा कई कीटभक्षी पौधे होते हैं.

जंतुओं में, संधिपाद (अधिकांश *क्रस्टेशिया* और *इंसेक्टा*) और मोलस्क यहां की प्रमुख प्रजातियां हैं. *ओलिगोकेटीज़* भी पर्याप्त मात्रा में होते हैं. रीढ़धारी जंतुओं में उभयचर प्राणी, मछलियां और पक्षी प्रमुख हैं. विभिन्न प्रकार के जलीय पक्षी (जिन्हें मुर्ग़ाबी भी कहते हैं) विशेष तौर पर प्रमुख हैं और प्रायः विशाल समूहों में पाए जाते हैं. जलासिक्त भूमि में पाए जाने वाले जलपक्षियों में विविधता का क़रीबी संबंध आवासीय और वानस्पतिक विविधता से है. बीवर, ऊदबिलाव और गैंडे जैसे कई स्तनपायी प्राणी सिर्फ़ इन्ही क्षेत्रों में पाए जाते हैं.

जलासिक्त भूमि के प्राणी समूह में ऐसे प्राणी भी शामिल हैं, जो अपने जीवन चक्र का सिर्फ़ एक भाग यहां बिताते हैं या किन्हीं विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यहां आते हैं. कई शाकाहारी जंतु मौसमी तौर पर जलासिक्त क्षेत्रों में चरने आते हैं; कई कीट अपना लार्वा चरण इन क्षेत्रों में पूरा करते हैं; कई भूमिचर पक्षी इन क्षेत्रों में पाए जाने वाले जलीय जंतुओं को खाकर जीवित रहते हैं; कछुए, मगरमच्छ और कई प्रकार

की मछलियों जैसे– जलीय जंतुओं का अस्तित्व जलासिक्त क्षेत्रों पर ही निर्भर करता है. इसके अलावा मुर्ग़ाबी, कछुए और मछलियों जैसे जंतुओं का बड़े पैमाने पर प्रव्रजन विश्व भर में जलासिक्त क्षेत्रों में पाए जाने वाले जंतुओं की विविधता में सहायक होता है.

कई स्थानीय, दुर्लभ, विलुप्तप्राय जीव जलासिक्त क्षेत्रों में पाए जाते हैं. महत्त्वपूर्ण उदाहरणों में एक सींग वाला गैंडा, कमानीदार सींग वाला हिरन, साइबेरियाई सारस, पश्चिम अफ़्रीकी समुद्री गाय, दलदली क्षेत्र का हिरन, पर्णभोजी बंदर, प्रोबोस्किस बंदर और हरे कछुए शामिल हैं.

जलासिक्त क्षेत्र काफ़ी उपजाऊ, निकटस्थ भूमि या जलीय पारिस्थितिकी तंत्र के समान या अधिक उत्पादक भी होते हैं. इन क्षेत्रों में पाई जाने वाली वनस्पति की सबसे अधिक उत्पादक प्रजातियों में जलकुंभी भी शामिल है. मैंग्रोव के जंगल जंतुओं और वनस्पति के मामले में वर्षावनों के समान ही समृद्ध होते हैं. जलासिक्त क्षेत्रों की कई वनस्पतियां मनुष्य के लिए व्यापक तौर पर खाद्य पदार्थ (चावल, सिंघाड़ा और कमल का बीज या मखाना), रेशे (जूट, बेंत, नरकुल, बांस जैसी दलदलीय वनस्पति), चारा (घास) और ईंधन उपलब्ध कराती हैं. मैंग्रोव से इमारती और ईंधन की लकड़ी भी प्राप्त होती है. इन क्षेत्रों से मनुष्यों के लिए प्राप्त होने वाले भोज्य पदार्थ में मछली और झींगा प्रमुख हैं, हालांकि मेंढक, बत्तख़ और अन्य जंतु भी बड़े पैमाने पर खाए जाते हैं.

जलासिक्त क्षेत्र उस जल को रोककर या एकत्रित रखते हैं, जो आसपास के या नीचे अवस्थित क्षेत्रों में बाढ़ ला सकता है. इस प्रकार जलासिक्त क्षेत्र बाढ़ नियंत्रण और भूमिगत जल के पुनर्भरण में सहायक होते हैं. कई बार ये क्षेत्र मनुष्यों और जानवरों के लिए उपलब्ध एकमात्र जलस्रोत भी होते हैं. ये क्षेत्र पानी को रोककर और बहाव की गति में कमी लाकर, जिसमें वनस्पति भी सहायक होती है, गाद को रोकने का भी काम करते हैं, जिससे बाढ़ के पानी में मौजूद कीचड़ और अन्य जैविक मलबा इनमें बैठ जाता है.

जलासिक्त क्षेत्रों की वनस्पतियों में ज़मीन के भीतर पाए जाने वाले हिस्से (कंद, विरोह और जड़) मिट्टी को बांधे रखते हैं और अपरदन से बचाव करते हैं. मैंग्रोव के जंगल चक्रवातीय तूफ़ानों, ज्वारीय लहरों और पानी की धाराओं जैसी अपरदनकारी शक्तियों को क्षीण करने में सहायक होते हैं.

जलासिक्त क्षेत्रों में होने वाली अनेक भौतिक, रासायनिक व जैविक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप कई पोषक पदार्थों को रोकने और भारी धातुओं एवं कीटनाशकों जैसे विषैले पदार्थों को पूर्णतः या अंशतः हटाने का कार्य होता है. इस प्रकार जलासिक्त क्षेत्र प्राकृतिक फ़िल्टर का काम करते हैं और निकटस्थ जलक्षेत्रों तथा निचले क्षेत्रों की जलधाराओं में पानी की गुणवत्ता को बेहतर बनाने में मदद करते हैं. इसलिए जलक्षेत्रों को कभी–कभी प्रकृति का 'गुर्दा' भी कहा जाता है.

जलासिक्त क्षेत्र कार्बन और नाइट्रोजन के वैश्विक चक्र को महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं. ये क्षेत्र कार्बन डाइऑक्साइड को जैविक पदार्थों में बदलकर और पीट

(कोयले का एक प्रकार) को संचित करके वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड के स्तर में कमी लाते हैं. जलासिक्त क्षेत्र में मीथेन गैस उत्पन्न करते हैं, जो हरित गृह (ग्रीन हाउस) गैस है और यह विश्व के जलवायु चक्र को प्रभावित करती है. हरित–नील शैवाल और जलासिक्त क्षेत्र के विभिन्न पौधों के साथ–साथ यहां विनाइट्रीकरण की प्रक्रिया के द्वारा नाइट्रोजन का स्थिरीकरण विश्व भर में नाइट्रोजन के स्तर को प्रभावित करता है. अंततः जलासिक्त क्षेत्र मनोरंजक गतिविधियों जैसे तैराकी, मछली पकड़ने, नौकायन, पक्षी अवलोकन या महज़ आराम करने और प्रकृति को निहारने जैसी अनुपभोगी सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों के लिहाज़ से भी महत्त्वपूर्ण है.

जलासिक्त क्षेत्रों में मच्छरों, मोलस्क और अन्य अकशेरुकी प्राणियों का भी आवास होता है, जो मलेरिया, *शिस्तोसोमियेसिस, फ़ाइलेरिया, ऑन्कोसेरकियासिस, बिल्हार्जिया, ट्रिपैनोसोमियोसिस* और कई प्रकार के विषाणु जनित रोगों के वाहक होते हैं.

विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक जलीय प्रक्रियाओं से तलछट बनने, स्थानीय जैविक पदार्थों के इकट्ठा होने, नदी की धाराओं में परिवर्तन और अनियमित वर्षा के कारण जलासिक्त क्षेत्रों का निर्माण, रूपांतरण या विनाश होता है. ये प्रक्रियाएं सामान्यतः भूगर्भीय या ऐतिहासिक समयमान में घटित होती हैं. विश्वभर में दलदल और बाढ़ के मैदानों में आग लगना सामान्य है, लेकिन अक्सर लगने वाली अनियंत्रित आग से जलासिक्त क्षेत्रों को भी नुक़सान पहुंच रहा है.

लेकिन जलासिक्त क्षेत्रों को उनके मूलक्षेत्र, आसपास के जलग्रहण क्षेत्र और निकटस्थ गहरे पानी के क्षेत्रों को सबसे गंभीर ख़तरा मनुष्यों की गतिविधियों से है. भूमि को फिर से हासिल करने की परियोजनाओं, जिसके तहत इन क्षेत्रों से पानी केवल निकाल दिया जाता है, से जलासिक्त क्षेत्रों में सबसे अधिक कमी आ रही है. छिछले दलदल और बाढ़ के मैदानों को शहरी कचरा डालने के लिए भराव क्षेत्र बना दिया जाता है. खारे व मीठे पानी के दोनों तरह के प्राकृतिक जलासिक्त क्षेत्रों को मछली के तालाबों और धान के खेतों में परिवर्तित किया जा रहा है. जैविक संसाधनों के अतिदोहन (पौधे लगाना, मछली पकड़ना और शिकार) से कई जातियां लगभग या पूरी तरह से समाप्त हो गई हैं. पालतू तथा जंगली जानवरों की चराई सामान्य है और अधिकांश जलासिक्त क्षेत्र इसके लिए अनुकूल हैं.

जलासिक्त क्षेत्रों की कमी और अपकर्ष के लिए विभिन्न कारक ज़िम्मेदार हैं. इनमें अनेक प्रकार के भूमि उपयोग, जैसे कृषि, चराई व खनन जैसे कार्य शामिल हैं, जो जलासिक्त क्षेत्रों में मृदा अपरदन करते हैं और गाद व पोषक तत्त्वों के अंतर्प्रवाह में वृद्धि करते हैं. इन क्षेत्रों पर कुप्रभाव डालने वाले अन्य कारक हैं– पानी के बहाव का नियंत्रण करना और सीधे इन क्षेत्रों में या इनके निकटस्थ जल क्षेत्रों में घरेलू मल तथा औद्योगिक अवशिष्ट तरल डालना. समुद्रतटीय जलासिक्त क्षेत्र जहाज़ों तथा मोटरबोटों से बिखरने वाले तेल और समुद्री क्षेत्र में पेट्रोलियम उत्पादन से भी प्रभावित होते हैं. पौधों की अन्यस्थानिक आक्रामक प्रजातियों (जलकुंभी, सैलवीनिया, एलिगेटर पतवार,

और इपोमिया) और जंतुओं (तिलातिया, ग्रास कार्प, और गैंबूसिया जैसी मछलियों) के कारण भी जलासिक्त क्षेत्रों को ख़तरा है.

भारत में व्यापक तौर पर जलासिक्त क्षेत्र पाए जाते हैं. प्राकृतिक जलासिक्त क्षेत्रों में दलदल, धाराओं और नदियों के किनारे अवस्थित, विशेषकर हिमालय और पश्चिमी घाट के कुछ क्षेत्रों के अर्द्ध पर्वतीय तटवर्ती जंगल; विस्तृत बाढ़ के मैदान व दलदल, खारे तथा मीठे पानी की कई छिछली झीलें और समुद्रताल (पश्चजल समेत) शामिल हैं. सभी प्रमुख नदियों के डेल्टा में तटवर्ती इलाक़ों में मैंग्रोव के जंगलों का विस्तार मिलता है; गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों के डेल्टा क्षेत्र में स्थित सुंदरबन दुनिया का सबसे बड़ा मैंग्रोव क्षेत्र है. वर्षा में मौसमी तथा मात्रागत विभिन्नता के कारण हज़ारों छोटे–बड़े जलागार तथा सिंचाई के तालाबों का निर्माण किया गया है. जहां एक ओर जलासिक्त क्षेत्रों के बहुत बड़े हिस्सों से ज़मीन हासिल कर ली गई है या उन्हें धान के खेतों और मछली के तालाबों में परिवर्तित कर दिया गया है, वहीं भारत में इससे कहीं बड़े इलाक़ों में मानवनिर्मित जलासिक्त क्षेत्रों का निर्माण हो गया है.

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जलासिक्त क्षेत्रों पर ध्यान दिए जाने से बहुत पहले ही भारत में इनके संरक्षण का काम शुरू हो गया था. 1879 के वन क़ानून के तहत खुलना ज़िले (अब बांग्लादेश में) के सुंदरबन को संरक्षित क्षेत्र घोषित कर दिया गया था. क़ानून द्वारा इस क्षेत्र में कुछ मछुआरों और वन सुरक्षाकर्मियों को छोड़कर अन्य लोगों के बसने पर प्रतिबंध लगा दिया गया. राजस्थान राज्य के भरतपुर में स्थित केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान की स्थापना इस क्षेत्र में बहने और बाढ़ लाने वाली दो मौसमी नदियों के बाढ़ के मैदान में 200 वर्ष पहले की गई थी. पूर्वोत्तर भारत में असम राज्य का काज़ीरंगा राष्ट्रीय उद्यान एक सींग वाले गैंडे का एकमात्र आवास है; इस जलोढ़ दलदल को कई वर्ष पहले संरक्षित क्षेत्र और 1974 में राष्ट्रीय उद्यान घोषित किया गया. भारत के कई राष्ट्रीय उद्यान और वन्यजीव संरक्षण क्षेत्रों में खारे व मीठे पानी के महत्त्वपूर्ण जलासिक्त क्षेत्र शामिल हैं. 1973 से भारत के सुंदरबन इलाक़े का एक हिस्सा बाघ अभयारण्य के रूप में संरक्षित है और अब इसे जैवमंडलीय अभयारण्य बना दिया गया है. खारे पानी के तीन जलासिक्त क्षेत्रों (उत्तरी अंडमान, कच्छ का रण, और मन्नार की खाड़ी) और मीठे पानी के दो क्षेत्रों, काज़ीरंगा (430 वर्ग किमी) और मनास (391 वर्ग किमी) को भी जैवमंडलीय अभयारण्य घोषित किया गया है.

रामसर समझौते ने जलासिक्त क्षेत्रों के संरक्षण की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई. इस पर हस्ताक्षर करने वाले देशों को एक या अधिक जलासिक्त क्षेत्रों को 'अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व का' घोषित करने और सभी जलासिक्त क्षेत्रों के संरक्षण और अवलंबनीय प्रबंधन के लिए आवश्यक क़दम उठाने के लिए कहा गया है. भारत में यह समझौता 1 फ़रवरी 1982 को लागू हुआ. परिणामस्वरूप उड़ीसा राज्य में स्थित तटवर्ती समुद्रताल चिलका झील और केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान को इसके तहत लाया गया. इसके बाद वूलर (जम्मू–कश्मीर में स्थित प्राकृतिक झील), हरिके (पंजाब में स्थित जलागार), सांभर (राजस्थान में खारे पानी की झील) और लोकटक (मणिपुर स्थित कछार का मैदान) को भी रामसर

समझौते के स्थलों के रूप में शामिल किया गया. ऊजनी झील (महाराष्ट्र), अष्टमुंडी मुहाना (केरल), कोल्लूर (आंध्र प्रदेश) ऊपरी झील, भोपाल (मध्य प्रदेश) नलसरोवर (गुजरात), काबर (बिहार), पुलिकट (आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु), सुखना (चंडीगढ़), रेणुका, पोंग बांध और चंद्रताल (हिमाचल प्रदेश), कांजली व रोपड़ (पंजाब), त्सो मोरारी (जम्मू–कश्मीर), दीपार बील (असम) और पूर्वी कोलकाता (भूतपूर्व कलकत्ता) का जलासिक्त क्षेत्र भी राष्ट्रीय महत्त्व के जलासिक्त क्षेत्र हैं.

हालांकि जलासिक्त क्षेत्रों के महत्त्व के बारे में जागरूकता लगातार बढ़ रही है, मानवजनित गतिविधियों के कारण इन क्षेत्रों का अस्तित्व ख़तरे में है. बचे हुए जलासिक्त क्षेत्रों का संरक्षण, प्रबंधन और अवलंबन आवश्यक है. इस परिप्रेक्ष्य में रामसर समझौते में 'बुद्धिसम्मत उपयोग' की अवधारणा को बढ़ावा दिया गया था, जो पारिस्थितिकी तंत्र के प्राकृतिक गुणों को बनाए रखने के साथ मानवजाति के हित में अवलंबनीय उपयोग पर बल देता है. अब इस बात को भी मान्यता मिलने लगी है कि लंबे समय से जलासिक्त क्षेत्रों का प्रबंधन स्थानीय समुदाय के हाथ में ही रहा है, जो अपनी सभी आवश्यकताओं के लिए इस पर निर्भर रहते आए है. इसलिए पर्यावरण संरक्षण के सभी प्रबंधकीय उद्देश्य जलासिक्त क्षेत्रों की भूमिका और उनके महत्त्व पर आधारित होने चाहिए, प्रभावी प्रबंधन के लिए स्थानीय आबादी द्वारा पारंपरिक प्रबंधन की समझ ज़रूरी है और इसमें सभी हिस्सेदारों व स्थानीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी की आवश्यकता है.

जलियांवाला बाग़ नरसंहार

(13 अप्रै. 1919), इस घटना में ब्रिटिश सैनिकों ने भारतीय प्रदर्शनकारियों पर अंधाधुंध गोलियां चलाकर बड़ी संख्या में उनकी हत्या कर दी. इस घटना ने भारत–ब्रिटेन संबंधों को ऐसा घाव दिया, जो कभी नहीं भरा और इसी से महात्मा गांधी के 1920–22 के असहयोग आंदोलन की शुरुआत हुई.

1919 में भारत की ब्रिटिश सरकार ने रॉलेट ऐक्ट लागू किया, जिसके तहत उसके प्रथम विश्व युद्ध के आपातकालीन अधिकार बढ़ गए. 13 अप्रैल 1919 को तीसरे पहर 10,000 से भी ज़्यादा निहत्थे स्त्री, पुरुष और बच्चे जनसभा करने पर प्रतिबंध के बावजूद अमृतसर के जलियांवाला बाग़ में (यह बगीचा था, लेकिन 1919 से पहले यह सार्वजनिक सभास्थल बन चुका था) विरोध सभा के लिए एकत्र हुए. वह रविवार का दिन था और आसपास के गांवों के अनेक किसान हिंदुओं तथा सिक्खों का उत्सव 'बैसाखी' मनाने अमृतसर आए थे.

जनरल आर.ई.एच. डायर ने अपने सिपाहियों को बाग़ के एकमात्र तंग प्रवेशमार्ग पर तैनात किया था. बाग़ यों भी साथ–साथ सटी ईंटों की इमारतों के पिछवाड़े की दीवारों से घिरा था. डायर ने बिना किसी चेतावनी के 50 सैनिकों को गोलियां चलाने का आदेश दे दिया और चीख़ती, आतंकित भीड़ पर 10–15 मिनट तक 1,650 गोलियां दाग़ दी गईं, जिनमें से कुछ अपनी जान बचाने की कोशिश में लगे लोगों की भगदड़ में कुचले गए. सरकारी अनुमानों के मुताबिक़, क़रीब 400 नागरिक मारे गए और 1200 घायल हुए, जिन्हें कोई

चिकित्सा सुविधा नहीं दी गई. डायर ने अपनी कार्यवाही को सही ठहराने के लिए तर्क दिए और कहा कि 'नैतिक और दूरगामी प्रभाव' के लिए यह ज़रूरी था. डायर ने स्वीकारा कि अगर और कारतूस उपलब्ध होते, तो फ़ायरिंग जारी रहती.

पंजाब प्रांत के गवर्नर माइकेल ओ. डायर ने अमृतसर के नरसंहार का समर्थन किया और 15 अप्रैल को समूचे प्रांत में मार्शल लॉ लागू कर दिया, लेकिन, वाइसरॉय चेम्सफ़ोर्ड ने इस कार्यवाही को 'ग़लत फ़ैसला' बताया और जब विदेश मंत्री एड्विन मॉन्टेग्यू को नरसंहार का पता चला, तो उन्होंने लॉर्ड हंटर की अध्यक्षता में जांच आयोग का गठन किया. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपनी अलग जांच समिति गठित की. यद्यपि बाद में डायर को पद से हटा दिया गया, लेकिन ब्रिटेन में वह बहुतों के लिए विशेषकर कंज़रवेटिव पार्टी के लिए, नायक बनकर लौटे. उन्होंने डायर को रत्नजड़ित तलवार भेंट की, जिस पर लिखा था, 'पंजाब का रक्षक'.

जशपुर पाट

भौगोलिक क्षेत्र, छत्तीसगढ राज्य, मध्य भारत. यह जशपुर ज़िले तक फैला हुआ है और छोटा नागपुर के पठार का हिस्सा है. यह अपनी भू–वैज्ञानिक संरचना, विवर्तनिक (टेक्टॉनिक) इतिहास और अपेक्षाकृत नम जलवायु के कारण आसपास के क्षेत्रों से अलग है. पठार उत्तरी बाहरी छोर से उभरता है और सबसे ऊंची स्थलीप्राय सतह पश्चिमी छोर पर स्थित है. यह छोटे, समतल शीर्ष वाले पठारों और पहाड़ियों से बना है, जो एक–दूसरे से कगारों और नदी घाटियों के ज़रिये अलग–अलग हैं. यहां का जल निकास मुख्यतः उत्तरी और दक्षिणी कोइल तथा दामोदर नदियों द्वारा होता है. उत्तर में ऊपरी पाट (स्थानीय रूप से ऊपरघाट के नाम से ज्ञात) की ऊंचाई लगभग 750 मीटर से 1,006 मीटर तक है. दक्षिण में निचला पाट (स्थानीय नाम निचघाट) की ऊंचाई लगभग 274 मीटर से 503 मीटर तक है. जशपुर पाट, गंगा और महानदी जल–निकास तंत्र के बीच विभाजक का काम करता है. पाट के शीर्ष भाग आमतौर पर बंजर हैं या घास के मैदान से ढके हैं और इसके ढलान वनाच्छादित हैं. गाश पहाड़ (988 मीटर) और लाकी पहाड़ (1,013 मीटर) जशपुर पाट के दो ऊंचे शिखर हैं. मैनी, इब, मांड और कुस्कल नदियों के कारण संकरी व पथरीली घाटियों का निर्माण होता है.

यहां की उष्ण, नम मॉनसूनी जलवायु पठार की ऊंचाई के कारण कुछ हद तक परिवर्तित हो गई है. पलास, खैर, हरड़ा, आबनूस और सागौन के शुष्क पर्णपाती वन पठार की ढलानों पर स्थित हैं. इनके बीच–बीच में बांस और सबई घास (महत्त्वपूर्ण भारतीय रेशेदार घास, जिसे स्थानीय भाषा में भाबर कहते हैं) भी पाई जाती हैं. शुष्क क्षेत्रों में साल (शोरिया) के वृक्ष पाए जाते हैं. ये जंगल स्थानीय संथाल, उरांव, हो और खरिया जनजातियों को आवास क्षेत्र प्रदान करते हैं.

18वीं शताब्दी के मध्य तक रामगढ़, खरदिघा और कांडी यहां की तीन सत्ताधारी स्थानीय रियासते थीं. बंगाल से इस क्षेत्र में ब्रिटिश शासन का विस्तार हुआ. कोयले व अन्य खनिजों के कारण यहां सड़क और रेलमार्ग बनाए गए. यह क्षेत्र कोयला, लौह

अयस्क और अभ्रक जैसे खनिज पदार्थों में काफ़ी समृद्ध है. यहां चूना–पत्थर, चीनी मिट्टी, मैंगनीज़, बॉक्साइट, बलुआ पत्थर, निर्माण सामग्री और डोलोमाइट का भी खनन होता है.

छोटा नागपुर पठार के इस हिस्से का अधिकांश भाग अब भी ग्रामीण है. यहां कपास, चावल, मक्का, गन्ना, मूंगफली, तोरी, सरसों, ज्वार–बाजरा और फलों की खेती की जाती है. यह क्षेत्र आटा, तिलहन, आरा मिल और इमारती लकड़ी को सुखाने, लोहे, पीतल और एल्युमिनियम के औज़ार तथा बर्तन बनाने; व टसर रेशम के उत्पादन संबंधी उद्योगों का केंद्र है. यहां अन्य गतिविधियां भी पनप रही हैं, जैसे लाख और चपड़ा संग्रहण, कृषि आधारित उद्योग, जैसे चावल मिल और वनोत्पादों का प्रसंस्करण, विशेषकर सबई घास का. आर्थिक गतिविधियां मुख्य रेल व सड़क मार्गों के आसपास होती हैं और अधिकांश अंदरूनी हिस्से में आवागमन की बहुत कम सुविधाएं उपलब्ध हैं. ऊपरी क्षेत्र की जनसंख्या का अधिकांश हिस्सा उरांव, कंवर, गोंड, कोरवा और अन्य जनजातीय लोगों का है, जो जंगलों को साफ़ करके बनाए गए कुछ हिस्सों में रहते हैं. इस क्षेत्र का एकमात्र महत्त्वपूर्ण शहर जशपुर नगर है. जनसंख्या (2001) जशपुर ज़िला कुल 7,39,780.

मोतीराम जसराज
सौजन्य : *द हिंदू*

जसराज, मोतीराम

(ज.–28 जन. 1930, हिसार, भारत), मेवाती घराने और हिंदुस्तानी शास्त्रीय परंपरा के विख्यात गायक.

सुप्रसिद्ध संगीतकारों के परिवार में जन्मे जसराज को शुरू में उनके पिता पंडित मोतीरामजी ने संगीत में प्रशिक्षित किया. उनके पिता की मृत्यु के बाद उन्हें उनके बड़े भाई पंडित मणिरामजी और उनके आध्यात्मिक गुरु तथा मेवाती घराने के एक अन्य वरिष्ठ संगीतकार जयवंत सिंहजी ने शिक्षा दी.

जसराज का लय के सभी पहलुओं, संगीत रचना और इसके गीतों के चयन पर पूरा नियंत्रण है. सूक्ष्म विवरण का ध्यान रखने और शुद्ध शास्त्रीय दृष्टिकोण के मिश्रण ने उनके संगीत को दिव्य तथा गीतात्मक गुण प्रदान किया है. उन्होंनें जुगलबंदी की अनूठी अवधारणा प्रस्तुत की है, जो पुरुष और महिला गायक के बीच मूर्च्छना की प्राचीन पद्धति पर आधारित है. इसमें प्रत्येक अपने अपने स्वर पर अलग–अलग राग एक ही समय में गाता है. जसरंगी जुगलबंदी नामक इस शैली की संगीत पारखियों ने अत्यधिक सराहना की है. पिछले कई वर्षों में उन्होंने कई बंदिशों की रचना की है और उन्हें अनेक ध्वन्यांकनों (रिकॉर्ड) का श्रेय प्राप्त है. उन्होंने परंपरागत संगीत विधाओं में गहन शोध किया है और संत वल्लभाचार्य की रचना पर आधारित ध्रुपद धमार शैली में 500 वर्ष पुराने हवेली संगीत का रिकॉर्ड जारी किया है.

गुरु–शिष्य परंपरा में अगाध श्रद्धा रखने वाले इस संगीतज्ञ ने अपने संगीत प्रेम और ज्ञान को अपने शिष्यों में भी बांटा है. वेंकूवर में पंडित जसराज संगीत विद्यालय और न्यू जर्सी में पंडित जसराज संगीत अकादमी की स्थापना भारतीय शास्त्रीय संगीत की शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए की गई है. जसराज को कई उपाधियां और पुरस्कार मिले हैं, जिनमें पद्मश्री, पद्म भूषण, पद्म विभूषण (2000) और संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार शामिल हैं. उन्हें अमेरिका में हार्वर्ड आर्ट म्यूज़ियम ने भी सम्मानित किया और टोरंटो विश्वविद्यालय ने भारतीय शास्त्रीय संगीत सीखने के इच्छुक कनाडा के विद्यार्थियों के लिए उनके नाम पर एक छात्रवृत्ति स्थापित की है.

जहन्नुम

इस्लामी नरक, मुहम्मद द्वारा *क़ुरान* में इसका वर्णन कुछ अस्पष्ट तरीक़े से किया गया है. एक विवरण में नरक एक काल्पनिक दैत्य नज़र आता है, जिसे ख़ुदा अपनी इच्छा से हाज़िर करवा सकते हैं. दूसरे विवरण में यह विश्व के अंदरुनी भाग पर संकेद्रित वलयों का भयावह मुख है, जिसे सभी आत्माओं को पार करना होता है, ताकि वे चाकू की धार जैसे संकरे पुल के माध्यम से जन्नत में पहुंच सकें. (मुस्लिम धर्मवेत्ता और दार्शनिक अल–ग़ज़ाली ने पुल को अलंकारिक रूप से ख़ुदा तक पहुंचने के उस सीधे रास्ते के रूप में माना है, जिस पर हर मुसलमान को यात्रा करनी चाहिए). जहन्नुम में सज़ाओं को वर्गीकृत किया गया है, जो अपराध के अनुसार अलग–अलग हैं और ख़ुदा के चाहने पर ही पापी को मुक्ति मिलती है.

क़ुरान में जहन्नुम के वर्णन में मौजूद समस्याओं के स्पष्टीकरण की कई मुस्लिम धर्मवेत्ताओं ने कोशिश की. अविसेना (इब्न सिना) नरक को उस अवस्था की तरह वर्णित करते हैं, जिसमें आत्माओं में विषय वासनाएं तो होती हैं, लेकिन अपनी इच्छाएं पूरी करने के लिए शरीर न होने के कारण वे पीड़ा भोगती हैं.

जहांगीर

(ज.–31 अग. 1569, फ़तेहपुर सीकरी, भारत; मृ.–28 अक्तू. 1627), 1605 से 1627 तक भारत के मुग़ल बादशाह.

मुग़ल लघु चित्रकला शैली में शहंशाह जहांगीर

बचपन में शहज़ादा सलीम कहलाने वाले जहांगीर को उनके पिता अकबर ने उत्तराधिकारी के तौर पर चुना था. लेकिन जब अकबर दक्कन में व्यस्त थे, सत्ता के लिए अधीर होकर सलीम ने 1599 में विद्रोह कर दिया. अकबर ने अपनी मृत्युशय्या पर जहांगीर को उत्तराधिकारी घोषित किया. जहांगीर ने अपने पिता की परंपराओं को जारी रखा. मेवाड़ के राजपूत राजाओं के साथ चल रहा युद्ध 1614 में उदार शर्तों पर समाप्त हुआ. अकबर के समय में अहमदनगर के ख़िलाफ़ शुरू किए गए अभियान अनियमित तौर पर चलते रहे और मुग़लों के शस्त्रास्त्र तथा कूटनीति को

सक्षम हब्शी मलिक अंबर ने कई बार निष्फल किया. 1617 और 1621 में शहज़ादा ख़ुर्रम (बाद में जिन्हें शाहजहां कहा गया) ने विजय प्राप्त कर शांति समझौते किए. अपने पिता की तरह जहांगीर कट्टर सुन्नी नहीं थे, उदाहरण के तौर पर, उन्होंने पादरियों को उलेमाओं (धर्मशास्त्रियों) से खुलेआम बहस करने और धर्मांतरण की अनुमति दी थी.

1611 के बाद जहांगीर अपनी फ़ारसी पत्नी मेहरून्निसा (नूरजहां); उनके पिता इत्मादुद्दौला और भाई आसफ़ ख़ां के प्रभाव में आ गए. शहज़ादा ख़ुर्रम के साथ ये लोग 1622 तक राजनीति पर हावी रहे. अपने अंतिम दिनों में जहांगीर नूरजहां और शहज़ादा ख़ुर्रम के बीच कलह से परेशान रहे. शहज़ादा ख़ुर्रम ने 1622 और 1625 के बीच खुलेआम विद्रोह कर दिया. 1626 में कुछ समय के लिए जहांगीर को नूरजहां गुट के एक अन्य प्रतिद्वंद्वी महावत ख़ां की क़ैद में रहना पड़ा. कश्मीर से लाहौर की यात्रा के दौरान जहांगीर की मृत्यु हो गई.

शराब और अफ़ीम (जिनकी अधिकता ने जहांगीर को संयम की सीख दी) के शौकीन जहांगीर ने मुग़लकालीन भारत में फ़ारसी संस्कृति को बढ़ावा दिया. वह प्रकृति के प्रति भावप्रवण व मानव चरित्र के गहरे पारखी थे. जहांगीर की कलात्मक संवेदना उनके द्वारा चित्रकला को दिए गए बेमिसाल संरक्षण में अभिव्यक्त होती है.

जागीरदार प्रथा

(फ़ारसी शब्द जागीर, अर्थात 'भूमि' और दार, अर्थात 'अधिकारी'), यह भारत में मुसलमानों के शासनकाल में विकसित (13वीं शताब्दी के प्रारंभ में) भूमि की रैयतदारी प्रणाली थी, जिसमें किसी भूमि से लगान प्राप्त करने और उसके प्रशासन की ज़िम्मेदारी राज्य के एक अधिकारी को सौंपी जाती थी. किसी जागीरदार को जागीर सौंपा जाना सशर्त या बिना शर्त भी हो सकता था. सशर्त जागीर में जागीरदार को शासन के हित में कर वसूलने और सेना संगठित करने जैसे जनकार्य करने पड़ते थे. भूमि (इकता कहलाती थी) आमतौर पर जीवन भर के लिए दी जाती थी और अधिकारी की मृत्यु के बाद जागीर फिर से शासन के अधिकार में चली जाती थी. जागीरदार का उत्तराधिकारी निश्चित रक़म अदा करके जागीर का नवीनीकरण कर सकता था. यह प्रथा दिल्ली के प्रारंभिक सुल्तानों ने शुरू की थी. सामंतवादी चरित्र होने के कारण इस प्रथा से कुछ अर्द्ध स्वतंत्र सामंत अस्तित्व में आए, जिससे केंद्र सरकार कमज़ोर होने लगी. सुल्तान ग़यासुद्दीन बलबन (शासनकाल, 1266–87) ने इस प्रथा को कुछ नियंत्रित किया और सुल्तान अलाउद्दीन ख़लजी (1296–1316) ने इसे समाप्त कर दिया. बाद में इसे सुल्तान फ़िरोजशाह तुग़लक़ (1351–88) ने दुबारा शुरू किया और उसके बाद यह प्रथा जारी रही. प्रारंभिक मुग़ल शासकों (16वीं शताब्दी) ने अपने अधिकारियों को नक़द इनाम या वेतन देकर इसे समाप्त करना चाहा, लेकिन बाद के मुग़ल शासकों द्वारा इसे फिर लागू करने के बाद उनका शासन कमज़ोर पड़ने लगा. वर्तमान तमिलनाडु राज्य के ऑर्काट के तत्कालीन नवाब मुहम्मद अली ने इंग्लैंड की ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल की खाड़ी के किनारे 190 किमी लंबी और 75 किमी चौड़ी जागीर दी थी.

बाद में यही मद्रास प्रेज़िडेंसी का केंद्र बनी. ब्रिटिश शासनकाल में, विशेषकर महाराष्ट्र में, पुरानी जागीरदारी संपत्तियों को आमतौर पर व्यक्तिगत परिवारों की निजी संपत्ति मान लिया गया. स्वतंत्रता के बाद भारत में इस अनुपस्थित भू–स्वामित्व प्रणाली को समाप्त करने के लिए क़ानून बनाए गए.

जाट

उत्तरी भारत और पाकिस्तान की कृषक जाति. 1960 के दौरान जाट पंजाब की जनसंख्या का लगभग 20 प्रतिशत, बलूचिस्तान की जनसंख्या का लगभग 10 प्रतिशत और उसी प्रकार राजस्थान व दिल्ली व सिंध, पश्चिमोत्तर सीमा क्षेत्रों और उत्तर प्रदेश में, वहां की जनसंख्या का 2 से 5 प्रतिशत हिस्सा थे. पाकिस्तान के 40 लाख जाट मुख्यतः मुस्लिम संप्रदाय के हैं. भारत के लगभग 60 लाख जाट दो बड़ी जातियों में बराबर बंटे हुए हैं– पंजाब में बसे सिक्ख और शेष हिंदू.

पश्चिमी क्षेत्रों के मुस्लिम जाट सैकड़ों समूहों में संगठित है, जिनकी अपनी–अपनी वंश परंपरा है. ये अधिकांशतः ऊंटपालक या श्रमिक हैं. भारत और पाकिस्तान के पंजाबी क्षेत्र के जाट सामान्यतः भू–स्वामी कृषक हैं. जाट लोग सबसे पहले 17वीं सदी व उसके बाद राजनीतिक पटल पर उभरे और उनके सैन्य राज्य जैसे मुरसान (उत्तर प्रदेश), भरतपुर (राजस्थान) तथा पटियाला (पंजाब) स्थापित हुए.

जातक

(पाली और संस्कृत : जन्म), भगवान बुद्ध के पूर्वजन्मों की बेहद लोकप्रिय कहानियां, जिन्हें बौद्ध धर्म के सभी मतों में संरक्षित किया गया है. कुछ जातक कहानियां पालि बौद्ध लेखों की विभिन्न शाखाओं में हैं, इनमें वे 35 कहानियां भी हैं, जिनका संकलन उपदेश देने के लिए किया गया था. ये 35 कहानियां अंतिम पुस्तक *करिय पिटक* (व्यवहार संहिता) में हैं, जो *खुद्दक निकाय* (लघु संकलन) का अंग है. इसके अलावा पांचवी शताब्दी की सिहंली भाषा की टिप्पणी भी है, जिसका संबंध बौद्ध विद्वान बुद्धघोष से है, जिन्हें *जातकत्थावन्नन* या *जातकत्थकथा* कहते हैं, जिनमें 550 जातक कहानियां हैं, इनमें से कुछ बहुत छोटी तो उपन्यासिकाओं जैसी लंबी हैं.

बोधिसत्व को मृग के रूप में दर्शाती मृग जातक; भरहुत की पत्थर तराशकर बनाई गई आकृति, दूसरी शताब्दी ई.पू.; भारतीय संग्रहालय, कोलकाता
सौजन्य : भारतीय संग्रहालय, कोलकाता

प्रत्येक कहानी अपने कथन के अवसर के उल्लेख से शुरू होती है और बुद्ध द्वारा पिछली कहानी के पात्रों के जीवन को नई कहानी के पात्रों में पहचानने के साथ समाप्त होती है. इन कहानियों में विनोद का पुट है और विविधता भी है. इनमें भावी

बुद्ध राजा, बहिष्कृत व्यक्ति, भगवान, हाथी आदि के रूप में आ सकते हैं, लेकिन वह किसी भी रूप में आएं, उनमें कोई ऐसा गुण होता है, जिसकी शिक्षा कहानी देती है.

कई जातक कथाएं *महाभारत, पंचतंत्र पुराण* और ग़ैर बौद्ध भारतीय साहित्य की कथाओं के समान हैं. कुछ बाद में ईसप की कहानियों में भी मिलती हैं. जातक कथाएं संपूर्ण बौद्ध विश्व की मूर्तियों और चित्रों में भी प्रायः प्रदर्शित की गई हैं.

जाति

हिंदू समाज में इसे 'जात' भी लिखा जाता है. यह शब्द संस्कृत के जात शब्द से व्युत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है 'जन्म लिया' अथवा 'अस्तित्व में आया' और अस्तित्व के उस स्वरूप की ओर संकेत करता है, जो जन्म से निर्धारित होता है. भारतीय चिंतन में 'जाति' (वर्ग, प्रकार) वस्तुओं के किसी भी समूह का बोध कराती है, जिनमें वंशगत विशिष्टताएं एक समान हों. समाजशास्त्रीय दृष्टि से, 'जाति' शब्द का उपयोग आमतौर पर हिंदुओं में एक विशिष्ट वर्ग के सूचक के रूप में किया जाता है.

यद्यपि परंपरागत हिंदू आचारसंहिता (धर्मशास्त्र) के निर्माता स्वयं जाति को वर्ण (सामाजिक वर्ग) ही मानते प्रतीत होते हैं और अन्य संदर्भों में जाति को चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) में पारस्परिक संबंधों का परिणाम मानते हैं. जाति और वर्ण में एक स्पष्ट विभेद किया जाना चाहिए. जाति एक सीमित, क्षेत्रीय, अंतर्विवाह संबंधों को मानने वाले परिवारों का समूह है, वहीं वर्ण सामाजिक वर्ग का एक व्यापक अखिल भारतीय मॉडल है. आधिकारिक हिंदू दृष्टिकोण जाति को द्वितीयक स्थान देता है और उसे वर्ण का ही स्वरूप मानता है. भारत के विभिन्न भागों में कुछ जाति समूहों ने वर्ण व्यवस्था में सम्मानित स्थान पाने का प्रयत्न करने के लिए किसी विशेष वर्ण के सदस्य होने का दावा किया है. एक विशिष्ट नमूने के तौर पर और सर्वाधिक सफल इसी प्रकार का दावा राजपूतों ने किया है कि वह क्षत्रिय या अभिजात्य वर्ग के हैं तथा ऊपर से दूसरे वर्ण क्रम के हैं. अपने दावे को मज़बूत बनाने के लिए उन्होंने अपनी नई वंश परंपरा खोज ली है. जैसे अग्निकुल (अग्नि का वंश), जो प्राचीन सूर्यवंश और चंद्रवंश के समकक्ष हों. अछूतों ने भी आचार–व्यवहार की उच्च जातीय शैली अपना कर स्वयं को निम्नतम वर्ण 'शूद्र' में शामिल होकर अपना दर्जा बढ़ाने की कोशिश की है, ताकि उन्हें अपनी दुर्दशा से निजात मिले.

जाति की संकल्पना पर ही सुधारवादी हिंदुओं ने प्रहार किए हैं. वे इसे पूर्णतः मिटा देने की मांग तो नहीं करते, लेकिन अक्सर इस व्यवस्था को शुद्ध करने की वकालत करते हैं. वे चाहते हैं कि जातियों को मूलवर्ण व्यवस्था में, जो कर्म पर आधारित पूरक व्यवस्था थी, पुनः समाविष्ट किया जाए.

जाति बहिष्कृत

हिंदू जाति व्यवस्था में कोई व्यक्ति या समूह, जिसे बहुधा किसी धार्मिक अपराध के लिए जाति से बाहर निकाल दिया गया हो. जाति से बहिष्करण अस्थायी या स्थायी हो

सकता है. 19वीं सदी में हिंदू व्यक्ति को विदेश जाने के लिए बहिष्करण का सामना करना पड़ता था, क्योंकि ऐसा माना जाता था कि विदेश जाकर वह जातीय प्रतिबंधों को तोड़ने के लिए मजबूर हो जाएगा और परिणामस्वरूप अपवित्र हो जाएगा. इस तरह के अपराधी को यथोचित परंपराओं का पालन करने, आमतौर पर दंड भरने या बिरादरी के लोगों को भोजन कराने के बाद जाति में दुबारा शामिल किया जाता था.

स्थायी रूप से बहिष्कृत होना अधिक गंभीर था, क्योंकि इससे अपराधी को सामाजिक या आर्थिक सहायता तथा विवाह से वंचित कर दिया जाता था. कुछ विजातीय मेल (परंपरागत रूप से ब्राह्मण मां व शूद्र पिता के संयोग से) की संतानें बहिष्कृत समझी जाती थीं. जाति से बाहर किए गए लोगों को निम्न दर्जे की जाति में स्वीकार किया जा सकता था या वे नई जाति बना लेते थे. अपनी अस्थिर आर्थिक स्थिति के कारण जाति बहिष्कृत लोगों को ऐसे गंदे काम करने के लिए बाध्य होना पड़ता था, जो कोई नहीं करना चाहता था; अतः वे न केवल जाति बहिष्कृत, बल्कि 'अछूत' भी बन गए.

भारत तथा आसपास के कुछ जनजातीय समूह तथा सभी विदेशियों को स्वतः ही अवर्ण (जातिविहीन या जाति बहिष्कृत) समझा जाता था.

जाफ़री, अली सरदार

अली सरदार जाफ़री
सौजन्य : भारतीय ज्ञानपीठ

(ज.–29 नवं. 1913, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश; मृ.–1 अग. 2001, मुंबई), उर्दू के अग्रणी प्रगतिशील शायर. जीवन के आरंभ से देशी–विदेशी साहित्यकारों तथा विचारकों के अध्ययन ने अली सरदार जाफ़री को एक वैज्ञानिक और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण दिया. अनीस के *मर्सिए,* जिनमें कर्बला की करुण गाथा और इमाम हुसैन की महानता का वर्णन था, सरदार जाफ़री को मुग्ध करते थे. दूसरी ओर, आसपास की दुनिया में फैली ग़रीबी उन्हें विचलित कर देती थी. अरबी पढ़ाने वाले एक मदरसे में उन्हें दाख़िल कराया गया, पर वह भाग खड़े हुए. फिर उन्होंने एक अंग्रेज़ी स्कूल में दाख़िला लिया. हाई स्कूल पास करने के बाद वह अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में भर्ती हुए. लेकिन हड़तालों, आंदोलनों में उनकी भूमिका के कारण 1936 में उन्हें यूनिवर्सिटी छोड़नी पड़ी. यह और बात है कि उसी यूनिवर्सिटी ने 50 वर्ष बाद उन्हें डी.लिट. की मानद उपाधि से विभूषित किया. अलीगढ़ छोड़ने के बाद सरदार जाफ़री ने दिल्ली विश्वविद्यालय में दाख़िला लिया और बी.ए. पास किया. उसके बाद वकालत की पढ़ाई शुरू की, लेकिन उसे बीच में ही छोड़ दिया.

विश्व इतिहास में 1933 से 1939 की अवधि बहुत महत्त्वपूर्ण थी; जर्मनी और इटली में फ़ासीवाद का उदय हुआ, साम्राज्यवाद के विरुद्ध भारत की आज़ादी का संघर्ष ज़ोरों पर था और दूसरे विश्वयुद्ध की छाया गहराती जा रही थी. इस दौर में सरदार जाफ़री ने शायरी करना शुरू किया. ग़ालिब और इक़बाल जैसे शायरों को उन्होंने ख़ूब ध्यान से पढ़ा. बाद में जब वह लखनऊ विश्वविद्यालय से एम.ए. (अंग्रेज़ी) कर रहे थे, तब

छात्र आंदोलन से सक्रियता से जुड़े. उन्हें गिरफ़्तार किया गया और लखनऊ व वाराणसी की जेलों में रखा गया. 1948 में उनका विवाह सुल्ताना से हुआ.

अली सरदार जाफ़री ने अपने लेखन की शुरुआत कहानी–संग्रह *मंज़िल* से की, जिसका प्रकाशन 1938 में हुआ. कवि के रूप में उन्होंने अपनी पहचान 1943 में बनाई, जब 1943 में उनका पहला काव्य–संकलन *परवाज़* प्रकाशित हुआ.

सरदार जाफ़री की कविता का मूल स्वर करुणा, प्रेम और संवेदनशीलता का है और आज के अमानवीय दौर में भी वह अपना अस्तित्व बनाए रखती है. लड़कपन में एक बार उन्हें कुछ गांवों से गुज़रना पड़ा और वहां पहली बार उन्होंने ग़रीबी को नज़दीक से देखा. ग़रीबी वास्तव में क्या होती है, इसका अनुभव उन्हें हुआ. इसीलिए उनकी कविताओं में मध्यवर्गीय निष्क्रियता और शालीन उदासीनता नहीं है. उनकी कविताएं मानवीय संबंधों, राग–विराग, जीवन के आनंद और अवसाद का जीवंत दस्तावेज़ हैं. भयानक दुःख, पीड़ा और जुल्म का सामना करते हुए भी मनुष्य की अंतर्चेतना किस प्रकार अपने को मिटने नहीं देती, इसका काव्यमय चित्रण उन्होंने अद्‌भुत कौशल के साथ अपनी रचनाओं में किया है.

1936 में लखनऊ में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के समय सरदार जाफ़री उसके संस्थापकों में से एक थे. उनके अनुसार, यह देश का पहला महत्त्वपूर्ण धर्मनिरपेक्ष आंदोलन था. सरदार जाफ़री 1942 में बंबई पहुंचे, जहां साप्ताहिक *क़ौमी जंग* में वह पत्रकार के रूप में कार्य करने लगे. इसी दौरान जाफ़री ने अपनी लंबी, प्रतीकात्मक कविता, *नई दुनिया को सलाम* लिखी. देश के विभाजन से उन्हें बहुत गहरा आघात पहुंचा और इस हादसे ने उन्हें पूरी तरह झकझोर दिया.

सरदार जाफ़री ने शायरी की नौ पुस्तकें प्रकाशित कीं– *परवाज़* (1943), *नई दुनिया को सलाम* (1948), *ख़ून की लकीर* (1949), *अमन का सितारा* (1950), *एशिया जाग उठा* (1951), *पत्थर की दीवार* (1953), *एक ख़्वाब और* (1964), *पैराहन–ए–शरर* (1965), *लहू पुकारता है* (1978); कहानियां भी लिखीं– *मंज़िल* (1938) और नाटक भी– *ये ख़ून किसका है* (1943) और *पैकर* (1944); उनके गद्य–लेखन के दो बढ़िया नमूने हैं– *लखनऊ की पांच रातें* (1965), *इक़बाल शनासी* (1969). सरदार जाफ़री बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे. कबीर, मीरा और ग़ालिब के काव्य–संकलनों का उन्होंने उत्तम भूमिकाओं और टिप्पणियों के साथ श्रेष्ठ संपादन किया है.

अली सरदार जाफ़री को अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया : सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार (1965), पद्मश्री (1965), जवाहरलाल नेहरू फ़ेलोशिप (1968.69), सज्जाद ज़हीर पुरस्कार (1974), ज्ञानपीठ पुरस्कार (1997).

जामदानी

एक प्रकार की कसीदा की हुई मलमल, जो भारतीय बुनकरों की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है. जामदानी के उद्‌भव के बारे में अधिक जानकारी नहीं है, लेकिन गुप्तकाल (चौथी

से छठी शताब्दी ई.) के संस्कृत साहित्य में इसका उल्लेख है. यह तो ज्ञात है कि मुग़ल काल (1556–1707) में श्रेष्ठ जामदानियां ढाका (तत्कालीन बंगाल राज्य में; वर्तमान बांग्लादेश की राजधानी) में बनाई जाती थीं. इसकी विशेषता इसकी विस्तृत और बारीक रूपाकृतियां थीं. 18वीं शताब्दी में जामदानियों की बुनाई अवध के नवाबों के शासनकाल में लखनऊ, उत्तर प्रदेश में प्रारंभ हुई और इसने कलात्मक श्रेष्ठता प्राप्त की. इनके उत्पादन में बहुत कौशल की ज़रूरत होती थी और यह बहुत क़ीमती थी. जामदानी मलमल की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता इसकी रूपाकृतियों में फ़ारसी कला के तत्त्वों का समावेश है. कपड़ा सामान्यतः सफ़ेद सूती होता है और उस पर चटख रंग के सूती धागे, सोने या चांदी के तारों से सजावट या कढ़ाई की जाती है. साड़ियों में किनारों पर शॉलों जैसे डिज़ाइन बुने या काढ़े जाते हैं. शेष साड़ी पर पुष्प गुच्छों (जो चमेली के फूलों जैसे होते हैं) से या विकर्णीय रूप में वृत्तों को जमा कर सज्जा की जाती है.

19वीं सदी में ढाका, बांग्लादेश में बने जामदानी स्कार्फ़ की बारीकियां; निजी संग्रह से
फ़ोटो : पी. चंद्रा

जामनगर

शहर, गुजरात राज्य, पश्चिम भारत, कच्छ की खाड़ी के दक्षिण में स्थित. इसका निर्माण जामसाहेब ने 1540 में करवाया था. अब यह गुजरात के जामनगर ज़िले का प्रशासनिक मुख्यालय है. शहर के बीचोंबीच एक सुंदर झील है, साथ ही दो भव्य प्राचीन इमारतें, कोठा बैस्टिऑन और लखौटा स्थित हैं, जहां सिर्फ़ पत्थर के पुल द्वारा ही पहुंचा जा सकता है. कई ऐतिहासिक मंदिरों और महलों के साथ–साथ शहर में आधुनिक कारख़ाने अस्पताल और आवासीय क्षेत्र भी हैं. सीमेंट, मिट्टी के बर्तन, वस्त्र और नमक यहां के प्रमुख औद्योगिक उत्पाद हैं. यह शहर बांधनी कला, ज़री की कढ़ाई और धातुकर्म के लिए प्रसिद्ध है. यहां के शैक्षणिक संस्थानों में दोषी कालीदास आर्ट ऐंड साइंस कॉलेज, गवर्नमेंट डेंटल कॉलेज, एम.पी. शाह मेडिकल कॉलेज, एम.पी. कामर्स कॉलेज और वी.एम. मेहता कॉलेज ऑफ़ कामर्स ऐंड आर्ट्स शामिल हैं. यहां गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय भी स्थित है. यह शहर सड़क, रेल और वायुमार्ग से जुड़ा हुआ है. जनसंख्या (2001) शहर 4,47,734.

जामनगर, गुजरात का शाही महल
फ़ोटो : बलदेव–शोस्टल एसोसिएशन ई.बी. इंकॉ.

जामनगर ज़िला

ज़िला, गुजरात राज्य, पश्चिम भारत, काठियावाड़ प्रायद्वीप के पश्चिमी हिस्से में स्थित. इसके पश्चिम में अरब सागर, उत्तर में कच्छ की खाड़ी, पूर्व में राजकोट ज़िला और दक्षिण में जूनागढ़ ज़िला है. इसका क्षेत्रफल 4,244 वर्ग किमी है और यहां की औसत वार्षिक वर्षा 466 मिमी है.

पहले हालार ज़िले के नाम से ज्ञात यह क्षेत्र मुख्यतः नवानगर और ढोल देवानी की भूतपूर्व रियासतों को मिलाकर बना है. बर्दा पहाड़ियों का कुछ हिस्सा इस ज़िले में है, इसका शेष अधिकांश हिस्सा समतलीय है. तटीय क्षेत्र में कहीं–कहीं मैंग्रोव के जंगल हैं. यहां की मुख्य फ़सलें अनाज, कपास और आलू हैं. मछली पकड़ने और नमक से संबंधित गतिविधियां भी महत्त्वपूर्ण है. सूती और रेशमी वस्त्र बुनने का काम आर्थिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है. प्राचीन हिंदू मंदिरों के स्थल द्वारका और ओखा बंदरगाह को 1959 में जामनगर ज़िले में शामिल किया गया. टाटा केमिकल्स मीठापुर में स्थित है. जनसंख्या (2001) ज़िला कुल 19,13,685.

जायसी, मलिक मुहम्मद

(ज.–1464, जायस, उत्तर प्रदेश, भारत; मृ.–1542, अमेठी, उत्तर प्रदेश, भारत), भक्ति काव्य की उपधारा, प्रेमगाथा परंपरा के सबसे महत्त्वपूर्ण कवि, जिस पर सूफ़ीवाद का गहरा प्रभाव है. इस परंपरा की शुरुआत अमीर ख़ुसरो और मुल्ला दाऊद से दिखती है. लोकभाषा को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना और ईरानी सूफ़ियों के विपरीत इस्लामी परिवेश से नहीं, हिंदू परिवेश से प्रेमकथाएं उठाकर, उनमें लौकिक प्रेम के माध्यम से ईश्वर की प्राप्ति की स्थापना के सूफ़ी तत्त्व को जोड़ना इसकी विशेषताएं हैं.

जायसी संभवतः अरब मूल के पूर्वजों के वंशज थे, जो जायस में रहने के कारण जायसी कहलाए. जायसी के बारे में प्रसिद्ध है कि बचपन में ही उनके माता–पिता की मृत्यु हो गई थी और उनके सात बेटे गुरु के शाप के कारण मकान की छत से गिरने से मर गए. बाद में गुरु ने उन्हें आशीर्वाद दिया कि वे अपनी रचनाओं में अमर रहेंगे. किशोरावस्था में जायसी कई साधु व फ़कीरों के संपर्क में रहे और सूफ़ी मत में दीक्षित भी हुए. यही उनकी काव्य रचना का प्रेरणास्रोत रहा. उनका प्रबंध काव्य *पद्मावत*, तुलसीदास के *रामचरितमानस* का प्रेरक है. *पद्मावत* में कल्पना, इतिहास व लोकगाथा के तत्त्व हैं.

मोटे तौर पर *पद्मावत* सिंहल द्वीप की अपूर्व सुंदर राजकुमारी पद्मावती और चित्तौड़ के राजा रत्नसेन के प्रेम–विरह–मिलन की परंपरागत कथा है, लेकिन उपसंहार में जायसी ने अपनी प्रतीक योजना स्पष्ट करते हुए रत्नसेन को चित्तौड़ रूपी तन में रहने वाले मन और पद्मिनी को बुद्धि बताया है, उनके सहज सुख में बाधक चरित्र सांसारिक मायाजाल और शैतान है. गहरे अर्थों से समृद्ध यह अद्भुत महाकाव्य जितना अध्येताओं को उलझाता है, उतना ही जन सामान्य को मोहता है. जायसी को सूफ़ी विश्वासों और मसनवी शैली तक ही सीमित करके देखना उनके प्रति अन्याय होगा. उनकी सृजनशीलता का स्रोत प्रेम–सौंदर्य संवेदना है. उनके लिए सौंदर्य वह है, जिसकी छाया में सारी दुनिया सुंदर दिखती है. सृष्टि और उसके कार्यकलापों में सर्वोच्च सत्ता की छाया देखने की दृष्टि ही उन्हें लोकमानस के लिए सहज स्वीकार्य बनाती हैं. आज भी अमेठी में जायसी का मज़ार हिंदू–मुस्लिम श्रद्धा का केंद्र है. स्त्रियां उन्हें वरदायी संत मानते हुए मनौतियां मानती हैं और मनौती पूरी होने पर चादरें चढ़ाती हैं.

पद्मावत के अतिरिक्त जायसी की अन्य मान्य रचनाएं हैं : *अखरावट, आख़िरी कलाम, चित्ररेखा, मसलानामा* और *कहरानामा. सखरावत, चंपावत, इतरावत, खुर्वानामा, मोराईनामा, पोस्तीनामा, होलीनामा* जैसी कुछ अन्य रचनाओं को भी जायसी की कृतियां कहा जाता है.

जालंधर

शहर मध्य पंजाब राज्य, पश्चिमोत्तर भारत. जालंधर सातवीं शताब्दी में एक राजपूत राज्य की राजधानी था. वर्तमान में यह पंजाब का तीसरा सबसे बड़ा शहर है. यह एक महत्त्वपूर्ण जंक्शन है. इसकी महत्त्वपूर्ण औद्योगिक गतिविधियों में खेल सामग्री उद्योग, बसों के ढांचे बनाना, परिवहन उपकरणों का उत्पादन और कृषि पर आधारित उत्पाद शामिल हैं. यह एक प्रमुख शिक्षा केंद्र है, जहां बड़ी संख्या में महाविद्यालय, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय का क्षेत्रीय केंद्र, एक क्षेत्रीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय और पंजाब टेक्निकल यूनिवर्सिटी हैं. दक्षिण की ओर शहर से जुड़ी हुई जालंधर छावनी है. जनसंख्या (2001) न.नि. क्षेत्र 7,01,223; छावनी क्षेत्र 40,521.

जालंधर ज़िला

मध्य पंजाब राज्य, पश्चिमोत्तर भारत. जालंधर ज़िले का क्षेत्रफल 2,660 वर्ग किमी है. यह ज़िला एक उपजाऊ जलोढ़ मैदान है, जिसके 90 प्रतिशत से अधिक भाग पर कृषि होती है. कुल कृषि क्षेत्र का लगभग 96 प्रतिशत भाग ज़्यादातर नलकूपों द्वारा सिंचित है. गेहूं व चावल मुख्य फ़सलें हैं. अन्य फ़सलों में मक्का, गन्ना और तिलहन शामिल हैं. लगभग सभी गांव सड़कों से जुड़े हैं और बिजली का प्रयोग करते हैं. ज़िले की जनसंख्या का लगभग 39 प्रतिशत भाग अनुसूचित जातियों का है, यह प्रतिशत भारत में सर्वाधिक है. जनसंख्या (2001) ज़िला कुल 19,53,508.

जालौन

नगर और ज़िला, उत्तर प्रदेश राज्य, पूर्वी–मध्य भारत. गंगा के जलोढ़ मैदानों पर 4,549 किमी क्षेत्र में फैला यह ज़िला उत्तर में यमुना नदी द्वारा सीमाबद्ध है. बेतवा प्रणाली सिंचाई हेतु पानी उपलब्ध कराती है और फ़सलों में गेहूं, चना व सरसों शामिल हैं. कालपी नगर के समीप बबूल के वृक्षों के बाग़ान हैं. प्रशासनिक मुख्यालय, उरई कानपुर के 105 किमी दक्षिण में है, जिससे वह सड़क व रेल से जुड़ा है. उरई कृषि उपज का व्यापारिक केंद्र है. जालौन नगर, जिसके नाम पर ज़िले का नाम है, उरई के पश्चिमोत्तर में है. जनसंख्या (2001) नगर 50,033; ज़िला कुल 14,55,859.

जालौर

नगर, दक्षिण–पश्चिम राजस्थान राज्य, पश्चिमोत्तर भारत. यह लूनी नदी की सहायक सुकरी नदी के ठीक दक्षिण में अवस्थित है. जालौर सड़क मार्ग द्वारा जोधपुर से जुड़ा

है और यह आसपास के क्षेत्र के लिए कृषि विपणन केंद्र है. मध्यकालीन गढ़ रह चुका जालौर 12वीं शताब्दी में चौहान राजपूतों (राजपूताना ऐतिहासिक क्षेत्र के योद्धा शासक) की राजधानी था. लगभग 1310 में दिल्ली के शहंशाह अलाउद्दीन ख़लजी ने इस पर क़ब्ज़ा कर लिया. 11वीं शताब्दी में बना हुआ पर्वतीय दुर्ग शहर के पास ही स्थित है. जालौर में राजस्थान विश्वविद्यालय से संबद्ध एक सरकारी महाविद्यालय है.

इसके आसपास का क्षेत्र अर्द्ध उपजाऊ इलाक़ा है, जिससे होकर लूनी और उसकी सहायक नदियां बहती हैं. पूर्वी हिस्से में अरावली पहाड़ियों के बिखरे हुए बहिर्क्षेत्र स्थित हैं. नलकूप द्वारा सिंचाई करके यहां बाजरा, तिलहन और तिल की खेती की जाती है. जनसंख्या (2001) नगर 44,828; ज़िला कुल 14,48,486.

जावडी पहाड़ियां

पहाड़ियों की श्रेणी, पूर्वी घाट की बड़ी श्रेणियों में से एक, उत्तरी तमिलनाडु राज्य, दक्षिण भारत. लगभग 80 किमी और 32 किमी लंबी इस श्रेणी को पलार की सहायक नदियां चेय्यर व अगरम पूर्वी और पश्चिमी भागों में बांटती हैं. ये नीलापन लिए स्लेटी ग्रेनाइट से बनी हैं और इनकी चोटियां औसतन 1,100–1,150 मीटर तक ऊंची हैं. पहाड़ियों के दक्षिण–पूर्वी कगारों पर चंदन के जंगल हैं. यहां जनसंख्या विरल है; प्रमुख फ़सलें अनाज, दालें और तिलहन हैं.

जाहिलीया

इस्लाम में पैग़ंबर मुहम्मद के सामने हुए *क़ुरान* के रहस्योद्घाटन के पहले का काल. अरबी में इस शब्द का अर्थ है, 'अज्ञानता' या 'बर्बरता', जो मुस्लिम मूल्याकंन में अरब की संस्कृति और इस्लाम–पूर्व जीवन को इस्लाम की शिक्षा तथा नियमों की तुलना में नकारात्मक सिद्ध करता है. इस शब्द की सकारात्मक व्याख्या केवल साहित्य में है, पूर्व–इस्लामी अरबी कविताएं अपने सारगर्भित और समृद्ध शब्द ज्ञान, परिष्कृत छंद रचना और पूर्ण रूप से विकसित क़ाफ़िये तथा विषय–वस्तु क्रम के कारण सम्माननीय हैं.

जिंजी

यहां विजयनगर साम्राज्य के हिंदू शासकों (लगभग 1347–1642) द्वारा निर्मित दुर्भेद्य क़िला अवस्थित है. यह तमिलनाडु राज्य में चेन्नई (भूतपूर्व मद्रास) से लगभग 130 किमी दक्षिण–पश्चिम में स्थित है.

1638 में बीजापुर के मुस्लिम शासकों ने मराठा सरदार शाहजी से यह क़िला छीन लिया. शाहजी के पुत्र शिवाजी ने 1677 में इस क़िले पर दुबारा क़ब्ज़ा कर लिया. 1690 में मुग़लों ने इसकी घेराबंदी कर दी, जो 1698 में मराठों के समर्पण किए जाने तक जारी रही. इस प्रकार मुग़लों की विशाल सेना आठ वर्षों तक वहां फंसी रही और इसी कारण यह क़िला प्रसिद्ध हुआ. बाद में इसे मुग़लों के तहत कर्नाटक के नवाब को सौंप दिया गया, फिर इस पर 1750 में फ़्रांसीसियों और 1761 में अंग्रेज़ों का क़ब्ज़ा हो

गया. 1780 में मैसूर के हैदर अली ने इस पर अधिकार कर लिया और उसके बाद से इतिहास में इसकी कोई खास भूमिका नहीं रही.

ज़िक्र

(अरबी शब्द, अर्थात 'स्वयं को याद दिलाना' या 'उल्लेख'), अल्लाह का महिमामंडन करने और आध्यात्मिक दक्षता प्राप्त करने के लिए मुस्लिम सूफ़ियों (आध्यात्मिक व्यक्तियों) द्वारा की जाने वाली धार्मिक प्रार्थना या स्तुति. *कुरान* की आयतों पर आधारित 'स्वयं को (उज़कुर) इस ईश्वर के बारे में याद दिलाना, जब उसे भुला दिया गया हो' (18:24) और 'जिसमें विश्वास है, उसे याद करना (उज़कुरु), अल्लाह को बार–बार याद करना (33:41), ज़िक्र आवश्यक तौर पर बार–बार नाम रट कर ईश्वर को याद करना है.' मूलतः *कुरान* और धार्मिक ग्रंथों और अध्यात्म के धार्मिक लेखों का आसान पाठ, ज़िक्र धीरे–धीरे एक सिद्धांत बन गया (जैसे ला इलाहा इलल्लाह 'कोई ख़ुदा नहीं, लेकिन ख़ुदा है', अल्लाहू अकबर, 'अल्लाह सब से महान है', अल हमदुल्लिलाह, 'अल्लाह की प्रशंसा', अस्तग्राफ़िरुल्लाह, 'मैं ख़ुदा से माफ़ी मांगता हूं'), जिसे ऊंचे या धीमे स्वर में दोहराया जाता है और साथ में निर्धारित मुद्राएं व सांस साधी जाती हैं. सूफ़ी बिरादरियों (तरीक़त) की स्थापना के समय प्रत्येक ने एक विशेष ज़िक्र स्वीकार किया, जिसे आस्था के साथ (जैसे पांच बार दैनिक नमाज़ का पालन) अकेले या सामूहिक रूप से पढ़ा जाना था. फ़िक्र (ध्यान) की तरह ज़िक्र एक ऐसा तरीक़ा है, जिसका इस्तेमाल सूफ़ी ईश्वर के साथ एकात्म स्थापित करने के लिए करते हैं.

जिन्ना, मुहम्मद अली

क़ायदे–आज़म (अरबी शब्द, अर्थात महान नेता) भी कहते हैं, (ज.–25 दिसं. 1876, कराची, भारत {वर्तमान पाकिस्तान में}; मृ.–11 सितं. 1948, कराची), भारत के मुस्लिम राजनीतिज्ञ, पाकिस्तान के संस्थापक और प्रथम गवर्नर–जनरल (1947–48).

मुहम्मद अली जिन्ना
सौजन्य : पाकिस्तानी दूतावास, वाशिंगटन, डी.सी.

आरंभिक वर्ष

मुहम्मद अली जिन्ना एक समृद्ध व्यापारी जिन्नाभाई की सात संतानों में सबसे बड़े थे. घर में शिक्षा प्राप्त करने के बाद उन्हें 1887 में सिंध मदरसा भेजा गया. बाद में वह मिशन हाई स्कूल में दाख़िल हुए, जहां से 16 वर्ष की उम्र में उन्होंने बंबई यूनिवर्सिटी की मैट्रिक्यूलेशन परीक्षा पास की. एक अंग्रेज़ मित्र की सलाह पर उनके पिता ने व्यापार का अनुभव प्राप्त करने के लिए उन्हें इंग्लैंड भेजने का फ़ैसला किया. लेकिन जिन्ना बैरिस्टर बनने का मन बना चुके थे. उस समय के चलन के अनुसार, इंग्लैंड के लिए रवाना होने से पहले उनके अभिभावकों ने कम आयु में ही उनका विवाह कर दिया.

लंदन में वह लिंकन्स इन में दाख़िल हुए, जो छात्रों को वकालत के लिए तैयार करने वाली क़ानूनी संस्थाओं में से एक थी. 1895 में 19 वर्ष की आयु में उन्हें बार का आमंत्रण मिला. लंदन प्रवास के दौरान अपनी माता व पत्नी की मृत्यु के कारण जिन्ना दो बार शोक संतप्त हुए, फिर भी उन्होंने अपनी औपचारिक शिक्षा पूरी की और ब्रिटिश राजनीतिक प्रणाली का भी अध्ययन किया, जिसके दौरान वह हाउस ऑफ़ कॉमन्स में लगातार आते–जाते रहे. लंदन पहुंचने पर 1892 में चौथी बार प्रधानमंत्री बने विलियम ई. ग्लैडस्टोन के उदारवाद का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा. जिन्ना भारतीय मामलों और भारतीय छात्रों में भी गहरी दिलचस्पी लेते थे. जब पारसी नेता व अग्रणी भारतीय राष्ट्रवादी दादा भाई नौरोजी इंग्लैंड की पार्लियामेंट के लिए चुनाव में खड़े हुए, तो जिन्ना तथा अन्य भारतीय छात्रों ने उनके लिए दिन–रात काम किया. उनकी मेहनत रंग लाई और नौरोजी हाउस ऑफ़ कॉमन्स में बैठने वाले पहले भारतीय बने.

1896 में वापस कराची पहुंचने पर जिन्ना ने पाया कि उनके पिता को व्यापार में घाटा हुआ है और उन्हें अब अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ेगा. उन्होंने बंबई (वर्तमान मुंबई) में वकालत शुरू करने का फ़ैसला किया, लेकिन एक वकील की हैसियत से जमने में उन्हें सालों मेहनत करनी पड़ी.

लगभग 10 वर्षों के बाद वह सक्रिय राजनीति की ओर मुड़े. उन्हें किसी क़िस्म का कोई शौक़ नहीं था, उनकी रुचि सिर्फ़ क़ानून और राजनीति तक सीमित थी. वह कट्टर धार्मिक भी नहीं थे; बस एक मुसलमान थे और विभिन्न संप्रदायों से उन्हें वास्ता नहीं था. स्त्रियों में भी उनकी रुचि रत्तनबाई तक सीमित थी, जो बंबई के पारसी लखपति सर दिनशॉ पेतित की बेटी थीं. रत्तनबाई के माता–पिता और दूसरे लोगों के पुरज़ोर विरोध के बावजूद जिन्ना ने उनसे विवाह किया. यह विवाह दुखद रहा. ऐसे समय में उनकी बहन फ़ातिमा ने उन्हें सांत्वना दी और साथ दिया.

राजनीति में प्रवेश

1906 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) सत्र में शामिल होकर जिन्ना ने राजनीति में पहला क़दम रखा. कांग्रेस ने भारत को औपनिवेशिक राज्य का दर्जा और बाद में स्वतंत्रता दिए जाने की मांग की थी. चार वर्ष बाद जिन्ना इंपीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल के लिए निर्वाचित हुए, जो उनके लंबे और विशिष्ट संसदीय जीवन की शुरुआत थी. बंबई में कांग्रेस के अन्य महत्त्वपूर्ण नेताओं के साथ–साथ गोपालकृष्ण गोखले से उनका परिचय हुआ. इन राष्ट्रवादी राजनेताओं से प्रभावित होकर जिन्ना ने अपने राजनीतिक जीवन के आरंभ में 'मुस्लिम गोखले' बनने का सपना देखा. अंग्रेज़ों के राजनीतिक संस्थानों के प्रशंसक जिन्ना की राजनीति के प्रमुख तत्त्व थे– अंतर्राष्ट्रीय समुदाय में भारत की स्थिति को ऊंचा उठाने की इच्छा और भारत की जनता में भारतीय राष्ट्र की भावना विकसित करना. उन दिनों तक वह मुसलमानों के हितों को भारतीय राष्ट्रवादिता के संदर्भ में ही देखते थे.

लेकिन 20वीं शताब्दी के आरंभ तक कई, ख़ासकर उत्तर भारतीय मुस्लिम संगठनों ने भारतीय राष्ट्र में समाहित होने के बजाय अपनी अलग राजनीतिक पहचान को सुरक्षित रखने की मांग की. मूलतः मुस्लिम हितों की रक्षा के लिए दिसंबर 1906 में ऑल इंडिया मुस्लिम लीग की स्थापना हुई. लेकिन जिन्ना इससे अलग रहे. 1913 में जब उन्हें यक़ीन दिलाया गया कि लीग भी कांग्रेस के समान ही भारत की राजनीतिक स्वाधीनता के प्रति समर्पित है, तब वह मुस्लिम लीग में शामिल हुए. जब इंडियन होम रूल लीग की स्थापना हुई, तब वह बंबई में इसके मुख्य संगठनकर्ता बने और उन्हें बंबई शाखा का अध्यक्ष चुना गया.

हिंदू–मुस्लिम एकता के दूत

जिन्ना द्वारा हिंदुओं और मुसलमानों की राजनीतिक एकता स्थापित करने के प्रयासों के कारण उन्हें 'हिंदू मुस्लिम एकता का सर्वश्रेष्ठ दूत' कहा जाने लगा. यह उपाधि सरोजिनी नायडू ने गढ़ी थी. यह मुख्यतः उनकी कोशिशों का ही नतीजा था कि आपसी विचार–विमर्श और सहभागिता के लिहाज़ से कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने अपने वार्षिक अधिवेशनों का आयोजन साथ–साथ करना शुरू कर दिया. 1915 में दोनों संगठनों ने बंबई और 1916 में लखनऊ में बैठकें कीं, जहां लखनऊ समझौता संपन्न हुआ. इस समझौते की शर्तों के मुताबिक़ दोनों संगठनों ने संवैधानिक सुधारों की योजना को सहमति प्रदान की, जो अंग्रेज़ों के सामने उनकी संयुक्त मांग थी. काफ़ी लेन–देन हुआ, लेकिन मुसलमानों ने अलग मतदाता सूची के रूप में एक महत्त्वपूर्ण छूट हासिल कर ली, जो यूं तो 1909 में गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया ऐक्ट (मिंटो–मॉर्ले सुधार) के ज़रिये उन्हें पहले ही दी जा चुकी थी, लेकिन अब तक कांग्रेस में इसके लिए प्रतिरोध था.

लियाक़त अली के साथ जिन्ना
सौजन्य : *द हिन्दू*

इस बीच भारतीय राजनीति में मोहनदास करमचंद गांधी के रूप में एक नई शक्ति का उदय हुआ. होमरूल लीग और इंडियन नेशनल कांग्रेस, दोनों ही उनके प्रभाव में आ गए. गांधीजी के असहयोग आंदोलन के विरोध में जिन्ना ने 1920 में लीग और कांग्रेस, दोनों छोड़ दिए. कुछ वर्षों तक उन्होंने स्वयं को राजनीति की मुख्यधारा से अलग रखा. हिंदू मुस्लिम एकता और राजनीतिक विकास के लिए संवैधानिक तरीक़ों में उनका विश्वास बना हुआ था. कांग्रेस से हटने के बाद उन्होंने अपने विचारों के प्रसार के लिए मुस्लिम लीग के मंच का इस्तेमाल किया. लेकिन 1920 के दशक में मुस्लिम लीग और उसके साथ ही जिन्ना भी कांग्रेस और धार्मिक रुझान वाली ख़िलाफ़त कमेटी के सामने बौने पड़ गए.

असहयोग आंदोलन की असफलता और हिंदू पुनर्जागरण आंदोलन के फलस्वरूप जब हिंदुओं तथा मुसलमानों के बीच वैमनस्य और दंगे हुए, तब धीरे–धीरे मुस्लिम लीग मज़बूत होने लगी. इसके बाद के वर्षों में जिन्ना की सबसे बड़ी समस्या थी लीग को एक ऐसी प्रबुद्ध राजनीतिक संस्था के रूप में परिवर्तित करना, जो भारत की बेहतरी के लिए अन्य संगठनों के साथ सहयोग करने के लिए तैयार हो. इसी के साथ–साथ उन्हें कांग्रेस को यह महसूस कराना था कि राजनीतिक प्रगति के लिए पहले हिंदू–मुस्लिम वैमनस्य को सुलझाना ज़रूरी है.

इस प्रकार का सौहार्द क़ायम करना ही 1920 के दशक के उत्तरार्द्ध और 1930 के दशक के आरंभ में जिन्ना का मुख्य लक्ष्य था. उन्होंने इस दिशा में लेजिस्लेटिव असेंबली के भीतर, लंदन में गोलमेज़ सम्मेलन (1930–32) में और अपने 14 सूत्रों के ज़रिये इस दिशा में प्रयास किए. उनके 14 सूत्रों में संघीय सरकार, अल्पसंख्यकों को ज़्यादा अधिकार, केंद्रीय विधान सभा में मुसलमानों के लिए एक–तिहाई प्रतिनिधित्व, मुस्लिम बहुल सिंध क्षेत्र को शेष बंबई प्रांत से अलग करना और पश्चिमोत्तर सीमांत प्रांत में सुधार लागू करने के प्रस्ताव शामिल थे. लेकिन जिन्ना नाकाम रहे. नेहरू समिति के प्रस्तावों (1928) में मुसलमानों के लिए अलग मतदाता सूची और विधानसभा में सीटों के आरक्षण के मुद्दे पर मामूली से संशोधन लाने में असफल रहने से उन्हें गहरी निराशा हुई. उन्होंने उस समय स्वयं को एक अजीब सी स्थिति में पाया; कई मुसलमानों का सोचना था कि जिन्ना ज़्यादा ही राष्ट्रवादी हैं और उनके हाथों में मुस्लिम हित सुरक्षित नहीं है, जबकि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस सामान्य मुस्लिम मांगों में से आधी को भी पूरा नहीं करती थी. वस्तुतः मुस्लिम लीग़ बंट गई थी. पंजाब मुस्लिम लीग ने जिन्ना के नेतृत्व को छोड़कर अपना अलग संगठन बना लिया. इस सबसे खीजकर जिन्ना ने इंग्लैंड में बस जाने का निर्णय लिया. 1930 से 1935 तक वह लंदन में रहे और प्रिवि काउंसिल के समक्ष वकालत में स्वयं को व्यस्त रखा. लेकिन जब संवैधानिक परिवर्तन की चर्चा उठी, तो उन्हें स्वदेश लाकर पुनर्गठित मुस्लिम लीग के नेतृत्व के लिए मना लिया गया.

जल्दी ही गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया ऐक्ट, 1935, के तहत चुनावों की तैयारी शुरू हो गई. जिन्ना अब भी मुस्लिम लीग व कांग्रेस के बीच सहयोग और प्रांतों में गठबंधन सरकारों की दिशा में सोच रहे थे. लेकिन 1937 का चुनाव दोनों संगठनों के संबंधों में महत्त्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ. कांग्रेस ने छह प्रांतों में पूर्ण बहुमत प्राप्त किया, जबकि लीग का प्रदर्शन कुछ ख़ास अच्छा नहीं रहा. कांग्रेस ने कुछ प्रांतों में प्रांतीय सरकारों के गठन में लीग को शामिल नहीं करने का फ़ैसला किया और परिणामस्वरूप पूरी तरह कांग्रेस की सरकारें स्थापित हुई. हिंदुओं और मुसलमानों के बीच संबंध बिगड़ने लगे और जल्दी ही मुस्लिम असंतोष बेहद गहरा गया.

पाकिस्तान के संस्थापक

शुरू में जिन्ना पाकिस्तान की व्यावहारिकता के बारे में अनिश्चित थे. कहा जाता है कि पाकिस्तान का विचार सर मुहम्मद इक़बाल ने मुस्लिम लीग के 1930 के सम्मेलन में

व्यक्त किया था. लेकिन धीरे–धीरे जिन्ना इस बात के क़ायल हो गए कि भारतीय उपमहाद्वीप में मुस्लिम देश की स्थापना ही मुस्लिम हितों और मुस्लिम जीवन–शैली की रक्षा का एकमात्र उपाय है. जिन्ना को धार्मिक उत्पीड़न का उतना डर नहीं था, जितना हिंदू बहुसंख्यकों के हाथ में सत्ता जाने के बाद भविष्य में विकास की सभी संभावनाओं से मुसलमानों को दूर रखे जाने का ख़तरा था. इस ख़तरे से बचने के लिए उन्होंने अपने सहधर्मियों को उनकी जोखिम भरी स्थिति के बारे में चेतावनी देने के लिए देशव्यापी मुहिम चलाई और मुस्लिम लीग को मुसलमानों को एक राष्ट्र के रूप में जोड़ने के सशक्त माध्यम में तब्दील कर दिया.

इस समय जिन्ना एक नया जन्म ले रहे मुस्लिम राष्ट्र के नेता के रूप में उभरे. घटनाक्रम तेज़ी से बदलने लगा. 22–23 मार्च 1940 को लाहौर में लीग ने अलग मुस्लिम राज्य, पाकिस्तान के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया. पाकिस्तान के विचार का कांग्रेस ने पहले–पहल मज़ाक उड़ाया और फिर पुरज़ोर विरोध किया. लेकिन यह मुसलमानों के दिलो–दिमाग़ पर छा चुका था. जिन्ना के मुक़ाबले में गांधी और जवाहरलाल नेहरू जैसी बड़ी हस्तियां खड़ी थीं. ब्रिटिश सरकार भारतीय उपमहाद्वीप की राजनीतिक एकता क़ायम रखने के लिए प्रतिबद्ध प्रतीत होती थी. लेकिन जिन्ना ने इतना सशक्त आंदोलन चलाया कि अंततः कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार दोनों के सामने भारत के विभाजन के लिए सहमत होने के अलावा और कोई चारा नहीं बचा. इस तरह 1947 में एक स्वतंत्र देश के रूप में पाकिस्तान का उदय हुआ.

जिन्ना नए देश के पहले प्रमुख बने. उन्हें सिर्फ़ गवर्नर–जनरल ही नहीं माना जाता था; उन्हें राष्ट्रपिता क़ायदे–आज़म, यानी महान नेता का सम्मान भी प्राप्त था. जब तक वह बुढ़ापे और बीमारी से लाचार नहीं हो गए, उन्होंने कड़ी मेहनत की. 1948 में उनके जन्मस्थान कराची में उनकी मृत्यु हो गई.

जिन्नी

(अरबी शब्द), जिसका बहुवचन जिन्न है, यह जिनी भी कहलाता है, अरबी पौराणिक कथाओं में यह देवदूतों और शैतानों के नीचे के क्रम की अलौकिक आत्मा हैं. *ग़ुल* (आकार बदलने वाली धूर्त आत्माएं) *इफ़रीत* (पैशाचिक, शैतानी आत्माएं) और *सि'ला* (अपरिवर्तनीय स्वरूप वाली धूर्त आत्माएं) जिन्न श्रेणी का निर्माण करती हैं. जिन्न आग या हवा से बने होते हैं और इंसान या जानवर का रूप धारण कर सकते हैं. कहा जाता है कि वे तमाम निर्जीव वस्तुओं–पत्थरों, वृक्षों, पृथ्वी के अंदर, हवा में, आग और खंडहरों में निवास करते हैं. वे इंसान की शारीरिक आवश्यकताओं का अनुभव करते हैं, उन्हें मारा भी जा सकता है, मगर वे सभी शारीरिक सीमाओं से आज़ाद हैं. जिन्न इंसान द्वारा उन्हें, जानबूझकर या अनजाने में पहुंचाए गए नुक़सान के लिए इंसान को दंडित करने में खुशी महसूस करते हैं और उन्हें कई बीमारियों व सभी प्रकार की दुर्घटनाओं के लिए ज़िम्मेदार माना जाता है, हालांकि उचित जादुई क्रियाएं जानने वाले इंसान अपने लाभ के लिए जिन्न को इस्तेमाल कर सकते हैं.

प्राचीन अरब में जिन्न पर विश्वास आम था, जहां उन्हें कवियों और भविष्यवक्ताओं को प्रेरित करने वाला माना जाता है. वास्तव में मुहम्मद साहब को भी भय था कि उनकी अनुभूतियां जिन्न का कार्य हो सकती हैं. आगे चलकर औपचारिक इस्लाम में उनके अस्तित्व को मान्यता दी गई, जो यह दर्शाता है कि इंसान की तरह उन्हें भी आख़िरकार मुक्ति या तिरस्कार का सामना करना पड़ेगा. जादू से अपने संबंध के कारण जिन्न उत्तरी अफ़्रीका, मिस्र, सीरिया, फ़ारस और तुर्की की लोककथाओं के लोकप्रिय पात्र और समृद्ध लोक साहित्य के केंद्र बिंदु बने रहे, *द थाऊज़ैंड ऐंड वन नाइट्स* (*अलिफ़ लैला की दास्तान*) में उनकी उपस्थिति उल्लेखनीय है. भारत और इंडोनेशिया में, *कुरान* के वर्णन और अरबी साहित्य के माध्यम से उन्होंने स्थानीय मुसलमानों के कल्पना जगत में प्रवेश किया.

जिब्रील

इस्लाम में जिब्राइल भी कहलाते हैं, एक महादूत, जो ख़ुदा और इंसान के बीच मध्यस्थ के रूप में काम करते हैं और पैग़ंबर, मुख्य रूप से मुहम्मद के समक्ष होने वाले रहस्योद्घाटन के वाहक हैं. *बाइबिल* से संबंधित साहित्य में वर्णित गेब्रीएल, जिब्रील का प्रतिरूप है.

मुहम्मद स्वयं पहले उस आत्मा को पहचान नहीं पाए, जो उन्हें संचालित करती थी और *कुरान* में उनके नाम का उल्लेख केवल तीन बार है, हालांकि जिब्रील लगातार मुहम्मद के मददगार बने रहे. उन्होंने और महादूत मिकाइल ने पैग़ंबर को जन्नत की सैर (*मराज*) के लिए तैयार करने के लिए मुहम्मद के हृदय को पवित्र किया और फिर जिब्रील ने उनका विभिन्न चरणों पर तब तक मार्गदर्शन किया, जब तक वह ख़ुदा के सिंहासन तक नहीं पहुंच गए. जब मुहम्मद ने ग़ैर मुसलमान देवियों अल–लात, अल–उज़्ज़ा और मनात को स्वीकार किया, तब जिब्रील ने शैतान द्वारा प्रेरित संदेश को दिव्य बताने पर उन्हें फटकारा. जिब्रील ने राजनीतिक संकट के समय में भी मुहम्मद की मदद की थी, बद्र के युद्ध (624) में वे हज़ारों फ़रिश्तों के साथ उनकी मदद के लिए पहुंचे, फिर उन्हें यहूदी जनजातियों बानू क़यनुक़ा और बानु कुरैज़ा पर आक्रमण करने के लिए कहा.

आमतौर पर मुहम्मद अपनी प्रेरणा की आवाज़ ही सुनते थे, पर उनकी पत्नी आयशा के अनुसार, उन्होंने दो बार जिब्रील को देखा था, पहले 'जिस आकार में उनकी रचना हुई थी' और दूसरी बार मुहम्मद के एक अत्यधिक आकर्षक शागिर्द, दिह्या बिन ख़लीफ़ा अल–कल्बी के समान दिखने वाले व्यक्ति के रूप में. अन्य लोगों ने महादूत के वर्णन में उन्हें 600 पंखों वाला बताया, जिसका प्रत्येक जोड़ा इतना विशाल था कि वह पूर्व से पश्चिम के बीच की सारी जगह को घेर लेता था. जिब्रील को ज़मीन और स्वर्ग के बीच अधर में लटकी कुर्सी पर विराजमान के रूप में दर्शाया गया है. जिब्रील की लोकप्रिय छवि दो हरे वस्त्र धारण किए हुए, घोड़े या खच्चर पर सवार साधारण पगड़ीधारी इंसान की है.

जिब्रील से संबंधित मुस्लिम धारणाएं उन्हें बाइबिल से संबंधित साहित्य में ज़्यादातर वर्णित गेब्रिएल का समवर्ती बताती हैं, पर मुहम्मद से उनके ख़ास रिश्ते ने आम इंसान के मिथकीय वर्णनों को प्रेरणा दी है. ऐसा कहा जाता है कि आदम को स्वर्ग से खदेड़े जाने के बाद जिब्रील प्रकट हुए और उन्हें लिखना, लोहे का सामान बनाना और गेहूं उगाना सिखाया. बाद में जिब्रील मूसा की मदद करने और यहूदियों का पीछा करते हुए मिस्रवासियों को लाल सागर में प्रवेश के लिए बहकाने के लिए प्रकट हुए. तावीज़ बनाते समय जादुई वर्ग की भुजाओं पर दूसरे फ़रिश्तों के नामों के साथ जिब्रील का नाम भी शामिल रहता है.

ज़ियारत

(अरबी भाषा का शब्द, अर्थात यात्रा), इस्लाम में पैगंबर मुहम्मद की सऊदी अरब स्थित मदीना की मस्जिद में बने मक़बरे की यात्रा; किसी संत अथवा पवित्र व्यक्ति के मक़बरे की यात्रा. बाद की इन यात्राओं की प्रामाणिकता पर कई मुस्लिम धार्मिक विद्वानों ने प्रश्न चिह्न लगाए हैं, विशेषकर वहाबिया द्वारा, जो ज़ियारत को एक बिदा (नवाचार) मानते हैं, जिसकी सभी सच्चे धर्मावलंबियों को निंदा करनी चाहिए. वस्तुतः वहाबियों का मानना है कि संतों के मक़बरों की ऐसी यात्राएं और मुसीबत के समय संतों के नाम का आह्वान, एक प्रकार का बहुदेववाद है, क्योंकि केवल ईश्वर ही परेशान व्यक्ति को मुक्ति दे सकता है.

ऐसी आपत्तियों को नज़रअंदाज करते हुए मुसलमान पीरों से निदान अथवा आशीर्वाद प्राप्त करने की आशा से ऐसी यात्राएं करते रहते हैं. क्योंकि संतों की ख्याति सामान्यतः किसी रोग विशेष को ठीक करने की होती है, इसलिए यात्राएं व्यक्तिगत आवश्यकताओं पर आधारित होती हैं. कुछ ज़ियारतों के समय, जिस पीर के मक़बरे की यात्रा की जा रही हो, उसके नाम पर जानवरों का बलि के रूप में वध कर ग़रीबों को खिलाया जाता है, विशेषकर मिस्र में अहमद अल–बदावी और अस्–सैयदा ज़ैनब, ट्यूनीशिया में अब्द अल–क़ादिर अल–ज़िलानी और लीबिया में अब्द अस्–सलाम अल–अस्मर के नाम पर ऐसा किया जाता है.

जिहाद

जेहाद भी लिखा जाता है, यह युद्ध द्वारा इस्लाम के प्रसार के लिए मुस्लिमों का एक धार्मिक फ़र्ज़ है, सिद्धांत व आस्था के लिए लड़े जाने वाले किसी भी संघर्ष को जिहाद कहा जाता है और अक्सर इसका अर्थ 'धर्मयुद्ध' या 'पवित्र युद्ध' माना जाता है.

इस्लाम में जिहाद का फ़र्ज़ पूरा करने के लिए चार स्पष्ट तरीक़े बताए गए हैं : दिल से, ज़बान से, हाथों से और तलवार से. पहले तरीक़े में शैतान से युद्ध कर बुराई के प्रलोभनों को जीतकर खुद अपने दिल को आध्यात्मिक रूप से पाक बनाना शामिल है. ज़बान और हाथों से इस्लाम का प्रसार, जो सही है उसका समर्थन और जो ग़लत है उसे सुधार कर किया जा सकता है. चौथे तरीक़े में, इस्लाम के शत्रुओं और उसमें

विश्वास न रखने वालों के ख़िलाफ़ शारीरिक रूप से युद्ध लड़कर, व्यक्ति अपने कर्तव्य का निर्वाह कर सकता है. ख़ुदाई प्रगटीकरण में विश्वास करने वालों, ख़ासतौर पर ईसाइयों और यहूदियों को महत्त्व दिया गया. वे या तो इस्लाम धर्म को अपना सकते थे या कम से कम इस्लामी शासन के समक्ष समर्पण कर सकते थे और एक समुदाय–कर (व्यक्ति–कर) व भूमि–कर चुका सकते थे. दोनों विकल्प ठुकराए जाने की स्थिति में *जिहाद* की घोषणा की जाती थी.

आधुनिक इस्लाम अपने ही अंतर्मन से युद्ध छेड़ने पर ख़ास ज़ोर देता है. यह केवल तब ही सुरक्षात्मक उपाय के रूप में युद्ध की इजाज़त देता है, जब धर्म को कोई ख़तरा (दूसरे देशों से) हो.

पूरे इस्लामी इतिहास में धार्मिक भावना के प्रदर्शन के लिए, हालांकि इसमें राजनीतिक स्वर थे, ग़ैर मुसलमानों के विरुद्ध युद्ध को *जिहाद* की संज्ञा दी गई, यह बात ख़ासतौर पर 18वीं और 19वीं शताब्दियों में सहारा के दक्षिण में स्थित मुस्लिम अफ़्रीकी देशों पर खरी उतरती है, जहां धार्मिक–राजनीतिक विजय को *जिहाद* के रूप में देखा गया, सबसे उल्लेखनीय *जिहाद* उस्मान दान फ़ोदियो ने किया था, जिन्होंने वर्तमान उत्तरी नाईज़ीरिया में सोकोतो ख़िलाफ़त (1804) की स्थापना की थी.

जींद

नगर और ज़िला, उत्तर मध्य हरियाणा, पश्चिमोत्तर भारत. दिल्ली–फ़िरोज़पुर रेलमार्ग पर स्थित जींद रेलमार्ग द्वारा पानीपत से और सड़क मार्ग द्वारा दिल्ली व हरियाणा के अन्य महत्त्वपूर्ण शहरों से जुड़ा है. जींद के बारे में मान्यता है कि इसकी स्थापना *महाभारत* महाकाव्य के पांडवों ने की थी, जिन्होंने यहां एक मंदिर बनवाया था, जिसके इर्द–गिर्द जैंतपुरी (जींद) नगर बसा. जींद पहले, 18वीं शताब्दी में एक सिक्ख सरदार द्वारा स्थापित पंजाब के फुलकियां रजवाड़ों में से एक था. जींद ज़िला एक समतल क्षेत्र है, जिसके 88 प्रतिशत हिस्से पर खेती होती है और अधिकांश क्षेत्र पर दो फ़सलें उगाई जाती हैं. यह क्षेत्र नहरों और नलकूपों द्वारा विस्तृत रूप से सिंचित है. गेहूं व चावल प्रमुख फ़सलें हैं, अन्य फ़सलों में बाजरा, तिलहन, चना और गन्ना शामिल हैं. इसके सभी गांव सड़क मार्ग से जुड़े हुए हैं. जींद एक महत्त्वपूर्ण स्थानीय कृषि बाज़ार है. यहां के उद्योगों में सूती वस्त्र, चीनी, स्टील की ट्यूब, मशीनों के पुर्ज़ों के साथ–साथ कपास ओटने, इस्पात की री–रोलिंग, और हथकरघे से बुनाई शामिल हैं. यहां स्थित महाविद्यालय कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से संबद्ध हैं. जनसंख्या (2001) न.पा. क्षेत्र 1,36,089; ज़िला कुल 11,89,725.

ज़ुनहेबोटो

नगर, ज़ुनहेबोटो ज़िले का प्रशासनिक मुख्यालय, नागालैंड राज्य, पूर्वोत्तर भारत. कोहिमा नगर से 66 किमी पूर्वोत्तर में स्थित यह नगर पहले मोकोकचुंग उपसंभाग में आता था.

राज्य के मध्य भाग में स्थित जुनहेबोटो ज़िले (क्षेत्रफल लगभग 1,300 वर्ग किमी) को 1973 में मोकोकचुंग ज़िले से अलग कर दिया गया. यह उत्तर में मोकोकचुंग ज़िले, पूर्व में तुवेनसांग ज़िले, दक्षिण में फेक ज़िले और कोहिमा व पश्चिम में वोखा ज़िले से घिरा हुआ है. इस क्षेत्र को कई भ्रंश रेखाएं काटती हैं और भूकंप आने की संभावना बनी रहती है. यह 600 मीटर से 914 मीटर की औसत ऊंचाई वाला पहाड़ी और ऊबड़–खाबड़ क्षेत्र है. पहाड़ियां चीड़, अखरोट, भोज (बर्च) और बांस के वृक्षों वाले सघन वनों से ढकी हुई हैं. उत्तर–दक्षिण दिशा में लेनिए और दिखु प्रमुख नदियां हैं, जो संकरी घाटियों से होकर बहती हैं. अर्थव्यवस्था का आधार कृषि है. यहां झूम खेती की जाती है. फ़सलों में चावल, अदरक, कंद, कपास, मक्का, आलू, फल, तिल और गन्ना शामिल हैं; यहां सूअर और मुर्ग़ीपालन होता है. कुटीर उद्योगों में बुनाई, रंगाई, बेंत, बांस, लकड़ी का सामान और मिट्टी के बर्तन बनाने का काम शामिल है. इमारती लकड़ी को संरक्षित किया जाता है. ज़िले में कैल्शियम युक्त चूना व कोयले के भंडार भी हैं. यहां की जनजातियों का ज़िक्र संस्कृत साहित्य में किरात के रूप में मिलता है. अब ज़िले में अंगामी, रेंगमा, चाखेसांग और ज़ेलियांग लोगों का निवास है. सड़कों द्वारा आवागमन असमतल भूभाग के कारण कठिन है. जनसंख्या (2001) नगर 22,809; ज़िला कुल 1,54,909.

जुमा

मुस्लिम सप्ताह का शुक्रवार. इस दिन दोपहर की विशेष नमाज़ अदा करना सभी वयस्क पुरुषों के लिए आदेशित है. जुमा की नमाज़, जो दैनिक दोपहर की रिवाजी नमाज़ (सलात अज़–जुहर) के ऐवज़ में होती है, मुस्लिमों की बड़ी संख्या (नियमों के कुछ जानकारों के अनुसार, 40 व्यक्ति) के बीच होनी चाहिए. इसे प्रत्येक स्थान की केंद्रीय मस्जिद में करना चाहिए.

ज़ुरवान

प्राचीन ईरानी और पारसी धर्म में समय के देवता. ज़ुरवान का प्रारंभिक उल्लेख 13वीं से 12वीं शताब्दी ई.पू. की नूज़ी पट्टिकाओं में मिलता है.

विकास, परिपक्वता और क्षय के देवता के रूप में भी माने जाने वाले ज़ुरवान दो स्वरूपों, अनंत समय और लंबी अवधि के समय में सामने आए. इनमें बाद वाले अनंत समय से प्रकट होते हैं, 12 हज़ार वर्षों तक कायम रहते हैं और पुनः उसमें समा जाते हैं. ज़ुरवान मूलतः तीन अन्य देवताओं : वायु (हवा), थ्वष्ट (अंतरिक्ष) व अतर (अग्नि) से संबंधित थे.

पारसी धर्म के रूपांतरित स्वरूप में ज़ुरवानवाद फ़ारस में सासानी काल (तीसरी–सातवीं शताब्दी) में उदित हुआ. ज़ुरवानी सिद्धांतों ने अहुर मज़्दा और अंग्र मैन्यु (अर्हिमन) को बराबर बताया, जिसका सच्चे पारसियों ने जमकर विरोध किया. ज़ुरवानी विचारधारा ने मिथ्राइवाद, मानीवाद और गूढ़ज्ञानवादी विश्वास की अन्य विचारधाराओं को प्रभावित किया. सातवीं शताब्दी में ईरान पर इस्लाम की विजय के कुछ सौ वर्ष के बाद ज़ुरवानवाद समाप्त हो गया.

जुह्द

(अरबी भाषा का शब्द, अर्थात पृथक्करण), इस्लाम में तपस्या. यद्यपि एक मुसलमान को ख़ुदा द्वारा उसे दिए गए समस्त अप्रतिबंधित सुखों का आनंद लेने की छूट है, फिर भी इस्लाम सादे तथा भक्तिपूर्ण जीवन के लिए वैभव का त्याग करने वालों को प्रोत्साहन देता है और उनकी प्रशंसा करता है. *क़ुरान* ऐसी आयतों से भरी है, जो अनुयायियों को याद दिलाते हैं कि जीवन क्षणभंगुर है और उसके बाद अनंत है. वह ख़ुदा के उन सेवकों के प्रति भी बड़ा सम्मान दर्शाता है, जो ख़ुद को उसकी इबादत में लीन रखकर रात गुज़ारते हैं (25:63–65). यद्यपि इस्लाम के ऐसे अनुयायी भी हैं, जो मानते हैं कि जुह्द पर ईसाई संतों का सीधा प्रभाव था, जिनसे प्रारंभिक मुसलमानों की कुछ समानता थी. कुछ विद्वान पूर्व इस्लामी अरब हनीफ़ों की ओर भी इशारा करते हैं, जो तपस्वी जीवन व्यतीत करते थे और जिनका संभवतः पैग़ंबर मुहम्मद पर काफ़ी प्रभाव पड़ा था. पैग़ंबर स्वयं भी अपने पैग़ंबरीय जीवन–लक्ष्य के पूर्व लंबे समय तक एकांत में जागरण करते हुए उपवास और प्रार्थना करते थे.

मुस्लिम युद्ध अभियानों के फलस्वरूप आई भौतिक संपत्ति तथा ऐश्वर्यपूर्ण जीवन में व्यापक आसक्ति की प्रतिक्रिया में धार्मिक मुसलमानों ने पैग़ंबर और उनके भक्त साथियों के जीवन मार्ग की ओर लौटने का आह्वान किया. इस्लामी राज्य का विस्तार अपने साथ कड़वे राजनीतिक मतभेद भी लाया था, जिसने सत्ता के भीषण संघर्षों में मुसलमान के विरुद्ध मुसलमान को झोंक दिया. इसके परिणामस्वरूप हुए ख़ून–ख़राबे ने धार्मिक लोगों को ऐसे कृत्यों की निंदा करने और ईश्वर की आराधना से विमुख करने वाली हर वस्तु के उपयोग में संयम रख आत्मिक शांति प्राप्त करने का प्रयास करने को प्रेरित किया.

जुह्द और ज़ाहिद (तपस्वी) शब्दों का प्रयोग पूर्व–इस्लामी अरबों अथवा प्रारंभिक मुसलमानों द्वारा व्यापक व व्यवस्थित तपस्या संबंधी शिक्षाओं को परिभाषित करने के लिए नहीं किया जाता था, यह आठवीं शताब्दी के बाद परवर्ती कालों की विशेषता बन गया. प्रारंभिक ज़ाहिदों में अल–हसन अल–बसरी (मृ.–728) भी थे, जिनकी उक्तियां लंबे समय तक तपस्वियों के लिए प्रमुख मार्गदर्शक बनी रहीं. लेकिन उनकी मृत्यु के बाद तक *जुह्द* मुस्लिम समुदाय के धार्मिक व राजनीतिक जीवन में एक महत्त्वपूर्ण और शक्तिशाली आंदोलन नहीं बन पाया. कई विद्वानों ने जुह्द के वास्तविक संस्थापकों के रूप में इब्राहीम इब्न अदम और उनके शिष्य व अनुयायी शक़ीक़ अल–बल्ख़ी (मृ.–810) का उल्लेख किया है. इब्न अदम ने ग़रीबी और आत्मत्याग पर बल दिया; वह अपने पिता की धन–संपत्ति को छोड़कर फ़क़ीर बन गए थे.

इन धर्मनिष्ठ व्यक्तियों के मध्य क़रीबी संबंध होने से ज़ाहिदों को अक्सर प्रारंभिक सूफ़ियों के समान माना जाता है, जिनका नाम 'ऊन पहनने वाले', बालों की क़मीज़ें पहनने की तपस्वी प्रथा को इंगित करता है. लेकिन परवर्ती सूफ़ी ज़ाहिदों को प्रेम के कारण नहीं, बल्कि दोज़ख़ के डर से अथवा जन्नत की कामना से ईश्वर की आराधना करने वाले मानकर अस्वीकार करते हैं.

जूनागढ़

चट्टान काटकर बनाई गई बौद्ध गुफ़ाएं, जूनागढ़, गुजरात
फ़ोटो : केपिक्स–शोस्टल

शहर और ज़िला, दक्षिण–पश्चिमी गुजरात राज्य, पश्चिमी भारत, अरब सागर से लगा हुआ है. इस प्राचीन शहर का नामकरण एक पुराने दुर्ग के नाम पर हुआ है. यह गिरनार पर्वत के समीप स्थित है. यहां पूर्व–हड़प्पा काल के स्थलों की खुदाई हुई है. इस शहर का निर्माण नौवीं शताब्दी में हुआ था. यह चूड़ासम राजपूतों की राजधानी थी. यह एक रियासत थी. गिरनार के रास्ते में एक गहरे रंग की बेसाल्ट चट्टान है, जिस पर तीन राजवंशों का प्रतिनिधित्व करने वाला शिलालेख अंकित है– मौर्य शासक अशोक (लगभग 260–238 ई.पू.), रुद्रदमन (150 ई.) और स्कंदगुप्त (लगभग 455–467). यहां 100–700 ई. के दौरान बौद्धों द्वारा बनाई गई गुफ़ाओं के साथ एक स्तूप भी है. इस ज़िले में औसत वार्षिक वर्षा 843 मिमी होती है. यहां गुजरात कृषि विश्वविद्यालय से संबद्ध महाविद्यालय हैं. यहां के प्रमुख कृषि उत्पादों में कपास, ज्वार–बाजरा, दलहन, तिलहन और गन्ना शामिल हैं. वेरावल तथा पोरबंदर यहां के प्रमुख बंदरगाह हैं और यहां मछली पकड़ने का काम भी होता है.

शहर के निकट स्थित कई मंदिर और मस्जिदें इसके लंबे और जटिल इतिहास को उद्घाटित करते हैं. यहां तीसरी शताब्दी ई.पू. की बौद्ध गुफ़ाएं, पत्थर पर उत्कीर्णित सम्राट अशोक का आदेशपत्र और गिरनार पहाड़ की चोटियों पर कहीं–कहीं जैन मंदिर स्थित हैं. 15वीं शताब्दी तक राजपूतों का गढ़ रहे जूनागढ़ पर 1472 में गुजरात के महमूद बेगढ़ा ने क़ब्ज़ा कर लिया, जिन्होंने इसे मुस्तफ़ाबाद नाम दिया और यहां एक मस्जिद बनवाई, जो अब खंडहर हो चुकी है. इस नगर में वाणिज्यिक एवं निर्माण केंद्र हैं और यह रेल व राजमार्गों से जुड़ा हुआ है. यहां के शैक्षणिक संस्थानों में कॉलेज ऑफ़ एग्रीकल्चर इंजीनियरिंग ऐंड टेक्नोलॉजी और द जे.सी.ई.टी.एस. कामर्स कॉलेज शामिल हैं. जनसंख्या (2001) शहर 1,68,686; ज़िला कुल 24,48,427.

ज़ेवियर, संत फ़्रांसिस

स्पेनिश सैन फ़्रांसिस्को ज़ेवियर, (ज.–7 अप्रै. 1506, ज़ेवियर कासल, सैगुएसा के समीप, नवारे {स्पेन}; मृ.–3 दिसं. 1552, सेंकियन द्वीप, चीन; संत घोषित– 12 मार्च, 1622; उत्सव दिवस–3 दिसं.), आधुनिक काल के महानतम रोमन कैथॅलिक धर्म प्रचारक, जिन्होंने भारत, मलय द्वीप समूह और जापान में ईसाई धर्म की स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई. 1534 में पेरिस में उन्होंने इग्नेशियस लॉयोला के नेतृत्व में सोसाइटी ऑफ़ जीसस या जेसुइट के आरंभिक सात सदस्यों में से एक के रूप में शपथ ली.

प्रारंभिक जीवन एवं शिक्षा

फ़्रांसिस का जन्म नवारे में ज़ेवियर के पारिवारिक दुर्ग में हुआ था, जहां की स्थानीय भाषा बास्क थी. वह नवारे के राजा की परिषद के अध्यक्ष के तीसरे बेटे थे, जिनके राज्य का अधिकतर हिस्सा शीघ्र ही केस्टाइल के राजा के क़ब्ज़े में चला गया (1552). वह ज़ेवियर में पले–बढ़े और वहीं प्रारंभिक शिक्षा पाई. जैसा कि अक्सर अभिजात वर्ग के युवा बेटों के साथ होता था, पादरी बनना उनकी नियति थी. 1525 में वह अपनी शिक्षा शुरू करने के लिए यूरोप के धर्मशास्त्र केंद्र पेरिस विश्वविद्यालय पहुंचे.

1529 में एक अन्य बास्क विद्यार्थी इग्नेशियस लॉयोला को फ़्रांसिस के साथ कमरा दिया गया. वह पहले सेना में थे और ज़ेवियर से 15 साल बड़े थे. वह गहन धर्मांतरण से गुज़र चुके थे और उन दिनों अपनी विचारधारा से सहमत लोगों का समूह बना रहे थे. धीरे–धीरे इग्नेशियस ने शुरू में अनिच्छुक ज़ेवियर को मना लिया और परिणामतः फ़्रांसिस उन सात लोगों के गुट में आ गए, जिन्होंने 15 अगस्त 1534 को पेरिस में मौमात्र के एक प्रार्थनालय (चैपल) में यीशु का अनुसरण करते हुए ग़रीबी व ब्रह्मचर्य का जीवन बिताने, पुण्य भूमि की तीर्थयात्रा करने और आस्तिकों व नास्तिकों, दोनों की मुक्ति के लिए अपने को समर्पित करने की शपथ ली. ज़ेवियर ने तब 'आध्यात्मिक धर्मचर्या' का निष्पादन किया. यह क़रीब 30 दिन की ध्यान–श्रृंखला थी, जिसे इग्नेशियस ने अपने धर्मांतरण–अनुभवों से व्यक्ति में मानव और भगवान की सेवा के प्रति अधिक उदारता की ओर प्रवृत्त करने के लिए तैयार किया था. इससे फ़्रांसिस को ऐसी प्रेरणा मिली, जिसने जीवन भर उनका मार्गदर्शन किया और बारंबार रहस्यात्मक अनुभवों के लिए उनका रास्ता तैयार किया.

भारत मिशन

जब दल के सभी सदस्यों ने शिक्षा पूरी कर ली तो वे वेनिस में एकत्र हुए, जहां ज़ेवियर को 24 जून को पादरी के रूप में दीक्षित किया गया. एक साल से अधिक समय तक पवित्र भूमि जाने की अनुमति न मिलने के बाद ये सातों अन्य नए अनुयायियों के साथ रोम गए और अपने को पोप के हवाले कर दिया. पूरे मध्य इटली में अपने प्रवचनों और बीमारों की सेवा करने से वे इतने लोकप्रिय हो गए कि कैथ़ॅलिक राजकुमार भी उनकी सेवाएं मांगने लगे. इनमें से एक पुर्तगाल के राजा जॉन III थे, जो चाहते थे कि कर्मनिष्ठ पादरी उनके नए एशियाई उपनिवेशों में ईसाइयों की सेवा करें और लोगों में ईसाई धर्म का प्रचार करें. जब मूल रूप से चुने गए दो में से एक बीमारी के कारण नहीं जा सके, तो इग्नेसियस ने उनके विकल्प के रूप में ज़ेवियर को नामज़द किया. अगले दिन 15 मार्च 1540 को फ़्रांसिस रोम से लिस्बन होते हुए इंडीज़ के लिए रवाना हुए. अगले पतझड़ में पोप पॉल III ने इग्नेसियस के अनुयायियों को धार्मिक संघ सोसाइटी ऑफ़ जीसस के रूप में मान्यता दी.

फ़्रांसिस पहले पुर्तगाली गतिविधियों के केंद्र गोवा में 6 मई 1542 को पहुंचे, उनके साथी लिस्बन में काम करने के लिए पीछे रह गए. अगले तीन सालों में वह भारत के

दक्षिण–पूर्वी तट पर मोती निकालने वाले सीधे–सादे ग़रीब पारवों के साथ रहे. उनमें से क़रीब 20 हज़ार ने सात साल पहले मुख्यतः अपने दुश्मनों के ख़िलाफ़ पुर्तगालियों का समर्थन प्राप्त करने के लिए ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था, लेकिन उसके बाद से उनकी उपेक्षा की जाती रही थी. दुभाषियों की मदद से स्थानीय तमिल में अनूदित एक लघु प्रश्नोत्तरी का प्रयोग करके फ़्रांसिस ने लगातार उपदेश देते और गांववासियों को धर्मांतरित करते हुए गांव–गांव की यात्रा की. उनकी प्रत्यक्ष अच्छाई और प्रबल आस्था ने मौखिक संवाद की असुविधा पर विजय पाई. इसके कुछ समय बाद दक्षिण–पश्चिमी तट पर रहने वाले आदिम मैकुअनों ने दीक्षा लेने की इच्छा व्यक्त की और संक्षिप्त उपदेश के बाद 1544 के अंतिम महीनों में ज़ेवियर ने उनमें से 10 हज़ार को ईसाई धर्म में दीक्षित किया. उन्होंने पूर्वानुमान लगा लिया था कि उनके स्कूलों की योजना और पुर्तगालियों का दबाव लोगों को ईसाई धर्म में बनाए रखेंगे.

1545 के पतझड़ में ईसाई धर्म के प्रसार की संभावनाओं ने उन्हें मलय द्वीप समूह की ओर आकर्षित किया. पुर्तगाली वाणिज्य केंद्र मलक्का की मिश्रित जनसंख्या में कई महीनों तक धर्म प्रचार के बाद उन्होंने मलयों तथा स्पाइस आइलैंड (मोलक्कस) में बर्बर मानवहंताओं के बीच मिशन (धर्म प्रचार केंद्र) स्थापित किए. 1548 में वह भारत लौटे, जहां और कई धर्मप्रचारक इनसे आ मिले. गोवा में कई साल पहले स्थापित कॉलेज ऑफ़ होली फ़ेथ जेसुइटों को सौंप दिया गया. फ़्रांसिस इस कॉलेज को स्थानीय पादरियों और धर्म प्रचारकों की शिक्षा का केंद्र (डायोसीज़ ऑफ़ बिशप) बनाने में जुट गए, जो अफ़्रीका के दक्षिणी सिरे पर स्थित केप ऑफ़ गुड होप से चीन तक फैला हुआ था.

जापान में व्यतीत वर्ष

अब ज़ेवियर की आंखें जापान की उस धरती पर केंद्रित हुईं, जहां यूरोपीय मात्र पांच साल पहले पहुंचे थे. मलक्का में ईसाई धर्म में गहरी रुचि रखने वाले अंजिरे नामक एक जापानी के साथ हुई बातचीत से उन्हें पता चला कि वहां के लोग भारत में उनके परिचित मछुआरों और मोलक्कस के जंगलियों के विपरीत सुसंस्कृत और सभ्य थे. 15 अगस्त 1549 को फ़्रांसिस नवदीक्षित अंजिरो और कई साथियों के साथ एक पुर्तगाली जहाज़ से जापानी बंदरगाह कागोशिमा पहुंचे. उसी सदी के अंत तक 30 से अधिक बार मुद्रित, जापान से लिखे ज़ेवियर के पहले पत्र के इन शब्दों 'अब तक मिले सर्वश्रेष्ठ लोग' से जापानियों के प्रति उनके उत्साह का पता चलता है. नए तरीक़े अपनाने की आवश्यकता के प्रति वह सचेत हुए. उनकी जिस ग़रीबी ने पारवों और मलयों का दिल जीता था, वही जापानियों को अक्सर विकर्षित करती थी. इसलिए आवश्यकतानुसार उन्होंने सोच–समझकर दिखावे के लिए ग़रीबी को त्याग दिया. जापान पहुंचने के बाद 1551 के अंत तक कोई भी पत्र न मिलने के कारण ज़ेवियर ने अस्थायी रूप से भारत लौटने का फ़ैसला किया और पांच समुदायों के क़रीब 2,000 ईसाइयों को अपने साथियों की देखरेख में छोड़ दिया.

भारत में नव स्थापित जेसुइट प्रोविंस ऑफ़ द इंडीज़ के अध्यक्ष के रूप में प्रशासनिक कामकाज उनकी प्रतीक्षा में थे. इस बीच वह समझ गए कि जापान में धर्मांतरण का मार्ग चीन से हो कर जाता है; क्योंकि जापानी लोग ज्ञान के लिए चीनियों पर विश्वास करते थे. लेकिन वह चीन कभी नहीं पहुंच पाए. 5 दिसंबर 1552 को जब फ़्रांसिस उस समय विदेशियों के प्रवेश के लिए प्रतिबंधित चीन में जाने की कोशिश कर रहे थे, सैंकियन द्वीप (अब शांग–चुआन ताओ, चीनी तट के पास) में उनकी मृत्यु हो गई.

मूल्यांकन

20वीं सदी के विद्वानों ने ज़ेवियर से जुड़ी कई अफ़वाहों को दूर किया और आलोचकों के विरुद्ध उनकी वकालत भी की. आधुनिक अनुमान के अनुसार, ज़ेवियर ने क़रीब 30,000 लोगों को दीक्षित किया, जो बरोक़ की अतिशयोक्ति 10 लाख से काफ़ी कम है. वास्तव में जहां भी उन्होंने काम किया, उन्हें भाषा की समस्या से जूझना पड़ा और मान्यता के विपरीत वह वाकपटु नहीं थे. उन्हें धर्म प्रचारकों को धर्मांतरित किए जाने वाले लोगों के रिवाजों और भाषा को अपनाने और स्थानीय शिक्षित पादरियों की सहायता लेने के सिद्धांतों का श्रेय ठीक ही दिया जाता है. लेकिन इन उपक्रमों का उनके उत्तराधिकारियों ने हमेशा अनुसरण नहीं किया.

शोध से पता चलता है कि उन्होंने अपने द्वारा स्थापित समुदायों की हमेशा देखभाल की और दीक्षा के बाद उन्हें छोड़ नहीं दिया, जैसा कि कुछ आलोचकों का मानना था. वास्तव में अन्य लोगों द्वारा जल्दबाज़ी में धर्मांतरित किए गए लोगों को शिक्षित करने में उन्होंने काफ़ी मेहनत की. भारत के जिन इलाक़ों में उन्होंने धर्म प्रचार किया, वे आज तक कैथॅलिक बने हुए हैं. 17वीं सदी में लगातार असाध्य उत्पीड़न से मोलक्कस और जापान में उनके द्वारा स्थापित मिशन नष्ट हुए, लेकिन हज़ारों की शहादत के बाद ही. अपनी मृत्यु से पहले ही फ़्रांसिस को संत माना जाने लगा था और 1622 में कैथॅलिक चर्च ने उन्हें औपचारिक रूप से संत घोषित कर दिया. 1927 में उन्हें सभी मिशनों का संरक्षक घोषित किया गया.

जैंतिया

भारतीय इतिहास में पूर्वोत्तर भारत के असम में एक राज्य, जो अब बांग्लादेश और भारत के बीच उत्तरी सीमा पर जैंतिया पर्वत श्रृंखला से असम के मैदानों में कालोंग नदी तक विस्तृत है. यहां के लोग खासी मूल के थे.

1824 में बर्मा द्वारा आक्रमण किए जाने पर वहां का राजा ब्रिटिश सत्ता के साथ मिल गया, जिसने 1832 में उसका राज्य हथिया लिया था. वहां बंगाली व्यापारी तथा यूरोपीय चाय उत्पादक पहुंचे, जिससे तनाव पैदा हुआ और 1862 में विद्रोह भड़क उठा. इसे कठोर सैनिक कार्यवाही द्वारा कुचल दिया गया. इस क्रूर अभियान के लिए भारत में ब्रिटिश अधिकारियों की भारी आलोचना हुई.

जैंतिया की पहाड़ियां

भौगोलिक क्षेत्र, पूर्वी मेघालय राज्य, पूर्वोत्तर भारत. विरल आबादी वाले इस पर्वतीय क्षेत्र (मेघालय पठार का हिस्सा) की औसत ऊंचाई 900 मीटर से अधिक है. यहां आमतौर पर भारी वर्षा होती है और ये पहाड़ियां सघन वनों से ढकी हुई हैं. यहां बेहतरीन लकड़ी का उत्पादन होता है, लेकिन उद्योगों की कमी है. कोपिली नदी, जो इस क्षेत्र की सबसे लंबी धारा है, पथरीली और द्रुत है और इसके रास्ते में कई दर्शनीय जलप्रपात हैं. यहां दुर्लभ वन्यजीवों की कई प्रजातियां पाई जाती हैं.

जैंतिया पहाड़ियों के निवासी प्राथमिक रूप से जैंतिया जनजाति के लोग हैं, जो पश्चिम में रहने वाले खासी लोगों की तरह ही भारत के पहले मंगोल प्रवासियों के वंशज माने जाते हैं. 19वीं शताब्दी तक इन लोगों में प्रशासन की त्रि–स्तरीय प्रणाली थी. ब्रिटिश शासन काल के दौरान यह प्रणाली ख़त्म हो गई और आज़ादी के बाद इसके स्थान पर जनजातीय मामलों की ज़िला परिषद का गठन किया गया और अन्य मामलों की देखरेख के लिए एक भारतीय अधिकारी की नियुक्ति की गई.

कुछ हद तक अलगाव के कारण जैंतिया लोग अपनी मातृसत्तात्मक संस्कृति को बचाए रखने में काफ़ी हद तक सफल रहे हैं. वे अब भी झूम पद्धति से खेती करते हैं और आलू यहां की मुख्य फ़सल है. हालांकि भारत सरकार ने स्थायी कृषि को बढ़ावा देने का प्रयास किया है, जिसमें कुछ हद तक सफलता मिली है.

जैन धर्म

भारत का एक धर्म. हिंदू एवं बौद्ध धर्म के साथ यह भारत की उन तीन प्राचीनतम धार्मिक परंपराओं में एक है, जिनका आज भी प्रचलन है. सारांश में जैन धर्म सभी जीवों के प्रति अहिंसा पर आधारित अनुशासित जीवन के ज़रिये आध्यात्मिक मोक्ष के मार्ग की शिक्षा देता है. अपने इतिहास के दौरान यह एक सांस्कृतिक प्रणाली बन गया, जिसने भारतीय सभ्यता के दर्शन और तर्कशास्त्र, कला और वास्तुकला, गणित, खगोलशास्त्र और ज्योतिष और साहित्य जैसे क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया.

साझा पृष्ठभूमि होने के कारण जैन धर्म में हिंदू और बौद्ध धर्मों के समान अवधारणाएं हैं, फिर भी जैन धर्म और इसके अनुयायियों को अपनी स्वायत्त पहचान का हमेशा अहसास रहा. इसलिए जैन परंपरा को एक स्वतंत्र अस्तित्व माना जाना चाहिए न कि हिंदू धर्म का कोई प्रकार या बौद्ध धर्म का एक रूप, जैसा कि कुछ आरंभिक विद्वान मानते थे.

जैन धर्म का नाम संस्कृत क्रियामूल जि, यानी 'विजयी होना' से निकला है. इसका तात्पर्य उस सात्विक युद्ध से है, जो साधकों और साधिकाओं को आवेग और दैहिक इंद्रियों से लड़ना पड़ता है, ताकि वे सर्वज्ञान तथा आत्मा की पूर्ण शुद्धि प्राप्त कर सकें, जिसे जैन धर्म में मोक्ष कहा जाता है. जिन थोड़े से व्यक्तियों ने यह सर्वज्ञान और

आत्मशुद्धि प्राप्त की है, उनमें श्रेष्ठतम को जिन (विजेता) कहा जाता है और इस परंपरा के संघवासियों तथा आम अनुयायियों को जैन 'विजेता का अनुयायी' कहते हैं.

जैन धर्म मुख्यतः भारत में सीमित है, हालांकि हाल में भारतीयों का, विशेष रूप से अंग्रेज़ी भाषी देशों में प्रवास के कारण कई राष्ट्रमंडल देशों और अमेरिका में इसका प्रसार हुआ है. निश्चित आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन संभवतः इस समय भारत में लगभग 40 लाख और अन्य देशों में क़रीब एक लाख जैन हैं.

इतिहास

प्रारंभिक इतिहास (छठी सदी ई.पू.–पांचवी सदी ई.)

जैन धर्म का उद्भव लगभग सातवी से पांचवीं सदी ई.पू. के दौरान उत्तर भारत के गंगा बेसिन में हुआ, जो उस समय गहन धार्मिक चिंतन और गतिविधियों का केंद्र था. इसी क्षेत्र में बौद्ध धर्म का भी प्रादुर्भाव हुआ था. इन नए धार्मिक परिप्रेक्ष्यों की तत्कालीन साझा विचारधाराएं संन्यास, सामाजिक गतिविधियों, कर्मकांड और घरेलू, दोनों का त्याग व इंद्रियों पर विजय प्राप्त करके पुनर्जन्म के चक्र से छुटकारा पाने के लिए आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्ति से संबद्ध थीं. इस प्रकार वेद और कर्मकांडी ब्राह्मणवादी परंपरा को अस्वीकृत कर दिया गया. पहले जैन व्यक्तित्व, पार्श्वनाथ हैं, जिनके बारे में पर्याप्त ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं. वह एक संन्यासी शिक्षक थे, जिन्होंने संभवतः सातवीं सदी ई.पू. में सांसारिक मोह के त्याग के आधार पर एक समुदाय स्थापित किया. जैन परंपरा के अनुसार, उन्हें विश्व के वर्तमान युग कल्प का 23वां तीर्थंकर माना जाता है. तीर्थंकर, जिन्हें जिन भी कहते हैं, जैन धर्म मार्ग के पथ प्रदर्शक व संन्यासियों तथा जनसाधारण के समुदाय (तीर्थ) के संस्थापक हैं, जो पुनर्जन्म के बंधन से मुक्त हैं और इस तरह, ऐसा उदाहरण पेश करते हैं, जिसका अनुसरण सभी जैनों को करना चाहिए.

इस युग के 24वें और अंतिम तीर्थंकर वर्धमान थे, जिन्हें महावीर (महान नायक) की उपाधि से जाना जाता है; जैन उन्हें सम्यक ज्ञान, सम्यक दर्शन (आस्था) और सम्यक चारित्र्य (आचरण) की जैन शिक्षा के इस युग का अंतिम पथ प्रदर्शक मानते हैं. हालांकि परंपरागत रूप से इनका समय 599–527 ई.पू. माना जाता है, महावीर को बुद्ध का लगभग समकालीन माना जाना चाहिए, जिनके समय का वर्तमान शोधकर्ताओं ने पुनर्आकलन किया है, जो क़रीब एक सदी बाद फला–फूला. जैन धर्मग्रंथों में संरक्षित महावीर के जीवन का अनुश्रुत लेखा–जोखा उनकी जीवनी की रचना का आधार है और इससे उनके द्वारा स्थापित प्रारंभिक समुदाय के स्वरूप के बारे में कुछ निष्कर्ष निकालने में मदद मिलती है.

बुद्ध की तरह महावीर भी क्षत्रिय प्रमुख के बेटे थे. 30 वर्ष की आयु में उन्होंने संन्यासी बनने के लिए राजकुमार की पदवी त्याग दी. साढ़े बारह साल तक वह एकाकी और कठोर संन्यास के मार्ग पर चलते रहे; एक समय घोषाल ने उनका साथ दिया, जिन्होंने बाद में आजीवक संप्रदाय की स्थापना की और परमज्ञान प्राप्त किया. महावीर ने तब

11 शिष्यों (गणधरों) का धर्मांतरण किया, जो मूल रूप से कर्मकांडी शिक्षा के प्रतिपादक ब्राह्मण थे. माना जाता है कि महावीर की मृत्यु आधुनिक पटना के निकट पावापुरी में हुई.

ज्ञात होता है कि इस समुदाय में तेज़ी से वृद्धि हुई. जैन इतिहास के अनुसार, महावीर की मृत्यु के समय 14 हज़ार साधु और 36 हज़ार साध्वियां थीं. शुरू से ही इस समुदाय में कई विभाजन हुए. एकमात्र विभाजन, जो स्थायी रहा, संघ के आचरण से संबद्ध था. श्वेतांबरों (सफ़ेद परिधान वाले) का आग्रह था कि साधु और साध्वियों को सफ़ेद वस्त्र धारण करने चाहिए, जबकि दिगंबरों (नग्न) का मानना था कि सच्चा साधु (लेकिन साध्वी नहीं) नग्न होना चाहिए. इस विवाद से यह बहस भी छिड़ी थी कि क्या आत्मा (जीव) स्त्री शरीर से मुक्ति पा सकती है (जिसकी संभावना से दिगंबरों ने इनकार किया).

श्वेतांबर–दिगंबर विभाजन को मज़बूत करने का महत्त्वपूर्ण कारक शायद महावीर की मृत्यु के बाद लंबे समय तक मौखिक रूप में हस्तांतरित शिक्षा को संहिताबद्ध करने और जैन धर्मग्रंथों में लिखकर संरक्षित करने के लिए आयोजित परिषदें रहीं. जैन इतिहास में दर्ज इन परिषदों में से एक सौराष्ट्र (आधुनिक गुजरात) में वल्लभी में 453 या 456 ई. में आयोजित अंतिम परिषद श्वेतांबर धर्मग्रंथों को क्रमबद्ध करने के लिए उत्तरदायी थी, जो अब भी उपयोग में हैं. दिगंबर संघ इस संशोधन को इतना भ्रष्ट मानता है कि यह उसके अनुसार नियामक नहीं हो सकता. इससे दोनों समुदायों के बीच विभाजन अटल हो गया.

इस काल में जैन धर्म अपने उद्गम स्थल से पश्चिम की ओर उज्जैन तक फैल गया, जहां ऐसा प्रतीत होता है इसे राजकीय संरक्षण मिला. प्रारंभिक जैन धर्म, विशेष रूप से जनसाधारण के बारे में शुरुआती पुरातत्वीय और शिलालेखीय प्रमाण मथुरा नगर से प्राप्त हुए, जो पश्मिचोत्तर व्यापार मार्ग का महत्त्वपूर्ण केंद्र था. गुप्त वंश (320–600 ई.) के शासनकाल में हिंदुओं द्वारा अपनी सत्ता के आग्रह के समय बड़ी संख्या में जैन अनुयायी मध्य एवं पश्चिम भारत चले गए, वे वहां अपने उद्गम स्थल गंगा के बेसिन की अपेक्षा ज़्यादा मज़बूत हो गए.

प्रारंभिक मध्यकालीन विकास (500–1100 ई.)

साझा युग के पहले से दक्षिण भारत में जैन भिक्षुओं की उपस्थिति के बारे में शैल गुफ़ाओं के रूप में पुरातत्वीय प्रमाण मिले हैं; दिगंबर संप्रदाय की लगभग दो सहस्राब्दियों से उस क्षेत्र में (वर्तमान कर्नाटक) महत्त्वपूर्ण उपस्थिति रही है. प्रारंभिक मध्य काल में दिगंबर जैन इस क्षेत्र और पड़ोसी तमिलनाडु में सबसे ज़्यादा फले–फूले. इन शताब्दियों के दौरान दिगंबरों ने तीन मुख्य राजवंशों के प्रमुख राजाओं का संरक्षण प्राप्त किया, कर्नाटक में गंग (तीसरी और ग्यारहवीं शताब्दी); राष्ट्रकूट, जिनका राज्य गंग राज्य के एकदम उत्तर में था (आठवीं से बारहवीं शताब्दी); और कर्नाटक में होयसल (11वीं से 14वीं शताब्दी). दिगंबर साधु गंग और होयसल राजवंश में

उत्तराधिकार को प्रभावित करने के लिए प्रसिद्ध थे, इस तरह अनिश्चित राजनीतिक स्थिति को स्थिर करके वे जैनों के लिए राजनीतिक संरक्षण और समर्थन निश्चित करते थे. बहुतायत में प्राप्त पुरालेखीय प्रमाणों में व्यापक संरक्षण व्यवस्था का ब्योरा है, जिसके तहत राजा, रानी, राज्यमंत्री तथा सेनापति जैन समुदाय को कर राजस्व, मंदिरों के निर्माण और रखरखाव के लिए अनुदान देते थे. इसका प्रसिद्ध उदाहरण है, 10वीं सदी में गंग सेनापति चामुंडराय द्वारा श्रवणबेलगोला में बाहुबली (स्थानीय रूप से गोमतेश्वर कहे जाने वाले; पहले तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र) की विशाल मूर्ति के निर्माण की निगरानी.

उत्तर भारत में लगता है श्वेतांबर दक्षिण के दिगंबरों की तुलना में राजवंश की राजनीति में कम उलझे. लेकिन गुजरात और राजस्थान में ऐसी गतिविधियों के प्रमाण मिलते हैं, जिनमें अनुकूल राजाओं के सत्तारूढ़ होने के लिए उनके द्वारा सहायता दी गई, जैसे आठवीं सदी में वनराज और 12वीं सदी में कुमारपाल, जिनके राज्यारोहण के पीछे महान श्वेतांबर विद्वान और राज्यमंत्री हेमचंद्र का हाथ था.

हालांकि महावीर ने उस जाति प्रथा को अस्वीकार कर दिया था, जिसमें जन्मजात पवित्रता के आधार पर ब्राह्मण को विशेषाधिकार प्राप्त था, फिर भी दक्षिण में दिगंबर जैन समाज में धीरे–धीरे एक औपचारिक जाति व्यवस्था शुरू हो गई. जैन जाति व्यवस्था हिंदू व्यवस्था से इस तरह भिन्न थी कि इसमें क्षत्रियों को ब्राह्मणों से ऊपर स्थान दिया गया था और कम से कम सैद्धांतिक रूप से पवित्रता को कर्मकांडी स्रोत के बजाय नैतिकता से जोड़ा गया.

उत्तर मध्यकालीन और प्रारंभिक आधुनिककालीन विकास (1100–1800)

अपने सबसे अधिक प्रभाव की अवधि (छठी–बारहवीं शताब्दी) में दोनों संप्रदायों के जैन साधु काफ़ी हद तक भ्रमणशील नहीं रहे और शायद अत्यधिक जन संरक्षण के कारण मंदिरों या संघ आवासों के स्थायी निवासी बनने लगे. इसके अवशेष इस समय भट्टारक दिगंबर प्रथा में देखे जा सकते हैं, जिसमें एक पुरोहित, जो संघीय दीक्षा लेता है, लेकिन एक नग्न भ्रमणशील साधु का जीवन बिताने के बजाय तीर्थों और मंदिरों का भगवा वस्त्रधारी प्रशासक व संरक्षक बना रहता है. कुछ मध्यकालीन जैन लेखकों ने प्राचीन आध्यात्मिक आवश्यकताओं की क़ीमत पर इस समझौते को इस धर्म के दुर्जेय पतन का कारण और सबूत, दोनों माना. लेकिन भारत में जैन धर्म के क्रमशः हाशिये पर खिसकने के सामाजिक–राजनीतिक कारण ही रहे.

श्वेतांबर जैन समुदाय के पतन में तेज़ी 12वीं सदी में उत्तरी भारत में तुर्क अफ़ग़ान मुस्लिम आक्रमणों के कारण आई. शुरू से ही अत्याचार होने लगे, जिनमें महत्त्वपूर्ण मंदिरों की लूट शामिल है. लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण था, राजनीतिक नियंत्रण अचानक विदेशी हाथ में चले जाना, जिसके परिणामस्वरूप जैन धर्म का सत्ता के स्रोत से सीधा संपर्क टूट गया. हालांकि मुस्लिम शासकों के मंत्रियों और मुग़ल बादशाह अकबर के सलाहकार हीरविजय (16वीं सदी) जैसे मुनियों के महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं, लेकिन

श्वेतांबर समुदाय को धीरे–धीरे अपने को प्रायः व्यापारी समूह मात्र के रूप में पुनर्परिभाषित करने के लिए बाध्य होना पड़ा. ऐसा ही आज भी है.

लगभग इसी अवधि में स्थानीय और शिक्षक संघ के आधार पर कई श्वेतांबर मठ उपसंप्रदायों (गच्छों) का उदय हुआ. इनके नेताओं ने अपने को निर्विवाद रूप से शिथिल संघ आचरण का सुधारक माना. इनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण उपसंप्रदाय अब भी अस्तित्व में है, जैसे खरतारा गच्छ (11वीं सदी में स्थापित) और तप गच्छ (13वीं सदी में स्थापित). जनसाधारण को भी शामिल करने वाले इन गच्छों के बीच अक्सर वंशावली, अनुष्ठान व पवित्र पंचाग के मुद्दों पर स्पष्ट मतभेद रहे और इनमें से प्रत्येक सच्चे जैन धर्म का प्रतिनिधि होने का दावा करता था. इतिहास के अनुसार, उनके प्रमुख गुरु पश्चिम भारत में राजपूत जाति के धर्मांतरण में भी शामिल थे, जो अंततः श्वेतांबर जैन जाति समूह बन गया. ये सभी गच्छ तीर्थंकरों की मूर्तियों की पूजा करते हैं.

दक्षिण भारत में श्वेतांबर जैन धर्म पर, कुलीन वर्ग में इसके प्रभाव के बावजूद पुनर्जीवित हिंदू भक्ति आंदोलन ने प्रहार किया, जो तमिलनाडु में छठी शताब्दी से ही शुरू हो गया था. 14वीं सदी में विजयनगर साम्राज्य के उदय के साथ ही दिगंबर जैनों ने काफ़ी हद तक अपना राजकीय संरक्षण खोना शुरू कर दिया और केवल दक्षिण–पूर्व के बाहरी इलाक़ों तथा उत्तर में कुछ स्थानों तक सीमित रह गए. श्वेतांबरों की तरह ही दिगंबर संप्रदाय का आम आदमी अपने समुदाय की पतनशील स्थिति का कड़ा आलोचक था. सबसे महत्त्वपूर्ण दिगंबर सुधार आंदोलन 16वीं सदी के अंत में शुरू हुआ, जिसका नेतृत्व किसी धर्माधिकारी ने नहीं, बल्कि एक सामान्य कवि बनारसीदास ने किया. इस आंदोलन ने दिगंबर मंदिर अनुष्ठानों के कथित खोखलेपन और समुदाय के धार्मिक नेताओं की फ़िज़ूलख़र्ची पर प्रहार किया और जैन मार्ग के रहस्यवादी तत्त्वों पर ज़ोर दिया.

आधुनिक जैन इतिहास

19वीं सदी के मध्य तक मूर्तिपूजक श्वेतांबर जैन संघ वंशावली लगभग विलीन हो गई थी. अनुष्ठान अधिकार और मंदिरों का नियंत्रण यति कहलाने वाले अर्धसंघीय पुरोहितों के हाथ में आ गया. लेकिन मठदीक्षा व शिक्षा का पुनरुत्थान आत्मारामजी जैसे करिश्माई साधुओं के तत्वावधान में हुआ और श्वेतांबर मूर्तिपूजक साधुओं के समुदाय में विस्तार हुआ. संख्या के हिसाब से तप गच्छ सबसे प्रभावशाली संप्रदाय है. गै़र मूर्तिपूजक श्वेतांबर संप्रदाय स्थानकवासियों और तेरापंथियों की संख्या कम है.

ध्यानमग्न महावीर का चित्र

दिगंबर संघ ने भी 20वीं सदी के प्रारंभ में अपनी विचारधारा का पुनरुत्थान देखा, जिनमें महान मुनि आचार्य शांतिसागर की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, जिनके वंशज होने का दावा लगभग सभी 120 वर्तमान दिगंबर साधक करते हैं.

हाल के वर्षों में भारत में श्वेतांबर और दिगंबर संप्रदायों ने मंदिरों के रखरखाव और अपनी धार्मिक पुस्तकों के संस्करण छापने में ज़्यादातर ऊर्जा लगाई है. जैन लोग एक समृद्ध सामाजिक समूह के रूप में आम कल्याण कार्यों में भी शामिल होते रहे हैं, जैसे 1980 के दशक में गुजरात में सूखा राहत, जैन विधवाओं और ग़रीबों को राहत व हत्या से बचाने के लिए बूढ़े जानवरों के आश्रय स्थलों का रखरखाव, जिसे अहिंसा का कार्य माना जाता है. प्राचीन व्यापार संपर्कों के कारण पश्चिमी भारत के कई जैन पूर्वी अफ़्रीकी देशों, विशेषकर केन्या और युगांडा में बस गए. 1960 के दशक की राजनीतिक अस्थिरता ने उन्हें पहले इंग्लैंड में बसने को बाध्य किया, जहां भारत के बाहर पहला जैन मंदिर लीकेस्टर में निर्मित किया गया; फिर ज़्यादातर अमेरिका और कनाडा में बसने लगे, जहां उन्होंने सफलतापूर्वक अपना परंपरागत व्यापार तथा व्यावसायिक पेशा चलाया. अपनी पहचान बनाए रखने की तीव्र इच्छा के कारण उन्होंने 1970 एवं 1980 के दशकों के दौरान जैन समाज (यूरोप) और उत्तरी अमेरिका में *फ़ेडरेशन ऑफ़ जैन एसोसिएशंस* जैसे व्यापक संगठनों की स्थापना की. *जैन डाइजेस्ट* और *जैन स्पिरिट* जैसे नियमित अंग्रेज़ी भाषा के प्रकाशनों के माध्यम से भारत के बाहर का जैन समुदाय अपने विचार, वर्तमान जैन आदर्शों, जैसे अहिंसा, शाकाहार तथा हाल में पर्यावरणवाद को समुदाय के युवा वर्ग और अन्य के बीच आधुनिक संदर्भ में प्रसारित करने में सफल रहा है.

जैन आख्यान में महत्त्वपूर्ण व्यक्ति

जैनों ने अनुश्रुत इतिहास का अपना वृत्तांत विकसित किया, जिसे '63 विख्यात व्यक्तियों के कार्य' (*डीड़ज़ ऑफ़ द 63 इलस्ट्रियस मेन*) या पश्चिमी विद्वानों द्वारा 'वैश्विक इतिहास' कहा जाता है. इनमें निस्संदेह 24 तीर्थंकर सबसे महत्त्वपूर्ण हैं, जो परिपूर्ण मानव हैं और समय–समय पर जैन धर्म मार्ग की शिक्षा व इसे मूर्त रूप देते रहे हैं. इनके कुछ नायक हिंदू धर्म में भी पाए जाते हैं; मुख्य रूप से कृष्ण, जिन्हें जैन 22वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि का चचेरा भाई मानते हैं और महानायक राम, जिन्हें उनकी कहानी के 16 प्रमुख पुनर्व्याख्यानों में पवित्र अहिंसक जैन बताया गया है. ऐसे महत्त्वपूर्ण हिंदू व्यक्तियों को शामिल और पुनर्परिभाषित करके जैन आसपास के हिंदू जगत का हिस्सा तथा भिन्न स्वरूप, दोनों बने रहने में सफल रहे.

जैन धर्म के सिद्धांत

जैन धर्म का लक्ष्य आत्मा (जीव) की पूर्ण पराकाष्ठा और शुद्धिकरण है. यह तभी हो सकता है, जब आत्मा सतत मोक्ष और सांसारिक मोह से निस्पृहता की स्थिति में हो.

यथार्थ की जैन अवधारणा जटिल है. इसकी विशेषता उत्पत्ति, परिवर्तन व क्षय है, जो सहज स्थायित्व (हिंदुओं के लिए) और अस्थायित्व (बौद्धों के लिए) के विपरीत है. विश्व शाश्वत और 'अज' (किसी के द्वारा निर्मित नहीं) है. इसके कारक पांच द्रव्य हैं : आत्मा, पदार्थ, अंतरिक्ष, गति के सिद्धांत और गति संरोध व दिगंबरों के लिए, समय. ये भी शाश्वत और अविनाशी हैं, लेकिन इनकी स्थितियां लगातार बदलती रहती हैं.

जैन यथार्थ का निर्माण जीव (आत्मा, जीवित द्रव्य) और अजीव (आत्मा रहित, निर्जीव द्रव्य) द्वारा होता है. जीव के अलावा सभी निर्जीव हैं; चार तत्त्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु) में भी आत्मा का निवास है. जीव की अनिवार्य विशेषताएं हैं, चेतना, सुख, और वीर्य (ऊर्जा). जीव निराकार व लिंगरहित होता है और इंद्रियों से इसका प्रत्यक्ष आभास नहीं होता. ब्रह्मांड की तरह इसकी उत्पत्ति और समाप्ति (विनाश) का कोई निश्चित बिंदु नहीं है. आत्मा जिस शरीर में प्रवेश करती है, उसका आयाम ले लेती है, लेकिन यह उस शरीर के समरूप नहीं होती. मृत्यु पर यह उस अंतिम भौतिक काया का आधार धारण करती है, जिसमें इसका निवास है.

सभी घटनाएं कार्य—कारण की वैश्विक श्रृंखला से आपस में जुड़ी होती हैं. स्वभाव से सभी आत्माएं पवित्र होती हैं, उनमें अनंत ज्ञान, सुख और शक्ति होती है; लेकिन इन क्षमताओं को आत्मा के संपर्क में आने वाले पदार्थ हर समय कुंठित करते रहते हैं. इस प्रकार आत्मा की मुक्ति को कर्मों का संचयन अवरुद्ध करता है. ये कर्म मनुष्य के कार्यों से उत्पन्न उपादान के अंश हैं, ये स्वयं को आत्मा से जोड़ लेते हैं और परिणामस्वरूप उसको कई जन्मों द्वारा भौतिक शरीर से बांध देते हैं. ये आत्मज्ञान और आत्मा की मुक्ति में बाधा पहुंचाते हैं.

अजीव दो वर्गों में बांटे गए हैं : संवेदी और पदार्थ व असंवेदी और अपदार्थ. पदार्थ (पुद्गल) की विशेषताएं स्पर्श, स्वाद, गंध और रंग हैं. इसकी आवश्यक विशिष्टता चेतना का न होना है. पदार्थ की सबसे छोटी इकाई परमाणु है. ताप, प्रकाश और छाया उत्तम पदार्थ के रूप हैं.

असंवेदी और अपदार्थ की विशेषता द्रव्य गति के सिद्धांत, इसके संरोध, अंतरिक्ष और समय हैं. ये हमेशा शुद्ध होते हैं, जिन्हें दूषित नहीं किया जा सकता. गति के सिद्धांत और इसका संरोध विश्व में व्याप्त है; इनका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है, लेकिन किसी भी वस्तु की गति या संरोध के लिए ये अनिवार्य पूर्वशर्त हैं. अंतरिक्ष अनंत, सर्वव्याप्त और आकारहीन है व पूरे संसार को स्थान देता है. यह प्रयुक्त (संसार, जिसे लोक कहते हैं) और अप्रयुक्त (अलोक, असंसार), जहां कुछ भी विद्यमान नहीं है, इन दो हिस्सों में विभाजित है.

जैनों के अनुसार, समय अनंत और आकारविहीन है. इसकी तुलना 12 तीलियों (अरों) वाले चक्र से की जाती है, जो कल्प के बराबर हैं, छह आरोही चाप और छह अवरोही चाप बनाते हैं. आरोही चाप में मनुष्य के ज्ञान, आयु, क़द (गुणवत्ता) और हर्ष में वृद्धि

होती है, जबकि अवरोही चाप में उनका ह्रास होता है. ये दोनों आवर्तक जुड़कर समय के चक्र का एक चक्कर बनाते हैं, जिसे एक कल्प कहा जाता है. ये कल्प आदि या अंत के बिना चलते रहते हैं.

मोक्ष में प्रयुक्त ज्ञान के सिद्धांत

जैन विचारधारा में पांच प्रकार के ज्ञान होते हैं. इनमें कैवल्य सर्वज्ञान की स्थिति है. *कैवल्य* कार्मिक बाधाओं से मुक्ति का परिणाम है. सर्वज्ञान मुक्त जीव का प्रधान गुण है और इसकी शुद्धता का प्रतीक भी; इस प्रकार एक मुक्त आत्मा, जैसे तीर्थंकर, केवलिन (सर्वज्ञाता) कही जाती है. लेकिन सभी केवलिन तीर्थंकर नहीं हैं : तीर्थंकर बनने के लिए एक विशेष प्रकार के विकास की आवश्यकता होती है. सर्वज्ञान से कम कोई भी ज्ञान अपूर्ण है.

जैन धर्म के अनुसार, साधु का शारीरिक और मानसिक अनुशासन यानी सर्वज्ञान और इस प्रकार मोक्ष प्राप्त करने का साधन 'योग' है. योग यथार्थ के सही ज्ञान, तीर्थंकरों की शिक्षा में आस्था और शुद्ध आचरण का परिवर्धन है; इस तरह यह तीन रत्नों (रत्नत्रय) सही ज्ञान, आस्था और सही आचरण क्रमशः *सम्यक ज्ञान, सम्यक दर्शन तथा सम्यक चरित्र* से घनिष्ठ रूप से संबद्ध है.

जैन नीतिशास्त्र

ये तीन रत्न जैन सैद्धांत और नीतिशास्त्र संबंधी अवस्थिति का आधार बनाते हैं. सम्यक ज्ञान, दर्शन और चरित्र एक साथ परिवर्द्धित किए जाने चाहिए; इनमें से कोई भी दूसरे की अनुपस्थिति में प्राप्त नहीं किया जा सकता है. सम्यक दर्शन शांति, अनासक्ति, दया और जन्म का गर्व, रूप, धन, विद्वता, पराक्रम और प्रसिद्धि के परित्याग का रास्ता दिखाता है, लेकिन तभी जब इसका अनुसरण सम्यक चरित्र से किया जाए. लेकिन सम्यक ज्ञान के बिना कोई अच्छा आचरण नहीं किया जा सकता, यही अहम् और परम के बीच के भेद को स्पष्ट करता है. धर्मग्रंथों का ज्ञान अंतर्ज्ञान से अलग है. आस्था और आचरण के बिना ज्ञान व्यर्थ है. मन के शुद्धिकरण के बिना कड़ा संयम केवल शारीरिक यातना है. इस प्रकार सम्यक चरित्र एक नैसर्गिक गुण है, न कि जबरन की गई यांत्रिक क्रिया. सम्यक चरित्र की प्राप्ति एक क्रमिक प्रक्रिया है और गृहस्थ केवल आंशिक आत्मनियंत्रण का पालन कर सकता है; साधु बनने के बाद ही वह आचरण के अधिक व्यापक नियमों का पालन करने योग्य हो पाता है.

साधकों और जनसाधारण के लिए आचरण के दो अलग मार्ग निर्धारित किए गए हैं. दोनों मामलों में नैतिकता की संहिता अहिंसा के सिद्धांत पर आधारित है, क्योंकि विचार से क्रिया की उत्पत्ति होती है, इसलिए विचारों में हिंसा हिंसक व्यवहार की शुरुआत है.

इस तरह हिंसा का अधिक विशाल तथा जटिल रूप वैचारिक हिंसा है, क्योंकि यह आसक्ति व घृणा के विचारों से पैदा होती है और इसका आधार आवेगपूर्ण स्थिति है,

जो असावधान आचरण का परिणाम है. जैन धर्म सभी तरह के आघात पहुंचाने से बचने का आदेश देता है, चाहे यह शरीर, मन या वचन से किया गया हो. जैन धर्म 'अहिंसा परमो धर्मः' (अहिंसा सबसे बड़ा धार्मिक आचरण है) की शिक्षा का अनुमोदन करता है. जैनों के लिए यह सिद्धांत, जो अपने को सबसे स्पष्ट रूप से शाकाहारी स्वरूप में व्यक्त करता है, उनके धार्मिक संदेश का एकमात्र सबसे महत्त्वपूर्ण अवयव है. इस संदर्भ में महात्मा गांधी और एक सामान्य जैन धर्मावलंबी रायचंद्र भाई मेहता की मित्रता और पत्रों का आदान–प्रदान उल्लेखनीय है. गांधीजी मेहता से अपने विचारों के विनिमय को अहिंसा को राजनीतिक रणनीति के रूप में प्रयोग करने में प्रभावकारी मानते थे.

कर्मकांडी आचरण और धार्मिक व सामाजिक संस्थान

साधु और उनका आचरण

जैन सिद्धांत का मत है कि इस भ्रष्ट समय में कोई भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता. इस वजह से जैन संन्यासी तात्कालिक मोक्ष प्राप्ति का इतना प्रयास नहीं करते, जितना उस मानव पुनर्जन्म के लिए, जो उन्हें उसके निकटतर ले आएगा. यह पुनर्जन्म अनुशासित और श्रेष्ठ आचरण, यानी सभी जीवों के प्रति अहिंसा से प्राप्त होगा. श्वेतांबर अपने साधुओं को न्यूनतम वस्तुएं, जैसे एक परिधान, एक भिक्षा पात्र, एक चंवर और एक मुखवस्त्रिका (मुंह को ढकने वाला कपड़े का टुकड़ा, ताकि छोटे कीटाणु मुंह के अंदर जाकर मर न जाएं) रखने की अनुमति देता है, जिन्हें दीक्षा के समय एक वरिष्ठ मुनि प्रदान करते हैं. मूर्तिपूजक श्वेतांबरों के स्थानकवासियों और तेरापंथियों के लिए हर समय मुखवस्त्रिका धारण करना अनिवार्य है. वरिष्ठ गुरु द्वारा दीक्षा के बाद साधु को महाव्रतों का अवश्य पालन करना चाहिए : किसी जीव को चोट न पहुंचाना, झूठ न बोलना, चोरी न करना, संभोग न करना और निजी संपत्ति एकत्र न करना.

दिगंबरों में पूर्ण मुनि इसी प्रकार महाव्रतों का पालन करते हैं, लेकिन संपत्ति न रखने की शपथ की कठोर व्याख्या के अनुसार नग्न रहते है. निम्नतर स्तर के दिगंबर मुनि लंगोट पहनते हैं और अपने पास 1.3 मीटर से कम लंबे कपड़े का एक टुकड़ा रखते हैं. दिगंबर मुनि मोर पंख का चंवर और एक जलतुंबी का उपयोग करते हैं और दिन में केवल एक बार आहार ग्रहण करते हैं. वे जैन संघ परंपरा की अपनी व्याख्या को श्वेतांबरों की तुलना में प्राचीन प्रतिमान के ज़्यादा अनुरूप मानते हैं.

सभी जैन साधकों के लिए तीन गुप्तियों (विचार, वाणी और कर्म में संयम) और पांच समितियों (आचरण के बारे में एक प्रकार की सतर्कता) का पालन आवश्यक है. संघीय अनुष्ठान का एक ज़रूरी और नियमित हिस्सा हैं, 'आवश्यक' (छह अनिवार्य कर्म), जिनका आचरण वैसे तो प्रतिदिन लेकिन आनुष्ठानिक तिथिपत्र के महत्त्वपूर्ण काल में ज़रूर किया जाता है. ये हैं– धैर्य; तीर्थंकरों, गुरुओं और धर्मग्रंथों का आदर; पाप की

स्वीकारोक्ति; पापपूर्ण गतिविधियों से दूर रहने का संकल्प और 'देह को महत्त्व न देना', यानी ध्यान की मुद्रा में खड़े या बैठे रहना.

गुरु साधक के संयमों के स्वरूप, उनके आचरण की अवधि व उनकी कठोरता का सावधानीपूर्वक नियमन करता है और उनके आध्यात्मिक विकास, संयम बरतने की क्षमता तथा उस अवधि में आध्यात्मिक विकास में इन्होंने किस प्रकार सहायता दी, यह समझने की उनकी क्षमता की निगरानी करता है. मुनि के कठोर संयम की सैद्धांतिक परिणति 'सल्लेखन' क्रिया है, जिसमें वह कंटीली घास के बिस्तर पर एक करवट लेटा रहता है, हिलता–डुलता नहीं और न ही भोजन करता है. आनुष्ठानिक उपवास की यह क्रिया अनासक्ति का चरम है, जिसके द्वारा अपनी आत्मा के हित में वह शरीर त्याग देता है. जैन विचारधारा इसे परम आत्मनियंत्रण की सकारात्मक क्रिया मानती है, जिसमें आवेग की कोई भूमिका नहीं और जो इसे 'बेवकूफ़ी की मौत' या आत्महत्या से अलग करती है. प्राचीन और मध्यकालीन समय में 'सल्लेखन' का व्यापक अनुसरण होता था, लेकिन वर्तमान में इसका बहुत कम प्रचलन है.

श्वेतांबर और दिगंबर, दोनों साध्वियों को दीक्षा की अनुमति देते हैं; श्वेतांबर समुदाय में साध्वियों की संख्या साधकों से क़रीब तिगुनी है. अक्सर आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने के बावजूद विद्वान जैन साध्वियों का दर्जा साधकों की तुलना में छोटा होता है. उन्हें परंपरा और धार्मिक अनुबंध के तहत साधुओं की बात माननी होती है. दिगंबर जैन धर्म में चीवर धारण करने वाली साध्वियां संन्यास मार्ग पर गंभीरता से आगे बढ़ने के लिए पुरुष–रूप में पुनर्जन्म की आवश्यकता स्वीकारती हैं (जिसके लिए उनके समुदाय में नग्नता को ज़रूरी माना गया है).

जनसाधारण की धार्मिक गतिविधियां

प्रारंभिक काल से ही जैन साहित्य में धर्म का चित्रण अधिकतर दीक्षित मुनियों और उनके विचारों पर केंद्रित है. लेकिन यह स्पष्ट है कि लगभग जैन धर्म की शुरुआत से ही संघ को समर्थन देने वाला जनसाधारण समुदाय रहा है और धर्म के पूरे इतिहास में अधिकतर जैनों ने सामान्य जीवन व्यतीत किया है, मध्य काल वह समय है, जिसमें जनसाधारण की भूमिका पर विशेष रूप से श्वेतांबर और दिगंबर संघीय बुद्धिजीवियों ने गहन चिंतन किया. लगभग पांचवीं से सत्रहवीं सदी तक कई ग्रंथ लिखे गए, जिनमें आम आदमी के धार्मिक आचरण और संकल्पों पर चर्चा की गई है. इन लेखों के अनुसार, आम आदमी को आदर्श रूप से संन्यासी महाव्रतों की आवश्यकताओं को प्रतिबिंबित करने वाली आचरण शैली का पालन करना चाहिए. फिर भी सैद्धांतिक दृष्टि से यह माना गया कि संन्यास मार्ग के अनुसरण से कर्म नष्ट हो सकते हैं, जबकि सामान्य मार्ग के संकल्पों से केवल नए कर्मों से बचा जा सकता है और इस प्रकार व्यक्ति की कार्मिक स्थिति में बुनियादी परिवर्तन नहीं आता.

आम आदमी (जिसका अभिप्राय निरपवाद रूप से पुरुष है) को आठ प्राथमिक व्यावहारिक गुणों (भिन्नता के बावजूद आमतौर पर इसमें मांस, मदिरा, शहद, ऐसे फल या कंद,

जिनमें जीवों का वास माना जाता हैं और रात के समय भोजन न करना शामिल हैं) और 12 व्रत : पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत का पालन अनिवार्य है. अणुव्रत (लघुव्रत) में घोर हिंसा, असत्य और चोरी से परहेज़, अपनी पत्नी से संतुष्टि और सीमित संपत्ति रखना शामिल है. अन्य व्रत–समूह पूरक स्वभाव के हैं, जिनका उद्देश्य अणुव्रत को सुदृढ़ बनाना और उनकी रक्षा करना है. इनमें अनावश्यक यात्रा, हानिकारक गतिविधियों और सुख की खोज से बचना; उपवास और पथ्य नियंत्रण; साधुओं ग़रीबों और साथी धर्मावलंबियों को उपहार व सेवा प्रदान करना शामिल हैं. जनसाधारण के लिए नियमित अंतराल में 'आवश्यक' का पालन करना ज़रूरी है.

विशिष्ट रूप से जैन व्यक्ति के जीवन की विशेषता शुद्ध शाकाहार, अनुशासित व्यापार या व्यावसायिक गतिविधियों और पारिवारिक मामलों के ज़िम्मेदारीपूर्वक निर्वहन द्वारा ठोस सामाजिक प्रतिष्ठा हासिल करना है. साथ ही धार्मिक मामलों, विशेषकर अहिंसा के प्रति पवित्र और गंभीर दृष्टिकोण होना चाहिए. जैन मानते हैं कि उपवास या धर्मार्थ कार्यों के लिए धन के दान से प्राप्त पुण्यों से न केवल व्यक्ति मोक्ष के मार्ग पर कुछ और आगे बढ़ेगा, बल्कि उसकी वर्तमान भौतिक स्थिति भी सुधरेगी. इससे जैन जनसाधारण की अति समृद्धि और मुनियों व साध्वियों के आत्मत्याग के बीच स्पष्ट विषमता समझी जा सकती है. आज तक जैन धर्म में जन्म और विवाह जैसे आयोजनों के लिए कोई विशिष्ट जीवनचक्र–संबंधी अनुष्ठान विकसित करने का प्रयास नहीं किया गया, हालांकि नौवीं शताब्दी में दिगंबर साधुओं ने इसके नियम बनाने के प्रयास किए थे. आमतौर पर प्रचलित स्थानीय रिवाजों के अनुरूप आचरण किया गया, बशर्ते यह मूल जैन सिद्धांतों का उल्लंघन न हो.

मूर्तिपूजा

प्रारंभिक मूल पाठों में मंदिर पूजा का उल्लेख है, जिसमें देवताओं को स्वर्गीय शाश्वत मंदिरों में तीर्थंकर की मूर्तियों और अवशेषों को श्रद्धांजलि अर्पित करते दिखाया गया है. यद्यपि संभवतः महावीर ने मूर्तिपूजा के बारे में कोई वक्तव्य नहीं दिया, लेकिन शीघ्र ही यह धर्म मार्ग के रूप में जैन धर्म की महत्त्वपूर्ण प्रथा हो गई. मथुरा में एक जैन स्तूप के उत्खनन में प्रारंभिक 'साझा कल्प' की, बैठी और खड़ी मुद्रा में तीर्थंकरों की कई मूर्तियां पाई गईं हैं. पूजा जनसाधारण के अनिवार्य अनुष्ठानों से घनिष्ठ रूप से संबद्ध है और सभी मुक्त आत्माओं, मुनियों व धर्मग्रंथों की पूजा की जा सकती है. लेकिन अधिकांश जैनों में, जो मूर्तिपूजक हैं, तीर्थंकर की मूर्ति ज़्यादातर पूजी जाती है. हालांकि तीर्थंकरों का इन चढ़ावों तथा पूजा से कोई सरोकार नहीं होता और पुनर्जन्म के बंधन से मुक्त होने के कारण वे कोई सहायता भी नहीं दे सकते, लेकिन यह भक्तिपूर्ण क्रिया इन मूर्तिपूजकों के लिए चिंतनशील अनुशासन का माध्यम है. सभी संप्रदायों के साधक और साधिकाएं भौतिक पूजा के बिना आंतरिक व मानसिक रूप में भी पूजा कर सकते हैं. स्थानकवासी और तेरापंथी श्वेतांबर जैन संप्रदाय मूर्तिपूजा की विश्वसनीयता को पूर्णतः नकारते हैं.

जैन धर्मग्रंथ संग्रह

जैन धर्म के पवित्र ग्रंथ, जिनकी प्रामाणिकता के बारे में संप्रदायों के बीच विवाद है. श्वेतांबर धर्मग्रंथों में मुख्य रूप से 45 रचनाएं हैं, जो निम्न रूप से विभाजित हैं : (1) 11 *अंग,* मुख्य मूल पाठ, 12वां क़रीब 14 शताब्दियों से खोया हुआ है; (2) 12 *उपांग* या सहायक मूल पाठ; (3) 10 *प्रकीर्णक* या विविध मूल पाठ; (4) *छह चेद–सूत्र,* संन्यासी जीवन के नियमों पर; (5) दो *चूलिका–सूत्र,* बोध व ज्ञान मीमांसा पर; और (6) चार *मूल–सूत्र,* विविध विषयों पर. लेकिन श्वेतांबर मूल रूप से 71 रचनाओं के धर्मग्रंथ संग्रह को स्वीकारते हैं, जो कथित रूप से पांचवीं सदी की वलभी धर्म परिषद से संबद्ध हैं.

श्वेतांबर रचनाओं में तीर्थंकर या जिनों (जैन रक्षक) की सूची, इनके महाकार्य और उपदेश और सिद्धांत जैसे विविध विषय शामिल हैं. कुछ अंगों में अंतिम तीर्थंकर महावीर और उनके अनुयायियों के बीच तथाकथित संवाद शामिल हैं. अन्य में, कहा जाता है कि धर्मग्रंथों के कुछ प्रारंभिक हिस्से हैं, जिन्हें लगता है कि मूल रूप में मौखिक रूप में सुरक्षित रखा गया. धर्मग्रंथ प्राकृत बोली में लिखे हुए हैं, हालांकि गुप्त काल से (चौथी– छठी सदी) जैन लेखकों ने व्यापक श्रोताओं, पाठकों के लिए संस्कृत भाषा का प्रयोग किया.

दिगंबर संप्रदाय समग्र श्वेतांबर धर्मग्रंथों की प्रामाणिकता पर प्रश्न चिह्न लगाते हैं. दिगंबरों का विश्वास है कि मूल ग्रंथ खो गए हैं, लेकिन जैन सिद्धांत का सार विभिन्न धार्मिक और दार्शनिक पुस्तकों मे संरक्षित है, जिन्हें कई सदियों के दौरान जैन समुदाय के विभिन्न विद्वानों और अग्रणी पुरुषों ने लिखा है.

जैन मंदिर

जैन समुदाय द्वारा निर्मित मंदिर. जैन धर्म में मंदिर निर्माण और ग्रंथों का दान पवित्र कार्य माने जाते हैं. जैनों के अधिकतर गांवों या नगरों में कम से कम एक जैन मंदिर होता है; कुछ तो तीर्थस्थल बन गए हैं. इन मंदिरों की सूचियां तैयार की गई हैं और दैनिक पूजा में प्रमुख मंदिरों की आराधना की जाती है.
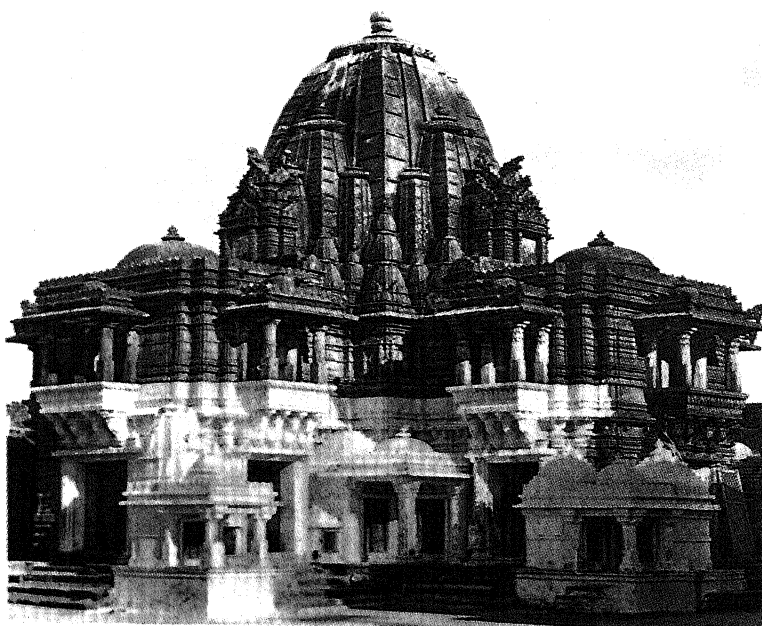
जैन मंदिर, शत्रुंजय, गुजरात
सौजन्य : गुजरात पर्यटन विभाग

तीर्थंकरों के जीवन की प्रमुख घटनाओं से जुड़े स्थानों को तीर्थस्थलों में परिणत किया गया है. बिहार में पारसनाथ पहाड़ी और राजगीर व काठियावाड़ प्रायद्वीप में शत्रुंजय और गिरनार पहाड़ियां ऐसे ही महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थलों में शामिल हैं. अन्य मंदिर, जो तीर्थस्थल बन गए हैं, कर्नाटक में श्रवणबेलगोला, राजस्थान में माउंट आबू व केसरियाजी और महाराष्ट्र के अकोला ज़िले में अंतरिक्ष पार्श्वनाथ हैं.

दूसरी सदी ई.पू. के काल के कई गुफ़ा मंदिरों की खोज और खुदाई की गई है. ये गुफ़ा मंदिर उड़ीसा में उदयगिरि और खंडगिरि; बिहार में राजगिरि; कर्नाटक में ऐहोल; महाराष्ट्र में एलोरा और तमिलनाडु में सित्तन्नावसल में पाए गए हैं.

जैन व्रत

जैन धर्म में कोई भी संकल्प, जो साधुओं और आम आदमी, दोनों की गतिविधियों को निर्धारित करता है. महाव्रतों या पांच महान संयमों का जीवन भर पालन केवल संन्यासी करते हैं. ये हैं : (1) अहिंसा, किसी भी जीव को चोट न पहुंचाना; (2) सत्य, झूठ न बोलना; (3) अस्तेय, चोरी न करना; (4) ब्रह्मचर्य, सात्विक रहना; और (5) अपरिग्रह, कोई व्यक्तिगत संपत्ति न रखना.

आम आदमी से गृहस्थ जीवन व्यतीत करते समय इन व्रतों के कड़ाई और संपूर्णता से पालन की अपेक्षा नहीं की जाती है. अगर वह आध्यात्मिक अनुशासन (गुणस्थान) के प्रारंभिक चरण से गुज़र चुका है, तो कुछ समय के लिए 12 व्रतों के पालन का संकल्प ले सकता है और अगर वह चाहे तो इस अवधि के पूरा होने पर अपना संकल्प दुहरा सकता है.

पहले पांच व्रतों को अणुव्रत (शाब्दिक अर्थ 'लघु', 'महा' के विपरीत), यानी आंशिक व्रत कहा जाता है. पांच महाव्रतों के हल्के स्वरूप हैं : घोर हिंसा, सफ़ेद झूठ व चोरी से परहेज़, अपनी पत्नी से संतुष्टि और सीमित संपत्ति. अन्य संयम हैं— तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत, जिनका उद्देश्य अणुव्रत के पालन में सहायता करना है. हालांकि इन आदेशों की सूचियां अलग–अलग हैं, इनमें आमतौर पर शामिल हैं : सीमित संचालन क्षेत्र, हानिकारक दंड से परहेज़, आनंद और आराम की वस्तुओं का सीमित उपयोग, धैर्य, साधु की तरह कभी–कभी उपवास व पथ्य नियंत्रण, साधुओं तथा अन्य को चढ़ावा, उपहार व सेवाएं प्रदान करना और जब भौतिक रूप से व्रतों का पालन असंभव हो जाए, तो उपवास (सल्लेखना) द्वारा स्वेच्छा से प्राण त्यागना.

जैन साहित्य

धर्मग्रंथ और टीका साहित्य

जैन धर्मग्रंथ एक ही अवधि में नहीं लिखे गए हैं और न ही कोई मूल पाठ बाद के परिवर्द्धनों या क्षेपकों से मुक्त है. जिनों की मूल शिक्षा 14 मूल पाठों, जिन्हें पूर्व कहा जाता है, में समाहित बताई जाती हैं, लेकिन ये अब खो चुके हैं. श्वेतांबर और दिगंबर

इस बात पर एकमत हैं कि ऐसा समय आएगा, जब जिनों की शिक्षा पूरी तरह विलुप्त हो जाएगी; तब जैन धर्म धरती से विलुप्त हो जाएगा और अगले कल्प में उचित समय पर फिर से प्रकट होगा. लेकिन दोनों समुदायों में इस बात पर मतभेद है कि जिनों की शिक्षा किस हद तक भ्रष्ट और लुप्त हो चुकी है. परिणामस्वरूप प्रत्येक समुदाय के मूल पाठ भिन्न हैं.

श्वेतांबर अपनी परंपरा के भंडार के रूप में व्यापक धर्मग्रंथ (आगम) का अनुसरण करते हैं, जिसे वे महावीर के शिष्यों द्वारा तीर्थंकर के उपदेशों के संकलनों पर आधारित मानते हैं. इस धर्मग्रंथ में महावीर की शिक्षा अपूर्ण ढंग से संरक्षित है, क्योंकि कालावधि में इसमें प्रक्षेपण और लोपन, दोनों हुए. श्वेतांबर धर्मग्रंथ समूह में आने वाले मूल पाठों की संख्या समय–समय पर तथा संघीय समूह के अनुसार अलग–अलग रही. पश्चिमी लेखकों ने यह संख्या 45 मानी, जिसे छह समूहों में बांटा गया.

दिगंबर संप्रदाय प्राकृत में लिखी दो रचनाओं, *कम्मपाहुड* (कर्मण पर अध्याय, *षटखंडागम*– इसमें कहीं–कहीं संस्कृत है –'छह खंडों का धर्मग्रंथ' भी कहलाता है) और *कसायपाहुड* (कषायों पर अध्याय) को धर्मग्रंथों का दर्जा देते हैं. *कम्मपाहुड*, जिसे लुप्त हो चुके दृष्टिवाद ग्रंथ पर आधारित माना जाता है, कर्म के सिद्धांत के बारे में बताता है, जिसे दूसरी सदी के मध्य में पुष्पदंत और भूतबली द्वारा लिखा माना जाता है. *कसायपाहुड*– गुणधर द्वारा लगभग इसी समय इसी स्रोत से संकलित –में आवेगों (कषायों) के बारे में बताया गया है, जो आत्मा को दूषित करते हैं और बंधन में डालते हैं.

जैन ग्रंथों को पढ़ने व सुनने से प्राप्त धार्मिक पुण्य इन धर्मग्रंथों के प्रेमपूर्वक और सावधानीपूर्वक संरक्षण को प्रोत्साहित करते हैं. जैनों ने भारतभर में परंपरागत तरीक़े से महत्त्वपूर्ण पुस्तकालयों का रखरखाव किया है, इनमें से श्वेतांबरों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण पुस्तकालय खंभात, जैसलमेर और पटना में और दिगंबरों के लिए कारंजा और मूडाबिद्री में है. जैन संघ पुस्तकालयों में संरक्षित ताड़पत्र और काग़ज़ी पांडुलिपियों पर लघु चित्रकारी पश्चिमी भारत में 11वीं सदी से अब तक की चित्रकला का सतत इतिहास बताती है.

दार्शनिक और अन्य साहित्य

धर्मग्रंथों और टीकाओं के अतिरिक्त श्वेतांबर और दिगंबर संप्रदायों ने दर्शनशास्त्र, कविता, नाटक, व्याकरण, संगीत, गणित, औषधि, खगोलशास्त्र, ज्योतिष और वास्तुशिल्प के क्षेत्र में पुस्तकों का भंडार रचा है, जो कई भाषाओं में लिखा गया हैं.

जैन सिद्धांतों के विवरण में पूरे इतिहास के दौरान कोई ख़ास परिवर्तन नहीं आया और किसी बड़े दार्शनिक मतभेद ने जैन विद्वानों को उद्वेलित नहीं किया. पूरे मध्य काल के दौरान यह सुनिश्चित करने पर बल रहा कि धर्मग्रंथों के वक्तव्यों को तर्क के अनुरूप सिद्ध किया जा सके और हिंदू और बौद्धों के विरोधी दावों का खंडन किया जा सके.

जैसलमेर

शहर, पश्चिमी राजस्थान राज्य, पश्चिमोत्तर भारत. जोधपुर, बाड़मेर तथा फलोदी से सड़क मार्ग द्वारा जुड़ा यह शहर ऊन, चमड़ा, नमक, मुलतानी मिट्टी, ऊंट और भेड़ का व्यापार करने वाले कारवां का प्रमुख केंद्र है. पीले भूरे पत्थरों से निर्मित भवनों के लिए विख्यात जैसलमेर की स्थापना 1156 में राजपूतों (राजपूताना ऐतिहासिक क्षेत्र के योद्धा शासक) के सरदार रावल जैसल ने की थी. शहर के निकट एक पहाड़ी पर बने हुए इस दुर्ग में राजमहल, कई प्राचीन जैन मंदिर और ज्ञान भंडार नामक एक पुस्तकालय है, जिसमें प्राचीन संस्कृत तथा प्राकृत पांडुलिपियां रखी हुई हैं. यहां श्री सांगीदास बालकृष्ण गवर्नमेंट कॉलेज नामक एक महाविद्यालय है.

इसके आसपास का क्षेत्र, जो पहले एक रियासत था, लगभग पूरी तरह रेतीला बंजर इलाक़ा है और थार रेगिस्तान का एक हिस्सा है. यहां की एकमात्र नदी काकनी काफ़ी बड़े इलाक़े में फैल कर भिज झील का निर्माण करती है. ज्वार और बाजरा यहां की मुख्य फ़सलें हैं. बकरी, ऊंट, भेड़ और गायों का प्रजनन बड़े पैमाने पर किया जाता है; चूना–पत्थर, मुलतानी मिट्टी और जिप्सम का खनन होता है.

12वीं शताब्दी में जैसलमेर राज्य अपनी शक्ति के चरम पर था. आरंभिक 14वीं शताब्दी में दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन ख़लजी द्वारा राजधानी को नेस्तनाबूद किए जाने के बाद इसका पतन हो गया. बाद में यह मुग़ल सत्ता के अधीन हो गया और 1818 में इसने अंग्रेज़ों के साथ राजनीतिक संबंध क़ायम किए. 1949 में यह राजस्थान राज्य में शामिल हो गया. जनसंख्या (2001) शहर 58,286; ज़िला कुल 5,07,999.

जोग प्रपात

जरस्पा प्रपात भी कहलाता है, शरवती नदी का प्रपात, पश्चिमी कर्नाटक राज्य, दक्षिण– पश्चिमी भारत. जोग प्रपात अरब सागर में नदी के मुहाने के पास स्थित होनावर से 29 किमी प्रतिकूल दिशा में स्थित है. यह 253 मीटर की ऊंचाई से एक गहरी खाई में गिरता है और चार धाराओं में बंट जाता है, जिन्हें राजा या घोड़े की नाल, रोरर, रॉकेट और रानी या ला डेम ब्लांशे (गोरी महिला) कहा जाता है. यह प्रपात लोगों के आकर्षण का प्रमुख केंद्र है और इसे नदी के दोनों किनारों पर बने बंगलों से देखा जा सकता है. धारा में नीचे की ओर जोग में एक विशाल पनबिजली परियोजना स्थापित की गई है.

ज़ोजिला दर्रा

जम्मू–कश्मीर राज्य में हिमालयी दर्रा, उत्तर भारत. 3,529 मीटर की ऊंचाई पर स्थित ज़ोजिला दर्रे से होकर कश्मीर घाटी से एकमात्र सड़क पूर्वी दिशा में लद्दाख ज़िले में लेह व फिर और आगे तिब्बत तक जाती है. यद्यपि हिमालय की पश्चिमी धुरी पर घने वनों से आच्छादित यह दर्रा सबसे नीचे है, लेकिन दक्षिणी भाग में अत्यंत तीक्ष्ण ढलान वाला है.
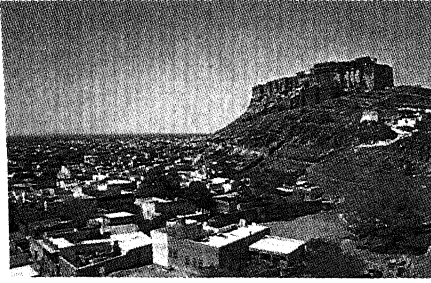
जोधपुर का क़िला, राजस्थान
फ़ोटो : केपिक्स– शोस्टल

जोधपुर

शहर, जोधपुर ज़िले का प्रशासनिक मुख्यालय, राजस्थान राज्य, पश्चिमोत्तर भारत. इसकी स्थापना एक राजपूत राव जोधा ने 1459 में की थी और यह भूतपूर्व जोधपुर रियासत की राजधानी था. शहर के कुछ हिस्से 18वीं शताब्दी के परकोटे से घिरे हुए हैं. यह दुर्ग, जिसमें महल और ऐतिहासिक संग्रहालय हैं, एक अलग–थलग, लेकिन ऊंची चट्टान पर बना हुआ है, जो दूर से ही दिखाई देता है. इसके ठीक उत्तर में मारवाड़ की प्राचीन राजधानी मंडौर के चौथी शताब्दी के अवशेष विद्यमान हैं.

प्रमुख सड़क और रेल जंक्शन वाला यह शहर कृषि उपज, ऊन, मवेशी, नमक और चमड़े का विपणन केंद्र है. यहां इंजीनियरिंग और रेल की कार्यशालाएं हैं व साथ ही सूती वस्त्र, पीतल तथा लोहे के बर्तन, साईकिल, स्याही और पोलो के उपकरणों का निर्माण होता है. जोधपुर अपने हस्तशिल्प उत्पादों के लिए प्रख्यात है, जिसमें हाथीदांत का सामान, कांच की चूड़ियां, छुरी–कांटा, रंगे हुए वस्त्र, लाख की वस्तुएं, नमदे, चमड़े का सामान, संगमरमर के पत्थर का काम और क़ालीनों की बुनाई प्रमुख है. राजस्थान के दूसरे सबसे बड़े शहर जोधपुर में राजस्थान राज्य का उच्च न्यायालय स्थित है. यहां अन्य संस्थानों के साथ–साथ जोधपुर विश्वविद्यालय, एम.बी.एम. इंजीनियरिंग कॉलेज, डॉक्टर एस.एन. मेडिकल कॉलेज, जे.डी. मेमोरियल फ़ैकल्टी ऑफ़ फ़ार्मेसी, गवर्नमेंट पॉलीटेक्निक कॉलेज और जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय (1962 में स्थापित) स्थित हैं.

जोधपुर ज़िला (22,860 वर्ग किमी) मुख्यतः ऊंचे रेतीले टीलों से घिरा बंजर इलाक़ा है, जिसे कभी–कभी मारवाड़ (मृत्यु का क्षेत्र) कहा जाता है. इसके उत्तरी और पश्चिमोत्तर क्षेत्र थार मरुस्थल का हिस्सा बनाते हैं. इस ज़िले में बहने वाली एकमात्र नदी लूनी ज़िले के दक्षिणी क्षेत्र को सींचती है. बाजरा, दलहन, ज्वार, तिलहन, मूंग और मक्का यहां की प्रमुख फ़सलें हैं; कुछ मात्रा में कपास और गेहूं की भी खेती होती है. यहां लिग्नाइट, लौह अयस्क, टंगस्टन, तामड़ा (गार्नेट), ग्लास–सैंड और जिप्सम का खनन होता है. इस ज़िले में कई मुर्ग़ीपालन केंद्र हैं और यहां भेड़, मवेशी तथा ऊंटों का प्रजनन भी होता है.

भूतपूर्व राजपूताना एजेंसी की सबसे बड़ी रियासत जोधपुर में वर्तमान जोधपुर ज़िले के साथ–साथ नागौर, पाली, जालौर और बाड़मेर ज़िले शामिल थे. इसकी स्थापना लगभग 1212 में हुई थी और राव मालदेव (1532–69) के शासनकाल में यह अपनी शक्ति के चरम पर था. 1561 में मुग़ल बादशाह अकबर के आक्रमण के बाद इसने मुग़लों का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया. 1679 में मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब ने मारवाड़ पर हमला करके इसे लूटा और यहां के निवासियों को इस्लाम धर्म स्वीकार करने को मजबूर किया, लेकिन जोधपुर, जयपुर और उदयपुर की रियासतों ने गठबंधन बनाकर

मुसलमानों के नियंत्रण को रोके रखा. इसके बाद जयपुर और जोधपुर के राजकुमारों को उदयपुर परिवार के साथ वैवाहिक संबंध क़ायम करने का अधिकार (जो मुग़लों के साथ मित्रता के कारण समाप्त हो गया था) इस शर्त पर फिर से प्राप्त हो गया कि उदयपुर की राजकुमारियों से उत्पन्न बच्चे पहले उत्तराधिकारी होंगे. लेकिन इस शर्त से उत्पन्न झगड़ों के कारण अंततः यहां मराठों का प्रभुत्व क़ायम हो गया. 1818 में जोधपुर ब्रिटिश सत्ता के अंतर्गत आ गया. 1949 में यह राजस्थान राज्य में शामिल हो गया. जनसंख्या (2001) न.नि. क्षेत्र 8,46,408; ज़िला कुल 28,80,777.

जोरहाट

नगर, पूर्वोत्तर असम राज्य, पूर्वोत्तर भारत. जोरहाट ब्रह्मपुत्र नदी की एक सहायक धारा के किनारे स्थित है. यह एक सड़क व रेल जंक्शन है और उपजाऊ कृषि क्षेत्र का वाणिज्यिक केंद्र है. जोरहाट आभूषण निर्माण के लिए विख्यात है. यहां असम कृषि विश्वविद्यालय स्थित है. अन्य शैक्षणिक संस्थानों में जोरहाट इंजीनियरिंग कॉलेज, इंस्टिट्यूट ऑफ़ रेन ऐंड मॉयस्ट डेसिडुअस फ़ॉरेस्ट रिसर्च, कॉलेज ऑफ़ वेटनरी साइंस और कॉलेज ऑफ़ फ़िशरीज़ शामिल हैं. 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यह नगर स्वतंत्र अहोम राज्य की राजधानी था; ताई भाषा बोलने वाले अहोम लोगों ने लगभग पहली शताब्दी में चीन के युन्नान क्षेत्र से देशांतरण किया था. जनसंख्या (2001) नगर 66,450; ज़िला कुल 10,09,197.

जोशी, उमाशंकर

(ज.–21 जुला. 1911, बामणा, गुजरात; मृ.–19 दिस. 1988), ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित गुजराती भाषा के साहित्यकार. पहाड़ियों का आंचल थामे कलकल करती बहती एक छोटी सी नदी के किनारे बसे छोटे से गांव बामणा में उनका बचपन बीता और वहीं उनकी प्रारंभिक शिक्षा हुई. आगे की शिक्षा के लिए वह ईडर गए और 1926 तक वहां स्कूल में शिक्षा प्राप्त की. 1927 में उमाशंकर मैट्रिकुलेशन के लिए अहमदाबाद आ गए. अगले वर्ष गुजरात कॉलेज में पहुंचकर उन्होंने नानालाल की काव्य–नाटिका *इंदुमती* और कविता–संग्रह *चित्रदर्शनी* व बलवंतराय की आलोचना पुस्तक *लिरिक* बड़े चाव से पढ़ी. 1930 में कॉलेज और पढ़ाई छोड़कर उमाशंकर ने सत्याग्रह में भाग लिया और साबरमती जेल में रखे गए.

उमाशंकर जोशी
सौजन्य : भारतीय ज्ञानपीठ

1931 में, जब वह काकासाहब कालेलकर के पास विद्यापीठ में थे, उन्होंने एक लंबी कविता *विश्वशांति* लिखी. दो महायुद्धों के बीच रचित उमाशंकर की 500 पंक्तियों की यह कविता गांधीजी की आस्था को एक युवा हृदय के ओज भरे स्वरों में प्रतिध्वनित करती है कि शांति की स्थापना केवल अहिंसा प्रेम के द्वारा ही संभव है.

1934 में उमाशंकर ने बी.ए. में इतिहास और अर्थशास्त्र विषय लेकर एल्फ़िंस्टन कॉलेज, बंबई में प्रवेश लिया. 1938 में एम.ए. किया. पहले गोकलीबाई हाई स्कूल, विले

पार्ले में अध्यापक रहे, एम.ए. करने के बाद सिडनहम कॉलेज, बंबई (वर्तमान मुंबई) में व्याख्याता बनाए गए. 1939 में *निशीथ* का प्रकाशन हुआ, जो उनका तीसरा काव्य संग्रह था.

निशीथ में कुल 116 कविताएं संगृहीत हैं. उमाशंकर की यह कृति गुजराती साहित्य का सर्वोत्तम गीति काव्य प्रस्तुत करती है. इसके छंदों, शैली शिल्प, रूप–विधान और विषय–वस्तु का वैविध्य कवि के मन की विस्तारशीलता और उसकी भावनाओं की गहराई को घोषित करता है. *निशीथ* का रचना काल तब का है, जब वह बंबई जैसे आधुनिक महानगर के वातावरण में रह रहे थे. स्वभावतः उन सारे मानसिक तनावों और दबावों का प्रभाव इन कविताओं पर आया है, जो साम्राज्यवाद व स्वतंत्रता, तानाशाही व लोकतंत्र और पूंजीवाद व समाजवाद के तत्कालीन संघर्षों का परिणाम थे तथा द्वितीय महायुद्ध के महासंहार की भूमिका बने विश्व की चेतना पर छाए हुए थे. *निशीथ* के कवि ने इस दु:स्थिति के समाधान के रूप में अपनी आदर्शवादी आस्था और वास्तविकता बोध के संगम की परिकल्पना प्रस्तुत की है. यह परिकल्पना उमाशंकर के कवि रूप की अद्वितीय उपलब्धि है. न केवल उनकी अपनी काव्य कृतियों में, बल्कि 1930 से अब तक प्रकाशित समस्त गुजराती काव्य साहित्य में *निशीथ* को सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में गिना जाता है.

1944 में काव्य कृति *प्राचीना* प्रकाशित हुई, जिसे 'माहिदा पारितोषिक' द्वारा सम्मानित किया गया. 1946 से 1954 तक का काल उमाशंकर ने स्वतंत्रजीवी होकर बिताया. इसी काल में उन्होंने संस्कृत के शास्त्रीय काव्य और नाट्य साहित्य का गंभीर अनुशीलन किया. इसी वर्ष *प्राचीना* पर 'नर्मद सुवर्णचंद्रक' भी उन्हें भेंट किया गया. 1967 में काव्य कृति *अभिज्ञा* प्रकाशित हुई, जिस पर उन्हें नानालाल पुरस्कार प्राप्त हुआ.

प्रमुख कृतियां : कविता– *विश्वशांति* (1931), *गंगोत्री* (1934), *निशीथ* (1939), *प्राचीना* (1944), *आतिथ्य* (1946), *महाप्रस्थान* (1965); नाटक– *साप–ना–भारा* (1936), *शहीद* (1951); कहानी संग्रह– *श्रावणी मेलो* (1937), *अंतराय* (1947), *विसामो* (1949). उपन्यास *पारकां जण्यां* (1940); गद्य *गोष्ठी* (1951), *उघाड़ी बारी* (1949); आलोचना– *अखो : एक अध्ययन* (1941), *सम–संवेदन* (1948), *अभिरुचि* (1959), *निरीक्षा* (1960), *श्री अने सौरभ* (1963).

उमाशंकर जोशी को नर्मद सुवर्णचंद्रक (1947), उमा स्नेह रश्मि पुरस्कार (1966), नानालाल पुरस्कार (1967), ज्ञानपीठ पुरस्कार (1967) जैसे पुरस्कारों से सम्मानित किया गया.

जोशी, भीमसेन

पूरा नाम भीमसेन गुरुराज जोशी, (ज.–14 फ़र. 1922, गडग, धारवाड़, कर्नाटक, भारत), किराना घराने व हिंदुस्तानी शास्त्रीय परंपरा के महान गायक.

भीमसेन जोशी
सौजन्य : *द हिंदू*

रूढ़िवादी अध्यापक के बेटे भीमसेन को बचपन से ही संगीत के प्रति लगाव था. उन्होंने संगीत के अध्ययन व प्रशिक्षण के लिए छोटी उम्र में ही घर छोड़ दिया और गुरु की तलाश में ग्वालियर, कलकत्ता व रामपुर तक गए. उन्होंने कई गुरुओं से शिक्षा पाई, लेकिन किराना घराना के विख्यात गायक सवाई गंधर्व से हुई मुलाक़ात ने उन पर गहरा प्रभाव डाला और उनके ख्यातिमय संगीत–जीवन को सही दिशा मिली. सवाई गंधर्व के संरक्षण में भीमसेन ने घराना तकनीक में विशेषज्ञता प्राप्त की और अन्य घरानों की विशेषताओं तथा बारीकियों को अपनाकर अपनी एक विशिष्ट शैली तैयार की. केवल अपनी कला के प्रति समर्पित होकर उन्होंने अपनी गायिकी को एक अनोखी गहराई प्रदान की. उनके स्वर में ऐसी लोच और विस्तार है, जो वर्षों के निरंतर अभ्यास के बाद ही आता है. उनके सर्वग्राही प्रशिक्षण के कारण उनका संगीत कोष व्यापक है.

उन्हें कई पुरस्कार और सम्मान प्राप्त हुए हैं : 1972 में पद्मश्री, 1976 में संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार और 1985 में पद्म भूषण.

जौनपुर में गोमती नदी के ऊपर बना शाही पुल, उत्तर प्रदेश
फ़ोटो : क्रिस्टिना गैस्कॉजिन

जौनपुर

शहर, दक्षिण–पूर्वी उत्तर प्रदेश राज्य, उत्तर–मध्य भारत, (गोमती नदी के दोनों तरफ़ फैला हुआ), वाराणसी (भूतपूर्व बनारस) के पश्चिमोत्तर में स्थित. जौनपुर की स्थापना संभवतः 11वीं शताब्दी में हुई थी, लेकिन गोमती नदी की बाढ़ से यह नष्ट हो गया. 1359 में फ़िरोज़ शाह तुग़लक़ ने इसका पुनर्निर्माण करवाया. उनका क़िला अब भी यहां मौजूद है. यह शहर शर्क़ी वंश (1394–1479) के स्वतंत्र मुस्लिम राज्य की राजधानी था. 1559 में अकबर ने इसे जीता और 1775 में यह ब्रिटिश शासन के अंतर्गत आ गया. जौनपुर में अटाला मस्जिद (1408) और जामी मस्जिद (1478) समेत कई पुरानी मस्जिदें हैं. गोमती नदी पर 16वीं शताब्दी में बना एक शानदार पुल है.

महत्त्वपूर्ण सड़क और रेल जंक्शन युक्त जौनपुर एक कृषि बाज़ार है और यहां के आधे से अधिक क्षेत्र में बाग़वानी की जाती है. शहर के आसपास के लगभग समूचे जलोढ़ मैदान में खेती की जाती है और इसके अधिकांश हिस्से की सिंचाई की जाती है. फ़सलों में धान, मक्का, जौ और गन्ना शामिल हैं. बाढ़ और सूखे से इस क्षेत्र को बहुत नुक़सान पहुंचा है. इत्र यहां का प्रमुख औद्योगिक उत्पाद है. यहां दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय से संबद्ध कई महाविद्यालय हैं. जनसंख्या (2001) शहर 1,59,996; ज़िला कुल 39,11,305.

जौहर

ऐतिहासिक रूप से सामूहिक आत्मदाह, जो शत्रु से घिरे क़िले या नगर की स्त्रियों, बच्चों और असहाय आश्रितों द्वारा उस समय किया जाता था, जब उन्हें ऐसा लगता था कि शत्रु का मुक़ाबला करना असंभव है और मृत्यु ही एकमात्र सम्मानजनक हल है. जौहर के बाद घिरे हुए क़िले में पुरुष योद्धा एक अंतिम युद्ध में जूझकर मृत्यु का वरण करते थे, जो शाक कहलाता था. भारतीय इतिहास में राजस्थान में चित्तौड़ की रानी पद्मिनी द्वारा किया गया जौहर सर्वाधिक प्रसिद्ध है.
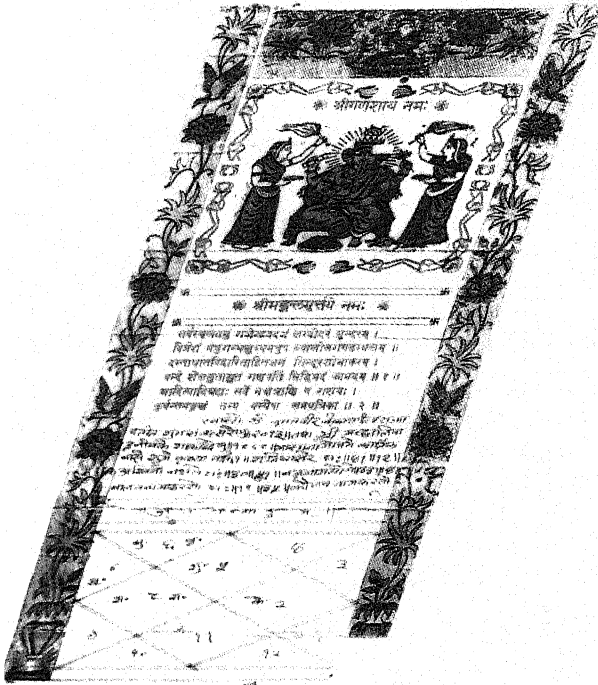
ज्योतिष

एक प्रकार की भविष्यवाणी, जिसमें स्थिर नक्षत्रों, सूर्य, चांद व ग्रहों की स्थिति और विवेचना के माध्यम से सांसारिक तथा मानवीय घटनाओं का अनुमान सम्मिलित है. विज्ञान के रूप में मान्य ज्योतिष का इस्तेमाल सांसारिक गतिविधियों पर ग्रहों और नक्षत्रों के प्रभाव की कल्पित समझ–बूझ से व्यक्तियों, समूहों अथवा राष्ट्रों की नियति के अनुमान या प्रभाव के लिए किया जाता है, लेकिन ज्योतिष को आधुनिक पश्चिमी विज्ञान की खोजों और सिद्धांतों के एकदम विपरीत माना जाता है.

पारंपरिक भारतीय जन्मपत्री
2000 एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (इंडिया) प्रा.लि.

प्रकृति और महत्त्व

ज्योतिष इस धारणा पर आधारित सांसारिक घटनाओं के अनुमान की विधि है कि खगोलीय खपिंड, विशेष रूप से ग्रह और तारे, अपने बंधे–बंधाए समूह या गठबंधन में किसी न किसी प्रकार से मानवीय विश्व में परिवर्तनों को निश्चित या फिर उसकी ओर इंगित करते हैं. इस धारणा का सैद्धांतिक आधार ऐतिहासिक तौर पर यूनानी दर्शन में निहित है और खगोल विधा में उन अंतरिक्षीय 'शगुनों' को बिल्कुल अलग करता है, जो प्राचीन मेसोपोटामिया में वर्गीकृत या सूचीबद्ध किए गए थे. शुरू में ज्योतिषियों ने भू–केंद्रित ब्रह्मांड की कल्पना की थी, जिसमें 'ग्रह' (सूर्य और चंद्रमा सहित) उन कक्षाओं में परिक्रमा करते हैं, जिनका केंद्र पृथ्वी के केंद्र पर या उसके निकट है और जिसमें तारे एक सीमित अर्द्धव्यास के साथ एक गोलाई पर स्थिर हैं, जिनका केंद्र भी पृथ्वी का केंद्र है. बाद में अरस्तू की भौतिकी

के सिद्धांतों को स्वीकार किया गया, जिसके अनुसार खगोलीय तत्त्व की शाश्वत वृत्ताकार गति में और चार सांसारिक तत्त्वों– अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी –की सीमित रैखिक गति में पूर्णतः विभाजन है.

कुछ विशेष नक्षत्रीय खपिंडों और उनकी विविध गतियों, एक–दूसरे के साथ उनके समरूपण व उत्पन्न होने की प्रक्रियाओं तथा अग्नि, वायु, जल व पृथ्वी के विश्व में स्पष्ट अपकर्ष के बीच विशेष संबंध होने की मान्यता थी. ये संबंध कभी–कभी इतने जटिल माने जाते थे कि कोई भी इंसानी दिमाग़ उन्हें पूरी तरह समझ नहीं सकता था. इसलिए ज्योतिषी को उसकी भूल के लिए आसानी से क्षमा किया जा सकता था. उन लोगों ने भी इसी तरह के संबंध की कल्पना कर ली थी, जिनकी भौतिकी यूनानी दार्शनिक प्लेटो की भौतिकी से मिलती–जुलती थी. प्लेटो को मानने वाले ज्योतिषियों के लिए अग्नि का तत्त्व संपूर्ण खगोल में विद्यमान था और पृथ्वी पर खगोलीय प्रभाव के माध्यम से प्राकृतिक प्रक्रियाओं में दिव्य हस्तक्षेप की संभावना को मानने वाले अरस्तू की तरह थे, क्योंकि वे इस बात को मानते थे कि आराध्य देव ने खगोलीय खपिंडों की रचना की थी.

ज्योतिष सिद्धांत में दैवी भूमिका उल्लेखनीय रूप से भिन्न है. ज्योतिष अपने सर्वाधिक परिशुद्ध पहलू में संपूर्ण यांत्रिक ब्रह्मांड को आधारतत्त्व मानता है, जिसमें आराध्य देव के हस्तक्षेप और व्यक्ति की स्वतंत्र इच्छा की मनाही है. कुछ लोगों के लिए ज्योतिष खगोल विज्ञान की तरह पूर्ण विज्ञान नहीं है, बल्कि यह केवल रुझान और दिशाओं का संकेत देता है, जिन्हें दिव्य शक्ति या मनुष्य की इच्छा से बदला जा सकता है. कुछ ज्योतिषी ग्रहों को ही प्रबल आराध्य देव मानते हैं, जिनके आदेश को याचना, प्रार्थना और उपासना या ईश्वर अथवा अन्य अलौकिक शक्ति के अनुनय–विनय के विज्ञान अथवा अन्य चमत्कारी शक्तियों से बदला जा सकता है.

भारत में ज्योतिष

यूनानी ज्योतिष दूसरी और तीसरी शताब्दी में अनेक संस्कृत अनुवादों के माध्यम से भारत में पहुंचा. इनमें से एक सबसे अधिक प्रसिद्ध का अनुवाद यवनेश्वर ने 149 / 150 ई. में किया और *यवनजातक* के रूप में स्फुजिध्वज ने छंदबद्ध किया. इसलिए आश्चर्य की बात नहीं कि भारतीय ज्योतिष की विधि यूनानी ज्योतिष के समान है. लेकिन ये विधियां अपने दार्शनिक आधार के बिना यहां पहुंचीं (जिसके लिए भारतीयों ने दिव्य श्रुतियों को स्थान दे दिया) और भारतीयों ने मूलतः यूनानी व रोमन समाज में अपनाए जाने वाले भविष्य वाचन में संशोधन कर लिया, जिससे यह उनके लिए सार्थक बन सके. विशेष तौर पर उन्होंने जाति व्यवस्था, पुनर्जन्म के सिद्धांत (आत्माओं के आवागमन), पंच तत्त्व के भारतीय सिद्धांत (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और अंतरिक्ष) और भारतीय मूल्यों की प्रणाली को ध्यान में रखा.

भारतीयों ने पहले से जटिल यूनानी ज्योतिष विधि को अधिक व्यापक बनाना उपयोगी समझा. उन्होंने इसमें महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को जोड़ा : नक्षत्र (अथवा चंद्र कलाएं); योग की

तीन श्रेणियों की व्यापक प्रणाली (या ग्रहों के सामंजस्य); विभिन्न प्रकार की दर्जनों दशाएं (ग्रहों का परिक्रमण काल), अंतर्दशा (उपकाल) और अनवरत ग्रह–चक्र पर आधारित *अष्टकवर्ग* का जटिल सिद्धांत. *होराओं* (प्रत्येक 15), *सप्तांशों* (4 2/7° प्रत्येक) और *नवांशों* (3°, 20 प्रत्येक) को समाहित कर राशि–चक्र चिह्नों के उपविभाजनों की संख्या बढ़ाई गई; चांद के पांतों (ग्रहण के साथ चांद के कक्ष और दीर्घवृत्तीय पथ के प्रतिच्छेदन बिंदु) और उपग्रहों की श्रृंखला या कल्पित ग्रहों में वृद्धि कर ग्रहों की संख्या बढ़ाई गई. हालांकि यूनानी ज्योतिष की सासानियाई प्रशाखाओं, भाग्य, स्थगित करने वाला, वर्ष के देवता, त्रिगुणता और ज्योतिषीय इतिहास सहित कई तत्त्वों को 13वीं शताब्दी में ही ताजिका ग्रंथों के माध्यम से भारत में शुरू किया गया. उत्पत्ति विज्ञान (किसी व्यक्ति के जन्म के समय खगोलीय नक्षत्रों की स्थिति और प्रभाव की गणना) के अलावा भारतीयों ने विशेष रूप से सैनिक ज्योतिष व शुभ समय की गणना के मुहूर्तशास्त्र का विकास किया और साथ ही कुछ हद तक औषध गणना विज्ञान (औषधि और ज्योतिष का मिश्रण) तथा शंकानिवारण ज्योतिष का भी विकास किया.

ज्ञान

हिंदू दर्शन में एक शब्द, जिसके कई अर्थ हैं. यह उस संज्ञानात्मक घटना पर केंद्रित है, जो 'ग़लत नहीं माना जा सकता' सिद्ध होती हैं. धार्मिक क्षेत्र में ख़ासतौर पर यह उस ज्ञान को निर्दिष्ट करता है, जो उसके उद्देश्यों को संपूर्ण रूप से महसूस करता है, विशेषकर सर्वोच्च सत्ता या सत्य को, जो विज्ञान (दो वस्तुओं में विभेद कर पाना) या 'व्यावहारिक ज्ञान' के विपरीत है. सर्वोच्च लक्ष्यों का संपूर्ण संज्ञानात्मक अनुभव आत्मा को पुनर्जन्म के चक्र और इसके कारण आई विचार की ध्रुवीयता से मुक्त करता है. इसका विपरीत, 'अज्ञान' (अविद्या भी कहलाता है) सत्य का झूठा बोध है, जो आत्मा को मुक्त होने से रोकता है. अज्ञान मिथ्या ज्ञान का एक रूप है, जहां तक आधुनिक विश्व की सच्चाइयों का संबंध है, इसे बहुत बड़े पैमाने पर वैधता प्राप्त है, पर यह उसके बाहर उपस्थित एक वास्तविकता के सत्य को छिपाता है.

भगवद्गीता में ज्ञान योग (ज्ञान का पंथ) को धार्मिक कर्तव्यों की पूर्ति के लिए तीन पूरक मार्गों में से एक के रूप में मान्यता मिली है. यह अविनाशी आत्मा और उसके क्षणिक मूर्त रूप में विभेद की मान्यता पर केंद्रित है, एक ऐसी स्वीकारोक्ति, जिसे कृष्ण की उपस्थिति– जिन्होंने अपने परम भक्त अर्जुन के संशयों का ज्ञान द्वारा निवारण किया था –ने मूल रूप से सरल बनाया.

ज्ञानदेव

(ज.–1275, अलंडी, यादव, भारत; मृ.–1296, अलंडी), ज्ञानेश्वर भी कहलाते हैं, *भगवद्गीता* की मराठी टीका के अत्यंत सराहनीय संस्करण *ज्ञानेश्वरी* के लेखक, भारतीय महाराष्ट्रीय आध्यात्मिक कवियों में अग्रणी.

ज्ञानदेव को वाराकरी (तीर्थयात्रा) रहस्यवादी भक्ति शाखा का संस्थापक माना जाता है, जो पंढरपुर में विठ्ठल के मंदिर (भगवान विष्णु के अवतार, विठोबा) की तीर्थयात्रा पर बल देता है. उन्होंने अपनी टीका *ज्ञानेश्वरी* लगभग 1290 में लिखी थी. उन्होंने उपनिषद दर्शन पर *अमृतानुभव* और कई भजन भी लिखे. विद्वान पूरी तरह इस बात से सहमत नहीं हैं, लेकिन कहा जाता है कि ज्ञानदेव, उनके दो भाई निवृत्तिनाथ व सोपानदेव तथा उनकी बहन मुक्ताबाई को ब्राह्मणों ने जाति से बाहर कर दिया था और उनका उत्पीड़न किया गया था, क्योंकि वे संन्यासिन या तपस्विनी की संतान थे (उनके पिता को, जिन्होंने अपनी पत्नी की सहमति के बिना संसार त्याग दिया था, गुरु ने गृहस्थ आश्रम में लौट जाने को कहा था). इन चारों संतानों को संत और कवि के रूप में बहुत सम्मान मिला और 20 की आयु के आसपास, जब इन चारों को विश्वास हो गया कि उनका काम पूरा हो गया है, तो उन्होंने स्वेच्छा से जीवन त्याग दिया.

ज्ञानपीठ पुरस्कार

भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल किसी भी भाषा में किसी भारतीय नागरिक को सर्वश्रेष्ठ सृजनात्मक साहित्य लेखन के लिए दिया जाने वाला महत्त्वपूर्ण पुरस्कार. इस पुरस्कार में 5,00,000 रुपये नक़द, एक प्रशस्ति पत्र और वाग्देवी की कांस्य प्रतिमा प्रदान की जाती है.

वाग्देवी की प्रतिमा
सौजन्य : भारतीय ज्ञानपीठ

ज्ञानपीठ पुरस्कार की स्थापना 22 मई 1961 को हुई. यह भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रायोजित है. पहला पुरस्कार 1965 में दिया गया. इस पुरस्कार की स्थापना के बाद के 35 वर्षों में 39 लेखकों को यह पुरस्कार दिया गया. 1967, 1973 और 1999 में यह पुरस्कार संयुक्त रूप से दो–दो लेखकों को प्रदान किया गया. 2000 तक कन्नड़ लेखकों को सात बार, हिंदी लेखकों को छह बार, बांग्ला लेखकों को पांच बार, मलयाली लेखकों को चार बार, उड़िया और असमिया लेखकों को तीन–तीन बार, गुजराती, मराठी, पंजाबी, तेलुगु और उर्दू लेखकों को दो–दो बार और तमिल लेखक को एक बार यह पुरस्कार प्रदान किया गया है. 1982 के बाद से यह पुरस्कार किसी लेखक की किसी एक रचना के लिए नहीं, बल्कि साहित्य में उसके संपूर्ण योगदान के लिए दिया जाता है.

ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता

शंकर कुरुप को *ओटक्कुषळ* (मलयालम) के लिए 1965
ताराशंकर बंद्योपाध्याय को *गणदेवता* (बांग्ला) के लिए 1966
डॉ. के.वी. पुट्टप्पा को *श्रीरामायणदर्शनम्* (कन्नड़) के लिए 1966
उमाशंकर जोशी को *निशीथ* (गुजराती) के लिए 1967
सुमित्रानंदन पंत को *चिदंबरा* (हिंदी) के लिए 1968
फ़िराक़ गोरखपुरी को *गुले–नग़मा* (उर्दू) के लिए 1969

विश्वनाथ सत्यनारायण को *रामायण कल्पवृक्षमु* (कन्नड़) के लिए 1970
विष्णु दे को *स्मृति सत्ता भविष्यत* (बांग्ला) के लिए 1971
रामधारी सिंह दिनकर को *उर्वशी* (हिंदी) के लिए 1972
दत्तात्रेय रामचंद्र बेंद्रे को *नाकुतंति* (कन्नड़) के लिए 1973
गोपीनाथ मोहंती को *माटीमटाल* (उड़िया) के लिए 1973
विष्णु सखाराम खांडेकर को *ययाति* (मराठी) के लिए 1974
पी.वी. अखिलंदम को उनके उपन्यास *चित्तिरप्पावै* (तमिल) के लिए, 1975
आशापूर्णा देवी को *प्रथम प्रतिश्रुति* (बांग्ला) के लिए 1976
के. शिवराम कारंत को *मुकज्जिय कनसुगलु* (कन्नड़) के लिए 1977
एस.एच.वी. अज्ञेय को उनके उपन्यास *कितनी नावों में कितनी बार* (हिंदी) के लिए 1978
बीरेंद्रकुमार भट्टाचार्य को उनके उपन्यास *मृत्युंजय* (असमी) के लिए 1979
एस.के. पोट्टेक्काट्ट को उनके उपन्यास *ओरु देशत्तिंते कथा* (मलयालम) के लिए 1980
अमृता प्रीतम को उनके संग्रह *काग़ज़ ते कैनवस* (पंजाबी) के लिए 1981
महादेवी वर्मा (हिंदी) 1982
मास्ति वेंकटेश अय्यंगार (कन्नड़) 1983
तकषी शिवशंकर पिल्लै (मलयालम) 1984
पन्नालाल पटेल (गुजराती) 1985
सच्चिदानंद राउतराय (उड़िया) 1986
विष्णु वामन शिरवाडकर कुसुमाग्रज (मराठी) 1987
सी. नारायणन रेड्डी (तेलुगु) 1988
कुर्रतुलऐन हैदर (उर्दू) 1989
वी.के. गोकाक (कन्नड़) 1990
सुभाष मुखोपाध्याय (बांग्ला) 1991
नरेश मेहता (हिंदी) 1992
सीताकांत महापात्र (उड़िया) 1993
यू.आर. अनंतमूर्ति (कन्नड़) 1994
एम.टी. वासुदेवन नायर (मलयालम) 1995
महाश्वेता देवी (बांग्ला) 1996
अली सरदार जाफ़री (उर्दू) 1997
गिरीश कार्नाड (कन्नड़) 1998
निर्मल वर्मा (हिंदी) 1999
गुरदयाल सिंह (पंजाबी) 1999
इंदिरा गोस्वामी (असमिया) 2000

झांझ

तांबे से बनी मिस्री झांझ, थिब्स, ग्रीको–रोमन काल; मेट्रोपॉलिटन म्यूज़ियम ऑफ़ आर्ट, न्यूयॉर्क
सौजन्य : मेट्रोपॉलिटन म्यूज़ियम ऑफ़ आर्ट, न्यूयॉर्क, रोजर्स फ़ंड, 1908

गोलाकार समतल या उत्तलाकार धातु की तश्तरी जैसा ताल वाद्य, जिसे ढोल बजाने की लकड़ी से या इसके जोड़े को एक–दूसरे से रगड़ते हुए टकराकर बजाया जाता है. इसका असीरिया, इज़राइल (1100 ई.पू.), मिस्र और अन्य प्राचीन सभ्यताओं में अक्सर आनुष्ठानिक तौर पर इस्तेमाल किया जाता था. यह मध्य काल में सुदूर पूर्व एवं यूरोप में 13वीं सदी से पहले पहुंचा. अधिकतर एशियाई झांझ चौड़े किनारे वाले उभार या बिना उभार के क्षैतिज तरीक़े से आड़े पकड़कर तेज़ी से टकराए जाते हैं या छोटे किनारे वाले (या किनारा रहित), खड़े तरीक़े से पकड़कर धीमे बजाए जाते हैं. पश्चिमी वाद्य वृंदीय झांझ, तुर्की सैनिक बैंड से लिया गया है, जो 18वीं सदी के यूरोप में प्रचलित था. झांझों के इस्तेमाल की शुरुआत जोज़ेफ़ हैडन (विशेष रूप से उनकी मिलिट्री सिंफ़नी, 1794), डब्ल्यू.ए. मोत्ज़ार्ट और लुडविग वॉन वीटोवान की रचनाओं में हुई. रूमानी संगीत, जैसे रिचर्ड वैग्नर की टेनहॉसर में इनका इस्तेमाल नाटकीय चरम के रेखांकन के लिए किया जाता है. पारंपरिक रूप से सर्वोत्तम झांझ तुर्की से आते हैं.

अनिश्चित सुरमान वाले आधुनिक झांझ क़रीब 36–46 सेमी व्यास वाले केंद्र में उभरे (जहां पकड़ने के लिए फीता बंधा होता है) और किनारे की ओर थोड़े से तिरछे मुड़े हुए होते हैं, ताकि किनारे ही आपस में टकराएं. इनकी विस्तार–क्षमता कमाल की है. हालांकि इन्हें आमतौर पर टकराया या रगड़ा जाता है, लेकिन इनका संचालन पैडल द्वारा भी किया जा सकता है या इन्हें ब्रश अथवा कठोर या मुलायम सिरे वाले चोब के प्रहार से बजाया जा सकता है. जैज़ और नृत्य बैंड में अन्य तकनीकें भी प्रयुक्त होती हैं.

प्राचीन झांझ (उदाहरणस्वरूप, क्लॉड डिबसी द्वारा प्रयुक्त) छोटे करताल जैसे उंगलियों में पहनकर बजाए जाने वाले झांझ हैं, जिनका एक निश्चित सुरमान वाला उच्च स्वर होता है; इनका इस्तेमाल मूल रूप से नृत्य वाद्य के रूप में प्राचीन काल से मध्य–पूर्व में हो रहा है.

झांसी

शहर, दक्षिण–पश्चिम उत्तर प्रदेश राज्य, उत्तर भारत, एक प्रमुख सड़क व रेल जंक्शन पर स्थित. मुख्य शहर, जो एक दीवार से घिरा है, 1613 में ओरछा शासक द्वारा बनवाए गए क़िले के आसपास बसाया गया था. 1732 में यह क्षेत्र मराठों के क़ब्ज़े में चला गया और 1853 में इस पर ब्रिटिश अधिकार हो गया. 1857 के विद्रोह में यहां ब्रिटिश अधिकारियों व नागरिकों का संहार हुआ. 1886 में झांसी ब्रिटिश शासन के अधीन हो

गया और इसके बदले उन्हें ग्वालियर ख़ाली करना पड़ा. यह शहर एक कृषि बाज़ार है और यहां स्टील रोलिंग मिल होने के साथ विनिर्माण कार्य भी होता है. यहां बुंदेलखंड विश्वविद्यालय है और रेलवे कॉलोनी व कार्यशालाएं भी हैं. यहां बुंदेलखंड इंजीनियरिंग इंस्टिट्यूट व एम.एल.बी. मेडिकल कॉलेज भी है. जनसंख्या (2001) न.प. 3,83,248; ज़िला कुल 17,46,715.

झाबुआ

नगर, झाबुआ ज़िले का प्रशासनिक मुख्यालय, मध्य प्रदेश राज्य, मध्य भारत. बहादुर सागर (झील) पर स्थित इस नगर की स्थापना 16वीं शताब्दी में लभना नामक एक दस्यु ने की थी और यह भूतपूर्व झाबुआ रियासत की राजधानी रहा. 1948 में बने झाबुआ ज़िले (6,800 वर्ग किमी) में भूतपूर्व झाबुआ और क्षेत्र की अन्य कई रियासतें शामिल हैं. यह एक ऐसे क्षेत्र से बना है, जिसे विंध्य श्रेणी की उत्तरी पर्वतश्रेणी के वनाच्छदित 'रथ' काटते हैं.

यह स्थानीय कृषि व इमारती लकड़ी का बाज़ार है और धार से सड़क द्वारा जुड़ा है. यहां का कृषि क्षेत्र मुख्यतः अनास व माही नदी और उनकी सहायक नदियों के किनारे स्थित है. गेहूं, मक्का, ज्वार–बाजरा व कपास यहां की प्रमुख फ़सलें हैं. झाबुआ में मैंगनीज़ का खनन होता है. यहां विक्रम विश्वविद्यालय से संबद्ध एक सरकारी महाविद्यालय है. जनसंख्या (2001) नगर 30,577; ज़िला कुल 13,96,677.

झारखंड

बिहार राज्य के दक्षिणी हिस्से से नवनिर्मित राज्य झारखंड भारतीय संघ के 28वें राज्य के रूप में 15 नवंबर 2000 को अस्तित्व में आया. लोकसभा द्वारा पारित बिहार पुनर्गठन विधेयक से अलग झारखंड राज्य के निर्माण का मार्ग प्रशस्त हुआ और इसके साथ ही इस क्षेत्र के लोगों का लंबे समय से चल रहा संघर्ष भी समाप्त हुआ. नवगठित राज्य के उत्तर में बिहार, पश्चिम में छत्तीसगढ़, दक्षिण में उड़ीसा और पूर्व में पश्चिम बंगाल स्थित है. पूर्व राज्य बिहार की 35 प्रतिशत जनता झारखंड क्षेत्र में है. रांची इस राज्य की राजधानी है. राज्य में 22 ज़िले हैं और इसका क्षेत्रफल 79,714 वर्ग किमी है. राज्य की जनसंख्या (2.691 करोड़) के प्रत्यक्ष समानुपात में इसे राज्य विधानसभा में 81, लोकसभा में 14 और राज्यसभा में 6 सीटें दी गई हैं. झारखंड के पहले मुख्यमंत्री बाबूलाल मरांडी और पहले राज्यपाल प्रभात कुमार बने.

नए राज्य के निर्माण के लिए आंदोलन मुख्यतः छोटा नागपुर पठार और संथाल परगना क्षेत्र के आदिवासियों द्वारा शुरू किया गया. अपनी आकांक्षाओं की पहचान कराने का उनका संघर्ष ब्रिटिश शासन के समय का है. 1895–1900 का बिरसा मुंडा आंदोलन ग़ैर आदिवासी ज़मींदारों व साहूकारों द्वारा आदिवासी जनजातियों के शोषण के ख़िलाफ़ हुए आरंभिक विद्रोहों में से एक था. प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध होने के

बावजूद स्वतंत्रता के बाद भी झारखंड विकास की दृष्टि से पिछड़ा ही रहा. यह प्रदेश निर्धनता व निरक्षरता से घिरा रहा और स्थानीय लोगों में बिहार राज्य प्रशासन के विरुद्ध असंतोष पनपता रहा. अलग राज्य की मांग को लेकर शुरू हुआ आंदोलन 1980 के दशक व आरंभिक 1990 के दशक में उग्रवादी रहा. 1990 के दशक के मध्य में अलग राज्य की मांग को गति मिली और ग़ैर आदिवासी लोग भी आदिवासियों के साथ आ मिले.

भू–आकृति

झारखंड का प्रमुख भौतिक लक्षण छोटा नागपुर पठार है, जो पठारों, पहाड़ियों व घाटियों की शृंखला है. यह लगभग समूचे राज्य में फैला है और अधिकांशतः स्फटकीय (क्रिस्टल) चट्टानों से बना है. हज़ारीबाग़ व रांची, ये दो मुख्य पठार दामोदर नदी के भ्रंशित और कोयला युक्त अवसादी बेसिन से विभाजित हैं. इनकी ऊंचाई औसतन लगभग 610 मीटर है. पश्चिम में 300 से अधिक विच्छेदित, लेकिन सपाट शिखर वाले पठार हैं, जिनकी ऊंचाई लगभग 914 मीटर है और ये पाट कहलाते हैं. झारखंड में उच्चतम बिंदु हज़ारीबाग़ स्थित पारसनाथ की शंक्वाकार ग्रेनाइट चोटी है, जिसकी ऊंचाई 1,365 मीटर है. जैन मतावालंबी और संथाल जनजाति, दोनों ही इसे पवित्र मानते हैं. दामोदर घाटी में मिट्टी बलुई है, जबकि पठार की मिट्टी अधिकांशतः लाल है.

जलवायु

यहां तीन स्पष्ट ऋतुएं हैं, मार्च से मध्य जून तक ग्रीष्म, मध्य जून से अक्तूबर तक दक्षिण–पश्चिम मॉनसूनी वर्षा और नवंबर से फ़रवरी तक शीत ऋतु. रांची व हज़ारीबाग़ के पठारों को छोड़कर अन्य स्थानों पर मई सबसे गर्म महीना होता है, जिसके दौरान औसत तापमान 32^0 से. होता है. सामान्य वार्षिक वर्षा पश्चिम–मध्य हिस्से में 1,016 मिमी से लेकर दक्षिण–पश्चिम में 1,525 मिमी होती है. मैदानों की अपेक्षा पठार पर होने वाली वर्षा 1270 मिमी से अधिक होती है. लगभग अधिकांश वर्षा (85–90 प्रतिशत) जून से अक्तूबर के बीच होती है और वार्षिक वर्षा का लगभग 50 प्रतिशत जुलाई व अगस्त के बीच होता है. शीत ऋतु के दौरान यहां मौसम सबसे अच्छा रहता है.

वनस्पति एवं प्राणी जीवन

राज्य के लगभग 29 प्रतिशत हिस्से में वन हैं. यहां की प्राकृतिक वनस्पति पर्णपाती है. अधिकांश वन छोटा नागपुर पठार में हैं और मैदानों में स्थित जंगलों को कृषि योग्य बनाने के लिए काट दिया गया है. छोटा नागपुर में साल का समृद्ध क्षेत्र है. अन्य में लाख उत्पादन (वार्निश बनाने के काम आने वाला रालदार पदार्थ) में काम आने वाली लकड़ी शामिल है. टसर रेशम के कीड़ों (*एंथेरिया पर्नियाई*) को असन पेड़ (*टेरमिनेलिया टोमेंटोसा*) की पत्तियों पर पाला जाता है. महुआ (पूर्व भारतीय वृक्ष) के फूल मीठे व खाने योग्य होते हैं और इनका उपयोग शराब बनाने में किया जाता है. छोटा नागपुर में बांस और सबई (एक मूल्यवान भारतीय रेशेदार घास, जो भाबर नाम से भी जानी

जाती है) कागज़ निर्माण के लिए कच्चे माल का स्रोत हैं. मैदानों में पाए जाने वाले कुछ अन्य सामान्य वृक्षों में बरगद, पीपल और पनई ताड़ शामिल हैं.

हज़ारीबाग़ वन्य अभयारण्य अपने बंगाल बाघों के लिए विख्यात है. इन संकटापन्न प्राणियों के साथ ही तेंदुए, हाथी और भालू दुर्गम पहुंच वाले वनों में पाए जाते हैं. समूचे प्रायद्वीपीय भारत में पाई जाने वाली प्रजातियों के छोटे स्तनधारी प्राणी, पक्षी, सरीसृप और मछली यहां भी मिलते हैं.

जनजीवन

झारखंड में सापेक्षिक जनसंख्या घनत्व कम (274 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी) है. छोटा नागपुर में आवास मुख्यतः नदी घाटियों, वनरहित स्थलीप्राय मैदानों (अपरदन के कारण लगभग पूरी तरह मैदानों में परिवर्तित हो चुके क्षेत्र), खनिज और औद्योगिक क्षेत्रों तक ही सीमित है. यहां की जनसंख्या का 40 प्रतिशत से भी अधिक हिस्सा अनुसूचित जाति व जनजाति का है. राज्य के अधिकांश लोग गांवों में रहते हैं. बिखरे हुए ग्रामीण आवास इस पठार का एक प्रमुख लक्षण है. यहां की आदिम जनजातियां विशेषकर रांची, सिंहभूम और संथाल परगना में संकेंद्रित हैं. संथाल, उरांव, मुंडा और हो यहां की प्रमुख जनजातियां हैं, जो यहां की कुल जनजातीय जनसंख्या का 80 प्रतिशत भाग बनाती हैं.

झारखंड की कुल जनसंख्या के 10 प्रतिशत से कुछ ही अधिक हिस्सा शहरी वर्ग का है. यह राज्य भारत के कुछ सर्वाधिक ग्रामीण राज्यों में से एक है. रांची व जमशेदपुर यहां के प्रमुख शहर हैं. प्रमुख नगर समूहों में धनबाद, झरिया, सिंदरी, बोकारो और चास हैं.

हिंदू यहां बहुसंख्यक हैं, जबकि मुसलमान व ईसाई अल्पसंख्यक वर्ग में आते हैं. हिंदू जनसंख्या में कुलीन उच्च जातियां (ब्राह्मण, राजपूत, भूमिहार और कायस्थ), तथाकथित पिछड़ी जातियां (यादव, कुर्मी और बनिया), जो पिछड़े बहुसंख्यक हैं और अनुसूचित जनजातियां (चमार या मोची, दुसाध और मुसहर, जो पहले अस्पृश्य कहलाते थे) शामिल हैं. जनजातीय लोगों (जो जाति अनुक्रम से बाहर है) में अधिकांश हिंदू हैं, कुछ ईसाई हैं और कुछ जीववाद (आत्माओं में विश्वास) के अनुयायी हैं. हो जनजाति के अधिकांश लोग जीववाद को मानते हैं. खड़िया ही एक ऐसी जनजाति है, जिसमें अधिकतर लोग ईसाई हैं. मुंडा और उरांव जनजाति में भी ईसाई धर्म की प्रमुखता है. हिंदी, उर्दू (मुख्यतः मुसलमानों की भाषा) समेत भारोपीय भाषाएं, भोजपुरी, मैथिली और मगही बोलियां आमतौर पर बोली जाती हैं. ऑस्ट्रो–एशियाई (मुंडारी, संथाली, हो) और द्रविड़ (उरांव) भाषाएं केवल आदिम जनज़ातियों द्वारा ही बोली जाती हैं.

विकास

झारखंड एक नया राज्य है और इसकी सरकार ने विकास की दृष्टि से योजना बनानी शुरू कर दी है. प्रत्येक क्षेत्र में विकास के लिए नीतियां बना ली गई हैं और शीघ्र ही उन्हें लागू किए जाने के काम शुरू हो जाएंगे. विभिन्न क्षेत्र जैसे सूचना प्रौद्योगिकी,

स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवहन, तकनीकी प्रशिक्षण, कृषि, ग्रामीण विकास, हस्तकला आदि को नई नीतियों में महत्त्व दिया गया है. फ़िलहाल राज्य में तीन औद्योगिक क्षेत्र विकास प्राधिकरण हैं, जिनके मुख्यालय आदित्यपुर, बोकारो और रांची में हैं. ये प्राधिकरण भूमि के अधिग्रहण, मूल ढांचागत सुविधाओं, जैसे सड़क, जलनिकास प्रणाली, उद्यान, जल आपूर्ति, सार्वजनिक सुविधाओं और अपने न्यायाधिकार में आने वाले अन्य क्षेत्रों के लिए उत्तरदायी हैं. संथाल परगना के लिए भी एक अन्य औद्योगिक क्षेत्र विकास प्राधिकरण की योजना बनाई गई है, जिसका मुख्यालय दुमका में होगा.

कृषि एवं पशुधन

झारखंड में अन्य भूमि तल व भूमिगत जल, अत्यधिक जैव विविधता युक्त भूमि और सम जलवायु जैसे संसाधन हैं, जो कृषि की वृद्धि और विकास के लिए आधारभूत अनिवार्यताएं हैं.

गुणात्मक व संख्यात्मक दृष्टि से बेहतर ऊन व मांस प्राप्ति के लिए एक नई प्रजनन नीति अपनाई गई है. इसके अंतर्गत एक चयनात्मक प्रजनन और संकर प्रजनन कार्यक्रम चतरा में शुरू किया गया और दो ऊन संग्रहण केंद्र पूर्वी सिंहभूम में स्थापित किए गए हैं. दुमका, देवघर और गोड्डा ज़िलों में सबसे अधिक ब़करियां पाई जाती हैं. चतरा, रांची और साहिबगंज में ती़न बकरीपालन केंद्र हैं. राज्य में पांच सूअरपालन केंद्र, गौरियाकर्मा, होतवार, सरायकेला, जमशेदपुर और कांके में हैं.

खनिज एवं ऊर्जा संसाधन

छोटा नागपुर पठार भारत में सर्वाधिक समृद्ध खनिज क्षेत्र है और यहां भारत भर में निकाले गए खनिजों का लगभग एक–तिहाई भाग (मूल्य के अनुसार) पाया जाता है. झारखंड में तांबे का लगभग समूचा भाग, क्यानाइट (एक एल्युमिनियम–सिलिका खनिज, जिसका इस्तेमाल ताप–प्रतिरोधी पोर्सलीन बनाने में किया जाता है), पाइराइट (एक लौह खनिज) व फ़ॉस्फ़ेट के कुल राष्ट्रीय उत्पाद का लगभग पूरा और बॉक्साइट (एल्युमिनियम का एक स्रोत), अभ्रक, कोयला, चीनी मिट्टी, अग्निसह मिट्टी व लौह अयस्क का अधिकांश हिस्सा पाया जाता है. झारखंड के खनिज उत्पादन में सबसे बड़ा हिस्सा कोयले का है. दामोदर घाटी में स्थित मुख्य कोयला खदानों से लगभग पूरे भारत को 'कोक' कोयले की आपूर्ति की जाती है. सिंहभूम और पड़ोसी राज्य उड़ीसा मिलकर दुनिया के हेमाटाइट लौह अयस्क के सर्वाधिक समृद्ध क्षेत्रों में से एक का निर्माण करते हैं. यहां तांबे का भी खनन किया जाता है और इसे गलाने का काम सिंहभूम ज़िले में घाटशिला के पास किया जाता है. सिंहभूम में क्यानाइट, मैंगनीज़, क्रोमाइट, एपाटाइट (रॉक फ़ॉस्फ़ेट, उर्वरक का एक स्रोत) और यूरेनियम भी पाया जाता है.

दामोदर घाटी निगम झारखंड की सबसे प्रमुख बहुउद्देशीय परियोजना है, जिसके अंतर्गत तिलैया, मैथोन, कोनार और पंचेट पहाड़ियों पर चार पनबिजली बांधों का

निर्माण किया गया है, जो जलाशयों की एक श्रृंखला बनाते हैं. इनके साथ ही अन्य पनबिजली परियोजनाएं और तापविद्युत केंद्र भी स्थापित किए गए हैं.

उद्योग

अधिकांश औद्योगिक कर्मचारी घरेलू उद्योगों में कार्यरत हैं. शेष इस्पात एवं अन्य धातु आधारित उद्योगों व खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों में काम करते हैं. रांची, बोकारो और जमशेदपुर भारत के विशालतम औद्योगिक संकुलों में से हैं. मोटे तौर पर क्षेत्रीय औद्योगिक वितरण का संकेंद्रण सिंहभूम व धनबाद के दो पठारी ज़िलों में दिखाई देता है. लेकिन आर्थिक विकास के और भी महत्त्वपूर्ण क्षेत्र पहचाने जा सकते हैं. सर्वाधिक समृद्ध खनिज उत्पादक सिंहभूम ज़िला भारी उद्योगों के लिए उल्लेखनीय है. जमशेदपुर के लौह एवं इस्पात कारख़ानों ने इससे जुड़े बहुत से इंजीनियरिंग उद्योगों को आकृष्ट किया है. घाटशिला के पास मोउभंडार में तांबा गलाया जाता है. चाइबासा में जमशेदपुर धातुमल (स्लैग) से सीमेंट बनाया जाता है. कंडरा में कांच और रांची में भारी मशीनरी का निर्माण किया जाता है. कृषि आधारित उद्योगों में चीनी परिशोधन, तंबाकू प्रसंस्करण, रेशम उत्पादन और जूट मिलें शामिल हैं. छोटे पैमाने के पारंपरिक कुटीर उद्योग झारखंड में लोकप्रिय हैं, इनमें रेशम उत्पादन (टसर सिल्क), लाख व कांच का काम, हथकरघा उत्पाद, पीतल के बर्तन, हस्तशिल्प व मिट्टी के बर्तन बनाना शामिल है.

परिवहन

कभी महत्त्वपूर्ण रहे जलमार्ग अब अपना महत्त्व खो चुके हैं. झारखंड के लगभग एक चौथाई गांवों तक ही पक्की सड़कें पहुंची हैं, जबकि राष्ट्रीय राजमार्ग का 1,006 किमी राज्य से होकर गुज़रता है, जिसमें ग्रैंड ट्रंक रोड भी शामिल है. छोटा नागपुर पठार के आसपास की सड़कें बेहतरीन हैं, जो यहां द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान किए गए काम का परिणाम हैं. हज़ारीबाग़ और बहरागोड़ा के बीच 333 किमी की चार लेन वाली राजमार्ग परियोजना का निर्माण–कार्य चल रहा है.

झारखंड से गुज़रने वाली कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता)–दिल्ली रेल लाइन 1864 में शुरू हुई थी. राज्य में माल के आवागमन संबंधी सुविधाएं रांची, बोकारो, धनबाद और जमशेदपुर में उपलब्ध हैं. इसके अलावा किरिबुरु, लोहरदगा और सभी कोयला खदानों में अयस्क वहन की सुविधाएं उपलब्ध हैं. रांची में नियमित वायुसेवाएं भी उपलब्ध हैं.

प्रशासन एवं सामाजिक विशेषताएं

सरकार

झारखंड में द्विसदनीय विधायिका है, जिसमें उच्च सदन, विधान परिषद और निचला सदन, विधानसभा आते हैं. भारत के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त राज्यपाल राज्य का प्रमुख

है, जो मंत्रिपरिषद के प्रमुख मुख्यमंत्री के परामर्श से कार्य करता है. राज्य का प्रशासनिक मुख्यालय रांची में स्थित है, जिसके शीर्ष पर मुख्य सचिव होता है.

झारखंड 22 ज़िलों और 33 अनुमंडलों में विभाजित है. स्थानीय प्रशासन प्रत्येक ज़िले में ज़िलाधीश व ज़िलाधिकारी की, जबकि अनुमंडलों में यह अनुमंडल अधिकारी की ज़िम्मेदारी है.

पुलिस प्रशासन का प्रमुख महानिरीक्षक होता है, जिसकी सहायता के लिए ज़िला स्तर पर अधीक्षक होते हैं. रांची में एक उच्च न्यायालय है, जिसमें एक मुख्य न्यायाधीश और अन्य कई न्यायाधीश हैं. उच्च न्यायालय के अंतर्गत ज़िला अनुमंडल और मुंसिफ़ों (अधीनस्थ न्यायिक अधिकारी) के न्यायालय और ग्रामीण परिषद आते हैं.

स्वास्थ्य

राज्य में केवल 506 चिकित्सा केंद्र हैं, चिकित्सा सुविधाएं बेहतर हो रही हैं, लेकिन इसके बावजूद नगरों के बाहर ये अब भी अपर्याप्त हैं. गांवों में एलोपैथिक और आयुर्वेदिक औषधालय हैं. चिकित्सा की यूनानी व होमियोपैथिक प्रणालियां भी लोकप्रिय हैं. विशाल और आधुनिक सुविधासंपन्न अस्पताल जमशेदपुर, रांची और धनबाद में हैं. सांस संबंधी रोग, पेचिश और अतिसार (डायरिया) मृत्यु के प्रमुख कारण हैं. हैज़ा और मलेरिया के मामले भी कभी–कभी ही पाए गए हैं. चेचक और गिल्टीदार प्लेग का उन्मूलन किया जा चुका है. एक टीबी सैनेटोरियम, मानसिक आरोग्यशाला और कुष्ठाश्रम रांची के पास स्थित हैं. जमशेदपुर में एक कैंसर अस्पताल है.

शिक्षा

झारखंड में साक्षरता दर 1991 के 41.39 प्रतिशत की तुलना में 54.13 प्रतिशत हो गई है. यहां 21,386 विद्यालय और पांच विश्वविद्यालय हैं. इसके अलावा यहां इंडियन स्कूल ऑफ़ माइन्स, जाना–माना व्यापार एवं प्रबंधन संस्थान, ज़ेवियर लेबर रिलेशन्स इंस्टिट्यूट और केंद्रीय खनन शोध संस्थान जैसे शैक्षणिक व शोध संस्थान स्थित हैं.

जमशेदपुर स्थित इंडो–डैनिश टूल रूम (आई.डी.टी.आर.), रांची स्थित डिज़ाइन डेवलेपमेंट ऐंड ट्रेनिंग सेंटर और मेन टूल रूम औद्योगिक क्रियाकलापों को कलपुर्ज़ों व प्रशिक्षण सुविधाएं उपलब्ध कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं.

सांस्कृतिक जीवन

झारखंड के सांस्कृतिक क्षेत्र अपने–अपने भाषाई क्षेत्रों से जुड़े हैं. हिंदी, संथाली, मुंडा, हो, कुडुख, मैथिली, माल्तो, कुरमाली, खोरठा और उर्दू भाषाएं यहां बोली जाती हैं. भोजपुरी बोली का लिखित साहित्य न होने के बावजूद इसका उल्लेखनीय मौखिक लोक साहित्य है. मगही की भी समृद्ध लोक परंपरा है.

अधिकांश जनजातीय गांवों में एक नृत्यस्थली होती है. पइका, छउ, जदुर, करमा, नचनी, नटुआ, अग्नि, छोकरा, संथाल, जामदा, घटवारी, महता, सोहारी, लुरिसेरो यहां के लोकनृत्य हैं. प्रत्येक गांव का अपना पवित्र वृक्ष (सरना) होता है, जहां गांव के पुजारी द्वारा पूजा अर्पित की जाती है, इसके अलावा अविवाहितों का सामूहिक शयनागार भी होता है. साप्ताहिक हाट जनजातीय अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है. जनजातीय त्योहार (जैसे सरहुल), वसंतोत्सव (सोहरी) ओर शीतोत्सव (माघ परब) उल्लास के अवसर हैं. जनजातीय संस्कृति बाहरी प्रभावों, जैसे ईसाइयत, औद्योगिकीकरण, नए संचार संपर्कों, जनजातीय कल्याण कार्यक्रमों और सामुदायिक विकास परियोजनाओं के चलते तेज़ी से बदल रही है. यहां धार्मिक और सांस्कृतिक महत्त्व के अनेक स्थान हैं. जमशेदपुर में डिमना झील और दलमा वन्य अभयारण्य है. प्रसिद्ध वृंदावन उद्यान की प्रतिकृति जुबली पार्क, जमशेदपुर के 225 एकड़ के क्षेत्र में फैला है. नेतरहाट राज्य के प्रसिद्ध लोकप्रिय पर्यटन सैरगाहों में से एक है. पवित्र नगर देवघर अपने वैद्यनाथ मंदिर के लिए विख्यात है. विभिन्न हिंदू त्योहारों में होली व छठ (मुख्यतः महिलाओं द्वारा सूर्य पूजन) शामिल हैं.

शिल्प

हज़ारीबाग़, रांची, सिंहभूम और जमशेदपुर ज़िले में सरकंडे व बांस के उत्पाद बनाने जैसी गतिविधियां आम हैं. कुछ शिल्पी धातु का काम करने, पत्थर पर नक़्क़ाशी, हथकरघा, लकड़ी का काम और पत्तल बनाने का काम भी करते हैं.

इतिहास

मूलतः छोटा नागपुर पूरी तरह वनाच्छादित था और इस पर विभिन्न आदिम जनजातियों के प्रमुखों का शासन था. 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध व 19वीं शताब्दी के आरंभ में धीरे–धीरे यहां उत्तर के मैदानों में ब्रिटिश आधिपत्य स्थापित हो गया. छोटा नागपुर में ब्रिटिश शासन के ख़िलाफ़ विद्रोह होते रहे, जिनमें 1820–1827 का हो विद्रोह और 1831–1832 का मुंडा विद्रोह प्रमुख थे.

1765 में ब्रिटिश शासन के अंतर्गत आने पर बिहार व छोटा नागपुर को बंगाल राज्य के साथ मिला दिया गया. तब से लेकर 15 नवंबर 2000 तक यह बिहार का हिस्सा रहा और उसके इतिहास का भागीदार भी रहा.

झालावाड़

नगर, झालावाड़ ज़िले का प्रशासनिक मुख्यालय, राजस्थान राज्य, पश्चिमोत्तर भारत. कभी झालारपाटन, झालारपाटन छावनी या बृजनगर कहलाने वाला यह नगर एक प्रमुख सड़क जंक्शन और कृषि बाज़ार केंद्र है. पुराने झालारपाटन (पाटन) नगर की स्थापना 1796 में की गई थी. नया नगर, जिसमें महल व छावनी शामिल हैं, इसके ठीक उत्तर में स्थित है. इसी नाम की भूतपूर्व रियासत की राजधानी रहे इस नगर में

राजस्थान विश्वविद्यालय से संबद्ध कई महाविद्यालय हैं. इसके निकट ही प्राचीन राजधानी चंद्रावती (लगभग पहली शताब्दी) का क्षेत्र है. जनसंख्या (2001) नगर 48,049.

झालावाड़ ज़िला

ज़िला (6,216 वर्ग किमी), राजस्थान राज्य, पश्चिमोत्तर भारत. यह मालवा पठार का हिस्सा है और उत्तर में उपजाऊ लहरदार मैदान व दक्षिण की ओर पहाड़ी इलाक़े से मिलकर बना है. कपास, गेहूं, तिलहन, मक्का और ज्वार यहां की प्रमुख फ़सलें हैं; यहां लौह अयस्क व बलुआ पत्थर का खनन होता है.

पहले यह ज़िला एक रियासत था, जिसका नाम यहां के शासक झाला राजपूत के नाम पर रखा गया था. झालावाड़ को 1838 में मूल कोटा रियासत के विभाजन के बाद बनाया गया था. 1897 में बड़ा हिस्सा कोटा को दिए जाने के बाद वर्तमान सीमाओं का निर्माण हुआ. 1948 में झालावाड़ राजस्थान राज्य का हिस्सा बना. जनसंख्या (2001) ज़िला कुल 11,80,342.

झुंझुनूं

नगर, पूर्वोत्तर राजस्थान, पश्चिमोत्तर भारत. यह ऊन, मवेशी, चमड़े और चने का स्थानीय व्यापार केंद्र है. नगर के प्रमुख उद्योगों में एक रंजक कारख़ाना और ऊन की मिलें शामिल हैं. कामख़ानी मत के प्रवर्तक संत क़मरुद्दीन शाह की मज़ार और 10वीं शताब्दी का एक जैन मंदिर भी यहां स्थित है. इस नगर में एक अस्पताल और राजस्थान विश्वविद्यालय से संबद्ध महाविद्यालय भी है.

झुंझुनूं जिस इलाक़े में स्थित है, उसमें अर्द्ध शुष्क रेतीला मैदान भी शामिल है. बाजरा, चना, मूंग और जौ इस क्षेत्र की प्रमुख फ़सलों में शामिल हैं. जनसंख्या (2001) नगर 1,00,476; ज़िला कुल 19,13,099.

टाटा परिवार

भारतीय उद्योगपतियों और लोक हितैषियों का परिवार, जिसने लोहा और इस्पात के कारख़ानों, सूती कपड़ों की मिलों और पनबिजली संयत्रों की स्थापना की, जो भारत के औद्योगिक विकास में महत्त्वपूर्ण साबित हुए.
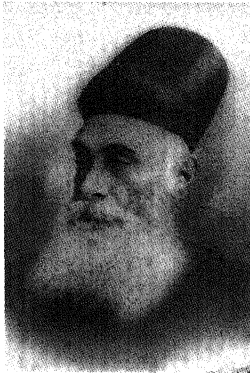
जमशेदजी नौशेरवानजी टाटा
सौजन्य : *द हिंदू*

टाटा परिवार मूलतः पूर्व बड़ौदा रियासत (अब गुजरात में) का पारसी पुरोहित परिवार है. इस परिवार के उद्योग–ऐश्वर्य की नींव जमशेदजी नौशेरवानजी टाटा (1839–1904) ने रखी थी. बंबई (वर्तमान मुंबई) में एल्फ़िन्सटन कॉलेज में शिक्षा प्राप्त करने के बाद 1858 में वह अपने पिता की निर्यात व्यापार कंपनी में शामिल हुए और जापान, चीन, यूरोप व अमेरिका में इसकी शाखाओं की स्थापना में मदद की. 1872 में उन्होंने वस्त्र निर्माण पर ध्यान केंद्रित किया और 1877 में नागपुर तथा बाद में बंबई और कुर्ला में मिलों की स्थापना की. उनके उद्यम कार्यकुशलता, श्रमिक संरक्षण नीतियों और उत्कृष्ट श्रेणी के रेशों के उपयोग के लिए विख्यात थे. उन्होंने भारत में कच्चे रेशम के उत्पादन की भी शुरुआत की और बंबई क्षेत्र के पनबिजली संयंत्रों की भी योजना बनाई, जो उनकी मृत्यु के बाद टाटा पावर कंपनी बनी.

जहांगीर रतनजी टाटा
सौजन्य : *द हिंदू*

टाटा ने 1901 में भारत में पहले बड़े पैमाने के लोहे के कारख़ानों का गठन शुरू किया और 1907 में इन्हें टाटा आयरन ऐंड स्टील कंपनी के रूप में संगठित किया गया. उनके पुत्रों, सर दोराबजी जमशेदजी टाटा (1859–1932) और सर रतनजी टाटा (1871–1932) के निर्देशन में टाटा इंडियन स्टील कंपनी भारत में इस्पात बनाने वाली निजी स्वामित्व की सबसे बड़ी कंपनी तथा ऐसे कंपनी समूह का केंद्र बन गई, जो न सिर्फ़ कपड़ा, इस्पात और बिजली उत्पादन करती थी, बल्कि रसायन, कृषि संयंत्र, ट्रक, रेल के इंजन और सीमेंट का भी निर्माण करती थी. इस परिवार की औद्योगिक इकाइयां झारखंड (भूतपूर्व बिहार) राज्य के नगर जमशेदपुर में केंद्रित हैं.

1898 में टाटा ने बंगलोर में एक शोध संस्थान के लिए भूमि दान की, जिसे बाद में इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ़ साइंस के रूप में उनके बेटों द्वारा स्थापित किया गया. टाटा परिवार भारत में तकनीकी शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए धन उपलब्ध कराने वाला शायद सबसे महत्त्वपूर्ण निजी स्रोत बन गया.

1932 में दोराबजी की मृत्यु के बाद संस्थापक के भतीजों में से एक सर नौरोजी सकलातवाला टाटा कॉर्पोरेट समूह के अध्यक्ष बने. 1938 में उनकी मृत्यु के बाद जहांगीर रतनजी दादाभाई टाटा (1904–93), जिनके पिता आर.डी. टाटा संस्थापक के

चचेरे भाई और हिस्सेदार थे, अध्यक्ष बने. जे.आर.डी. टाटा ने टाटा एयरलाइन्स (1932) की स्थापना की, जिसका 1953 में राष्ट्रीयकरण हो गया और इसका विभाजन करके भारत की प्रमुख घरेलू तथा अंतर्राष्ट्रीय हवाई सेवा, इंडियन एयरलाइन्स कॉर्पोरेशन और एयर इंडिया का स्वरूप दिया गया. जे.आर.डी. टाटा को 1992 में देश का सर्वोच्च नागरिक सम्मान भारत रत्न प्रदान किया गया. 1950 के दशक के उत्तरार्द्ध में टाटा कंपनी समूह भारतीय उद्योगों में अकेले सबसे बड़े समूह पर नियंत्रण रखता था, जिसमें साज़–सामान, इंजीनियरिंग, ऊर्जा, रसायन, उपभोक्ता वस्तु, संचार और सूचना प्रणाली सेवाओं समेत सात व्यापारिक क्षेत्रों की लगभग 80 कंपनियां शामिल थीं. जे.आर.डी. टाटा के भतीजे रतन नवल टाटा 1962 में टाटा उद्योग समूह में शामिल हुए. 1991 में उन्होंने जे.आर.डी. टाटा के उत्तराधिकारी के रूप में टाटा समूह की मुख्य कंपनी टाटा सन्स लिमिटेड का अध्यक्ष पद संभाला. भारतीय उद्योगों के विकास में उनकी भागीदारी के लिए रतन टाटा को भारत सरकार ने वर्ष 2000 में पद्म भूषण से सम्मानित किया.

टिटहरी

मध्यम आकार के जलचर पक्षी, जिनका सिर गोल, गर्दन व चोंच छोटी और पैर लंबे होते हैं. दक्षिण एशिया में नौ प्रकार की टिटहरियां पाई जाती हैं : सफ़ेद पूंछ वाली, झुंड में रहने वाली, धूसर रंग के सिर वाली, लाल गलचर्म, पीले गलचर्म, श्रीलंकाई लाल गलचर्म वाली, बर्मा की लाल गलचर्म, उभरे हुए पंख वाली और उत्तरी इलाक़े की टिटहरी, जिसे पीविट या हरी चिड़िया भी कहते हैं. लाल और पीले गलचर्म वाली टिटहरी काफ़ी आम है और बहुतायत में पाई जाती है. लाल गलचर्म वाली टिटहरी की आंखों के आगे लाल मांसल तह होती है, जबकि पीले रंग की टिटहरी की आंखों के सामने चमकीले पीले रंग की मांसल तह और काली टोपी होती है. मादा टिटहरियों का क़द नर की तुलना में छोटा और रंग फीका होता है.

टिटहरियां पानी और खेतों के आसपास खुले और सूखे समतल इलाक़ों, ताज़े पानी की दलदल, झीलों के दलदली किनारों, जुते खेतों तथा रेतीले या कंकरीले नदी तटों में भी पाई जाती हैं. पीले गलचर्म वाली और झुंड में रहने वाली टिटहरियां शुष्क आवास पसंद क़रती हैं, जबकि लाल गलचर्म वाली टिटहरी पानी से निकटता और उभरे पंख वाली टिटहरी या तटीय टिटहरी, जलासिक्त क्षेत्र में ही रहती है. सफ़ेद पूंछ वाली टिटहरी (प्रजनन बलूचिस्तान में), झुंड में रहने वाली व धूसर सिर वाली और यूरोप तथा मध्य एशिया की उत्तरी टिटहरी शीत ऋतु में प्रवास के लिए दक्षिण एशिया में आती हैं, जबकि अन्य टिटहरियां यहीं की मूल निवासी हैं. वर्गीकरण विशेषज्ञ उभरे हुए पंख की टिटहरी को तेज़ दौड़ लगाने वालों की श्रेणी में रखते हैं.

भोजन की तलाश में टिटहरियां छोटी–छोटी दौड़ भरती हैं, रुककर, सीधी खड़ी हो जाती हैं और फिर झुककर शिकार चोंच में ले जाती हैं. इनकी उड़ान तेज़, शक्तिशाली, सीधी और सधी हुई होती है. इनके भोजन में मोलस्क, कीड़े, कृमियों और अन्य छोटे रीढ़हीन जंतुओं के साथ–साथ नरम कीचड़ से बीनी हुई वनस्पतियां भी होती हैं. नर

अपनी मादा को हवाई करतबों से रिझाता है, जिनमें उड़ान के बीच में द्रुत चढ़ाव, पलटे और चक्कर होते हैं. यह तेज़ चक्करों, हिचकोलों और लुढ़कन भरी उड़ान है, जिसमें कुछ अंतराल पर पंख फड़फड़ाने की ऊंची ध्वनि दूर तक सुनाई देती है. ये धरती पर मामूली सा खोदकर अथवा थोड़े से कंकरों से घिरे गड्ढे में घोंसला बनाते हैं. इनका प्रजनन मॉनसून के समय मार्च से अगस्त के दौरान होता है. ये सामान्यतः दो से पांच नाशपाती के आकार के (पृष्ठभूमि से बिल्कुल मिलते–जुलते, पत्थर के रंग के हल्के पीले पर स्लेटी–भूरे, गहरे भूरे या बैंगनी धब्बों वाले) अंडे देती हैं.

टिटहरियां बाहरी आक्रमण के प्रति निरंतर सजग रहती हैं और ख़तरा भांपते ही शोर मचाती हैं. लाल गलचर्म वाली टिटहरी का शोर सबसे अधिक तेज़ व बेधक होता है. टिटहरियां आक्रांता पर झपट पड़ती हैं और विशेष तौर पर घोंसला क़रीब होने पर उनके चारों तरफ़ उत्तेजित होकर चक्कर लगाती हैं. नवजातों को शिकारियों की नज़र से बचाने के लिए छद्म आवरण में रखा जाता है. किसी भी शिकारी के आने पर माता–पिता चूज़ों को मरने का स्वांग करने का संकेत देते हैं. यही तकनीक लोमड़ी जैसे अन्य पशु भी अपनाते हैं. उभरे हुए पंखों वाली टिटहरी के मगरमच्छ के खुले जबड़े के भीतर प्रवेश करने के प्रसंग विवादास्पद हैं, लेकिन हो सकता है कि ये मगर के दांतों और मसूड़ों से जोंक निकालती हों, लेकिन इन्हें कभी भी मुंह के भीतर घुसते हुए नहीं देखा गया है और मगरमच्छ के जबड़ों के पास या भीतर झुका हुआ कम ही पाया गया है. ये चीख़ मारकर मगरमच्छ को शिकारी के आगमन से आगाह करती हैं.

दलदल और खुले मैदानों के लुप्त होने, चूजों, अंडों को खाए जाने, शिकार व जाल में फंसाने तथा कीटनाशकों व प्रदूषण के कारण टिटहरी विलुप्तप्राय प्रजाति बन गई है. टिटहरी के पर्यावास को बचाने के लिए और अन्य जलपक्षियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रेखांकित करने के लिए संरक्षणवादी प्रयास कर रहे हैं.

टिहरी गढ़वाल

नगर, सामान्यतः टिहरी कहलाता है, उत्तरांचल राज्य, उत्तर भारत. यह नगर भागीरथी नदी पर एक महत्त्वपूर्ण कृषि व्यापार केंद्र है.

आसपास का लगभग 4,421 वर्ग किमी क्षेत्र पूरी तरह से हिमालय श्रृंखला में आता है और दक्षिण में गंगा नदी से घिरा हुआ है. चावल, जौ, गेहूं और तिलहन यहां की प्रमुख फ़सलें हैं. भूतपूर्व टिहरी रियासत को 1947–1948 में संयुक्त प्रांत में शामिल कर लिया गया था, जो बाद में उत्तर प्रदेश कहलाया, लेकिन अब यह 1 नवंबर 2000 को उत्तर प्रदेश से अलग कर नवगठित उत्तरांचल राज्य का हिस्सा है. जनसंख्या (2001) नगर 25,425; ज़िला कुल 6,04,608.

टीटागढ़

शहर, उत्तरी चौबीस परगना ज़िला, दक्षिण–पश्चिम पश्चिम बंगाल राज्य, पूर्वोत्तर भारत. यह हुगली नदी के ठीक पूर्व में स्थित है और कोलकाता (भूतपूर्व कलकत्ता)

महानगरीय ज़िले के भीतर कोलकाता शहरी संकेंद्रण का हिस्सा है. यह शहर कभी यूरोपीय लोगों का आधुनिक निवास स्थल था. 1895 में बैरकपुर नगरपालिका से अलग कर टीटागढ़ का नगरपालिका के रूप में गठन किया गया. कोलकाता से रेल व सड़क मार्ग से जुड़े इस शहर में जूट व काग़ज़ की मिलें हैं और यहां कांच एवं वस्त्रोद्योग से संबंधित मशीनों का निर्माण तथा चाय प्रसंस्करण होता है. जनसंख्या (2001) 1,24,198.

टीपू सुल्तान

फ़तेह अली टीपू या टिप्पू साहिब भी कहलाते थे. उपनाम– मैसूर का शेर, (ज.–1749–53?, देवनहल्लि, दक्षिण भारत; मृ.–4 मई 1799, श्रीरंगपट्टम, दक्षिण भारत), मैसूर के सुल्तान, जिन्होंने 18वीं शताब्दी के अंत में दक्षिण भारत के युद्धों में प्रसिद्धि प्राप्त की.

टीपू सुल्तान
सौजन्य : *आउटलुक*

टीपू को अपने पिता, मैसूर के मुस्लिम शासक हैदर अली, की सेवा में काम कर रहे फ़्रांसीसी अधिकारियों द्वारा सैनिक रणकौशल का प्रशिक्षण मिला. 1767 में टीपू ने पश्चिमी भारत के कर्नाटक क्षेत्र में मराठों के विरुद्ध अश्वारोही सैनिकों की कमान संभाली और 1775 से 1779 के बीच कई बार मराठों से युद्ध किए. द्वितीय मैसूर युद्ध में उन्होंने कोलेरून नदी के तट पर (फ़र. 1782) कर्नल जॉन ब्रैथवेट को पराजित किया. उन्होंने दिसंबर 1782 में पिता का उत्तराधिकार संभाला, 1784 में अंग्रेज़ों के साथ संधि की और मैसूर के सुल्तान की उपाधि ग्रहण की. 1789 में उन्होंने अंग्रेज़ों के सहयोगी त्रावणकोर के राजा पर आक्रमण कर ब्रिटिश आक्रमण को उकसाया. उन्होंने दो वर्ष से अधिक समय तक अंग्रेज़ों से दूरी बनाए रखी, परंतु श्रीरंगपट्टम (मार्च 1792) की संधि के द्वारा उन्हें अपना आधा प्रभुत्व छोड़ना पड़ा. वह बेचैन थे और विकासवादी फ़्रांस से अपनी बातचीत का पता अंग्रेज़ों को लगने देने की भूल कर बैठे. इसी बहाने पर गवर्नर–जनरल लॉर्ड मॉर्निंगटन (बाद में मार्क्विस ऑफ़ वेलेज़ली) ने चौथा मैसूर युद्ध छेड़ दिया. टीपू की राजधानी श्रीरंगपट्टम पर ब्रिटिश नेतृत्व में सेनाओं ने धावा बोल दिया और टीपू अपने सैनिकों को युद्धरत छोड़कर मारे गए.

टीपू एक कुशल सेनानायक और प्रशासक थे और मुसलमान होने के बावजूद उन्होंने हिंदू प्रजा की निष्ठा हासिल की. वह अपने शत्रुओं के लिए एक क्रूर सिंह साबित हुए, परंतु उनमें अपने पिता जैसी निर्णय शक्ति की कमी थी.

टुटिकोरिन

शहर, दक्षिण तमिलनाडु राज्य, दक्षिण भारत. यह शहर मन्नार की खाड़ी के किनारे तिरुनेल्वेलि के पूर्व में स्थित है, जिससे यह सड़क व रेलमार्ग से जुड़ा हुआ है. 16वीं शताब्दी में एक छोटे मछुआरों के गांव से विकसित होकर टुटिकोरिन एक समृद्ध पुर्तगाली उपनिवेश बन गया और डच तथा ब्रिटिश रिहाइश के दौरान और भी विस्तृत हुआ. मद्रास (वर्तमान चेन्नई) के विकास के साथ इस बंदरगाह का ह्रास हुआ. 1960 के दशक के उत्तरार्द्ध से इसकी गोदी और भी गहरी हुई, भंडारण व मछली मारने की सुविधाएं बढ़ीं तथा उद्योगों का विस्तार हुआ. शहर का अधिकांश जल–परिवहन अब मूल बंदरगाह से लगभग 8 किमी दक्षिण–पूर्व में स्थित नए टुटिकोरिन से संभाला जाता है. यह भारत का एक प्रमुख बंदरगाह है, जो ज्वार के समय 8.25 मीटर गहरे जहाज़ों और भाटा के समय 9 मीटर वाले जहाज़ों को आश्रय दे सकता है. यहां से बड़ी मात्रा में कोयले का विनिमय और श्रीलंका के साथ व्यापार होता है. टुटिकोरिन में मदुरै–कामराज विश्वविद्यालय से संबद्ध कई महाविद्यालय हैं. जनसंख्या (2001) 2,16,058.

टेनिस

टेनिस कोर्ट में एक भारतीय खिलाड़ी
सौजन्य : *द हिंदू*

मूल नाम लॉन टेनिस, एक आयताकार कोर्ट पर खेला जाने वाला खेल, जिसमें दो (एकल) या चार (युगल) खिलाड़ी जाली वाले रैकेटों से एक गेंद को मैदान के बीच में लगे जाल या नेट के ऊपर से आर–पार फेंकते हैं. इसमें उद्देश्य गेंद को इस तरह मारना होता है कि प्रतिद्वंद्वी गेंद तक न पहुंच पाए या वह उसे सही ढंग से न लौटा पाए.

रैकेट और गेंद के खेल (जिनमें ग्रेट ब्रिटेन का रियल टेनिस, ऑस्ट्रेलिया का रॉयल टेनिस और संयुक्त राज्य का कोर्ट टेनिस शामिल हैं, सभी एक ही खेल हैं और चारदीवारी के भीतर खेले जाते हैं) 12वीं–13वीं सदी के एक फ्रांसीसी खेल *ज्यू द पॉम* (हथेलियों का खेल) से निकले हैं. 1873 में मेजर वॉल्टर विंगफ़ील्ड ने स्फ़ेरिस्टिक नामक खेल की खोज की, जिससे आधुनिक आउटडोर टेनिस विकसित हुआ. यह खेल ग्रेट ब्रिटेन में जल्दी ही लोकप्रिय हो गया और पूरे ब्रिटिश साम्राज्य में फैल गया. विंबल्डन ऑल इंग्लैंड क्रॉके क्लब ने बाद में लॉन टेनिस संज्ञा पद जोड़ा और इसने 1877 में पहली विश्व टेनिस चैंपियनशिप को प्रायोजित किया. अमेरिका में व्यावसायिक टेनिस 1927 में यूएस प्रोफ़ेशनल लॉन टेनिस एसोसिएशन की स्थापना के साथ शुरू हुआ. 1968 में टेनिस के प्रशासी निकाय, अंतर्राष्ट्रीय टेनिस महासंघ (1913 में स्थापित) ने टेनिस की खुली प्रतियोगिता को स्वीकृति दी, जिसने एक ही प्रतियोगिता में शौक़िया खिलाड़ियों को

पेशेवर खिलाड़ियों के विरुद्ध खेलने की अनुमति दे दी. वर्तमान में अंतर्राष्ट्रीय टीम प्रतियोगिताओं में पुरुषों के लिए डेविस कप (1900 में शुरू) और महिलाओं के लिए फ़ेडरेशन कप (1963 में शुरू) आते हैं. ब्रिटेन और अमेरिका की महिला टीमों के बीच खेली जाने वाली विटमैन कप (1923) प्रतियोगिता 1989 के बाद बंद कर दी गई. व्यक्तिगत खिलाड़ियों की बड़ी प्रतियोगिताएं ग्रैंड स्लैम बनाती हैं और यह ग्रैंड स्लैम ग्रेट ब्रिटेन (विंबल्डन), अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया और फ़्रांस की राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं से मिलकर बनता है. 1896 से 1924 तक टेनिस एक ओलिंपिक खेल था, 1988 में यह इन खेलों में फिर शामिल हो गया.

टेनिस कोर्ट का माप एकल खेलों के लिए 23.77 × 8.23 मीटर और युगल के लिए 23.77 × 10.97 मीटर होता है. मध्य में नेट की ऊंचाई तीन फ़ीट होती है और यह दोनों तरफ़ कोर्ट से तीन फ़ीट बाहर गड़े साढ़े तीन फ़ीट ऊंचे खंभों पर बंधा रहता है. टेनिस को मूलतः घास के कोर्ट के कारण 'लॉन टेनिस' कहा जाता था, जो अभी भी प्रचलन में है, लेकिन सबसे आम कोर्ट सामग्रियां मिट्टी (क्ले, ज़्यादातर जगहों पर हार्ड कोर्ट कहलाते हैं, यद्यपि अमेरिका में इस शब्द से आशय किसी भी सख़्त सतह से है), सीमेंट और कई गद्देदार डामरीकृत संजात और कृत्रिम सतहें हैं. टेनिस की गेंद दाबानुकूलित रबर क्रोड की बनी होती है, जिस पर उच्च गुणवत्ता वाला कपड़ा चढ़ा रहता है और इसका व्यास लगभग 68 मिमी और वज़न 56.7 ग्राम होता है.

खेल एक खिलाड़ी द्वारा बेसलाइन के पीछे से गेंद फेंकने (सर्व) के साथ शुरू होता है, जो उसे नेट के ऊपर से टप्पा मारकर तिरछी दिशा में सामने वाले सर्विस कोर्ट में पहुंचाने की कोशिश करता है. प्रत्येक खिलाड़ी पूरे खेल में सर्व करता है, लेकिन सर्विस प्रत्येक खिलाड़ी के बीच हर गेम के बाद बदलती रहती है. अंक यों गिने जाते हैं, 15, 30, 40 और गेम. यदि अंक 40–40 पर बराबर या ड्यूस है, तो खेल तब तक चलता रहता है, जब तक कोई एक प्रतियोगी दो अंकों की बढ़त न प्राप्त कर ले, हालांकि कुछ प्रतियोगिताओं में एक अंक के अंतर को भी स्वीकार किया जा सकता है. दो गेम की बढ़त के साथ छह गेम जीतने वाला पहला खिलाड़ी सेट जीत जाता है. पुरुषों की प्रतियोगिताओं में खेल के आधार पर तीन में से दो या पांच में से तीन सेट जीतने वाला पक्ष विजयी होता है; महिलाओं की प्रतियोगिताओं में तीन में से दो सेट जीतने वाला पक्ष मैच जीत जाता है. टेलीविज़न पर दिखाने के लिए सुविधाजनक बनाने की दृष्टि से 1970 के दशक की शुरुआत में मैचों की लंबाई कम करने की दृष्टि से कुछ प्रतियोगिताओं में टाइब्रेकर शुरू किया गया. यह आमतौर पर तब लागू किया जाता है, जब अंक 6–6 पर बराबर हों. ज़्यादातर प्रतियोगिताओं में 12 अंकों के टाइब्रेकर का इस्तेमाल किया जाता है, जिनमें 2 अंकों के अंतर के साथ पहले 7 अंकों पर पहुंचने वाला खिलाड़ी जीत जाता है.

भारत में टेनिस

टेनिस उन कुछ व्यक्तिगत खेलों में से एक है, जिनमें भारतीयों ने निरंतर देश को गौरवान्वित किया है. पिता–पुत्र की जोड़ी रामनाथन व रमेश कृष्णन, अमृतराज बंधु, विजय, आनंद व अशोक और निस्संदेह लिएंडर पेस व महेश भूपति की प्रसिद्ध युगल जोड़ी जैसे सितारों ने विश्व को समय–समय पर भारत के टेनिस कौशल की ओर ध्यान देने को प्रेरित किया है. भारत की पहली भागीदारी 1908 में हुई, जब सरदार निहाल सिंह विंबल्डन में खेले. यद्यपि निहाल सिंह पहले चक्र में हारकर कुछ भी उल्लेखनीय हासिल करने में असफल रहे, पर विंबल्डन भारतीयों के लिए हमेशा से ही विशेष रहा है और इसे सबसे ज़्यादा जानी–पहचानी खेल प्रतियोगिताओं में से एक माना जाता है. विंबल्डन में भारत की पहली बड़ी उपलब्धि 1939 में ग़ौस मुहम्मद का प्री–क्वॉर्टर फ़ाइनल में पहुंचना था. ग़ौस बॉबी रिग्स से हारे, जिन्होंने बाद में प्रतियोगिता जीती. तब से तीन भारतीय क्वॉर्टर फ़ाइनल तक पहुंचे हैं, लेकिन केवल एक रामनाथन कृष्णन अंतिम चार के स्तर तक पहुंच पाए. वरिष्ठ कृष्णन लगातार दो सालों तक, 1960 और 1961 में सेमीफ़ाइनल तक पहुंचे, लेकिन अंततः विजेता बनने वाले खिलाड़ियों क्रमशः नील फ़्रेज़र और रॉड लेवर से हार गए. ज़्यादातर आधुनिक खेलों की तरह भारत में अंग्रेज़ों ने टेनिस शुरू किया. लंबे समय तक यह खेल नागरिक सेवाओं और सशस्त्र बलों तक सीमित रहा. किंतु इस खेल ने 1940 के दशक के मध्य तक संगठनात्मक स्वरूप प्राप्त कर लिया और पहली राष्ट्रीय प्रतियोगिताएं 1946 में कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) में आयोजित की गईं. तब से टेनिस प्राथमिक रूप से दो शहरों, चेन्नई और कोलकाता की कहानी रहा है. यदि दक्षिणी महानगर ने कृष्णन और अमृतराज बंधुओं के स्तर के खिलाड़ी दिए हैं, तो कोलकाता ने जयदीप और चिरदीप जैसे मुखर्जी बंधु, नरेश कुमार, प्रेमजीत लाल और अब लिएंडर पेस सरीखे खिलाड़ी पैदा किए हैं. टेनिस की सबसे प्रतिष्ठित टीम प्रतियोगिता, डेविस कप, विश्व स्तर पर भारत की कई गौरवपूर्ण गाथाओं का मंच रही है. भारत तीन बार कई प्रसिद्ध टीमों को धराशायी करते हुए प्रतियोगिता के फ़ाइनल में पहुंचा है. 1966 में दो मैच से बराबर होते हुए, जब रामनाथन कृष्णन 2–5, 15–30 से पीछे थे, वह संघर्ष कर मैच में लौटे और टॉमस कॉच को हराया और भारत को ब्राज़ील पर 3–2 से विजय दिलाकर पहली बार फ़ाइनल में पहुंचने में मदद की. ऑस्ट्रेलिया की प्रसिद्ध टीम के सामने, भारतीय 1–4 से हार गए, लेकिन फ़ाइनल में पहुंचने में उन्होंने दुनिया को यह बता दिया कि विश्व के अग्रणी खिलाड़ियों के बिना भी एक टीम के रूप में वे एक शक्ति हैं. भारत आठ साल बाद फिर डेविस कप के फ़ाइनल में पहुंचा, जब अमृतराज बंधुओं ने शशि मेनन और जसजीत सिंह के साथ शक्तिशाली ऑस्ट्रेलिया को कलकत्ता में सेमीफ़ाइनल में हराया. यह मुक़ाबला दूसरे नंबर के सबसे लंबे मैच के लिए भी जाना जाता है, जब विजय और आनंद ने जॉन अलेक्ज़ेंडर और कॉलिन डिब्ली को एक थका देने वाले पांच सेटों में हराया, जो 4 घंटे 45 मिनट चला. भारत ने ऑस्ट्रेलिया को 1987 में सिडनी में सेमीफ़ाइनल में हराकर उनके अभियान को फिर से रोक दिया. भारत की जीत के नायक थे, रमेश कृष्णन, जिन्होंने अपने पिता के 1966 में दिखाए कारनामे को दोहराया. भारत हालांकि उस लय को बरक़रार नहीं रख पाया और फ़ाइनल में स्वीडन से 5–0 से पराजित हुआ. तब से भारत फ़ाइनल में नहीं पहुंच पाया है, लेकिन कई चमत्कारिक जीतें हासिल कर टेनिस जगत में अपनी छाप छोड़ चुका है.

विंबल्डन में भारत का हमेशा से विविधतापूर्ण इतिहास रहा है, जिसका सर्वोच्च बिंदु 1999 में आया. लिएंडर पेस और महेश भूपति नें फ्रेंच ओपन के बाद विंबल्डन पुरुष युगल का ख़िताब जीतकर लगातार दूसरा ग्रैंड स्लैम जीता और प्रतियोगिता में भारत का श्रेष्ठतम प्रदर्शन दर्ज किया. इसके पहले श्रेष्ठतम युगल प्रदर्शन रहा था 1976 में, जब आनंद व विजय अमृतराज और 1923 में एल.एस. डीन व ए.एच. फ़ैज़ी की टीमें सेमीफ़ाइनल में पहुंची थीं. 1973 के विंबल्डन में सात भारतीय मुक़ाबले में थे, विजय एवं आनंद अमृतराज, जयदीप व चिरदीप मुखर्जी, जसजीत सिंह, प्रेमजीत लाल और गौरव मिश्रा, किंतु सिर्फ़ विजय ही प्रतियोगिता में प्रभावशाली रहे. 1970 के दशक में ब्योर्न बोर्ग और जिमी कॉनर्स के साथ टेनिस के 'एबीसी' में गिने जाने वाले विजय जैन कोड्स से क्वॉर्टर फ़ाइनल में हार गए. अमृतराज ने 1973 में ही यूएस ओपन में भी अपना श्रेष्ठतम प्रदर्शन किया, जब वह क्वॉर्टर फ़ाइनल में पहुंचे. उनका कारनामा रमेश कृष्णन ने दुहराया, जो 1981 में और फिर 1987 में दो बार मैच के आख़िरी आठ सोपानों तक पहुंचे. रमेश पावर टेनिस के युग में धीमी सर्व के बावजूद, 1985 में कॅरियर के श्रेष्ठतम 23वें अनुक्रम के साथ 1980 के दशक में लगातार 10 सालों तक पहले 100 खिलाड़ियों में बने रहे. इस श्रेष्ठ खिलाड़ी ने अपना कॅरियर 1979 में जूनियर विंबल्डन और फ्रेंच ओपन ख़िताब जीतकर बड़े प्रभावी ढंग से शुरू किया. विजय एक बहुमुखी खिलाड़ी थे और वह 1974 से एक दशक से ज़्यादा समय तक पहले 50 में रहे और कॅरियर का उच्चतम 16वां अनुक्रम 1980 में हासिल किया.

1990 के दशक के उत्तरार्द्ध में भारतीय टेनिस की कहानी लिएंडर पेस और महेश भूपति के आसपास घूमती रही, जिन्होंने मिलकर 15 ए.टी.पी. टुअर ख़िताब जीते, जिनमें 1999 के तीन ग्रैंड स्लैम ख़िताब, फ्रेंच ओपन, विंबल्डन और यूएस ओपन शामिल थे. तब विश्व में पहले क्रम की यह जोड़ी 1999 में चौथे ग्रैंड स्लैम ऑस्ट्रेलियन ओपन के फ़ाइनल में हार गई. यद्यपि दोनों ने एकल क्षेत्र में बहुत कुछ हासिल नहीं किया, फिर भी पेस–भूपति टेनिस इतिहास की दूसरी सबसे सफल जोड़ी हैं. पेस ओलिंपिक इतिहास में किसी व्यक्तिगत खेल में कोई पदक जीतने वाले केवल दूसरे भारतीय हैं. पेस ने यह उपलब्धि वर्ष 2000 के सिडनी ओलिंपिक में हासिल की थी. सेमीफ़ाइनल में पहुंचने तक पेस ने उच्च क्रम के खिलाड़ियों, जैसे रिची रेनबर्ग, निकोलस परेरा और टॉमस एंक्विस्ट को हराया. उन्होंने इटली के फ़र्नेंडो मिगेलिनी को हराकर कांस्य पदक जीता.

इनकी सफलता ने मानो एक टेनिस क्रांति शुरू कर दी है और यह खेल भारत के छोटे क़स्बों तक पहुंच रहा है. देश के कई हिस्सों में अकादमियां खुल गई हैं और आज के बच्चे पेस और भूपति का अनुसरण करना चाहते हैं. गत समय के कुछ खिलाड़ियों, जैसे कृष्णन पिता–पुत्र और अमृतराज बंधुओं ने भारतीय टेनिस के भविष्य को संवारने की पहल की है और दोनों की चेन्नई में अकादमियां हैं. देश में कई प्रतियोगिताएं होती हैं. भारत में दक्षिण एशिया की एकमात्र ए.टी.पी. टुअर प्रतियोगिता गोल्ड फ़्लैक ओपन, चेन्नई में होती है, जो वर्ष 2001 में छठे साल में प्रवेश कर रही है. बोरिस बेकर जैसे चर्चित व्यक्तित्व और कैफ़ेलनिकोव व कार्लोस मोया जैसे सितारे यहां प्रशंसकों को उद्वेलित कर चुके हैं. खेल में रुचि होने के बावजूद हाल के सालों में बहुत प्रतिभाशाली खिलाड़ी नहीं निकले हैं. प्रह्लाद श्रीनाथ, सैयद फ़ज़लुद्दीन, कीर्तने बंधु, सभी कभी–कभी ही अच्छा खेले हैं और उल्लेखनीय सफलता प्राप्त नहीं कर पाए हैं.

टेबल टेनिस

पिंग–पॉन्ग (ट्रेडमार्क) भी कहलाता है, सैद्धांतिक रूप से यह लॉन टेनिस के समान ही है. इसे एक सपाट मेज़ पर, जो बिल्कुल बीचोंबीच चौड़ाई में बंधी एक जाली द्वारा दो बराबर भागों में विभाजित होती है, खेला जाता है. इस खेल में उद्देश्य यह होता है कि गेंद को इस तरह मारा जाए कि वह जाली के ऊपर से विपक्षी के पाले में टेबल के आधे हिस्से में कुछ इस तरह टप्पा खाए कि विपक्षी इसे ठीक तरह से लौटाने के लिए पहुंच ही नहीं पाए. हल्के वज़न की खोखली गेंद छोटे बल्लों (बैट या पैडल) द्वारा जाली के पार धकेली जाती है, जिन्हें खिलाड़ी हाथ में पकड़े होते हैं. यह खेल सारी दुनिया में लोकप्रिय है. कई देशों में यह प्रतियोगी खेल के तौर पर बहुत अच्छी तरह संगठित है, विशेषकर यूरोप में और एशिया में चीन व जापान में.

इतिहास

20वीं सदी के शुरुआती दिनों में इंग्लैंड में टेबल टेनिस का आविष्कार हुआ और इसका यह नाम तब स्वीकार किया गया, जब 1902 में गठित पुरानी पिंग–पॉन्ग एसोसिएशन को 1921–1922 में पुनर्जीवित किया गया. मूल संगठन 1905 में टूट गया था; यद्यपि खेल लंदन के बाहर इंग्लैंड के अन्य हिस्सों में खेला जाता रहा और 1920 तक कई देशों में खेला जाने लगा था. 1926 में जर्मनी, हंगरी और इंग्लैंड के प्रतिनिधियों की अगुआई में फ़ेडरेशन इंटरनेशनल डि टेनिस डि टेबल (इंटरनेशनल टेबल टेनिस फ़ेडरेशन) का गठन हुआ, जिसके संस्थापक सदस्य राष्ट्र थे, इंग्लैंड, स्वीडन, हंगरी, भारत, डेनमार्क, जर्मनी, चेकोस्लोवाकिया, ऑस्ट्रिया और वेल्स. 1990 के मध्य तक 165 से भी अधिक राष्ट्रीय संगठन इसके सदस्य बन चुके थे.
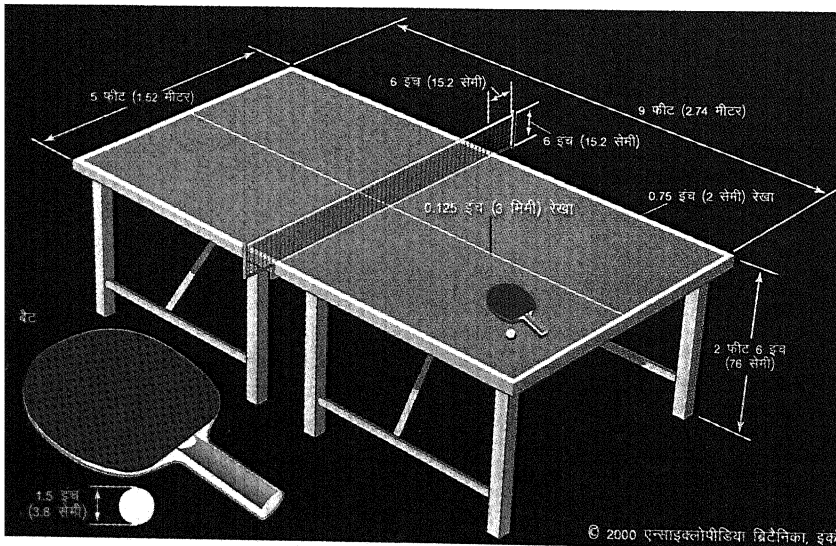
टेबल टेनिस की मेज़ और बल्ले की माप

पहली विश्व चैंपियनशिप 1927 में लंदन में आयोजित की गई और तब से 1939 तक इस खेल पर मध्य यूरोप के खिलाड़ियों का दबदबा रहा; पुरुषों की प्रतियोगिता हंगरी ने नौ बार और चेकोस्लोवाकिया ने दो बार जीती. दूसरे विश्व युद्ध के बाद 1953 तक चेकोस्लोवाकिया ने

चार बार और हंगरी ने दो बार यह प्रतियोगिता जीती. इन दोनों देशों ने इस खेल के कुछ महान खिलाड़ी दिए हैं.

1953–54 के दौरान एशिया चैंपियन खिलाड़ियों के पालने की तरह उभरा और उस समय के बाद से पुरुष दल की प्रतियोगिताएं या तो जापान या फिर चीन ही जीतता रहा है, जबकि महिलाओं की प्रतिस्पर्द्धा में भी जापान और चीन, भले ही कुछ कम सीमा तक, लेकिन छाए रहे. जापान ने कई महान खिलाड़ी दिए हैं, विशेषकर इंशिरो ओगिमूरा और तोशिया कि तनाका, दोनों दो बार विश्व चैंपियन रहे और चीन के पास भी चुआंग त्से–तुंग के रूप में तीन बार लगातार जीतने वाले खिलाड़ी रहे हैं.

चीन में सांस्कृतिक क्रांति (1966–69) के दौरान खेल निलंबित रहा, लेकिन 1971 तक उसने फिर प्रभुत्व जमाना शुरू किया और 1980 तक उसने इसे हासिल कर लिया. उत्तरी कोरिया भी एक अंतर्राष्ट्रीय शक्ति बन गया. 1980 में पहला विश्व कप आयोजित हुआ और चीन के गुओ युएहुआ ने 12,500 डॉलर का पहला पुरस्कार जीता. 1988 में टेबल टेनिस ओलिंपिक खेलों का हिस्सा हो गया, जिसमें पुरुषों और महिलाओं के लिए एकल और युगल प्रतियोगिताएं हुईं.

खेल

टेबल टेनिस खेल के उपकरण अपेक्षाकृत सरल और सस्ते हैं. 2.7 मीटर × 1.5 मीटर लंबा–चौड़ा टेबल आयताकार होता है, जिसकी सतह फ़र्श से 76 सेमी ऊपर बिल्कुल सीधी और सपाट होती है. इसकी जाली 1.8 मीटर लंबी होती है और इसकी ऊपरी ऊंचाई खेलने वाली सतह से पूरी लंबाई में 15 सेमी ऊपर होती है. गेंद गोल, खोखली, और सफ़ेद सेल्यूलॉइड की या फिर उसी तरह के प्लास्टिक (1969 से) की बनी होती है. गेंद का वज़न 2.5 ग्राम और व्यास 3.8 सेमी होता है. बैट का पल्ला आमतौर पर लकड़ी का बना, चपटा और सख़्त होता है तथा इसके दोनों ओर रबर के उभरे हुए बिंदुओं की परत या केवल रबर की पतली सपाट परत होती है, जिसके भीतर स्पंज लगा होता है. चाहे जो भी सामग्री इस्तेमाल की जाए, लेकिन बल्ले के दोनों तरफ़ अलग–अलग रंग होना चाहिए. बल्ला किसी भी आकार, वज़न अथवा आकृति का हो सकता है.

एक मैच बेस्ट ऑफ़ थ्री या बेस्ट ऑफ़ फ़ाइव गेम का होता है, जो भी खिलाड़ी पहले 21 अंक तक पहुंच जाता है, वह गेम जीत जाता है या वह खिलाड़ी विजेता बनता है, जो 20 अंक के बाद लगातार दो अंक हासिल करता है. एक अंक तब गिना जाता है, जब सर्विस करने वाला खिलाड़ी सही सर्विस करने में असफल होता है, जब दोनों खिलाड़ी गेंद लौटाने में असफल होते हैं या दोनों खिलाड़ी विशेष तरह की ग़लती कर बैठते हैं (खेलने वाली सतह को दूसरे खाली हाथ से उस समय स्पर्श कर लेना, जब खेल चल रहा हो). जब तक दोनों खिलाड़ियों के 20–20 अंक नहीं हो जाते, सर्विस हर पांच अंकों के बाद बदलती रहती है. उसके बाद हर बार एक अंक के बाद सर्विस बदली जाती है. सर्विस टेबल के अंतिम हिस्से के पीछे से की जाती है. सर्विस करने वाला गेंद को अपने एक हाथ की हथेली से ऊपर उछालता है और जैसे ही यह नीचे

आती है, खिलाड़ी उस पर इस तरह चोट करता है कि गेंद पहले उसके अपने पाले में टप्पा खाए और फिर जाली के ऊपर से गुज़रते हुए विपक्षी के पाले में टप्पा खाए. सर्विस करते हुए गेंद को अंगुलियों से किसी तरह घुमाया नहीं जा सकता. ऐसा हमेशा से नहीं था. अंगुलियों से गेंद घुमाने को लेकर विशेषकर अमेरिका में तो ऐसी स्थिति बन गई थी कि विशेषज्ञ ऐसी सर्विस करने लगे थे, जो विपक्षी लौटा नहीं पाते थे और खेल का मज़ाक बन गया था. अंगुलियों से गेंद को घुमाव देना 1937 से पूरे विश्व में निषिद्ध कर दिया गया. टेबल टेनिस रैकेट सामान्यतः दो तरह से पकड़ा जाता है. एक पकड़ रैकेट के साथ हाथ मिलाने वाली पकड़ होती है, जैसी कि लॉन टेनिस में होती है, सिवाय इसके कि टेबल टेनिस का रैकेट दस्ते के आख़िरी छोर से नहीं पकड़ा जाता. हाथ की तर्जनी अंगुली बल्ले के पीछे वाले हिस्से (बैक हैंड) पर टिकी रहती है और अंगूठा फ़ोरहैंड वाली बाजू पर टिका रहता है. कई एशियाई खिलाड़ी, जिनमें चीनी और जापानी खिलाड़ी शामिल हैं, 'पेन होल्डर' पकड़ का इस्तेमाल करते हैं, जिसमें दस्ता तर्जनी और अंगूठे के बीच उस तरह पकड़ा जाता है, जैसे कोई पेन पकड़ता है. 'पेन होल्डर' पकड़ वाला खिलाड़ी बल्ले के सामने वाले हिस्से से ही गेंद पर चोट करता है.

टेबल टेनिस खेल टेबल की दोनों तरफ़ खड़े एक–एक खिलाड़ियों के बीच खेला जाता है या प्रत्येक सिरे पर दो–दो खिलाड़ी भी हो सकते हैं, दोनों पुरुष हो सकते हैं या महिलाएं हो सकती हैं. दुनिया भर में महिलाओं के खेल संगठन पुरुष संगठनों के समान हैं व महिलाएं विश्व प्रतियोगिताओं में और अन्य आयोजित स्पर्द्धाओं में भाग लेती हैं. टेबल टेनिस पूरी तरह से संगठित खेल है और मनोरंजक खेल के तौर पर भी बहुत लोकप्रिय है. यह खेल सभी क़िस्मों के स्पोट्‌र्स क्लबों, सामाजिक संघों और गेम रूम्स, घरों में या घरों के बाहर, जहां माहौल अपेक्षाकृत शांत रहता है, खेला जाता है.

भारत में टेबल टेनिस

भारतीय टेबल टेनिस फ़ेडरेशन की स्थापना 1938 में हुई थी. भारत 1926–1927 में गठित अंतर्राष्ट्रीय टेबल टेनिस फ़ेडरेशन का एक संस्थापक सदस्य भी है. दिसंबर 1926 में हुई पहली टेबल टेनिस कांग्रेस में भाग लेने वाले भारतीय प्रतिनिधि, डॉ. ए.एच. फ़ैज़ी और ए.ए. फ़ैज़ी (जो डेविस कप में बतौर भारतीय भी खेले थे), इंग्लैंड में चिकित्सक थे और पहले अंतर्राष्ट्रीय नियमों और विधानों की स्थापना में शामिल थे. भारत ने अपनी पहली आधिकारिक टीम काहिरा में 1939 में हुई विश्व प्रतियोगिता में भेजी थी. भारतीय खिलाड़ियों ने 1926–1936 तक हुई बारह प्रतियोगिताओं में से आठ में भाग लिया था. शुरुआती प्रतियोगिताएं इंग्लैंड व अन्य यूरोपीय देशों के प्रवासियों और भारतीय विद्यार्थियों तक ही सीमित थीं. टी.टी.एफ़.आई. ने पहली राष्ट्रीय प्रतियोगिता 1958 में कलकत्ता में आयोजित की थी. एम. अय्यूब पुरुषों का पीथापुरम कप राष्ट्रीय एकल ख़िताब जीतने वाले पहले खिलाड़ी बने. बंबई में हुई प्रतियोगिता में उन्होंने यह ख़िताब लगातार दूसरे वर्ष भी जीता. त्रावणकोर कप के लिए 1939 में पहला महिला ख़िताब पी. लीमा ने जीता था. भारतीय टेबल टेनिस फ़ेडरेशन राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं के अलावा क्षेत्रीय प्रतियोगिताएं भी आयोजित करता है. संस्थागत प्रतियोगिताओं के अलावा अन्य निजी

प्रतियोगिताएं भी फ़ेडरेशन की राज्य इकाइयों द्वारा देश में खेल को बढ़ावा देने के लिए आयोजित की जाती हैं. टी.टी.एफ़.आई. अजमेर में एक टेबल टेनिस अकादमी चलाती है, जिसे पेट्रोलियम स्पोर्ट्स बोर्ड ने प्रायोजित किया है. सबसे अधिक राष्ट्रीय पुरस्कार कमलेश मेहता (पुरुष) और इंदु पुरी (महिला) ने जीते हैं. दोनों ने आठ–आठ बार इस ख़िताब को जीता है. कमलेश मेहता ने 1995 में जमशेदपुर में हुई प्रतियोगिता में फ़ाइनल में अरूप बसाक को हराते हुए अपने सात ही पदकों के रेकॉर्ड को तोड़ा था. इससे पहले उन्होंने गौतम दीवान के छह पदकों के रेकॉर्ड को 1994 में ध्वस्त कर दिया था. इसी तरह महिलाओं के वर्ग में इंदु पुरी ने 1972 से 1975 तक और 1979 से 1984 तक पदक जीते. इसके पहले सईदा सुलताना ने एकल ख़िताब छह बार जीता था. इनमें से पांच बार यह पदक उन्होंने लगातार 1949–53 तक के वर्षों में जीता था. सबसे अधिक टीम पदकों (पुरुष) का रेकॉर्ड महाराष्ट्र 'ए' के नाम है. यह एक ऐसी अकेली टीम है, जिसने राष्ट्रीय ख़िताब 1986–89 में चार लगातार वर्षों तक जीता है. महिलाओं के वर्ग में महाराष्ट्र ने कोर्बिलियन कप के लिए राष्ट्रीय टीम पदक 14 बार जीता है. यह प्रतियोगिता पहली बार 1946 में चेन्नई में आयोजित की गई थी. बंबई ने 1946 में ख़िताब जीता और 1952 तक उसकी टीम अविजित रही. मिश्रित युगल ख़िताब पर सबसे लंबे समय तक राज बंबई के फ़र्रोख़ खोदायजी और केटी चार्जमेन का रहा, जिन्होंने सुसन बर्ना कप पहली बार 1965 में और बाद के पांच वर्षों तक लगातार (1967–71) जीता. रिंकू गुप्ता ने 1988 में हुई राष्ट्रीय प्रतियोगिता में जूनियर और सीनियर, दोनों वर्गों में ख़िताब जीता था. कस्तूरी चक्रवर्ती ने यही चमत्कार जम्मू में हुई 1998 की राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में दुहराया. पौलोमी घटक ने 1999 में जालंधर और चेन्नई में हुई राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में ऐसा ही सम्मान हासिल किया. कस्तूरी चक्रवर्ती ने 1998 में हुई राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में 12 वर्ष की उम्र में सभी राष्ट्रीय पुरस्कार अपनी झोली में डालने का विशेष सम्मान हासिल किया था. अंतर्राष्ट्रीय मंच पर श्रेष्ठ विश्व रैंकिंग फ़ार्रोख़ खोदायजी को मिली, जिन्हें आई.टी.टी.एफ़. ने 1967 में 28वां क्रम दिया गया था. महिलाओं के वर्ग में 1985 में इंदु पुरी को 63वां क्रम दिया गया था. सर्वोच्च एशियाई (8) और राष्ट्रमंडल रैंकिंग (2) का कीर्तिमान इंदु पुरी के नाम पर है. वह पहली ऐसी भारतीय खिलाड़ी हैं, जिन्होंने एक विश्व चैंपियन खिलाड़ी को परास्त किया है. उन्होंने 1978 में कुआलालंपुर में हुई एशियाई चैंपियनशिप में उत्तरी कोरिया की पार्क युंग सन को हराया था. अगला श्रेष्ठ प्रदर्शन चेतन बबूर ने 1971 में किया और उन्होंने पुणे में एशिया कप के फ़ाइनल में खेलने की योग्यता सर्वोच्च वरीयता प्राप्त और विश्व के 49वें क्रम के खिलाड़ी चीन के लिन झियांग को हराकर हासिल की. हालांकि अंतिम मुक़ाबले में वह चीन के गुओ केली से हार गए थे. चेतन ने विश्व के नंबर एक खिलाड़ी चीन के लिऊ गुओलियांग को पहली एशियाई टॉप–12 प्रतियोगिता में, जो ईरान के किश द्वीप में मार्च 1999 में हुई थी, हराया था. यह अब तक की भारत के पुरुष टेबल टेनिस के इतिहास में सबसे महान सफलता थी. राष्ट्रमंडल खेलों में भारत का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन तब हुआ, जब मीर क़ासिम अली 1977 में फ़ाइनल में पहुंचे और फिर कमलेश मेहता ने यही प्रदर्शन 1991 में दुहराया.

टेबल टेनिस के अर्जुन पुरस्कार विजेता खिलाड़ी– जे.सी. वोरा (1961); जी.आर. दीवान (1956); उषा सुंदरराज (1966); फ़ार्रोख़ खोदायजी (1967); मीर क़ासिम अली (1969); जी. जगन्नाथ

(1970); केटी एफ़. खोदायजी (1971); एन.आर. बाजा (1973); शैलजा सालोके (1976); इंदु पुरी (1979–80); मंजीत दुआ (1980–81); वी. चंद्रशेखर (1982); कमलेश एन. मेहता (1985); मोनालिसा बी. मेहता (1987); नियति शाह (1989); मनमीत सिंह वालिया (1990); चेतन बबूर (1997); और रमण (1998).

टेराकॉटा

(इतालवी शब्द, अर्थात पकी हुई मिट्टी), इसका शाब्दिक अर्थ आग में पकाई गई किसी भी प्रकार की मिट्टी है. यद्यपि साधारण उपयोग में इसका अर्थ किसी वस्तु से लगाया जाता है, जैसे बर्तन, प्रतिमा या कोई संरचना, जिन्हें अपरिष्कृत और रंध्रित मिट्टी से बनाया जाता है. पकाने के बाद इनका रंग हल्का गेरुआ लाल हो जाता है. इनमें चमक नहीं होती. टेराकॉटा की अधिकांश वस्तुएं सस्ती, बहुउपयोगी तथा टिकाऊ होने के कारण लोकप्रिय हैं.

इस्तकला संग्रहालय, नई दिल्ली में टेराकॉटा हस्तशिल्प
सौजन्य : युसूफ़ सईद

टेरेसा

पूरा नाम कलकत्ता की मदर टेरेसा, मूल नाम अग्नान गोनाक्सा बोज़ाक्सिऊ, (ज.–27 अग. 1910, श्कप, अल्बेनिया, ऑटोमान एंपायर {वर्तमान स्कपजे, युगोस्लाविया}; मृ.–5

मदर टेरेसा
सौजन्य : *द हिंदू*

सितं. 1997, कलकत्ता {वर्तमान कोलकाता}, भारत), भारत के निर्धनों और बेसहारा लोगों को समर्पित महिलाओं के रोमन कैथॅलिक समूह, ऑर्डर ऑफ़ मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटी, की संस्थापक और 1979 के नोबेल शांति पुरस्कार व 1980 में भारत रत्न से सम्मानित.

एक अल्बेनियाई किराना दुकानदार की बेटी अग्नान 1928 में इंस्टिट्यूट ऑफ़ ब्लेसेड वर्जिन *मेरी* में शामिल होने के लिए आयरलैंड गईं, जहां से सिर्फ़ छह सप्ताह बाद एक शिक्षक के रूप में उन्होंने भारत के लिए समुद्री यात्रा की. यहां उन्होंने कलकत्ता में ग़रीबों के लिए काम करने की अनुमति दिए जाने का आग्रह किया. 1930 में उन्हें 16वीं सदी के स्पेनिश संत, एविला के संत टेरेसा के सम्मान में टेरेसा नाम दिया गया.

नर्सिंग की शिक्षा प्राप्त करने के बाद मदर टेरेसा झुग्गियों में काम करने लगीं. उनकी याचना पर नगरपालिका प्रशासन ने उन्हें पवित्र काली मंदिर के पास एक धर्मशाला प्रदान की, जहां उन्होंने 1948 में अपने ऑर्डर की शुरुआत की. जल्द ही सहानुभूत लोग उनकी सहायता के लिए एकत्र हो गए. चिकित्सालय और खुले विद्यालय स्थापित किए गए. मदर टेरेसा ने भारतीय नागरिकता ग्रहण की और उनकी भारतीय सहायिकाएं (नन) साड़ी पहनने लगीं. 1950 में उनके ऑर्डर को पोप पायस XII द्वारा धार्मिक मान्यता मिली और 1965 में यह धर्माध्यक्षीय सभा बन गया (सिर्फ़ पोप के प्रति जवाबदेह). इस ऑर्डर ने दृष्टिहीनों, वृद्धों, कुष्ठरोगियों, अपंगों और मरणासन्न व्यक्तियों की सेवा के लिए कई केंद्र स्थापित किए. 1952 में उन्होंने मरणासन्न ग़रीबों के लिए एक गृह– निर्मल हृदय होम फ़ॉर डाइंग डेस्टीट्यूट्स –की स्थापना की. मदर टेरेसा के मार्गदर्शन में मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटी ने भारत में आसनसोल के पास कुष्ठरोगियों की एक बस्ती का निर्माण किया, जिसे शांति नगर नाम दिया गया.

1963 में भारत सरकार ने मदर टेरेसा को भारत के लोगों के प्रति उनकी सेवा के लिए पद्मश्री से सम्मानित किया. 1964 में अपनी भारत यात्रा के दौरान पोप पॉल VI ने उन्हें अपनी समारोही लिमोज़िन गाड़ी प्रदान की, जिसे उन्होंने तुरंत ही कुष्ठरोगियों की बस्ती के लिए धन जुटाने हेतु बेच दिया. 1968 में उन्हें रोम में एक गृह की स्थापना के लिए बुलाया गया, जिसमें प्राथमिक तौर पर भारतीय नन ही रखी गईं. उनके धर्म प्रचार के कार्यों के लिए 6 जनवरी 1971 को पोप पॉल ने उन्हें *पहला* पोप जॉन XXIII शांति पुरस्कार प्रदान किया. 1985 में उन्हें राष्ट्रपति रीगन द्वारा अमेरिका का सर्वोच्च नागरिक सम्मान मेडल ऑफ़ फ़्रीडम प्रदान किया गया. 1996 में वह अमेरिका की मानद नागरिकता पाने वाली चौथी हस्ती थीं. मदर टेरेसा ने निर्धनों और ज़रूरतमंदों की ममतापूर्ण सेवा के लिए एक ज़्यादा बड़ा अंतर्राष्ट्रीय मंच प्राप्त किया. 1970 के दशक के अंत तक मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटी में 1,000 से अधिक नन थीं, जो कलकत्ता के 60 केंद्रों और श्रीलंका, तंज़ानिया, जॉर्डन, वेनेज़ुएला, ग्रेट ब्रिटेन और ऑस्ट्रेलिया समेत विश्व भर के 200 से अधिक केंद्रों में कार्यरत थीं. बाद के वर्षों में उन्होंने कामकाजी महिलाओं, तलाक़, गर्भनिरोध तथा गर्भपात के ख़िलाफ़ अपना

विरोध सार्वजनिक रूप से व्यक्त करना शुरू कर दिया और अक्सर चुपचाप वह अपने सामान्य प्रभाव क्षेत्र से बाहर राजनीतिक चर्चाओं में शामिल हो जाती थीं. दिनोंदिन बढ़ते हृदय रोग से पीड़ित मदर टेरेसा ने 1990 में सुपीरियर जनरल के पद से इस्तीफ़ा दे दिया, लेकिन उन्हें अंततः मार्च 1997 में भारतीय मूल की सिस्टर निर्मला को अपना उत्तराधिकारी चुन लिए जाने तक इस पद पर मजबूरन बने रहना पड़ा. सितंबर 1997 में उनके देहावसान पर भारत सरकार ने उन्हें एक विस्तृत समारोहपूर्ण राजकीय अंत्येष्टि का सम्मान दिया, जो 'भारत की गटर की संत' के सादगीपूर्ण जीवन के ठीक विपरीत था.

टैगोर, देबेंद्रनाथ

बांग्ला भाषा में नाम देबेंद्रनाथ ठाकुर, (ज.–15 मई 1817, कलकत्ता {वर्तमान कोलकाता}, भारत; मृ.–19 जन. 1905, कलकत्ता), हिंदू दार्शनिक तथा धर्म सुधारक, ब्रह्म समाज में सक्रिय, जिन्होंने हिंदू धर्म और जीवन शैली को कई कुरीतियों से मुक्ति दिलाई.

एक संपन्न ज़मींदार परिवार में जन्मे टैगोर ने नौ वर्ष की आयु में औपचारिक शिक्षा प्रारंभ की; उन्होंने भारत की शास्त्रीय भाषा संस्कृत के साथ–साथ फ़ारसी, अंग्रेज़ी और पश्चिमी दर्शनशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की. उम्र में उनसे छोटे, अपने साथी समाज सुधारक केशब चंद्र सेन से उनकी गहरी मित्रता हो गई. टैगोर ने उस समय, विशेषकर बंगाल में प्रचलित सती प्रथा का उग्र विरोध किया. टैगोर और सेन ने भारत में साक्षरता दर बढ़ाने और शिक्षा तक सबकी पहुंच बनाने के लिए मिलकर प्रयास किए. लेकिन सेन के विपरीत टैगोर अधिक शुद्धतावादी हिंदू बने रहे, जबकि सेन ईसाई धर्म की ओर प्रवृत्त हो गए. इन दोनों व्यक्तियों के बीच वैचारिक मतभेद का परिणाम अंततः 1866 में ब्रह्म समाज में फूट के रूप में परिलक्षित हुआ.

हिंदू धर्म की मूर्तिपूजा और विभेदकारी एवं अलोकतांत्रिक रिवाजों को मिटाने के उत्साह में अंततः टैगोर ने प्राचीन हिंदू शास्त्र, समस्त वेदों को यह कहते हुए ख़ारिज कर दिया कि कोई भी अभिलेख, चाहे वह कितना भी सम्माननीय क्यों न हो, मानव क्रियाकलापों के लिए संपूर्ण और संतोषजनक दिशा–निर्देश उपलब्ध नहीं करा सकता. पूर्णतावादी विवेकवाद और कट्टर ब्राह्मण शुद्धतावाद के बीच का मार्ग ढूंढ़ने में विफल होने पर टैगोर ने सार्वजनिक जीवन का परित्याग कर दिया, हालांकि उन्होंने मुट्ठी भर अनुयायियों को निर्देश देना जारी रखा. 1863 में उन्होंने बंगाल के ग्राम्यांचल में शांतिनिकेतन की स्थापना की, जिसे बाद में उनके कवि पुत्र रबींद्रनाथ टैगोर के कारण ख्याति मिली. वहां स्थित रबींद्रनाथ का शिक्षा–केंद्र अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय बन गया. जीवनपर्यंत टैगोर महर्षि की उपाधि धारण किए रहे.

टैगोर ने अपनी मातृभाषा बांग्ला में बहुत लिखा है. उनकी एक पुस्तक का *वेदांतिक डॉक्ट्रिन्स विंडिकेटेड* (1845) शीर्षक से अंग्रेज़ी में अनुवाद हुआ. उनकी कृति *ब्रह्मोधर्म* (1854, ईश्वर का धर्म), जो संस्कृत अभिलेखों की बांग्ला भाषा में टीका है, को उत्कृष्ट रचना माना जाता है.

टैगोर, रबींद्रनाथ

रबींद्रनाथ टैगोर
ई.बी. इंकॉ.

बांग्ला भाषा में रबींद्रनाथ ठाकुर, (ज.–7 मई 1861, कलकत्ता {वर्तमान कोलकाता}, भारत; मृ.–7 अग. 1941, कलकत्ता), बांग्ला कवि, कहानीकार, गीतकार, नाटककार, निबंधकार और चित्रकार, जिन्हें 1913 में साहित्य के लिए नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया. टैगोर ने बांग्ला साहित्य में नए गद्य और छंद तथा लोकभाषा के उपयोग की शुरुआत की और इस प्रकार शास्त्रीय संस्कृत पर आधारित पारंपरिक प्रारूपों से उसे मुक्ति दिलाई. भारतीय संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ रूप से पश्चिमी देशों का परिचय और पश्चिमी देशों की संस्कृति से भारत का परिचय कराने में उनकी बड़ी भूमिका रही तथा आमतौर पर उन्हें आधुनिक भारत का असाधारण सृजनशील कलाकार माना जाता है.
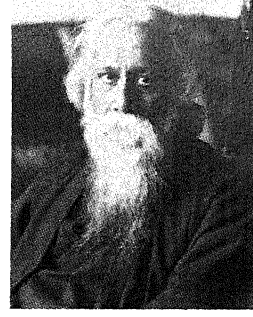
धर्म सुधारक देबेंद्रनाथ टैगोर के पुत्र रबींद्रनाथ ने बहुत कम आयु में काव्य लेखन प्रारंभ कर दिया था. 1870 के दशक के उत्तरार्द्ध में वह इंग्लैंड में अध्ययन अधूरा छोड़कर भारत लौट आए. भारत में रबींद्रनाथ टैगोर ने 1880 के दशक में कविताओं की अनेक पुस्तकें प्रकाशित कीं तथा *मानसी* (1890) की रचना की. यह संग्रह उनकी प्रतिभा की परिपक्वता का परिचायक है. इसमें उनकी कुछ सर्वश्रेष्ठ कविताएं शामिल हैं, जिनमें से कई बांग्ला भाषा में अपरिचित नई पद्य शैलियों में हैं. साथ ही इसमें समसामयिक बंगालियों पर कुछ सामाजिक और राजनीतिक व्यंग्य भी है.

सियालदह और शज़ादपुर स्थित अपनी ख़ानदानी जायदाद के प्रबंधन के लिए 1891 में टैगोर 10 वर्ष तक पूर्वी बंगाल (वर्तमान बांग्लादेश) में रहे. वहां वह अक्सर पद्मा नदी (गंगा नदी) पर एक हाउस बोट में ग्रामीणों के निकट संपर्क में रहते थे और उन ग्रामीणों की निर्धनता व पिछड़ेपन के प्रति टैगोर की संवेदना उनकी बाद की रचनाओं का मूल स्वर बनी. उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानियां, जिनमें 'दीन–हीनों का जीवन और उनके छोटे–मोटे दुख' वर्णित हैं, 1890 के बाद की हैं और इनकी मार्मिकता में हल्का सा विडंबना का पुट है, जो टैगोर की निजी विशेषता है तथा जिसे निर्देशक सत्यजीत राय अपनी बाद की फ़िल्मों में कुशलतापूर्वक पकड़ पाए हैं. राष्ट्रगान के रचयिता टैगोर को बंगाल के ग्राम्यांचल से प्रेम था और इनमें भी पद्मा नदी उन्हें सबसे अधिक प्रिय थी, जिसकी छवि उनकी कविताओं में बार–बार उभरती है. इन वर्षों में उनके कई कविता संग्रह और नाटक आए, जिनमें *सोनार तरी* (1894; *सुनहरी नाव*) तथा *चित्रांगदा* (1892) उल्लेखनीय हैं. वास्तव में, टैगोर की कविताओं का अनुवाद लगभग असंभव है और बांग्ला समाज के सभी वर्गों में आज तक जनप्रिय उनके 2,000 से अधिक गीतों, जो 'रबींद्र संगीत' के नाम से जाने जाते हैं, पर भी यह लागू होता है.

1901 में टैगोर ने पश्चिम बंगाल के ग्रामीण क्षेत्र में स्थित शांतिनिकेतन में एक प्रायोगिक विद्यालय की स्थापना की, जहां उन्होंने भारत और पश्चिमी परंपराओं के सर्वश्रेष्ठ को मिलाने का प्रयास किया. वह विद्यालय में ही स्थायी रूप से रहने लगे और 1921 में यह विश्व भारती विश्वविद्यालय बन गया. 1902 तथा 1907 के बीच उनकी

पत्नी तथा दो बच्चों की मृत्यु से उपजा गहरा दुख उनकी बाद की कविताओं में परिलक्षित होता है, जो पश्चिमी जगत में *गीतांजलि, सॉन्ग ऑफ़रिंग्स* (1912) के रूप में पहुंचा. टैगोर के *गीतांजलि* (1910) समेत बांग्ला काव्य संग्रहों से ली गई कविताओं के अंग्रेज़ी गद्यानुवाद की इस पुस्तक की डब्ल्यू.बी. यीट्स और आंद्रे जीद ने प्रशंसा की और इसके लिए टैगोर को 1913 में नोबेल पुरस्कार मिला. 1915 में टैगोर को नाइट की उपाधि दी गई, लेकिन 1919 में अमृतसर नरसंहार के विरोध में उन्होंने इसे लौटा दिया. 1912 से टैगोर ने लंबी अवधियां भारत से बाहर बिताईं. वह यूरोप, अमेरिका और पूर्वी एशिया के देशों में व्याख्यान देते व काव्य पाठ करते रहे और भारत की स्वतंत्रता के मुखर प्रवक्ता बन गए. हालांकि टैगोर के उपन्यास उनकी कविताओं और कहानियों जैसे असाधारण नहीं हैं, लेकिन वे भी उल्लेखनीय हैं; इनमें सबसे लोकप्रिय है *गोरा* (1910) और *घरे–बाइरे* (1916; *घर और बाहर*). 1920 के दशक के उत्तरार्द्ध में टैगोर ने चित्रकारी शुरू की और कुछ ऐसे चित्र बनाए, जिन्होंने उन्हें समकालीन अग्रणी भारतीय कलाकारों में स्थापित कर दिया.

टोंक

शहर, पूर्वी राजस्थान राज्य, पश्चिमोत्तर भारत. यह बनास नदी के ठीक दक्षिण में स्थित है. भूतपूर्व टोंक रियासत की राजधानी रह चुके इस शहर की स्थापना 1643 में हुई थी और यह एक छोटी पर्वत श्रृंखला की ढलानों पर अवस्थित है. इसके ठीक दक्षिण में क़िला और नए बसे क्षेत्र हैं. टोंक इस क्षेत्र का प्रमुख कृषि बाज़ार एवं निर्माण केंद्र है. सूती वस्त्र बुनाई, ऊन की धुनाई, चर्मशोधन और नमदा बनाने की हस्तकला यहां के मुख्य उद्योग हैं. इस शहर में कई अस्पताल और उद्यान तथा राजस्थान विश्वविद्यालय से संबद्ध एक सरकारी महाविद्यालय है.

सुनहरी कोठी के खंभों पर सोने और लाजवर्द का काम, टोंक, राजस्थान
सौजन्य : यूसुफ़ सईद

आसपास का क्षेत्र मुख्यतः खुला और समतल है, जिसमें बिखरी हुई चट्टानी पहाड़ियां हैं. ज्वार, गेहूं, चना, मक्का, कपास और तिलहन यहां की मुख्य फ़सलें हैं. यहां मुर्ग़ीपालन व मत्स्य पालन होता है तथा अभ्रक व बेरीलियम का खनन होता है. भूतपूर्व टोंक रियासत में राजस्थान एवं मध्य भारत के छह अलग–अलग क्षेत्र आते थे, जिन्हें पठान सरदार अमीर ख़ां ने 1798 से 1817 के बीच हासिल किया था. 1948 में यह राजस्थान राज्य का अंग बना. जनसंख्या (2001) 1,35,663; ज़िला कुल 12,11,343.

टोडा

दक्षिण भारत में नीलगिरि पहाड़ियों की एक पशुपालक जनजाति. 1960 के दशक में इनकी संख्या लगभग 800 थी, जो अब बेहतर स्वास्थ्य सुविधाओं के कारण तेज़ी से बढ़ रही है. टोडा भाषा द्रविड़ परिवार की भाषा है, किंतु उसमें बाद में सबसे ज्यादा विकृतियां आईं.

टोडा तीन से लेकर सात छोटी–छोटी झोपड़ियों वाली ऐसी बस्तियों में रहते हैं, जो चरागाह ढलानों पर दूर–दूर तक बिखरी होती हैं. इनकी झोपड़ियां लकड़ी के ढांचों पर खड़ी होती हैं तथा छतें अर्द्धबेलानाकार व कमानीदार होती हैं. टोडा लोग अपना परंपरागत दूध का धंधा और बरू व बांस की वस्तुओं का विनिमय कर नीलगिरि के अन्य लोगों, जैसे बडगा से अनाज, कपड़ा तथा कोटा से औज़ार व मिट्टी के बर्तन लेते हैं. टोडा शवयात्रा में बाजा बजाने का काम कुरुंबा नामक वनवासी करते हैं तथा यही उन्हें अन्य वनोपजों की आपूर्ति भी करते हैं.

टोडा जनों का धर्म उनके लिए सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण भैसों के इर्द–गिर्द केंद्रित है. दूध निकालने से लेकर पशुओं को नमक, चारा खिलाने और दही मथने, मक्खन निकालने तथा मौसम के अनुसार चरागाहों के बदलने तक, सारी क्रियाओं के साथ कोई न कोई धार्मिक अनुष्ठान जुड़ा रहता है. इसके अलावा, गोपालकों के पुरोहितों के आदेश तथा गौशालाओं के पुनर्निर्माण, अंत्येष्टि स्थलों की छतों की मरम्मत आदि के लिए भी अनुष्ठान होते हैं. ये अनुष्ठान तथा विस्तृत अंत्येष्टि क्रियाएं सामाजिक संपर्क के ऐसे अवसर होते हैं, जब समुदाय के लिए उपयोगी भैंसों के प्रति संकेत करते हुए जटिल काव्यात्मक गीत रचे और गाए जाते हैं.

बहुपति विवाह सामान्य है; अनेक पुरुषों, सामान्यतः भाइयों, की एक ही पत्नी हो सकती है. जब भी कोई टोडा स्त्री गर्भवती होती है, उसके पतियों में से कोई एक उसे आनुष्ठानिक रूप से तीर और कमान का खिलौना भेंट करता है और उसके बच्चे का सामाजिक पिता होने की घोषणा करता है.

टोडा चरागाहों की बहुत सी ज़मीन हाल ही में अन्य लोगों द्वारा खेती के लिए ले ली गई है और उसमें से बड़े हिस्से पर वृक्षारोपण भी किया जा चुका है. इससे भैंसों की संख्या कम हो रही है, जिससे टोडा संस्कृति को ख़तरा उत्पन्न हो गया है. 20वीं सदी में एक पृथक टोडा समुदाय ने (1960 में 187 लोगों ने) ईसाई धर्म अपना लिया.
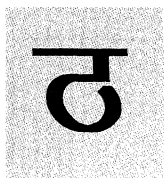
ठग

(संस्कृत में स्थग, अर्थात चोर, बदमाश), पेशेवर हत्यारों के सुसंगठित परिसंघ के सदस्य, जो सैकड़ों वर्षों तक दल बनाकर भारत भर में घूमते रहे. (ठगों का सबसे पुराना प्रामाणिक विवरण ज़ियाउद्दीन बरनी की कृति *तारीख़े फ़िरोज़शाही* में मिलता है, जो लगभग 1356 की है). ठग चालाकी से राहगीरों का विश्वास प्राप्त कर लेते थे और उनके साथ शामिल हो जाते थे. मौक़ा पाकर वे उनके गले में रूमाल या फंदा डालकर उनकी हत्या कर देते थे और उनका माल लूटकर उन्हें दफ़ना देते थे. यह सब कुछ विशेष धार्मिक अनुष्ठानों के बाद प्राचीन और कठोर नियमों के अनुसार किया जाता था, जिसमें गैंती का पवित्रीकरण और शक्कर का अर्पण प्रमुख था. हालांकि ठग अपनी उत्पत्ति सात मुस्लिम जनजातियों से मानते थे, लेकिन हिंदू शुरू से ही उनसे जुड़ गए थे. बहरहाल, उनके द्वारा विध्वंस की देवी काली की पूजा जैसे आचार तथा धार्मिक मान्यताएं किसी भी तरह इस्लाम के प्रभाव को नहीं दर्शाती हैं. यह बिरादरी अपनी गुप्त बोली रमसी तथा संकेतों का उपयोग करती थी, जिससे इसके सदस्य एक–दूसरे को पहचानते थे.

हालांकि इन दलों को समाप्त करने के यदा–कदा प्रयास किए गए, लेकिन इस व्यवस्था को गंभीर चोट तब पहुंची, जब लॉर्ड विलियम बेंटिंक (भारत के गवर्नर–जनरल, 1833–35) ने इनके ख़िलाफ़ कठोर क़दम उठाए. उनके प्रमुख दूत कैप्टन विलियम स्लीमैन ने कई रियासतों में अधिकारियों की मदद से इस परेशानी को हल करने में इतनी सफलता प्राप्त की कि 1831 से 1837 के बीच कम से कम 3,266 ठग पकड़े गए, जिनमें से 412 को फांसी दे दी गई, 483 सरकारी गवाह बन गए तथा अन्य सभी को देश निकाला या आजीवन कारावास की सज़ा दी गई. इसके बाद यह बिरादरी समाप्त हो गई.

ठाणे

शहर, भूतपूर्व थाना, महाराष्ट्र राज्य, दक्षिण–पश्चिम भारत, उल्हास नदी के मुहाने पर, मुंबई (भूतपूर्व बंबई) के पूर्वोत्तर में. यह पहले मुंबई का एक आवासीय उपनगर था. ठाणे अब रसायन, इंजीनियरिंग उत्पाद एवं वस्त्र का विशाल औद्योगिक केंद्र बन गया है. यहां पर अनेक ऐतिहासिक भवन हैं, जिनमें एक क़िला और कई चर्च शामिल हैं. जनसंख्या (2001) न.नि. क्षेत्र 12,61,517.

ठाणे ज़िला

ज़िला, महाराष्ट्र राज्य, दक्षिण–पश्चिमी भारत. ज़िले का पूर्वी भाग पहाड़ी है, जहां प्रमुख रूप से जनजातीय समुदायों का निवास है. पश्चिमी हिस्से में इन पहाड़ियों ने नदी घाटियों को विकसित किया है. ये घाटियां तटीय क्षेत्रों में मिल गई हैं, जहां उगने वाले चावल और फलों के लिए घोलवाड़ विख्यात है. मछलीपालन यहां का प्रमुख व्यवसाय है. उल्हास नदी मुहाने के दक्षिण और उल्हास घाटी के ऊपरी हिस्से में ज़िले के कुछ प्रमुख शहर स्थित हैं, जो भीड़ और कोलाहल से भरे हैं. ये हैं : भिवंडी (हथकरघों के लिए प्रसिद्ध), कल्याण (रेलवे जंक्शन), उल्हासनगर (प्रवासी सिंधियों की आबादी), अंबरनाथ (रसायन उत्पादन के लिए प्रसिद्ध), वसई (समुद्र तट पर बसे होने व क़िले के लिए प्रसिद्ध), पालघर (फलों के लिए प्रसिद्ध), तारापुर (भारत का पहला परमाणु विद्युत केंद्र) और दाहानु (एक शैक्षणिक केंद्र). जनसंख्या (2001) ज़िला कुल 81,28,833.

डफला

बंगनी भी कहलाते हैं, पूर्वी भूटान और अरुणाचल प्रदेश (भूतपूर्व नॉर्थ–ईस्ट फ्रंटियर एजेंसी, नेफ़ा) के जनजातीय लोग. ये लोग चीनी–तिब्बती परिवार की तिब्बती–बर्मी भाषा बोलते हैं.

डफला अपना भरण–पोषण झूम खेती, शिकार और मछली मारकर करते हैं. ये 900 से 1,800 मीटर की ऊंचाई पर बल्लियों पर बने मकानों में रहते हैं. वंश का निर्धारण पैतृक आधार पर किया जाता है, जो 60 या 70 लोगों का एक कुटुंब हो सकता है. यह कुटुंब एक लंबे घर में एक साथ रहता है, जिसमें विभाजित खंड नहीं होते, लेकिन प्रत्येक दंपति के परिवार के लिए एक अलग चूल्हा होता है. इस परंपरागत पितृगृह के अलावा कोई औपचारिक सामाजिक संगठन अथवा ग्राम सरकार नहीं होती. इनके धर्म में प्रकृति से जुड़ी पवित्र आत्माओं में विश्वास सम्मिलित है.

डलहौज़ी

नगर, औपनिवेशिक भारत के ब्रिटिश गवर्नर–जनरल लॉर्ड डलहौज़ी के नाम पर, पश्चिमोत्तर हिमाचल प्रदेश राज्य, उत्तरी भारत. हिमालय की तराई में 2,300 मीटर की ऊंचाई पर स्थित यह नगर पठानकोट से 42 किमी दूर पूर्वोत्तर में है, जिससे यह एक मार्ग से जुड़ा है. एक पर्वतीय स्थल डलहौज़ी लोकप्रिय ग्रीष्मकालीन सैरगाह है, जहां मैदानों की गर्मी से राहत मिलती है. यहां पंजाब विश्वविद्यालय एवं उससे संबद्ध महाविद्यालयों के अध्यापकों के लिए एक अवकाश केंद्र भी है. डलहौज़ी में 2,440 मीटर की ऊंचाई पर स्थित कालाटॉप वन्यजीव अभयारण्य काले हिमालयी रीछ, मुंतजाक हिरन एवं विभिन्न पक्षियों का निवास है. पंजपुल तक आने वाली सत धारा, सुभाष बावली और पेड़ों के बीच से गुज़रती हवा की आवाज़ के कारण सिंगिंग हिल कहलाने वाली पहाड़ी अन्य लोकप्रिय पर्यटक स्थल हैं. डलहौज़ी के ठीक उत्तर में बालून छावनी स्थित है. जनसंख्या (2001) ग्रामीण क्षेत्र 1962; न. पा. क्षेत्र, 7,419.

डलहौज़ी, जेम्स एंड्रयू ब्राउन रैमसे

(ज.–22 अप्रै. 1812, डलहौज़ी क़िला, मिडलोथियन, स्कॉटलैंड; मृ.–19 दिसं. 1860, डलहौज़ी क़िला). 1847–56 तक भारत में ब्रिटेन के गवर्नर–जनरल, जिन्हें स्वतंत्र प्रांतों पर क़ब्ज़ा जमाने के कारण आधुनिक भारत और केंद्रीकृत भारतीय राज्यों के नक़्शे का जनक माना जाता है. डलहौज़ी द्वारा लाए गए क्रांतिकारी परिवर्तनों से इतना व्यापक असंतोष फैला कि उनकी इसी नीति को उनके सेवानिवृत्त होने के एक वर्ष बाद 1857 में भड़के भारतीय विद्रोह का मूल कारण समझा गया.

प्रारंभिक जीवन काल

वह डलहौज़ी के नौवें अर्ल जॉर्ज रैमसे के तीसरे बेटे थे. उनके परिवार में सेना और सिविल सेवाओं में जाने की परंपरा थी, लेकिन तत्कालीन स्तर को देखते हुए उन्होंने बड़ी संपत्ति जमा नहीं की थी, जिसके फलस्वरूप डलहौज़ी अक्सर आर्थिक परेशानियों में घिर जाते थे. छोटे क़द के डलहौज़ी अनेक शारीरिक विकारों के शिकार रहे. जीवन भर उन्हें इसी विचार से ऊर्जा और संतोष मिलता रहा कि वह निजी अक्षमताओं के बावजूद सार्वजनिक तौर पर कामयाबी हासिल कर रहे हैं.

क्राइस्टचर्च, ऑक्सफ़ोर्ड में एक सामान्य स्तर के पूर्व स्नातक डलहौज़ी ने 1836 में लेडी सूसन हे से विवाह किया तथा अगले वर्ष सांसद बन गए. 1843 से वह सर रॉबर्ट पील की टोरी (कंज़रवेटिव) सरकार में व्यापार बोर्ड के उपाध्यक्ष बने और 1845 में उन्हें अध्यक्ष बना दिया गया. इस कार्यालय में उन्होंने रेलमार्ग की बहुत सी समस्याओं को सुलझाया और प्रशासनिक कार्यकुशलता के लिए ख्याति अर्जित की. 1846 में जब पील ने त्यागपत्र दिया, तो उनका पद भी जाता रहा. अगले वर्ष व्हिग सरकार का भारत का गवर्नर–जनरल बनने का प्रस्ताव स्वीकार कर डलहौज़ी सबसे कम आयु में इस पद पर नियुक्त होने वाले पहले व्यक्ति बने.

भारत आगमन

जनवरी 1848 में डलहौज़ी के भारत आगमन पर ऐसा लगता था, जैसे देश में शांति है. हालांकि दो वर्ष पहले ही सिक्खों के धार्मिक और सैनिक समुदाय द्वारा स्थापित स्वतंत्र राज्य पंजाब की सेना ने युद्ध छेड़ा, जिसे ब्रिटिश सरकार बड़ी मुश्किल से जीत पाई थी. नए सिक्ख शासन द्वारा ब्रिटिश समर्थन से लागू अनुशासन और अर्थव्यवस्था से असंतोष पैदा हुआ और अप्रैल 1848 में मुल्तान में स्थानीय विद्रोह भड़क गया. डलहौज़ी के सामने आई यह पहली गंभीर समस्या थी. स्थानीय अधिकारियों ने अविलंब कार्यवाही करने का अनुरोध किया, लेकिन उन्होंने देर लगा दी और सिक्ख असंतोष समूचे पंजाब में फैल गया. नवंबर 1848 में डलहौज़ी ने ब्रिटिश सेनाएं भेजीं और बहुत से सफल ब्रिटिश हमलों के बाद 1849 में पंजाब पर क़ब्ज़ा कर लिया गया. डलहौज़ी के आलोचकों का मानना था कि उन्होंने ढील बरतकर एक स्थानीय विद्रोह को राष्ट्रव्यापी आंदोलन बनने की छूट दी, ताकि वह पंजाब पर क़ब्ज़ा कर सकें. लेकिन ब्रिटिश सेना के कमांडर–इन–चीफ़ ने उन्हें भड़काने वाली कार्यवाही के विरुद्ध चेतावनी दी थी. इसमें शक नहीं कि डलहौज़ी ने आख़िर में जो क़दम उठाए, वे कुछ हद तक अनियमित ही थे; मुल्तान का विद्रोह ब्रिटिश शासन के ख़िलाफ़ नहीं, सिक्ख सरकार की नीतियों के विरोध में था. जो भी हो, उनकी सेवाओं के लिए उन्हें मार्क्विस बनाया गया.

दूसरा बर्मा युद्ध

1852 में रंगून (वर्तमान यांगून) में व्यापारिक विवादों के कारण ब्रिटेन और बर्मा की सेनाओं के बीच फिर से तनातनी हो गई, जिसने भड़ककर दूसरे बर्मा युद्ध का रूप ले

लिया. यह युद्ध उसी वर्ष समाप्त भी हो गया और कुल मिलाकर लड़ाई में जानमाल का कम नुक़सान हुआ. लेकिन ब्रिटेन ने रंगून और पेगू प्रांत के बाक़ी हिस्सों पर क़ब्ज़ा जमा लिया. डलहौज़ी की आक्रामक नीति की फिर आलोचना की गई, लेकिन नई बर्मी सरकार बनने से ब्रिटेन को फ़ायदा हुआ, क्योंकि इस सरकार की विदेश नीति कम आक्रामक और घरेलू नीति कम दमनकारी थी. दूसरा फ़ायदा यह था कि रंगून, जो ब्रिटेन को युद्ध की सबसे बहुमूल्य देन था, एशिया का सबसे बड़ा बंदरगाह बन गया.

विलय और अधिग्रहण की नीति

डलहौज़ी ने शांतिपूर्ण तरीक़ों से क्षेत्र हथियाने के हर मौक़े का फ़ायदा भी उठाया. ईस्ट इंडिया कंपनी, जो अब स्वतंत्र निगम नहीं थी, बल्कि मुख्यतः ब्रिटिश सरकार के नियंत्रण में थी, भारत में तेज़ी से प्रमुख शक्ति बनती जा रही थी. उन्होंने भारतीय शासकों के साथ विभिन्न रियायतों के बदले उन्हें और उनके उत्तराधिकारियों को समर्थन देने के वायदे पर गठबंधन किए थे. इनमें उनके राज्य में एक ब्रिटिश रेज़िडेंट और सेना रखने की व्यवस्था भी शामिल थी. हालांकि इस प्रकार के समझौते से ब्रिटिश साम्राज्य की सामान्य नीति बहुत प्रभावशाली हो गई, लेकिन डलहौज़ी और भी ज़्यादा सत्ता पाना चाहते थे. चलन यह था कि अपना उत्तराधिकारी न होने की हालत में शासक ब्रिटिश सरकार से पूछता था कि क्या वह उत्तराधिकारी बनाने के लिए दत्तक पुत्र ले सकता है. डलहौज़ी की समझ में आया कि अगर इसकी अनुमति नहीं दी जाए, तो वह राज्य अमान्य हो जाएगा और इस तरह वह ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्रों का हिस्सा बन जाएगा. इसी आधार पर 1848 में सतारा, 1853 में झांसी और 1854 में नागपुर का अधिग्रहण हो गया. डलहौज़ी का कहना था कि निजी संपत्ति को उत्तराधिकार में पाने के अधिकार और शासन करने के अधिकार में सैद्धांतिक अंतर है, लेकिन असल मुद्दा था कि वह ब्रिटिश शासन को फ़ायदा पहुंचाने में विश्वास रखते थे.

फिर भी, 1856 में उनके द्वारा अवध के अधिग्रहण से गंभीर राजनीतिक ख़तरा पैदा हो गया. वहां उत्तराधिकारी न होने की स्थिति नहीं थी; नवाब पर कुशासन का आरोप लगाया गया और उनकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ उनका राज्य हड़प लिया गया. नवाब के विरोधों के बावजूद सत्ता पलट होने से विशिष्ट मुस्लिम वर्ग में असंतोष फैल गया. इससे भी ज़्यादा ख़तरनाक ब्रिटिश सेना की भारतीय टुकड़ियों की प्रतिक्रिया थी, जिनमें बहुत से सैनिक अवध के थे और ब्रिटिश अधिग्रहण होने से पहले इन लोगों को विशेषाधिकार प्राप्त थे. लेकिन ब्रिटिश सरकार के तहत इन्हें आम लोगों के बराबर माना जाने लगा, जिससे इनकी प्रतिष्ठा समाप्त हो गई. इससे भी बढ़कर यह हुआ कि 1856 में डलहौज़ी के इंग्लैंड रवाना होने के बाद अवध के ज़मींदार कुलीन वर्ग के कई विशेषाधिकार समाप्त कर दिए गए. इन अनेक रूपों में अवध का अधिग्रहण अगले वर्ष के विद्रोह और असंतोष का कारण बना.

भारत का पश्चिमीकरण

डलहौज़ी ने सिर्फ़ क्षेत्रों पर क़ब्ज़ा जमाने से आगे भी ध्यान दिया. उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि इन प्रांतों को आधुनिक केंद्रीकृत राज्यों के रूप में ढालना था. पाश्चात्य व्यवस्थाओं के प्रति अपने विश्वास और प्रशासनिक योग्यता के बल पर डलहौज़ी संचार व परिवहन प्रणाली के विकास में तत्काल लग गए. उन्होंने भारत में पहली रेलवे योजना की ओर पूरा ध्यान दिया. लंदन में व्यापार बोर्ड के अनुभव के आधार पर उन्होंने रेलवे के भावी विकास की नींव रखी, ट्रंक और ब्रांच लाइनों की मूल धारणा की रूपरेखा बनाई और रेल कर्मचारियों तथा रेल–निर्माण के कारण प्रभावित होने वाले भू–मालिकों, दोनों के हित सुरक्षित रखने पर ध्यान दिया. उन्होंने विद्युत टेलीग्राफ़ लाइनों के नेटवर्क की योजना बनाई और उसे कार्यरूप दिया, कलकत्ता और दिल्ली के बीच ग्रैंड ट्रंक रोड का निर्माण पूरा करने और उसका पंजाब में भी विस्तार करने के काम को बढ़ावा दिया, केंद्रीकृत डाक प्रणाली स्थापित की, जो डाक टिकटों की समान व कम दरों पर अग्रिम ख़रीद पर आधारित थी और इसने डाक पहुंचाने के अनिश्चित और अधिक महंगे तरीक़ों का स्थान लिया. उन्होंने जो सामाजिक सुधार लागू किए, उनमें पंजाब और पश्चिमोत्तर में लड़की को जन्म लेते ही मार डालने और उड़ीसा के पर्वतीय आदिवासियों में प्रचलित नरबलि की कुप्रथा समाप्त करने की दिशा में ज़ोरदार प्रयास प्रमुख हैं. साथ ही उन्होंने स्कूलों में क्षेत्रीय भाषाओं के इस्तेमाल को बढ़ावा दिया और लड़कियों की शिक्षा का यथेष्ट समर्थन किया.

1856 में डलहौज़ी भारत से चले गए और प्रांतों के अधिग्रहण की उनकी नीति से उत्पन्न विवादों को 1857 के विद्रोह का कारण बताकर व्यापक और सही आलोचना की गई, जिससे आधुनिकीकरण की दिशा में उनकी महान उपलब्धियां दबकर रह गईं. भारत में कई वर्षों के कठिन परिश्रम से वह थक चुके थे. 1860 में उनकी मृत्यु हो गई और उनकी मार्क्विस की उपाधि भी उनके साथ ही चली गई.

डायंपर, सिनोड ऑफ़ (धर्मसभा)

ऐसी परिषद, जिसने भारत के मालाबार तट (आधुनिक केरल) के प्राचीन क्रिश्चियन चर्च को रोमन कैथॅलिक चर्च के साथ औपचारिक तौर से जोड़ दिया था, परिषद का आयोजन गोवा के आर्चबिशप एलेइक्सो डि मेनेसेस ने 1599 में किया था. पुर्तगाल के धर्म प्रचारक भारतीयों को विधर्मी मानते थे. सिनोड ने इसलिए द्विव्यक्तिवाद को त्याग दिया (विधर्म के यीशू के पूर्ण मानव स्वरूप पर ज़ोर देते हुए यह माना गया कि वह दो व्यक्ति हैं, एक मानव और एक दिव्य). सीरिया के चेलडियन धर्माध्यक्ष को भारत के कार्यक्षेत्र से हटा दिया गया और उनके स्थान पर पुर्तगाल के बिशप को नियुक्त किया गया, सीरिया के अदई और मारि की पूजा पद्धति की त्रुटि की शुद्धि की गई और लैटिन धर्मग्रंथ, पूजा पद्धति और रीति–रिवाज पुरानी सीरियाई परंपराओं के स्थान पर लाए गए.

इससे लैटिनीकरण हुआ और स्थानीय परंपराओं के प्रति असम्मान पर सेंट टॉमस के ईसाइयों ने, जैसा कि भारतीय स्वयं को कहते थे, हिंसक प्रतिक्रिया की. 1653 में इनमें से अधिकांश ने रोम से संबंध तोड़ दिया और 1661 में सीरिया के बिशप जॉन सेबेसटियानि के पद संभालने पर इनमें से तीन–चौथाई वापस लौट आए. असंतुष्टों ने सीरियाई रूढ़िवादी (जैकबवादी) चर्च का गठन किया.

डायमंड हारबर

नगर, दक्षिण 24 परगना ज़िला, दक्षिण–पूर्वी पश्चिम बंगाल राज्य, पूर्वोत्तर भारत, हुगली नदी के पूर्वी तट पर, जिसमें हाजीपुर खाड़ी मिलती है. यह कोलकाता (भूतपूर्व कलकत्ता) से सड़क से लगभग 48 किमी और रेलमार्ग से 64 किमी दूर है. 100 साल पहले यह जहाज़ों के लिए एक मनपसंद लंगरगाह था. अब यह धीरे–धीरे पर्यटन स्थल का रूप ले रहा है. यह कृषि व्यापार केंद्र है; चावल मिलें मुख्य उद्योग हैं. यह स्टीमरों का महत्त्वपूर्ण ठहराव स्थल है, जहां हुगली से कोलकाता जाने वाले जहाज़ों के लिए सीमा शुल्क एवं बंदरगाह अधिकारी रहते हैं. इसके ठीक दक्षिण में चिंगरीखाली का पुराना क़िला है. डायमंड हारबर में कलकत्ता विश्वविद्यालय से संबद्ध महाविद्यालय हैं. जनसंख्या (2001) 37,238.

डायर, रेजिनॉल्ड एडवर्ड

(ज.–9 अक्तू. 1864, मरी, भारत; मृ.–23 जुला. 1927, लॉग एश्टन, ब्रिस्टल के समीप, इंग्लैंड), ब्रिटिश जनरल, जिन्हें भारत के दक्षिण–पश्चिम में स्थित अमृतसर में 1919 में दंगों और नरसंहार को निर्ममता से निपटाने के लिए याद किया जाता है.

डायर ने 1885 में पश्चिम सरे रेजिमेंट में कमीशन प्राप्त किया और बाद में भारतीय सेना में स्थानांतरित कर दिए गए. 1886–87 में वह बर्मा में सक्रिय रहे और 1901–02 में वज़ीरिस्तान की घेराबंदी में हिस्सा लिया. पहले विश्व युद्ध (1914–18) में वह पूर्वी फ़ारसी क्षेत्र के प्रभारी थे, जिसका उद्देश्य अफ़ग़ानिस्तान में जर्मनों को घुसने से रोकना था.

अमृतसर के जलियांवाला बाग़ में हुए नरसंहार (13 अप्रै. 1919) के दौरान डायर जालंधर (जलंधर) के ब्रिगेड कमांडर थे. सरकारी रिपोर्टों के मुताबिक़ उनके सैनिकों ने 379 निहत्थे भारतीय प्रदर्शनकारियों को चारों ओर से बंद जगह पर गोलियों से भून डाला, जो स्पष्टतः चार यूरोपीयों की हत्या तथा एक महिला मिशनरी की पिटाई का बदला लेने की कार्यवाही थी. इसी के परिणामस्वरूप डायर को उनके पद से हटाकर जबरन सेवानिवृत्त कर दिया गया. इस मुद्दे ने अंतर्राष्ट्रीय समुदाय का ध्यान आकर्षित किया और भारतीय राष्ट्रवादियों ने घटनास्थल पर शहीद स्मारक बना दिया.

डॉल्फ़िन

आम डॉल्फ़िन (*डेलफ़ाइनस डेल्फ़िस*)

गंगा नदी में पाई जाने वाली डॉल्फ़िन (*प्लेटेनिस्टा गैंजेटिका*)
सौजन्य : सेंटर फ़ॉर एन्वायर्नमेंट एजुकेशन, अहमदाबाद

दो अलग प्रकार के जंतुओं में से एक, व्हेल कुल की जलीय स्तनपायी *डेल्फ़िनिडी* और *स्टेनिडी* या *प्लैटेनिस्टिडी कैरिफ़ीनिडी* कुल की महासागरीय मछलियां.

स्तनपायी डॉल्फ़िन छोटी, सामान्यतः चोंचनुमा थूथन वाली सुडौल आकार की व्हेल होती है. इन्हें अक्सर (*पॉरपायस*) शिशुंक भी कहते हैं, हालांकि ये नाम फ़ोसीनीडी कुल की व्हेल को दिया गया है, जिनकी थूथन चोंचनुमा नहीं होती. डॉल्फ़िन अपनी शिष्टता, बुद्धि, नटखटपन और मानव–जाति से मैत्रीपूर्ण संबंधों के लिए मशहूर है. इनमें सबसे अधिक पाई जाने वाली प्रजातियां, सामान्य और बोतल नाक वाली डॉल्फ़िन (क्रमशः *डेलफ़ाइनस डेल्फ़िस* और *टरसियोप्स ट्रंकेटस*) हैं; गर्म और उष्ण सागर में पाई जाने वाली ये दोनों प्रजातियां *डेल्फ़िनिडी* कुल की सदस्य हैं. संभवतः ये प्रजातियां ईसप की वही प्रजातियां हैं, जिनका उल्लेख अरस्तू, एसोप, हेरोडोटस, प्लिनी और कई अन्य प्राचीन लेखकों ने अपने लेखों में बच्चों को पीठ पर बैठाकर घुमाने अथवा समुद्र में लापता किसी व्यक्ति को बचाने के संदर्भ में किया है.

नदी में पाई जाने वाली डॉल्फ़िन
सौजन्य : एस.के. बेहरा

डेल्फ़िनिडी परिवार में 14 वंश और लगभग 32 प्रजातियां हैं, जिनका वितरण सभी महासागरों में है. इनका रंग आमतौर पर ऊपर से स्लेटी, भूरा या कुछ कालिमा लिए हुए और नीचे से हल्का पीला होता है. इनकी लंबाई सामान्यतः 1 से 4 मीटर के क़रीब होती है. विश्व भर में उष्ण व शीत सागरों में पाई जाने वाली रीसो डॉल्फ़िन (*ग्रैंपस ग्रिसियस*) का रंग स्लेटी होता है और इसकी चोंच या थूथन नहीं होती. ऊपरी जबड़े में सामान्यतः दांत नहीं होते. इस कुल के अन्य सदस्य पायलेट और किलर व्हेल का आकार काफ़ी बड़ा होता है और इस कारण इन्हें आमतौर पर डॉल्फ़िन नहीं माना जाता.

अधिकतर डॉल्फ़िन मछलियों को ही अपना आहार बनाती हैं और इनमें से अधिकांश मिलनसार होती हैं और कुछ से लेकर सैकड़ों के समूह में रहती है. कई प्रजातियां गुज़रने वाले जहाज़ों की ओर आकर्षित होती हैं और प्रायः उनके साथ–साथ तैरती या उछल–कूद करती हैं. कभी–कभी ये जहाज़ के आगे बढ़ने से उत्पन्न लहरों पर भी तैरती हैं. बोतल नाक वाली डॉल्फ़िन की मुखाकृति ऐसी लगती है, जैसे वह मुस्कुरा रही हो. यह जलजीवशाला में करतब दिखाने वाला सुपरिचित प्राणी है. अपनी बुद्धिमत्ता और ध्वनियों तथा पराश्रव्य तरंगों के ज़रिये आपस में संपर्क करने की योग्यता के कारण यह वैज्ञानिक अध्ययन का विषय बन गई है. आम डॉल्फ़िन डरपोक होती है, लेकिन बोतलनुमा नाक वाली डॉल्फ़िन पकड़े जाने पर जल्दी ही अनुकूलन कर लेती है.

प्लैटीनिस्टिडी अथवा नदी में पाई जाने वाली डॉल्फ़िन कुल के चार वंशों व प्रजातियों में दक्षिण अमेरिका और एशिया में पाई जाने वाली मुख्यतः मीठे पानी की छोटी डॉल्फ़िन शामिल है. इसकी चोंच लंबी व पतली, आंखें छोटी तथा नज़र कमज़ोर होती है. लंबी चोंच वाले *स्टेनिडी* परिवार में तीन वंश और आठ प्रजातियां शामिल हैं. इनके बारे में ज़्यादा जानकारी नहीं है. ये उष्ण क्षेत्र की नदियों और महासागरों में पाई जाती हैं. इन्हें कभी–कभी *डेल्फ़िनिडी* परिवार में भी वर्गीकृत किया जाता है.

आमतौर पर डॉल्फ़िन (*कोरीफ़िना हिप्पूरस*) कहलाने वाली मछली को माहीमाही या डोरैडो भी कहा जाता है, जो एक लोकप्रिय आहार और शिकार है. यह डॉल्फ़िन विश्व भर के उष्ण और शीतोष्ण सागरों में पाई जाती है व मरने पर चमकदार नीले और सुनहरे रंग परिवर्तन के कारण प्रसिद्ध है. इसका सिर बड़ा और भोथरा, शरीर का मध्य भाग सुडौल तथा एक पतली विभाजित पूंछ होती है. नर डॉल्फ़िन मादा की अपेक्षा बड़े क़द का होता है, जिसकी लंबाई लगभग 1.5 मीटर और वज़न 30 किग्रा तक हो सकता है. फुर्तीली और मांसभक्षी यह डॉल्फ़िन अकेले अथवा समूह में रहती है और भोजन के लिए मछलियों तथा अन्य अकशेरुकी प्राणियों को आहार बनाती है. यह और इसी के समान, लेकिन अपेक्षाकृत छोटे आकार की पोंपानों डॉल्फ़िन (*कोरीफ़ीना इक्विसेलिस*) ही *कोरीफ़ीनीडे* कुल की एकमात्र जीवित सदस्य है.

भारत में डॉल्फ़िन

भारत में गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों में पाई जाने वाली डॉल्फिन को *प्लेटेनिस्टा गैंजेटिका* के नाम से जाना जाता है.

यह डॉल्फ़िन मांसाहारी, विशेषकर मत्स्यभोजी होती है और मुख्य रूप से यह पानी में निचली सतह पर रहने वाली मछलियों, केकड़ों, झींगों और मोलस्कों का शिकार करती है. कमज़ोर दृष्टि के कारण यह शिकार पकड़ने में अपनी प्रतिध्वनि सुनने की क्षमता का प्रयोग करती है. डॉल्फ़िन के प्रजनन और जोड़े में रहने की अवधि बहुत लंबी होती है. गर्भावधि लगभग 8 से 9 महीने और कभी–कभी 12 महीने तक होती है. बच्चे सामान्यतः अप्रैल और जुलाई के बीच जन्म लेते हैं.

जन्म के समय शिशु डॉल्फ़िन की लंबाई 45 से 70 सेमी तथा वज़न 6 से 7 किग्रा होता है. जन्म के बाद बच्चे अपनी मां के शरीर से ही चिपके रहते हैं और एक या दो महीने की उम्र से भोजन ग्रहण करना शुरू कर देते हैं तथा लगभग एक वर्ष का होने पर स्तनपान छोड़ देते हैं.

प्रवास

डॉल्फ़िन मौसमी तौर पर नदी की धारा के प्रतिकूल प्रवास की प्रवृत्ति दर्शाती हैं. जल स्तर कम रहने पर ये मुख्य नदी में रहती हैं और वर्षा ऋतु में जल स्तर बढ़ने पर सहायक नदियों में आ जाती हैं. मौसम के साथ छोटी छिछली नदियों में इनकी मौजूदगी कुछ हद तक प्रवास का परिचायक है.

मॉनसून के दौरान बारिश के कारण, जब समुद्र में सांद्रता कम हो जाती है, तब डॉल्फ़िन ज्वार क्षेत्र में चली जाती है. लेकिन ग्रीष्म ऋतु में तापमान बढ़ने से वाष्पन क्रिया के फलस्वरूप सांद्रता बढ़ने के साथ ही इस क्षेत्र में डॉल्फ़िन की संख्या में काफ़ी कमी हो जाती है.

ध्वनि उत्पादन

जल के अंदर डॉल्फ़िन अपनी प्रतिध्वनि ग्रहण करने की अद्वितीय क्षमता पर निर्भर करती हैं और इसके माध्यम से ही ये अपने आसपास की वस्तुओं के आकार व संरचना का पता लगाती हैं. डॉल्फ़िन वायुछिद्र के नीचे, खोपड़ी के अंदर अपनी नासिका कोष में हवा भेजकर विभिन्न प्रकार की ध्वनि उत्पन्न करती हैं.

संबंधित पुराख्यान तथ्य

महाभारत में वर्णित गंगावतरण की कथा में डॉल्फ़िन का संदर्भ मिलता है. इसके अनुसार, जब स्वर्ग से गंगा पृथ्वी पर उतरी थी, तब उनके साथ 'एक विशाल शोभयात्रा भी भारत भूमि पर उमड़ पड़ी थी'. सबसे आगे तप करते भगीरथ और उनके पीछे भव्य पवित्र नदी गंगा के साथ असंख्य मछलियां, कछुए, मेंढक और उछलती–कूदती डॉल्फ़िन समेत शक्तिशाली धारा में निवास करने वाले सभी जीव शामिल थे. डॉल्फ़िन का उल्लेख 1598 में रचित *बाबरनामा* (बाबर के संस्मरण) के सचित्र विवरण में भी पाया गया है. यह नई दिल्ली स्थित राष्ट्रीय संग्रहालय में मौजूद है.

संरक्षण की स्थिति

मीठे पानी की डॉल्फ़िन तेज़ी से विलुप्त हो रही प्रजातियों में से एक है. इसके प्राकृतिक वास पर औद्योगिक और कृषि संबंधी विकास का प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है. अगर यही स्थिति रही, तो हो सकता है कि नदी में पाई जाने वाली डॉल्फ़िन को विलुप्त होने से बचाने का समय ही न मिले.

डॉल्फ़िन की *प्लेटेनिस्टा गैंजेटिका* प्रजाति को भारतीय वन्य जीव सुरक्षा अधिनियम 1972 की पहली अनुसूची में रखा गया है, जिसे 1980 में संशोधित किया गया. कन्वेंशन ऑफ़ इंटरनेशनल ट्रेड इन एन्डेंजर्ड स्पीशीज़ (सी.आई.टी.ई.एस.) की परिशिष्ट संख्या एक में भी इस प्रजाति को सूचीबद्ध किया गया, ताकि डॉल्फ़िन के शिकार अथवा व्यापार पर प्रतिबंध लगाया जा सके. हालांकि नदी की डॉल्फ़िन के संरक्षण की दिशा में अधिक ठोस प्रयासों की आवश्यकता है.

इंटरनेशनल यूनियन फ़ॉर कंज़र्वेशन ऑफ़ नेचर ऐंड नेचुरल रिसोर्सेज़, आई.यू.सी., ने डॉल्फ़िन को विलुप्ति के कगार पर खड़े जीवों की श्रेणी में रखा है और ख़तरे में पड़ी *सीटेशियन* प्रजाति के सभी सदस्यों में डॉल्फ़िन को सबसे महत्त्वपूर्ण माना गया है.

भारत में संरक्षण प्रयासों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से वर्ल्डवाईड फ़ंड फ़ॉर नेचर, इंडिया के लिए डॉल्फ़िन कार्य समिति का गठन किया गया है. भारत सरकार और विभिन्न एजेंसियां जैसे, उत्तरांचल में देहरादून का भारतीय वन्य जीव संस्थान, मुंबई की बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी, बिहार का पटना विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश का जीवाजी विश्वविद्यालय, सरकारी वन विभाग और अनेक ग़ैर सरकारी संस्थाएं मिलकर डॉल्फ़िन के संरक्षण की दिशा में प्रयास कर रही हैं.

डिब्रूगढ़

शहर, पूर्वोत्तर असम राज्य, पूर्वोत्तर भारत. डिब्रूगढ़ ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर बसा एक महत्त्वपूर्ण व्यावसायिक केंद्र, बंदरगाह और अंतिम रेलवे स्टेशन है. इसके उद्योगों में चाय प्रसंस्करण, धान कुटाई और तिलहन की पेराई उद्योग शामिल हैं. असम मेडिकल कॉलेज, एक लॉ कॉलेज तथा अनेक महाविद्यालय डिब्रूगढ़ विश्वविद्यालय से संबद्ध हैं. मोहनबाड़ी हवाई पट्टी शहर से 19 किमी पूर्व में है. 1950 में आए भूकंप से डिब्रूगढ़ को भारी नुक़सान हुआ.

डिब्रूगढ़ के उत्तर में दिहांग नदी दक्षिण–पश्चिम की ओर मुड़ जाती है, जहां इससे दिबांग एवं लोहित नदियां मिलती हैं; इस संगम के बाद यह नदी ब्रह्मपुत्र कहलाती है. डिब्रूगढ़ के पूर्व में असम हिमालय स्थित है. जिस क्षेत्र में डिब्रूगढ़ है, वहां भारी वर्षा होती है और अक्सर बाढ़ आती है. चाय बाग़ान प्रमुख कृषि गतिविधियों में से एक है. इस क्षेत्र में खनिज तेल उत्पादन एवं कोयला खनन मध्यम स्तर पर किया जाता है. जनसंख्या (2001) न.प. क्षेत्र 1,22,523.

डिमेट्रियस

दूसरी शताब्दी ई.पू., यूथीदेमस के पुत्र और उत्तराधिकारी. डिमेट्रियस बैक्ट्रिया के सम्राट थे. उनके शासन के बारे में ऐतिहासिक प्रमाण बहुत कम है और इस बारे में अलग–अलग अनुमान हैं. कुछ विद्वान मानते हैं कि उन्होंने 190 से 167 ई.पू. तक शासन किया, बाद में यूक्रेडिटस ने उनकी हत्या कर दी और स्वयं राजा बन गए. इससे पहले डिमेट्रियस ने उत्तर भारत पर व्यापक हमले किए और विजयी हुए. कुछ अन्य विद्वानों का मानना है कि युवा डिमेट्रियस (जो बैक्ट्रिया के शासक थे, लेकिन यूथीदेमस से सीधे संबंधित नहीं थे) ने भारत में ज़्यादा व्यापक अभियान नहीं किए और 180 से 165 ई.पू. तक शासन करने के बाद वह यूक्रेडिटस से पराजित हो गए. इन दोनों में से एक ने सबसे पहले यूनानी और प्राकृत भाषाओं से अंकित मुद्रा जारी की, जिससे यह पता चलता है कि वह अपने साम्राज्य में भारतीय और बैक्ट्रियाई यूनानियों, दोनों को महत्त्व देते थे.

डूंगरपुर

नगर, डूंगरपुर ज़िले का प्रशासनिक मुख्यालय, राजस्थान राज्य, पश्चिमोत्तर भारत. एक कृषि विपणन केंद्र डूंगरपुर उदयपुर तथा वडोदरा (भूतपूर्व बड़ौदा), अहमदाबाद एवं गोधरा (गुजरात) के रास्ते इंदौर से सड़क द्वारा जुड़ा है. डूंगरपुर रजवाड़े की पूर्व राजधानी डूंगरपुर को 14वीं सदी में बसाया गया तथा इसका नाम भीलों के स्वतंत्र मुखिया डूंगरिया के नाम पर रखा गया. यहां एक अस्पताल एवं राजस्थान विश्वविद्यालय से संबद्ध एक सरकारी महाविद्यालय भी है.

3,770 वर्ग किमी क्षेत्रफल वाले डूंगरपुर ज़िले की पूर्वी सीमा के कुछ हिस्से में पहाड़ी वनाच्छादित इलाक़ा है, जहां माही नदी बहती है. कृषि यहां का मुख्य व्यवसाय है और गेहूं, ज्वार–बाजरा, चावल, मक्का एवं दालें मुख्य फ़सलें हैं. यहां बेरीलियम, सीसा, जस्ता, चांदी, लौह अयस्क और अभ्रक का व्यापक खनन होता है. पूर्ववर्ती रजवाड़ा डूंगरपुर लगभग 1530 ई. तक बांसवाड़ा राज्य में शामिल था. इसके बाद मुग़ल, मराठा एवं अंग्रेज़ों के अधीन रहकर 1948 में यह राजस्थान राज्य का हिस्सा बन गया. जनसंख्या (2001) नगर, 42,514; ज़िला कुल 11,07,037.

डूप्ले, जोज़ेफ़ फ़्रांसुवा

(ज.–1697, लेंडरेसिज़, फ़्रांस; मृ.–10 नवं. 1763, पेरिस), उपनिवेशीय प्रशासक और भारत में फ़्रांसीसी उपनिवेशों के गवर्नर–जनरल. उनके पिता फ़्रांसुवा फ़्रांस की ईस्ट इंडिया कंपनी के निदेशक थे, जिन्होंने डूप्ले को 1715 में भारत और अमेरिका की समुद्री यात्रा पर भेजा था. पिता के प्रभाव से उनकी नियुक्ति (1720) पांडिचेरी की सुपीरियर काउंसिल में कर दी गई, जो भारत में फ़्रांस की औपनिवेशिक राजधानी थी. 1731 में उन्हें बंगाल के चंद्रनगर में फ़्रेंच फ़ैक्ट्री का अधीक्षक बना दिया गया और 11 वर्ष बाद भारत के सभी फ़्रांसीसी प्रतिष्ठानों का गवर्नर–जनरल नियुक्त किया गया. 1744 में फ़्रांस और ब्रिटेन के बीच ऑस्ट्रियाई क़ब्ज़े के लिए युद्ध शुरू होने पर फ़्रांस ने भारत में निष्पक्ष रहने का प्रस्ताव रखा, लेकिन ब्रिटेन ने इसे नामंजूर कर दिया. 1746 में डूप्ले ने फ़्रांसीसी बेड़े की मदद से मद्रास (वर्तमान चेन्नई) को ब्रिटेन के क़ब्ज़े से छीन लिया, लेकिन पड़ोस के ब्रिटिश क़िले सेंट डेविड पर क़ब्ज़ा नहीं कर सके; उन्होंने ब्रिटेन के सहयोगी कर्नाटक के नवाब अनवरुद्दीन की मदद के लिए भेजी गई सेनाओं को दो बार हराया. 1748 में ऐ–ल–शैपेल संधि के साथ ही यूरोप में युद्ध समाप्त हो गया और मद्रास ब्रिटेन को वापस मिल गया, लेकिन डूप्ले ने भारत में फ़्रांस के क़ब्ज़े वाले इलाक़ों का विस्तार करने की और योजनाएं लागू की. दक्षिण भारत में आपस में लड़ रहे राजकुमारों की सैनिक कमज़ोरी को भांपकर उन्होंने ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के ख़िलाफ़ उन लोगों से स्थानीय गठजोड़ कर लिए. उन्होंने कर्नाटक के नवाब पद के लिए चंदा साहिब के दावे का समर्थन किया और जब ब्रिटेन ने एक अन्य प्रतिद्वंद्वी उम्मीदवार का समर्थन किया, तो दोनों कंपनियों के बीच भयंकर आपसी युद्ध (1751) भड़क उठा. डूप्ले के मुख्य प्रतिद्वंद्वी युवा ब्रिटिश सेनानी रॉबर्ट क्लाइव के

युद्ध कौशल के कारण दक्षिण को छोड़कर फ़्रांस की सभी सेनाएं 1754 में पराजित हो गईं. डूप्ले को वापस पेरिस बुला लिया गया, जहां उन्होंने फ़्रेंच ईस्ट इंडिया कंपनी पर उसकी ओर से अपने ख़र्चे पैसे के भुगतान का दावा किया, जो कामयाब नहीं हुआ. डूप्ले फ़्रांस में बदनाम हो गए और गुमनामी में मर गए. उन्होंने संगठनकर्ता और राजनयिक के रूप में अद्भुत प्रतिभा का प्रदर्शन किया, लेकिन सैन्य कौशल और दूसरों से मिल–जुलकर काम करने की योग्यता उनमें नहीं थी.

डूरंड रेखा

1893 में हिंदुकुश में स्थापित सीमा, जो अफ़ग़ानिस्तान और ब्रिटिश भारत के जनजातीय क्षेत्रों से उनके प्रभाव वाले क्षेत्रों को रेखांकित करती हुई गुज़रती थी. आधुनिक काल में यह अफ़ग़ानिस्तान और पाकिस्तान के बीच की सीमारेखा है. सर मॉर्टिमेर डूरंड, जिन्होंने अफ़ग़ानिस्तान के अमीर अब्दुर रहमान ख़ां को इसे सीमारेखा मानने पर राज़ी किया था, के नाम पर पड़ी इस रेखा को, संभवतः भारत–अफ़ग़ान सीमा समस्या का, शेष ब्रिटिश काल के लिए समाधान कहा जा सकता है.

1849 में पंजाब पर क़ब्ज़ा कर लेने के बाद ब्रिटिश सेना ने बेतरतीबी से निर्धारित सिक्ख सीमा को सिंधु नदी के पश्चिम की तरफ़ खिसका दिया, जिससे उनके और अफ़ग़ानों के बीच एक ऐसे क्षेत्र की पट्टी रह गई, जिसमें विभिन्न पश्तो (पख़्तून) क़बीले रहते थे. प्रशासन और रक्षा के सवाल पर यह क्षेत्र हमेशा एक समस्या बना रहा. कुछ ब्रिटिश, जो टिककर रहने में यक़ीन रखते थे, सिंधु घाटी में बस जाना चाहते थे; कुछ आधुनिक विचारों वाले लोग काबुल से ग़ज़नी के रास्ते क़ांधार चले जाना चाहते थे. दूसरे भारत–अफ़ग़ान युद्ध (1878–80) से आधुनिक सोच वालों का पलड़ा हल्का हो गया और जनजातीय क्षेत्र में विभिन्न वर्गों का प्रभाव लगभग बराबर सा हो गया. ब्रिटेन ने अनेक जनजातीय युद्ध झेलकर डूरंड रेखा तक अप्रत्यक्ष शासन द्वारा अपना अधिकार फैला लिया; अफ़ग़ानों ने अपनी तरफ़ के क्षेत्रों में कोई बदलाव नहीं किया. 20वीं शताब्दी के मध्य में रेखा के दोनों ओर के इलाक़ों में पख़्तूनों का स्वाधीनता आंदोलन छिड़ गया और स्वतंत्र पख़्तूनिस्तान की स्थापना हो गई. 1980 में डूरंड रेखा के आसपास के इलाक़ों में लगभग 75 लाख पख़्तून रह रहे थे.

डेंगू ज्वर

हड्डी तोड़ बुख़ार भी कहलाता है. यह तीव्र, संक्रामक, मच्छरों से फैलने वाला रक्तस्रावी बुख़ार है, जो अस्थायी तौर पर पंगु बना देता है, किंतु कभी–कभी ही घातक होता है. इस बीमारी में जोड़ों व हड्डियों में तेज़ दर्द होता है (अतः इसका नाम 'हड्डी तोड़ बुख़ार' पड़ा). डेंगू के फैलने का कारण विषाणु है और यह उस किसी भी देश में हो सकता है, जहां इसके वाहक मच्छर पैदा होते हैं. अधिकांश महामारी वाले क्षेत्रों में इसके लिए पीतज्वर वाले मच्छरों *एडीस इजिप्टी* को ज़िम्मेदार ठहराया जाता है. एशियन टाइगर मच्छर *ए. एल्बोपिक्टस* भी इस विषाणु के प्रमुख वाहक हैं. मच्छर

किसी संक्रमित व्यक्ति (मनुष्य और शायद बंदर की कुछ प्रजातियों) को उसकी बीमारी के पहले तीन दिनों में काटने पर ही वाहक बनते हैं. रोग के अन्य व्यक्ति में प्रसार के लिए विषाणु के निषेचन में आठ से ग्यारह दिन का समय लगता है. इसके बाद यह मच्छर अपने संपूर्ण जीवन काल में विषाणु–वाहक रहता है. जैसे ही यह किसी को काटता है, अपनी लार की सूक्ष्म बूंदों के ज़रिये संबंधित व्यक्ति के रक्त में विषाणु प्रविष्ट कर देता है. डेंगू के फैलने का पूर्वानुमान लगाना मुश्किल है, क्योंकि इसके चार प्रकार के विषाणु होते हैं. एक प्रकार के विषाणु का संक्रमण एक बार होने के बाद जीवन काल में दुबारा नहीं होता, लेकिन अन्य तीन प्रकार के विषाणुओं का संक्रमण होने का ख़तरा हो सकता है.

रोग विषयक लक्षणों के आधार पर इसका निदान किया जाता है, जैसे अचानक संक्रमण, ज्वर जो अधिक तेज़ न हो, जोड़ों में तीव्र वेदना, आंखों के पीछे असह्य पीड़ा, थोड़ी देर ज्वर उतरने के बाद उसमें पुनः वृद्धि, शरीर पर नन्हें दाने उभरना तथा श्वेत रक्त कोशिकाओं में कमी होना. इसका कोई ख़ास इलाज नहीं है; इसलिए लक्षणों से मुक्ति पर ध्यान दिया जाता है. संक्रमण के पहले तीन दिनों तक अस्थायी तौर पर संक्रमित तथा संदिग्ध मामलों को पृथक कर निश्चित रूप से निरोधात्मक उपाय किए जा सकते हैं और मच्छर अन्य लोगों को न काटें इसके लिए मच्छरदानियों का प्रयोग व मच्छर भगाने के उपाय किए जाने चाहिए. यह घातक ज्वर एशिया के कुछ भागों में पाया जाता है. 20वीं सदी के अंत में यह दक्षिण व मध्य अमेरिका, क्यूबा, प्यूर्टोरिको तथा अन्य निकटवर्ती द्वीपों में फैल गया. मच्छरों का उन्मूलन और उनके पनपने के स्थानों का नाश इस रोग को नियंत्रित करने के मुख्य उपाय हैं.

डेहरी

डेहरी ऑन सोन नगर के रूप में भी जाना जाता है, पश्चिमी बिहार राज्य, पूर्वोत्तर भारत, सोन नदी के पश्चिम में स्थित. प्रमुख रेल और सड़क मार्गों से जुड़े डेहरी में एक रेलवे कार्यशाला भी है. डेहरी सोन नहर प्रणाली का मुख्यालय है और यहां एक जल विद्युत बांध है. इसके उद्योगों में चीनी उत्पादन, घी प्रसंस्करण, सीमेंट उत्पादन और अन्य क़िस्म के उत्पादों से जुड़े उद्योग और आरा मिलें शामिल हैं. पास में सोन नदी के तट पर प्राचीन रोहतास दुर्ग है. जनसंख्या (2001) 1,19,007.

डोगरा वंश

भारत के जम्मू–कश्मीर राज्य की राजपूत जाति या जाति–समूह. जम्मू क्षेत्र (लाहौर के उत्तर में मोटे तौर पर चिनाब और रावी नदियों के बीच का इलाक़ा) के राजपूतों में डोगरा मुख्य रूप से प्रभावशाली हैं. इन्होंने 19वीं शताब्दी में प्रमुखता हासिल की. काफ़ी लंबे समय से जम्मू एक छोटा राज्य था, लेकिन 1780 के बाद यह सिक्खों का सहायक प्रदेश बन गया. गुलाब सिंह ने सिक्खों में प्रतिष्ठा पाई और 1820 में उन्हें

जम्मू का राजा बना दिया गया. यही डोगरा साम्राज्य की शुरुआत थी. उन्होंने उत्तर में लद्दाख और बाल्टिस्तान पर क़ब्ज़ा करके अपने राज्य का विस्तार किया.

पहले सिक्ख युद्ध (1845–46) में गुलाब सिंह डटे रहे और बाद में मध्यस्थ की भूमिका निभाई. इसके पुरस्कारस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने नक़द भुगतान के बदले कश्मीर उन्हें दे दिया (जिसे 1819 में सिक्खों ने जीता था). कश्मीर घाटी में भी ब्राह्मण अल्पसंख्यकों को छोड़कर मुख्य रूप से मुसलमान ही रहते थे. 1947 में गुलाब सिंह के पड़पोते हरि सिंह को पाकिस्तान के पख़्तूनों के हमले का सामना करना पड़ा और वह भारतीय संघ में शामिल हो गए.

डोगरी भाषा

भारत के जम्मू–कश्मीर राज्य की दूसरी मुख्य भाषा; यह भारोपीय भाषा परिवार के भारतीय–आर्य भाषा समूह की सदस्य है. इसका मूल प्राचीन भारतीय–आर्य भाषा समूह और लौकिक संस्कृत में स्थित है. अन्य आधुनिक भारतीय–आर्य भाषाओं के समान डोगरी भी विकास के प्राचीन भारतीय–आर्य (संस्कृत) और मध्य भारतीय–आर्य (पालि, प्राकृत और अपभ्रंश) चरणों से गुज़र चुकी है और इसने लगभग 10वीं शताब्दी में आधुनिक भारतीय–आर्य चरण में प्रवेश किया. इसमें ध्वनि संरचना में विकास की तीन स्तरीय प्रक्रिया दिखाई देती है, जो शौरसेनी प्राकृत से इसकी निकटता को प्रदर्शित करती है, लेकिन वैदिक काल से इसके वर्तमान स्वरूप तक विकास के दौरान डोगरी ने सभी चरणों की विशेषताओं को संरक्षित रखा है, जैसा डोगरी शब्द पुत्तर, यानी 'बेटा' (प्राचीन भारतीय–आर्य *पुत्र*, मध्य भारतीय–आर्य *पुत्त*) में दिखाई देता है. इसकी शब्दावली पर फ़ारसी और अंग्रेज़ी का भी प्रभाव देखा जा सकता है. डोगरी भाषा पश्चिमोत्तर भारत के पर्वतीय और उपपर्वतीय क्षेत्रों तथा इससे सटे मैदानों में बोली जाती है. यह क्षेत्र उत्तर में पीरपंजाल और धौलाधार पर्वतश्रेणियों, दक्षिण में पंजाब के मैदानों, पूर्व में सतलुज नदी और पश्चिम में मुनव्वर तवी से घिरा हुआ है.

डोगरी भाषा में 10 स्वर और 28 व्यंजन हैं. इस भाषा में कर्मवाच्य और भाववाचक शब्दों की प्रधानता है. उदाहरण के लिए, *लिकिआ* : 'लिखा' और *लखोआ* : 'लिख गया.' डोगरी (डुग्गर) के बारे में सबसे पुराना उल्लेख 1317 ई. में अमीर खुसरो द्वारा लिखित एक मसनवी नूह–शिफिर में मिलता है, (सिंधी ओ लहोरी ओ कश्मीरी ओ डोग्गर). इसकी अपनी लिपि है, जिसे डोगरा अख्खर या डोगरे (पराने डोगरे और नामें डोगरे, जो तक्री या तहक्री लिपियों पर आधारित है) कहते हैं. इस लिपि में लिखी गई डोगरी, महाराजा रणवीर सिंह (1857–1885) के शासनकाल में जम्मू–कश्मीर की राजभाषा थी. लेकिन नई पीढ़ी ने डोगरी के लिए नागरी लिपि को अपना लिया. लगभग संपूर्ण आधुनिक साहित्य की रचना देवनागरी लिपि में हुई है और अब भी इसी का उपयोग हो रहा है. डोगरी भाषा को जम्मू–कश्मीर राज्य के संविधान की मान्यता प्राप्त है और इसे विद्यालय तथा विश्वविद्यालय स्तर पर भाषा के रूप में पढ़ाया जाता है.

डोगरीभाषी क्षेत्र के तीन प्रमुख भूखंड कांडी (जम्मू प्रांत के जम्मू, कठुवा और उधमपुर ज़िले के बलुई, पथरीले और शुष्क क्षेत्र), पहाड़ी (हिमाचल प्रदेश राज्य में कठुवा, चंबा व कांगड़ा का पर्वतीय क्षेत्र) तथा मैदानी और नदीय क्षेत्र, जिसमें जम्मू के दक्षिणी क्षेत्र, पंजाब के गुरदासपुर और होशियारपुर के उत्तरी क्षेत्र और पाकिस्तान के सियालकोट तथा शकरगढ़ क्षेत्र शामिल हैं. ये क्षेत्र बोली में अंतर को प्रदर्शित करते हैं. लेकिन यह देखा गया है कि पश्चिमी पंजाब और पाकिस्तान में डोगरी, कियुंथाली, कंडयाली, भटियाली, सिरमौरी, बगहाती, कुल्लूई, मंडयाली, चंबयाली, कुलहुरी, भदरवाही, गुजरी, रामपुरी, पोगाली, होशियारपुरी–पहाड़ी और लहंदा बोलियां बोली जाती हैं. 1981 की भारत की जनगणना के अनुसार डोगरीभाषी लोगों की संख्या लगभग 15 लाख है, लेकिन ऊपर वर्णित तीन भूखंडों में डोगरीभाषी निवासियों की संख्या अनुमानतः 50 लाख है.

इस भाषा में मौखिक साहित्य की लंबी और समृद्ध परंपरा रही है. डोगरा जीवन तथा समाज के सभी आयामों से जुड़े लोकगीतों के अलावा कराक, बार, भाख और गीतड़ू–कत्थकन्न डोगरी लोककाव्य के विशिष्ट स्वरूप हैं. लिखित डोगरी साहित्य के इतिहास को दो चरणों में विभक्त किया गया है. पहला काल अल्प और अनियमित लेखन का था, जो 16वीं शताब्दी के बाद से 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक रहा. दूसरे काल में इस भाषा में लगातार रचनाएं हुईं और साहित्यिक क्षितिज पर कई प्रख्यात लेखकों का उदय हुआ, जैसे कवि, गल्प लेखक, नाटककार, गद्य लेखक और उल्लेखनीय साहित्यिक आलोचक. डोगरी भाषा का अपना व्याकरण है. डोगरी भाषा और साहित्य, लोकगीत व साहित्य पर शोधकार्य प्रकाशित स्वरूप में भी उपलब्ध है.

डोडाबेट्टा

पर्वत चोटी, तमिलनाडु राज्य का उच्चतम बिंदु, दक्षिण–पूर्वी भारत, 2,637 मीटर ऊंची, उदगमंडलम (ऊटकमंड) के पास स्थित. डोडाबेट्टा घास से ढकी पहाड़ी है, जिस पर ग्रीष्मकालीन पर्यटक चढ़ते हैं और इस चोटी तक मोटर वाहन भी जाते हैं. यह पश्चिमी घाट की दूसरी सबसे ऊंची चोटी है.

डोम कौवा

नीचे की ओर मुड़ी हुई चोंच वाले कौवे के समान तीन क़िस्म के पक्षी. *सर्विडी* परिवार (गण *पैसेरीफ़ॉर्मीज़*) में ब्रिटिश उपद्वीपों से लेकर चीन तक समुद्री चट्टानों और पहाड़ी उच्चभूमि में पाए जाने वाले सामान्य डोम कौवे (*पाइरोकोरेक्स पाइरोकोरेक्स*) तथा मोरक्को व स्पेन से हिमालय तक के ऊंचे पहाड़ों में पाए जाने वाले एल्पाईन डोम कौवे (*पी. ग्रैक्युलस*)– ये दो प्रजातियां हैं. दोनों की लंबाई लगभग 38 सेमी और रंग नीला–काला होता है. सामान्य डोम कौवे की
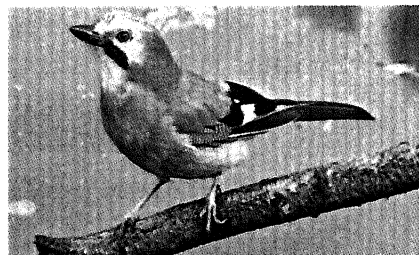
डोम कौआ (*पाइरोकोरेक्स पाइरोकोरेक्स*)
फ़ोटो : रिचर्ड सूटहिल/एन.एच.पी.ए.

चोंच लाल रंग की और एल्पाईन डोम कौवे की पीले रंग की होती है. ये पक्षी झुंडों में रहते हैं, इनकी आवाज़ सीटी जैसी होती है और ये उड़ने में माहिर होते हैं. ऑस्ट्रेलिया के जंगलों में *गैलिनिडी* परिवार का सफ़ेद पंखों वाला डोम कौवा (*क्रोकोरेक्स मेलानौरैंफ़स*) पाया जाता है. यह सर्विड डोम कौवों के समान ही होता है, सिर्फ़ इसके पंखों पर सफ़ेद धब्बे होते हैं तथा इसकी चोंच कम शक्तिशाली और काली होती है. इनके झुंड ज़मीन पर उतरकर उछल–कूद करते हुए भोजन ग्रहण करते हैं. ये ऊंचे पेड़ों पर मिट्टी की दीवार वाला घोंसला बनाते हैं और इसे सामूहिक रूप से उपयोग में लाते हैं.

ड्रायोपिथेकस

वनमानुष सदृश जंतुओं की विलुप्त जाति, जो आधुनिक वनमानुष और मनुष्य के पूर्वज सामान्य छोटे वनमानुषों का प्रतिनिधित्व करती है. हालांकि ड्रायोपिथेकस को यूरोप, अफ़्रीका और एशिया समेत विस्तृत क्षेत्रों में प्राप्त अवशेषों के आधार पर अलग–अलग नाम दिए गए हैं, लेकिन यह प्रतीत होता है कि ये एक ही प्रजाति से संबंधित हैं. ड्रायोपिथेकस के जीवाश्म 16 लाख से साढ़े 23 लाख वर्ष पुरानी मध्यनूतन और अतिनूतन युग की चट्टानों से प्राप्त हुए थे तथा संभवतः इनकी उत्पत्ति अफ़्रीका में हुई थी.

ड्रायोपिथेकस के विभिन्न स्वरूप ज्ञात हैं, जिनमें छोटे, मध्यम और बड़े क़द के गुरिल्ला के आकार के जंतु शामिल हैं. देखा जाए, तो ड्रायोपिथेकस एक सामान्य वनमानुष है और इसमें ऐसा कोई विशेष लक्षण नहीं है, जो आधुनिक वनमानुष को आधुनिक मानव से अलग करता हो. ड्रायोपिथेकस के रदनक (कैनाइन) दांत मनुष्य की तुलना में बड़े अवश्य थे, लेकिन आधुनिक गुरिल्ला के समान मज़बूत नहीं थे. इसके पैर ज़्यादा लंबे नहीं हैं, जो पेड़ों पर चढ़ने और झूलने के लिए वनमानुषों में एक क़िस्म का अनुकूलन है. इसके अतिरिक्त आधुनिक गुरिल्ला में विकसित खोपड़ी के उभार और भौंहों की हड्डियों का इसमें अभाव था.

संभवतः मूल ड्रायोपिथेकस से ही आधुनिक गुरिल्ला और चिंपांज़ी की उत्पत्ति हुई है. मध्यनूतन युग के जीवाश्म से लगता है कि ड्रायोपिथेकस से पहले मानव जैसी प्रजाति की उत्पत्ति हुई, जो बाद में मानव में परिवर्तित हो गई. इसके निकट ड्रायोपिथेसीन कुल की एक शाखा का वशंज, रामापिथेकस था, जिसकी दंत रचना अधिक विकसित थी. ड्रायोपिथेकस संभवतः वन्य क्षेत्रों में रहता था.

ढ

ढेंकानाल

नगर, पूर्वी–मध्य उड़ीसा राज्य, पूर्वी भारत. यहां कई मंदिर एवं पुरातत्व स्थल हैं और यह ढेंकानाल ज़िले का मुख्यालय है. सवर (सवोरा, सौरा या सहरा) जनजाति के मध्ययुगीन मुखिया ढेंका के नाम पर बसा ढेंकानाल चावल, तिलहन एवं लकड़ी का बाज़ार तथा हथकरघा बुनाई का केंद्र है. पहले यह सामंती ढेंकानाल रजवाड़े की राजधानी था, जिसे 1949 में उड़ीसा राज्य में शामिल कर लिया गया. राजा का महल पहाड़ी पर खाई से घिरा है. नगर में और आसपास कई शिक्षण संस्थान हैं, जिनमें सह शिक्षा, कन्या महाविद्यालय एवं अन्य विद्यालय शामिल हैं; यहां अखिल भारतीय जन संचार संस्थान की शाखा तथा सरकारी एवं गै़र सरकारी संगठनों के प्रशिक्षण केंद्र भी हैं. आसपास के इलाक़े में चावल एवं तिलहन उगाया जाता है तथा वन उत्पादों का बहुत महत्त्व है. यहां कपड़ा, पीतल के बर्तन बनाने का काम तथा अन्य कुटीर उद्योग व्यापक रूप से फैले हैं. कपिलास चोटी और तलहटी में स्थित हिरन उद्यान, धार्मिक स्थल एवं असाधारण प्राकृतिक दृश्यों वाली सप्तसाज्य पहाड़ी और अलख महिमा धार्मिक संप्रदाय के मुख्यालय जोरांदा तक आसान पहुंच के कारण ढेंकानाल अब पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र बन गया है. ढेंकानाल और आसपास के इलाक़े अपनी कई विशिष्ट गतिविधियों के कारण भी अब प्रसिद्ध हो गए हैं. जनसंख्या (2001) नगर 57,651; ज़िला कुल 10,65,983.

ढेबर झील

विशाल जलाशय, अरावली पर्वतमाला के दक्षिण–पूर्व में, दक्षिण–मध्य राजस्थान राज्य, पश्चिमोत्तर भारत. जब झील पूरी तरह से भरी होती है, तो इसका क्षेत्रफल लगभग 50 वर्ग किमी होता है. इस झील का मूल नाम जय समंद था और यह 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गोमती नदी के आर–पार बने एक संगमरमर के बांध द्वारा निर्मित है. पश्चिमी क्षेत्र में स्थित गांवों तक झील से नहरों द्वारा पानी ले जाया जाता है. उत्तरी किनारों पर स्थित जंगलों से भरे छोटे–छोटे द्वीप झील की विशेषता है, जहां तट पर मछुआरों के गांव बसे हुए हैं. दक्षिण की ओर स्थित पहाड़ियों पर दो महल खड़े हैं.

ढोल

रेड डॉग, यानी लाल कुत्ता और एशियाई जंगली कुत्ता (प्रजाति *क्यूआन एल्पाइनस*) भी कहलाता है. यह मांसाहारी वर्ग में श्वान परिवार *कैनिडे* का सदस्य है, जो मध्य और दक्षिण–पूर्व के जंगलों में पाया जाता है. निचले जबड़े में एक जोड़ी दाढ़ कम होना इसकी विशेष पहचान है. ढोल की लंबाई 76 से 100 सेमी और वज़न 14 से 21 किग्रा

होता है. कंधे तक इसकी ऊंचाई लगभग 50 सेमी और काली घनी पूंछ सहित इसकी लंबाई लगभग 135 सेमी होती है. इसके अतिरिक्त इसकी पूंछ काफ़ी लंबी, 28 से 48 सेमी, काले रंग की और घने बालों से ढकी होती है. इसका रंग हल्के पीले से लेकर कत्थई तक हो सकता है, लेकिन शरीर के निचले हिस्से प्रायः हल्के रंग के होते हैं. ढोल सामान्यतः 30 तक की संख्या वाले झुंड में रहते हैं और विभिन्न प्रकार के स्तनधारी प्राणियों का शिकार करते है. आमतौर पर यह हिरन या जंगली भेड़ जैसे स्तनपायी का ही शिकार करते है, लेकिन देखा गया है कि कभी–कभी ये बाघ और भालू जैसे विशाल जानवरों पर भी हमला कर देते हैं. मादा ढोल नौ सप्ताह की गर्भावधि के बाद एक बार में दो से छह शावकों को जन्म देती है.

ढोल : सीटी बजाने वाला भारतीय शिकारी

ढोल या एशियाई जंगली कुत्ता (*क्यूऑन एल्पाइनस*) भारत के वनों में पाए जाने वाले ख़ूंखार, मगर आकर्षक पशुओं में से एक है. यह उन चार श्वान परिवारों में आता है, जो झुंड में शिकार करते हैं. झुंड बनाकर शिकार करने वाले अन्य तीन श्वान परिवारों में भेड़िया (*केनिस लुपस*), अफ़्रीकी जंगली कुत्ता (*लाइकॉन पिकटस*) तथा दक्षिण अमेरिकी बुश डॉग (*स्पेऑथस वेनटिकस*) हैं. अधिकांश स्तनपायी प्रजातियों की तरह मादा ढोल भी नर की तुलना में छोटे क़द की होती है, लेकिन झुंड में नर व मादा में भेद करना मुश्किल होता है.
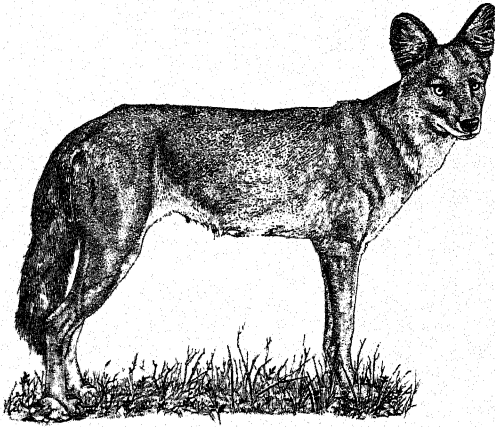
ढोल या भारतीय जंगली कुत्ता, *क्यूऑन एल्पाइनस*
सौजन्य : सेंटर फ़ॉर एन्वायर्नमेंट एजुकेशन, अहमदाबाद

पहले ढोल 50° उत्तरी अक्षांश से साइबेरिया, समूचे एशिया महाद्वीप और पूर्व में 70° देशांतर तक पाए जाते थे. साइबेरिया और उत्तरी चीन में अब ये लुप्तप्राय हैं. ढोल की 10 उपप्रजातियों में से तीन भारत और इसके पड़ोसी देशों में पाई जाती हैं. इनमें से *क्यूआन एल्पाइनस लेनिगर* जम्मू–कश्मीर राज्य में कश्मीर के लद्दाख क्षेत्र में, *सी.ए. प्रीमाइवूस* उत्तर प्रदेश के कुमाऊं, नेपाल, सिक्किम और भूटान में तथा *सी.ए. डुख्नेसिस* गंगा नदी के दक्षिण में मिलती हैं, म्यामांर (भूतपूर्व बर्मा) की सीमा पर स्थित भारतीय वनों जैसे नामदफ़ा टाइगर रिज़र्व में पाई जाने वाली उपप्रजाति संभवतः *सी.ए. एडजस्टस* है. यह उपप्रजाति उत्तरी म्यांमार में भी पाई जाती है.

भारत में ढोल की संख्या अनुमानतः 5,000 से 8,000 तक है. यहां के कुछ वन क्षेत्रों में, जैसे दक्षिण भारत में लगभग 5,000 वर्ग किमी के दायरे में फैले नीलगिरि बायोस्फ़ेयर रिज़र्व में ढोल की संख्या क़रीब 300 है. ढोल का आवास क्षेत्र 40 से 80 किमी तक विस्तृत होता है. सुरक्षित क्षेत्र में ढोल औसतन आठ के झुंड में रहते हैं. लेकिन जब इनके झुंड में छोटे बच्चे भी शामिल

होते हैं, तो इनकी संख्या 25 तक पहुंच जाती है. एक साथ झुंड में रहने से यह चीते और बाघ जैसे समान क्षेत्र वाले शिकारी प्राणियों से अपना बचाव कर लेते हैं. शक्ति के आधार पर झुंड के नेतृत्व का फ़ैसला होता है और सबसे ताक़तवर नर व मादा ही सहवास करते हैं तथा केवल यही मादा गर्भधारण कर सकती है. ढोल पर सबसे ज़्यादा अध्ययन दक्षिण भारत में हुआ है. यहां से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार, ढोल सितंबर अथवा अक्तूबर के महीने में सहवास करते हैं. लगभग दो महीने की गर्भावधि के पश्चात मादा ढोल अपनी मांद में बच्चों को जन्म देती है. शिशु ढोल 70 या 80 दिन मांद में रहते हैं, लेकिन मनुष्यों की आशंका होने पर इन्हें दूसरी मांदों में ले जाया जाता है. मादा ढोल इस दौरान बराबर इनकी देखभाल करती है. उसकी सहायता के लिए कभी–कभी दल का कोई सदस्य भी साथ में रहता है. दल के बाक़ी सदस्य सबके भोजन की व्यवस्था के लिए शिकार करते हैं. ये वयस्क और शावक (चार सप्ताह का होने पर) दल के अन्य सदस्यों द्वारा उगले गए मांस को खाते हैं. पांच महीने की उम्र से ये शावक झुंड में सक्रिय होने लगते हैं और आठ महीने का होने पर शिकार में भी हिस्सा लेने लगते हैं. कभी–कभी तो ये मिलकर 100 किग्रा के सांबर हिरन को भी मार देते हैं.

भौगोलिक क्षेत्रों के अनुसार ढोल विभिन्न स्थानों पर अलग–अलग तरह के जानवरों का शिकार करते हैं. उदाहरण के तौर पर, पूर्व सोवियत संघ में पाए जाने वाले ढोल रेनडियर (*रेनगिफ़र टेरेंडस*), जंगली भेड़ (*ओविस अम्मोन*) और बैजर (*मेलिस मेलिस*) का शिकार करते हैं. भारत के हिमालय क्षेत्र में जंगली बकरी (*काप्रा इबेक्स सिबीरिका*), नीली भेड़ (*सुडोइस न्याओर*) और तिब्बती लंबे बाल वाले ख़रगोश (*लिपस ओइओसटोलस*) को अपना शिकार बनाते हैं. इसी तरह जावा में बानतेंग (*बॉस जावानिकस*), मध्य भारत में दलदली हिरन (*सर्वस डुवासिली*) और दक्षिण भारत में पश्चिमी घाट पर नीलगिरि तहर (*हेमिट्राग्स हाइलोक्रिअस*) ढोल के आहार हैं. इसके अतिरिक्त भारत में ढोल गौर (*बॉस गौरस*), सांबर (*सर्वस यूनिकलर*), चीतल (*सर्वस एक्सिस*), भौंकने वाला हिरन (*मुनटियाकस मुंटजाक*), नीलगाय (*बोसलेफस ट्रॅगोकेमेलस*), चौसिंगा हिरन (*टेट्रासेरस क्वाड्रि*), जंगली सूअर (*सुस स्क्रोफ़ा*) और ख़रगोश (*लिपस निगरीकोलिस*) का शिकार करते हैं.

ढोल अनुक्रमिक तरीक़े से शिकार का पीछा नहीं करते. सबसे पहले झुंड के कुछ सदस्य शिकार का पीछा करके उसे घात लगाकर बैठे साथियों की ओर खदेड़कर मार डालते हैं या फिर लंबी कतार में जंगल से गुज़रते हुए शिकार पकड़ते हैं. ढोल शिकार मिलने के संभावित क्षेत्रों (शिकार के आराम करने के स्थानों और उनके एकत्रित होने की जगहों) की क्रमवार खोज करते हैं. शिकार का पता लगाने और छिपे हुए जंतु को ढूंढ़ निकालने के लिए वे सूंघने की अपनी अद्‌भुत शक्ति का उपयोग करते हैं. इनकी पैनी दृष्टि भागते हुए शिकार का पीछा करने और उस पर हमला करने में मदद करती है. असफल शिकार के बाद ढोल अपनी विशेष सीटी जैसी आवाज़ के सहारे फिर से एकत्र हो जाते हैं. झुंड से पिछड़ा हुआ ढोल इसी आवाज़ के ज़रिये अपने झुंड के अन्य सदस्यों का पता लगाता है.

ख़रगोश और चीतल शावक जैसे छोटे जानवरों का शिकार करते समय ढोल उनके शरीर के किसी भी भाग से उन्हें पकड़कर अपने सिर के एक झटके से मार डालता है, जबकि बड़े जानवरों, जैसे ख़तरनाक सींग वाले सांबर और वयस्क चीतल की नाक दबोचकर, पेट फाड़कर

आंत निकाल लेता है. यह दृश्य अक्सर दिन में भी दिख जाता है. इसी कारण ढोल ख़ूंखार और क्रूर शिकारी कहलाता है. इसके अतिरिक्त शिकारियों का यह भी मानना है कि ढोल द्वारा हिरन का शिकार करने से उन्हें शिकार के लिए हिरन मिलने में मुश्किल होती है और इसीलिए वे प्रतिस्पर्द्धी ढोल को पूरी तरह समाप्त करने का अभियान चलाते हैं, फिर भी 1970 के दशक तक ढोल की संख्या अच्छी ख़ासी थी, यहां तक कि वे संरक्षित इलाक़ों के आसपास भी देखे जा सकते थे.

ढोल शिकार को मारने के बाद तुरंत खा लेते हैं. झुंड के सभी सदस्य भोजन करते समय आपस में नहीं लड़ते, लेकिन तेज़ी से खाने की होड़ ज़रूर होती है. सबसे पहले वे अपने शिकार के मांसल पुट्ठे खाते हैं, क्योंकि इस हिस्से में काफ़ी मांस होता है. लेकिन यह कुछ सदस्यों के ही हिस्से आता है, इसलिए बाक़ी सदस्य मारे गए पशु को सभी तरफ़ से चीर–फाड़कर खाते हैं. जब ढोल आंतें खा लेते हैं, तो उसके बाद बचे हुए अंग, हृदय और यकृत के लिए होड़ लगती है. शिकार यदि शावक है, तो ढोल सबसे पहले उसकी आंत खाते हैं और उनमें भरी सामग्री को बाहर बिखेर देते हैं. जल उपलब्ध होने पर ढोल भोजन करते समय कई बार पानी पीते हैं, वरना भोजन ख़त्म करते ही पास के किसी जलकुंड में जाकर पानी पीते हैं. ढोल अपने भोजन को छिपाकर नहीं रखते. शिकार बड़ा होने पर एक ढोल पांच किग्रा तक मांस खा सकता है, लेकिन शिकार प्रचुर क्षेत्र में एक वयस्क ढोल औसतन प्रतिदिन 1.8 किग्रा तक मांस खा सकता है. ढोल की एक और विशेष बात उसके मल त्याग का तरीक़ा है. जंगलों में बनी पगडंडियों पर ये सामूहिक रूप से मलत्याग करते हैं, जो संभवतः अन्य झुंडों को यह संकेत देता है कि उस इलाक़े में पहले ही एक दल रहता है. इस मल द्वारा झुंड के सदस्य एक–दूसरे को आसानी से ढूंढ़ लेते हैं और जान लेते हैं कि उस क्षेत्र में शिकार किया जा चुका है.

ढोल अपने झुंड का आकार बढ़ने नहीं देते. सामान्यतः एक झुंड में केवल एक ही मादा गर्भधारण करती है और शेष मादाएं संभवतः अन्य क्षेत्रों में चली जाती हैं. रेबीज़, श्वान जाति की व्याधियों और खाज के कारण इनकी संख्या कम होती जा रही है. हालांकि ढोल द्वारा किसी आदमी पर हमला करने की कोई विश्वस्त जानकारी नहीं मिली है, लेकिन दोनों के बीच प्रतिस्पर्द्धा की भावना हमेशा से रही है. लोग ढोल के बच्चों को चुरा लेते हैं, अपने मवेशी मारे जाने पर समूचे झुंड को ज़हर दे देते हैं और उनके शिकार भी चुरा लेते हैं. पहले जब वनों में ढेर सारे पशु थे, तब ढोल इन दबावों का सामना करने में सक्षम थे. ढोल का अस्तित्व बचाए रखने के लिए ज़रूरी है कि बाघ और ढोल के संरक्षण के लिए संयुक्त प्रयास हों. जिस तरह बाघ के संरक्षण के लिए अबाधित मध्य क्षेत्र और प्रचुर शिकार वाले वन क्षेत्रों की आवश्यकता है, उसी प्रकार ढोल के भविष्य के लिए भी यह ज़रूरी है.

ढोल

संगीत उपकरण, जिसमें खिंची हुई खाल के प्रदोलन से ध्वनि उत्पन्न होती है. मूलतः ढोल (खोखला) ट्यूब या लकड़ी, धातु या मिट्टी का दो तरफ़ से खुला बर्तन होता है, जिसके एक या दोनों छोर पर खाल मढ़ी होती है, जिसे आमतौर पर हाथ या छोटे डंडे से बजाया जाता है.

नवपाषाण काल से आगे के पुरातत्वीय उत्खनन से व्यापक भौगोलिक क्षेत्र में ढोल मिले हैं; मोरविया में मिला एक ढोल 6000 ई.पू. का है. प्रारंभ में ढोल पेड़ के खोखले तने के भाग से बनते थे, जिनके एक छोर पर मछली की खाल या सरीसृप की खाल लगी होती थी, जिसे हाथों से बजाया जाता था. बाद में शिकार किए गए जानवरों या मवेशियों की खाल लगाई जाने लगी, जिसे डंडे से बजाया जाता था. दो सिरों के ढोल बाद में आए और इसी प्रकार मिट्टी के बने अलग–अलग आकार के ढोल के दोनों सिरों को कई तरीक़ों से कसा जाता था, कुछ तरीक़े आज भी अपनाए जाते हैं. एक सिरे वाले ढोल में खाल को खूंटी, कील, गोंद, बटन (खाल में छेद से) या फीते लगाकर (खाल के चारों ओर एक तार बांधकर) कसा जाता था. ढोल के संगीत के अलावा भी कुछ अलग स्पष्ट इस्तेमाल थे, जैसे सामाजिक और संदेश प्रसारण. जादुई शक्ति संपन्न माने जाने के कारण इन्हें पवित्र भी समझा जाता है. कई समुदायों में इसका निर्माण अनुष्ठानपूर्वक किया जाता है. पुरातन सुमेर मंदिरों में विशाल ढोल इस्तेमाल किए जाते थे और लगभग 3000 ई.पू. की मेसोपोटामियाई वस्तुओं में फ़्रेम वाले ढोल और छोटे बेलनाकार ढोलों का पता चला है, जो खड़े करके और लिटाकर बजाए जाते थे. मिस्र की प्रारंभिक कलात्मक वस्तुओं (4000 ई.पू.) में ढोल दिखाया गया है, जिसमें खाल को तसमों से बांधा गया है.

तबला, उत्तर भारतीय वाद्य, उस्ताद अल्ला रक्खा
सौजन्य : *हिंदुस्तान टाइम्स*

भारत में ढोल प्राचीन काल से जाने जाते रहे हैं. कीलयुक्त या डमरू (रेतघड़ी) ढोल भरहुत आकृतियों में से एक पर दिखाई देता है, सबसे पुरानी भारतीय मंदिर आकृति (दूसरी शताब्दी ई.पू.) है. आधुनिक भारतीय डमरू रेतघड़ी के आकार का बजाने वाला ड्रम है; इसे हिलाए जाने पर इसके सिरे, इसके साथ बंधी दो रस्सियों से बजते हैं. नली और खोखले कील जैसे ढोल ख़ासतौर पर भारत और पूर्व एशिया से संबंधित हैं; जापान के ताइको ढोल उल्लेखनीय हैं, जिन्हें विभिन्न आकारों में बनाया जाता है. दो सिर के फ़्रेम वाले ढोल, जिनके अंदर गोलियों को बंद किया जाता है (भारत और तिब्बत में पाए जाते हैं) को शोरगुल मचाने वाला ढोल कहा जाता है. भारत में आमतौर पर बजाए जाने वाले ढोल हैं, केरल में हिंदुस्तानी संगीत में प्रयुक्त होने वाला तबला, कर्नाटक संगीत में मृदंगम और उत्तर में इसी प्रकार की पखावज तथा ढोलक, जो उत्तरी भारत और पाकिस्तान की लोक परंपराओं में बहुत लोकप्रिय हैं.

मृदंगम, दक्षिण भारतीय वाद्य
सौजन्य : *हिंदुस्तान टाइम्स*

तंजावुर

बृहदीश्वर चोल मंदिर, तंजावुर, तमिलनाडु
फ़ोटो : रिचर्ड एबेलेस

शहर, तंजौर भी कहलाता है, तंजावुर ज़िले का प्रशासनिक मुख्यालय, तमिलनाडु राज्य, दक्षिण–पूर्वी भारत, कावेरी डेल्टा में स्थित. नौवीं से ग्यारहवीं शताब्दी तक चोलों की आरंभिक राजधानी तंजौर, विजयनगर, मराठा तथा ब्रिटिश काल के दौरान भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण रहा. अब यह एक पर्यटक स्थल है और इसके आकर्षणों में बृहदीश्वर चोल मंदिर, विजयनगर क़िला और मराठा राजकुमार सरफ़ोजी का महल शामिल है. कपास मिल, पारंपरिक हथकरघा और वीणा निर्माण यहां की प्रमुख औद्योगिक गतिविधियां हैं. यहां मद्रास विश्वविद्यालय से संबद्ध आठ महाविद्यालय हैं.

तंजावुर ज़िला 8,300 वर्ग किमी समतल मैदान, उपजाऊ कावेरी डेल्टा का एक हिस्सा है, जो देश के महत्त्वपूर्ण चावल उत्पादक क्षेत्रों में एक है, जो पाक जलडमरूमध्य और बंगाल की खाड़ी के संगम, कल्लिमेड अंतरीप (प्वाइंट कैलिमेअर) पर समाप्त होता है. इस डेल्टा में कावेरी नदी से निकली नहरों से सिंचाई होती है, कई नहरें तो पिछली दस शताब्दियों से अस्तित्व में हैं. चावल, चीनी और मूंगफली यहां की मुख्य फ़सलें हैं. खाद्यान्न प्रसंस्करण यहां का प्रमुख उद्योग है. इस ज़िले में कई शहर विकसित हुए हैं, जिनमें तंजावुर, कुंबकोणम और नागापट्टिनम बड़े शहर हैं. जनसंख्या (2001) शहर 2,15,725; ज़िला कुल 22,05,375.

तंदूरी पाककला

मिट्टी की बेलनाकार भट्टी या तंदूर में लकड़ी के कोयले की आंच पर भोजन पकाने की पद्धति. विशाल कलश की आकृति वाला तंदूर कम से कम एक मीटर ऊंचा और प्रायः गर्दन तक ज़मीन में धंसा होता है. ऐसा माना जाता है कि तंदूरी पाककला का जन्म फ़ारस में हुआ, जहां से यह किसी एक या अन्य रूप में संपूर्ण भारत में लोकप्रिय हो गई. तंदूर को गर्म करने के लिए इसमें लकड़ी या कोयले की आग घंटों तक जलाकर रखी जाती है. मसालेदार कबाब (मांस) को दही और मसाले में लपेटकर लोहे की पतली छड़ों में पिरोकर गर्म तंदूर में रखकर पकाया जाता है. यह पककर तंदूरी रंग का (सुर्ख़ नारंगी लाल) हो जाता है, तब इसमें प्राकृतिक वनस्पति रंग मिलाया जाता है. गेहूं के आटे से बना अंडाकार नान (रोटी) तंदूर की भीतरी दीवार पर लगाकर पकाया जाता है. तंदूरी मुर्ग़ा तंदूरी पाककला का सर्वाधिक लोकप्रिय व्यंजन है. पंख वग़ैरह साफ़ करने के बाद पूरा मुर्ग़ा तंदूर में जल्दी ही भून जाता है.

तंत्र

(संस्कृत शब्द, अर्थात तंतु) कुछ हिंदू, बौद्ध या जैन संप्रदायों के रहस्यमय आचरणों से संबंधित कई ग्रंथों में से एक. हिंदू धार्मिक साहित्य के परंपरागत वर्गीकरण में पुराणों (पौराणिक कथाओं, अनुश्रुतियों और अन्य विषयों के मध्यकालीन अतिव्यापक संकलन) की तरह उत्तर–वैदिक संस्कृत ग्रंथों के एक वर्ग को तंत्र कहा जाता है. इस प्रयोग में तंत्र सैद्धांतिक रूप से धर्मशास्त्र, मंदिरों एवं मूर्तियों के निर्माण तथा धार्मिक आचरण के प्रतिपादक हैं, किंतु वास्तव में वे जादू–टोना, अनुष्ठानों और प्रतीकों जैसे हिंदू धर्म के लोकप्रिय पहलुओं से संबद्ध हैं. हिंदू सांप्रदायिक सारणी के अनुरूप वे शैव आगमों, वैष्णव संहिताओं और शाक्त तंत्रों में विभक्त हैं.

शाक्त तंत्रों की सूचियां एक–दूसरे से काफ़ी भिन्न हैं, लेकिन संकेत मिलते हैं कि प्रारंभिक पांडुलिपियां क़रीब सातवीं सदी की हैं. वे देवी शक्ति को दैवी सर्जन शक्ति या ऊर्जा का नारी स्वरूप मानते हैं. इस अवधारणा का मानना है कि अपनी शक्ति के बिना शिव शव हैं. योग से संबद्ध तंत्रों में शक्ति का तादात्म्य कुंडलिनी से किया गया है; वह ऊर्जा, जो (मेरुदंड) के आधार पर तब तक कुंडली के रूप में रहती है, जब तक कि यौगिक साधना द्वारा उसे शरीर से गुज़ारते हुए ऊपर नहीं लाया जाता. तंत्र पद्धति यंत्रों एवं मंडलों (आनुष्ठानिक रेखाचित्र) और मंत्रों (गूढ़ अक्षर या पवित्र सूत्र) पर भी ज़ोर देते हैं. शाक्त तंत्रों में प्रमुख है : *कुलर्णव*, जो 'वाम हस्त' कर्मकांडों, जैसे आनुष्ठानिक मैथुन का प्रतिपादन करते हैं; *कुलचूड़ामणि* में अनुष्ठानों की चर्चा की गई है और *शारदातिलक* में विशेष रूप से जादू–टोने का वर्णन है.

बौद्ध तंत्र सातवीं सदी या पहले के हैं व *तथागतगुह्यका* एक प्रारंभिक एवं उत्कृष्ट रचना है. क़रीब नौवीं सदी के बाद इन रचनाओं का तिब्बती और चीनी भाषा में अनुवाद किया गया और कुछ तो अब इन्हीं भाषाओं में संरक्षित हैं, क्योंकि मूल संस्कृत रचनाएं खो चुकी हैं. बौद्ध तंत्रों में महत्त्वपूर्ण रचना *कालचक्र–तंत्र* है.

तंबूर

लंबी गर्दन वाली वीणा, बाल्कन से पश्चिमोत्तर एशिया में विभिन्न नामों से बजाया जाने वाला वाद्य. प्राचीन यूनानी पंडुरा (पैंडोरा) और प्राचीन मिस्र एवं बेबीलोन के लंबे तार वाद्यों से मिलता–जुलता यह वाद्य गहरा व नाशपाती के आकार का होता है. इसमें एक पर्दे वाली गर्दन होती है तथा 2 से 10 दोहरे तार बिना मेखमंजूषा के अग्र एवं पार्श्व मेखों से बंधे हुए होते हैं.

तंबूर मध्य काल से लोकप्रिय रहा है. इसके मिलते–जुलते स्वरूपों में यूनानी बुजुकी, रोमानीयाई तंबुरित्ज़ा तथा भारतीय सितार एवं तंबूरा शामिल हैं.

तक़िया

(अरबी शब्द, अर्थात आत्मरक्षा), जब ख़ुद को या अपने मुसलमान साथियों की जान को ख़तरा हो या किसी तरह का नुक़सान हो, तब अपनी मज़हबी पहचान को छिपाना और सामान्य मज़हबी फ़र्ज़ों को छोड़ देना तक़िया है.

क़ुरान मुसलमानों को नास्तिकों से संबंध रखने की इजाज़त देता है (3:28), यदि ऐसा करने से वे सामने आए ख़तरे से बच जाते हैं, तो खुले तौर पर अपने मज़हब से इनकार की भी इजाज़त है (16:106), लेकिन इस शर्त पर कि उनके दिल में वही बात न हो, जो उनकी ज़ुबान पर हो. माना जाता है कि ख़ुद मुहम्मद साहब द्वारा तक़िया के पालन का पहला उदाहरण प्रस्तुत किया गया, जब उन्होंने मक्का में अपने शक्तिशाली शत्रुओं का सामना करने के बजाय मदीना चले जाना तय किया.

तक़िया के इस्तेमाल के कुछ तय नियम हैं. कोड़ों की सज़ा या अस्थायी कारावास और दूसरी तक़लीफ़ों, जो सहनीयता की सीमा में आती हैं, से बचने के लिए तक़िया के इस्तेमाल को उचित नहीं माना जा सकता. एक व्यक्ति, जिस पर औरतों और बच्चों की ज़िम्मेदारियां नहीं हैं; केवल ख़ुद की ज़िंदगी के लिए सीधे और स्पष्ट ख़तरे को छोड़कर किसी परिस्थिति में इसका इस्तेमाल नहीं कर सकता. मानसिक असहमति के साथ ली गई शपथ को इस आधार पर न्यायोचित माना जाता है कि ख़ुदा वही मंज़ूर करता है, जो आंतरिक रूप से विश्वास किया जाता है. ज़्यादातर मामलों में व्यक्तिगत लाभ के बजाय सामुदायिक हितों को प्राथमिकता दी जाती है.

लगातार प्रताड़नाओं और राजनीतिक पराजयों से पीड़ित होने के कारण शिया (इस्लाम की अल्पसंख्यक शाखा) ने तक़िया को आधारभूत सिद्धांत बना लिया. पूर्वी अफ़्रीका, दक्षिणी अल्जीरिया और ओमान के मुस्लिम संप्रदाय इबादिया ने अविवेकपूर्ण और अनावश्यक शहादत से बचने की बात की और तक़िया को एक मूलभूत मज़हबी ज़रूरत माना. अपने विश्वास के प्रकटीकरण के कारण अपने उद्देश्य पर ख़तरा महसूस किया, तो कई दूसरे संप्रदाय भूमिगत हो गए. आख़िरकार, यह व्यक्ति की अंतरात्मा पर छोड़ दिया गया कि वह स्वयं अपने विवेक से तय करे कि क्या तक़िया पूरी तरह ज़रूरी है और यह कि इससे उसके अपने स्वार्थ पूरे होंगे या मज़हब और समुदाय का हित होगा.

तक्षशिला

पश्चिमोत्तर भारत का एक प्राचीन शहर, पाकिस्तान के रावलपिंडी से लगभग 35 किमी पश्चिमोत्तर में स्थित भग्नावशेष. प्राचीन काल में इसकी समृद्धि का प्रमुख कारण तीन महान व्यापारिक मार्गों के संधिस्थल पर इसकी अवस्थिति थी. यूनानी लेखक मेगस्थनीज़ द्वारा शाही राजमार्ग के रूप में वर्णित पहला मार्ग पूर्वी भारत, दूसरा पश्चिम एशिया और तीसरा कश्मीर–मध्य एशिया से आने वाला मार्ग था. इन मार्गों का महत्त्व ख़त्म हो जाने पर इस शहर का भी पतन होने लगा और अंततः पांचवी सदी में हूणों द्वारा इसे पूरी तरह से नेस्तनाबूद कर दिया गया.

इतिहास

तक्षशिला को ग्रीक–रोमन (यूनानी) साहित्यिक स्रोतों के संदर्भ और दो चीनी यात्रियों फ़ाह्यान और ह्वेनसांग द्वारा दिए गए विवरणों से जाना जाता है. इसका शाब्दिक अर्थ तराशे हुए पत्थरों का शहर या तक्ष की चट्टान है. *रामायण* के अनुसार, तक्षशिला (यूनानियों द्वारा टेक्सिला के रूप में लिया गया) की स्थापना राम के छोटे भाई भरत ने की थी. इस नगर का नाम भरत के पुत्र तक्ष, जो इसके पहले शासक हुए, के नाम पर पड़ा. ऐसा माना जाता है कि राजा जनमेजय के महान नागयज्ञ के समय तक्षशिला में पहली बार महान महाकाव्य *महाभारत* का पाठ हुआ था. बौद्ध साहित्य, विशेषकर *जातक* में इसका उल्लेख शिक्षा के महान केंद्र एवं गांधार राज्य की राजधानी के रूप में मिलता है. गांधार का संदर्भ क्षत्रपी या प्रांत के रूप में पांचवीं सदी ई.पू. के एकेमेनियाई (अखामनी, फ़ारसी) राजा दरियस I के अभिलेखों में भी मिलता है. गांधार की राजधानी के रूप में तक्षशिला स्पष्ट रूप से 100 सालों से भी ज़्यादा एकेमेनियाई शासन के अधीन रहा. जब सिकंदर ने 326 ई.पू. में भारत पर आक्रमण किया था, तब तक्षशिला के शासक आंभि (ओंफ़िस) ने शहर का समर्पण कर अपने सभी संसाधनों को सिकंदर की सेवा में अर्पित कर दिया था. इस मकदूनियाई विजेता के साथ चल रहे यूनानी इतिहासकारों ने तक्षशिला का वर्णन 'धनी, समृद्ध और सुप्रशासित' राज्य के रूप में किया था.

सिकंदर की मृत्यु के एक दशक के बाद ही चंद्रगुप्त द्वारा स्थापित मौर्य साम्राज्य में तक्षशिला का विलय हो गया, उनकी अधीनता में यह एक प्रांतीय राजधानी बना. लेकिन यह तो तक्षशिला के इतिहास का मात्र एक मध्यांतर था, अभी तो उसे कई पश्चिमी विजेताओं को देखना था. मौर्य शासन की तीन पीढ़ियों के बाद इस नगर पर बैक्ट्रिया के भारतीय–यूनानी राज्य का क़ब्ज़ा हो गया. यह भारतीय–यूनानी शासकों के अंतर्गत पहली शताब्दी ई.पू. के पूर्वार्द्ध तक रहा. उनके बाद मध्य एशिया से शक या सीथियाई आए और फिर पार्थियाई, जिनका शासन पहली शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक चला.

आरंभिक ईसाई आख्यानों के अनुसार, ईसा मसीह के पहले शिष्यों में से एक, थॉमस, ने पार्थियाई शासनकाल में तक्षशिला की यात्रा की थी. एक अन्य उल्लेखनीय यात्री संत नियो पाइथागोरियन, ट्याना के अपॉलोनियस (पहली सदी ई.पू.) थे, जिनके जीवनीकार फ़िलोस्ट्राटस ने तक्षशिला का वर्णन समरूपीय योजना में बसे क़िलेबंद शहर के रूप में किया. उन्होंने आकार में इसकी तुलना निनेवेह (प्राचीन असीरियाई साम्राज्य के सबसे पुराने और सबसे ज़्यादा आबादी वाले शहर) से की थी.

कुजुला कदफ़िस के नेतृत्व में कुषाणों ने पार्थियाइयों से तक्षशिला को छीन लिया. महान कुषाण शासक कनिष्क ने इसी स्थल पर तीसरे नगर 'सिरसुख' की स्थापना की. (दूसरा नगर भारतीय–यूनानी काल का सिरकप था) ऐसा प्रतीत होता है कि चौथी शताब्दी में ससेनियाई राजा शापुर II (310–379) ने तक्षशिला पर विजय हासिल की थी, जिसका प्रमाण वहां प्राप्त ससेनियाई तांबे के सिक्कों से मिलता है. ससेनियाई

शासनकाल के बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है, लेकिन जब फ़ाह्यान ने पांचवीं शताब्दी की शुरुआत में शहर की यात्रा की, तो उन्होंने इसे फलते–फूलते बौद्ध विहारों एवं मठों का केंद्र पाया था. इसके कुछ समय बाद ही हूणों ने इस नगर को नेस्तनाबूद कर दिया. तक्षशिला इस विनाश से कभी उबर नहीं पाया. ह्वेनसांग जब सातवीं शताब्दी में यहां पहुंचे, तो उन्हें भग्नशेष और निर्जन नगर मिला और बाद के अभिलेखों में इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता है. भारतीय पुरातत्वशास्त्र के जनक सर अलेक्ज़ेंडर कनिंघम ने 1863–1864 व 1872–1873 में खुदाई की शुरुआत की और स्थानीय तौर पर सराईख़ाला के नाम से प्रसिद्ध इस जगह की पहचान प्राचीन तक्षशिला के रूप में की. सर जॉन मार्शल ने इस कार्य को जारी रखा और 20 वर्षों की अवधि में इस प्राचीन स्थल और इसके स्मारकों को संपूर्ण रूप से दुनिया के सामने रखा.

पुरातत्वशास्त्र

तक्षशिला के सरंचनात्मक अवशेषों में भिर का टीला क्षेत्र, सिरकप का महल क्षेत्र, जांदियाल व पिप्पला मंदिर, गिरि क़िला, मोहरा, मोरांडू व जौलियान के मठ और धर्मराजिका, भल्लार व कुणाल के स्तूप (मक़बरा) शामिल हैं. स्मारकों में विभिन्न प्रकार का चिनाई कार्य उनके उत्पत्ति काल का परिचायक है. सबसे पुराने अवशेष भिर के टीले के हैं. महल क्षेत्र अपने असीरियाई समरूप की रूपरेखा के नमूने पर बना है, जिसमें कई द्वार हैं और यह बाहर से क़िलेबंद है. यह क्रमशः वहां बसी विभिन्न बस्तियों के बारे में बताता है और इस निर्माण के प्राचीनतम हिस्से पत्थरों की चिनाई से बने हैं. वहां एक विशाल बौद्ध मंदिर, कई छोटे पूजाघर और आवासीय मकानों के परिसर मिले हैं. दो सिर वाले बाज का देवालय, कोरिंथियन शैली के वर्गाकार स्तंभ और बीच–बीच में बने गवाक्षों (छतदार स्थानों) के कारण दिलचस्प हैं. महल क्षेत्र में मिली अन्य कलाकृतियों में पकी मिट्टी का काम, मिट्टी के बर्तन एवं कांसे, तांबे व लोहे की वस्तुएं, नग, जवाहरात और भारतीय–यूनानी, पार्थियाई व प्रारंभिक कुषाण शासकों के सिक्के शामिल हैं.

चीर टोप के रूप में प्रख्यात धर्मराजिका स्तूप इसके निचले तले के चारों ओर ऊंचे उठे चबूतरे पर बनी एक वृत्ताकार सरंचना है. इस स्तूप के चारों ओर छोटे–छोटे पूजाघरों का वृत्त है. मुख्य स्तूप के चारों ओर के भवनों में तीन भिन्न प्रकार की चिनाई के कार्य से विभिन्न कालों के योगदान के बारे में पता चलता है. एक पूजाघर में खरोष्ठी में लिखित चांदी का अभिलेख और एक छोटे से स्वर्ण कलश में बुद्ध की पवित्र अस्थियां मिली हैं. अभिलेख में नोचा नगर के उरसक नामक बैक्ट्रियाई द्वारा ई.पू. 136 में महान राजा, राजाधिराज, स्वर्गपुत्र, कुषाण (संभवतः विमा कदफिस, कुषाण विजेता कुजुला के पुत्र) के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए इन पवित्र स्मृति चिह्नों (अवशेषों) को देवालय में रखने का संदर्भ है. इस स्थल में बुद्ध एवं बोधिसत्व की कई मूर्तियां भी हैं.

यूनान के शास्त्रीय मंदिरों से मिलता–जुलता जांदियाल मंदिर एक कृत्रिम टीले पर बना है. इसके आयोनियन (यूनानी आयन से संबंधित) खंभे और वर्गाकार स्तंभ बड़े–बड़े बलुआ पत्थरों को तराशकर बनाए गए हैं. शक पार्थियाई काल में निर्मित यह

मंदिर संभवतः फ़िलोस्ट्रॉटस की कृति 'लाइफ़ ऑफ़ अपोलोनियस ऑफ़ ट्याना' में वर्णित मंदिर है. यद्यपि जांदियाल मंदिर बौद्ध नहीं है, लेकिन जौलियान अवशेष बौद्ध हैं. इनमें एक मठ और दो स्तूप–प्रांगण शामिल हैं.

तक्षशिला प्रांतीय स्थान होने के साथ–साथ एक अध्ययन केंद्र भी था, लेकिन यह व्याख्यान कक्ष एवं आवासीय मकानों वाला विश्वविद्यालयीय केंद्र नहीं था, जैसा बिहार में नालंदा में पाया गया है. तक्षशिला में शिक्षक अपने शिष्यों को आवास उपलब्ध कराता था, जो शिक्षक और उसके परिवार की सेवा या शुल्क के रूप में अपने रहने–खाने का ख़र्च देते थे. बौद्ध मठ भी भिक्षु एवं विद्यार्थियों की आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रबंध करते थे.

तत् त्वम् असि

(संस्कृत शब्द, अर्थात तुम वह हो), हिंदू दर्शन में व्यक्ति एवं परम के बीच के संबंधों की प्रसिद्ध अभिव्यक्ति. इस वक्तव्य की *छांदोग्योपनिषद्* (लगभग 600 ई.पू.) के छठे अध्याय में पुनरावृत्ति हुई है, जहां उद्दालक आरू अध्यापक के रूप में अपने पुत्र को परम यथार्थ के स्वरूप के बारे में बताते हैं. इस विचार में व्यक्त तादात्म्य की वेदांत के रूढ़िवादी दर्शन के विभिन्न मतों ने अलग–अलग व्याख्या की है. इस सूक्ति की आठवीं–नौवीं सदी में अद्वैत मत के चिंतक शंकर ने सबसे अधिक शब्दशः व्याख्या की है, जिसके अनुसार यह वक्तव्य उनके सिद्धांत के समर्थन की सशक्त दलीलों में से एक था.

तथागत

(संस्कृत एवं पालि), बुद्ध की उपाधियों में एक तथा स्वयं अपना उल्लेख करते समय ऐतिहासिक बुद्ध, सिद्धार्थ गौतम, द्वारा अधिकतम प्रयुक्त उपाधि. इस शब्द का सही–सही अर्थ अनिश्चित है; बौद्ध टीकाओं में आठ व्याख्याएं मिलती हैं. सबसे अधिक स्वीकार्य व्याख्या है, 'वह, जो इस प्रकार (तथ) गया (गत्)' या 'वह, जो इस प्रकार (तथ) आया (आगत)', जिसका अर्थ है कि ऐतिहासिक बुद्ध उन सभी बुद्धों में एकमात्र थे, जिन्होंने भूतकाल में मोक्ष प्राप्त किया और भविष्य में करेंगे तथा अन्य लोगों को इसकी प्राप्ति की शिक्षा देंगे.

बाद के महायान बौद्ध संप्रदाय में तथागत को सबमें छिपी मूल बुद्ध प्रकृति की अभिव्यक्ति माना जाने लगा. तथागत वह है, जो ज्ञान प्राप्ति को संभव बनाता है. अपने तथागत होने के कारण व्यक्ति मोक्ष के लिए लालायित होता है. जो कुछ भी विद्यमान है, उसकी सही स्थिति के रूप में तथागत परम यथार्थ का पर्यायवाची है, अन्यथा व्याख्या से परे है.

तप या तपश्चर्या

(ग्रीक भाषा का *असेको,* अर्थात पालन करना अथवा प्रशिक्षित करना), आध्यात्मिक आदर्श या लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भौतिक अथवा मानसिक इच्छाओं को नकारने की प्रक्रिया. शायद ही किसी धर्म में तप का कोई प्रमाण या इसके कुछ लक्षण मौजूद न

हों. तप के उत्थान और इस स्थिति में पहुंचने में सांसारिक जीवन की अस्थायी प्रकृति के ज्ञान का महत्त्वपूर्ण स्थान है, जो किसी व्यक्ति में पारलौकिकता के प्रति आशा उत्पन्न करता है.

तफ़्सीर

(अरबी शब्द, अर्थात व्याख्या), इस्लाम के पवित्र ग्रंथ *कुरान* की व्याख्या की पद्धति या *कुरान* से संबद्ध विवेचना. जब तक इस्लाम के पैग़ंबर मुहम्मद साहब जीवित थे, *कुरान* के प्रकाशनों की व्याख्या के लिए किसी सत्ता को मुसलमानों ने स्वीकार नहीं किया. उनकी मृत्यु के बाद व्याख्याओं की आवश्यकता पड़ी, क्योंकि पाठ में लिखित घटनाओं में ऐतिहासिक क्रम का अभाव था; पाठ और अर्थ, दोनों में अस्पष्टता थी; कई विपरीत अर्थों वाली सामग्रियां थीं; अशुद्ध लिपि में लिखा गया था और यहां तक कि कई स्पष्ट विरोधाभास भी थे. शुरुआती दौर में कई मुसलमानों ने *कुरान* की व्याख्या विशुद्ध निजी निराधार कल्पनाओं के आधार पर करने का प्रयास किया, जिन्हें *तफ़्सीर बिर्–राय* कहा जाता है, ऐसी व्याख्याएं आमतौर पर ख़ारिज हुईं, लेकिन वे अब भी क़ायम हैं. अन्य लोगों ने *कुरान* के हिस्सों की व्याख्या और परिष्कार ईसाई, विशेषकर यहूदी स्रोतों (*इज़राइलियात*) से कहानियां लेकर किया. ऐसी व्याख्याओं के मनमानेपन से निपटने के लिए चौथी इस्लामी सदी में (10वीं ई.) में एक धार्मिक पद्धति विकसित हुई, जिसे *इल्म अल तफ़्सीर* कहा गया. यह कुरानी पाठ की व्यवस्थित व्याख्या है, जो आयत दर आयत आगे बढ़ती है और कभी–कभी शब्द दर शब्द. वक़्त के साथ इस विज्ञान ने अपनी कई पद्धतियां और रूप विकसित कर लिए.

हंगरी के विद्वान इग्नाज़ गोल्डज़िर ने कई स्तरों पर *तफ़्सीर* के विकास को चिह्नित किया है. पहले या आदिम स्तर पर मुसलमान मुख्यतः *कुरान* के व्यवस्थित पाठ के विकास में लगे थे. दूसरी स्थिति में, जो पारंपरिक *तफ़्सीर* के रूप में जानी जाती है, *कुरान* के अंशों की व्याख्याएं हैं, जो खुद मुहम्मद साहब या उनके साथियों द्वारा इन अंशों के बताए अर्थों पर आधारित हैं. इसलिए ये परंपराओं (*हदीस*) और मुहम्मद साहब या उनके निकट सहयोगियों के कथनों पर आधारित हैं. जब मुसलमानों ने एक धार्मिक समुदाय के रूप में अपनी पहचान बनाने और सिद्धांत संबंधी अपनी धारणाओं को स्थापित करने का प्रयास किया, तब एक सैद्धांतिक प्रकार का *तफ़्सीर* विकसित हुआ. विभिन्न सांप्रदायिक समूहों ने विशिष्ट सिद्धांत संबंधी अपनी व्याख्याओं को स्थापित करने के लिए *कुरान* की व्याख्या क़ी. इनमें उल्लेखनीय थे मुतज़िला, तथाकथित विवेकवादी, जिन्होंने इस बात पर बल दिया कि व्याख्या (तावील) आवश्यक रूप से विवेकसम्मत होनी चाहिए. रहस्यवादी रुझानों वाले सूफ़ी और शिया *तावील* का भी पालन करते थे, जो विशुद्ध बाह्य विश्लेषण से बिल्कुल अलग था. एक ब्रिटिश विद्वान, जॉन वांसब्रो ने *तफ़्सीर* साहित्य का वर्गीकरण इसके स्वरूप और प्रकार्य के आधार पर किया. उन्होंने पांच प्रकारों की पहचान की, जिन्हें उन्होंने मोटे तौर पर आगे आने वाले क्रम में विकसित हुआ माना : परिच्छेदों के व्याख्यात्मक संदर्भ उपलब्ध कराने के

प्रयास, विभिन्न परिच्छेदों के व्यवहार के प्रभावों की व्याख्या के प्रयास, पाठ के विवरण के प्रति सजगता, अतिशयोक्तिपूर्ण सामग्री के प्रति सावधानी और लाक्षणिक व्याख्याएं.

इतिहासकार अत्–तबरी (838 / 839–923) ने अपनी वृहद टीका में उस समय तक के सभी अध्ययनों को एकत्रित किया है. यह टीका सभी *तफ़्सीरों* का वास्तविक आधार रही. इसके बाद की व्याख्याओं में अज़–जमख़्शारी (1075–1143), अर्–राज़ी (1149–1209), अल– बैदवी (मृ.–1280) और अस्–सुयूती (1445–1505) द्वारा लिखी विशेष टिप्पणियां शामिल हैं. व्याख्याओं का संकलन आज तक जारी है. मुस्लिम आधुनिकतावादी अपने सुधारवादी विचारों को वहन करने के लिए उनका इस्तेमाल करते हैं.

तबला

भारतीय तबला, जेम्स ब्लेड्स के संग्रह में बाहिना (बायां) और दाहिना (दायां)
फ़ोटो : जेम्स ब्लेड्स

छोटे ढोलों का जोड़ा, उत्तरी भारत में सामूहिक संगीत सभा में बजाया जाने वाला वाद्य. तबला कहलाने वाले उच्च स्वर ढोल को 'दाहिना' भी कहा जाता है. आमतौर पर चमड़े की परत से मढ़ा तबला सामान्यतः लकड़ी से बना होता है और इसका आकार दो आधे कटे शंकुओं के जोड़ जैसा होता है. यह बीच में उभरा होता है और इसका निचला भाग छोटा होता है. चमड़े के कसाव को साधने के लिए चमड़े के तस्मे पिरे लकड़ी के मेखों को स्वर मिलाने के दौरान हथौड़ी से ठोका जाता है, इसे आमतौर पर राग के मूल स्वर के आधार पर मिलाया जाता है. बाहिना (बायां) एक गहरा नक़्क़ारा है, जो सामान्यतः तांबे या फिर मिट्टी या लकड़ी से भी बना होता है. चमड़े के कसाव के लिए यह एक छल्ले एवं चमड़े के तस्मे से युक्त होता है. वादक की गदेली के दबाव और उंगलियों के प्रहार से स्वर में भिन्नता आती है. प्रत्येक ढोल के चमड़े के बीच में काली समस्वरण लेई का चकत्ता लगाया जाता है, ताकि वह सुसंगत अधिस्वर दे सके. तबले को उंगलियों एवं हाथों से बजाया जाता है; बाहिना वादक की बायीं ओर होता है.

तमाशा

भारत के लोकनाटक का श्रृंगारिक रूप, जो पश्चिम भारत के महाराष्ट्र राज्य में 18वीं शताब्दी में शुरू हुआ. अन्य सभी भारतीय लोकनाटकों में प्रमुख भूमिका में पुरुष होते हैं, लेकिन तमाशा में मुख्य स्त्री की भूमिका महिला करती है. तमाशा नाटक, जिन्हें अश्लील माना जाता है, शिविर में रहने वाली सेना के मनोरंजन के लिए ही शुरू किए गए थे. 20वीं सदी में ये व्यावसायिक रूप से सफल हुए.

तमिल

दक्षिण भारत के मूल तमिलभाषी निवासी. तमिल द्रविड़ परिवार की प्रमुख भाषा है. 20वीं सदी के अंत तक तमिलभाषियों की संख्या 5 करोड़ 70 लाख थी, जिसमें उत्तरी और पूर्वी श्रीलंका के लगभग 32 लाख तमिलभाषी शामिल हैं. तमिलभाषी तमिलनाडु

ग्राय चुनती एक तमिल महिला
फ़ोटो : शोस्टल एसोसिएट

की जनसंख्या का बहुसंख्यक हिस्सा है. तमिलनाडु के अलावा ये केरल, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश तक फैले हैं, जो भारत का दक्षिणतम भाग है. प्रवासी तमिल मालागासी गणराज्य, मलाया प्रायद्वीप, म्यांमार (बर्मा), हिंद–चीन, थाइलैंड, पूर्वी अफ़्रीका, दक्षिण अफ़्रीका, फ़िजी, मॉरीशस द्वीप तथा वेस्टइंडीज़ के कुछ भागों में मिल सकते हैं.

भारत में तमिल क्षेत्र परंपरागत हिंदू धर्म का गढ़ है. हिंदू धर्म में बहुत पहले से भक्ति परंपरा की तमिल शाखा महत्त्वपूर्ण रही और छठी शताब्दी के साहित्य में श्रद्धा की विषय–वस्तु बनी. ईसा के पूर्व बौद्ध और जैन धर्म का तमिल क्षेत्र में व्यापक प्रचार हो चुका था और इन धर्मों का साहित्य पूर्व–भक्ति साहित्य में अपना स्थान रखता है. यद्यपि तमिलों में अधिकांश हिंदू हैं, लेकिन उनमें ईसाई, मुस्लिम तथा जैन भी हैं. पिछले कुछ समय में तमिल क्षेत्र उस द्रविड़ आंदोलन का गढ़ भी रहा है, जो तमिल संस्कृति, भाषा व साहित्य से संस्कृत तथा ब्राह्मणवाद को हटाने की मांग करता है.

तमिलों की उपलब्धियों का एक लंबा इतिहास है; ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्री यात्रा, शहरी जीवन और वाणिज्य–व्यवसाय इन लोगों में काफ़ी पहले विकसित हो गए थे. प्राचीन यूनान और रोमवासियों के साथ तमिलों के व्यापारिक संबंधों की जानकारी साहित्य, भाषा और पुरातात्विक प्रमाणों से मिलती है. तमिल द्रविड़ों की सबसे प्राचीनतम भाषा है, जिसकी समृद्ध साहित्यिक परंपरा ईसा पूर्व तक पाई जाती है. 14वीं सदी में विजयनगर शासन के विस्तार से पूर्व चेर, चोल, पांड्य और पल्लव राजाओं ने तमिल क्षेत्र पर शासन किया. इन शासकों ने अनेक महान राज्य क़ायम किए. इनके शासनकाल में तमिलों ने विशाल मंदिरों, सिंचाई जलाशयों, बांधों और सड़कों का निर्माण किया और भारतीय संस्कृति के दक्षिण–पूर्व एशिया में प्रसार में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही. उदाहरण के लिए, चोल अपनी नौवहन शक्ति के लिए विख्यात थे और 1025 में उन्होंने श्री विजय के मलय शासन को अपने अधीन कर लिया था. यद्यपि तमिल क्षेत्र सांस्कृतिक तौर पर शेष भारत के साथ एकीकृत रहा, लेकिन भारत में ब्रिटिश शासन स्थापित होने से पहले अधिकांश समय राजनीतिक रूप से इसकी अलग पहचान क़ायम रही.

तमिलनाड उच्चभूमि

पहाड़ी क्षेत्र, मध्य तमिलनाडु राज्य, दक्षिणी भारत, पश्चिम में पूर्वी घाट, दक्षिण में सह्याद्रि (पश्चिमी घाट), पूर्व में तमिलनाड मैदान और उत्तर में तेलंगाना पठार से घिरा लगभग 38,000 वर्ग किमी में फैला क्षेत्र. चौथी शताब्दी ई.पू. में यह क्षेत्र तमिलाकम के रूप में जाना जाता था और इस पर क्रमशः चेर, चोल और पांड्य राज्यों ने शासन

किया. मध्य हिंदू काल (800–1300 ई.) में यहां कई मंदिरों का निर्माण हुआ, जो वेल्लोर, कृष्णगिरि, डिंडिगुल, कोयंबत्तूर और इरोड जैसे नगरों के केंद्रक बने.

मुस्लिम शासनकाल लगभग 1650 से 1800 तक रहा. इसके बाद यह क्षेत्र ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत आ गया. कावेरी, पलार, वैगई, तांब्रपर्णी और पेरियार नदियां पश्चिम से पूर्व की ओर बहती हैं तथा बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं. कावेरी और उसकी सहायक नदियों ने अपरदन से तमिलनाडु पहाड़ियों मे कोयंबत्तूर–मदुरै उच्चभूमि व मध्य कावेरी घाटी का निर्माण कर इस क्षेत्र को विषम बना दिया है. तमिलनाड उच्चभूमि की समुद्र तल से औसत ऊंचाई पश्चिम में 450 मीटर से घटकर पूर्व में लगभग 150 मीटर तक हो जाती है. यहां की मृदा में ज़्यादातर दोमट और चिकनी मिट्टी है. वन नहीं के बराबर हैं, बिखरे हुए वन एवं झाड़ियां उत्तरी उच्चभूमि क्षेत्र में पाई जाती हैं. अधिकांश आबादी के लिए कृषि प्रमुख व्यवसाय है. फ़सलों में चावल, ज्वार–बाजरा, तिलहन, दलहन, कपास और गन्ना शामिल हैं. यह क्षेत्र भारत के बेहतर विकसित औद्योगिक क्षेत्रों में से एक है, जहां वस्त्र, मशीन के उपकरणों एवं रसायन का उत्पादन होता है. यहां पर कॉफ़ी, चाय, सिनकोना और इलायची के बाग़ हैं. लौह अयस्क, मैग्नेसाइट, बेराइल तथा जस्ते का खनन होता है. मदुरै, कोयंबत्तूर, सेलम, वेल्लोर और इरोड सड़क एवं रेलमार्ग से जुड़े हुए हैं.

तमिलनाड मैदान

तमिलनाडु राज्य की पूर्वी तटीय निम्नभूमि, दक्षिण भारत. पूर्व में बंगाल की खाड़ी, दक्षिण में हिंद महासागर, पश्चिम में पूर्वी घाट और उत्तर में आंध्र के मैदानों से घिरे. तमिलनाड मैदानों में कावेरी, वैगई और पलार नदियों के डेल्टा हैं, जो रेतीले और चिकने पत्थर वाले समुद्र तट बनाते हैं. अपेक्षाकृत सीधे समुद्र तट पर 30–65 मीटर ऊंचे रेतीले टीले (स्थानीय तौर पर थेरिस कहलाते हैं), पनई ताड़ और कांटेदार झाड़ियां यहां की विशेषता हैं. समतल मैदान अनेक पहाड़ियों द्वारा उत्तर–पूर्वोत्तर से दक्षिण–दक्षिणपश्चिम दिशा में स्पष्ट रूप से कटे हुए हैं. प्राकृतिक वनस्पतियों में तटीय वन व कैसुएरिना और नारियल के बाग़ों में थोड़ी–थोड़ी दूर पर लगे हुए वृक्ष, अंगूर की बेलें और घास शामिल हैं. कावेरी, पोन्नैयार, पलार, वैगई, तांब्रपर्णी, वेल्लर और अरनि नदियां पूर्व की ओर बहकर बंगाल की खाड़ी से मिलती हैं. यहां की मृदा में लौह प्रचुर लाल और रेतीली दोमट मिट्टियां हैं. क्षेत्र की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है. फ़सलों में चावल, दलहन, तिलहन, तंबाकू और गन्ना शामिल हैं. कावेरी के डेल्टा क्षेत्र में सिंचाई के लिए नहरों की एक बड़ी प्रणाली है. अंग्रेज़ों द्वारा किए गए उद्योगों के आरंभिक विकास ने तमिलनाड के मैदानों के तटीय क्षेत्र को भारत के सर्वाधिक उद्योगीकृत क्षेत्रों में से एक बना दिया है, जिसमें वस्त्र, सीमेंट, रसायन, वनस्पति तेल, उर्वरक, वाहन, गैल्वेनाइज़्ड पाइप, कैलकुलेटर और टेलिप्रिंटर का निर्माण या उत्पादन होता है. पेरंबूर स्थित रेल कोच फ़ैक्ट्री एशिया की सबसे बड़ी फ़ैक्ट्रियों में से एक है.

तमिलनाडु

भारतीय राज्य. यह उपमहाद्वीप के सुदूर दक्षिणी सिरे पर स्थित है. 1,30,057 वर्ग किमी क्षेत्रफल में फैला यह राज्य पूर्व व दक्षिण में हिंद महासागर, पश्चिम में केरल राज्य, पश्चिमोत्तर में कर्नाटक (भूतपूर्व मैसूर) राज्य और उत्तर में आंध्र प्रदेश राज्य से घिरा हुआ है. चेन्नई (भूतपूर्व मद्रास) इस राज्य की राजधानी है.

तमिलनाडु तमिलभाषी लोगों के क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है, जो कभी भूतपूर्व मद्रास प्रेज़िडेंसी था. तमिल लोगों को अपनी द्रविड़ भाषा और संस्कृति पर गर्व है और इन्होंने केंद्र सरकार के हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के प्रयास का विरोध किया था. राज्य मूलतः कृषि प्रधान है, जबकि इसका औद्योगिक केंद्र चेन्नई में है.

भौतिक एवं मानव भूगोल

भू–आकृति

राज्य प्राकृतिक रूप से पूर्वी तट पर समतल प्रदेश तथा उत्तर और पश्चिम में पहाड़ी क्षेत्रों के बीच विभाजित है. पूर्वी मैदान का सबसे चौड़ा हिस्सा उपजाऊ कावेरी के डेल्टा पर है और आगे दक्षिण में रामनाथपुरम और मदुरै के शुष्क मैदान हैं. राज्य के समूचे पश्चिमी सीमांत पर पश्चिमी घाट की ऊंची श्रृंखला फैली हुई है. पूर्वी घाट की निचली पहाड़ियां और सीमांत क्षेत्र, जो स्थानीय तौर पर जावडी, कालरायण और शेवरॉय कहलाते हैं, प्रदेश के मध्य भाग की ओर फैले हैं.

महत्त्वपूर्ण नदियों में कावेरी, पोन्नैयार, पलार, वैगई और तांब्रपर्णी शामिल हैं, ये सभी नदियां अंतर्स्थलीय पहाड़ियों से पूर्व की ओर बहती हैं. कावेरी और इसकी सहायक नदियां तमिलनाडु के जल एवं विद्युत का महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं.

नदियों के डेल्टा की जलोढ़ मिट्टी की प्रचुरता के साथ–साथ यहां की मुख्य मिट्टियों में चिकनी मिट्टी, दोमट मिट्टी, रेतीली और लाल मिट्टी (आयरन ऑक्साइड और एल्युमिनियम हाइड्रॉक्साइड की प्रचुरता वाली मिट्टी) पाई जाती हैं. कपास उत्पादक काली मिट्टी 'रेगूर' (रेगड़) के नाम से जानी जाती है और यह पश्चिम में सेलम व कोयंबत्तूर, दक्षिण में रामनाथपुरम व तिरुनेल्वली तथा मध्य में तिरुचिराप्पल्ली के कुछ हिस्सों में पाई जाती है.

जलवायु मूलतः उष्णकटिबंधीय है. ग्रीष्मकाल में तापमान यदा–कदा ही 43° से. से ऊपर और शीत ऋतु में 18–24° से. से नीचे जाता है. दिसंबर और जनवरी में न्यूनतम तापमान तथा अप्रैल और जून में अधिकतम तापमान रिकॉर्ड किया जाता है. औसत वार्षिक वर्षा दक्षिण–पश्चिमी और पूर्वोत्तर मॉनसून पर निर्भर है तथा यह मुख्यतः अक्तूबर से दिसंबर के बीच और प्रतिवर्ष 635 मिमी से 1,905 मिमी के बीच होती है. अधिकांश वर्षा नीलगिरि व अन्य पर्वतीय क्षेत्रों में और सबसे कम रामनाथपुरम तथा तिरुनेल्वली ज़िलों में होती है.

राज्य के लगभग 15 प्रतिशत हिस्से में वन हैं. पश्चिमी घाट के उच्चतम शिखरों वाले पर्वत– नीलगिरि, अन्नामलाई और पालनी पहाड़ियां –उपआल्पीय वनस्पतियों को सहारा देते हैं. पश्चिमी घाट के पूर्व की ओर तथा उत्तरी एवं मध्यवर्ती ज़िलों की पहाड़ियों की वनस्पतियों में सदाबहार व पर्णपाती वृक्षों के मिश्रित वन हैं; जिनमें से कुछ शुष्क परिस्थितियों के काफ़ी अनुकूल हैं. वनों से प्राप्त काष्ठ उत्पाद में चंदन, पल्पवुड (लुगदी बनाने योग्य काष्ठ) और बांस शामिल हैं. रबर भी एक महत्त्वपूर्ण वनोपज है. यहां के जलीय पक्षियों का प्रतिनिधित्व वेदांतांगल स्थित पक्षी अभयारण्य करता है, जबकि अन्य वन्य प्राणियों को मुदामलाई स्थित आखेट अभयारण्य में देखा जा सकता है.

जनजीवन

समय के साथ इस क्षेत्र की जनसंख्या में कम ही परिवर्तन हुआ है और इनमें से अधिकांश दक्षिण भारत के स्थानीय प्राचीन द्रविड़ के वंशजों का प्रतिनिधित्व करते हैं. ज़्यादातर पर्वतीय जनजातियां दक्षिण–पूर्व एशियाई लोगों से साम्यता प्रदर्शित करती हैं. भारत के संविधान द्वारा भेदभाव को वर्जित करने के बावजूद, तमिलनाडु में शेष भारत की तरह जाति व्यवस्था अभी भी मज़बूती से क़ायम है.

तमिल, जो प्रांत की राजकीय भाषा है, अधिकांश लोगों द्वारा बोली जाती है. जनसंख्या का एक बड़ा प्रतिशत, जो काफ़ी समय से राज्य में रह रहा है; के लिए तमिल लगभग मातृभाषा बन चुकी है. जनसंख्या का लगभग 10 प्रतिशत हिस्सा तेलुगु बोलता है, जबकि कन्नड़, उर्दू और मलयालम अपेक्षाकृत कम लोगों द्वारा बोली जाती है. पश्चिम में नीलगिरि ज़िले में कन्नड़ (और इसकी बडागा बोली) और मलयालम अपेक्षाकृत ज़्यादा प्रचलन में हैं. अंग्रेज़ी का उपयोग सहायक भाषा के रूप में होता है.

राज्य में मुख्यतः हिंदू, ईसाई, इस्लाम एवं जैन धर्म के लोग हैं. पहले तीन धर्मों को मानने वाले सभी ज़िलों में पाए जाते हैं, लेकिन जैन धर्म उत्तरी और दक्षिणी ऑर्काट तथा चेन्नई तक सीमित है. जनसंख्या का अधिकांश भाग हिंदू है. ईसाइयों की सर्वाधिक उपस्थिति तिरुनेल्वेली और कन्याकुमारी ज़िलों में है. हाल ही में निरीश्वरवाद संभवतः ब्राह्मण कर्मकांड के विरोध के रूप में विकसित हुआ है.

हालांकि तमिलनाडु भारत के सबसे ज़्यादा शहरीकृत राज्यों में से एक है, पर यह अभी भी ज़्यादातर ग्रामीण ही है. जनसंख्या का अधिकांश हिस्सा 64 हज़ार से भी ज़्यादा केंद्रीकृत गांवों में रहता है. निर्धनतम निम्न जाति के लोग 'सेरि' नामक पृथक क्षेत्रों में रहते हैं. औद्योगिक क्षेत्र, नगरीय क्षेत्र और चेन्नई के आसपास के गांव चेन्नई महानगरीय विस्तृत शहरी क्षेत्र में आते हैं, जिसकी जनसंख्या अधिकतम है, लेकिन वहां अन्य विस्तृत शहरी क्षेत्र भी हैं, जिनमें मदुरै, कोयंबत्तूर और तिरुचिराप्पल्ली सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं.
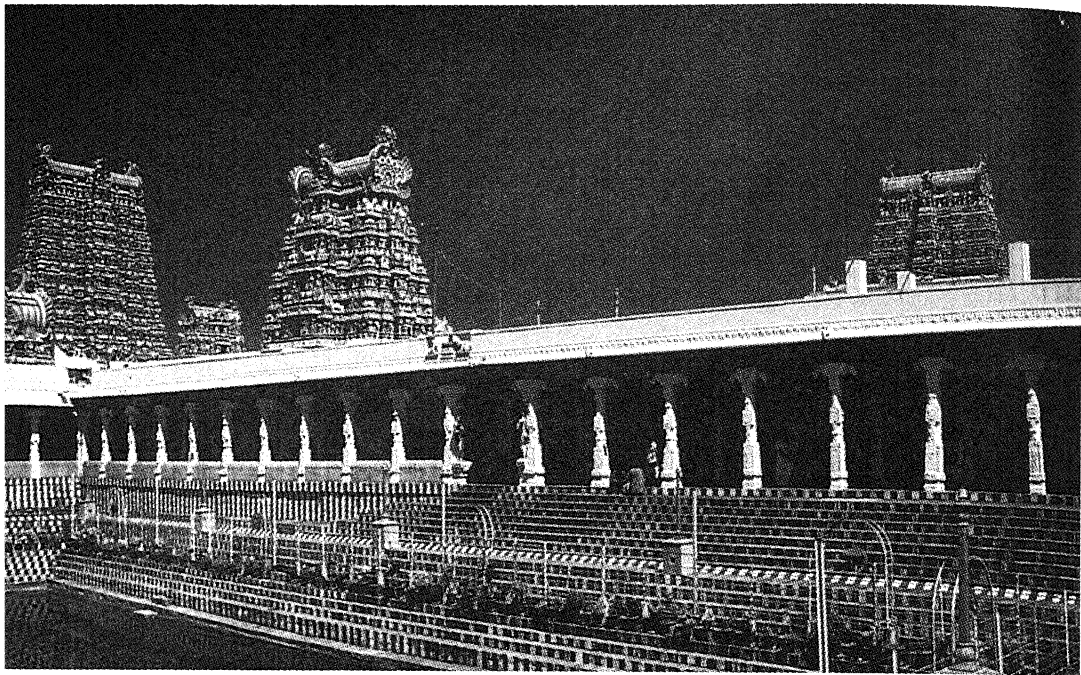
मीनाक्षी–सुंदरेश्वर मंदिर, मदुरै, तमिलनाडु
सौजन्य : तमिलनाडु पर्यटन विभाग

अर्थव्यवस्था

कृषि

ग्रामीण जनसंख्या के लगभग तीन–चौथाई हिस्से के जीवन का आधार कृषि है. आरंभिक काल से ही तमिल किसानों ने कम मात्रा में होने वाले वर्षा जल को छोटे और बड़े सिंचाई जलाशयों या तालाबों में कुशलतापूर्वक संरक्षित किया है. सरकारी नहर, नलकूप और कुएं भी सिंचाई प्रणाली का हिस्सा हैं. चूंकि विभिन्न नदी घाटी परियोजनाएं पानी के लिए अनियमित पूर्वोत्तर मॉनसून पर निर्भर हैं, इसलिए प्रशासन भूमिगत जल स्रोतों के अधिकतम उपयोग का प्रयास कर रहा है.

1950 से कृषि पद्धति में अत्यधिक सुधार आया है. बहु–फ़सल प्रणाली, चावल, कपास, चीनी और ज्वार–बाजरा की नई व बेहतर क़िस्मों का प्रयोग तथा रासायनिक उर्वरक के उपयोग को विस्तृत रूप से अपनाया गया है. 1967 तक राज्य खाद्यान्न के उत्पादन में आत्मनिर्भर हो गया था. चावल, मूंगफली, कपास, मिर्च, केला, कॉफ़ी, चाय, रबर और गन्ना महत्त्वपूर्ण नक़दी फ़सलें हैं.

उद्योग

विकसित बंदरगाह सुविधाएं और बिजली के प्रभावशाली उपयोग ने राज्य के औद्योगिक विकास को सहयोग दिया है. तमिलनाडु भारत के सर्वाधिक औद्योगीकृत राज्यों में से

एक है. चूना–पत्थर, बॉक्साइट, जिप्सम, लिग्नाइट, मैग्नेसाइट और लौह अयस्क महत्त्वपूर्ण खनिज हैं. कपास की ओटाई, कताई और बुनाई हमेशा से प्रमुख उद्योग रहे हैं. इसके बाद वाहन, मोटर साइकिल, ट्रांसफ़ॉर्मर, चीनी, कृषि उपकरण, उर्वरक, सीमेंट, कागज़, रसायन और विद्युत मोटर के उत्पादन से जुड़े उद्योग आते हैं. पेरंबूर स्थित रेलगाड़ी के डिब्बे बनाने का कारख़ाना एशिया के सबसे बड़े कारख़ानों में से एक है. चेन्नई के निकट आवडि में स्थित भारी वाहन के कारख़ाने में तोपों का निर्माण होता है. चेन्नई में एक तेल परिशोधनशाला और नेवेली में एक तापविद्युत संयंत्र है, ये दोनों सरकारी उपक्रम हैं. मत्स्य उत्पादन के क्षेत्र में केरल के बाद तमिलनाडु दूसरे स्थान पर आता है.

तमिलनाडु हस्तशिल्प कला में समृद्ध है, जिसमें हथकरघे का रेशम, धातु की मूर्तियां, चमड़े का काम, क़लमकारी (हाथ से छपाई किए गए वस्त्र, जिनमें प्राकृतिक रंगों का उपयोग होता है), तांबा, पीतल और कांसे की वस्तुएं, लकड़ी का काम, ताड़पत्र का काम और बेंत का सामान प्रमुख है.

परिवहन

दक्षिण भारतीय राज्यों की परिवहन प्रणाली चेन्नई में केंद्रित है. तमिलनाडु से कई रेल गाड़ियां चलती हैं. चेन्नई के निर्मित बंदरगाह से समुद्री यातायात संचालित होता है. इसके समीप स्थित मीनंबाक्कम अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे के अलावा तीन और हवाई अड्डे क्रमशः तिरुचिराप्पल्ली, मदुरै और कोयंबत्तूर में हैं. यहां वाहनों के योग्य सड़कों का संजाल है. यात्री–बस परिवहन को राष्ट्रीकृत किया जा रहा है, द्रुत एक्सप्रेस बसें यात्रियों को सभी महत्त्वपूर्ण शहरों और दर्शनीय स्थलों तक ले जाती हैं.

प्रशासन एवं सामाजिक विशेषताएं

सरकार

राज्यपाल, विधानसभा, विधान परिषद तथा मुख्यमंत्री व मंत्रिपरिषद मिलकर राज्य सरकार के कार्यकारी और विधायी अंग बनाते हैं. चेन्नई के फ़ोर्ट सेंट जॉर्ज में मंत्रियों का आवास है, जबकि क़िले के बाहर बहुमंज़िली इमारतों में विभिन्न विभागों के कार्यालय स्थित हैं.

राज्य में 20 प्रशासनिक ज़िले हैं, प्रत्येक का प्रशासन ज़िलाधीश देखता है. छोटी प्रशासनिक इकाइयों में विभिन्न तालुका, फ़िरका और गांव आते हैं. ये सभी इकाइयां राजस्व विभाग और राजस्व परिषद के प्रति जवाबदेह होती हैं. स्वतंत्रता के बाद स्थानीय स्वशासन एवं ग्रामीण विकास के उद्देश्य हेतु नई इकाइयों (पंचायत) की स्थापना हुई. पंचायत के ऊपर पंचायत संघ और विकास समितियां होती हैं. चेन्नई स्थित उच्च न्यायालय राज्य में न्यायपालिका का शीर्ष बिंदु है, इसके अंतर्गत निचले स्तर पर ज़िला न्यायाधीश और दंडाधिकारी हैं.

एकाश्म रथ, मामल्लपुरम, तमिलनाडु
सौजन्य : तमिलनाडु पर्यटन विभाग

स्वास्थ्य

हैज़ा, मलेरिया और फ़ाइलेरिया (परजीवी कीटाणुओं द्वारा रक्त और ऊतक को संक्रमित करने से जनित रोग) प्रमुख रोग हैं. शहरी स्वच्छता (साफ़–सफ़ाई) और जल निकास का स्तर अच्छा नहीं है. राज्य में बहुत से सार्वजनिक और निजी अस्पताल, चिकित्सालय और प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र हैं.

शिक्षा

तमिलनाडु की साक्षरता दर लगभग 73.47 प्रतिशत (2001) है. यहां प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च विद्यालय और कला एवं विज्ञान महाविद्यालयों के साथ–साथ चिकित्सा महाविद्यालय, अभियांत्रिकी महाविद्यालय, पॉलीटेक्निक संस्थाएं तथा औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाएं हैं. तमिलनाडु में 21 विश्वविद्यालय हैं, जिनमें चेन्नई में मद्रास विश्वविद्यालय; अन्ना विश्वविद्यालय; डॉ. अंबेडकर विधि विश्वविद्यालय; चिदंबरम में अन्नामलाई विश्वविद्यालय; कोयंबत्तूर में भरथियार विश्वविद्यालय, तिरुचिराप्पल्ली में भारतीदसन विश्वविद्यालय; मदुरै में मदुरै कामराज विश्वविद्यालय; कोडैकनाल में मदर टेरेसा वीमन्स विश्वविद्यालय; सेलम में पेरियार विश्वविद्यालय और तंजावुर में तमिल विश्वविद्यालय शामिल हैं. चेन्नई स्थित दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा (1918) और

गांधीग्राम स्थित गांधीग्राम रूरल इंस्टिट्यूट (1956) राष्ट्रीय महत्त्व के संस्थान हैं, जो क्रमशः हिंदी भाषा और महात्मा गांधी की ग्रामीण उच्च शिक्षा की अवधारणा को लोकप्रिय बनाने में लगे हुए हैं. विश्वविद्यालयीय स्तर पर अंग्रेज़ी की जगह तमिल को शिक्षा का माध्यम बनाने के तीव्र प्रयास हो रहे हैं.

जन–कल्याण

हिंदू आबादी की निचली जाति हरिजन अभी भी सर्वाधिक दुखद स्थिति में है. हरिजन–कल्याण विभाग उनकी शिक्षा, आर्थिक और घरेलू स्थिति को सुधारने के कार्यक्रमों की देखरेख करता है. राज्य के सरकारी पदों में आरक्षण के साथ–साथ विधानसभा और लोकसभा में भी इनके लिए सीटें (क्षेत्र) आरक्षित हैं. राज्य समाज–कल्याण परिषद और महिला–कल्याण विभाग अपाहिज, विधवा तथा बच्चों की समस्याओं पर काम कर रहे हैं. राज्य सरकार प्राथमिक स्कूलों में बच्चों को दिन का भोजन निःशुल्क उपलब्ध कराती है.

सांस्कृतिक जीवन

ब्राह्मण जाति के पुरोहितों के धार्मिक व राजनीतिक वर्चस्व को तोड़ने के प्रयासों के बावजूद हिंदू धर्म संस्कृति का केंद्र बना हुआ है. हिंदू धार्मिक और सेवार्थ विभाग अपने अंतर्गत आने वाले 9,300 से भी ज़्यादा बड़े मंदिरों पर प्रशासनिक नियंत्रण रखता है. विशेषकर चिदंबरम, कांचीपुरम, तंजावुर (भूतपूर्व तंजौर) और मदुरै सहित अधिकांश नगरों में गोपुरम (द्वारमीनार) छाए हुए हैं.

मंदिर उत्सव–चक्र श्रद्धालुओं को आकर्षित करते हैं. इनमें सबसे प्रसिद्ध रथ उत्सव है, जिसमें मूर्तियों से सज्जित रथों की शोभायात्रा के साथ मंदिर के चारों ओर परिक्रमा कराई जाती है. हिंदू परिवार विभिन्न मतों के प्रमुख संस्थानों या मठों से जुड़े हुए हैं. कुंबकोणम का शंकर मठ सबसे महत्त्वपूर्ण है.

कला

भारत की एक प्रमुख शास्त्रीय नृत्य शैली भरतनाट्यम और कर्नाटक संगीत, दोनों का राज्य में व्यापक प्रचलन है. यद्यपि चित्रकला एवं मूर्तिकला कम विकसित है, फिर भी यहां पत्थर एवं कांसे की मूर्तियां बनाने की कला की शिक्षा के लिए विद्यालय हैं. तमिल साहित्य ने तेज़ी से लघु कथाओं व उपन्यासों के पश्चिमी साहित्यिक स्वरूप को अपनाया है. सुब्रहमण्यम सी. भारती (1882–1921) पारंपरिक तमिल कविता को आधुनिक बनाने वाले प्रारंभिक कवियों में एक थे. 1940 के दशक से चलचित्र जन मनोरंजन का सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम बना हुआ है. यहां चलते–फिरते और स्थायी, दोनों प्रकार के सिनेमाघर हैं. भावनात्मक और भव्य फ़िल्मों, जिनमें प्रायः हल्का–फुल्का संगीत और नृत्य होता है, का निर्माण अधिकतर चेन्नई के आसपास स्थित स्टूडियो में होता है.

रामनाथस्वामी मंदिर का गलियारा, रामेश्वरम, तमिलनाडु
सौजन्य : तमिलनाडु पर्यटन विभाग

प्रेस (समाचार पत्र)

तमिल में सैकड़ों पत्र–पत्रिकाएं छपती हैं, जिनमें से ज़्यादातर दैनिक समाचार पत्र हैं. *दिना थांथि* प्रमुख समाचार पत्र है. चेन्नई से प्रकाशित *द हिंदू* ने पत्रकारिता के ऊंचे मानदंडों को क़ायम रखा है.

इतिहास

तमिलनाडु का इतिहास इस क्षेत्र में तमिल शक्तियों के एक त्रिगुट, चेर, चोल और पांड्य राज्यों की स्थापना के साथ शुरू हुआ. लगभग 200 ई. के आसपास उत्तरी आर्य शक्तियों का विकास हो चुका था और आर्य संत अगस्त्य स्वयं को एक सांस्कृतिक नायक के रूप में स्थापित कर चुके थे. यूनानी (यवन) सोना व चिराग़ों तथा इतालवी शराब का प्रयोग इस काल में व्यापक विदेशी व्यापार के गवाह हैं.

छठी शताब्दी के मध्य से नौवीं शताब्दी तक बादामी के चालुक्यों, कांची के पल्लवों और मदुरै के पांड्यों ने इस क्षेत्र में युद्धों की एक लंबी शृंखला छेड़ी. यह काल निस्संदेह हिंदू धर्म के पुनरुत्थान और कला के विकास का युग था. लगभग 850 ई. से तमिलनाडु में चोल वंश का वर्चस्व रहा, जिनमें राजेंद्र I (शासनकाल, 1014–1044) सबसे ज़्यादा विख्यात शासक थे. 14वीं शताब्दी के मध्य में विजयनगर का हिंदू साम्राज्य, जिसमें समूचा तमिलनाडु क्षेत्र आता था, महत्त्वपूर्ण बन गया. विजयनगर के

शासनकाल के 300 वर्षों में तेलुगुभाषी प्रशासक एवं कर्मचारियों को प्रशासन से परिचित कराया गया.

1640 में स्थानीय शासक की अनुमति से ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने मद्रासपटनम (वर्तमान चेन्नई) के मछुआरों के गांव में एक व्यापारिक चौकी खोली. 17वीं शताब्दी के मध्य से 1946 तक तमिलनाडु का इतिहास ब्रिटिश सत्ता के उत्थान व पतन के साथ मद्रास प्रेज़िडेंसी की कहानी है. 1946 के बाद मद्रास प्रेज़िडेंसी की स्थायी सरकार होने के बाद से यहां लगातार तरक़्क़ी हुई. 1953 में तेलुगुभाषी राज्य आंध्र प्रदेश का गठन हुआ और 1956 में मद्रास प्रेज़िडेंसी को पुनः विभाजित कर केरल, मैसूर (वर्तमान कर्नाटक) और तमिलनाडु का गठन किया गया. जनसंख्या (2001) कुल 6,21,10,839; ग्रामीण 3,48,69,286; शहरी 2,72,41,553.

तमिल भाषा

द्रविड़ भाषा, जिसके विश्व भर में पांच करोड़ से अधिक बोलने वालों में से लगभग 90 प्रतिशत भारत में रहते हैं और तमिलनाडु राज्य में केंद्रित (83 प्रतिशत) हैं. यह भारत की पांचवीं सबसे बड़ी भाषा है, जो देश की लगभग सात प्रतिशत आबादी का प्रतिनिधित्व करती है. मूल रूप से क़रीब 34 लाख तमिल भाषा–भाषी लोग श्रीलंका में, तीन लाख सिंगापुर में और दो लाख मलेशिया में रहते हैं. औपनिवेशिक काल में प्रवास कर गए तमिलभाषी लोगों के वंशज मॉरीशस, फ़िजी और दक्षिण अमेरिका में बस गए हैं, इनकी तमिल दक्षता अलग–अलग है, साथ ही विद्यालयों में औपचारिक अध्ययन की सुविधा में भी भिन्नता है.

तमिल भाषा भारतीय संविधान में सूचीबद्ध 18 भाषाओं में से एक है, जिन्हें विशेष स्थिति और कार्य प्रदान किए गए हैं. तमिल तमिलनाडु (1956 से) और केंद्रशासित प्रदेश पांडिचेरी (1965) की सरकारी भाषा और श्रीलंका तथा सिंगापुर की सरकारी भाषाओं में से एक है. तमिल लगभग 50 लाख लोगों की दूसरी भाषा है.

"கல் தோன்றி மண் தோன்றா காலத்து முன் தோன்றிய மூத்த மொழி தமிழ் மொழி" என்பது வள்ளுவர் வாக்கு. தமிழ் மிகவும் பழமையான மொழி.

तमिल लिपि का नमूना

तमिल का लगभग 2,500 वर्षों का अखंडित इतिहास लिखित रूप में है. मोटे तौर पर इसके ऐतिहासिक वर्गीकरण में प्राचीन (पांचवी शताब्दी ई.पू. से ईसा के बाद सातवीं शताब्दी), मध्य (आठवीं से सोलहवीं शताब्दी) और आधुनिक (17वीं शताब्दी से) काल शामिल हैं. कुछ व्याकरणिक और शाब्दिक परिवर्तन इन कालों को इंगित करते हैं, लेकिन शब्दों की वर्तनी में प्रस्तुत स्वर वैज्ञानिक संरचना ज्यों की त्यों बनी हुई है. बोली जाने वाली भाषा में काफ़ी परिवर्तन हुआ है, जिसमें शब्दों की स्वर वैज्ञानिक संरचना भी शामिल है. इस वजह से तमिल जन–द्विभाषित भाषा बन गई है. इस भाषा के उत्कृष्ट प्रकार को विद्यालयों में पढ़ाया जाता है तथा लेखन व औपचारिक भाषण में इसका उपयोग होता है, जबकि घरों में विकसित हुआ निम्न प्रकार अनौपचारिक

बातचीत में प्रयुक्त होता है. निम्न प्रकार का भी एक मानक स्वरूप है, जो क्षेत्रीय और सामाजिक (जातीय) प्रकारों से भिन्न है, जिसका उपयोग शिक्षित वक्ता करते हैं. भारतीय और श्रीलंकाई (जाफ़ना) तमिल भाषा के बीच व्यापक क्षेत्रीय भिन्नता है. तमिलनाडु के भीतर उत्तर, पश्चिमी और दक्षिणी बोली में अंतर के लक्षण सुपष्ट दिखाई देते हैं. क्षेत्रीय भिन्नता सामाजिक भिन्नता के अनुरूप है.

ऐतिहासिक रूप से तमिल लेखन प्रणाली का विकास ब्राह्मी लिपि से वट्टे–लुट्टु (मुड़े हुए अक्षर) और कोले–लुट्टु (लंबाकार अक्षर) के स्थानीय रूपांतरणों के साथ हुआ. सबसे प्राचीन रचना पांचवीं शताब्दी ई.पू. की एक–पंक्ति वाले अभिलेखों तथा बर्तनों के टुकड़ों पर मिलती है. समय के साथ–साथ अक्षरों के आकार में व्यापक परिवर्तन हुए, बाद में 16वीं शताब्दी में मुद्रण के आरंभ होने से यह थम गया. अनंगीकृत संस्कृत शब्दों को लिखने के लिए प्रयुक्त मध्यकालीन 'ग्रंथ' अक्षरों को शामिल किए जाने व कुछ असतत आकार के अक्षरों को आधुनिक काल में सतत रूप देने के अलावा वर्णमाला में कोई व्यापक परिवर्तन नहीं हुआ है.

संरचना की दृष्टि से तमिल एक क्रियांत भाषा है. इसके वाक्य में शब्दक्रम में लोच होता है और यह अर्थक्रियात्मक रूप से नियंत्रित होता है. विशेषण, संबंध सूचक उपवाक्य, क्रिया विशेषण और क्रियार्थक संज्ञा जैसे विशेषक सामान्यतः शीर्ष से पहले लगाए जाते हैं. कारक चिह्न को संज्ञा के बाद जोड़ा जाता है. वाक्यों का समुच्चय अंतिम वाक्य को छोड़कर सभी वाक्यों की क्रियाओं के कृदंत रूपों के ज़रिये होता है. रूप–विधान की दृष्टि से तमिल एक समृद्ध भाषा है, जिसमें क्रियाओं के बाद कई तरह के प्रत्यय जोड़े जाते हैं. प्रत्ययों के अलावा रूप–विधान स्वरूपों में समापिका क्रिया भी शामिल है, जो आयाम, क्रिया भाव और वक्ता के रुख़ को प्रदर्शित करती है. स्वर विज्ञान में तमिल अपने 'ट', 'न' और 'अई' (प्रथम दो के दंत्य, वर्त्स और मूर्धन्य तथा तीसरे के वर्त्स, मूर्धन्य और पार्श्व अवस्थिति) के तीन तरफ़ा विभेद के लिए उल्लेखनीय है. तमिल के इतिहास में यह तीन तरफ़ा विभेद घटकर दो तरफ़ा रह गया है, हालांकि वर्णमाला में यह अब भी बरक़रार है.

तमिल साहित्य

भारत तथा श्रीलंका की एक द्रविड़ भाषा तमिल का रचना संसार. शास्त्रीय (भारतीय–आर्य) संस्कृत में लिखित साहित्य के अलावा तमिल भारत का प्राचीनतम साहित्य है. कुछ प्रस्तर अभिलेख तीसरी शताब्दी ई.पू. के हैं, लेकिन वास्तविक तमिल साहित्य लगभग ईसा के बाद पहली शताब्दी का है. अधिकांश आरंभिक काव्य धार्मिक या काव्यात्मक था, जिसमें धर्मनिरपेक्ष दरबारी कविता अपवादस्वरूप थी, जिसकी रचना संगम या विद्वत परिषद के सदस्यों ने की.

चौथी से छठी शताब्दी की उल्लेखनीय कृतियों में दो महाकाव्य *शिल्पादिकारम* व *मणिमेकलाई* (एकमात्र उपलब्ध तमिल बौद्ध कृति) और प्रेम, शासकत्व व नीति जैसे विषयों पर सूक्तियों का संग्रह *तिरुकुरल* शामिल हैं. ईसा के बाद छठी से नौवीं

शताब्दी में भक्ति का आविर्भाव हुआ, जो व्यक्तिगत भक्ति की कविता व धर्म से संबंधित थी और तमिल क्षेत्र में जिसकी शुरुआत विष्णु तथा शिव के सम्मान में आलवार व नयनारों के भजनों से हुई. 12वीं से 16वीं शताब्दी तक धार्मिक प्रतिश्रुतियों के कई दार्शनिक ग्रंथ, नीति कथा संग्रहों और साथ ही कवि कंबन की शास्त्रीय कृतियों की संरचना हुई. 19वीं शताब्दी से तमिल साहित्य पर लगातार पश्चिमी स्वरूपों और विचारों का प्रभाव पड़ा.

तराइन (तराओरी) का युद्ध

तराओरी, जिसे तराइन भी कहते हैं, में हुए युद्धों (1191) की श्रृंखला, जिसने पूरे उत्तर भारत को मुस्लिम नियंत्रण के लिए खोल दिया. ये युद्ध मुहम्मद ग़ोरी (मुइज़्ज़ुद्दीन मुहम्मद बिन साम) और अजमेर तथा दिल्ली के चौहान (चहमान) राजपूत शासक पृथ्वीराज III के बीच हुए. युद्धक्षेत्र भारत के वर्तमान राज्य हरियाणा के करनाल ज़िले में करनाल और थानेसर के बीच था, जो दिल्ली से 113 किमी उत्तर में स्थित है.

मुहम्मद ग़ोरी ने 1186 में ग़ज़नवी वंश के अंतिम शासक से लाहौर की गद्दी छीन ली और वह भारत के हिंदू क्षेत्रों में प्रवेश की तैयारी करने लगे. 1191 में उन्हें पृथ्वीराज III के नेतृत्व में राजपूतों की मिलीजुली सेना ने, जिसे कन्नौज और बनारस (वर्तमान वाराणसी) के राजा जयचंद का भी समर्थन प्राप्त था, पराजित कर दिया. 1192 में वह फिर लौटे और इस बार जयचंद के समर्थन न मिलने से कमज़ोर हुए पृथ्वीराज को उसी युद्ध क्षेत्र में पराजित करके मार डाला. ग़ोरी की दक्ष घुड़सवार सेना ने राजपूतों को तब तक परेशान किया, जब तक मुहम्मद ग़ोरी ने अपनी प्रमुख सेना से पृथ्वीराज की सेना के केंद्र को कुचल नहीं दिया. यह युद्ध निर्णायक रहा. 1192–93 में दिल्ली पर क़ब्ज़ा कर लिया गया और अगले 20 वर्षों में समूचा उत्तरी भारत मुस्लिम नियंत्रण में चला गया.

तराई

उत्तरी भारत और दक्षिणी नेपाल का क्षेत्र, लघु हिमालय के समानांतर. कभी लहरदार दलदली क्षेत्र रहे इस पट्टी का विस्तार यमुना नदी (पश्चिम) से ब्रह्मपुत्र नदी (पूर्व) तक है. इसके उत्तरी छोर पर कई झरने हैं, जो कई धाराओं का निर्माण करते हैं. इनमें महत्त्वपूर्ण घाघरा नदी शामिल है, जो तराई (नम भूमि) को काटती है और इसकी दलदली प्रकृति के लिए ज़िम्मेदार है. तराई के बीच–बीच में भाबर क्षेत्र हैं, जो चट्टानी और चिकने पत्थर के भंडार वाले क्षेत्र हैं, ये साल (*शोरिया रोबस्टा*) के वनों के लिए उपयुक्त हैं. इस क्षेत्र के, जो कभी मलेरिया से ग्रस्त था, खेती और अपवाह से दलदली क्षेत्र ख़त्म हो चुके हैं. तराई का पूर्वी भाग पश्चिम बंगाल राज्य और बांग्लादेश में द्वार कहलाता है.

तरीक़ा

(अरबी शब्द, अर्थात मार्ग, पथ या रास्ता), तरीक़ाह भी लिखा जाता है, ख़ुदा या हक़ीक़त (हक़) के प्रत्यक्ष ज्ञान (मारीफ़ा) की ओर जाने का रास्ता. नौवीं और दसवीं

शताब्दी में तरीक़ा सूफ़ियों (रहस्यवादियों) के आध्यात्मिक मार्ग से संबद्ध था. 12वीं शताब्दी के बाद, जब शेख़ों (या पीर, शिक्षकों) के आसपास अनुयायियों के समुदाय जुटने लगे, तब तरीक़ा शेख़ की संपूर्ण कर्मकांडीय व्यवस्था का प्रतीक बन गया, जिसका समुदाय या रहस्यवादी सिलसिले द्वारा पालन किया जाता था. अंततः तरीक़ा का मतलब सिलसिला ही हो गया.

हर रहस्यवादी व्यवस्था ने पैगंबर मुहम्मद से आध्यात्मिक उद्गम (सिलसिला) का दावा किया, सदस्यों को शामिल करने की प्रक्रियाएं स्थापित कीं (मुरीद, इख़्वान, दरवेश, फ़क़ीर) और व्यवहार के नियम निर्धारित किए. एक जाने–पहचाने 'ख़ुदा के दोस्त' या सूफ़ी संत के मार्ग पर उसके शेख़ के निर्देशन में चलकर सूफ़ी ख़ुद भी ख़ुदा के दोस्तों के रहस्यवादी मुक़ाम (हाल) तक पहुंच सकता है. गंभीर गुरुओं ने ज़्यादतियों की निंदा की; आध्यात्मिक आनंद की खोज में कभी–कभी नशे के प्रयोग और कठिन कलाबाज़ियों के प्रयोग भी हुए. इन गतिविधियों ने सिलसिलों के लिए घूमने वाले, चीखने वाले और नाचने वाले दरवेशों के नाम अर्जित किए. दरवेश सिलसिलों ने अक्सर मठ (रिबात, ख़ानकाह, ज़विया, टेक्के) स्थापित किए, जिनमें आम लोगों और सदस्यों को रहने के लिए बुलावा दिया जाता था.

12वीं शताब्दी में स्थापित सिलसिलों की संख्या सैकड़ों में पहुंच गई, इनकी सदस्य संख्या 20वीं शताब्दी के मध्य में लाखों में थी. सूफ़ी तरीक़ों का सबसे ज़्यादा विस्तार मध्य इस्लामी देशों में हुआ, जहां उन्होंने मुस्लिम समुदाय के धार्मिक जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई. पश्चिम अफ़्रीका, पूर्वी यूरोप, भारत और मध्य व सुदूर पूर्वी अफ़्रीका में भी सिलसिले मौजूद हैं.

तलबिया

इस्लाम में परंपरागत उद्घोषणा *लब्बयका अल्लाहुम्मा लब्बयका* (तेरी ख़िदमत में, ऐ ख़ुदा तेरी ख़िदमत में) विशेष रूप से तीर्थयात्रा के समय तब दोहराया जाता है, जब मज़हबपरस्त मुसलमान *तवाफ़,* अर्थात काबा के पवित्र मक़बरे की परिक्रमा करते हैं. *तलबिया* ज़रूरी है या महज़ एक अच्छी परंपरा है, इस सवाल पर काफ़ी बहस हो चुकी है, लेकिन मुस्लिम धर्मविज्ञानी किसी आम राय पर नहीं पहुंच पाए हैं. इसलिए इस्लाम के सभी संप्रदायों व विचारधाराओं को मानने वाले तीर्थयात्रा के दौरान और अन्य धार्मिक अवसरों पर *तलबिया* करते हैं. *तलबिया* के कई लंबे संस्करण भी हैं, जो ख़ास मुस्लिम हस्तियों, विशेषकर मुहम्मद साहब और उनके साथियों से तथा अतीत के कुछ पवित्र चरित्रों, जैसे आदम व नूह से भी संबंधित हैं.

तश्बीह

(अरबी शब्द, अर्थात सदृशीकरण), मानवीकरण, इस्लाम में ख़ुदा की तुलना निर्मित वस्तुओं से करना. *तश्बीह* और इसका विपरीत *तातिल* (ईश्वर को सारे लक्षणों से वंचित करना), दोनों इस्लामी धर्मशास्त्र में पाप माने गए हैं. ख़ुदा की प्रकृति के बारे

में इस्लाम में समस्या *कुरान* में शामिल स्पष्टतः विपरीत विचारों के कारण पैदा होती है. एक तरफ़ ख़ुदा को अद्वितीय बताया गया है, जो मन से कल्पना की जा सकने वाली किसी चीज़ जैसा नहीं है; दूसरी तरफ़ उसका मानवीकरण की भाषा में वर्णन किया गया है– जिसकी आंखें, कान, हाथ व चेहरा है और वह अपने तख़्त पर बैठकर बात कर रहा है तथा सुन रहा है.

कुछ मुस्लिम धर्मशास्त्रियों ने तर्क दिया कि *कुरान* ने ऐसे मानवीय विचारों और प्रतीकों का उपयोग इसलिए किया, क्योंकि इंसान तक ख़ुदा के पैग़ाम पहुंचाने का कोई और साधन नहीं है और आग्रह किया कि इनकी व्याख्या बजाय शाब्दिक अर्थ के लाक्षणिक रूप से की जाए. 10वीं सदी के एक मुस्लिम धर्मशास्त्री अल–अशारी ने ज़ोर दिया कि ख़ुदा के हाथ, आंखें व चेहरा और उनके बैठने व बात करने को बिना कोई सवाल किए उनके वास्तविक अर्थ में ही समझना चाहिए.

सूफ़ियों (मुस्लिम रहस्यवादियों) के साहित्य में ख़ुदा के बारे में आम प्रेमगीतों की भाषा और शैली में बात की जाती है, जिसकी सूफ़ी लाक्षणिक व्याख्या करते हैं. यह इस आधार पर किया जाता है कि इंसान को ख़ुदा की छवि के अनुरूप ही बनाया गया है. जब इब्न अल–आरबी (12वीं सदी के मुस्लिम रहस्यवादी) ने अपनी कविताओं का संग्रह *तर्जुमान अल–अशवाक़* (इच्छाओं का व्याख्याकार) प्रकाशित किया, तो मुस्लिम रूढ़िवादियों ने उनके ख़ुदाई हक़ीक़तों की ओर इशारे को ख़ारिज कर दिया और उन पर अपनी प्रेयसी के सौंदर्य का गुणगान करने का इल्ज़ाम लगाया. उन्होंने *तश्बीह* के इल्ज़ाम से बचने के लिए कविता के पाठ की एक लंबी व्याख्या लिखी.

तश्बीह और *तातिल,* दोनों को उन धर्मशास्त्रियों ने अनदेखा किया, जो *तंज़ीह* (ख़ुदा को शुद्ध रखना) और *तथबीत* (ख़ुदा की इबादत को मानना) का ज़्यादा उल्लेख करते हैं. *तश्बीह* पर नियंत्रण का मुख्य कारण यह है कि वह आसानी से विधर्म और मूर्तिपूजा की ओर ले जाती है, जबकि *तातिल* नास्तिकता की ओर ले जाती है.

तहज्जुद

(अरबी शब्द, अर्थात रात्रि जागरण), इस्लामी परंपरा में रात में *कुरान* पढ़ना और प्रार्थनाएं करना. तहज्जुद को आमतौर पर सुन्ना (परंपरा) माना जाता है, फ़र्ज़ (बाध्यता) नहीं. *कुरान* में ऐसी कई आयतें हैं, जो संकेत करती हैं कि ऐसे क्रियाकलाप स्वैच्छिक होने चाहिए. (17:79) धर्मनिष्ठ मुसलमान हर जगह पैग़ंबर मुहम्मद के अनुसरण के रूप में तहज्जुद, जो पांच दैनिक नमाज़ों के बाद भी रात में जागरण करते रहें, करते हैं. *फ़िक़्ह* (इस्लामी विधिशास्त्र) में अगर कोई तहज्जुद करना चाहता है, तो उसे रोकना निंदनीय माना जाता है. ऐसा माना जाता है कि तहज्जुद वह गांठ खोल देता है, जो शैतान सोने वाले के बालों में लगा देता है. रमज़ान (उपवास का मुस्लिम महीना) में तहज्जुद को विशेष रूप से पुण्यकारी माना जाता है, इसलिए मुसलमान अक्सर रातों में मस्जिदों में प्रार्थनाएं करते हैं और सुबह तक *कुरान* पढ़ते हैं. कुछ मुस्लिम देशों में अधिकृत रूप से रात की *अज़ान* (नमाज़ के लिए पुकार) शुरू की गई है.

हिमालयी तहर (*हेमिट्रेगस जेम्लेहीकस*)
फ़ोटो : नेशनल ऑडबन सोसाइटी से ऑर्थर डब्ल्यू. एंबर संग्रह/ फ़ोटो रिसर्चस–ई.बी. इंकॉ.

तहर (पहाड़ी बकरा)

(वंश *हेमीट्रेगस*), बोवाइडी कुल (गण *आर्टिओडैक्टाइला*) के चौकन्ने और सधे पांव वाले जंगली बकरों में से एक. तहर (पहाड़ी बकरा) झुंड में रहते हैं और समान्यतः ढलान वाले पेड़युक्त पहाड़ों में पाए जाते हैं. प्रजाति के अनुसार कंधे तक इनकी ऊंचाई 60 से 106 सेमी होती है. नर और मादा, दोनों के सींग छोटे होते हैं, जो पार्श्व से समतल होते हुए पीछे की ओर मुड़े होते हैं. हिमालयी तहर (*हेमीट्रेगस जेम्लेहीकस*) कश्मीर से सिक्किम तक पाया जाता है, जो लाल–भूरे से लेकर गहरे भूरे रंग का हो सकता है, नर की गर्दन और आगे के हिस्से में फैली भरी–पूरी अयाल होती है. दक्षिण भारत का नीलगिरि तहर (जंगली या पहाड़ी बकरा) या नीलगिरि साकिन (*एच. हाइलोक्रिअस*) भूरा, धूसर पीठ वाला होता है. इन तीनों प्रजातियों में सबसे छोटा अरबी तहर (*एच. जयकारी*) स्लेटी–भूरा, नाजुक व अपेक्षाकृत छोटी खाल वाला होता है.

तांत्या टोपे

मूल नाम रामचंद्र पांडुरंग, (ज.–1819; मृ.–18 अप्रै. 1859), 1857 के भारतीय विद्रोह के नेता. औपचारिक सैनिक प्रशिक्षण न पाने के बावजूद वह विद्रोही सेनानायकों में संभवतः सर्वश्रेष्ठ और सर्वाधिक प्रभावशाली थे.

मराठा महासंघ के पूर्व पेशवा (शासक) बाजीराव और उनके दत्तक पुत्र नाना साहब, जो ग़दर के एक प्रमुख नेता थे, के अधीन सेवारत तांत्या टोपे मराठा ब्राह्मण थे. 1857 में नवंबर के प्रारंभ में कानपुर की ब्रिटिश कॉलोनी में नाना साहब द्वारा किए गए नरसंहार में वह उपस्थित थे; नवंबर की शुरुआत में उन्होंने ग्वालियर रियासत की विद्रोही सेना की कमान संभालकर 27–28 नवंबर को जनरल सी.ए. विंडहैम को उनके कानपुर स्थित मोर्चों में खदेड़ दिया. वह 6 दिसंबर को सर कॉलिन कैंपबेल से हार गए, लेकिन जहां हारे थे, उसी कालपी में ही रहे. मार्च 1858 में वह झांसी की सहायता के लिए गए, जिसकी रानी को ब्रिटिश सेना ने घेर रखा था. दुबारा पराजय पर उन्होंने बचकर भाग रही रानी का कालपी में स्वागत किया और 1 जून को ग्वालियर पर सफल हमला किया. 19 जून को उनकी सेना टूट गई, लेकिन उन्होंने विश्वासघात के कारण मृत्युदंड दिए जाने तक छापामार योद्धा के रूप में अपना प्रतिरोध जारी रखा.

ताजमहल

भारत के उत्तर प्रदेश राज्य के आगरा शहर के बाहरी इलाक़े में यह मक़बरा आगरा शहर में यमुना नदी के दक्षिणी तट पर बना हुआ है. मुग़ल शहंशाह शाहजहां ने इसे अपनी पत्नी अर्जुमंद बानो बेगम, जिन्हें मुमताज़ महल भी कहा जाता था, की याद में बनाया था. उन्हीं के नाम पर इसका नाम ताजमहल पड़ा. 1612 में निकाह के बाद

1631 में प्रसूति के दौरान बुरहानपुर में मृत्यु होने तक वह शाहजहां की अभिन्न संगिनी बनी रहीं.

ताजमहल, आगरा, उत्तर प्रदेश
फ़ोटो : टॉम नेब्बिया–एस्पेक्ट चित्र संग्रह

इस इमारत का निर्माण 1632 के आसपास शुरू हुआ. भारत, फ़ारस, मध्य एशिया और अन्य मुल्कों के वास्तुविदों की एक परिषद ने इसके निर्माण की योजना तैयार की थी. लगभग 1643 में इस मक़बरे का काम पूरा होने तक 20 हज़ार से अधिक श्रमिक और कारीगर प्रतिदिन इसके निर्माण में जुटे रहे. इसके आसपास की दीवार तथा मुख्य द्वार 1649 में बने. संपूर्ण ताज परिसर के निर्माण में 22 वर्ष का समय लगा और इसमें चार करोड़ रुपए ख़र्च हुए.

यह 580×305 मीटर के आयताकार भूखंड पर बना है और उत्तर–दक्षिण की ओर संरेखित है. भूखंड के मध्य में चौकोर बगीचा है, जिसकी हर भुजा की लंबाई 305 मीटर है. यह बगीचा उत्तर तथा दक्षिण में दो छोटे आयताकार खंडों से घिरा है. दक्षिणी आयताकार खंड में परिसर और परिचारकों की इमारत में आने के लिए बलुआ पत्थर से बना प्रवेशद्वार है. उत्तरी आयताकार खंड यमुना नदी के किनारे तक पहुंचता है. यहां सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भवन हैं, जैसे विख्यात मक़बरा, जिसके पश्चिमी और पूर्वी पार्श्व में एक जैसे दो भवन, मस्जिद और इसका जवाब (प्रत्युत्तर या सौंदर्यबोध को संतुलित रखने वाला भवन) हैं. इसके आसपास ऊंची चारदीवारी है, जिसके कोनों पर अष्टकोणीय मंडप हैं, जिसमें कंगूरे निकले हैं. यह चारदीवारी उत्तरी खंड तथा बगीचे के मध्य भाग को घेरे हुए है. दक्षिण में अस्तबल और पहरेदारों के कक्ष हैं.

संपूर्ण परिसर की योजना और निर्माण समग्रता के साथ किया गया, क्योंकि मुग़लकालीन भवन–निर्माण कार्यों में बाद में किसी तरह के जोड़–तोड़ का रिवाज नहीं था. मस्जिद और जवाब लाल सीकरी बलुआ पत्थरों से बने हैं. इनके गुंबद संगमरमर के हैं. कुछ कठोर पत्थर (पिएत्रा दुरा) का इस्तेमाल भी सतह पर सज्जा के लिए हुआ है. इनके विपरीत मक़बरा शुद्ध सफ़ेद मकराना संगमरमर का है.

मक़बरा सात मीटर ऊंचे संगमरमर के चबूतरे पर बना है, जिसमें चार एक जैसे खांचेदार प्रवेशद्वार हैं और एक विशाल मेहराब है, जिसकी ऊंचाई प्रत्येक फलक पर 33 मीटर है. ऊंचे बेलनाकार आधार पर टिके लड्डूनुमा छोटे गुंबद से मिलकर संरचना पूरी हो जाती है. मक़बरे के शीर्षों का सामंजस्य हर मेहराब के ऊपर मुंडेर व कलश और हर कोने पर छतरीनुमा गुंबद के द्वारा बैठाया गया है. चबूतरे के चारों कोनों पर एक–एक तिमंज़िली मीनार बनी है. मक़बरे का संगमरमर एकदम चिकना तराशा हुआ है, जबकि मीनारों में ईंट शैली में इसका इस्तेमाल हुआ है. मक़बरे के भीतर अष्टकोणीय कक्ष है, जो कम अलंकृत और बढ़िया *पिएत्रा दुरा* से बना है. यहां अर्जुमंद बानो बेगम और शाहजहां की क़ब्रें हैं. संगमरमर से बनी

क़ब्रों पर क़ीमती पत्थर से नक़्क़ाशी की गई है और ये एक जालीदार दीवार से घिरे हैं, जिस पर पहले क़ीमती पत्थर जड़े हुए थे. बगीचे की सतह से नीचे एक तहख़ाने में वास्तविक ताबूत मौजूद हैं. दोनों के शव दफ़नाए गए थे. ताजमहल को मुग़लकालीन वास्तुकला की सर्वोत्तम उपलब्धि और दुनिया की सबसे खूबसूरत इमारतों में से एक माना जाता है.

ताडोबा राष्ट्रीय उद्यान

राष्ट्रीय उद्यान, महाराष्ट्र राज्य, दक्षिण–पश्चिमी भारत. 117 वर्ग किमी क्षेत्र में विस्तृत इस उद्यान में साल (शोरिया), मारगोसा, महुआ, आम के वृक्षों वाले सघन वन हैं, जिसके बीच–बीच में झीलें और मैदानी इलाक़े हैं. ताडोबा झील के चारों ओर घने बांस के क्षेत्र हैं, जिन पर उद्यान का नाम ताडोबा पड़ा. यह 1935 में वन्य पशु अभयारण्य के रूप में स्थापित हुआ और 1955 में इसे राष्ट्रीय उद्यान घोषित किया गया. इस उद्यान में शेर, चीता, तेंदुआ, चीतल, भेड़िया, गौर, मूषक मृग, सांबर, हिरन, काला रीछ और मगरमच्छ हैं. सड़कों और अवलोकन मीनार (वॉच टावर) के संजाल द्वारा वन्य जीवन दर्शन की सुविधा उपलब्ध है.

तानपूरा

तंबूरा भी कहलाता है, लंबी गर्दन वाली, सारिका (पर्दे) विहीन वीणा, जो भारतीय संगीत में मंद्र संगत देती है. तंबूर मध्य–पूर्वी वीणा से, जिससे इसकी उत्पत्ति हुई, मिलता–जुलता है. आमतौर पर यह चार तारों वाला होता है, जो सा–सा'–सा'–प या सा–सा'– सा'–म पर मिले होते हैं. सटीक मिलान तारों एवं निचले मेरु में रेशम या ऊन के टुकड़े घुसाकर तथा तारों से जुड़े छोटे मनकों को समायोजित करके किया जाता है. स्वर की पकड़ उपलब्ध कराने के लिए तंबूरा ज़रूरी है, जिसके भीतर एक गायक या एकल वादक राग को उभारता है.

एक तानपूरा
सौजन्य : यूसुफ़ सईद

तापस

(संस्कृत शब्द, अर्थात ताप या उत्ताप), हिंदू धर्म में आध्यात्मिक शक्ति या शुद्धिकरण प्राप्त करने के लिए स्वैच्छिक तापसी आचरण. वेदों में तापस को आंतरिक ताप कहा गया है,

तापस शारीरिक संयम से उत्पन्न होता है और पौराणिक कथाओं में इसका उस साधन के रूप में ज़िक्र है, जिसके द्वारा प्रजापति (मुख्य सर्जक भगवान) ने विश्व की उत्पत्ति की. बाद के हिंदू धर्म में तप की प्रथा विशेष रूप से मोक्ष प्राप्ति के निमित्त अत्यधिक कठोर आध्यात्मिक साधना की तैयारी के लिए शरीर के शुद्धिकरण के तरीक़े के रूप में योग पद्धति से संबद्ध है. पवित्र ग्रंथों में उल्लिखित संयमों में उपवास, कठिन एवं कष्टदायी शारीरिक मुद्राएं, अग्नि के सामने या अत्याधिक सर्दी में जागरण और श्वास नियंत्रण (प्राणायाम) आते हैं.

जैन धर्म में संन्यास को नए कर्मों (अच्छे या बुरे कार्यों का प्रभाव) को रोकने तथा पुराने कर्मों से मुक्ति पाने का तरीक़ा माना जाता है और इस प्रकार यह पुनर्जन्म के चक्र को तोड़ने का केंद्रीय साधन है.

जैन बाह्य तप, जैसे उपवास (अत्यंत कठोर रूप, आमरण उपवास सहित), खाने पर नियंत्रण, ध्यान तथा एकांतवास; और आंतरिक तप, जैसे चिंतन, पाप–स्वीकारोक्ति तथा पापों का पश्चाताप के बीच भेद करते हैं.

प्रारंभिक बौद्ध धर्म में शुचिता एवं निर्धनता के मठीय जीवन को ज्ञान का एकमात्र मार्ग माना जाता था. फिर भी बुद्ध ने 'मध्य मार्ग' के पक्ष में आत्मयंत्रणा की चरम सीमाओं का उतनी ही कठोरता से परित्याग किया, जितनी दृढ़ता से विषयासक्ति का किया.

ताप्ती नदी

नदी, तापी नदी भी कहलाती है, मध्य भारत, दक्षिण–मध्य मध्य प्रदेश राज्य, मध्य दक्कन के पठार के गाविलगढ़ पहाड़ियों में उद्‌गम. यह पश्चिम की ओर सतपुड़ा श्रेणी के दो पहाड़ों के बीच से होकर महाराष्ट्र राज्य के जलगांव पठार को पार करके गुजरात राज्य में सूरत के मैदान से होते हुए खंभात की खाड़ी में गिरती है. इसकी कुल लंबाई लगभग 700 किमी है और यह 65,300 वर्ग किमी क्षेत्र को अपवाहित करती है. अपने मार्ग के अंतिम 51 किमी में यह नदी ज्वारीय, लेकिन छोटे जहाज़ों के लिए परिवहनीय है. नदी के मुहाने पर स्थित स्वाली बंदरगाह, जो कभी आंग्ल–पुर्तगाली उपनिवेश इतिहास में विख्यात था, गाद जमा हो जाने के कारण अब बंद हो चुका है. ताप्ती नदी, इसके उत्तर में बहने वाली अपेक्षाकृत लंबी नर्मदा नदी के लगभग समानांतर बहती है, जिससे यह मुख्य सतपुड़ा श्रेणी द्वारा विभाजित है. दो नदी घाटियां और इनके बीच की श्रेणियां उत्तरी और प्रायद्वीपीय भारत के बीच एक प्राकृतिक अवरोध बनाती हैं. महाराष्ट्र में दक्षिण से बहने वाली पूर्णा, गिरना और पंझरा इसकी प्रमुख सहायक नदियां हैं.

तामलुक

प्राचीन ताम्रलिप्ति, इसे ताम्रलिप्त (पालि में तामालित्ति) भी कहा जाता है, नगर, पश्चिम बंगाल राज्य, पूर्वी भारत, रूपनारायण नदी से ठीक दक्षिण. पुरातत्व विभाग की खुदाई से ऐसे अधिवासों का पता चलता है, जो पत्थर की कुल्हाड़ियों और कच्ची मिट्टी के

बर्तनों के चलन के समय के हैं और लगभग तीसरी शताब्दी ई.पू. से लगातार बसे हुए हैं.

जैन सूत्रों के अनुसार, ताम्रलिप्ति को बंग (बंगाल) की राजधानी माना गया है. इसे बंदरगाह के रूप में जाना जाता था. श्रीलंका इतिहास के पुरातन क्रमवार विवरण महावंस के अनुसार, राजकुमार विजय द्वारा श्रीलंका को उपनिवेश बनाने के अभियान (500 ई.पू.) तथा 250 वर्ष बाद मौर्य शासक अशोक के बौद्ध धर्म प्रचारकों ने श्रीलंका में धर्म प्रचार के लिए यहां से प्रस्थान किया था. ताम्रलिप्ति दक्षिण–पूर्व एशिया के साथ व्यापार करने का बंदरगाह भी था. चीनी तीर्थयात्री फ़ाह्यान पांचवीं शताब्दी में और ह्वेनसांग सातवीं शताब्दी में इस नगर में आए. ह्वेनसांग ने अपने यात्रा–वृत्तांत में बताया है कि यहां 10 बौद्ध मठ व एक अशोक स्तंभ था. उन्होंने ताम्रलिप्ति के बारे में लिखा है कि यह नील, रेशम व तांबे के निर्यात के लिए फलता–फूलता बंदरगाह था और तांबा (संस्कृत में ताम्र) पर ही इसका नाम पड़ा. प्राचीन समय में ताम्रलिप्ति समुद्र के निकट था. गंगा डेल्टा के आगे आ जाने से तामलुक अब समुद्र तट से 90 किमी अंदर की तरफ़ भूमि पर है. यह हुगली नदी पर नए बंदरगाह हल्दिया से 32 किमी की दूरी पर है. नदी पर नौकाओं के यातायात का तटीय केंद्र व कृषि वितरण केंद्र है और यहां रासायनिक कारख़ाने तथा सामान्य इंजीनियरी कारख़ाने हैं. यहां पुराना बचा एक बौद्ध मंदिर है, जो अब हिंदू देवी काली को समर्पित है. इस स्थान पर पकी मिट्टी की कई छोटी–छोटी मूर्तियां मिली थीं, जिनमें से अधिकांश एक छोटे संग्रहालय में रखी हुई हैं.

तारा सिंह

मास्टर तारा सिंह भी कहलाते हैं, (ज.–24 जून 1885, रावलपिंडी, पंजाब, पश्चिमोत्तर भारत {वर्तमान पाकिस्तान में}; मृ.–22 नवं. 1967, चंडीगढ़, भारत), सिक्ख नेता, जो पंजाब में स्वायत्त पंजाबीभाषी सिक्ख राष्ट्र की वकालत करने के लिए विख्यात हुए. वह हिंदू, मुसलमान और अंग्रेज़ों के प्रभुत्व के ख़िलाफ़ सिक्ख अधिकारों की पैरवी करने वाले नेता थे.

तारा सिंह जन्म से हिंदू थे, लेकिन रावलपिंडी में छात्र जीवन के दौरान वह सिक्ख धर्म की ओर आकर्षित हुए तथा इसमें शामिल होने के लिए आरंभिक रस्म पूरी की. 1907 में अमृतसर के खालसा कॉलेज से स्नातक उपाधि प्राप्त करने के बाद वह लायलपुर स्थित सिक्ख शिक्षा–प्रणाली के उच्च विद्यालय में शिक्षक या 'मास्टर' बन गए और इसके बाद से यह उपाधि उनसे सदा जुड़ी रही.

सिक्खों की धार्मिक तथा राजनीतिक अखंडता के लिए समर्पित तारा सिंह ने अक्सर ख़ुद को नागरिक प्रशासन के ख़िलाफ़ खड़ा पाया. 1930 से 1966 के बीच सविनय अवज्ञा के लिए उन्हें 14 बार जेल भेजा गया. 1930 में वह सविनय अवज्ञा आंदोलन में पूरे दिल से सक्रिय हो गए और सिक्खों के अकाली दल तथा केंद्रीय गुरुद्वारा प्रबंधक समिति के नेता रहे. वह ऐसे पंजाबीभाषी राज्य के आंदोलनकारी के रूप में विख्यात थे, जिसमें सिक्खों की धार्मिक और राजनीतिक परंपराएं सुरक्षित रहें.

1961 में तारा सिंह ने घोषणा की कि वह तब तक अनशन करेंगे, जब तक तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू पंजाब के एक हिस्से को सिक्ख राज्य घोषित न कर दें. उन्होंने अगस्त में अमृतसर के स्वर्ण मंदिर में अनशन शुरू किया, लेकिन नेहरू ने कहा कि तारा सिंह की मांगों को मानना भारत के धर्मनिरपेक्ष संविधान के ख़िलाफ़ और पंजाब के हिंदुओं के प्रति अन्यायपूर्ण होगा. नेहरू द्वारा सिक्खों के दावों की जांच करने के आश्वासन का व्यक्तिगत पत्र मिलने के बाद तारा सिंह ने 48 दिनों के बाद अनशन समाप्त कर दिया. इसके लिए सिक्खों ने उनकी जमकर आलोचना की. तारा सिंह को पियारों (सिक्ख धर्म के नेता) के सामने पेश किया गया और उन्होंने स्वयं को अपराधी क़बूल किया. अपने आदर्शों के लिए आमरण अनशन के विफल रहने के कारण नेता के रूप में उनकी साख खत्म हो गई और उनके स्थान पर संत फ़तेह सिंह को चुन लिया गया. 1966 में वर्तमान भारतीय राज्य पंजाब के गठन से तारा सिंह का पंजाबीभाषी राज्य का सपना पूरा हुआ.

ताल

भारतीय एवं पाकिस्तानी संगीत में थापों की विशेष संख्या 3 से 128 के साथ छंदोबद्ध चक्र, जो पूरे संगीत कार्यक्रम के दौरान समान वृत्त में दुहराया जाता है. ताल की तुलना सामान्यतः लय या छंद के साथ की जा सकती है. ताल प्रक्रिया का पश्चिमी संगीत में कोई सटीक प्रतिरूप नहीं है. थाप, प्रतिमान के भीतर अनिवार्य रूप से समान उपइकाइयों के समूह में नहीं होती हैं, जैसी कि आम पश्चिमी प्रथा है, वरन विषम समूहों में हो सकती हैं. जहां उपइकाइयां संख्या में समान होती हैं, वहां भी प्रत्येक समूह क्रियात्मक रूप से भिन्न होता है. उदाहरण के लिए, तीन ताल में 16 थाप हैं और चार के समूह में बंटी होने के कारण ये ऊपरी तौर पर पश्चिमी 4/4 छंद से मिलती–जुलती लग सकती हैं. लेकिन प्रत्येक चार थाप समूह में भिन्न–भिन्न स्तर के बलाघात हैं. सबसे शक्तिशाली पहला समूह है, जिसकी शुरुआती थाप, सम, 16 में सबसे प्रबल है तथा सबसे कमज़ोर तीसरी है (जिसकी पहली थाप ख़ाली या खुली थाप कहलाती है). इस प्रकार, प्रत्येक ताल की अपनी विशिष्टता है, जो न केवल थापों की संख्या, बल्कि थापों का छोटी इकाइयों में उपविभाजन भिन्न बलाघातों के साथ निर्भर करती है.

जिस तरह सरगम राग–संरचना कलाकार को राग का आधार देती है, ताल लयात्मक तात्कालिकता के लिए सही संरचना उपलब्ध कराती है. सामान्यतः संगत देने वाला तबलची ताल को अभिव्यक्ति देता है; लेकिन लयात्मक चक्र कलाकार के मन में हमेशा बने रहते हैं, चाहे उन्हें बजाया जाए या नहीं.

तालपुर

बलूची जनजाति, जब ऊपरी और निचले सिंध का यह भाग नाममात्र के लिए मूलतः अफ़ग़ानिस्तान के दुर्रानी शासन का हिस्सा था, उस दौरान इन जनजातीय लोगों में से कई मुसलमान अमीर हुए.

1783 में उनके एक नेता मीर फ़तह अली ख़ां ने स्वयं को रईस, यानी प्रतिनिधि घोषित कर दिया. उन्होंने नज़राना वसूली को लेकर हुए दो अफ़ग़ान आक्रमणों का मामला सौहार्दपूर्ण ढंग से निपटाया. 1802 में उनकी मृत्यु के समय तक सिंध में तालपुर शासन मज़बूती से स्थापित हो गया था. तालपुर मूल रूप से बलूचिस्तानवासी थे. उन्होंने किसी पीर का वंशज होने का दावा नहीं किया और वे अपने पूर्ववर्ती कल्होरा वंश के समान लोकप्रिय भी नहीं थे, लेकिन वे इस क्षेत्र में 40 वर्षों तक शांति बनाए रखने और अपेक्षाकृत कुशल प्रशासन देने में सफल रहे.

तालपुरों ने सिंध प्रशासन को संगठित कर हैदराबाद तक इसका विस्तार किया और कराची को भी क़ब्ज़े में कर लिया था. ब्रिटिश हुकूमत ने सिंध को अफ़ग़ानिस्तान के प्रवेशद्वार के रूप में देखा और वर्षों तक दबाव बढ़ाते रहने के बाद 1843 में इस क्षेत्र पर क़ब्ज़ा कर लिया.

तालिकोटा का युद्ध

(जन. 1565), विजयनगर के हिंदू राजा और भारत के दक्कन के बीजापुर, बीदर, अहमदनगर तथा गोलकुंडा के चार सुल्तानों के बीच हुआ युद्ध. इसमें कई लाख सैनिकों और हाथियों के कई दलों ने हिस्सा लिया था. मुस्लिम तोपख़ानों ने युद्ध में निर्णायक भूमिका निभाई और सत्तारूढ़ हिंदू मंत्री राम राय को पकड़कर मौत के घाट उतार दिया गया. राजधानी विजयनगर पर क़ब्ज़ा कर लिया गया और पांच महीने में उसे नेस्तनाबूद किया गया. उसे फिर कभी बसाया नहीं गया. राजा और राम राय के भाई तिरुमला ने पेनुकोंडा में शरण ली, जहां तिरुमला ने गद्दी हथिया (1570) ली. यह युद्ध विजयनगर साम्राज्य, जो तमिल तथा दक्षिणी कन्नड़ पर तेलुगु आधिपत्य का प्रतीक था, के विखंडन में निर्णायक साबित हुआ. इसी से मुसलमानों की अंतिम घुसपैठ भी शुरू हुई, जो 18वीं शताब्दी के अंत तक चलती रही.

ताशकंद समझौता

(10 जन. 1966), भारत के प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री (जिनकी समझौते के अगले ही दिन मृत्यु हो गई) और पाकिस्तान के राष्ट्रपति अयूब ख़ां द्वारा इस समझौते पर हस्ताक्षर किए गए, जिससे अगस्त–सितंबर 1965 में भारत–पाकिस्तान के बीच 17 दिन तक चलने वाला युद्ध समाप्त हुआ. 22 सितंबर 1965 को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के हस्तक्षेप से युद्ध विराम हो चुका था.

यह समझौता तत्कालीन सोवियत प्रधानमंत्री अलेक्ज़ेइ कोसीगिन की मध्यस्थता से हुआ, जिन्होंने दोनों पक्षों को ताशकंद बुलाया था. दोनों पक्षों के बीच यह सहमति हुई कि वे अपनी सेनाओं को 5 अगस्त 1965 से पहले की स्थिति में ले आएंगे; राजनयिक संबंध पुनः क़ायम कर आर्थिक और शरणार्थियों की समस्या तथा अन्य मसलों पर बातचीत करेंगे. इस समझौते का भारत में इस वजह से विरोध हुआ, क्योंकि इसमें युद्ध न करने की संधि तथा कश्मीर में छापामार युद्ध बंद करने का कोई प्रावधान नहीं था.

तिनसुकिया

नगर, ज़िला, पूर्वोत्तर असम राज्य, पूर्वोत्तर भारत. यह ब्रह्मपुत्र नदी घाटी में ज़िला मुख्यालय डिब्रूगढ़ के पूर्व में लगभग 40 किमी दूर एक रेल जंक्शन पर स्थित है. यह एक राजमार्ग द्वारा पूर्व में म्यांमार (भूतपूर्व बर्मा) और डिब्रूगढ़ से होकर दक्षिण–पश्चिम में गुवाहाटी और शिलांग से जुड़ा हुआ है. नगर के मुख्य उद्योग में निकट स्थित बाग़ानों से प्राप्त चाय का प्रसंस्करण शामिल है. यहां पर डिब्बाबंद करने की एक फ़ैक्ट्री भी है. शैक्षणिक संस्थानों में एक वाणिज्य महाविद्यालय एवं एक लॉ कॉलेज है. जनसंख्या (2001) नगर 85,519; ज़िला कुल 11,50,146.

तिब्बती त्योहार

तिब्बती कैलेंडर के पहले महीने का पहला दिन (ग्रेगोरियाई कैलेंडर का फ़रवरी या मार्च का महीना) पूरे तिब्बत में नववर्ष के रूप में मनाया जाता है. मठ, मंदिर, स्तूप तथा घरों के प्रार्थनागृहों में लोग सवेरे एकत्र होकर देवताओं तथा संतों की मूर्तियों और स्मृति चिह्नों पर चढ़ावा चढ़ाते हैं. हर घर में खाजा नामक विशेष प्रकार का तला हुआ मिष्ठान्न बनता है. सींग वाली भेड़ का असली या नक़ली सिर चढ़ावे की शोभा बढ़ाता है. प्रत्येक आगंतुक को जौ के आटे तथा गेहूं व छांग से भरे रंगीन पात्र दिए जाते हैं, जो इसमें से चुटकी भर उछालकर देवताओं को चढ़ाते हैं.

नववर्ष समारोह के लगभग तुरंत बाद ही स्मॉन लाम (प्रार्थना) त्योहार होता है, जो नववर्ष के तीन दिन बाद शुरू होता है और 15 दिनों तक मनाया जाता है. यह त्योहार वाद–विवाद तथा चमत्कारों के माध्यम से बुद्ध द्वारा छह धार्मिक विरोधियों पर विजय के उपलक्ष्य में मनाया जाता है. इसमें हर दिन विशेष प्रार्थनाएं की जाती हैं. बुद्ध के जन्म, बोधप्राप्ति और निर्वाण के त्योहार, दान सा–गा ज्ला–बा की विशेषताएं हैं, प्रार्थना, उपवास और दान. ये तीनों घटनाएं तिब्बती कैलेंडर के चौथे महीने के 15वें दिन घटित हुई थीं. गेलुग–पा मत के संस्थापक त्सांग–ख–पा की मृत्यु का त्योहार 10वें महीने के 25वें दिन छतों और खिड़कियों के छज्जों पर मक्खन के दीये जलाकर मनाया जाता है. इसे ङा–छोद् कहते हैं. बुरी आत्माओं के उन्मूलन का गुतोर् त्योहार तिब्बती वर्ष के अंतिम महीने की 29वें दिन मनाया जाता है. रात के समय आटे के घोल तथा फूस के जलते हुए गट्ठर घर–घर ले जाकर बुरी आत्माओं को बाहर निकाला जाता है. उसके बाद घर से दूर के किसी मार्ग पर घोल तथा पुआल को फेंककर जलने के लिए छोड़ दिया जाता है.

तिब्बती बौद्ध धर्म

अशुद्ध तरीक़े से लामावाद भी कहलाता है, बौद्ध धर्म का विशिष्ट या विभेदित रूप, जो सातवीं शताब्दी में तिब्बत में विकसित हुआ. यह मुख्यतः माध्यमिक तथा योगाचार दर्शन के कठोर बौद्धिक अनुशासन पर आधारित है और इसमें वज्रयान (तांत्रिक बौद्ध धर्म) के प्रतीकात्मक आनुष्ठानिक आचारों का पालन होता है. तिब्बती बौद्ध धर्म में

आरंभिक थेरवादी बौद्ध धर्म के मठवासी अनुशासन तथा स्थानीय तिब्बती धर्म बॉन की जादूगरी जैसी विशेषताएं भी शामिल थीं. तिब्बती बौद्ध धर्म की विशेषता असामान्य रूप से जनसंख्या के एक बड़े हिस्से का धार्मिक लक्ष्य में संलग्न होना है. 1950 के दशक में चीन के साम्यवादियों द्वारा इस देश पर क़ब्ज़े से पहले लगभग एक–चौथाई निवासी धार्मिक मतों के सदस्य थे. इसमें 'पुनः अवतार लेने वाले लामाओं' की पद्धति; दलाई लामा के पद तथा व्यक्ति में आध्यात्मिक व सांसारिक सत्ता का परंपरागत विलय; और बड़ी संख्या में देवता (प्रत्येक अपने परिवार, पत्नी तथा प्रशांत व विकराल रूपों में), जिन्हें धार्मिक कुलीन वर्ग आत्मिक जीवन का प्रस्तुतीकरण मानता है तथा सामान्य जन वास्तविक मानकर स्वीकार करता है, शामिल हैं.

तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रसार मुख्यतः सातवीं से दसवीं शताब्दी के बीच हुआ. आरंभिक उपदेशकों में उल्लेखनीय तांत्रिक गुरु पद्मसंभव और अधिक रूढ़िवादी महायान उपदेशक शांतिरक्षित शामिल हैं. 1042 में भारत से महान शिक्षक अतीश के आगमन के साथ ही वहां एक सुधारवादी आंदोलन की शुरुआत हुई तथा एक शताब्दी के भीतर ही तिब्बती बौद्ध धर्म के प्रमुख संप्रदाय अस्तित्व में आए. गेलुग्–पा या धार्मिक पद्धतियों में से एक, जो सामान्यतः पीला टोप संप्रदाय के नाम से जाना जाता है तथा दलाई व पंचेन लामाओं का मत है, 17वीं शताब्दी से लेकर 1959 तक राजनीतिक रूप

एक तिब्बती बौद्ध मठ के एक भित्तिचित्र का दृश्य
सौजन्य : इफ़्फ़त फ़ातिमा

से प्रमुख तिब्बती संप्रदाय रहा है. इसके बाद चीनी गणराज्य ने दलाई लामा के पदानुक्रमिक प्रशासन को समाप्त कर दिया.

14वीं शताब्दी तक तिब्बती लोग भारत तथा तिब्बत में उपलब्ध समूचे बौद्ध साहित्य का अनुवाद करने में सफल हो गए थे. अपने मूल देश में लुप्त हो चुके कई संस्कृत ग्रंथों की जानकारी उनके तिब्बती अनुवादों से मिलती है. तिब्बती धर्म विज्ञान दो श्रेणियों में विभाजित है, *कान्ग्युर* या शब्दों का अनुवाद, जिसमें संभवतः धर्मविधानीय पाठ हैं तथा *तन्ग्युर* या प्रसारित शब्द, जिसमें भारतीय गुरुओं की टीकाएं हैं.

20वीं शताब्दी के दूसरे उत्तरार्द्ध में तिब्बती बौद्ध धर्म का पश्चिम में प्रसार हुआ, विशेषकर तिब्बत को चीनी साम्यवादियों द्वारा अधीन कर लिए जाने के कारण कई शरणार्थी अपने गृहक्षेत्र से निकले, जिनमें परमआदरणीय 'पुनर्अवतरित लामा' या तुलुक भी शामिल थे. पश्चिम में तिब्बती धार्मिक समूह में शरणार्थियों के समुदाय तथा तिब्बती परंपरा की ओर आकर्षित पश्चिमी लोग शामिल हैं.

तिरुचिराप्पल्ली

त्रिचिनोपोली भी कहलाता था, शहर, मध्य तमिलनाडु राज्य, दक्षिणी भारत. यह चेन्नई (भूतपूर्व मद्रास) और तिरुवनंतपुरम (भूतपूर्व त्रिवेंद्रम) के बीच रेल एवं सड़क मार्ग के बीच कावेरी नदी के डेल्टा के शीर्ष पर स्थित है. सातवीं से सत्रहवीं शताब्दी के बीच यह शहर पल्लव, चोल एवं विजयनगर वंशों का महत्त्वपूर्ण स्थानीय राजधानी था. इसका चट्टानी क़िला शहर पर छाया हुआ है और यह 17वीं से 19वीं शताब्दी तक मुस्लिम, मराठा, ब्रिटिश एवं फ़्रांसीसी टुकड़ियों के बीच कई कटु लड़ाइयों का स्थल रहा. यह शहर अब एक औद्योगिक केंद्र है, जिसमें आधुनिक बिजली उपकरणों का बड़ा कारख़ाना, ताप बॉयलर एवं रेल के इंजन निर्माण की कार्यशालाओं के साथ–साथ सूती वस्त्र हथकरघा व सिगार बनाने का कुटीर उद्योग शामिल हैं. यहां कृत्रिम हीरों का भी निर्माण होता है. शहर में भारतीदसन विश्वविद्यालय (1982) है. पास की कावेरी नदी घाटी राज्य का श्रेष्ठ धान उत्पादक क्षेत्र है और यहां गन्ना और पान के पत्ते का उत्पादन भी होता है. जनसंख्या (2001) शहर 7,42,062; ज़िला कुल 23,88,831.

तिरुनेल्वेली

शहर, तिन्नेवेल्लि भी कहलाता है, दक्षिणी तमिलनाडु राज्य, दक्षिणी भारत. यह शहर तांब्रपर्णी नदी के तट पर पालयन्कोट्टै (पालमकोट्टा) शहर के ऊपर की ओर स्थित है. इसके नाम की उत्पत्ति तमिल शब्दों तिरु (पवित्र), नेल (धान) और वेलि (घेरा या बाड़ा) से हुई है, जिससे एक मिथक जुड़ा है कि यहां भक्तों के धान की फ़सल की रक्षा शिव करते हैं. पांड्य वंश के दौरान तिरुनेल्वेली शहर एक वाणिज्य केंद्र था. तांब्रपर्णी नदी पर बने पापनासम बांध से बिजली की आपूर्ति होने से यह एक औद्योगिक शहर बन गया है. इसे वस्त्र, सिगार और आभूषण के निर्माण में विशिष्टता प्राप्त है. यहां वाहन (मोटर) कार्यशालाएं और मनोन्मणियम सुंदरनार विश्वविद्यालय (1990) हैं.

तिरुनेल्वेली तांब्रपर्णी नदी की उर्वर, जलोढ़ घाटी में स्थित है, जो पश्चिमी घाट की पर्वत शृंखलाओं से निकलकर पूर्व की ओर बहते हुए अंततः मन्नार की खाड़ी में मिल जाती है. तांब्रपर्णी चावल व कपास की फ़सलों को सिंचाई का पानी उपलब्ध कराती है. इस क्षेत्र के प्रमुख बड़े उद्योगों में सूती वस्त्र की मिलें हैं. 1542 में सेंट फ़्रांसिस ज़ेवियर के पहुंचने और धर्मांतरण की शुरुआत करने के बाद से यह क्षेत्र स्थानीय आबादी में ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों का मुख्य केंद्र रहा है. जनसंख्या (2001) शहर 4,11,298; ज़िला कुल 28,01,194.
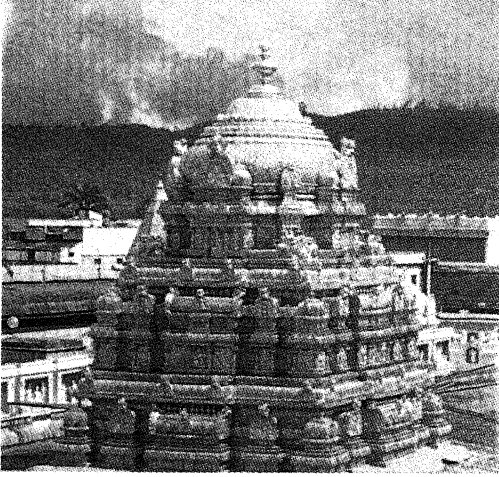
तिरुपति

तिरुमला पहाड़ी पर वेंकटेश्वर मंदिर, तिरुपति, आंध्र प्रदेश
सौजन्य : आंध्र प्रदेश पर्यटन विभाग

शहर, दक्षिण–पूर्व आंध्र प्रदेश राज्य, दक्षिण–पूर्वी भारत. यह चेन्नई (भूतपूर्व मद्रास) के पश्चिमोत्तर में लगभग 108 किमी की दूरी पर पालकोंडा की पहाड़ियों में स्थित है. तिरुपति, सात पहाड़ियों के ईश्वर, भगवान वेंकटेश्वर के निवास स्थल के रूप में प्रसिद्ध है. तिरुपति से लगभग 10 किमी पश्चिमोत्तर में 750 मीटर की ऊंचाई पर पवित्र पर्वत तिरुमला है, जिसे इतना पवित्र माना जाता है कि 1870 से पहले ग़ैर हिंदुओं को इस पर चढ़ने की अनुमति नहीं थी. पहाड़ी के शीर्ष पर वेंकटेश्वर को समर्पित एक मंदिर है. पवित्र जलप्रपातों व जलाशयों के बीच स्थित यह मंदिर द्रविड़ कला का एक अनुपम उदाहरण है तथा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थलों में से एक है. यह मंदिर, जो एक प्राचीन कलाकृति है, अब श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय (1954) का केंद्र है. जनसंख्या (2001) उपनगर (एन.एम.ए.) 25,670; शहर 2,27,657.

तिरुप्पुर

शहर, पश्चिम तमिलनाडु राज्य, दक्षिण भारत, नोइल नदी पर स्थित. यह कोयंबत्तूर और इरोड से रेलमार्ग द्वारा जुड़ा सक्रिय कपास ओटाई एवं वितरण केंद्र है. 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में यह बुने हुए सूती वस्त्र के निर्माण का प्रमुख केंद्र बन गया है. तिरुप्पुर का अर्थ 'पवित्र शहर' होता है और यहां का शिव मंदिर बड़ी संख्या में तीर्थयात्रियों को, ख़ासकर मई–जून में मनाए जाने वाले रथयात्रा उत्सव के समय आकर्षित करता है. जनसंख्या (2001) शहर 3,46,551.

तिरुवनंतपुरम

शहर, भूतपूर्व त्रिवेंद्रम, केरल राज्य की राजधानी, दक्षिणी भारत. तिरुवनंतपुरम केरल के सुदूर पश्चिमी छोर पर स्थित है. यह शहर मूल रूप से शहर के क़िले के पास

तिरुवनंतपुरम के वनस्पति उद्यान में स्थित विश्रामगृह, केरल
फ़ोटो : फ़ोटो फ़ीचर्स

स्थित तिरुअनंत पद्मनाभपुरम से विकसित हुआ है. इसका प्राचीन नाम तिरुवनंतपुरम था, जिसे अंग्रेज़ों ने बदलकर त्रिवेंद्रम रख दिया. यहां का समुदाय राजा मार्तंड वर्मा के शासनकाल में प्रभुत्वशाली बना, जिन्होंने इसे 1745 में त्रावणकोर राज्य की राजधानी बनाया.

तिरुवनंतपुरम में केरल विश्वविद्यालय (1937) व इससे संबद्ध महाविद्यालय और तकनीकी विद्यालय हैं. यहां पर कुठीरमलिका संग्रहालय, नेपियर संग्रहालय, प्राणी उद्यान, पर्यवेक्षणशाला और श्रीचित्रा कलादीर्घा भी है. एक बड़े क़िले में कई महल और एक वैष्णव मंदिर भी है. भगवान विष्णु को समर्पित प्रसिद्ध पद्मनाभस्वामी मंदिर एक महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थल है और इसमें दिलचस्प मूर्तियां हैं. यहां की वास्तु में केरल व द्रविड़ शैली का मिश्रण है. तिरुवनंतपुरम के उद्योगों में खनिज प्रसंस्करण, वस्त्र एवं हस्तकला से जुड़े उद्योग और चीनी की मिलें शामिल हैं.

तिरुवनंतपुरम विलग पहाड़ियों से युक्त तटीय मैदान में स्थित है. चावल और नारियल की खेती एवं मछली पकड़ना आर्थिक रूप से महत्त्वपूर्ण है. जनसंख्या (2001) न.नि. क्षेत्र 7,44,739; ज़िला कुल 32,34,707.

तिलक

(संस्कृत शब्द, अर्थात निशान), हिंदू धर्म में सामान्यतः माथे पर बनाया जाने वाला निशान, जो किसी व्यक्ति के संप्रदाय विशेष से संबद्ध होने का परिचायक होता है. यह निशान हाथ या धातु के ठप्पे से बनाया जाता है. इसके लिए हवन की राख, चंदन, हल्दी, गोबर, मिट्टी, चारकोल या लाल सीसे का उपयोग किया जाता है. कुछ संप्रदायों में माथे के साथ–साथ शरीर के 2, 5, 12, या 32 हिस्सों पर भी निशान बनाए जाते हैं. शैव मतावलंबियों में तिलक सामान्यतः माथे पर तीन क्षैतिज समानांतर रेखाओं के रूप में लाल गोल चिह्न के साथ या इसके बिना ही होता है. क़भी–कभी अर्द्ध चंद्र या त्रिशूल शिव को इंगित करता है. वैष्णव मतावलंबियों में अंग्रेज़ी के यू अक्षर से मिलता–जुलता, दो या तीन रेखाओं से बना निशान होता है, जो विष्णु के चरण का प्रतीक है, जिसकी मध्यरेखा पर लाल गोल चिह्न भी हो सकता है.

महिलाओं द्वारा माथे पर लगाया गया निशान (विवाहित स्त्रियों के लिए सामान्यतः गोल लाल निशान, बिंदी) उनके संप्रदाय का भी परिचायक हो सकता है; लेकिन हाल के वर्षों में विवाहित और अविवाहित स्त्रियों द्वारा लगाया गया निशान भारत के क्षेत्र विशेष के प्रचलन के अनुसार बदलता रहा है.

बाल गंगाधर तिलक
सौजन्य : *द हिंदू*

तिलक, बाल गंगाधर

(ज.–23 जुला. 1856, रत्नागिरि, भारत; मृ.–1 अग. 1920, बंबई {वर्तमान मुंबई}), विद्वान, गणितज्ञ, दार्शनिक और उग्र राष्ट्रवादी, जिन्होंने भारत की स्वतंत्रता की नींव रखने में मदद की. उन्होंने इंडियन होमरूल लीग की स्थापना (1914) की और इसके अध्यक्ष रहे तथा 1916 में मुहम्मद अली जिन्ना के साथ लखनऊ समझौता किया, जिसमें आज़ादी के लिए संघर्ष में हिंदू–मुस्लिम एकता का प्रावधान था.

तिलक का जन्म एक सुसंस्कृत, मध्यमवर्गीय ब्राह्मण परिवार में हुआ था. विश्वविद्यालय से स्नातक होने के बाद तिलक ने क़ानून की पढ़ाई की, लेकिन उसके बाद उन्होंने पूना (वर्तमान पुणे) के एक निजी विद्यालय में गणित के अध्यापन का फ़ैसला किया. यही विद्यालय उनके राजनीतिक जीवन का केंद्र बना. उन्होंने दक्कन एजुकेशन सोसाइटी की स्थापना (1884) के बाद विद्यालय को महाविद्यालय के रूप में विकसित किया, जिसका लक्ष्य जनसाधारण को मुख्यतः अंग्रेज़ी भाषा में शिक्षित करना था. इसके बाद उन्होंने दो साप्ताहिक समाचार पत्रों, मराठी में *केसरी* और अंग्रेज़ी में *द मराठा,* के माध्यम से लोगों की राजनीतिक चेतना को जगाने का काम शुरू किया. इन समाचार पत्रों के ज़रिये ब्रिटिश शासन तथा उदार राष्ट्रवादियों की, जो पश्चिमी तर्ज़ पर सामाजिक सुधारों एवं संवैधानिक तरीक़े से राजनीतिक सुधारों का पक्ष लेते थे, कटु आलोचना के लिए वह विख्यात हो गए. उनका मानना था कि सामाजिक सुधार में जन शक्ति खर्च करने से वह स्वाधीनता के राजनीतिक संघर्ष में पूरी तरह नहीं लग पाएगी.

तिलक ने हिंदू धार्मिक प्रतीक जगाकर और मुस्लिम शासन के ख़िलाफ़ मराठों के संघर्ष की लोकप्रिय परंपराओं को पुनर्जीवित करके राष्ट्रवादी आंदोलन (जो तब तक मुख्यतः उच्च वर्ग में सीमित था) की लोकप्रियता को विस्तार देने का प्रयास किया. इस प्रकार उन्होंने दो प्रमुख त्योहारों, 1893 में गणेश उत्सव और 1895 में शिवाजी उत्सव का आयोजन किया. गणेश सभी हिंदुओं के लिए पूजनीय हैं, जबकि शिवाजी भारत की मुस्लिम सत्ता के ख़िलाफ़ लड़ने वाले पहले हिंदू नायक और मराठा राज्य के संस्थापक थे, जिन्होंने कालांतर में भारत से मुस्लिम सत्ता को उखाड़ फेंका. इस प्रतीकवाद ने राष्ट्रवादी आंदोलन को अधिक लोकप्रिय तो बना दिया, लेकिन इसने इसे अधिक सांप्रदायिक भी बना दिया, जिससे मुसलमान चौकन्ने हो गए.

तिलक की गतिविधियों ने जल्दी ही उन्हें ब्रिटिश सरकार के साथ टकराव की स्थिति में ला खड़ा किया. सरकार ने उन पर राजद्रोह का आरोप लगाकर 1897 में उन्हें जेल भेज दिया. इस मुक़दमे और सज़ा के कारण उन्हें लोकमान्य (लोगों के लोकप्रिय नेता) की उपाधि मिली. भारत के वाइसरॉय लॉर्ड कर्ज़न ने जब 1905 में बंगाल का विभाजन किया, तो तिलक ने बंगालियों द्वारा इस विभाजन को रद्द करने की मांग का ज़ोरदार समर्थन किया और ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार की वकालत की, जो जल्दी ही एक

देशव्यापी आंदोलन बन गया. अगले वर्ष उन्होंने सत्याग्रह के कार्यक्रम की रूपरेखा बनाई, जिसे नए दल का सिद्धांत (टेनेट्स ऑफ़ द न्यू पार्टी) कहा जाता था. उन्हें उम्मीद थी कि इससे ब्रिटिश शासन का सम्मोहनकारी प्रभाव ख़त्म होगा और लोग स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु बलिदान के लिए तैयार होंगे. तिलक द्वारा शुरू की गई राजनीतिक गतिविधियों, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और सत्याग्रह को बाद में मोहनदास करमचंद गांधी ने अंग्रेज़ों के साथ अहिंसक असहयोग आंदोलन में अपनाया.

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नरम दल के लिए तिलक के विचार ज़रा ज़्यादा ही उग्र थे. नरम दल के लोग छोटे सुधारों के लिए सरकार के पास 'वफ़ादार' प्रतिनिधिमंडल भेजने में विश्वास रखते थे. तिलक का लक्ष्य स्वराज था, छोटे–मोटे सुधार नहीं और उन्होंने कांग्रेस को अपने उग्र विचारों को स्वीकार करने के लिए राज़ी करने का प्रयास किया. इस मामले पर 1907 में कांग्रेस के सूरत अधिवेशन में नरम दल के साथ उनका संघर्ष भी हुआ. राष्ट्रवादी शक्तियों में फूट का लाभ उठाकर सरकार ने तिलक पर राजद्रोह और आतंकवाद फैलाने का आरोप लगाकर उन्हें छह वर्ष के कारावास की सज़ा दे दी और मांडले, बर्मा (वर्तमान म्यांमार) में निर्वासित कर दिया. मांडले जेल में तिलक ने अपनी महान कृति *भगवद्गीता–रहस्य* का लेखन शुरू किया, जो हिंदुओं की सबसे पवित्र पुस्तक की मूल टीका है. तिलक ने *भगवद्गीता* के इस रूढ़िवादी सार को ख़ारिज कर दिया कि यह पुस्तक संन्यास की शिक्षा देती है; उनके अनुसार, इससे मानवता के प्रति निःस्वार्थ सेवा का संदेश मिलता है.

प्रथम विश्व युद्ध से ठीक पहले 1914 में रिहा होने पर वह पुनः राजनीति में कूद पड़े और "स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूंगा" के नारे के साथ होमरूल लीग की स्थापना की. 1916 में वह फिर से कांग्रेस में शामिल हो गए तथा हिंदुओं और मुसलमानों के बीच हुए ऐतिहासिक लखनऊ समझौते पर हस्ताक्षर किए, जो उनके एवं पाकिस्तान के भावी संस्थापक मुहम्मद अली जिन्ना के बीच हुआ था. इंडियन होमरूल लीग के अध्यक्ष के रूप में तिलक 1918 में इंग्लैंड गए. उन्होंने महसूस किया कि ब्रिटेन की राजनीति में लेबर पार्टी एक उदीयमान शक्ति है, इसलिए उन्होंने उसके नेताओं के साथ घनिष्ठ संबंध क़ायम किए. उनकी दूरदृष्टि सही साबित हुई : 1947 में लेबर सरकार ने ही भारत की स्वतंत्रता को मंजूरी दी. तिलक पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने कहा था कि भारतीयों को विदेशी शासन के साथ सहयोग नहीं करना चाहिए, इस बात से वह बराबर इनकार करते रहे कि उन्होंने हिंसा के प्रयोग को उकसाया.

1919 में कांग्रेस की अमृतसर बैठक में हिस्सा लेने के लिए स्वदेश लौटने के समय तक तिलक इतने नरम हो गए थे कि उन्होंने मॉन्टेग्यू–चेम्सफ़ोर्ड सुधारों के ज़रिये स्थापित लेजिस्लेटिव काउंसिल (विधायी परिषदों) के चुनाव के बहिष्कार की गांधी की नीति का विरोध नहीं किया. इसके बजाय तिलक ने क्षेत्रीय सरकारों में कुछ हद तक भारतीयों की भागीदारी की शुरुआत करने वाले सुधारों को लागू करने के लिए प्रतिनिधियों को सलाह दी कि वे उनके 'प्रत्युत्तरपूर्ण सहयोग' की नीति का पालन करें. लेकिन नए सुधारों को निर्णायक दिशा देने से पहले ही उनकी मृत्यु हो गई. उन्हें

श्रद्धांजलि देते हुए महात्मा गांधी ने उन्हें 'आधुनिक भारत का निर्माता' और नेहरू ने 'भारतीय क्रांति के जनक' की उपाधि दी.

तिस्ता नदी

ब्रह्मपुत्र नदी की सहायक नदी, सिक्किम व पश्चिम बंगाल (भारत) और बांग्लादेश से होकर बहती है. इसका उद्‌गम हिमालय में चुंथांग के पास है. यह दक्षिण की ओर दार्जिलिंग, हिमालय से होकर बहती हुई एक गहरा खड्ड काटती है और दक्षिण-पूर्व की ओर मुड़कर शिवोकगोता दर्रा से होते हुए पश्चिम बंगाल के मैदानों को जाती है. इसके बाद बांग्लादेश के रंगपुर क्षेत्र को पार करके कुल 400 किमी के जलमार्ग के बाद चिलमारी के नीचे ब्रह्मपुत्र नदी से मिलती है. इसके निचले प्रवाह में प्रायः उग्र धारा परिवर्तन होता है. ब्रह्मपुत्र नदी से संगम के पास पथरीले तलछट और रेतीले दलदल के कारण परिवहन दुष्कर है. गंगा और ब्रह्मपुत्र नदी के बीच के मैदानों को सिंचाई उपलब्ध कराने के लिए, नदी परियोजना कार्यक्रम के अंतर्गत बरिंद क्षेत्र की तिस्ता बांध (बैराज) परियोजना बनाई गई है.

तीरंदाज़ी

खेल, जिसमें या तो किसी निर्जीव लक्ष्य पर अथवा शिकार पर धनुष से बाण चलाए जाते हैं. प्रागैतिहासिक काल से ऑस्ट्रेलिया के अलावा पूरी दुनिया में धनुष-बाण युद्ध और शिकार का एक प्रमुख शस्त्र था. सैनिक उपयोग के अलावा प्राचीन मिस्री व यूनानी मनोरंजन के लिए भी धनुर्विद्या का प्रयोग करते थे, जिसका एक उदाहरण वह प्रतियोगिता है, जिसमें ओडीसीयस ने पेनीलोप का हाथ जीता था. हूणों, सेल्जुक़ तुर्कों, मंगोलों व अन्य ख़ानाबदोश घुड़सवार तीरंदाज़ों ने एशिया के अधिकांश क्षेत्रों पर पहली शताब्दी से लेकर लगभग 15 शताब्दियों तक अपना प्रभाव बनाए रखा. बड़े धनुषों वाले अंग्रेज़ धनुर्धरों ने '100 वर्ष के युद्ध' (1357–1453) में शानदार सैनिक विजय हासिल की, जबकि महाद्वीपीय यूरोप में, विशेषकर स्विट्ज़रलैंड, जर्मनी के कुछ भागों, फ़्रांस व निचले देशों में आड़ी कमान का व्यापक उपयोग हुआ. 16वीं शताब्दी में यूरोप में आग्नेयास्त्रों ने सैनिक हथियारों के रूप में तीर-धनुष का स्थान ले लिया. 1588 में स्पेनी जलसेना द्वारा इंग्लैंड पर हमले के प्रयास के समय तक इंग्लैंड की एक काउंटी की सेना में एक-तिहाई धनुर्धरों के मुक़ाबले दो-तिहाई बंदूकधारी सैनिक थे और शताब्दी के अंत तक धनुष का शस्त्र के रूप में प्रयोग लगभग बंद हो गया.

तीरंदाज़ी में प्रयुक्त धनुष
© 2000 एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (इंडिया) प्रा.लि.

धनुष का शिकार के अस्त्र के रूप में प्रयोग जारी रहा और तीरंदाज़ी इंग्लैंड में एक खेल के रूप में शाही लोगों व सामान्य प्रजा, दोनों में प्रचलित रही. सबसे प्रारंभिक अंग्रेज़ धनुर्धर समुदाय 16वीं व 17वीं शताब्दी के थे. प्रिंस ऑफ़ वेल्स, बाद में जॉर्ज IV, 1787 में टॉक्सोफ़िलाइट सोसाइटी के संरक्षक बने और 91 मीटर, 73 मीटर व 55 मीटर की दूरियों का निर्धारण किया; ये दूरियां ब्रिटिश पुरुषों की स्पर्द्धा के यॉर्क राउंड में (इन तीनों में से प्रत्येक दूरी पर छह दर्जन, चार दर्जन व दो दर्जन बाण चलाए जाते हैं) अब भी प्रयुक्त होती हैं. तीरंदाज़ी से संबंधित ये मनोरंजक गतिविधियां ही आधुनिक तीरंदाज़ी खेल के रूप में विकसित हुई हैं. 1844 में ग्रैंड नेशनल आर्चरी मीटिंग्स (ब्रिटिश चैंपियनशिप) की पहली स्पर्द्धा यॉर्क में आयोजित हुई और ग्रैंड नेशनल आर्चरी सोसाइटी, यूनाइटेड किंगडम इस खेल की नियामक संस्था बन गई. अंतर्राष्ट्रीय नियम का मानकीकरण पेरिस में फ़ेडरेशन इंतरनेसनेल द तिरलार्क (एफ़.आई.टी.ए.; फ़ेडरेशन ऑफ़ इंटरनेशनल टार्गेट आर्चरी) की स्थापना के साथ ही 1931 में हुआ.

भारत में तीरंदाज़ी

प्रागैतिहासिक काल से धनुष संसार भर में और विशेषकर भारत में युद्ध व शिकार का प्रमुख शस्त्र रहा है. परंपरागत रूप से क्षत्रिय राजकुमार धनुर्विद्या को एक ललित कला की तरह सीखते थे. *महाभारत* अर्जुन, कर्ण व एकलव्य की धनुर्विद्या संबंधी दक्षता का गुणगान करता है. तीर–धनुष का शिकार के शस्त्र के रूप में प्रयोग जारी रहा और एक खेल के रूप में तीरंदाज़ी राजाओं व प्रजा, दोनों ही के द्वारा प्रयुक्त होती रही. तीरंदाज़ी की पहली राष्ट्रीय स्पर्द्धा 1973 में लखनऊ में हुई. भारत ने विश्व स्तर पर पहली बार 1986 में सिओल एशियाई खेलों में भाग लिया. भारत ने 1988 के सिओल ओलिंपिक खेलों में भी भाग लिया. श्याम लाल ने भारत का पहला अंतर्राष्ट्रीय पदक, कांस्य पदक, 50 मीटर स्पर्द्धा में जनवरी 1988 में पांचवीं एशिया कप तीरंदाज़ी स्पर्द्धा में कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) में जीता. भारतीय दल ने भी कांस्य पदक जीता. अक्तूबर 1989 में अंततः भारत ने तत्कालीन ओलिंपिक विजेता दक्षिण कोरिया को हराते हुए बीजिंग में स्वर्ण पदक जीता. भारतीय दल में लिंबा राम, श्याम लाल स्कालज़ेंग दोरजी शामिल थे. किसी तीरंदाज़ द्वारा जीते गए सर्वाधिक सात व्यक्तिगत स्वर्ण पदक बिहार की पूर्णिमा महतो द्वारा जनवरी 1994 के पूना राष्ट्रीय खेलों में जीते गए.

अर्जुन पुरस्कार (भारत सरकार द्वारा उत्कृष्ट खिलाड़ियों को प्रोत्साहित करने के लिए स्थापित) जीतने वाले तीरंदाज़ों में कृष्ण दास (1981), श्याम लाल (1989), लिंबा राम (1991) व संजीव कुमार सिंह शामिल हैं.

तीर्थंकर

(संस्कृत शब्द, अर्थात तीर्थ–निर्माता), जिन भी कहलाते हैं, जैन धर्म में एक उद्धारक, जो पुनर्जन्म के जीवन चक्र से मुक्ति प्राप्त करने में सफल रहे तथा जिन्होंने अन्य लोगों के लिए अनुसरण का मार्ग प्रशस्त किया. महावीर (छठी शताब्दी ई.पू.) अंतिम तीर्थंकर थे. उनके पूर्ववर्ती पार्श्वनाथ उनसे लगभग 250 वर्ष पहले हुए थे; जैन
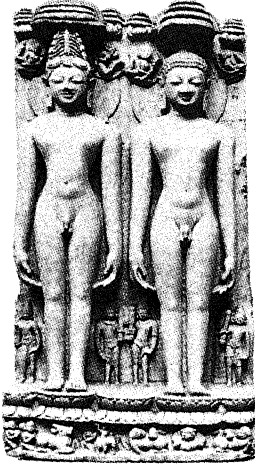
ऋषभनाथ और महावीर, पहले और अंतिम तीर्थंकर, ब्रिटिश म्यूज़ियम में उड़ीसा की 11वीं शताब्दी की पाषाण मूर्ति सौजन्य : ब्रिटिश म्यूज़ियम के न्यासी

धर्मशास्त्रों में वर्णित अन्य तीर्थंकरों को ऐतिहासिक चरित्र नहीं माना जा सकता. जैन मान्यता के अनुसार, प्रत्येक ब्रह्मांडीय वर्ष में 24 तीर्थंकर हुए है, जिनमें से प्रथम, यदि वह युग की पवित्रता के घटते स्तर पर हैं, विशालकाय होते हैं. बाद के तीर्थंकरों का क़द समय के साथ–साथ छोटा होता जाता है और युग बीतने के साथ–साथ समय के अंतराल में शीघ्रतर प्रकट होते हैं.

कला रूपों में तीर्थंकर को 'कायोत्सर्ग' (काया को नकारना) नामक मुद्रा में तनकर खड़ा हुआ दिखाया जाता है या फिर 'ध्यानमुद्रा' में सिंहासन पर बैठे हुए दिखाया जाता है. ये प्रतिमाएं अक्सर संगमरमर या किसी चमकीले पत्थर को तराशकर अथवा ढलवां धातु से बनाई जाती हैं, जिनकी ठंडी सतह जीवन से स्थिर अनासक्ति को रेखांकित करती हैं. चूंकि तीर्थंकर एक संपूर्ण अस्तित्व हैं, इसलिए प्रतीकात्मक रंगों तथा प्रतीकों के अलावा एक–दूसरे से विभेद के बहुत कम कारक हैं. 24 तीर्थंकरों के नाम उनके जन्म से पहले उनकी माताओं द्वारा देखे गए स्वप्न के आधार पर या विश्व में उनके पदार्पण के समय किसी अन्य परिस्थिति के आधार पर रखे गए. उनके नामों में 'नाथ' (स्वामी) शब्द सम्मानसूचक के रूप में जोड़ा गया.

उनके अवतरण के क्रम में इस युग के जिनों के नाम, प्रतीक और रंग इस प्रकार हैं : (1) ऋषभनाथ या आदिनाथ, इनका प्रतीक सांड और रंग सुनहरा है; (2) अजित, हाथी, सुनहरा; (3) संभव, घोड़ा, सुनहरा; (4) अभिनंदन, कपि, सुनहरा; (5) सुमति, बगुला, सुनहरा; (6) पद्मप्रभा, कमल, लाल; (7) सुपार्श्व, अर्थात शुभ पार्श्व वाला, स्वस्तिक चिह्न, सुनहरा; (8) चंद्रप्रभा, चंद्रमा, श्वेत; (9) सुविधि या पुष्पदंत, मकर, श्वेत; (10) शीतल, श्रीवत्स चिह्न, सुनहरा; (11) श्रेयांस, अर्थात शुभ, गैंडा, सुनहरा; (12) वसुपूज्य, अर्थात निजी संपत्ति से अर्पण द्वारा पूजित, भैंस, लाल; (13) विमल, सूअर, सुनहरा; (14) अनंत, बाज़ (दिगंबर मत के अनुसार भेड़ या भालू), सुनहरा; (15) धर्म, तड़ित, सुनहरा; (16) शांति, हिरन, सुनहरा; (17) कुंथु, अर्थात अनिश्चित, बकरी, सुनहरा; (18) अरा (अर्थात काल का एक भाग) नंद्यावर्त (सुसज्जित स्वस्तिक; दिगंबर मत के अनुसार मछली), सुनहरा; (19) मल्ली, अर्थात कुश्ती करने वाला, घड़ा, नीला; (20) सुवर्त, अर्थात शुभ प्रतिज्ञा वाला या मुनिसुवर्त, कछुआ, काला; (21) नमी या निमिन, अर्थात प्रणाम में झुका, नीला कमल, सुनहरा; (22) नेमि या अरिष्टनेमि, अर्थात जिनके रथ का चक्र निर्विघ्न है, शंख, काला; (23) पार्श्वनाथ, अर्थात सर्पदेव, सर्प, हरा; (24) वर्द्धमान, अर्थात फलता–फूलता, जिन्हें बाद में महावीर कहा गया, सिंह सुनहरा.

तीर्थंकरों की मूर्ति की ऐसे इष्टदेव के रूप में पूजा नहीं की जाती है, जो आशीर्वाद देते हैं या मानव घटनाक्रम में हस्तक्षेप करते हैं. इसके विपरीत जैन धर्म के अनुयायी महान आत्माओं के प्रतिनिधि के रूप में उनका इस आशा में सम्मान करते हैं कि वे भी संन्यास की भावना तथा उच्चतम शुचिता से भर जाएंगे तथा इस प्रकार अपने मोक्ष के मार्ग पर प्रवृत्त होंगे.

तीर्थ

(संस्कृत शब्द, अर्थात नदी घाट), हिंदू धर्म में एक पवित्र स्थल, अधिकांशतः नदी, पहाड़, स्नान स्थल या घाट या एक सामान्य तीर्थस्थल, जिसे अक्सर किसी देवता या संत से जुड़ा होने के कारण पवित्र माना जाता है. सभी तीर्थों में सात सबसे पवित्र हिंदू नगर हैं, वाराणसी (या काशी, उत्तर प्रदेश राज्य में), जो शिव की उपासना का केंद्र है; अवध (आधुनिक अयोध्या, उत्तर प्रदेश राज्य में), भगवान राम का जन्म स्थान; मथुरा (उत्तर प्रदेश राज्य में), कृष्ण का मूलस्थान; द्वारका (गुजरात राज्य में), जहां वयस्क कृष्ण ने राजा के रूप में शासन किया; कांचीपुरम (तमिलनाडु राज्य में), जहां देवी माता का मंदिर यंत्र या पवित्र मंडल के आकार में बना है; हरिद्वार (उत्तरांचल राज्य में), जिसके बारे में कहा जाता है गंगा नदी यहीं धरती पर उतरी; तथा उज्जैन (मध्य प्रदेश राज्य में), एक प्रख्यात शिवलिंग का स्थान.

कहा जाता है कि दो नदियों के संगम या सात पवित्र नदियों में एक के उद्गम या संगम स्थल पर स्नान करने से पाप धुल जाते हैं. ये नदियां हैं– गंगा, यमुना, लुप्त सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, सिंधु तथा कावेरी.

देवताओं के चार परम धाम, जो भारत के चार कोनों में स्थित हैं– उत्तर में बद्रीनाथ, पश्चिम में द्वारका, दक्षिण में रामेश्वरम और पूर्व में पुरी; ये हर साल बड़ी संख्या में तीर्थयात्रियों को आकर्षित करते हैं. शिव की पत्नी सती के शरीर के अंगों के पृथ्वी पर गिरने के स्थान पर 'पीठ' हैं, जो देवी शक्ति के उपासकों के लिए विशेष रूप से पवित्र हैं. सूर्यग्रहण, कुंभ मेला (सबसे बड़ा धार्मिक मेला) या पुरी में जगन्नाथ मंदिर में रथयात्रा जैसे विशेष अवसरों पर लोग बड़ी संख्या में एकत्र होते हैं.

हिंदू जन भक्तिवश मन्नत पूरी करने हेतु देवता को प्रसन्न करने या समृद्धि के लिए तीर्थयात्रा करते हैं. तीर्थ पहुंचने पर तीर्थयात्री सामान्यतः स्नान तथा मंदिर या पवित्र स्थान की प्रदक्षिणा करते हैं, चढ़ावा चढ़ाते हैं और श्राद्ध जैसे अनुष्ठान करते हैं, तीर्थयात्रियों की ज़रूरतों की देखभाल करने वाले पंडों के पास नाम दर्ज कराते हैं तथा भक्ति संगीत एवं संध्याकालीन धार्मिक प्रवचन सुनते हैं.

तुकाराम

(ज.–1608, देहु, पुणे के निकट, भारत; मृ.–1649), मराठी कवि, जिन्हें मराठी का महानतम कवि माना जाता है. उनके अभंग या अनवरत भजन, भारतीय कविताओं के सबसे प्रख्यात भजनों में से हैं.

एक दुकानदार के पुत्र तुकाराम बचपन में ही अनाथ हो गए थे. व्यापार तथा पारिवारिक जीवन में असफल रहने पर उन्होंने संसार का परित्याग कर दिया और घुमक्कड़ साधु बन गए. माना जाता है कि अंततः उन्होंने नदी में जलसमाधि ले ली. तुकाराम ने संभवतः 4,000 अभंगों की रचना की, जिनमें से अधिकांश रचनाएं पंढरपुर के भगवान विठोबा को समर्पित हैं. जे. नेल्सन फ़्रेज़र और के.बी. मराठे द्वारा अंग्रेज़ी

में अनूदित उनकी कविताओं का पहला संस्करण 1909–15 में और दूसरा 1981 में प्रकाशित हुआ. उनकी कुछ चुनी हुई कविताओं का दिलीप चित्रे ने *सेज़ तुका* शीर्षक से अंग्रेज़ी में अनुवाद किया है, जिसे 1991 में पेंग्विन बुक्स ने प्रकाशित किया.

तुमकुर

शहर, पूर्वी कर्नाटक (भूतपूर्व मैसूर) राज्य, दक्षिण–पश्चिमी भारत. तुमकुर दंडकारण्य पर्वत की तराई में स्थित है, जिसमें स्वास्थ्य लाभ के लिए 1,190 मीटर की ऊंचाई पर एक नयनाभिराम आरामगाह है. यह शहर सड़क और रेलमार्ग का केंद्र है, जिसमें लघु उद्योगों का समूह है. इस समूह में उपकरण बनाने के कारख़ाने, साबुन निर्माण और चावल व तेल की मिलें शामिल हैं. आसपास के क्षेत्रों की फ़सलों में ज्वार, चावल और तिलहन प्रमुख हैं. आजकल तुमकुर बंगलोर का एक सहायक उपनगर बन गया है और औद्योगिक रूप में काफ़ी विकसित हुआ है. जनसंख्या (2001) न.पा. क्षेत्र 2,48,592; ज़िला कुल 25,79,516.
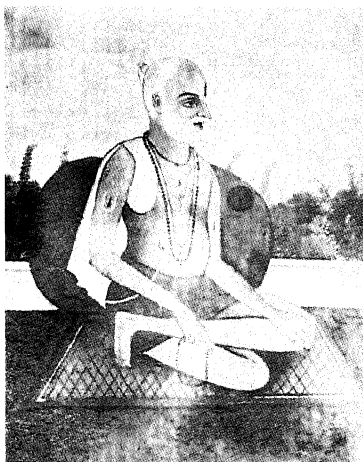
तुलसीदास

तुलसीदास, आरंभिक 17वीं शताब्दी के एक अज्ञात कलाकार द्वारा बनाया गया तैलचित्र
सौजन्य : आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्रा, प्रोफ़ेसर नवीन चैर, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मध्य प्रदेश

(ज.–1543? संभवतः राजापुर, भारत; मृ.–1623, वाराणसी {बनारस} भारत), भारत के धार्मिक कवि, जिनकी प्रमुख रचना *रामचरितमानस* मध्यकालीन हिंदी साहित्य की सबसे बड़ी उपलब्धि है और उत्तर भारत की हिंदू संस्कृति पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा है.

रामचरितमानस वैष्णव अवतार राम के प्रति भक्ति (प्रेमपूर्ण श्रद्धा) की सर्वोत्कृष्ट प्रस्तुति है. वैष्णव राम को मुक्ति का प्रमुख साधन मानते हैं. यद्यपि तुलसीदास सर्वप्रथम राम की भक्ति में डूबे थे, लेकिन वह स्मार्त वैष्णव (कट्टर नियमों के बजाय हिंदू धर्म की अधिक सर्वमान्य परंपराओं तथा रिवाजों का पालन करने वाले) बने रहे तथा उनकी कविताएं प्राचीन एकेश्वरवादी अद्वैत सिद्धांत तथा हिंदू धर्म के बहुईश्वरवादी पुराणों, दोनों को अभिव्यक्ति देती हैं. हालांकि ये सदा राम के प्रति उनकी भक्ति की अभिव्यक्ति से कमतर ही रहती हैं. यह उनके सैद्धांतिक प्रश्नों के प्रति उदार दृष्टिकोण का ही परिणाम था कि वह उत्तर भारत में राम की पूजा के प्रति व्यापक समर्थन बनाने में सफल रहे. उनके *रामचरितमानस* की सफलता उस क्षेत्र में प्रधान धार्मिक संप्रदाय के रूप में प्रचलित कृष्ण संप्रदाय के स्थान पर राम संप्रदाय को स्थापित करने का मुख्य कारक रही.

तुलसीदास के जीवन के बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है. उनका जन्म संभवतः राजापुर में हुआ था और उन्होंने अपना अधिकांश वयस्क जीवन वाराणसी में बिताया. *रामचरितमानस* 1574 से 1576 या 1577 के बीच लिखा गया. कई आरंभिक पांडुलिपियां अब भी उपलब्ध हैं, जिनमें से कुछ खंडों में हैं तथा इनमें एक को उनकी हस्तलिखित

पांडुलिपि कहा जाता है. सबसे पुरानी संपूर्ण पांडुलिपि 1647 की है. पूर्वी हिंदी बोली अवधी में लिखी इस कविता में असमान लंबाई के सात सर्ग हैं. हालांकि मूल कथा का आधारभूत स्रोत संस्कृत महाकाव्य *रामायण* है, तुलसीदास का प्रमुख तात्कालिक स्रोत *आध्यात्म रामायण* था, जो इस महाकाव्य का मध्य काल के उत्तरार्द्ध में रचित रूपांतरण है, जिसने अद्वैत पद्धति को राम संप्रदाय के साथ समंजित करने का प्रयास किया था. कई अन्य गौण स्रोतों के अतिरिक्त कृष्ण संप्रदाय के प्रमुख ग्रंथ *भागवतपुराण* का प्रभाव भी *रामचरितमानस* पर झलकता है.

तुलसीदास को 11 अन्य कृतियों का श्रेय भी दिया जाता है. इनमें कृष्ण के सम्मान में 61 गीतों की शृंखला *कृष्ण गीतावली*, हिंदू पवित्रस्थलों तथा देवताओं (मुख्यतः राम–सीता) को संबोधित 279 पदों की शृंखला *विनय पत्रिका* और रामकथा की घटनाओं के विवरण वाली *कवितावली* प्रमुख हैं.

डब्ल्यू.डी.पी. हिल की कृति *द होली लेक ऑफ़ द ऐक्ट्स ऑफ़ रामा* (1952) एक उपयोगी प्रस्तावना के साथ *रामचरितमानस* का गद्य अनुवाद है. फ़िलिप ल्यूटेनडॉर्फ़ की कृति *द लाईफ़ ऑफ़ अ टेक्स्ट* (1991) में उन मंचीय परंपराओं का विवरण तथा चित्रण है, जिन्होंने इस कृति को उत्तर भारत में विशिष्टता प्रदान की.

तुलू भाषा

द्रविड़ परिवार की भाषा, जो भारत में दक्षिण कर्नाटक (पहले मैसूर) राज्य और केरल राज्य में कन्नानूर में बोली जाती है. सामाजिक रूप से मान्यता प्राप्त इसकी दो बोलियां हैं, कन्नड़ से व्यापक रूप से प्रभावित ब्राह्मण बोली और अब्राह्मण बोली. तुलूभाषी लोग सरकारी भाषा के रूप में कन्नड़ का उपयोग करते हैं. तुलू भाषा में विकासशील आधुनिक साहित्य है, हालांकि इसका कोई ज्ञात प्राचीन साहित्य नहीं है.

तेंदुआ

(*लिओ पार्डस*), पैंथर (*पैंथेरा पार्डस*) भी कहते हैं, बड़ा विडालवंशी, जो *फैलिडी* कुल के अन्य सदस्यों सिंह, बाघ तथा जगुआर आदि से संबद्ध है. बड़े विडालों में तेंदुए की संख्या सिंह और बाघ की कुल संख्या के बराबर है और इसका विस्तार सबसे अधिक है. तेंदुआ सहारा के दक्षिण, पूर्वोत्तर अफ़्रीका सहित समूचे अफ़्रीका, मध्य एशिया में एशिया माइनर से लेकर भारत, चीन तथा मंचूरिया तक पाया जाता है. लेकिन इसका वर्तमान विस्तार पहले के मुक़ाबले काफ़ी सीमित हो गया है.

लिन्नेयस ने 1758 में अपनी पुस्तक *सिस्टेमा नेचुरे* के 10वें संस्करण में तेंदुए का *फ़ीलिस पार्डस* के रूप में सचित्र वर्णन किया था. दुनिया भर में तेंदुए की 14 प्रजातियां ज्ञात हैं. भारतीय उपमहाद्वीप में पाई जाने वाली चार प्रजातियां हैं– *पैंथेरा पार्डस फस्का* या भारतीय तेंदुआ, *पैंथेरा पार्डस पर्निग्रा* या सिक्किम और नेपाल का तेंदुआ, *पैंथेरा पार्डस इंडिका* या सिंध तेंदुआ और *पैंथेरा पार्डस मिलार्डी* या कश्मीरी तेंदुआ.

सिंह, बाघ, तेंदुआ, जगुआर, आउंस (या बर्फ़ीला तेंदुआ) और मेघवर्णी तेंदुआ आदि दहाड़ने वाले बड़े बिलावों को कभी–कभी *पैंथेरा* जाति में रखा जाता है. आउंस और मेघवर्णी तेंदुए को हालांकि तेंदुआ ही कहा जाता है, लेकिन ये *लिओ पार्डस* से अलग प्रजाति हैं.

तेंदुए की खाल बेहद ख़ूबसूरत होती है, जिस पर निजी विशेषता और आवासीय भिन्नता के कारण स्लेटी से तांबई भूरी सतह पर काले गोल धब्बे बने होते हैं. रंग और उस पर बने धब्बे चाहे कितने भी असाधारण हों, इसके प्राकृतिक आवास में इसे देख पाना मुश्किल है, क्योंकि इसकी खाल पर बनी आकृति इसके वातावरण में घुलमिल जाती है. इसकी उत्परिवर्ती प्रजातियां, जैसे चीन के हैंको का लाल तेंदुआ तथा मेलानिस्टिक या काला और एलबिनिस्टिक या सफ़ेद तेंदुआ भी इन्हीं क्षेत्रों में पाए जाते हैं. काले तेंदुए अक्सर पाए जाते हैं, जबकि रंगहीन या अर्द्ध रंगहीन तेंदुए अत्यंत दुर्लभ हैं.

तेंदुए की देखने और सुनने की शक्ति अत्यंत तीक्ष्ण होती है; यह किसी भी छोटी से छोटी हलचल को तुरंत पहचान लेता है. कोई भी अस्वाभाविक आवाज़ इसे तुरंत सतर्क कर देती है और यह या तो आवाज़ के स्रोत की ओर सीधे घूरता है या उस पर तुरंत धावा बोल देता है. तेंदुआ भी अन्य जानवरों की तरह स्थिर वस्तुओं को पहचानने में असमर्थ प्रतीत होता है, लेकिन किसी भी गतिविधि को पहचानने में इसकी क्षमता अद्वितीय है.

तेंदुए के आकार व चिह्नों में बहुत भिन्नता होती है. नर तेंदुए की औसत लंबाई लगभग 2.13 मीटर होती है. इसका वज़न लगभग 45 किग्रा होता है, जबकि कुछ का वज़न 51 से 55 किग्रा के बीच भी पाया गया है.

तेंदुआ झाड़ियों और जंगलों में विचरणशील, आदतन निशाचर और अकेला रहने वाला जानवर है, हालांकि कभी–कभी यह धूप भी सेंकता है. यह पेड़ पर बड़ी चपलता से चढ़ जाता है और अक्सर अपने शिकार के अवशेषों को पेड़ की शाखाओं में संचित
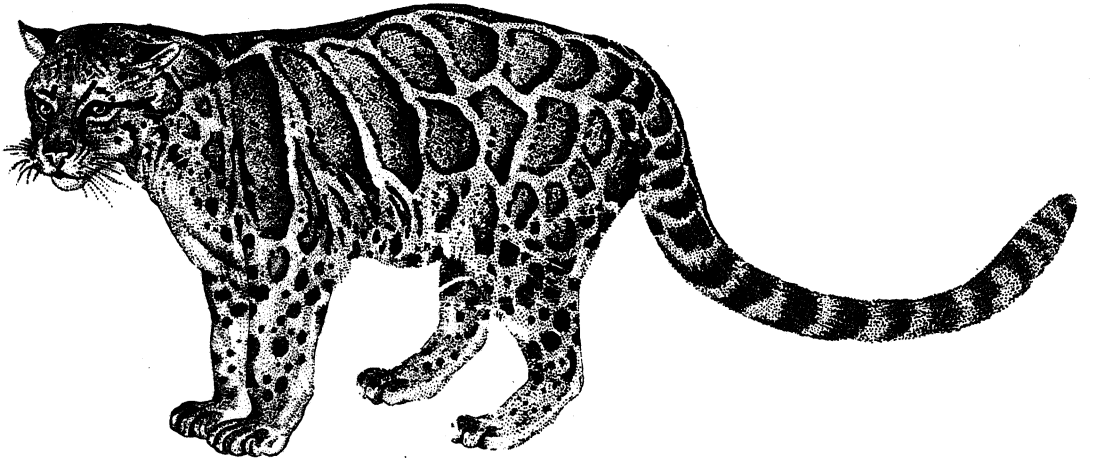
तेंदुआ
सौजन्य : सेंटर फ़ॉर एन्वायर्नमेंट एजुकेशन, अहमदाबाद

करता रहता है. यह जानवर को, जिसे मार सकता है, खा लेता है, चाहे वह चूहे की जाति का छोटा जंतु हो अथवा जलीय सांबर. लेकिन सामान्यतः यह छोटे व मध्यम आकार के बारहसिंगा और हिरन का शिकार करता है; ऐसा लगता है कि कुत्ते खाना इसे विशेष पसंद है, जबकि अफ़्रीका में यह बबून खाना पसंद करता है. कभी–कभी यह पालतू पशुओं को भी उठा ले जाता है और इंसानों पर भी हमला कर देता है.

बड़े मांसाहारी पशुओं में तेंदुआ सर्वाधिक मायावी होता है, विशेष तौर पर इंसान की मौजूदगी में इसके शिकार का तरीक़ा धैर्य का एक सबक़ है. अपने शिकार तक बेआवाज़ पहुंचना, अपने को छिपाने की अद्भुत क्षमता और बिजली की चपलता के कारण तेंदुआ किसी दुश्मन पर भारी पड़ता है. पेड़ों पर फ़ौरन चढ़ने के कारण ही तेंदुआ बाघ से एक क़दम आगे है. इससे तेंदुआ अपने शिकार को, विशेषकर बंदरों को आसानी से ढूंढ़कर मार सकता है.

जंगल में तेंदुए के प्रजनन का कोई प्रमुख मौसम नहीं होता, अपितु ये वर्ष भर प्रजनन करते हैं. मादा लगभग तीन महीने की गर्भावधि के बाद दो से चार, सामान्यतः तीन शावकों को जन्म देती है. तेंदुओं की आवाज़ें अलग–अलग होती हैं और उनमें तीखी खांसी, भारी गुर्राहट व गहरी घुरघुराहट की कड़ी बनती है. तेंदुए को पानी पसंद है और वह अच्छा तैराक होता है. अपने आकार की तुलना में तेंदुआ बेहद शक्तिशाली जंतु है और उसकी यह क्षमता चीतल जैसे बड़े जानवर को मारकर बाद में खाने के लिए पेड़ के ऊपर ले जाने से प्रदर्शित होती है. इसकी जंगल की बीमारियों के बारे में ख़ास जानकारी नहीं है, लेकिन अन्य मांसाहारियों की तरह यह भी आसानी से रेबीज़ का शिकार हो जाता है.

अन्य मांसाहारी पशुओं की तुलना में इसमें अपने प्राकृतिक पर्यावास से बाहर भटक आने की प्रवृत्ति अधिक है. शायद अत्यंत प्रतिकूल परिस्थितियों में भी ज़िंदा रहने की क्षमता और अधिकार–क्षेत्र के संघर्ष के कारण ऐसा होता हो. इस शताब्दी के प्रारंभ में जब जंगल पर्याप्त मात्रा में थे, तब भी तेंदुए अधिकतर अपने प्राकृतिक पर्यावास से बाहर निकलते पाए गए थे और उनकी यह प्रवृत्ति, उनके इन पर्यावासों के घटने के कारण और भी बढ़ सकती है. ख़ासतौर पर मानव पर्यावास के समीप रहने वाला तेंदुआ घातक समस्या बन सकता है. सौभाग्य से तेंदुआ आसानी से उठाए जा सकने वाले पालतू पशुओं से ही संतुष्ट हो जाता है.

तेंदुआ झाड़ीदार जंगलों, पहाड़ी, कुछ खुले क्षेत्रों और भारत के लगभग सभी क्षेत्रों में गांवों के निकट अवशिष्ट वनों में भी, जहां बाघ व जंगली कुत्ते नहीं रह सकते, जीवित रहने की क्षमता रखता है. अब इन क्षेत्रों में तेंदुए के साथ एकमात्र शिकारी पशु लकड़बग्घा है, जिससे तेंदुआ निपट लेता है. फिर भी, वन्य प्राणियों की कमी वाले आवास में रहने से तेंदुए की मानव से टकराहट होकर रहती है, क्योंकि तेंदुआ पालतू पशुओं को अपना भोजन बनाता है.

सचिन तेंदुलकर
सौजन्य : *द हिंदू*

तेंदुलकर, सचिन

पूरा नाम सचिन रमेश तेंदुलकर, (ज.–24 अप्रै. 1973, बंबई {वर्तमान मुंबई}), 20वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में भारत के महानतम बल्लेबाज़ों में से एक. 27 वर्ष की आयु तक 59 शतक (टेस्ट मैचों में 28, और एक दिवसीय क्रिकेट में 31) बना चुके हैं. 46 शतक बनाकर उन्होंने सुनील गावस्कर, डेस्मंड हेन्स और विवियन रिचड्‌र्स जैसे क्रिकेट के पूर्व महारथियों के स्थापित कीर्तिमान तोड़ दिए. वह एक दिवसीय क्रिकेट में 10,000 रन बनाने वाले पहले खिलाड़ी हैं. वह दो बार भारतीय टीम के कप्तान बने.

रमाकांत अचरेकर के निर्देशन में अल्पायु में ही क्रिकेट खेलना शुरू करके तेंदुलकर ने विनोद कांबली के साथ खेलते हुए 664 रन की भागीदारी बनाकर स्कूल क्रिकेट में विश्व कीर्तिमान स्थापित किया. टेस्ट और एकदिवसीय क्रिकेट खेलने वाले सबसे कम उम्र के खिलाड़ी तेंदुलकर ने 16 वर्ष की उम्र में 1989 में पाकिस्तान के ख़िलाफ़ टेस्ट मैच में अपने क्रिकेट जीवन की शुरुआत की. अद्‌भुत बल्लेबाज़ी करते हुए 20वीं सदी के अंत तक लगभग 11 वर्षों के पेशेवर खेल जीवन में उन्होंने 54.84 रन का ख़ासा ऊंचा टेस्ट औसत बनाए रखा, जो ग्रेग चैपल, विवियन रिचड्‌र्स, जावेद मियांदाद, ब्रायन लारा और सुनील गावस्कर जैसे धुरंधरों के रन औसत से कहीं अधिक है. पांच फुट चार इंच लंबे तेंदुलकर अपने क़द की कमी को अपने पैरों के फुर्तीलेपन से पूरा करते हैं. क्रिकेट इतिहास के महानतम खिलाड़ियों में से एक सर डोनॉल्ड ब्रेडमैन ने तेंदुलकर की यह कहते हुए प्रशंसा की कि पिछले 50 वर्षों में अंतर्राष्ट्रीय क्रिकेट खेलने वाले बेशुमार बल्लेबाज़ों में सिर्फ़ तेंदुलकर उनकी शैली के निकट पहुंच सके हैं.

गुरु तेग़ बहादुर

तेग़ बहादुर, गुरु

(ज.–1621?, अमृतसर, पंजाब, भारत; मृ.–11 नवं. 1675, दिल्ली, भारत) सिक्खों के नौवें गुरु और दूसरे सिक्ख शहीद, जिन्होंने किसी अन्य धर्म के लिए प्राण न्योछावर किए.

जब आठवें गुरु, बाल गुरु हरि किशन ने अपने अनुयायियों को बताया कि उनका उत्तराधिकारी बकाला गांव का वासी होगा, एक दल ने वहां जाकर 22 दावेदार पाए. एक समृद्ध रेशम व्यापारी भाई माखन शाह द्वारा तेग़ बहादुर को अन्य दावेदारों की तरह किसी तरह के लालच और अपनी प्रशंसा गाथा का प्रदर्शन न किए जाने के कारण नौंवा गुरु चुना गया.

कश्मीर से भागकर आए कुछ हिंदुओं को शरण देने के कारण मुग़ल शासकों के साथ तेग़ बहादुर के संबंध ख़राब हो गए. मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब ने इन व्यक्तियों को इस्लाम क़बूल करने का आदेश दिया

था. हिंदुओं ने बादशाह को संदेश भेजा कि अगर गुरु इस्लाम धर्म स्वीकार कर लें, तो वे भी कर लेंगे. तेग़ बहादुर को क़ैद करके दिल्ली में एक क़िले में बंद कर दिया गया. दरबार में उनके शत्रुओं ने उन्हें और नुक़सान पहुंचाने की नीयत से उन पर आरोप लगाया कि वे सांसारिक कामनाओं के वशीभूत हैं, क्योंकि वे क़ैदख़ाने की पश्चिम दिशा में स्थित बादशाह के हरम की ओर लगातार देखते रहते हैं. जब उनसे इस आरोप के बारे में जवाब तलब किया गया, तो कहा जाता है कि गुरु ने जवाब दिया : 'बादशाह, मैं तुम्हारी रानियों के कमरों की ओर नहीं देख रहा था. मैं उन यूरोपीय लोगों की दिशा में देख रहा था, जो पश्चिमी समुद्र को पार करके तुम्हारे साम्राज्य को नष्ट करने के लिए आ रहे हैं.' औरंगज़ेब, जिनकी सहनशक्ति समाप्त हो रही थी, ने गुरु को आदेश दिया कि वह या तो इस्लाम को स्वीकार करें या फिर कोई चमत्कार दिखाएं. तेग़ बहादुर ने इन दोनों से इनकार कर दिया और उनके द्वारा *जपुजी* (सबसे महत्त्वपूर्ण सिक्ख धर्मग्रंथ) का पाठ करने के बाद जल्लाद ने उनका सर धड़ से अलग कर दिया. एक वफ़ादार सिक्ख ने उनका सिर वापस आनंदपुर पहुंचाया, जहां उनका अंतिम संस्कार हुआ. उस स्थान पर एक सिक्ख धर्मस्थल, गुरुद्वारा रकाबगंज, इस शहादत की याद में बना है.

तेज़पुर

तिज़पुर भी कहलाता है, नगर, उत्तर–मध्य असम राज्य, पूर्वोत्तर भारत. यह ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर स्थित है. तेज़पुर आसपास के कृषि क्षेत्र में उगाए जाने वाले चाय, चावल और अन्य फ़सलों का व्यापार केंद्र है. चाय प्रसंस्करण यहां का एक सफल उद्योग है. नगर में रेलमार्ग एवं निकट स्थित सालानी हवाई अड्डे की सुविधा है. द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान चीन–बर्मा (म्यांमार)–भारत युद्ध परिदृश्य में कुंमिंग, चीन के लिए मित्र राष्ट्रों को वायुयान से सामान और फ़ौज उठाने के लिए यह पश्चिमी हवाई केंद्र था. यहां पर तेज़पुर विश्वविद्यालय है. शैक्षणिक संस्थानों में दर्रांग कॉलेज, तेज़पुर लॉ कॉलेज और सेंटर फ़ॉर इलेक्ट्रॉनिक्स डिज़ाइन ऐंड टेक्नोलॉजी ऑफ़ इंडिया शामिल हैं. नौवीं सदी में पाल साम्राज्य के एक हिस्से की राजधानी रहे तेज़पुर में उस काल की कलाकृतियां, स्मारक एवं मंदिरों के भग्नावशेष पाए गए हैं. जनसंख्या (2001) नगर 58,240.

तेनज़िंग नोरगे

नोरगे को नोरके भी कहा जाता है, मूल नाम नामग्याल वांगडी (नेपाली : धर्म का समृद्ध भाग्यवान अनुयायी), (ज.–15 मई 1914, सोलो खुंबू, नेपाल; मृ.–9 मई 1986, दार्जिलिंग, भारत), एक शेरपा पर्वतारोही, जो न्यूज़ीलैंड के सर एडमंड हिलेरी के साथ दुनिया के सबसे ऊंचे पर्वत शिखर माउंट एवरेस्ट (8,848 मीटर) पर चढ़ने वाले पहले ज्ञात व्यक्ति थे.

तेनज़िंग नोरगे
फ़ोटो : यू.पी.आई.–ई.बी. इंकॉ.

बचपन में ही तेनज़िंग एवरेस्ट के दक्षिणी क्षेत्र में स्थित अपने गांव, जहां शेरपाओं (पर्वतारोहण में निपुण नेपाली लोग, आमतौर पर कुली) का निवास

था, से भागकर भारत में पश्चिम बंगाल में दार्जिलिंग में बस गए. 1935 में एक कुली के रूप में वह सर एरिक शिप्टन के प्रारंभिक एवरेस्ट सर्वेक्षण अभियान में शामिल हुए. अगले कुछ वर्षों में उन्होंने अन्य किसी भी पर्वतारोही के मुक़ाबले एवरेस्ट के सर्वाधिक अभियानों में हिस्सा लिया. द्वितीय विश्व युद्ध के बाद वह कुलियों के संयोजक या सरदार बन गए और इस हैसियत से वह कई अभियानों पर साथ गए. 1952 में स्विस पर्वतारोहियों ने दक्षिणी मार्ग से एवरेस्ट पर चढ़ने के दो प्रयास किए और दोनों अभियानों में तेनज़िंग सरदार के रूप में उनके साथ थे. 1953 में सरदार के रूप में वह ब्रिटिश एवरेस्ट अभियान पर गए और हिलेरी के साथ उन्होंने दूसरा शिखर युगल बनाया. दक्षिण–पूर्वी पर्वत क्षेत्र में 8,504 मीटर की ऊंचाई पर स्थित अपने तंबू से निकलकर वह 29 मई को दिन के 11:30 बजे शिखर पर पहुंचे. उन्होंने वहां 'फ़ोटो खींचते और मिंट केक खाते हुए' 15 मिनट बिताए और एक श्रद्धालु बौद्ध की तरह चढ़ावे के रूप में प्रसाद अर्पित किया. इस उपलब्धि के बाद उन्हें कई नेपालियों और भारतीयों द्वारा अनुश्रुत नायक माना जाता है. उन्हें मिले कई सम्मानों में ब्रिटेन का जॉर्ज पदक और नेपाल तारा शामिल है. जेम्स रेमसे उल्मान के सहयोग से लिखी पुस्तक *मैन ऑफ़ एवरेस्ट* (अमेरिकी शीर्षक *टाईगर ऑफ़ द स्नोज़,* 1955) उनकी आत्मकथा है. मैल्कॉम बार्नेस को बताए गए विवरणों पर आधारित पुस्तक *आफ़्टर एवरेस्ट* (1978) एवरेस्ट की चढ़ाई के बाद की उनकी यात्राओं तथा 1954 में भारत सरकार द्वारा दार्जिलिंग में स्थापित फ़ील्ड ट्रेनिंग हिमालयन माउंटेनियरिंग इंस्टिट्यूट में निदेशक के रूप में उनके कार्यकाल का वर्णन है.

तेनौपल

ज़िला, मणिपुर राज्य, पूर्वोत्तर भारत. भूतपूर्व मध्य ज़िले का यह हिस्सा इंफाल घाटी के दक्षिण में पूर्वी हिमालय का पहाड़ी क्षेत्र है. इसका क्षेत्रफल 3,375 वर्ग किमी है और ऊंचाई 760 मीटर से 3,048 मीटर तक है. पखांगों ने यहां 33 ई. में एक वंश की स्थापना की, जो 1947 में भारतीय संघ में विलय होने तक मौजूद रहा. स्थानीय साहित्य की एक पांडुलिपि 1074 में राजा इरेंग्बा के शासनकाल में लिखी गई. इस क्षेत्र पर 1631 में चीन ने आक्रमण किया था और 1942 में द्वितीय विश्व युद्ध के समय जापानियों ने बमबारी की थी. मणिपुर और बरक नदियां उत्तर से दक्षिण की ओर बहती हैं. इनमें बरक संकरी घाटियों से होकर गुज़रती है. इस ज़िले में कई झीलें हैं, जो महत्त्वपूर्ण मत्स्यपालन की सुविधा उपलब्ध कराती हैं. झील की वनस्पतियों में कमल और कुमुदिनी शामिल हैं और आर्किड मैदानों में पाए जाते हैं. हिमालयी हिरन, खारसा (जंगली सूअर), शेर, तेंदुआ और ग्रेलैग (कलहंस, गीज़) का जंगली क्षेत्रों में पर्यावास है. अर्थव्यवस्था का आधार कृषि है. फ़सलों (छोटे व बिखरे हुए खेतों में उगाए जाते हैं) में चावल, गेहूं, तिल, आलू और दलहन शामिल हैं. आम और नींबू भी उगाया जाता है. उद्योगों में हथकरघा, बुनाई और कढ़ाई (मणिपुरी साड़ी अपनी मज़बूती और शानदार कढ़ाई के लिए मशहूर है), लुहारगिरी, कृषि उपकरण का निर्माण और सुनारगिरी शामिल हैं. यहां पर मिट्टी के बर्तन, बेंत के उत्पाद, साबुन और कागज़ का

भी निर्माण होता है. सेंधा नमक, तांबा, चूना–पत्थर और लौह अयस्क का कम मात्रा में खनन होता है. ज़िले की आबादी में मुख्यतः मंगोलियाई मूल की विभिन्न जनजातियां हैं, जो मणिपुरी बोलती हैं. एक राष्ट्रीय राजमार्ग यहां के ज़िला मुख्यालय चांदेल को राज्य की राजधानी इंफ़ाल से जोड़ता है. बरक नदी में छोटी नावों से परिवहन होता है. जनसंख्या (1991) 21,215.

तेन्कलै

हिंदू श्रीवैष्णव के दो उपसंप्रदायों में एक, दूसरा वडकलै है. हालांकि दोनों संप्रदाय संस्कृत एवं तमिल ग्रंथों का प्रयोग करते हैं तथा विष्णु की पूजा करते हैं, लेकिन तेन्कलै तमिल भाषा और दक्षिण भारतीय संतों, आलवारों के भजनों का संकलन *नालयिरा प्रबंधम* पर ज़्यादा निर्भर रहते हैं. 14वीं सदी में तेन्कलै वडकलै से अलग हो गए.

दोनों संप्रदायों के बीच मुख्य सैद्धांतिक मतभेद विष्णु की कृपा दृष्टि के प्रश्न पर केंद्रित है. तेन्कलै का मानना है कि अंतिम मुक्ति की प्रक्रिया विष्णु से शुरू होती है और भक्तों को विष्णु की इच्छा के सामने आत्मसमर्पण से अधिक कुछ और करने की आवश्यकता नहीं है. यह बिल्ली पर उसके बच्चों की असहायता एवं पूर्ण निर्भरता का उदाहरण देता है; इस तरह इसके सिद्धांत को मार्जरा–न्याय (बिल्ली का साम्यानुमान) के रूप में जाना जाता है. विष्णु की पत्नी श्री (लक्ष्मी) के बारे में भी दोनों पंथों के दृष्टिकोणों में अंतर है. तेन्कलै मानते हैं कि श्री दिव्य होने के बावजूद ससीम हैं और भक्तों व विष्णु के बीच केवल मध्यस्थ की भूमिका निभा सकती हैं.

पिल्लै लोकाचार्य को सामान्यतः तेन्कलै संप्रदाय का संस्थापक तथा मानवला या वारावार मुनि (1370–1443) को इसका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नेता माना जाता है. इस संप्रदाय का मुख्य केंद्र तिरुनेल्वेली के पास नांगनूर (तमिलनाडु राज्य) में है तथा तेन्कलै को श्रीवैष्णव का दक्षिणी मत कहा जाता है.

तेलंगाना

आंध्र भी कहलाता है, प्रायद्वीपीय भारत का ऐतिहासिक और भाषाई क्षेत्र, जिसमें आंध्र प्रदेश राज्य के उत्तर–मध्य और पूर्वोत्तर भाग शामिल हैं. यहां की प्रमुख बोली द्रविड़ तेलुगु है. तीसरी शताब्दी ई.पू. से लेकर तीसरी शताब्दी तक इस क्षेत्र पर आंध्र के बौद्ध राजाओं (सातवाहन) का शासन था. इस क्षेत्र के प्रमुख शहर हैं– हैदराबाद, वारंगल, विजयवाड़ा, राजमंड्री और विशाखापट्टनम.

तेलुगु भाषा

द्रविड़ परिवार की भाषा और भारत के आंध्र प्रदेश राज्य की सरकारी भाषा. तेलुगु की सात भिन्न क्षेत्रीय बोलियां तथा तीन सामाजिक बोलियां : ब्राह्मण, अब्राह्मण और हरिजन हैं. औपचारिक या साहित्यिक

నాకు ఉగాదులు లేవు- నాకు ఉషస్సులు
లేవునాకొరకు చెమ్మగిల్లు నయనమ్ము లేద
దిరాను దిరాను దినుంచి భువికి
---దేవులపల్లి కృష్ణశాస్త్రి

तेलुगु लिपि का एक नमूना

भाषा बोलियों से भिन्न है. इस स्थिति को जनद्विभाषिता कहा जाता है. अन्य द्रविड़ भाषाओं की भांति तेलुगु में भी कई मूर्धन्य व्यंजन हैं (उदाहरण के लिए, त, द और न; तालू पर मुड़ी हुई जिह्वा के शीर्ष के स्पर्श से उच्चरित) और इसमें प्रत्ययों के माध्यम से कारक, वचन, पुरुष तथा काल जैसे व्याकरण के वर्गीकरणों को दिखाया जाता है.

तेलुगु और कन्नड़ भाषाओं की लिपियों के विकास में सातवीं तथा 13वीं शताब्दी के आसपास विकास का एक सामान्य चरण था और तेलुगु भाषा में लिखित सामग्री 633 ई. से उपलब्ध है. इसका साहित्य हिंदू महाकाव्य *महाभारत* का तेलुगु लेखक नन्नय द्वारा रूपांतरण से शुरू हुआ, जो 10वीं से 11वीं शताब्दी का है.

तेलुगु साहित्य

आंध्र प्रदेश राज्य में बोली जाने वाली द्रविड़ भाषा तेलुगु का रचना संसार. 10वीं या 11वीं शताब्दी से रचित इस साहित्य में मुख्यतः काव्य और धर्मनिरपेक्ष व धार्मिक महाकाव्य हैं, जिनमें *शतक* (100 छंद) एक अत्यंत लोकप्रिय स्वरूप है. तेलुगु साहित्य का विकास आरंभिक 16वीं शताब्दी में विजयनगर साम्राज्य में हुआ, जिसमें तेलुगु दरबारी भाषा थी. 19वीं शताब्दी से इस भाषा में उपन्यास जैसे पश्चिमी साहित्यिक स्वरूपों में भी प्रयोग किए गए.

तैमूर

उपनाम तैमूरलंग (तुर्की, अर्थात तैमूर लंगड़ा), (ज.–1336, केश, समरक़ंद के पास, ट्रांसऑक्सानिया {वर्तमान उज़बेकिस्तान में}; मृ.–19 फ़र. 1405, ओटरार, चिमकेंट के पास {वर्तमान शिमकेंट, कज़ाकिस्तान}), इस्लाम धर्मावलंबी तुर्क विजेता, जिन्हें मुख्यतः भारत और रूस से भूमध्य सागर तक के विजय अभियानों की बर्बरता तथा उनके वंश की सांस्कृतिक उपलब्धियों के लिए जाना जाता है.

तैमूर तुर्की में बसे बरला क़बीले के थे. यह एक मंगोल उपसमूह था, जो ट्रांसऑक्सानिया (मोटे तौर पर वर्तमान उज़बेकिस्तान) में चंगेज़ ख़ां के पुत्र चग़तई के अभियानों में हिस्सा लेने के बाद वहीं बस गया था. इस प्रकार, तैमूर का लालन–पालन चग़तई सरदारी में हुआ. ट्रांसऑक्सानिया के तत्कालीन शासक और अमीर कज़गान की 1357 में मृत्यु के बाद तैमूर ने निकटस्थ कशगर क्षेत्र के ख़ां तुग़लक़ तैमूर के प्रति आस्था की घोषणा कर दी. तुग़लक़ तैमूर ने 1361 में ट्रांसऑक्सानिया के प्रमुख शहर समरकंद को रौंद डाला था. उन्होंने अपने पुत्र इलियास खोजा को ट्रांसऑक्सानिया का सूबेदार और तैमूर को उनका वज़ीर नियुक्त किया. लेकिन कुछ ही समय के बाद तैमूर भाग निकले और अमीर कज़गान के पोते तथा अपने बहनोई अमीर हुसैन से जा मिले. उन्होंने इलियास खोजा को हरा दिया (1366) और ट्रांसऑक्सानिया पर विजय के लिए निकल पड़े तथा 1366 तक इस इलाक़े पर उनकी पकड़ मज़बूत हो गई. 1370 में तैमूर हुसैन के ख़िलाफ़ हो गए और उन्हें बल्ख़ में बंदी बना लिया. उन्हें क़त्ल

करने के बाद तैमूर ने समरक़ंद में स्वयं को चग़तई वंश के ख़ानों का प्रधान और मंगोल साम्राज्य का पुनरुद्धारक घोषित कर दिया.

अगले 10 वर्षों तक तैमूर तैमूर (पूर्वी तुर्किस्तान) और ख्वारिज़्म के ख़ानों से लड़ते रहे और अंततः 1380 में उन्होंने कशगर पर क़ब्ज़ा कर लिया. उन्होंने अपने दरबार में शरणागत क्रीमिया के मंगोल ख़ां तोख़्तामिश को रूस के ख़िलाफ़ सैनिक सहायता दी (रूसी शासक मामाई के गोल्डन होर्ड के ख़ानों के ख़िलाफ़ उठ खड़े हुए थे). तैमूर की सेना ने मॉस्को पर क़ब्ज़ा कर लिया तथा पोल्तावा के पास लिथुनियाइयों को पराजित किया.

तैमूर ने हेरात पर क़ब्ज़ा करने के साथ 1383 में फ़ारस पर विजय अभियान शुरू किया. फ़ारस की राजनीतिक और आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय थी. बाद के मंगोल शासकों, जिन्हें इल–खानिद वंश के नाम से जाना जाता है, के काल में सुधार के कुछ लक्षण दिखाई दिए, लेकिन इस वंश के अंतिम शासक अबू सईद की मौत (1335) के बाद इसे झटका लगा. वहां की सत्ता में पैदा हुई रिक्तता को संघर्षरत वंशों ने भरा, जो आंतरिक कलह से ग्रस्त और कोई सामूहिक या प्रभावशाली प्रतिरोध में अक्षम थे. तैमूर ने 1383–85 में ख़ुरासान और समूचे पूर्वी फ़ारस पर क़ब्ज़ा कर लिया; 1386 और 1394 के बीच फ़ारस, इराक़, अज़रबेजान, आर्मेनिया, मेसोपोटामिया और जॉर्जिया ने भी समर्पण कर दिया. बीच–बीच में वे गोल्डन होर्ड के तत्कालीन ख़ां तोख़्तामिश से भी लड़ते रहे. तोख़्तामिश ने 1385 में अज़रबेजान और 1388 में ट्रांसऑक्सानिया पर धावा बोलकर तैमूर के सिपहसालारों को मात दी थी. 1391 में तैमूर ने रूस के स्तेपी (घास के मैदान) में तोख़्तामिश का पीछा किया और उन्हें मात देकर सत्ताच्युत कर दिया; लेकिन तोख़्तामिश ने नई सेना संगठित की और 1395 में कॉकेशस पर चढ़ाई की. कूर नदी के पास हुई लड़ाई में तोख़्तामिश ने अंततः हार मान ली और तैमूर ने एक साल तक मॉस्को पर अधिकार बनाए रखा. जब तैमूर इन अभियानों में व्यस्त थे, तब समूचे फ़ारस में विद्रोह उठ खड़े हुए, जिन्हें पूरी बेरहमी से दबा दिया गया; शहर नेस्तनाबूद कर दिए गए, जनसंहार किया गया और उनकी खोपड़ियों से मीनारें बनाई गईं.

तैमूर ने 1398 में इस बहाने भारत में घुसपैठ की कि दिल्ली के मुस्लिम सुल्तान अपनी हिंदू प्रजा के प्रति बहुत ज़्यादा सहिष्णुता बरत रहे हैं. उन्होंने रास्ते भर नरसंहार करते हुए 24 सितंबर को सिंधु नदी को पार किया और दिल्ली की ओर चल पड़े. दिल्ली के सुल्तान महमूद तुग़लक़ की सेना का 17 दिसंबर को पानीपत के मैदान में सफ़ाया हो गया और दिल्ली खंडहरों का ढेर बनकर रह गई, जिसे फिर से खड़ा होने में एक सदी से भी ज़्यादा समय लगा. अप्रैल 1399 तक तैमूर अपनी राजधानी वापस लौट गए थे. उनके साथ लूट का ढेर सारा माल था; यहां अधिकार किए गए 90 हाथियों को समरक़ंद में मस्जिद निर्माण के लिए खदानों से पत्थर ढोने के काम में लगाया गया. 1399 के अंत से पहले तैमूर अपने अंतिम महान अभियान के लिए निकल पड़े. वह मिस्र के सुल्तान मामलूक और ऑटोमन सुल्तान बयाज़िद I को सबक़ सिखाना चाहते थे,

क्योंकि उन्होंने तैमूर के कुछ इलाक़े पर क़ब्ज़ा कर लिया था. अज़रबेजान पर फिर से क़ब्ज़ा करने के बाद वह सीरिया की ओर बढ़े; अलेप्पो पर हमला करके उसे बर्बाद कर दिया गया, ममलूक की सेना हार गई और दमिश्क पर क़ब्ज़ा (1401) कर लिया गया; वहां के दस्तकारों को समरक़ंद ले जाए जाने से उसकी समृद्धि को बहुत नुक़सान पहुंचा. 1401 में बग़दाद पर भी धावा बोला गया, 20 हज़ार नागरिक मार डाले गए और सभी स्मारक ध्वस्त कर दिए गए. जॉर्जिया में शीतकालीन विश्राम के बाद तैमूर ने अनातोलिया पर हमला कर दिया. तैमूर ने बयाज़िद की सेना को अंकारा के पास (20 जुला. 1402) तहस–नहस कर दिया और रोड्स के सामंतों से स्मरन क्षेत्र छीन लिया. मिस्र के सुल्तान और जॉन VII (उस समय मैनुअल II पेलिओलॅगस के साथ बैजंतिया साम्राज्य के सहसम्राट) समर्पण के प्रस्तावों के मिलने के बाद तैमूर समरक़ंद लौट गए (1404) और चीन अभियान की तैयारी में लग गए. वह दिसंबर के अंत में निकले और चिमकेंट के पश्चिम में सिर दरिया पर ओटरार में बीमार पड़े तथा फ़रवरी 1405 को उनकी मृत्यु हो गई. उनके शरीर को परिरक्षित करके आबनूसी ताबूत में रखकर समरक़ंद भेजा गया, जहां उन्हें गुर–ए–अमीर नामक भव्य मक़बरे में दफ़ना दिया गया. अपनी मृत्यु से पहले उन्होंने अपना साम्राज्य अपने दो जीवित पुत्रों और पोतों के बीच बांट दिया था. कई वर्षों के घातक संघर्ष के बाद उनके सबसे छोटे बेटे शाहरूख़ ने उनके इलाक़े को पुनर्संगठित किया.

मूल्यांकन

तैमूर ने छोटे घुमंतू क़बीले के नेता से शुरुआत करके अपने छल–कपट और सैन्य शक्ति के ज़ोर पर ऑक्सस व जैक्सार्टीज़ नदियों के बीच (ट्रांसऑक्सानिया) 1360 तक अपनी सत्ता स्थापित कर ली. उसके बाद तीन दशकों तक वह अपने घुड़सवार तीरंदाज़ों के साथ मंगोलिया से भूमध्यसागरीय क्षेत्र तक, हर राज्य को अपने अधीन करते चले गए. बंजारा योद्धा सरदारों के नेता के रूप में इतनी सैन्य सफलताएं प्राप्त करने वाले वह मध्य एशिया के अंतिम शक्तिशाली विजेता थे, जिन्होंने खेतिहर और पशुपालक समाज, दोनों पर राजसी स्तर का शासन किया. उनके अभियानों से पैदा हुई ग़रीबी, रक्तपात और बेघर हो गए लोगों के कारण कई दंतकथाएं प्रचलित हैं, जिनसे क्रिस्टोफ़र मारलो की *तैंबरलेन द ग्रेट* जैसी रचनाएं प्रेरित हुईं.

तैमूर लंग नाम से लंगड़े तैमूर का बोध होता है, जो उनके फ़ारसी दुश्मनों ने उनका अपमान करने के लिए रखा था. यूरोप में यह नाम तैंबरलेन या तेमरलेन हो गया. तैमूर ने पशुपालक समुदाय की राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विरासत और मध्य एशिया की घुमंतू परंपरा पाई थी. उन्होंने और उनके सहयोगियों ने चंगेज़ ख़ां की सैन्य कला तथा अनुशासन को आगे बढ़ाया और घुड़सवार तीरंदाज़ों तथा तलवारबाज़ों की मदद से वहां बसे किसानों को नीचा दिखाया. तैमूर ने कभी स्थायी ठिकाना नहीं बनाया. उन्होंने अपनी लगातार युद्धरत रहने वाली सेना का स्वयं नेतृत्व किया, चाहे वह रेगिस्तान की तपती गर्मी हो या जमा देने वाली ठंड. जब वह किसी अभियान पर

नहीं होते थे, तो अपनी सेना के साथ मौसम तथा चरागाहों की उपलब्धता के अनुसार घूमते रहते थे. उनका दरबार उनके साथ ही चलता था और उनकी गृहस्थी भी साथ होती थी, जिसमें उनकी नौ पत्नियों तथा उपपत्नियों में एक या एक से ज़्यादा रहती थीं. उन्होंने अपनी राजधानी समरक़ंद को एशिया का सबसे शानदार शहर बनाने का प्रयास किया, लेकिन जब वह वहां गए, तो कुछ ही दिन टिके और फिर शहर के बाहर मैदानों में स्थित अपने शिविरों में लौट गए.

तैमूर के बारे में सर्वोपरि तथ्य यह है कि वह चंगेज़ ख़ां द्वारा विकसित सैन्य तकनीक के विशेषज्ञ थे और उस काल के प्रत्येक सैन्य तथा कूटनीतिक हथियार का इस्तेमाल करते थे. उन्होंने अपने विरोधियों की कमज़ोरियों (राजनीतिक, आर्थिक या सैनिक) का फ़ायदा उठाने का कोई मौक़ा नहीं गंवाया और अपने मक़सद के लिए षड्यंत्र, धोखाधड़ी तथा गठबंधन बनाने से भी नहीं चूके. लड़ाई से पहले ही शत्रु की सेना में उनके गुप्तचरों द्वारा विजय के बीज बो दिए जाते थे. उन्होंने अपने पड़ोसी देशों और दूरस्थ शक्तियों के साथ सुलझे हुए समझौते किए, जो इंग्लैंड से लेकर चीन तक के कूटनीतिक पुरातात्विक लेखों में दर्ज हैं. युद्ध में ख़ानाबदोश तकनीकें और शत्रु को चौंका देना उनकी प्रमुख रणनीति थी. तैमूर के चिरस्थायी स्मारक समरक़ंद में निर्मित तैमूरी वास्तुकला के भवन हैं, जिनमें आसमानी, फ़िरोज़ी, सुनहरी और सिलखड़ी रंग के पत्थरों की जड़ाई है. इनमें प्रमुख एक बड़ी मस्जिद है, जो भूकंप से नष्ट हो गई थी, लेकिन उसके गुंबद का एक बड़ा हिस्सा मौजूद है. उनका मक़बरा, गुर–ए अमीर, इस्लामी कला का बेहतरीन नमूना है. क़ब्र के भीतर ही पन्ने की एक विशाल टूटी हुई शिला के नीचे तैमूर अब तक दफ़न हैं. आधी सहस्राब्दी तक सुरक्षित रहने के बाद मक़बरे को 1941 में खोला गया. सोवियत पुरातत्व आयोग को एक व्यक्ति का कंकाल मिला, जो दाहिने हाथ और दाहिने पैर से पंगु होने के बावजूद बलशाली देहयष्टि वाला और औसत तातारी से ज़्यादा लंबा था.

चीन–अभियान बिखर जाने के बाद उत्तराधिकार के मसले पर तैमूर के बेटों और पोतों में लड़ाई हुई, लेकिन पारिवारिक टकरावों के बावजूद उनका वंश मध्य एशिया में अगली एक शताब्दी तक बना रहा. समरक़ंद ज्ञान और विज्ञान का केंद्र हो गया. यहीं उनके पोते उलुग़ बेग ने एक अनुसंधानशाला स्थापित की और खगोल संबंधी तालिकाएं बनाई, जिनका बाद में 17वीं शताब्दी में अंग्रेज़ शाही खगोलशास्त्री ने उपयोग किया. 15वीं शताब्दी के तैमूरी पुनर्जागरण के दौरान समरक़ंद के दक्षिण–पूर्व में स्थित हेरात फ़ारसी लघु–चित्रकारों का गढ़ बन गया. 16वीं शताब्दी के आरंभ में मध्य एशिया में जब इस वंश की समाप्ति हुई, तब उसके वंशज बाबर ने स्वयं को क़ाबुल में स्थापित किया व दिल्ली पर विजय प्राप्त की और भारत में महान मुग़ल माने जाने वाले मुग़ल साम्राज्य की नींव रखी.

तैराकी

खेल और मनोरंजन के लिए शरीर को हाथ–पांवों की संयुक्त गति के साथ आगे धकेलना और प्राकृतिक रूप से शरीर को तैराना. तैराकी व्यायाम और संपूर्ण शरीर के विकास के लिए लोकप्रिय है. यह ख़ासतौर पर शारीरिक रूप से अपंग लोगों के लिए उपयोगी निदान और व्यायाम है. इसे प्राण रक्षा के उद्देश्य से भी सिखाया जाता है.

इतिहास

पुरातात्विक और अन्य प्रमाण बताते हैं कि तैराकी 2500 ई.पू. से भी पहले से मिस्र और बाद में असीरियाई, यूनानी तथा रोमन सभ्यताओं की प्रथा थी. तैराकी रोम और यूनान में युद्ध कला प्रशिक्षण का हिस्सा थी और पुरुषों के लिए अक्षर ज्ञान की ही तरह अनिवार्य शिक्षा का हिस्सा थी. पूर्वी देशों में तैराकी का इतिहास पहली शताब्दी ई.पू. तक मिलता है. 17वीं शताब्दी तक एक शाही आदेश से पाठशालाओं में तैराकी की शिक्षा अनिवार्य कर दी गई थी. प्रशांत महासागर के मूल निवासी नाविकों के बच्चे चलना सीखने से भी पहले तैरना सीख लेते थे. प्राचीन यूनानी लोगों के बीच यदा–कदा तैराकी प्रतियोगिताएं होने के उल्लेख मिलते हैं और एक प्रसिद्ध मुक्केबाज़ अपने प्रशिक्षण के हिस्से के तौर पर तैरा भी था. रोमवासियों ने अपने स्नानगृहों से भिन्न तरणताल निर्मित किए. कहा जाता है कि पहली शताब्दी ई.पू. में रोम में पहला गर्म किया जाने वाला तरणताल बनाया गया था.

मध्य युग के दौरान यूरोप में तैराकी में आई कमी के संबंध में कुछ विद्वानों का मानना था कि लोगों में यह डर था कि तैराकी से संक्रमण होता है और महामारियां फैल जाती हैं. 17वीं शताब्दी के अंत में ग्रेट ब्रिटेन के समुद्र तटों पर बनी सैरगाहों पर तैराकी के कुछ प्रमाण मिलते हैं. स्पष्टतः इसे जल चिकित्सा के साथ जोड़ा जाता है, हालांकि 19वीं शताब्दी तक तैराकी मनोरंजन और खेल के तौर पर उत्साहवर्द्धक रूप से लोकप्रिय नहीं हुई थी. 1837 में पहला तैराकी संगठन बनने तक लंदन में गोताख़ोरी के तख़्तों सहित छह इनडोर तरणताल बन चुके थे. पहली तैराकी प्रतियोगिता लगभग 400 मीटर की थी, जो 1846 में ऑस्ट्रिया में हुई और उसके बाद हर वर्ष होने लगी. लंदन के महानगरीय तैराकी क्लब का गठन 1869 में हुआ, जो अंततः एमेच्योर स्विमिंग एसोसिएशन बन गया, यह ब्रिटिश ग़ैर पेशेवर तैराकी की प्रशासनिक इकाई है. 1882 से 1889 के दौरान कई यूरोपीय देशों में राष्ट्रीय तैराकी संगठनों का गठन हुआ. अमेरिका में 1888 में गठित एमेच्योर एथलेटिक यूनियन ने तैराकी को पहली बार खेल के तौर पर राष्ट्रीय स्तर पर संगठित किया. द फ़ेडरेशन इंटरनेशनल डि नेशन एमेच्योर (एफ़.आई.एन.ए.) का गठन 1909 में हुआ था.

प्रतिस्पर्द्धात्मक तैराकी

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्पर्द्धात्मक तैराकी 1896 में आधुनिक ओलिंपिक खेलों के अस्तित्व में आने और उसमें शामिल किए जाने के बाद महत्त्वपूर्ण बनी पहले ओलिंपिक

प्रतियोगिताएं मूल रूप से सिर्फ़ पुरुषों के लिए ही होती थीं, लेकिन 1912 में महिलाओं की प्रतियोगिताएं भी इसमें शामिल की गईं. एफ़.आई.एन.ए. के गठन से पहले खेल में कुछ असामान्य प्रतियोगिताएं शामिल की जाती थीं. उदाहरण के तौर पर, 1900 में जब इस खेल की प्रतियोगिताएं फ़्रांस की सीन नदी में आयोजित की गईं, इसमें 200 मीटर की बाधा दौड़ में एक खंबे पर चढ़ना और नौकाओं की एक कतार को नीचे से तैरते हुए पार करना शामिल किया गया था. एफ़.आई.एन.ए. के नियंत्रण हाथ में लेने से ऐसी विचित्रताएं दूर हो गईं. एफ़.आई.एन.ए. के नियमों के अंतर्गत ओलिंपिक खेलों व अन्य विश्व प्रतियोगिताओं में दौड़ की लंबाई मीटर में नापने का चलन बढ़ता गया और 1969 में गज़ में नापी गई दौड़ों के विश्व रेकॉर्ड समाप्त कर दिए गए. विभिन्न क़िस्म के स्ट्रोक्स को कम करके सिर्फ़ फ़्री स्टाइल, बैकस्ट्रोक, ब्रेस्टस्ट्रोक और बटरफ़्लाई तक ही सीमित कर दिया गया. सभी चारों स्ट्रोक्स व्यक्तिगत मिश्रित दौड़ों में इस्तेमाल किए जाते हैं. कई राष्ट्रों ने किसी न किसी समय ओलिंपिक और विश्व प्रतियोगिताओं में अपना वर्चस्व बनाए रखा है. इनमें हंगरी, डेनमार्क, ऑस्ट्रेलिया, जर्मनी, फ़्रांस, ग्रेट ब्रिटेन, कनाडा, जापान और संयुक्त राज्य अमेरिका शामिल हैं.

भारत में तैराकी

खेल के तौर पर तैराकी कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) में नेशनल स्विमिंग एसोसिएशन (एन.एस.ए.) द्वारा आयोजित की गई. यद्यपि यह एसोसिएशन उस समय सिर्फ़ एक राज्य का ही प्रतिनिधित्व करती थी, लेकिन इसे विश्व इकाई एफ़.आई.एन.ए. की संबद्धता मिल गई. हालांकि, भारतीय ओलिंपिक एसोसिएशन, जिसका शेष देश के तैराकी संगठन से बहुत कुछ लेना–देना था, ने इस कार्य का अपने हिस्से का काम उस समय के भारतीय तैराकी महासंघ (आई.एस.एफ़.) को सौंप दिया. यह 1936 में हुआ था और बाद में आई.एस.एफ़. और एन.एस.ए. के बीच आधिपत्य को लेकर संघर्ष चला, परिणामस्वरूप तैराकी और तैराकों को नुक़सान उठाना पड़ा. एन.एस.ए. ने 1932 के लॉस एंजेलिस, अमेरिका के ओलिंपिक खेलों में सिर्फ़ एक प्रतियोगी भेजा, लेकिन विवाद की वजह से भारत ने 1936 के खेलों में भाग ही नहीं लिया. बहरहाल, एन.एस.ए. और आई.एस.एफ़. को 1948 में भारतीय तैराकी संघ (एस.एफ़.आई.) में मिला दिया गया और ए.ए. जसदाऊवाला इसके पहले अध्यक्ष बने.

भारत ने 1928 में एम्सटरडॅम में हुए ओलिंपिक खेलों में पहली बार हिस्सेदारी की थी. 1948, 1952 और 1956 में हुए ओलिंपिक खेलों में तैराक भेजे गए थे, लेकिन भारत ने कोई पदक नहीं जीता. फिर भी भारत ने नई दिल्ली में 1951 में हुए एशियाई खेलों में बेहतर प्रदर्शन किया. सचिन नाग ने सिंगापुर, फ़िलीपींस, बर्मा (वर्तमान म्यांमार) और ईरान के ख़िलाफ़ 100 मीटर फ़्री स्टाइल में स्वर्ण पदक जीता; एशियाड में भारत के लिए कोई पदक जीतने वाले वह पहले खिलाड़ी बने. इसके अलावा भारत ने वॉटरपोलो, स्प्रिंगबोर्ड गोताख़ोरी और हाईबोर्ड गोताख़ोरी में स्वर्ण पदक; 100 मीटर बैकस्ट्रोक और स्प्रिंगबोर्ड गोताख़ोरी में रजत पदक; 400 मीटर फ़्री स्टाइल, 200 मीटर ब्रेस्टस्ट्रोक, 4 × 100 मीटर रिले, 4 × 100 मीटर मेडले रिले और हाईबोर्ड गोताख़ोरी में कांस्य

पदक हासिल किया. तीन दशकों से भी अधिक समय बाद भारत ने एशियाई खेलों में खज़ान सिंह की बदौलत फिर पदक जीता. खज़ान सिंह ने 1986 के सिओल एशियाड में 200 मीटर बटरफ़्लाई में रजत पदक जीता था. 20वीं शताब्दी में भारत की यह अंतिम विजय थी. खज़ान सिंह के नाम किसी भी अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता में सबसे अधिक स्वर्ण पदक जीतने का कीर्तिमान है. उन्होंने 1984 में काठमांडू में हुए पहले साउथ एशियन फ़ेडरेशन (सैफ़) खेलों में आठ स्वर्ण पदक जीते थे. 1984 और 1989 में हुए दो सैफ़ खेलों में उन्होंने कुल मिलाकर 15 स्वर्ण पदक जीते.

1999 में काठमांडू, नेपाल में हुए सैफ़ खेलों में पहली बार महिलाओं की तैराकी प्रतियोगिताएं शुरू की गईं. निशा मिलेट ने प्रसिद्धि का ताज धारण किया. वह प्रतियोगिता की सबसे तेज़ महिला तैराक के रूप में उभरीं. उन्होंने 50 मीटर फ्री स्टाइल में 28.71 सेकेंड का समय लेकर नया सैफ़ रेकॉर्ड क़ायम करते हुए स्वर्ण पदक जीता. उन्होंने 1991 में बुला चौधरी द्वारा स्थापित 29.29 सेकेंड के रेकॉर्ड को और बेहतर किया. बंगलोर की इस तैराक ने सात स्वर्ण पदक हासिल किए.

लंबी दूरी की तैराकी में स्व. मिहिर सेन पहले एशियाई बने, जिन्होंने 1958 में 14 घंटे और एक मिनट में इंग्लिश चैनल पार किया था, उसके अगले ही वर्ष स्व. आरती साहा यह सम्मान हासिल करने वाली पहली महिला बनीं. उन्होंने यह दूरी 13 घंटे और 52 मिनट में पूरी की. 1987 में अनिता सूद ने सर्वश्रेष्ठ समय दर्ज कराते हुए 8 घंटे और 16 मिनट में चैनल पार किया. आरती प्रधान दुनिया की पहली महिला थीं, जिन्होंने 30 किमी की स्ट्रेट ऑफ़ जिब्राल्टर को 29 अगस्त 1988 को तैरकर पार किया था. उन्होंने यह दूरी 7 घंटे और 17 मिनट में पूरी की थी. 8 अगस्त 1988 को तारानाथ शिनॉय स्ट्रेट ऑफ़ जिब्राल्टर को तैरकर पार करने वाले दुनिया के पहले मूक–बधिर खिलाड़ी बने.

राष्ट्रीय स्तर पर तैराकी प्रतियोगिताएं सैफ़ द्वारा आयोजित की जाती हैं. पहली राष्ट्रीय एक्वेटिक चैंपियनशिप 1945 में बंबई (वर्तमान मुबंई) में सैफ़ के गठन के चार साल पहले आयोजित की गई थी. राष्ट्रीय खेलों में तैराकी एक प्रतियोगिता के तौर पर शामिल है.

राज्य और रेलवे, पुलिस और विश्वविद्यालय जैसी संस्थागत इकाइयां भी प्रतिवर्ष प्रतियोगिताएं आयोजित करती हैं. भारतीय राज्यों में कनार्टक राज्य में दूसरे राज्यों की तुलना में बेहतर आधारभूत व्यवस्थाएं हैं. बंगलोर में बसवनगुडी एक्वेटिक सेंटर और के.सी. रेड्डी एक्वेटिक सेंटर जैसे क्लब हैं. कोलकाता में कलकत्ता स्विमिंग क्लब (सी.एस.सी.) और नेशनल स्विमिंग क्लब हैं. सी.एस.सी. की स्थापना 1926 में हुई थी, जो भारत का सबसे पुराना तैराकी क्लब है. जाम बजरंगी प्रसाद ऐसे पहले तैराक हैं, जिन्हें 1961 में अर्जुन पुरस्कार से सम्मानित किया गया.

तोता (पैराकीट)

छोटे आकार का छरहरा और लंबी क्रमशः पतली होती हुई पूंछ वाले बीजभक्षी तोतों में से एक. इस प्रकार, *सिटैसिनी* उपकुल (परिवार *सिटैसिडी*) की कुल 30 जातियों की लगभग 115 प्रजातियों को यह नाम दिया जाता है. इसी से तोते के एक अन्य नाम लॉरिकीट का भी उद्‌भव हुआ है. सिर्फ़ आकार के हिसाब से यह नाम छोटे तोतों को भी दिया जाता है, जिनकी छोटी, मोटे सिरे वाली पूंछ होती है, जिन्हें झूलने वाले तोते

या बैट पैरोटलेट भी कहा जाता है. ये *लॉरिक्युलस* प्रजाति के होते हैं और अपने मूल क्षेत्र भारत से मलाया और फ़िलीपींस में पिंजरों में रखे जाने वाले लोकप्रिय पक्षी हैं.

ऑस्ट्रेलियाई तोता बजरिगार (*मेलोसिटैकस अनडुलेटस*)
फ़ोटो : ब्रूस कोलमैन लि.

पैराकीट दुनिया भर के सभी गर्म इलाक़ों में पाए जाते हैं; ये भारत और श्रीलंका (भूतपूर्व सीलोन) से ऑस्ट्रेलिया तथा प्रशांत महासागर के द्वीपों, दक्षिण–पूर्व एशिया व उष्णकटिबंधीय अमेरिका में भी पाए जाते हैं. आमतौर पर ये बड़े झुंडों में रहते हैं और अनाज के खेतों के लिए गंभीर ख़तरा बन जाते हैं. अधिकांश प्रजातियां पेड़ की खोह में एक बार में चार से आठ अंडे देती हैं. इनकी दर्जनों रंगीन क़िस्मों को पालतू बनाकर रखा जाता है. ये तोते बहुत सक्रिय होते हैं और इन्हें काफ़ी स्थान की आवश्यकता होती है; इनमें से अधिकांश अन्य पक्षियों के प्रति आक्रामक होते हैं, ख़ासतौर पर अगर ये जोड़े में हों. हालांकि इनकी आवाज़ पतली होती है, इनमें से कुछ अच्छे नक़लची बन जाते हैं. प्रकृति में स्वतंत्र रूप से और पक्षीगृहों में इनकी कई रंगों की क़िस्में तथा प्रजातियों के मिश्रण से बनी संकरित क़िस्में पाई जाती हैं.

पिंजरे में पाला जाने वाला लोकप्रिय पैराकीट बजरिगार या शैल पैराकीट (*मेलोसिटैकस अनडुलेटस*) है. भ्रमवश इसे लवबर्ड भी कहा जाता है. 19 सेमी का यह पैराकीट हरे से लेकर पीतवर्ण तक सैकड़ों रंगों में पाया जाता है, लेकिन इनके गालों पर निशान और शरीर के ऊपरी हिस्से लगभग एक समान होते हैं. नर और मादा, दोनों एक जैसे दिखते हैं, लेकिन मौसम के अनुसार उनकी चोंच के आधार के पास की त्वचा का रंग अलग–अलग हो सकता है. बजरिगार बीजभक्षी होते हैं; ऑस्ट्रेलिया के घास के मैदानों में ये विशाल झुंडों में रहते हैं. ये एक साथ प्रजनन करते हैं और पेड़ की खोहों में साल में दो बार छह से आठ अंडे देते हैं. अधिकांश बजरिगार मज़बूत होते हैं और पांच से दस वर्षों तक जीवित रहते हैं. प्लेटिसर्कस प्रजाति के ऑस्ट्रेलियाई पैराकीट या रोज़ेल्ला की पीठ और शरीर के निचले अंग कंबूकृत होते हैं. इनके कंधे काले और गाल तथा गले पर अलग क़िस्म के निशान होते हैं. इनकी पूंछ लंबी–चौड़ी, बीच में हरी या नीली होती है और इसके किनारे नीले या सफ़ेद रंग के होते हैं. औसतन 26–36 सेमी लंबी सात प्रजातियों को हैराकीट भी कहा जाता है.

छोटे आकार और चौड़ी पूंछ वाले तोते सेफ़ोटस की पांच प्रजातियां हैं, जिनका कोई विशेष समूह नाम नहीं है. मादा रोज़ेल्ला नर की अपेक्षा सुस्त होती है. पिंजरे में रखने के लिए लोकप्रिय पक्षी रोज़ेल्ला मज़बूत और सुंदर होते हैं, लेकिन अन्य प्रजातियों के प्रति ये बहुत झगड़ालू होते हैं.

तोमर वंश

उत्तरी भारत के पूर्व मध्ययुगीन छोटे शासकों में से एक वंश. इस वंश के बारे में जानकारी निश्चित स्रोतों से नहीं मिलती और इसके इतिहास की पुनर्रचना करना असंभव है. पौराणिक प्रमाणों के अनुसार, यह वंश आरंभ में हिमालय क्षेत्र में स्थित था. चारण परंपरा के अनुसार, यह वंश 36 राजपूत जनजातियों में से एक था. इस परिवार का इतिहास अंगपाल के शासनकाल के मध्य का है, जिन्होंने 11वीं शताब्दी में दिल्ली शहर की स्थापना की थी. उन्होंने 1164 में चहमान राज्य में दिल्ली को शामिल किया था. दिल्ली निश्चित तौर पर चहमान राज्य का एक अंग बन गई, लेकिन सिक्कों और अपेक्षाकृत बाद के साहित्यिक प्रमाण इस बात की ओर संकेत करते हैं कि अनंगपाल और मदनपाल जैसे तोमर राजा सामंतों के तौर पर शासन करते रहे, जब तक 1192–93 में दिल्ली पर निर्णायक मुस्लिम विजय नहीं हो गई.

तौहीद

(अरबी शब्द, अर्थात एक होना, एकत्व का समर्थन करना), इस्लाम में, ख़ुदा का एक होना, इस अर्थ में कि वह एक ही है और उसके अलावा कोई और नहीं है, जैसा *शहादा* (शहादत या गवाही) सूत्र में कहा गया है : 'ख़ुदा के अलावा कोई ख़ुदा नहीं है और मुहम्मद उनके पैग़ंबर हैं.' तौहीद में आगे ख़ुदा की प्रकृति के बारे में चर्चा की गई है कि वह एक इकाई है, उसकी रचना नहीं हुई, वह हिस्सों में बना हुआ नहीं है, बल्कि सरल और असंयोजित है. ख़ुदा के एकत्व का सिद्धांत और ख़ुदा के तत्त्व और लक्षणों के संबंधों के बारे में जो मुद्दे यह उठाता है, वे पूरे इस्लामी इतिहास के ज़्यादातर दौर में बार–बार उभरते रहे हैं. मुस्लिम रहस्यवादियों (सूफ़ियों) की शब्दावली में तौहीद का एक सर्वेश्वरवादी आशय है; सभी तत्त्व ख़ुदाई हैं और ख़ुदा के अलावा कोई पूर्ण अस्तित्व नहीं है. ज़्यादातर मुस्लिम विद्वानों के लिए तौहीद की पद्धति व्यवस्थित धर्म विज्ञान है, जिसके माध्यम से ख़ुदा को बेहतर समझा जा सकता है, लेकिन सूफ़ियों के अनुसार, ख़ुदा का ज्ञान केवल मज़हबी अनुभव और प्रत्यक्ष दिव्य–दर्शन से ही हासिल किया जा सकता है.

ेख्यात दक्षिण भारतीय ंगीतज्ञ त्यागराज का चित्र

त्यागराज

(ज.–1767, तमिलनाडु, भारत; मृ.–1874), भारतीय संगीतज्ञ, दक्षिण भारत में अपने तेलुगु कीर्तनों एवं रागों के लिए प्रसिद्ध. ये भक्तिगीत ज़्यादातर राम के गुणगान थे, जो कृष्ण की तरह भगवान विष्णु के अवतार माने जाते हैं. त्यागराज छोटी उम्र से ही विष्णु के भक्त बन गए थे तथा उन्हें गणमार्ग, अर्थात भक्ति संगीत के माध्यम से मुक्ति का प्रतिपादक माना जाता है.

त्रावणकोर

भूतपूर्व दक्षिण–पश्चिमी भारत की रियासत, अब केरल राज्य का हिस्सा. प्रारंभिक शताब्दियों में त्रावणकोर केरल या चेर का राज्य था और विश्व के

सुदूर क्षेत्रों से व्यापार करता था. 11वीं शताब्दी में यह क्षेत्र चोल साम्राज्य के अंतर्गत आ गया. 16वीं सदी में इस पर कुछ समय के लिए विजयनगर के हिंदू साम्राज्य का क़ब्ज़ा रहा, जिसके बाद यह मुस्लिम शासकों के अधीन हो गया. 18वीं सदी के मध्य में यह क्षेत्र एकीकृत हुआ और स्वतंत्र त्रावणकोर राज्य (स्टेट ऑफ़ त्रावणकोर) बना. इसने दक्षिण भारत की अपनी लड़ाइयां ब्रिटिश लोगों के साथ मिलकर लड़ीं. 1795 में हुई एक संधि इसे ब्रिटिश संरक्षण के अंतर्गत ले आई. त्रावणकोर अपनी उच्च साक्षरता दर और विकसित प्रशासन के लिए जाना जाता था. भारत की स्वतंत्रता के बाद त्रावणकोर और कोचीन को मिलाकर त्रावणकोर–कोचीन राज्य का गठन हुआ; इनकी सीमाओं का पुनः निर्धारण हुआ और 1956 में इसका केरल के रूप में नया नामकरण किया गया.

त्रिकाया

(संस्कृत शब्द, अर्थात तीन कायाएं या शरीर), महायान बौद्ध धर्म में बुद्ध के तीन शरीर के रूप : धर्मकाया (शाश्वत नियमों की काया), अप्रकटित रूप और परमज्ञान की चरम स्थिति; संभोगकाया (भोग की काया), स्वर्गिक रूप; और निर्माणकाया (परिवर्तन की काया), सांसारिक रूप, जिसमें बुद्ध ने स्वयं को सांसारिक बोधिसत्व के रूप में प्रकट किया, अर्थात एक सांसारिक राजा, एक चित्र या कमल जैसी कोई प्राकृतिक वस्तु.

त्रिकाया की अवधारणा केवल ऐतिहासिक बुद्ध गौतम पर ही नहीं, बल्कि सभी बुद्धों पर लागू होती है.

त्रिपुरा

भारतीय राज्य. यह दक्षिण एशिया के पूर्वोत्तर भाग में स्थित है. यह उत्तर, पश्चिम व दक्षिण में बांग्लादेश, पूर्व में मिज़ोरम और पूर्वोत्तर में असम राज्य से घिरा है. त्रिपुरा का क्षेत्रफल सिर्फ़ 10,486 वर्ग किमी है और यह गोवा तथा सिक्किम के बाद भारत का तीसरा सबसे छोटा राज्य है. देश के बाक़ी हिस्से से अलग–थलग रहने, पहाड़ी भूभाग व जनजातीय आबादी के कारण त्रिपुरा में भी भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्रों की समस्याएं मौजूद हैं. अगरतला त्रिपुरा की राजधानी है.

भौतिक एवं मानव भूगोल

भूमि एवं जलवायु

मध्य एवं उत्तरी त्रिपुरा एक पहाड़ी क्षेत्र है, जिसे पूर्व से पश्चिम की ओर चार प्रमुख घाटियां, धर्मनगर, कैलाशहर, कमालपुर और खोवाई, काटती हैं. ये घाटियां उत्तर की ओर बहने वाली नदियों (जूरी, मनु व देव, ढलाई और खोवाई) द्वारा निर्मित हैं. पश्चिम व दक्षिण की निचली घाटियां खुली व दलदली हैं, हालांकि दक्षिण में भूभाग बहुत अधिक कटा हुआ और घने जंगलों से ढका है. उत्तर से दक्षिण की ओर उन्मुख श्रेणियां घाटियों को अलग करती हैं. धर्मनगर घाटी के पूर्व में जमराई त्लंग की ऊंचाई 600

और 900 मीटर के बीच है. पश्चिम की ओर क्रमशः सखान त्लंग, लंगतराई और आर्थरमुरा पर्वतश्रेणियों की ऊंचाई घटते क्रम में है. सुदूर पश्चिम में स्थित पहाड़ी देवतामुरा की ऊंचाई सिर्फ़ 244 मीटर है.

देवतामुरा पर्वतश्रेणी के पश्चिम में अगरतला मैदान है, जो गंगा–बह्मपुत्र निम्नभूमि का विस्तार है तथा इसकी ऊंचाई 61 मीटर से कम है. इस क्षेत्र को कई नदियां अपवाहित करती हैं, जिनमें सबसे बड़ी नदी गुमटी का उद्‌गम पूर्वी पहाड़ियों राधाकिशोरपुर के निकट एक खड़े किनारों वाली घाटी में स्थित है.

जून से सितंबर तक रहने वाले मॉनसून के मौसम में 2,000 मिमी से अधिक वर्षा होती है. निचले इलाक़ों में ग्रीष्म ऋतु में अधिकतम औसत तापमान 35° से. होता है, हालांकि पहाड़ों में मौसम ठंडा होता है.

लगभग आधा राज्य जंगलों से ढका है; हालांकि खेती के लिए इनकी व्यापक कटाई हुई है, इनमें अब भी महत्त्वपूर्ण वृक्ष पाए जाते हैं, जिनमें मज़बूत लकड़ी वाला साल वृक्ष (*शोरिया रोबस्टा*) शामिल है, जो सागौन के बाद सबसे अधिक क़ीमती लकड़ी है. यहां के प्राणियों में बाघ, तेंदुआ, हाथी, सियार, जंगली कुत्ते, जंगली सूअर, गयाल सांड, जंगली भैंस तथा गौर शामिल हैं.

जनजीवन

त्रिपुरा मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्र है. राज्य में जनसंख्या का सबसे अधिक घनत्व पश्चिमी मैदानी क्षेत्र तथा गुमटी, धर्मनगर और खोवाई घाटियों में स्थित सबसे उपजाऊ कृषि भूमि में पाया जाता है.

बंगालियों और मणिपुरियों के अलावा त्रिपुरा में जनजातियों के 19 विभिन्न समुदाय हैं. राज्य की जनसंख्या में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति का हिस्सा क्रमशः 16.36 प्रतिशत और 30.95 प्रतिशत है. जनजातियों में त्रिपुरी या टिप्पिरा (16.12 प्रतिशत), रियांग (4.095 प्रतिशत), जमातिया (2.175 प्रतिशत) और चकमा (1.69 प्रतिशत) प्रमुख हैं. राज्य के आधे से अधिक लोग बांग्लाभाषी हैं. त्रिपुरी और बांग्ला राज्य के सरकारी कामकाज की भाषाएं हैं. मणिपुरी एक अन्य महत्त्वपूर्ण भाषा है. यहां की बहुसंख्यक आबादी हिंदू धर्म (86.50 प्रतिशत) को मानने वाली है. यहां मुस्लिम (7.13 प्रतिशत), बौद्ध (4.65 प्रतिशत) और ईसाइयों (1.69 प्रतिशत) के छोटे अल्पसंख्यक समुदाय भी हैं.

त्रिपुरा की एक रियांग आदिवासी महिला
सौजन्य : त्रिपुरा पर्यटन विभाग

राज्य के शहर पश्चिमी मैदानों में केंद्रित हैं, जहां राज्य की राजधानी अगरतला भी स्थित है. चार शहर, जिनके नाम पर उत्तरी घाटियों का नामकरण हुआ है, स्थानीय विपणन केंद्र की भूमिका भी निभाते हैं. राज्य में 18 शहरी केंद्र हैं, जिनमें कुल आबादी का

15.30 प्रतिशत हिस्सा रहता है. शेष जनसंख्या 462 गांवों में रहती है, जिनमें से 77 प्रतिशत गांवों में बिजली की सुविधा है.

अर्थव्यवस्था

त्रिपुरा की अर्थव्यवस्था प्राथमिक रूप से कृषि पर आधारित है. मुख्य फ़सल चावल है (कृषि उत्पादन का 46.16 प्रतिशत) और पूरे राज्य में इसकी खेती होती है. नक़दी फ़सलों में जूट (जिसका इस्तेमाल बोरी, टाट और सुतली बनाने में होता है), कपास, चाय, गन्ना, मेस्ता और फल शामिल हैं. राज्य की कृषि में पशुपालन की सहायक भूमिका है. वनोपज आधारित उद्योग इमारती लकड़ी, ईंधन और लकड़ी के कोयले का उत्पादन करते है. 1994 में चाय का उत्पादन 35,55,593 किग्रा था.

यहां मुख्यतः छोटे पैमाने पर निर्माण कार्य होता है, जिसमें बुनाई, बढ़ईगिरी, टोकरी व मिट्टी के बर्तन बनाने जैसे कई कुटीर उद्योग शामिल हैं. छोटे पैमाने के उद्योगों के विकास को बढ़ाने में राज्य सरकार सक्रिय है. बांस व बेंत हस्तशिल्प में कक्ष विभाजक, फ़र्नीचर, भित्तिपट्टिका, टेबल मैट और फ़र्श पर बिछाने वाली चटाइयां शामिल हैं, जिन्हें स्थानीय स्तर पर बनाया जाता है. औद्योगिक इकाइयां चाय, चीनी, डिब्बाबंद फल, कृषि औज़ार, ईंट और जूते–चप्पल बनाती हैं. अपेक्षाकृत बड़े उपक्रमों में कताई मिल, जूट मिल, इस्पात मिल, प्लाईवुड फ़ैक्ट्री और औषधि संयंत्र शामिल हैं. अगरतला, अंबासा, खोवाई, धर्मनगर, कैलाशहर, उदयपुर और बगाफा में स्थित डीज़ल चालित ताप संयंत्रों से बिजली मिलती है. इसके अलावा गुमटी पनबिजली परियोजना (1976 में पूरी हुई) से भी बिजली मिलती है. इसकी कुल स्थापित क्षमता 6,935 मेगावाट है. राज्य में हाल ही में प्राकृतिक गैस के व्यापक संसाधनों की खोज हुई है.

पहाड़ी स्थलाकृति के कारण यहां संचार में कठिनाई आती है. तीन ओर से (839 किमी) बांग्लादेश से घिरे होने के कारण त्रिपुरा शेष भारत से लगभग कटा हुआ है. अगरतला–करीमगंज (असम) सड़क (3,666 किमी) एकमात्र भू–मार्ग है और धर्मनगर से असम के कलकली घाट तक मीटर गेज़ रेलवे लाइन (45 किमी) है. यहां की अधिकांश नदियों में नावें चलती हैं, लेकिन इनका उपयोग स्थानीय परिवहन के लिए ही होता है. अगरतला कोलकाता (पश्चिम बंगाल) और असम के विभिन्न नगरों से वायु मार्ग द्वारा जुड़ा है. राज्य के भीतर भी वायुसेवा उपलब्ध है.

प्रशासन एवं सामाजिक विशेषताएं

त्रिपुरा को चार प्रशासनिक ज़िलों में बांटा गया है : उत्तरी त्रिपुरा (कैलाशहर), दक्षिणी त्रिपुरा (उदयपुर), पश्चिमी त्रिपुरा (अगरतला) और ढलाई (अंबासा). राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त राज्यपाल राज्य का संवैधानिक प्रमुख होता है. वास्तविक प्रशासन मुख्यमंत्री के नेतृत्व में मंत्रिपरिषद द्वारा संचालित होता है, जो राज्य की एक सदनीय विधायिका, विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होती है. गुवाहाटी उच्च न्यायालय (असम) का न्यायाधिकार त्रिपुरा तक है.

राज्य में 2,981 विद्यालय हैं और यहां की साक्षरता दर 73.66 प्रतिशत (2001) है. यहां त्रिपुरा विश्वविद्यालय है. शैक्षणिक संस्थानों में त्रिपुरा इंजीनियरिंग कॉलेज, बी.एम. मेडिकल कॉलेज ऐंड रिसर्च सेंटर, कई सरकारी महाविद्यालय, गवर्नमेंट कॉलेज ऑफ़ एजुकेशन, गवर्नमेंट कॉलेज ऑफ़ आर्ट ऐंड क्राफ़्ट, त्रिपुरा म्यूज़िक कॉलेज, महाराजा बीर बिक्रम कॉलेज, रीजनल कॉलेज ऑफ़ फ़िज़िकल एजुकेशन और त्रिपुरा गवर्नमेंट लॉ कॉलेज शामिल हैं. स्वास्थ्य सेवाओं के अंतर्गत अस्पताल, सार्वजनिक स्वास्थ्य केंद्र और औषधालय शामिल हैं. इसके अलावा परिवार नियोजन केंद्र और कुष्ठ व अन्य बीमारियों के इलाज के लिए विशेष चिकित्सालय हैं.

सांस्कृतिक जीवन

जनजातीय रीति–रिवाज, लोककथाएं व लोकगीत त्रिपुरा की संस्कृति के महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं. दो प्रमुख वार्षिक उत्सव गडिया (अप्रै.) और कास (जून या जुला.) हैं, जिनमें पशुओं की बलि चढ़ाई जाती है. हर समुदाय का अपना नृत्य है, जैसे रियांग का होजागिरी; त्रिपुरी का गडिया, झूम, मालमिता, मसक सुमनी और लेबांग बूमनी; चकमा का बीजू; लुसाई का केर और वेल्कम; मलसुम का हाई–हाक; गारो का वंगाला; मोग का संगरैका, चिमिथांग, पडिशा और अभंगमा; कटई और जमतिया का गडिया; बंगाली समुदाय का गंजन, धमैल, सरी और रबींद्र संगीत; मणिपुरी समुदाय का बसंत राश और पुंगचलाम. प्रमुख संगीत वाद्य खंब, बांसुरी, लेबांग, सरिंदा, दोतारा और खेंगरोंग हैं. सचिन देव बर्मन और राहुल देव बर्मन जैसे प्रसिद्ध संगीतकार इसी राज्य की देन हैं.

कुछ महत्त्वपूर्ण मेले व त्योहार हैं– अशोकाष्टमी (अप्रै.); गडिया व गंजन (अप्रै.); रबींद्र/नज़रूल जयंती (मई); खर्ची (जुला.); नौका दौड़ (अग.); मनसा मंगल (अग.); दुर्गा पूजा (अक्तू.); दीवाली (नवं.); राश (नवं.) और पौष सक्रांति मेला (जन.). राज्य से 15 बांग्ला व दो अंग्रेज़ी दैनिक समाचार पत्र प्रकाशित होते हैं.

पर्यटन

त्रिपुरा में अनेक पर्यटन स्थल हैं. मई 1995 में देशी व विदेशी पर्यटकों के लिए प्रतिबंधित क्षेत्र अनुमति–पत्र की समाप्ति के बाद 1996 में यहां लगभग दो लाख पर्यटक आए. राज्य में और अधिक पर्यटकों को आकर्षित करने की क्षमता है. कोलकाता व गुवाहाटी से राजधानी अगरतला तक वायुमार्ग द्वारा पहुंचा जा सकता है. खोवाल, कमालपुर और कैलाशहर तीन छोटे हवाई अड्डे हैं.

यह राज्य गुवाहाटी से रेलमार्ग द्वारा भी जुड़ा है. नज़दीकी रेलशीर्ष कुमारघाट में है. यह अगरतला से जुड़ा है, जो यहां से लगभग 140 किमी दूर है. शिलांग होकर गुज़रते राष्ट्रीय राजमार्ग–44 से गुवाहाटी से अगरतला तक 24 घंटे में बस द्वारा पहुंचा जा सकता है. इस मार्ग पर निजी एवं सार्वजनिक आरामदायक बसें उपलब्ध हैं. इसके अलावा, असम में सिल्चर तक वायु या सड़क मार्ग द्वारा पहुंचने के बाद सड़क मार्ग

द्वारा अगरतला पहुंचा जा सकता है. विदेशी पर्यटक अखौरा सीमा नियंत्रण चौकी से होते हुए बांग्लादेश से भी अगरतला पहुंच सकते हैं. ढाका से अगरतला तक की सड़क यात्रा लगभग तीन घंटे की है.
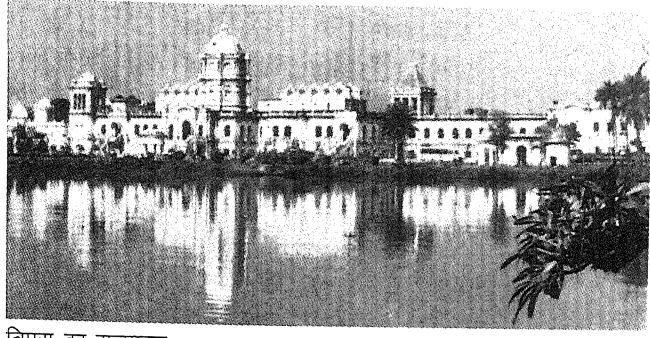
त्रिपुरा का राजमहल
सौजन्य : त्रिपुरा पर्यटन विभाग

यहां के पर्यटन स्थलों में अगरतला स्थित उज्ज्यंत महल, कुंजबन महल/रबींद्र कानन और मालंचा निवास शामिल हैं. अगरतला से 55 किमी दूर नीरमहल/रुद्रसागर झील व 178 किमी की दूरी पर उनाकोटी शैल शिल्प है, जो कैलाशहर से आठ किमी दूर है. अगरतला में अशोकाष्टमी मेला हर साल अप्रैल महीने में लगता है.

अगरतला से 75 किमी दूर गुमटी (गोमती) नदी के किनारे उदयपुर और अमरपुर के बीच स्थित देवतामुरा शैल प्रतिमाएं/चाब्लमुरा एक अन्य पर्यटक स्थल है. गुमटी नदी के दाएं किनारे पर उदयपुर में भुवनेश्वरी मंदिर है, जहां रबींद्रनाथ टैगोर ने *बिसर्जन* और *राजर्षि* की रचना की थी. अगरतला से 25 किमी की दूरी पर सेपाहीजाला वन्यजीव अभयारण्य है, इसमें लगभग 150 प्रजातियों के पक्षी और चश्मे के जैसे निशान वाले विख्यात बंदर पाए जाते हैं.

तृष्णा वन्यजीव अभयारण्य अगरतला से लगभग 100 किमी दूर दक्षिण त्रिपुरा ज़िले में स्थित है. अगरतला से 27 किमी की दूरी पर कमलासागर झील और लगभग 200 किमी दूर मिज़ोरम की सीमा के पास जमपुई पर्वत है, जिसकी ऊंचाई समुद्र तल से लगभग 914 मीटर है. त्रिपुरा की सबसे ऊंची चोटी बेतलोंगछिप यहीं स्थित है.

पर्यटन की दृष्टि से सभी महत्त्वपूर्ण स्थानों पर सरकारी आवास उपलब्ध है. साथ ही निजी होटल और अतिथिगृह भी हैं, लेकिन ये अधिकांशतः अगरतला में स्थित हैं. राज्य के पर्यटन विभाग ने कई पर्यटन परिपथों की पहचान की है, जिनमें से अधिकांश कोलकाता (भूतपूर्व कलकत्ता) और राज्य की राजधानी से शुरू होते हैं. 1987 में पर्यटन को यहां उद्योग घोषित किया गया और राज्य सरकार पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए कई प्रकार के प्रोत्साहन देती है.

इतिहास

किंवदंतियों के अनुसार, महाभारत काल में भी त्रिपुरा का अस्तित्व था. त्रिपुरा के इतिहास में दो भिन्न काल शामिल हैं–पारंपरिक, अधिकांशतः किंवदंतियों का काल, जिसका उल्लेख त्रिपुरा के काल्पनिक आरंभिक महाराजाओं के इतिहास *राजमाला* में मिलता है और दूसरा 1431–1462 तक का काल, जो महान राजा धर्म माणिक्य का

शासनकाल था. बांग्ला पद्य में लिखित *राजमाला* का संग्रह धर्म माणिक्य के दरबार के ब्राह्मणों ने किया था. उनके और उनके उत्तराधिकारी धन्य माणिक्य (शासनकाल, लगभग 1463–1515) के शासनकाल में कई सैनिक अभियानों के ज़रिये त्रिपुरा का प्रभाव क्षेत्र अधिकांश बंगाल, असम तथा म्यांमार तक विस्तृत हो गया. 17वीं शताब्दी के आरंभ में त्रिपुरा के अधिकांश हिस्से पर मुग़ल साम्राज्य की प्रभुता स्थापित हुई.

1765 में जब ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल की दीवानी या वित्तीय प्रशासन हासिल हुआ, तो मुग़ल शासन के तहत आने वाला त्रिपुरा का क्षेत्र अंग्रेज़ों के नियंत्रण में आ गया. 1808 के बाद से प्रत्येक शासक को ब्रिटिश सरकार से अधिष्ठापन प्राप्त करना पड़ता था. 1905 में त्रिपुरा को पूर्वी बंगाल व असम के नए प्रांत में शामिल कर लिया गया और इसे हिल टीपरा कहा गया.

त्रिपुरा पर शासन करने वाले अंतिम महाराजा बीर बिक्रम किशोर माणिक्य 1923 में गद्दी पर बैठे और 1947 में अपनी मृत्यु से पहले उन्होंने निर्णय किया कि त्रिपुरा को नव स्वतंत्र भारत देश में शामिल हो जाना चाहिए. 15 अक्तूबर 1949 को त्रिपुरा आधिकारिक रूप से भारत का हिस्सा बना और एक सितंबर 1956 को इसे केंद्रशासित प्रदेश बना दिया गया. 21 जनवरी 1972 को इसे भारतीय संघ के राज्य का दर्जा दिया गया.

1980 के दशक में राज्य में बड़े पैमाने पर जातीय हिंसा हुई, जिसका मुख्य कारण त्रिपुरा में स्वतंत्र जनजातीय क्षेत्र की मांग थी. 1988 में आदिवासी विद्रोहियों ने शत्रुता छोड़ दी और राज्य सरकार में अधिक भागीदारी के बदले स्वायत्तता की मांग का परित्याग कर दिया. जनसंख्या (2001) राज्य कुल 31,91,168; ग्रामीण 26,48,074; शहरी 5,43,094.

त्रिपुरा पहाड़ियां

पहाड़ियां, पूर्वी त्रिपुरा राज्य, पूर्वोत्तर भारत. मिज़ोरम राज्य की मिज़ो पहाड़ियों के रास्ते में पड़ने वाली त्रिपुरा पहाड़ियां पूर्वांचल के पश्चिमी निचले विस्तार का निर्माण करती हैं, जो म्यांमार तक विस्तृत अस्थिर भूकंपीय क्षेत्र है.

यह उत्तर–दक्षिण समानांतर वलयित पहाड़ियों की श्रृंखला है, जिनकी ऊंचाई दक्षिण की ओर पूर्वी मैदानों में मिलने तक घटती जाती है. पूर्व की ओर पहाड़ियों की हर दूसरी श्रेणी अपने से पहले वाली श्रेणी से ज़्यादा ऊंची है. देवतामुरा के बाद क्रमशः आर्थरमुरा, लंगतराई और सारवां त्लंग श्रेणियां आती हैं. जामराइ त्लंग पर्वत 74 किमी लंबा है और इसकी उच्चतम चोटी बेतलिंग त्लंग (1,000 मीटर) है. त्रिपुरा पहाड़ियों में, जो कभी सघन वनों से ढकी हुई थीं, अब सिर्फ़ छोटे–छोटे मृदा खंड हैं, जहां की विरल जनसंख्या झूम खेती (काटकर और जलाकर ज़मीन साफ़ करके खेती करने की पद्धति) का प्रयोग करती है. धालाई, खोवाई, जुरि और देव नदियों का उद्गम त्रिपुरा पहाड़ियों में हुआ है और ये घाटियों के आर–पार बहती हैं. अन्य छोटी धाराएं शीतकाल में शुष्क रहती हैं. यहां की मिट्टी सामान्यतः मोटी रेतीली दोमट है, जो

लगभग अनुपजाऊ है. जनसंख्या में प्राचीन त्रिपुरी, देशी त्रिपुरी, रियांग, जमातिया, बोड़ो, कुकी और नोआतिया जनजातियां शामिल हैं. क्षेत्र का प्रमुख पेशा कृषि है. फ़सलों में चावल, जूट, कपास, तिलहन, आलू, गन्ना और फल शामिल हैं. उद्योगों से वस्त्र, बेंत और बांस के उत्पाद, अनुकूलित लकड़ियों के उत्पादन के साथ–साथ बढ़ईगिरी, लुहारगिरी और कढ़ाई का कार्य महत्त्वपूर्ण है. धर्मनगर और कैलाशहर यहां के महत्त्वपूर्ण शहर हैं.

त्रिपुरा के मैदान

मैदानी क्षेत्र, अगरतला का मैदान भी कहलाता है, दक्षिण–पश्चिमी त्रिपुरा राज्य, पूर्वोत्तर भारत, लगभग 4,150 वर्ग किमी में फैला. त्रिपुरा के मैदान त्रिपुरा पहाड़ियों के पश्चिम में वृहद गंगा–ब्रह्मपुत्र के निचले क्षेत्र (पूर्वी मैदान भी कहलाते हैं) के एक हिस्से पर स्थित हैं. ये झीलों और दलदलों से भरे हुए हैं और इनके ज़्यादातर हिस्से में वन हैं. नदी घाटी को छोड़कर मिट्टी की परत पतली है, लेकिन सभी जगह उष्णकटिबंधीय धूप और चक्रवाती वर्षा ने मृदा में मौजूद खनिजों को बहा दिया है. यहां बाढ़ की आशंका बनी रहती है, जो यहां की आबादी को बहुत नुक़सान पहुंचाती है. मॉनसून के पहले असामान्य वर्षा होने के कारण 1984 में यहां अत्यधिक विनाशकारी बाढ़ आई थी.

कृषि यहां का मुख्य पेशा है. चावल, जूट, चाय और कपास यहां की मुख्य फ़सलें हैं. उद्योगों में कपड़े की बुनाई, चावल व आटा मिलें, डिब्बाबंद फल, बर्तन व साबुन निर्माण तथा बेंत, बांस व चमड़े के सामान का उत्पादन शामिल है. यहां पेड़ों और फूलों के बगीचे के साथ मत्स्यपालन का चलन है. अगरतला प्रमुख नगर है; बिलोनिया और खोवाई भी महत्त्वपूर्ण हैं.

त्रिमार्ग

मोक्ष (अंतिम मुक्ति) प्राप्त करने के विभिन्न मार्ग. हिंदू मोक्ष के तीन मार्गों को मान्यता देते हैं. अत्यंत प्रभावशाली धर्मग्रंथ *भगवद्गीता* (पहली या दूसरी शताब्दी) में मोक्ष प्राप्त करने के तीन मार्ग (अलग–अलग आकलित, लेकिन अविशिष्ट) बताए गए हैं, जिसके अनुसार कर्म स्वयं नहीं, बल्कि उसके फल की इच्छा से उत्पादित होता है और इस प्रकार आसक्ति पैदा होती है. मोक्ष–प्राप्ति के तीन मार्ग हैं (1) कर्म मार्ग, आनुष्ठानिक तथा सामाजिक कर्तव्यों का निष्काम भाव से संपादन; (2) ज्ञान मार्ग, ब्रह्म के साथ अपनी एकात्मता की पराबौद्धिक अंतर्दृष्टि प्राप्त करने के लिए ध्यान का उपयोग, जिसके पहले एक लंबा और प्रणालीबद्ध नैतिक प्रशिक्षण 'योग' होता है; और (3) भक्ति मार्ग, अपने इष्टदेव के प्रति भक्ति. इन मार्गों को विभिन्न प्रकार के लोगों के लिए उचित माना जाता है.

हालांकि मोक्ष की खोज बहुत थोड़े से हिंदुओं का ही लक्ष्य रहा है, मुक्ति एक धार्मिक आदर्श है, जिसने सभी लोगों को प्रभावित किया है. मोक्ष ने न केवल भारतीय सामाजिक संस्थापनाओं तथा धार्मिक सिद्धांतों व आचारों के पदानुक्रमिक मूल्य निर्धारित किए हैं, बल्कि भारतीय दर्शन के कार्यों को भी निर्धारित किया है, भारतीय

दर्शन में इसकी विवेचना है कि संसार (पुनर्जन्म का चक्र या बंधन) से मुक्ति और आध्यात्मिक स्वतंत्रता की प्राप्ति हेतु प्रत्यक्ष अनुभव के माध्यम से पूर्ण संतुष्टि की तलाश के लिए क्या किया जाना चाहिए और क्या लक्षित करना चाहिए. जिन लोगों तक औपचारिक भारतीय दर्शन नहीं पहुंचा, उन्हें 'कर्म' और 'मोक्ष' के सिद्धांतों का अस्पष्ट ज्ञान ही है. इन सिद्धांतों के अर्द्ध लोकप्रिय वातावरण ने अनुमान को और बढ़ावा दिया.

सामान्य हिंदू के लिए सांसारिक जीवन का मुख्य लक्ष्य सामाजिक व आनुष्ठानिक कर्तव्यों को पूरा करना और अपनी जाति, परिवार तथा व्यवसाय से संबंधित आचारों के परंपरागत नियमों को मानना है. इनमें व्यक्ति के धर्म, (मौलिक कर्तव्य, उचित आचरण), वृहत्तर स्थायित्व में अपना योगदान, क़ानून एवं व्यवस्था और ब्रह्मांड, प्रकृति व समाज में आधारभूत संतुलन शामिल है. सनातन धर्म एक पारिभाषिक शब्दखंड है, जिसका उपयोग कुछ आधुनिक हिंदू अपने धर्म को दर्शाने के लिए करते हैं. यह लगभग 'पश्चिम के धार्मिक विश्वासों और आचारों' के समरूप है, धर्म सभी हिंदुओं के लिए है, किंतु व्यवसाय आश्रित चार प्रमुख वर्णों, ब्राह्मण (पुरोहित तथा उपदेशक), क्षत्रिय (शासक तथा योद्धा), वैश्य (प्राचीन भारत में कृषक, आधुनिक भारत में व्यापारी) और शूद्र (दास या श्रमिक) के लिए कुछ विशेष धर्म समुचित माने गए हैं. इन चारों में हज़ारों जातियों के उनके व्यवसाय तथा सामाजिक स्थितियों के अनुकूल धर्म हैं. रोज़ी–रोटी में लगे लोगों के लिए मोक्ष एक सुदूर लक्ष्य है, फिर भी करोड़ों हिंदुओं के लिए यह चरम धार्मिक तलाश है.

त्रिमूर्ति

(संस्कृत शब्द, अर्थात तीन स्वरूप), हिंदू धर्म में तीन सबसे बड़े देवताओं ब्रह्मा, विष्णु और शिव का त्रिकाय. विद्वान त्रिमूर्ति के सिद्धांत को विभिन्न एकेश्वरवादी सिद्धांतों को एक–दूसरे से जोड़ने और ब्रह्म (परम सत्य) के दार्शनिक सिद्धांत के साथ एकीकृत करने का प्रयास मानते हैं. इस सिद्धांत को कालिदास की कविता *कुमारसंभवम्* (लगभग चौथी–पांचवीं शताब्दी) में शास्त्रीय अभिव्यक्ति मिली. त्रिमूर्ति प्रतीकवाद में तीनों देवताओं को एक स्वरूप में जोड़ दिया गया है, जिसके तीन चेहरे होते हैं. प्रत्येक देवता सृष्टि के एक आयाम का उत्तरदायी होता है, जिसमें ब्रह्मा स्रष्टा, विष्णु पालक और शिव संहारक हैं. लेकिन अलग–अलग संप्रदायों के भक्त केवल एक देवता को परम मानकर पूजते हैं तथा उसी देवता को सृष्टि के सभी आयामों का श्रेय भी देते हैं.

त्रिरत्न

(संस्कृत शब्द, अर्थात तीन रत्न), पालि ति–रतन, इसे त्रिध या त्रिगुण शरण भी कहते हैं, जो बौद्ध और जैन धर्मों के तीन घटक हैं.

बौद्ध धर्म में त्रिरत्न : बुद्ध, धर्म (सिद्धांत या विधि) तथा संघ (मठीय व्यवस्था या धार्मिकों का समुदाय) हैं. बुद्ध के समय से ही मत में दीक्षा त्रित्व के इन शब्दों की

औपचारिक मान्यताओं में निहित है– मैं बुद्ध की शरण में जाता हूं, मै धर्म की शरण में जाता हूं, मैं संघ की शरण में जाता हूं (*बुद्धं शरणम् गच्छामि, धम्मम् शरणम् गच्छामि, संघम् शरणम् गच्छामि*).

जैन धर्म में तीन रत्न (जिसे रत्नत्रय भी कहते हैं) को सम्यक दर्शन (सही दर्शन), सम्यक ज्ञान और सम्यक चरित्र के रूप में मान्यता प्राप्त है. इनमें से किसी का भी अन्य दो के बिना अलग से अस्तित्व नहीं हो सकता है तथा आध्यात्मिक मुक्ति या मोक्ष के लिए तीनों आवश्यक हैं. कला में त्रिरत्न को अक्सर त्रिशूल से दर्शाया जाता है.

त्रिशला

जैन धर्म के 24वें और अंतिम तीर्थंकर या उद्धारक महावीर की माता. बुद्ध की माता के समान त्रिशला भी क्षत्रिय या योद्धा जाति की थीं. जैन मान्यता के अनुसार, त्रिशला को भी अन्य 24 जिनों (संतों) की माताओं के समान गर्भधारण के समय 14 पवित्र स्वपनों की शृंखला दिखाई दी थी.

त्रिशिक्षा

(संस्कृत शब्द, अर्थात त्रिगुण प्रशिक्षण), पालि में ति–सिक्खा, बौद्ध धर्म में ज्ञान या बोध प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति के लिए आवश्यक तीन प्रकार की शिक्षाएं. त्रिगुण प्रशिक्षण में बौद्ध आचारों के सभी आयाम शामिल हैं. बढ़ते क्रम में ये हैं : (1) शील (नैतिक आचार), जो किसी के शरीर और मन को ध्यान केंद्रित करने के योग्य बनाता है, (2) समाधि (ध्यान), मन का ध्यान केंद्रित होना, जो सत्य का स्पष्ट दर्शन करने के लिए आवश्यक है, (3) प्रज्ञा (बुद्धिमत्ता), इसे अनुभूतिमूलक ज्ञान के समुच्चय के रूप में नहीं, बल्कि परम यथार्थ के अंतर्ज्ञात अनुभव के रूप में समझा जा सकता है और इसे समाधि अवस्था में ही प्राप्त किया जा सकता है.

त्रिशूर

नगर, भूतपूर्व त्रिचूर, त्रिशूर ज़िले का प्रशासनिक मुख्यालय, मध्य केरल राज्य, दक्षिणी भारत. यह नगर एक व्यापक लैगून प्रणाली से 19 किमी अंदर की ओर स्थित है. वाणिज्यिक और सांस्कृतिक केंद्र वाला त्रिशूर भारत के पश्चिमी तट का प्राचीनतम नगर माना जाता है, इसके नाम का अर्थ है 'छोटा पवित्र स्थल'. त्रिशूर एक पर्वतखंड पर बने वटक्कुंठा मंदिर के चारों ओर बसा हुआ है, जो यहां के एक वार्षिक उत्सव का केंद्र है. इसके उद्योगों में सूती वस्त्र बुनाई, साबुन निर्माण से जुड़े उद्योग, चावल, तेल और आरा मिलें शामिल हैं. त्रिशूर में कालीकट विश्वविद्यालय से संबद्ध 13 महाविद्यालय, पुरातत्व एवं कला संग्रहालय और एक प्राणी उद्यान है. गुरुवायूर स्थित श्रीकृष्ण मंदिर एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक केंद्र है. यह नगर केरल के शेष महत्त्वपूर्ण शहरों और आंतरिक भागों से रेल एवं सड़क मार्गों से जुड़ा है.

3,032 वर्ग किमी क्षेत्र में फैला त्रिशूर ज़िला भूतपूर्व कोचीन रियासत का हिस्सा था. यह दक्षिण–पूर्व को छोड़कर मुख्यतः तटीय मैदानों में अवस्थित है, जहां पर यह पश्चिमी घाट के पहाड़ी क्षेत्र के साथ मिलता है. यद्यपि कृषि (चावल एवं नारियल मुख्य फ़सलें हैं) महत्त्वपूर्ण है, पर यहां कुछ उद्योग भी हैं. जनसंख्या (2001) न.नि. क्षेत्र 3,17,474; ज़िला कुल 29,75,440.

थंग–का

(तिब्बती शब्द, अर्थात लपेटी हुई कोई वस्तु), थांका भी कहलाता है, सामान्यतः सूती कपड़े पर तिब्बती धार्मिक चित्र या रेखाचित्र; इसके निचले किनारे पर बांस की छड़ी चिपकी होती है, जिसके सहारे इसे लपेटा जाता है. थांका मूल रूप से ध्यान का साधन है, हालांकि इसे मंदिरों या पारिवारिक वेदिकाओं पर लटकाया और धार्मिक शोभा यात्रा में ले जाया जा सकता है या प्रवचनों की व्याख्या के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है. थांका बनाना स्वच्छंद कला नहीं है, बल्कि ये धर्मशास्त्रीय नियमों के अनुसार चित्रित किए जाते हैं. इनकी विषय–वस्तु तिब्बती धर्म को समझने में बहुत सहायक है. थांकों में सामान्यतः देवताओं एवं लामाओं से घिरे बुद्ध और उनके जीवन के दृश्यों; ब्रह्मांडीय वृक्ष की शाखाओं पर एकत्रित देवतागण; जीवनचक्र (संस्कृत : भव–चक्र), पुनर्जन्म के विभिन्न जगतों के प्रदर्शन सहित; वे मानस–चित्र, जिनका घटित होना मृत्यु एवं पुनर्जन्म के बीच की स्थिति (बार–दो) के दौरान माना जाता है; ब्रह्मांड के प्रतीकात्मक चित्रण, मंडल; जन्मपत्रियां; और दलाई एवं पंचेन लामाओं, संत तथा महागुरु, जैसे 84 महासिद्धों का चित्रण होता है. थांका भारतीय वस्त्र चित्रकारी (पट्ट), प्रत्येक अनुष्ठान के लिए मूल रूप से भूमि पर बनाए मंडलों तथा कथावाचकों द्वारा प्रयुक्त पट–चित्रों से विकसित हुआ है. इसकी चित्रकला ने मध्य एशियाई, नेपाली एवं कश्मीरी शैलियों तथा भू–दृश्यों के लिए चीनी शैली से प्रेरणा ली है. थांका पर हस्ताक्षर नहीं किए जाते तथा ये यदा–कदा ही कालांकित किए गए हैं, लेकिन इतना अवश्य है कि ये लगभग 10वीं सदी में प्रचलन में आए. विषय–वस्तु, भंगिमाओं और प्रतीकों में परंपरा के प्रति निष्ठा के कारण सटीक कालानुक्रम तैयार करना कठिन है.

थांका आमतौर पर आयताकार होते हैं, हालांकि पहले ये चौकोर होते थे. एक सांचे पर मलमल या लिनन के कपड़े को कसकर उस पर पानी में बुझे चूने और जानवर से प्राप्त गोंद का मिश्रण लगाकर तैयार किया जाता है. तब उस मोटी और सूखी परत को सीपी से रगड़कर चिकना एवं चमकीला बनाया जाता है. चित्रों की रूपरेखा लकड़ी के कोयले से खींची जाती है (आजकल इन्हें अक्सर मुद्रित किया जाता है) और तब रंगों, सामान्यतः खनिज चूना एवं लासे का मिश्रण, से भरा जाता है. प्रमुख प्रयुक्त रंग हैं सफ़ेद, लाल, सांखिया पीला, कासीस हरा, किरमिजी सिंदूरी, लाजवर्द नीला और नील. सुनहरा रंग पृष्ठभूमि और आभूषणों में लगाया जाता है. चित्र को नक़्क़ाशीदार रेशमी किनारों में मढ़ा जाता है, जिसके ऊपरी किनारे पर चपटी तथा निचले किनारे पर गोल छड़ी चिपकी होती है. कभी–कभी पतला रेशमी पर्दा भी लगा होता है. निचले नक़्क़ाशीदार किनारे पर रेशम का एक टुकड़ा अवश्य टंका होता है, जिसे थांका द्वार कहा जाता है तथा जो आदि रचयिताओं या संपूर्ण रचना के स्रोत का

प्रतिनिधित्व करता है. सामान्यतः लामाओं की निगरानी में आम आदमी चित्र बनाते हैं, लेकिन लामा द्वारा प्रतिष्ठित न किए जाने तक इनका कोई धार्मिक महत्त्व नहीं होता है.

थार मरुस्थल

लहरदार रेतीले पहाड़ों का विस्तार, विशाल भारतीय मरुस्थल भी कहलाता है. कुछ भाग भारत के राजस्थान में और कुछ पाकिस्तान में स्थित. 2,00,000 वर्ग किमी में फैले इस क्षेत्र के पश्चिम में सिंधु द्वारा सिंचित क्षेत्र है, इसके दक्षिण–पूर्व में अरावली का विस्तार है और दक्षिण में कच्छ का रेगिस्तान है, तो पूर्वोत्तर में पंजाब का भूभाग है, यह मरुस्थल मॉनसून के अभाव के परिणामस्वरूप निर्मित हुआ है, जिसके कारण इस इलाक़े में पर्याप्त वर्षा नहीं होती. थार शब्द की उत्पत्ति थल से हुई है, जिसका अर्थ रेत का टीला है.

मरुस्थल की रेत पूर्व कैंब्रियन युग की चट्टानों (ग्रेनाइट जैसी आग्नेय चट्टानों, जो 3.8 अरब वर्ष पुरानी हैं) के साथ 2.5 अरब से 57 लाख वर्ष पुरानी अवसादी चट्टानों का परिवर्तित रूप है. इसके अलावा आधुनिक भौगर्भिक काल में नदियों द्वारा बहाकर लाए गए निक्षेप भी इस रेत में हैं. सतह पर पाई गई रेत वायूढ़ (हवा द्वारा लाई गई) है. 16 लाख वर्ष पुरानी रेत की ऊपरी परत सबसे नई है.

थार मरुस्थल में सूर्यास्त का एक दृश्य, राजस्थान

इस रेगिस्तान की सतह असमान और ऊंची–नीची है, रेत के छोटे–बड़े टीले रेतीले मैदानों और छोटी बंजर पहाड़ियों या *भाकर* से विभक्त हैं, जो आसपास के मैदानों से अचानक उठती हैं. विभिन्न आकार के रेतीले टीले सतत परिवर्तनशील हैं. पुराने टीले हालांकि अर्द्ध स्थिर और स्थिर हैं और उनकी ऊंचाई लगभग 150 मीटर तक है. इस पूरे क्षेत्र में खारे पानी की कुछ झीलें (प्लाया) बिखरी हुई हैं, जिन्हें स्थानीय भाषा में *ढांढ़* कहते हैं.

यहां मिट्टी की कुल सात श्रेणियां मिलती हैं– मरुस्थली मिट्टी, मरुस्थली लाल मिट्टी, भूरी व काली मिट्टी, तराई की लाल व पीली मिट्टी, खारी मिट्टी, मौसमी छिछली मिट्टी और पहाड़ी इलाक़ों में मुलायम भुरभुरी मिट्टी. ये सभी मिट्टियां मुख्यतः खुरदुरी, चूनेदार और पूरी तरह शुष्क हैं. मिट्टी की परतों में चूने का कम या ज़्यादा जमाव है. यहां की मिट्टी सामान्यतः अनुपजाऊ है और तेज़ हवाएं चलने के कारण उस पर रेत जमा हो जाती है.

इस रेगिस्तानी पट्टी में वार्षिक वर्षा की दर बहुत कम है. यहां पश्चिम में वार्षिक वर्षा 100 मिमी या उससे कम और पूर्व में लगभग 500 मिमी होती है. वर्षा की स्थिति काफ़ी अनियमित है और साल दर साल इसके औसत में भारी उतार–चढ़ाव आता है. कुल वर्षा का लगभग 90 प्रतिशत भाग दक्षिण–पश्चिमी मॉनसून काल में जुलाई से सितंबर के बीच होता है, दूसरे मौसमों में पूर्वोत्तर से हवाएं चलती हैं. मई और जून सबसे गर्म महीने होते हैं, जब तापमान 50° से. तक पहुंच जाता है. जनवरी के महीने में ठंड के दौरान न्यूनतम तापमान 5° से 10° से. तक रहता है. मई और जून के मौसम में 140 से 150 किमी प्रति घंटा की गति से तेज़ धूल भरी आंधी और हवाएं चलती हैं.

रेगिस्तानी वनस्पतियों में ज़्यादातर जड़ी–बूटियां या छोटी झाड़ियां होती हैं; पेड़ कहीं–कहीं दिखाई पड़ते हैं. पहाड़ियों पर गोंद के *एरोबिक अकासिया* और *यूफ़ॉर्बिया* भी मिलते हैं. मैदानी इलाक़ों में खेजड़ी (*प्रोसोपिस सिनेरारिया*) के पेड़ पाए जाते हैं.

घास के मैदानों पर काला हिरन, चिंकारा और अन्य शिकारी–पक्षी, जैसे तीतर और बटेर पाए जाते हैं. प्रवासी पक्षियों में भट्टतीतर, बत्तख़ और कलहंस प्रमुख हैं.

यह मरुस्थल लुप्तप्राय भारतीय सोन चिड़िया का आवासीय क्षेत्र भी है.

थार मरुस्थल में दुधारू गायों की पांच मुख्य नस्लें पाई जाती हैं, इनमें से थारपारकर नस्ल की गाय सबसे अधिक दूध देती है, जबकि कांकरे नस्ल की गाय बोझ ढोने और दूध उत्पादन में समान रूप से महत्त्वपूर्ण है. मध्यम–उत्तम और मोटी, दोनों क़िस्मों की ऊन के लिए यहां भेड़ों का पालन किया जाता है. आमतौर पर ऊंट का परिवहन के साथ–साथ जुताई और अन्य कृषि कार्यों में भी इस्तेमाल किया जाता है.

यहां की ज़्यादातर आबादी ग्रामीण इलाक़ों में रहती है और विषम घनत्व में फैली है. यहां के रीति–रिवाज, परंपरा और वेशभूषा में एकरूपता नहीं है. यहां हिंदू और मुसलमान, दोनों संप्रदायों के लोग रहते हैं और जनसंख्या जटिल आर्थिक व सामाजिक आधारों पर विभक्त है. यहां पर अनेक बंजारे पशुपालन, दस्तकारी और व्यापार में

संलग्न हैं. ये न तो किसी ख़ास जातीय समूह से जुड़े हैं और न स्थान विशेष तक सीमित हैं. सामान्यतः ये स्थानबद्ध आबादी और उसकी अर्थव्यवस्था से सहजीवी रूप में जुड़े हैं.

घास यहां का प्रमुख प्राकृतिक संसाधन है. इससे पशुओं के लिए स्वादिष्ट प्राकृतिक चारा तो मिलता ही है, स्थानीय लोग इससे दवा भी बनाते हैं. वनस्पतियों के सत्व से दवाइयां बनती हैं और तेल से साबुन भी तैयार किया जाता है. यहां पानी की बेहद कमी है. मौसमी वर्षा के पानी को कुंडों और जलाशयों में इकट्ठा कर लिया जाता है, जिसका इस्तेमाल पीने और अन्य घरेलू उपयोगों में होता है. यहां भूमिगत जल का इस्तेमाल नहीं होता, क्योंकि एक तो जलस्तर बहुत नीचे है और फिर भूमिगत जल खारा होता है. कुओं और जलाशयों के अलावा नहरें यहां पानी का प्रमुख स्रोत हैं. पानी उपलब्ध होने पर गेहूं और कपास जैसी फ़सलें उगाई जाती हैं. सिंधु नदी पर 1932 में तैयार सुक्कुर बांध से, जहां पाकिस्तान स्थित दक्षिणी थार में सिंचाई होती है, वहीं सतलुज नदी से निकली गंगा नहर से भारत स्थित उत्तरी हिस्से में सिंचाई का काम होता है. राजस्थान नहर से भारत में थार क्षेत्र में बड़े पैमाने पर सिंचाई होती है. यह नहर भारतीय पंजाब में सतलुज और व्यास नदियों के संगम पर बने हरिके बैराज से निकलती है और दक्षिण–पश्चिम दिशा में 470 किमी बहती है.

कोयले और तेल से चालित ताप विद्युत परियोजनाएं यहां बड़े शहरों में स्थित हैं और बिजली की स्थानीय आपूर्ति करते हैं. पंजाब में सतलुज नदी पर स्थित नांगल विद्युत घर से जलविद्युत ऊर्जा की आपूर्ति की जाती है.

थार मरुस्थल में ऊंट की सवारी करते पर्यटक, राजस्थान
सौजन्य : गौतम रामचंदानी

यहां सड़कें और रेलमार्ग कम हैं. थार के दक्षिणी भाग में एक रेलवे लाइन है. रेगिस्तान के भारतीय हिस्से में एक दूसरी रेलवे लाइन है, जो मेड़ता रोड से बीकानेर होकर सूरतगढ़ पहुंचती है. एक दूसरी रेलवे लाइन जोधपुर और जैसलमेर को जोड़ती है. रेगिस्तान के पाकिस्तानी हिस्से में बहावलपुर से हैदराबाद को जोड़ती एक रेलवे लाइन है.

1947 में हुए भारत–पाकिस्तान विभाजन से सिंधु नदी की सिंचाई नहर प्रणाली का अधिकांश हिस्सा पाकिस्तानी क्षेत्र में चला गया, जबकि भारतीय हिस्से का एक बड़ा रेगिस्तानी क्षेत्र असिंचित रह गया. 1960 के दोनों देशों के बीच हुए सिंधु जल संधि के द्वारा निश्चित किए गए अधिकार व अनुबंधों ने सिंधु नदी के जल के उपयोग की सीमाओं को निर्धारित किया. इस संधि के तहत रावी, व्यास और सतलुज का पानी राजस्थान नहर को उपलब्ध कराया गया, जिससे मुख्यतः भारत के पश्चिमी राजस्थान के रेगिस्तानी इलाक़ों की सिंचाई हो सके.

थारु

भारत के उत्तरांचल और नेपाल के दक्षिण भाग में हिमालय के तराई क्षेत्र में रहने वाले लोग. 20वीं सदी के अंत तक नेपाल में थारु जाति के लोगों की संख्या लगभग 7 लाख 20 हज़ार और भारत में लगभग 10 हज़ार थी. ये लोग सांस्कृतिक रूप से भारत से जुड़े हैं और ये भारोपीय परिवार के भारतीय–ईरानी समूह के अंतर्गत आने वाली भारतीय–आर्य उपसमूहों की भाषा बोलते हैं. उत्तरांचल के थारु खेती, पशुपालन, शिकार, मछली पकड़ने और वनोपज संग्रहण जैसे कार्य करते हैं. इनकी पांच उच्च प्रजातियां, जो कुल आबादी का 80 प्रतिशत है, अपनी उत्पत्ति राजस्थान के राजसी मूल से होने का दावा करती हैं. यद्यपि ये हिंदू होते हैं, लेकिन मदिरा और गोमांस का सेवन करते हैं. इनकी सामाजिक प्रणाली पितृवंशीय होने के बावजूद, संपत्ति पर महिलाओं का अधिकार हिंदू समाज से अधिक होता है. थारुओं के हर गांव की एक पंचायत और उसका मुखिया होता है.

थेरवाद

(पालि शब्द, अर्थात अग्रज़ों का मार्ग), बौद्ध धर्म का प्रमुख स्वरूप, श्रीलंका (भूतपूर्व सीलोन), म्यांमार (भूतपूर्व बर्मा), थाईलैंड, कंबोडिया एवं लाओस में प्रचलित.

थेरवाद अन्य बौद्ध मतों की तरह बुद्ध द्वारा सिखाए गए मूल सिद्धांतों एवं आचरणों का अच्छी तरह पालन करने का दावा करता है. थेरवादी प्राचीन भारतीय बौद्ध धर्म के पालि धर्मग्रंथों को आधिकारिक मानते हैं तथा अपनी सांप्रदायिक वंशावली को अग्रजों (संस्कृत में स्थविर; पालि में थेर) से जोड़ते हैं, जिन्होंने प्रथम बौद्ध संघ के वरिष्ठ भिक्षुओं की परंपरा का अनुसरण किया.

बुद्ध की मृत्यु के बाद शुरू की सदियों में संघ कई संप्रदायों में विभाजित हो गया, जिनमें शुरू में, जहां तक जानकारी है, काफ़ी कम मतभेद थे. पहला विभाजन चौथी

सदी ई.पू. में दूसरी परिषद के समय हुआ, जब एक समूह स्थविरवादियों से अलग हुआ और महासंघिका के रूप में जाना जाने लगा. दूसरा प्रमुख विभाजन उस समय हुआ, जब सर्वास्तिवादी (जो मानते थे कि सब यथार्थ है), विभाज्यवादी (विभेदीकरण सिद्धांत के अनुयायी) संभवतः स्थविरवादियों से अलग हो गए. वे विभाज्यवादी, जो दक्षिण भारत और श्रीलंका में बस गए, थेरवादी (स्थविरवादी के लिए पालि शब्द) के रूप में पहचाने जाने लगे. सम्राट अकबर के शासन के दौरान (तीसरी सदी ई.पू.) थेरवाद मत श्रीलंका पहुंचा, जहां यह तीन उपसमूहों में विभाजित हो गया, जो अपने मठ केंद्रों के नाम से पहचाने जाने लगे, जैसे महाविहारिक, अभयागिरिक और जेतवनिया. बौद्ध धर्म का थेरवादी प्रकार क्रमशः पूर्व की ओर फैला और 11वीं सदी के अंत में म्यांमार तथा 13वीं व 14वीं सदी में कंबोडिया एवं लाओस में छा गया.

थेरवाद बौद्ध संप्रदाय का झुकाव बुद्ध की शिक्षा की परंपरावादी एवं रूढ़िवादी व्याख्या की तरफ़ है. आदर्श थेरवाद, बौद्ध अर्हत या परम संत हैं, जो अपने प्रयासों के परिणामस्वरूप ज्ञान प्राप्त करते हैं. थेरवादी ने आम आदमी एवं भिक्षु की भूमिका में स्पष्ट भेद किया है, वे इसे संभव नहीं मानते कि कोई आम आदमी का जीवन व्यतीत करते हुए ज्ञान प्राप्त कर सकता है. थेरवादी ऐतिहासिक बुद्ध का परम गुरु के रूप में अत्यधिक आदर करते हैं, लेकिन महायान मंदिरों में पूजित असंख्य दैवी बुद्धों एवं बोधिसत्वों की उपासना नहीं करते हैं.

विशेष लेख

खगोल विज्ञान का इतिहास

जयंत नार्लीकर, राजेश कोचर

जब से मनुष्य ने खड़े होकर चलना सीखा, वह आकाश को देखकर आश्चर्यचकित होता रहा है कि वहां क्या हो रहा है? आकाश वैसा ही है, पर उसका अर्थ बदल गया है. प्रारंभ में आकाश एक दैवी शक्ति था, जिससे भय लगता था और जिसे प्रसन्न रखा जाता था. बाद में यह अवलोकन और उपयोग में लाया जाने वाला एक तथ्य हो गया. अंत में इसकी परिणति हमारे वैज्ञानिक सिद्धांतों के परीक्षण के लिए एक प्रयोगशाला के रूप में हुई. समय के साथ जैसे–जैसे मानव बुद्धि का परिष्करण हुआ, वैसे–वैसे मनुष्य ने भी प्रकृति के साथ अपने संबंधों को पुनर्परिभाषित किया और ब्रह्मांड को अधिक गहराई से समझना प्रारंभ किया.

किसी भी प्राचीन संस्कृति की तरह भारतीय उपमहाद्वीप में भी खगोलशास्त्र की परंपरा अत्यंत प्राचीन है. यह परंपरा ही नहीं, संस्कृति भी भूगोल द्वारा गढ़ी गई है. उत्तर में उत्तुंग हिमालय और दक्षिण में सागर के जल ने भारत को प्रकृति द्वारा संरक्षित राज्य बनाया है, परंतु अलग–थलग नहीं.

प्राचीन भारत के बारे में जानकारी हमें दो भिन्न, किंतु स्पष्ट माध्यमों, पुरातत्व एवं साहित्य से प्राप्त हुई है, जो ज्ञान के वर्तमान स्तर पर संयुक्त होते हुए भी अपनी–अपनी विशिष्टता रखते हैं. पिछले 25 वर्षों से पाकिस्तान में पुरातात्विक अन्वेषणों ने स्पष्ट कर दिया है कि पूर्व मान्यता के विपरीत उपमहाद्वीप की सभ्यता का इतिहास कृषि के प्रारंभ के साथ ईसा से लगभग 7,000 वर्ष पूर्व हुआ था. बलूचिस्तान में सिंधु नदी की पश्चिमी सहायक नदी बोलान के तट पर मेहरगढ़ में शिकार तथा भोजन एकत्र करने से पशुपालन और कृषि तक के परिवर्तन के साक्ष्य मिलते हैं. यह एक सांस्कृतिक तारतम्य (हड़प्पा या महान सिंधु घाटी परंपरा) की शुरुआत थी, जो बिना किसी बाधा के लगभग 1400 ई.पू. तक जारी रहा. इस तारतम्य का उत्कर्ष लगभग 2,500–2,000 ई.पू. के मध्य का विकसित (या शहरी) हड़प्पा काल था. सुनियोजित शहर, व्यापक विदेशी व्यापार, कलात्मक मुहरों का उत्पादन और सबसे महत्त्वपूर्ण हड़प्पा या सिंधु लिपि का विकास इसकी विशेषताएं थीं.

हड़प्पावासियों के खगोलशास्त्रीय ज्ञान का दायरा कितना बड़ा था? वे किस प्रकार समय की गणना करते थे? किस तरह के पंचांगों का उपयोग करते थे? हम जानते हैं कि शहरी सभ्यता के दौरान समुद्री व्यापार उनकी अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख अंग था. क्या वे सूर्य तथा रात्रि–आकाश से दिशा–ज्ञान प्राप्त करते थे? मोहेंजोदाड़ो का संबंध चार मूलभूत दिशाओं से है, जबकि धोलावीरा का विन्यास उत्तर–दक्षिण रेखा में चार अंश का झुकाव प्रदर्शित करता है. क्या चारों मूलभूत दिशाएं खगोल विज्ञान के आधार पर तय की गई थीं? धोलावीरा टाइल का क्या महत्त्व है? क्या हड़प्पा की मुहरें नक्षत्रीय रूपांकनों को दर्शाती हैं? ये सारे प्रश्न उत्सुकता पैदा करते हैं, किंतु अब तक इनका कोई

जवाब नहीं मिल पाया है.

वैदिक खगोलशास्त्र

प्राचीन भारत ने हमें वैदिक ग्रंथों के रूप में बहुमूल्य साहित्यिक विरासत दी है, जो एक लंबी अवधि में अनेक रचनाकारों द्वारा रची गई थी तथा अभी हाल तक मौखिक परंपरा द्वारा ही चल रही थी. इन वैदिक ग्रंथों को चार श्रेणियों में बांटा जा सकता है, *ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद* की चार संहिताएं; उनके सहयोगी ब्राह्मण ग्रंथ; आरण्यक और उपनिषद तथा कल्पसूत्रों सहित वेद.

ऋग्वेद में जहां खगोलशास्त्रीय संदर्भ विरले हैं, वहीं *यजुर्वेद* उससे कहीं अधिक उपयोगी है. ऐसा इसलिए है कि महायज्ञ में ऋग्वेदीय सूक्तों के सस्वर पाठ तथा *सामवेद* के स्तोत्रों के गायन के अलावा शेष सारा कार्य यजुर्वेदीय पुरोहितों (अध्वर्यु) द्वारा किया जाता था. इस प्रकार, *यजुर्वेद* एक नियम पुस्तिका है, इसके उपखंड अन्य किसी भी संहिता से अधिक बहुमुखी है और ख़ास बात यह कि इसमें सभी *शुल्वसूत्र* शामिल हैं.

ऋग्वेद के अनुसार, सूर्य प्रत्येक संध्या को समुद्र में डूबता है, जहां से वह दूसरे दिन उदय के लिए देवों द्वारा बाहर निकाला जाता है. घटती–बढ़ती चंद्रकलाओं का भी उल्लेख है तथा मौसम के बदलने के संदर्भ से वर्ष के बदलने का उल्लेख है, जैसे '100 पतझड़, 100 शरद और 100 वसंत तक जियो.' ऋग्वेदीय वर्ष 12 मास का था, जिसमें प्रत्येक मास 30 दिन का होता था, अतः वर्ष में 360 दिन होते थे. *ऋग्वेद* में बार–बार बृहस्पति का 'प्रार्थनाओं के देवता' के रूप में उल्लेख हुआ है. यह स्पष्ट नहीं है कि बृहस्पति की जुपिटर के रूप में पहचान पहले ही कर ली गई थी या यह एक परवर्ती विकास था. इसी प्रकार, वेन को एक पूर्ण सूक्ति में प्रधानता दी गई है तथा शुक्र का उल्लेख भी है. परवर्ती साहित्य में ये नाम वीनस को इंगित करते हैं, संभवतः *ऋग्वेद* में भी वीनस ही की ओर संकेत है, किंतु यह निश्चित नहीं है.

शतपथ ब्राह्मण में पहली बार ग्रह शब्द का उल्लेख सूर्य के संदर्भ में हुआ है, जो परवर्ती ग्रहों के अर्थ में नहीं, अपितु ऐसी शक्ति के लिए प्रयोग किया गया, जो चमत्कारी प्रभाव की द्योतक थी. संभवतया *तैत्तिरीय आरण्यक* में सप्त सूर्य से आशय सात ग्रहों से ही है. बाद के साहित्य में, उदाहरणार्थ, *मैत्रायणी उपनिषद* में ग्रहों का उपयोग आज की तरह किया जाने लगा.

यजुर्वेद में सूर्य के आकाश मार्ग को स्पष्ट रूप से अंकित किया गया है. सूर्य के उत्तर भ्रमण को शिशिर संक्रांति से ग्रीष्मकाल तक, *उत्तरायण* के नाम से पहचाना गया है, जबकि दक्षिण गमन को *दक्षिणायण* कहा गया है. विषुवतीय बिंदुओं का भी उल्लेख किया गया है. *तैत्तिरीय संहिता* में एक के बाद एक आने वाले 12 महीनों के नाम मिलते हैं, जिनका प्रारंभ मध्य या माधव के वसंत के महीनों से होता है. बाद में उन नक्षत्रों के अनुसार महीनों के नाम दिए गए, जिनके आसपास पूर्णिमा होती है.

नक्षत्र

ऋग्वेद में सामान्य तौर पर तारों का उल्लेख करने के लिए कई पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया गया है. नक्षत्र शब्द ने बाद के ग्रंथों में विशेष अर्थ प्राप्त किया. इसका आशय एक सुस्पष्ट तारे या तारामंडल से है. आवश्यक नहीं कि यह राशि–चक्र के पास ही हो. यह चंद्र या सूर्य की स्थिति को परिभाषित

करने के लिए एक चिह्न के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है.

ऋग्वेद में इस शब्द का अर्थ स्पष्ट है. इसमें बताया गया है कि चंद्रमा 'नक्षत्रों के मध्य स्थित है' औ कम से कम दो पृथक नक्षत्रों के नाम भी दिए गए हैं.

कुल कितने नक्षत्र हैं? नाक्षत्रिक चंद्रमास के दिनों की संख्या पूर्णांक में नहीं होती थी, यह 27 और 2 के बीच के भिन्न अंकों में थी. इसी के अनुसार नक्षत्रों की सूची में 27 या 28 नाम हैं, 27 की संख्य जो प्राचीन काल में थी, आज भी प्रचलन में है. *शतपथ ब्राह्मण* के समान ही *तैत्तिरीय संहिता* में 2 नक्षत्र हैं. एक स्थान पर स्पष्ट रूप से इन 27 नक्षत्रों का उल्लेख भी है. बाद में *शतपथ ब्राह्मण* में पू चंद्र तथा नव चंद्र को जोड़कर इनकी संख्या 28 कर दी गई, ताकि चंद्रमास को 30 दिन के सौरमार के बराबर लाया जा सके. *मैत्रायणी संहिता* और *अथर्व संहिता* में नक्षत्रों की संख्या 28 ही है. यह बा भी महत्त्वपूर्ण है कि चीनी स्युई और अरबी मनाज़िल भी संख्या में 28 हैं.

बाद में खगोल ग्रंथों में 27 नक्षत्रों की सूची को स्वीकार किया गया है. इसी से हमें नक्षत्रों की पहचा मिली. लंबे समय के अंतराल में कुछ नाम बदले, किंतु विशेष तारे वही रहे.

ये परवर्ती सूचियां अश्विनी नक्षत्र से प्रारंभ होती हैं, क्योंकि इन्हें लागू करते समय (500 ई. व आसपास) वसंत विषुव (जब दिन और रात बराबर होते हैं), रेवती और अश्विनी की सीमा पर *ज़ीट पायसीयम* तारे (मीन तारा) के साथ मेल खा रहा था. प्राचीन सूचियां भी इसी कारण कृत्तिकाअं (प्लायोडीज़) से प्रारंभ होती थीं. उस समय कृत्तिकाएं विषुव के संपाती थीं अथवा जैसा *शतपथ ब्राह्म* में लिखा है, 'वे पूर्व दिशा से नहीं डिगतीं.' विषुवों के पूर्वगामिता सिद्धांत से हमें ज्ञात होता है कि विषु (और संक्रांति) बिंदु 72 वर्ष में घड़ी की दिशा में चाप का एक अंश चलते हैं. यह एक तरह स राशि–चक्र और नक्षत्रों को सूचीबद्ध किए जाने के विपरीत था. वसंत विषुव ईसा के 2,300 वर्ष पू कृत्तिका में था इस युग को कृत्तिका से प्रारंभ होने वाली सूची में रखा जा सकता है.

यह तिथि इस धारणा पर निकाली गई कि कृत्तिकाएं उस समय ठीक विषुव के पीछे दिखाई दी थीं यह धारणा अव्यावहारिक है, क्योंकि यदि एक तारा सूर्य के पीछे है, तो उसे देखा नहीं जा सकता सूर्योदय के समय कोई तारा तभी दिखाई देता है, जब वह सूर्य से किसी कोणीय अंतर पर हो. विषु सूर्य से कृत्तिकाएं कितनी दूर थीं, यह कभी ज्ञात नहीं हो सका. इसलिए उपरोक्त तिथियां और ऐसी सभी तिथियां केवल संकेतात्मक मानी जा सकती हैं.

वेदांग ज्योतिष

यजुर्वेद में खगोल संबंधी संदर्भ मूल रूप से धार्मिक क्रियाओं की सहायता के लिए दिए गए थे, किं वैदिक साहित्य में खगोल विज्ञान ख़ासतौर से सम्मिलित किया गया है, जिसे वेदांग ज्योतिष वेद व ही अंग के रूप में ज्योतिष कहते हैं. इस मूल ग्रंथ के दो पाठांतर हैं– एक *ऋग्वेद* से जुड़ा हुआ औ दूसरा *यजुर्वेद* से. ऋग्वेदीय ज्योतिष में 36 ऋचाएं हैं. इनमें से यजुर्वेदीय ज्योतिष में 30 को दोहराय गया है, यद्यपि इनका क्रम भिन्न है. इनमें यजुर्वेदीय ज्योतिष में 13 अन्य ऋचाओं को जोड़कर उनकी संख्या 43 कर दी गई. इस प्रकार, यदि वेदांग ज्योतिष को एक पूर्ण पुस्तक के रूप में लिया जाए, तं उसमें ऋचाओं की कुल संख्या 49 है. वेदांग ज्योतिष वैदिक साहित्य का सर्वाधिक उपेक्षित भाग रह

है. अब से मात्र 100 वर्ष पूर्व ही इसका गंभीरता से अध्ययन शुरू किया गया, वह भी यूरोपीय विद्वानों की देखरेख में. आज तक उन 49 ऋचाओं में से 36 का ही अर्थ निकाला जा सका है.

ऋग्वेदीय ज्योतिष को लिखने का श्रेय लगाध को है, जिनके बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है, फिर भी कालानुक्रमिक तथा भौगोलिक महत्त्व के दो कथन हैं. पुस्तक में एक अवलोकन टिप्पणी में कहा गया है कि दक्षिण अयनांत श्राविष्ठा (अल्फ़ा डेल्फ़िनी) तारा समूह में हुआ था. यदि इस कथन को ऊपरी तौर पर स्वीकार किया जाए, तो विषुवों के पूर्वगामिता सिद्धांत के आधार पर यह लगभग 1400 ई.पू. में हुआ था. कृत्तिका के बारे में पूर्व कथन की दृष्टि से यह तिथि मात्र सांकेतिक ही मानी जा सकती है. वेदांग ज्योतिष (पाठ 7 और 22) बताता है कि सबसे लंबे दिन तथा सबसे छोटी रात का अनुपात 3:2 है. यह कथन अन्य ग्रंथों, जैसे कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में दोहराया गया है. (आधिकारिक रूप से तिथि ज्ञात नहीं है, पर यह लगभग 300 ई.पू. भी हो सकती है). पातंजलि के *महाभाष्य* (150 ई.पू.) में भी इसका उल्लेख है. यही अनुपात ईसा के 700 वर्ष पूर्व बेबीलोन के कीलाक्षर अभिलेखों में भी पाया गया है. एक सामान्य गणितीय गणना दर्शाती है कि वेदांग ज्योतिष कथन कुछ–कुछ 35° उत्तरी अक्षांश से मेल खाता है. इसे अनुभव करने के लिए देखा जा सकता है कि श्रीनगर, काबुल और हेरात, ये सभी 34° उत्तरी अक्षांश के आसपास हैं. अवलोकन में थोड़ी त्रुटि की गुंजाइश और गणना की सरलता का ध्यान रखते हुए ऐसी कोई भी जगह 3:2 वाले अवलोकन का स्थान है. यह स्पष्ट नहीं है कि यह प्रेक्षण वास्तव में वेदांग ज्योतिष के अवलोकनकर्ताओं द्वारा किया गया था या मेसोपोटामिया के स्रोतों से लिया गया था. जो भी हो, यह 34–35° उत्तरी अक्षांश के साथ वैदिक संबंध स्थापित करता है.

वेदांग ज्योतिष में सूर्य और चंद्रमा की गति का वर्णन है (किंतु दूसरे {भू–केंद्रित} ग्रहों का नहीं). यह वर्णन एक अशुद्ध चंद्र–सौर पंचांग का निर्माण करता है. जैसा हमें ज्ञात है, एक वर्ष में 365 दिन होते हैं, जबकि एक नवचंद्र (या पूर्ण) से दूसरे तक की अवधि से परिभाषित एक माह में 29.5 दिन होते हैं. एक सौर वर्ष में इस प्रकार कभी भी चंद्रमासों की संख्या पूर्णांक नहीं हो सकती. 354 दिनों के 12 महीनों में 11 दिन कम पड़ जाते हैं. चंद्र–सौर वर्ष में 12 या 13 चंद्रमास होते हैं. अब मुख्य प्रश्न यह उठता है कि इस अतिरिक्त (अधिमास) महीने को कहां जोड़ा जाए? वेदांग ज्योतिष इन दो अतिरिक्त महीनों को पांच वर्ष के काल में जोड़ता है, जिससे इसके पांच वर्षों में 62 चंद्रमास या 1,830 दिन हो जाते हैं. वेदांग पंचांग औसतन वर्ष में 366 दिनों की स्थापना से 5 वर्षों में 4 दिनों की एक बड़ी त्रुटि संगृहीत करता चला जाता है.

ईसा से तीन शताब्दी पूर्व उपयोग में आने वाले पंचांग की एक झलक हमें सम्राट अशोक के (273–236 ई.पू.) शिलालेखों में देखने को मिलती है. वर्ष चंद्र–सौर वर्ष था. यद्यपि यह स्पष्ट नहीं है कि अतिरिक्त महीनों को कैसे जोड़ा जाता था. एक माह, माघ का नाम तो स्पष्ट रूप से पता चलता है. माह पूर्णिमांत था, क्योंकि महीने की समाप्ति पूर्णिमा के दिन थी. नवचंद्र के दिन या उसके आगे–पीछे के दिनों में मछली बेचने जैसी कई गतिविधियां प्रतिबंधित थीं.

दिन की गणना तिथि द्वारा होती थी. बाद में तिथि का अर्थ चंद्रमास के 30वें भाग से लगाया जाने लगा, परंतु यहां शुक्ल पक्ष में चंद्रास्त से चंद्रास्त तक और कृष्ण पक्ष में चंद्रोदय से चंद्रोदय तक तिथि की गणना की गई. नक्षत्रों द्वारा दो दिन का उल्लेख है, तिस्या (डेल्टा कैंस्री) और पुनर्वसु (बीटा

जेमीनोरम). संभवतः पहला नक्षत्र अशोक के जन्म का तथा दूसरा उनके राज्याभिषेक का था. अशोक के समय के अभिलेखों से पता चलता है कि पंचांग के निर्माण में जिन सिद्धांतों का अनुसरण किया गया था, वे वेदांग ज्योतिष में दिए गए थे.

वेदांग ज्योतिष के समान ही अशोक के अभिलेखों में सप्ताह के दिनों या राशि चिह्नों का कहीं उल्लेख नहीं है. प्रश्न यह है कि ये दोनों भारत में पहली बार कब आए?

राशि–चक्र के प्रतीकों की उत्पत्ति बेबीलोन की है. भारत में इनका सबसे पहला प्रयोग ईसा के 100 वर्ष पूर्व बोध गया में मिलता है, जहां ये जंगले के खंभों पर चित्रित किए गए हैं. यूनानी भाषा से अनुवाद कर संस्कृत में इनके नाम रखे गए. केवल धनुर्धारी की जगह धनुष (धनु), माशकी की जगह घड़ा (कुंभ) तथा बकरे की जगह घड़ियाल बदले गए, शेष प्रतीक ज्यों के त्यों ले लिए गए.

सप्ताह के दिनों का सबसे पहला उल्लेख भारतीय खगोल विज्ञान की पुस्तक *गर्ग संहिता* में पाया जाता है, जिसका नाम लेखक के नाम पर है और जिसे अनुमानतः लगभग 100 ई.पू. का माना गया है. अगला साहित्यिक उल्लेख यूनान से मिलता है.

शिलालेखों में सप्ताह के दिन बहुत बाद में दिखाई देते हैं. सबसे पहला संदर्भ ईसा की मृत्यु के 484 वर्ष पश्चात एरण शिला स्तंभ अभिलेख में मिलता है, जिसमें गुरुवार का उल्लेख है.

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि *महाभारत* के मूल पाठों में भी न तो सप्ताह के दिनों का और न ही राशि चिह्नों का उल्लेख है. *महाभारत* में बहुत से विषयों पर टिप्पणियां की गई हैं, जिनका सीधा संबंध उसके मुख्य कथानक महाभारत युद्ध से नहीं है. भारत में सप्ताह के दिन तथा राशि चिह्न के प्रवेश के पश्चात यदि मूल पाठ में बाद में कुछ जोड़ने की संभावना होती, तो संभवतः *महाभारत* में इनका उल्लेख होता. इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि *महाभारत* ग्रंथ की रचना ईसा के जन्म के 100 वर्ष पूर्व संपूर्ण हो चुकी थी. वैदिक युगीन साहित्य के अनेक ग्रंथों में सप्ताह के दिनों का वर्णन है. अतः ये सब ईसा पूर्व 100 वर्ष के बाद के ही हैं. इनके उदाहरण *अथर्व वेदांग ज्योतिष, वैखानसस्मर्तसूत्र* और *याज्ञवल्क्य स्मृति* हैं.

वैदिक युग प्रणाली

बाद के संदर्भों के लिए हम वैदिक समय की 'युग प्रणाली' नामक सैद्धांतिक अवधारणा का अध्ययन करेंगे. कम से कम शुरु में इसमें कोई भी वैज्ञानिक संकेत नहीं दिखाई देते. मूल अर्थ में युग का आधार कोई निश्चित अवधि नहीं थी, बल्कि यह समय का कोई भी अंतराल हो सकता था, जिसका संबंध बार–बार घटने वाली विशिष्ट घटनाओं से था. *ऋग्वेद* में संभवतः विभिन्न कालखंडों के लिए यह शब्द कई बार आता है.

ऋग्वेद की 6.85 ऋचा में अग्नि से प्रार्थना की गई है कि वह, 'हमें, जो प्रत्येक युग में यज्ञ हेतु आपकी नए शब्दों में स्तुति करते हैं, समृद्धि व सफलता प्रदान करें. *ऋग्वेद* (10.97.1) में उन जड़ी–बूटियों का वर्णन है, जो 'तीन युग पहले देवताओं द्वारा रची गई थीं.' ये संदर्भ युग को समझने के लिए कोई भी सूत्र प्रदान नहीं करते. *ऋग्वेद* (1.158.6) में दीर्घतमा के '10वें युग में परिपक्व' होने का उल्लेख है. यहां युग स्वाभाविक रूप से मानव जीवन का पांच या दस वर्ष लंबा एक हिस्सा है. ऐसा लगता है कि वेदांग

ज्योतिष, जैसा कि पहले देखा गया, संभवतः एक युग पांच वर्ष का मानता था. *अथर्ववेद* में क्रमशः शत, (100 वर्ष), एक अयुत (10,000 वर्ष) और इसके बाद दो, तीन व चार युगों का उल्लेख है. इससे ज्ञात होता है कि यहां एक युग का अर्थ 10,000 वर्ष है.

वैदिक साहित्य में कलि, द्वापर, त्रेता और कृत का उल्लेख पासों के फेंकने के अनुसार 4, 3, 2 व 1 से चिह्नित हुआ है और *सदविंश ब्राह्मण* के बाद के कुछ हिस्सों में चार अवस्थाओं, पुष्य, द्वापर, खर व कृत का वर्णन है, जबकि *गोपथ ब्राह्मण* में द्वापर का नाम आया है. रोचक तथ्य यह है कि ब्राह्मण साहित्य 'कृत' को कुछ अच्छा मानता है, औरों को उससे तुच्छ से तुच्छतर और कलि को वह तुच्छतम बताता है. फिर भी यह स्पष्ट नहीं है कि यह संदर्भ समय की अवधि से संबंधित है या पासा फेंकने से.

यक्ष के व्युत्पत्ति ग्रंथ, *बिरुक्त* (लगभग 400 वर्ष ई.पू.) में ब्रह्मा के एक दिन को 1,000 युगों से परिभाषित किया गया है, किंतु यह नहीं बताया गया है कि युग क्या है. ब्रह्मा के एक दिन के बाद उतने ही समय की रात्रि होती है, जिसमें वह सोते हैं. ब्रह्मा के दिन और रात, दोनों मिलकर अहोरात्र बनाते हैं. इन इकाइयों में वास्तविक वर्षों की गणना हेतु हमें *मानव धर्मशास्त्र* को देखना पड़ेगा, जिसे *मनु स्मृति* के नाम से अधिक जाना जाता है तथा जिसके प्रारंभिक अध्यायों में युग प्रणाली को विस्तार से समझाया गया है (1.68–86). यह प्रणाली उचित अवधारणाओं के द्वारा लौकिक घटनाओं को अलौकिक अनुपातों से नापने पर आधारित है. *ऋग्वेद* एक वर्ष या 360 दिन के संवत्सर का उपयोग करता है. *तैत्तिरीय ब्राह्मण* इस वर्ष को देवताओं का एक दिन बताता है. इस प्रकार एक दैवी वर्ष मनुष्य के 360 वर्षों के बराबर है. युग प्रणाली के निर्माण में इसी दैवी वर्ष का प्रयोग किया जाता है.

मनु स्मृति में भी समय की इकाई, महायुग या चतुर्युग की परिभाषा का उल्लेख है, जो चार युगों से बनते हैं, जिनके नाम हैं, कृत, त्रेता, द्वापर और कलि तथा इनकी लंबाई का अनुपात 4:3:2:1 है. इस प्रकार, कलियुग सबसे छोटा है. यह 1,000 दैवी वर्षों का होता है और जिसके पहले तथा बाद प्रत्येक में 100 वर्षों का संक्रमण काल होता है. इस प्रकार, कलियुग में 1,200 दैवी वर्ष होते हैं. महायुग में 1,200 × (4+3+2+1) = 12,000 दैवी वर्ष होते हैं. इसे 360 से गुणा करने पर एक महायुग में मानव वर्षों की संख्या प्राप्त होती है. अतः एक महायुग 43 लाख, 20 हज़ार वर्ष के बराबर होता है.

आगे 1,000 महायुग ब्रह्मा के एक दिन के बराबर बताए गए हैं. 1,000 पूर्णांक बड़े ही जटिल तरीक़े से आता है. यह देखने के लिए हम महायुग को M तथा कृत युग को K के रूप में रखेंगे. 10 के 4 भागों को लेने पर $K = 2m/5$ या $m = 5k/2$ होगा.

ब्रह्मा का एक दिन $= 1000m$

$$= 994m + 6m$$
$$= 994m + 15k$$
$$= 14x71m + 14k + k$$
$$= k + 14\ (71m + k)$$

अब 71 महायुगों को मनवंतर के रूप में रखा जाए. मनवंतर का अर्थ मनु के अंतराल से है. तब उपरोक्त समीकरण इन शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है, ब्रह्मा का एक दिन कृतयुग के बराबर होगा; उसमें 14 मनवंतर होंगे और प्रत्येक के साथ कृतयुग के बराबर एक गोधूलि होगी. ब्रह्मा के कालानुक्रम को

बनाने हेतु यही योजना जारी रहेगी. उनके अहोरात्र में 2,000 महायुग समाहित होंगे. कुल 360 अहोरात्र से उनका एक वर्ष बनेगा और जिसमें से 100 से उनका जीवन. पुराणों और *महाभारत* में भी इस योजना को दुहराया गया है.

महायुग और ब्रह्मा के एक दिन की अवधारणाओं को साधारण परिवर्तन के साथ परवर्ती खगोलशास्त्रियों ने स्वीकार करते हुए ब्रह्मा के एक दिन को एक असंज्ञेय पदनाम 'कल्प' दिया. कल्प का उल्लेख वैदिक ग्रंथों में नहीं पाया जाता, पर *महाभारत* में समय की इकाई के रूप में इसका उल्लेख है.

हाल के वर्षों में आधुनिक ब्रह्मांडशास्त्रियों द्वारा 'कल्प' शब्द पर ध्यान दिया गया है, क्योंकि इस ब्रह्मांड की आकलित आयु 10 से 12 खरब वर्ष है (हबल टाइम). यह ठीक उसी क्रम में है, जिसमें कल्प (4. 32 खरब वर्ष) की धारणा को बताया गया है. प्राचीन भारतीय ही केवल ऐसे लोग रहे हैं, जिन्होंने इस प्रकार बड़ी संख्या की अवधारणा बनाई, भले ही उसका संदर्भ अव्यावहारिक रहा है.

वेदांग की कुछ अपरिष्कृत सूर्य और चंद्रमा आधारित खगोल विद्या ने सिद्धांतों की ग्रह संबंधी जटिल गणितीय खगोल विद्या के लिए मार्ग खोल दिया है ('सिद्धांत' शब्द का प्रयोग 'अंत में सत्य सिद्ध' होने वाले अर्थ में प्रयुक्त हुआ है). यह नाम उस समय की सभी खगोल शास्त्र की पुस्तकों को दिया गया है. मध्य तथा पश्चिमी एशिया के पारस्परिक संपर्कों के कारण वेदांग से सैद्धांतिक खगोल विद्या की ओर जाना संभव हुआ, जिसका बाद में परवर्ती सिकंदरकालीन यूनान से संपर्क हुआ. यह बात शिलालेखों में पंचांगीय प्रसंगों के अध्ययन में सरलता से देखी जा सकती है.

कैलेंडर (पंचांग)

हड़प्पा काल के पश्चात भारत के प्राचीनतम शिलालेख अशोक के स्तंभ हैं, जो उनके शासनकाल में निर्मित किए गए थे (273–236 ई.पू.). ये शिलालेख प्राकृत भाषा व ब्राह्मी लिपि में लिखे गए हैं और वेदांग पंचांग का उपयोग करते हैं. वर्ष की गणना राजा के राज्याभिषेक से हुई है. किसी भी निश्चित बिंदु से प्रारंभ होने वाले सतत काल या घटना का कोई प्रयोग नहीं किया गया है. एक वर्ष के दौरान तीन मौसमों के आधार पर चार माह के प्रत्येक मौसम की गणना की गई है. प्रत्येक माह को दो भागों (पक्षों) में बांटा गया है. महीना चंद्रमास और पूर्णिमांत होता था, अर्थात पूर्णिमा के दिन समाप्त हो जाता था. महीनों में तिथियों के द्वारा दिनों की गणना होती थी अर्थात चंद्रास्त से चंद्रास्त का समय शुक्ल पक्ष में और चंद्रोदय से चंद्रोदय का कृष्ण पक्ष में. दिनों के नाम नक्षत्रों के नाम पर दिए गए थे. वेदांग पंचांग का उपयोग मौर्यों के उत्तराधिकारी शुंग और कण्व (186 ई.पू.–45 ई.) तथा सातवाहनों (100 ई.) द्वारा भी किया गया. भारतीय हर बार नए राजा के सिंहासनारूढ़ होने के साथ प्रारंभ होने वाले शासन वर्षों की गणना मात्र ही करते थे, जबकि काल गणना का उपयोग बेबीलोन में ईसा के 747 वर्ष पूर्व से चला आ रहा था. ईसा के 312 वर्ष पूर्व सेल्यूकस युग का प्रारंभ हुआ. सिकंदर के उत्तराधिकारी सेल्यूकस के सत्तारूढ़ होने पर इस युग की शुरुआत मानी गई है. यह तर्कसंगत लगता है कि खगोल ज्ञान पर आधारित सही गणितीय चंद्र और पंचांग का निर्माण सेल्यूसिडन बेबीलोन में शेल्डियन खगोलशास्त्रियों द्वारा (300–200 ई.पू.) किया गया था. शेल्डियन संस्कृति मेसोपोटामिया (वर्तमान इराक़) में ईसा के 700 वर्ष पूर्व से 300 ई. पूर्व तक फली–फूली थी. इस प्रणाली में वर्षों को लगातार

गिना गया था. वर्ष का प्रारंभ 'निसान' के चंद्रमास से होता था. यह वसंतीय विषुव माह की किसी तारीख़ (वैशाख) के समकक्ष था. विकल्प के रूप में यूनानी माह 'डायोस' को भी लिया जा सकता था, जिसका प्रारंभ पतझड़ विषुव (कृत्तिका के आनुषंगिक) से होता था. वर्ष को मौसम के अनुकूल रखने हेतु 19 वर्ष के काल में सात चंद्रमासों को जोड़ा जाता था.

यही पंचांगीय प्रणाली धीरे–धीरे भारत में आई. भारत में प्रारंभ होने वाला प्रथम युग शक युग था, जो मध्य एशिया से आए शकों द्वारा लाया गया था (जिन्हें यूनानी लोग सीथियनों के नाम से जानते थे). ऐसा विश्वास किया जाता है कि शक युग मूल रूप से ईसा के 123 वर्ष पूर्व प्रारंभ हुआ होगा. इस संवत के 201 वर्ष में से, अर्थात ईसा की मृत्यु के 78 वर्ष पश्चात कनिष्क ने 200 वर्ष घटा दिए. इस प्रकार, शक संवत के वर्तमान पंचांग का पहला वर्ष प्रारंभ हुआ.

यहां बहुप्रचलित विक्रम संवत पर भी हम ग़ौर कर सकते हैं. किंवदंती के अनुसार, विक्रम संवत का प्रारंभ ईसा के 57 वर्ष पूर्व माना जाता है. इसे उज्जैन के सम्राट ने शकों पर अपनी जीत के उपलक्ष्य में प्रारंभ किया था. इस किंवदंती का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं मिलता. विक्रम संवत का सबसे पहला उल्लेख राजा जयकदेव के शिलालेख में मिलता है, जिनका शासन काठियावाड़ के ओखामंडल पर था. शिलालेख में विक्रम संवत 794 अंकित है. इसी के साथ 795 विक्रम संवत का भी शिलालेख है, जिसमें मालवा के शासकों के काल का उल्लेख है. यह संवत मालवा के शासकों का था. अतीत में जाने पर हम पाते हैं कि मालवगण संवत ईसा के 405–532 वर्ष बाद राजस्थान के पास मंदसौर के राजाओं द्वारा प्रयोग में लाया गया था. मंदसौर उस समय गुप्त वंश के सामंतों (ईसा के 319–550 वर्ष बाद) के अधीन था. इस संवत को मालव संवत ही नहीं, वरन कृत युग भी कहा जाता था (नाम के महत्त्व का कुछ पता नहीं). कई ऐसे शिलालेख हैं, जो राजस्थान में पाए गए हैं और जिनमें कृत संवत का उल्लेख है. इनमें से सबसे पहला उल्लेख ईसा से 225 वर्ष पूर्व का है.

इस तरह जान पड़ता है कि सबसे पहला संवत 'कृत' था. सन 450–542 के बीच इसका नाम मालव संवत हो गया. विक्रम से इसका संबंध सन 737 में जोड़ा गया है. इसका प्रारंभिक उपयोग काठियावाड़ एवं राजस्थान तक ही सीमित था. 824 ई. में राजस्थान से आने वाले गुर्जर–प्रतिहारों ने कन्नौज नगर को जीता. वे विक्रम संवत अपने साथ लेते आए. पूर्वी प्रदेशों को छोड़कर इसका प्रचलन संपूर्ण उत्तर भारत में होने लगा. मध्ययुगीन राजपूत राजवंशों ने भी इसका उपयोग किया.

एकमात्र ऐतिहासिक राजा विक्रमादित्य, जिन्होंने उज्जैन में शकों की शक्ति को कुचला था, गुप्त वंश के सम्राट चंद्रगुप्त II (लगभग सन 395) थे. समुद्रगुप्त के बाद आने वाले समस्त गुप्त राजा *आदित्य* उपाधि धारण करते रहे, उनमें से बहुत से अपने आपको *विक्रमादित्य* के नाम से सुशोभित करते रहे. अपने शिलालेखों में उन्होंने गुप्त संवत का उल्लेख किया है, जो ईसा बाद 319 में उनके साम्राज्य की नींव पड़ने का स्मरणोत्सव था. यद्यपि विक्रम का नाम विक्रम संवत से जोड़ा जाना एक पहेली ही है, इसमें कोई संदेह नहीं कि इसके 57 ई.पू. के प्रारंभिक बिंदु से इसका कोई भौतिक संबंध नहीं है. यह अवश्य ही पीछे चलती गणना से प्राप्त किया गया होगा. इसी प्रकार, जब जूलियन कैलेंडर का ईसाईकरण 580 ई. में हुआ, तब उसे ईसा के अनुमानित जन्मवर्ष से शुरू करने का निश्चय किया गया.

बाद में जाना गया कि ईसा का जन्म ईसा संवत के शून्य वर्ष में न होकर 4 ई.पू. में हुआ था.

मेसोपोटामिया मूल की दो और अवधारणाओं को भारतीय खगोल विज्ञान में सम्मिलित किया गया है– सात दिन का सप्ताह तथा राशि चिह्न. ये दोनों वैदिक ग्रंथों में अज्ञात हैं तथा *महाभारत* में भी इनका उल्लेख नहीं है.

सात दिन का सप्ताह

माह या वर्ष से मुक्त सात दिन के सप्ताह के प्रचलन के प्रारंभ का श्रेय शेल्डियनों को दिया गया है, जिन्होंने प्रत्येक ग्रह को देवताओं का नाम दिया. इस प्रकार, शनि की *निनिम* (महामारी तथा कष्ट के देवता); बृहस्पति की *मर्डक* (देवताओं के राजा); मंगल की *नर्गल* (युद्ध के देवता); सूर्य की *शमश* (उर्वरा शक्ति के देवता); बुध की *नबू* (लेखन के देवता) तथा चंद्रमा की *सिन* (कृषि के देवता) के रूप में पहचान की गई.

स्पष्ट तौर से सप्ताह के सात दिनों के नाम सात ग्रह देवों के सम्मान में रखे गए, किंतु इनके आने का क्रम तर्कसंगत नहीं है. दिन का विभाजन 24 घंटों में किया गया तथा यह माना गया कि सातों देवता पारी दर पारी हर घंटे विश्व की निगरानी करते हैं. पहले घंटे के मालिक देवता पर पहले दिन का नाम रखा गया. पहला घंटा सुदूर स्थित शनि का था, इसलिए उस दिन का नाम शनिवार हुआ. क्रमानुसार अन्य दिनों को भी देवताओं के नाम दिए गए. शनि इस तरह पहले, आठवें, 15वें तथा 22वें घंटे के स्वामी हुए. 23वां घंटा बृहस्पति को तथा 24वां घंटा मंगल को मिला. क्रम में दूसरे देवता सूर्य थे, जिन्हें अगले दिन का पहला घंटा मिला, इसलिए इसे रविवार कहा गया. जिस क्रम में वारों के नाम से हम परिचित हैं, वह प्रक्रिया सप्ताह के दिनों के लिए दुहराई जा सकती है.

दिनों के नाम की पहचान का तरीक़ा सुस्पष्ट है. किसी भी ग्रह को चुनें. फिर घटते हुए क्रम में दो ग्रहों के नाम को छोड़कर तीसरा ग्रह आने वाले दिन का नाम होगा.

यूनानी पांचवीं और छठी शताब्दी ई.पू. में मेसोपोटामिया के संपर्क में थे. ये संबंध बढ़ते गए तथा सिकंदर के अभियान के परिणामस्वरूप पश्चिमोत्तर भारत में भी फैलते गए. शेल्डियन पुजारी बेरोसर ने 270 ई.पू. में शेल्डियन खगोल विज्ञान की बहुत सी पुस्तकों का अनुवाद यूनानी भाषा में किया. यह निश्चित है कि सात दिनों के सप्ताह का सिद्धांत यूनानियों द्वारा समस्त विश्व को दिया गया. यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि भारतीय शिलालेखों में सप्ताह के दिनों का उल्लेख 484 ई. से पाया जाता है.

फलित ज्योतिष में ग्रहों के प्रभावों का जो वर्णन है, उसके बारे में अंदाज़ा लगाना बहुत रोचक है. चूंकि बुध एवं शुक्र हमेशा सूर्य के पास रहते हैं, इसलिए उन्हें शुभ माना गया. मंगल का लाल रंग रक्त का स्मरण कराने के कारण आतंकित करता था. पुरातन व्यक्ति संभवतः यह नहीं जानते होंगे कि बृहस्पति सबसे बड़ा सूर्य केंद्रीय ग्रह है. बृहस्पति का महत्त्व तब मालूम हुआ, जब ज्ञात हुआ कि बृहस्पति का भ्रमण काल पृथ्वी से 12 गुणा ज़्यादा है, इस प्रकार, पृथ्वी का एक वर्ष बृहस्पति के एक माह के बराबर है. शनि को शनिचर (संस्कृत : शनैः चर) अर्थात धीरे–धीरे चलने वाला ग्रह माना जाता है. चूंकि यह उस समय ज्ञात ग्रहों में सबसे सुदूर ग्रह है, जिसके परे तारों का अज्ञात विश्व स्थित है, अतः रहस्यमय होने के कारण इसके साथ कई अशुभ बातें जोड़ दी गईं. चूंकि धूमकेतु अकस्मात ही आकाश में प्रकट होते थे, अतः उन्हें अनिष्टकारी माना जाता था.

राशि चिह्न

यूनान से होकर पश्चिमी एशिया से आने वाली एक अन्य अवधारणा, राशि चक्र चिह्न या राशियां हैं. पृथ्वी के चारों ओर सूर्य का मार्ग क्रांतिवलय को परिभाषित करता है. सभी ग्रहों के पथ इस क्रांतिवलय के नज़दीक उत्तर या दक्षिण में हैं. कई प्राचीन संस्कृतियों ने इनका अवलोकन किया होगा, किंतु अभिलेख में यह दर्ज है कि इस पट्टी को बेबीलोनवासियों ने 12 बराबर भागों में बांटा और उन्हें मेष, वृष, कर्क आदि जैसे विचित्र नाम दिए. बेबीलोनवासियों की इस अवधारणा को यूनानियों ने ग्रहण किया तथा इन राशियों के नामों को यूनानी भाषा में अनूदित किया. *ज़ोडिएक* नाम का श्रेय खगोलशास्त्री क्लेओस्ट्रेटॉस को जाता है (लगभग 530 ई.पू.). भारत में राशि का प्रयोग सिकंदर के बाद में प्रारंभ हुआ. यूनानी भाषा से संस्कृत में शब्द लिए गए. कुछ परिवर्तन भी किए गए, जैसे धनुर्धारी की जगह धनु, वृश्चिक एवं मकर.

यूनानी मेसोपोटामिया के खगोल विज्ञान के क़ई अंश दो संस्कृत ग्रंथों में संरक्षित हैं. रुद्रदमन I के शासन में उज्जैन में किसी यवनेश्वर नामक व्यक्ति ने यूनानी खगोल ज्योतिष के एक वृहद ग्रंथ का अनुवाद संस्कृत गद्य में ईसा के बाद 149/150 में किया. इस ग्रंथ के एक बड़े हिस्से का वर्ष 269/270 में स्फुजिध्वज द्वारा *यवन जातक* नामक ग्रंथ में काव्य रूपांतर किया गया, जो आज भी उपलब्ध है. सैद्धांतिक खगोल विज्ञान पर यूनानी प्रभाव यूनानी मूल के शब्द होरा (समय) से रेखांकित किया जा सकता है.

सिद्धांतीय स्रोत सामग्री

सिद्धांतीय खगोल विद्या में विस्तार से जाने के पूर्व उपलब्ध स्रोत सामग्री की प्रकृति पर ध्यान देना ज़रूरी है. भारत की खगोल परंपरा, व्यापक बौद्धिक परंपरा की तरह ही मौखिक थी. खगोल ग्रंथों की रचना श्लोकों में की जाती थी. बहुधा ये संक्षिप्त और जटिल छंदों में लिखे जाते थे. इसका एक कारण तो यह था कि इन्हें याद करने में सुविधा हो और दूसरा यह कि *ऋग्वेद* का अनुसरण करने की लालसा थी, जो अब तक सामान्य पहुंच का ग्रंथ हो गया था. काव्य के प्रतिबंधों के कारण अंकों को अक्षरों में लिखने के लिए विभिन्न परंपराओं का प्रयोग किया गया. ज़्यादा गंभीर बात यह हुई कि बहुधा महत्त्वपूर्ण गणितीय सूत्रों में कुछ हिस्से छोड़ दिए गए और छंद बैठाने के लिए सटीक पारिभाषिक शब्दों की जगह अप्रचलित व अस्पष्ट शब्दावली अपनाई गई. छंदीय रचना रचनाकारों के लिए लाभदायक सिद्ध हुई. छंद रचनाकार के दस्तख़्त के समान थे, अतः जब बाद के खगोलविद् किसी पूर्व रचना को उद्धृत करते, तो रचना का श्रेय तत्काल मूल लेखक को मिल जाता.

खगोलविदों के बारे में भी सामान्यतः बहुत कम जानकारी उपलब्ध है. वे अपने जन्मस्थान का अभिलेख रखने के बजाय गोत्र (वंशावली) बताने में ज़्यादा रुचि रखते थे. उनकी जन्मतिथि या मूलग्रंथ के रचना–वर्ष का उल्लेख कहीं–कहीं ही मिलता है. कुछ रचनाओं में कवि या रचनाकार की मृत्यु का समय दिया गया है.

सिद्धांतीय काल का अन्य स्रोत संस्कृत ग्रंथों के अनूदित अरबी, फ़ारसी ग्रंथ–समूह हैं. इसके अतिरिक्त अलबरूनी ने अन्य खगोल विज्ञान संबंधी महत्त्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराई है.

सिद्धांत, एक व्यापक शोध प्रबंध है, जो एक कल्प या वर्तमान कलियुग के प्रारंभ से ग्रहों की औसत स्थिति की गणना करता है. यदि *सिद्धांत* मूलग्रंथ है, तो *करण* सरल, सुलभ मार्गदर्शिका है. *करण* एक युग के निर्माण काल के आसपास की औसत स्थितियों की पूर्व गणना है, क्योंकि बाद के समय की गणना वहीं से की जाती है. *कोष्ठक* या *सारिणियां* खगोलीय सारिणियां हैं, जो ग्रहों की स्थिति का निर्धारण करने या खगोल विद्या की अन्य समस्याओं को सुलझाने के लिए बनाई गई हैं.

प्रारंभिक सिद्धांतीय काल कुछ अस्पष्ट है. न तो समसामयिक ग्रंथों का अब अस्तित्व है और न ही इनके रचनाकार खगोलविद की पहचान की जा सकती है. जो कुछ भी हमें ज्ञात है, वह बाद में आने वाले ग्रंथ हैं, जो प्रारंभिक ग्रंथों को अपौरुषेय या दैवी मानते हैं. अर्थात वे उन रचनाओं को देवताओं द्वारा रचित मानते हैं. अतः इन अपौरुषेय ग्रंथों को जानने से पहले ऐतिहासिक ग्रंथों से परिचित होना आवश्यक है.

ऐतिहासिक सिद्धांत

ऐतिहासिक युग का प्रारंभ आर्यभट्ट (ज.–476 ई.) से होता है, जिनकी 499 ई. की रचना *आर्यभटीय* पहली खगोलीय रचना है, जो एक निश्चित लेखक की तिथि–निश्चित रचना मानी जाती है. खगोल विज्ञान के परवर्ती विकास में *आर्यभटीय* का गहरा प्रभाव है. 1,000 से भी अधिक वर्षों तक इसकी टीकाएं, अनुसरण, रूपांतरण व आलोचना की गई, पर इसकी कभी उपेक्षा नहीं की जा सकी.

आर्यभट्ट के संबंध में ज़्यादा जानकारी नहीं है. उनकी पुस्तक में उनके जन्म का उल्लेख है और यह भी कि वह मगध में कुसुमपुर में, जो बाद में पाटलिपुत्र और वर्तमान में पटना के नाम से जाना जाता है, में कार्य करते थे. 100 वर्ष पश्चात भास्कर द्वारा लिखी टीका बताती है कि आर्यभट्ट अश्मक के रहने वाले थे. दुर्भाग्यवश भौगोलिक रूप से अश्मक को चिह्नित कर पाना संभव नहीं है. पाणिनि ने अश्मक की पहचान उन्हें ज्ञात देश की सीमा के अनुसार की है. पालि ग्रंथों में अश्मक को अस्स कहा जाता है. गोदावरी नदी के तट पर बसे प्रतिष्ठान (वर्तमान पैठण) को इसकी राजधानी दर्शाया गया है. वराहमिहिर अपनी *वृहत् संहिता* में अश्मक को भारत के पश्चिमोत्तर प्रांतों में स्थित बताते हैं. एच. कर्न के अनुसार, यह स्वात घाटी स्थित यूनानियों का अस्सकनोई होना चाहिए. किंतु यह यूनानी शब्द अश्मक के बजाय 'अश्व' शब्द की व्युत्पत्ति हो सकता है.

सिद्धांतीय खगोलशास्त्र में आर्यभट्ट के पश्चात अन्य प्रतिष्ठित नाम हैं, आर्यभट्ट के शिष्य, लाटदेव (505 ई.); एक शोधकर्ता व संकलनकर्ता और शगुन विशेषज्ञ वराहमिहिर (मृ.–587 ई.); आर्यभट्ट के टीकाकार एवं योग्य गणितज्ञ भास्कर I (625 ई.); आर्यभट्ट के विरोधी ब्रह्मगुप्त (ज. 598 ई.); लल्ल (638 या 765 ई.); मंजुला या मुंजाल (932 ई.); आर्यभट्ट II (953 ई.); श्रीपति (1039 ई.) एवं प्रतिष्ठित *लीलावती* के रचनाकार भास्कर II (ज.–1114). खगोलशास्त्र की एक प्रमुख शाखा, जो अधिकांशतः आर्यभट्ट प्रणाली पर आधारित थी, 13वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी तक केरल में फलती–फूलती रही. इसमें लब्ध प्रतिष्ठित परमेश्वर (जिन्होंने 1431 में दृग्गणित प्रणाली की शुरुआत की) और अच्युत पिसारति (मृ.–1621) के नाम उल्लेखनीय हैं. बहुत से खगोलविदों ने प्राचीन आधिकारिक ग्रंथों पर टीकाएं लिखीं. उन टीकाकारों में कुछ प्रसिद्ध टीकाकारों के नाम हैं: कन्नौज के प्रथुदक (864 ई.) तथा कश्मीर के भटोत्पल (966 ई.). ऐसे भी बहुत से खगोलविद् हुए हैं, जिनकी रचनाएं उपलब्ध नहीं हैं, किंतु अन्य लेखकों ने उनके नामों का उल्लेख किया है.

सिद्धांतीय मत में बुनियादी अवलोकन की जो नई बात जुड़ी, वह थी भू–केंद्रित ग्रहों की कक्षीय अवधियां और यह वास्तविक अवलोकन द्वारा ही प्राप्त किया गया होगा. इन सबके बावजूद, यह कहने के बजाय कि शनि का काल 29.47 वर्ष है, सैद्धांतिक खगोलविद् कहता है कि शनि एक महायुग में 1,46,564 बार घूमता है. चूंकि संख्याएं बहुत बड़ी थीं, इसलिए खगोलविद् गणितीय सुविधा के लिए इकाई और दहाई के स्थान पर आए अंकों से शुद्धता को विशेष प्रभावित किए बग़ैर खिलवाड़ कर सकते थे.

यह माना गया कि किसी काल में सारे ग्रह एक ही पंक्ति में थे. एक लंबे समय (जैसे महायुग) के उपरांत पूर्णांकों की संख्या में परिभ्रमण कर ग्रह अपनी पूर्व सीध में आए. वर्तमान कलियुग के प्रारंभ का समय नियत कर आर्यभट्ट ने हमें एक नई एवं महत्त्वपूर्ण अवधारणा से परिचित कराया है. कलियुग, जैसा कि ध्यान रहे, महायुग का चौथा तथा अंतिम हिस्सा है. *आर्यभटीय* में कलियुग का प्रारंभ 18 फ़रवरी 3102 ई.पू. (जूलियन) शुक्रवार की सुबह से तथा स्थान लंका बताया गया है. परिकल्पनात्मक रूप से विषुवत रेखा तथा उज्जैन की दक्षिण रेखा जहां एक–दूसरे को काटती हैं, वह स्थान लंका है. यह प्रणाली, आर्य–पक्ष के नाम से जानी जाती है. एक मूल ग्रंथ में, जो अब मौजूद नहीं है, आर्यभट्ट ने *अर्द्ध–रात्रिका* प्रणाली को प्रस्तुत किया है. इसमें कलियुग का प्रारंभ 17/18 फ़रवरी 3102 (ई.पू.) की मध्य रात्रि के छह घंटे पूर्व निर्धारित किया गया है. तिथि का चुनाव आकस्मिक नहीं है. आर्यभट्ट को उपलब्ध अवलोकित आंकड़ों के आधार पर उज्जैन में 21 मार्च सन 499 के 12 बजे कलियुग के वर्ष 3600 का प्रारंभ होना उपरोक्त तथ्यों से मेल खाता है. इसे प्राप्त करने के लिए *आर्य–पक्ष* तथा *अर्द्ध–रात्रिका* पक्ष, दोनों में आर्यभट्ट ने मनमाने ढंग से वर्ष की लंबाई को छोटा कर दिया है, जबकि अर्द्धरात्रि–प्रणाली में एक उचित परिमाण में वर्ष की लंबाई को कम किया गया है. आधुनिक अनुरुपण ने सिद्ध कर दिया है कि समस्त ग्रह 3102 (ई.पू.) में युति में नहीं थे. किसी भी दशा में अपनी गति की वजह से ग्रह अर्द्धरात्रि तथा सूर्योदय के समय युति में या इकट्ठा नहीं रहे होंगे.

आर्यभट्ट के विशिष्ट वर्णन के कारण 3102 ई.पू. की तिथि ने एक ग़ैरखगोलीय अर्थ अर्जित किया. 'कलियुग के पहले' शब्दावली का उपयोग करने के बजाय वह कहते हैं कि 'भारत पूर्वम' (महाभारत युद्ध के पहले), यह विचार उस पौराणिक विश्वास का संकेत देता है कि ऐतिहासिक कलियुग का प्रारंभ महाभारत के युद्ध के समय से हुआ था. खगोलशास्त्रीय तथा पौराणिक कलियुग के बीच व्याप्त भ्रम की वजह से महाभारत की लड़ाई का समय 3102 ई.पू. त्रुटिपूर्ण निर्धारित हुआ. यह ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण है कि पुराणों में इस तारीख़ का उल्लेख नहीं है और आर्यभट्ट के पहले भी यह कहीं देखने को नहीं मिलती.

हम अब प्राचीन सिद्धांतीय खगोलशास्त्र के बहुत से मतों एवं पक्षों को सारांश में रख सकते हैं. ये हैं, *ब्रह्म, आर्य, अर्द्ध–रात्रिका* और *सौर.* ये समस्त महायुग के पारंपरिक काल को समाहित करते हैं, किंतु समय की इकाई के मामले में प्रत्येक में मतभेद है. पहले हम *ब्रह्म* पक्ष से परिचित हो चुके हैं. जिसमें एक कल्प में 1,000 महायुग बताए गए थे, जिसमें से प्रत्येक युग का विभाजन असमान भागों में किया गया था. कृत, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग के समय का अनुपात क्रमशः 4:3:2:1 था. इन पक्षों में ग्रहों का परिभ्रमण कल्प के प्रारंभ से माना गया है. कल्प के प्रारंभ में 1 करोड़ 70 लाख 64 हज़ार वर्षों तक रही गतिहीनता को छोड़कर *सौर* पक्ष *ब्रह्म* के समान ही रहा.

आर्यभट्ट का *आर्य* पक्ष तथा *अर्द्ध–रात्रिका* पक्ष, *ब्रह्म* पक्ष से दो बातों में भिन्न है. आर्यभट्ट ने एक कल्प को 1,008 महायुग (या 72 मनवंतर) के बराबर निर्धारित किया है. चूंकि 1,008 की संख्या 7 से विभाजित हो जाती है, यह निश्चित हो जाता है कि प्रत्येक कल्प की शुरुआत सप्ताह के उसी दिन से हुई, जिस दिन पहला कल्प शुरू हुआ था. दूसरे उन्होंने अपने महायुगों को चार समान युगों में बांट दिया, ताकि उनमें से प्रत्येक में परिभ्रमण संख्या पूर्णांक ही रहे. सारिणी 1 और 2 में महत्त्वपूर्ण *सिद्धांत* और *करण* ग्रंथ क्रमशः सूचीबद्ध हैं.

पंच–सिद्धांतिका

हम अब पुनः आर्यभट्ट के पहले अपौरुषेय काल की ओर लौटते हैं. हमारी जानकारी का प्रमुख स्रोत, वराहमिहिर का संग्रह है, जिसे *पंच–सिद्धांतिका* कहा जाता है, क्योंकि यह पांच प्राचीन सिद्धांतों का वर्णन करता है. बढ़ते हुए शुद्धता–मान के हिसाब से व्यवस्थित किए गए इनके नाम हैं : *पैतामह, वशिष्ठ, रोमक* (रोम वासियों का), *पौलिश* (पुलिश द्वारा) और *सूर्य.* वराहमिहिर ने *पैतामह* का वर्णन मात्र पांच दोहों में कर उसे ख़ारिज कर दिया. इसका काल निर्धारण 11 जनवरी 80 ई. किया गया है. वेदांग ज्योतिष के समान ही यह सूर्य तथा चंद्र से संबंधित है. इसमें पांच वर्ष के काल को युग माना गया है. वेदांग ज्योतिष से इसके वर्ष की लंबाई ज़्यादा सही है. ब्रह्मगुप्त ने *पैतामह* का हवाला देते हुए मंगल व अन्य ग्रहों का उदाहरण दिया है, जिनका वराहमिहिर के *सार संग्रह* में उल्लेख नहीं है. इसका मतलब है कि निश्चित रूप से इनके अलावा कोई अन्य संस्करण भी होना चाहिए. वास्तव में प्रारंभिक पांचवीं सदी के पैतामह सिद्धांत को *विष्णुधर्मोत्तर पुराण* में एक अंश के रूप में सुरक्षित रखा गया है. इस सिद्धांत को एक व्याख्यान का रूप दिया है. यह व्याख्यान ब्रह्मा ने भृगु को दिया है. *पैतामह* का संस्करण जो आज हमारे पास है, उससे श्रेष्ठतर मूल ग्रंथ इससे पहले अस्तित्व में था. ब्रह्मगुप्त द्वारा *ब्रह्मस्फुट सिद्धांत* में प्रयुक्त *ब्रह्म* पक्ष का आधार यही है. संभवतया यह स्वयंभू सिद्धांत, जिसे आर्यभट्ट सहित कुसुमपुर के विद्वान अत्यंत आदर से देखते थे, के समरूप है.

पंच–सिद्धांतिका के 13 श्लोक *वशिष्ठ सिद्धांत* को समर्पित हैं. इनका काल 3 दिसंबर 499 ई. है. वराहमिहिर ने निश्चय ही इन तत्त्वों पर पुनः कार्य किया होगा. वह इसे अत्यधिक अशुद्ध बताते हैं. निश्चित ही इसका कोई पूर्व–संस्करण होना चाहिए, क्योंकि वर्ष 269/270 ई. में स्फुट ध्वज द्वारा उद्धृत किसी विशिष्ट सिद्धांत का उल्लेख किया गया है. वराहमिहिर के परवर्त्ती काल में हमें विष्णुचंद्र लिखित *वशिष्ठ–सिद्धांत* प्राप्त हुआ है और बाद का *वृहद–वशिष्ठ–सिद्धांत* भी.

पंच–सिद्धांतिका में *रोमक* तथा *पौलिश* सिद्धांत, लाटदेव द्वारा तैयार संस्करणों के सारांश हैं. ये 21 मार्च 500 ई. यवनपुर (अलेक्ज़ेंड्रिया) में सूर्यास्त काल के हैं. *रोमक* महायुग का प्रयोग नहीं करता. यह 2850 वर्ष वाले युग का प्रयोग करता है. स्पष्ट रूप से यह तथाकथित 19 वर्ष के लाक्षणिक चक्र, 5 वर्ष के वैदिक युग तथा 30 तिथियों को आपस में गुणा कर निकाला गया है. वर्ष की लंबाई हिपार्कस द्वारा निकाले गए वर्ष (365.2467 दिन) से मिलती है. सभी सिद्धांतों में से केवल *रोमक* सिद्धांत में दिए गए वर्ष की लंबाई निःसंदेह अनुवतर्नीय (ट्रॉपिकल) है और यह विषुवों के अग्रगमन की अवधारणा से भी परिचित कराता है.

रोमक सिद्धांत मुख्यधारा से हटकर एक नई विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है. बाद में इसके एक

प्रवर्तक श्रीसेन हुए, जो आर्यभट्ट व ब्रह्मगुप्त के मध्यवर्ती काल के थे. विभिन्न सिद्धांतों से तत्त्वों को लेकर 'कंठा' (जोड़–तोड़ का काम) कहकर ब्रह्मगुप्त ने उनकी आलोचना की है. *वशिष्ठ* सिद्धांत में भी इसी प्रकार विभिन्न तत्त्वों के समायोजन के लिए विष्णुचंद्र की भी आलोचना की गई है.

पंच सिद्धांत का एक बड़ा भाग, *पौलिश* को समर्पित है. यह नक्षत्रीय वर्ष का प्रयोग करता है. यह भट्टोत्पल, जिन्होंने इसके कई उदाहरण दिए हैं, के समय तक चलता रहा. अब इस सिद्धांत की कोई भी मूल कृति अस्तित्व में नहीं है. वराहमिहिर द्वारा उल्लिखित पांच सिद्धांतों में से केवल *सूर्य* सिद्धांत अस्तित्व में है.

ऐसा लगता है कि पहले कभी एक मूल *सूर्य* सिद्धांत था, किंतु इसके बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है. लाटदेव ने इसे अपनी *अर्द्ध–रात्रिका* प्रणाली में पुनः ढाला. (काल अर्द्धरात्रि 20/21 मार्च 505 ई.) इस संस्करण को *पंच सिद्धांतिका* में सम्मिलित किया गया. पुनः कुछ तत्त्व ब्रह्मगुप्त के सिद्धांत (608 ई. पश्चात) से लिए गए. ऐसा माना जाता है प्रचलित सिद्धांत या तो आठवीं शताब्दी के अंत में या फिर नौवीं शताब्दी के प्रारंभ में रचा गया था. अब जो रूप हमारे सामने है, उसे बनारस के रंगनाथ ने 1603 ई. में निश्चित किया. इसके पश्चात कोई भी परिवर्तन नहीं किया गया.

सिद्धांतीय खगोलीय परंपरा 1825 तक अस्तित्व में रही, जब जॉन वॉरेन नामक व्यक्ति ने पांडिचेरी में रहने वाले एक पंचांग निर्माता को ढूंढ़ निकाला, जिसने उन्हें ज़मीन पर रखी सीपों के माध्यम से और 'कुछ कृत्रिम शब्दों व अक्षरों से' कंठस्थ सारिणियों के माध्यम से चंद्रग्रहण की गणना समझाई. 31 मई/1 जून 1825 के चंद्रग्रहण की भविष्यवाणी में शुरुआत में चार मिनट ज़्यादा, मध्य में 23 मिनट कम तथा अंत में 52 मिनट कम की त्रुटि रही. उत्तर केपलरियन पंचांगों द्वारा निष्प्रभावी किए जाने के पूर्व तक सैद्धांतिक गणनाएं सभी स्थानों पर संभवतः सर्वाधिक सही रही थीं.

पृथ्वी का घूर्णन

आर्यभट्ट के कार्य की एक विशिष्टता, पृथ्वी का अपने अक्ष पर घूमने का उनका संदर्भ रहा है, जिसका *आर्यभटीय* में तीन स्थानों पर उल्लेख हुआ है. गीतिका खंड के श्लोक तीन में एक युग में पृथ्वी के परिभ्रमण का उल्लेख है, गीतिका छह में कहा गया है कि चार सेकेंड में पृथ्वी एक कला (वृत्तांश का एक मिनट) घूमती है और गोलपाद के नौवें श्लोक में उल्लेख है कि पृथ्वी पर बैठे हुए हम तारापुंजों को पीछे की ओर जाता हुआ अनुभव करते हैं.

विद्वानों द्वारा बताया गया है कि स्थिर नक्षत्रीय पृष्ठभूमि में पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूमने के आर्यभट्ट के सिद्धांत (499 ई.) की उनके उत्तराधिकारियों, जैसे वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, लल्ल, श्रीपति एवं भास्कर II द्वारा आलोचना की गई थी. इन टीकाकारों ने प्रचलित– भूकेंद्रीय प्रतिमानों की प्रतिकूल धारणाओं से बचते हुए आर्यभट्ट के श्लोकों की उनके विचारों के विपरीत व्याख्या की.

प्रथुदक (860 ई.) और मक्कीभट्ट (1377 ई.) ने इस दृष्टिकोण का अनुमोदन किया. यहां तक कि *स्कंद पुराण* (1.1.21.71) में भी यह वर्णन है कि पृथ्वी भ्रमरिका (लट्टू) के समान घूमती है. पृथ्वी के परिभ्रमण की अवधारणा इस विषय पर प्राप्त प्राचीन ज्ञान के विपरीत थी. वराहमिहिर एवं ब्रह्मगुप्त ने तो 'पृथ्वी क्यों गतिशील नहीं हो सकती?' के कारणों की एक सूची तक बना डाली. वर्षों तक पृथ्वी के इस

परिभ्रमण की अवधारणा से आर्यभट्ट के अनुयायी असमंजस में रहे. उन्होंने गीतिका–एक और गोलपाद–नौ को आर्यभट्ट का मिथ्या ज्ञान कहकर अपने बचने का रास्ता निकालने का प्रयास किया. चूंकि यह आरोप गीतिका छह के स्पष्ट कथन पर लागू नहीं हो पा रहा था, अतः उन्होंने मूल शब्द 'भूः' को 'भामा' में बदल डाला. यह विडंबना है कि हमें आर्यभट्ट के आलोचकों के उद्धरण से ही पद के सही स्वरूप का पता चला है.

आर्यभट्ट स्वयं पूरी तरह अपने कथनों में स्थिर नहीं रहे. गोलपाद–नौ में स्थिर पृथ्वी का उल्लेख है. इसमें बताया गया है कि तारापुंज तथा ग्रह चालक हवाओं द्वारा गतिशील रहते हैं. आर्यभट्ट के इस विचार परिवर्तन की कोई संतोषजनक व्याख्या नहीं है. किंतु इस बात को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि आर्यभट्ट का पृथ्वी के भ्रमण का विश्वास उस समय मात्र परिकल्पना के चरण में था, जिसके स्वीकारने या अस्वीकारने से ग्रहों की गणना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ने वाला था. आख़िरकार आर्यभट्ट भी अन्य लोगों की तरह भू–केंद्रीय ब्रह्मांड में विश्वास करके बिना किसी नुक़सान के अपना कार्य कर सकते थे.

राहु–केतु

वैदिक पौराणिक कथाएं ग्रहणों का कारण एक असुर राहु को बताती हैं, जिसका स्पष्ट उल्लेख *अथर्ववेद* में है. ग्रहणों की सही गणितीय परिकल्पना भारतीय संदर्भ में सबसे पहले आर्यभट्ट ने की, उन्होंने बताया कि चंद्रमा को अपने किसी संगम बिंदु (पात) पर रहना चाहिए, अर्थात वे दो बिंदु, जहां पर चंद्र कक्ष कांतिवलय के मार्ग को काटते हों. बाद में राहु शब्द वैदिक ग्रंथों से उधार लिया गया तथा इसे चंद्र पात पर लागू किया गया. पात से तात्पर्य प्रतिच्छेद बिंदु से है, ख़ासतौर से आरोही पात या बिंदु (जब चंद्रमा उत्तर की ओर बढ़ते हुए कांतिवलय को काटे). इसी के साथ वैज्ञानिक विकास का ध्यान रखते हुए पौराणिक कथा को रूपांतरित किया गया. प्राचीन राहु को दो भागों में बांटा गया. दोनों पातों के अनुसार सिर को राहु नाम दिया गया तथा धड़ को केतु का नाम दिया गया. केतु भी वैदिक ग्रंथों की देन है, लेकिन इसका संबंध ग्रहण से नहीं है. *अथर्ववेद* में धूमकेतु 'धुएं की ध्वजा' का संदर्भ है. यह मृत्यु का दूसरा नाम है. यह अंदाज़ा लगाया गया कि धूमकेतु का अर्थ चिता से उठने वाले धुएं से है. राहु और केतु, दो पात एक–दूसरे से 180^{0} दूरी पर हैं. एक का निर्धारण दूसरे को तय करता है. इन सबके बावजूद ज्योतिष ग्रंथों में इन्हें दो ग्रहों के रूप में चित्रित किया गया है. वराहमिहिर ने अपनी *वृहत–संहिता* में दोनों का नाम दिया है.

राहु–केतु की अवधारणा भारत से बाहर भी गई. बर्मी परंपराओं में याहु (निस्संदेह राहु की तरह) को एक नर (आत्मा) के रूप में माना गया है, जो आंशिक ग्रहण के लिए ज़िम्मेदार है. रंगून के श्वे डैगन पगोडा में याहु सहित आठ 'ग्रह–स्थितियों' द्वारा व्यक्ति के जन्मदिन का प्रतिनिधित्व होता है.

चीनी स्रोतों में यह संदर्भ अधिक महत्त्वपूर्ण है, जहां ये दो 'अदृश्य नक्षत्रों' के रूप में चीन और बौद्ध धर्मग्रंथों में तेंग वंश (806 ई.) के समय में चर्चित हुए. एक भारतीय बौद्ध भिक्षु जिन जू क्तहा ने *क्वी याओ रैंग ज़ाई ज्यू,* अर्थात सात नक्षत्रों के अनुसार विपत्तियों से बचने के सूत्र नामक कृति का संकलन किया. इस कृति में राहु और केतु पर पंचांग के माध्यम से विस्तृत प्रकाश डाला गया है. ये तेंग पंचांगीय गणनाओं में सम्मिलित किए गए थे. दिलचस्प बात यह है कि राहु आरोही पात का सूचक है, तो केतु

चंद्रशीर्ष का बिंदु सूचक है. इस प्रकार की पहचान भारतीय ग्रंथों में नहीं है.

सिद्धांतीय काल के संपूर्ण समय के दौरान संगणना में उपकरणों तथा अवलोकनों की स्थिति गौण थी. अवलोकनों से प्राप्त परिणामों को स्पष्ट रूप से अंकित नहीं किया जाता था और खगोलीय उपकरणों का वर्णन *मात्रयंत्राध्याय* नामक एक अध्याय तक सीमित था. ब्रह्मगुप्त के *ब्रह्मस्फुट* सिद्धांत के 19 से 24 तक के अध्याय उपकरणों और प्रेक्षणों को समर्पित हैं. यद्यपि भास्कर II को एक बहुमुखीय उपकरण, फलक यंत्र की संरचना का श्रेय दिया जाता है, परंतु इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि प्रेक्षणात्मक खगोल विज्ञान की अपनी पहचान मध्य एशिया से पारस्परिक आदान–प्रदान से ही संभव होकर भारत में मध्य युग में प्रचलन में आई.

ज़िज खगोल विज्ञान

सैद्धांतिक काल के बाद विश्व के खगोल विज्ञान में बहुत से नामों का उल्लेख हुआ है, किंतु इनमें से बहुत से नाम त्रुटिपूर्ण हैं. 'अरब खगोल विज्ञान' कहना भी ग़लत होगा, क्योंकि इस दौरान जितने भी खगोलविद हुए, उनमें से अधिकांश ग़ैर अरब थे. राजनीतिक रूप से 'इस्लामी खगोल विज्ञान' एक ग़लत संज्ञा है. इसे 'ज़िज खगोलकीय' कहना अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि इस काल के खगोलशास्त्रियों का मुख्य व्यवसाय गणित तथा खगोलीय सारिणियां, ज़िज बनाना था.

ये ज़िज सारिणियां तीन प्रकार की हैं– (i) *ज़िज–ए–रशदी* (प्रत्यक्ष सारिणी), जो वास्तविक प्रेक्षण पर आधारित थी, (ii) *ज़िज–ए–हिसाबी* (गणना की गई सारिणी), जिसे अवलोकन सारिणियों को त्रुटियों के लिए शुद्ध कर प्राप्त किया गया था और (iii) *ज़िज–ए–तस्हील* (सरलीकृत सारिणियां), जो अन्य सारिणियों का सरल रूप थी और उदाहरण के लिए केवल चंद्रमा के बारे में जानकारी देती थी.

ज़िज काल का प्रारंभ अब्बासी ख़लीफ़ाई के शासनकाल में बग़दाद में हुआ, जो अब्बासी वंश के प्रधान शासक थे. ये 750 ई. में सत्ता में आए थे और पैग़ंबर मुहम्मद के परिवार के सदस्य थे. ये उनके चाचा अब्बास के वंशज थे. राजनीतिक संदर्भ में इस काल के खगोलीय विकास का निर्धारण करने हेतु हमें अब्बासी ख़लीफ़ाओं का सिलसिला जानना होगा. यह इस प्रकार है– सफ़्फ़ाह (750–54), मंसूर (754–74), महदी (775–85), हादी (785–86), हारून रशीद (786–809) और मामून (813–33).

अब्दुल्लाह मंसूर अब्बासी II ने अपनी नई राजधानी बग़दाद के शुभारंभ के अवसर पर एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया. इस सम्मेलन में यूनानी, नेस्टोरियन, बाइज़ेंटाइन और यहूदी विद्वानों के साथ–साथ हिंदू विद्वान सम्मिलित हुए. इस सम्मेलन की विषय–वस्तु प्रेक्षणीय खगोलिकी थी और ख़लीफ़ा ने आमंत्रित खगोलविदों से शुद्धतर खगोलीय सारिणियां तैयार करने को कहा. उन्होंने उनसे यह भी कहा कि वे पृथ्वी की परिधि का सही निर्धारण करें. इसी सभा में एक हिंदू विद्वान कंक ने हिंदू संख्याओं को प्रस्तुत किया. बाद में वे ही संख्याएं बहुत लोकप्रिय हुईं एवं आने वाले वर्षों में संख्या लिखने का आधार बनीं.

ज़िज खगोल विज्ञान का प्रारंभिक बिंदु पहले संस्कृत ग्रंथों और फिर यूनानी ग्रंथों का अरबी भाषा में अनुवाद करना था. अरबी किताबों की सूची की परंपरा में एक हिंदू खगोलविद् कंक अल हिंदी (लगभग (775–820) जिनका ऊपर वर्णन है) के नाम का उल्लेख किया गया है, जो भारतीय स्रोतों को ज्ञात ही नहीं है. संभवतः वह *किताब कंक अलहिंदी* के लेखक हैं (अंकारा में इसकी पांडुलिपि आज भी

सुरक्षित है), जिसमें उन्होंने अब्बासियों के खगोलीय इतिहास का, मामून के शासन तक वर्णन किया है. ऐसा लगता है कि कंक एक ज्योतिषी थे, जो भारत से जाकर बग़दाद में बस गए थे. कंक के बारे में अनेक किंवदंतियां प्रचलित हैं, परंतु उन्हें भारत से पश्चिम एशिया में वैज्ञानिक ज्ञान के संप्रेषक के रूप में बेहतर देखा जा सकता है.

ब्रह्मगुप्त पहले नियमित खगोलशास्त्री हैं, जिनसे अरबवासी परिचित हुए. इनका ग्रंथ *ब्रह्मस्फुट सिद्धांत* वह मूल कार्य था, जिसकी नींव पर सातवीं शताब्दी के अंत और आठवीं शताब्दी के प्रारंभ में *महासिद्धांत* की रचना की गई थी. यह ग्रंथ पुनः *ज़िज अल सिंद–हिंद अल कबीर* का आधार बना, मंसूर के शासन में इसकी रचना फ़ज़री ने की थी. *आर्यभटीय* का *ज़िज अल अर्भर* के नाम से ईसा के 800 वर्ष पश्चात अरबी में अनुवाद किया गया.

अगला क़दम यूनानी विद्वता को अंगीकार करना था. हारून रशीद ने समस्त यूनानी ग्रंथों को इकट्ठा करने का आदेश दिया था. उनके उत्तराधिकारी मामून ने कई यूनानी पांडुलिपियों को बाइज़ेंटाइन सम्राट से शांति समझौते पर हस्ताक्षर के दौरान हस्तगत किया. इन पांडुलिपियों में टॉलेमी की रचना भी थी, जिसे *एल मजिस्टे,* अर्थात बहुत महान के रूप में प्राचीन समय से जाना जाता था. अनुवाद में दोनों ही भाषाओं का प्रयोग करते हुए इसका नाम *अल माजेस्त* रखा गया था. (अंग्रेज़ी के बहुत से वैज्ञानिक शब्द 'अल' से शुरू होते हैं, जैसे अलजेब्रा, अलडेबरन, अलम्युकेंटर और ये सब अरबी मूल के हैं.)

मामून ने एक बौद्धिक अकादमी 'बैतुल हिक्मा' (ज्ञान का घर) की स्थापना की थी. इसने यूनान तथा मध्य एशिया सहित सभी जगह के विद्वानों को आकर्षित किया. मामून ने बग़दाद और दमिश्क में वेधशालाओं का निर्माण भी किया. अरबी भाषा में सबसे पहली खगोलीय सारिणी का निर्माण संस्कृत से अनुवाद क़र मुहम्मद इब्ने मूसा ख़्वारिज़्मी (780–850) द्वारा किया गया. जैसी कि आशा थी, सभी सारिणियों ने उज्जैन की कर्क रेखा के गणितीय आंकड़े दिए. किसी सिद्धांत से रहित ये समस्त सारिणियां पंचांगीय तथा खगोलीय उद्देश्य के लिए तैयार की गई थीं. इन सारिणियों का एक परवर्ती संस्करण बाथ के एथलहार्ड ने लैटिन भाषा में अनुवादित किया था, जो अरबी सीखने के लिए स्पेन गए थे. ख़्वारिज़्मी की सारिणी खगोल विज्ञान और गणित के इतिहास में एक युगांतरकारी घटना है; यह शून्य सहित भारतीय अंक व्यवस्था के पश्चिम की ओर प्रवास को दर्शाती है. दिलचस्प बात है कि ये संख्याएं अरबी भाषा में हिंदसा (हिंदुस्तान से) कहलाईं, किंतु यूरोप में इनको जन्मदाता की बजाय प्रदायक के प्रति सम्मान देते हुए अरबी कहा गया. (अंग्रेज़ी में 'अलगोरिद्म' ख़्वारिज़्मी से बना है.)

ज़िज खगोलविदों में सबसे महान खगोलविद्, मुहम्मद इब्ने–जाबिर सीना अबू–अब्दुल्ला बतनी (मृ.–928) थे, यूरोप में इन्हें अलबातेग्निअस के नाम से जाना जाता है. उनके स्वयं के 877 से 918 के मध्य के ज्योतिषीय पर्यवेक्षण उनके ग्रंथ अज़–ज़िज–अस–साबी में संकलित हैं. वह पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने अपनी सारिणी में सैद्धांतिक अर्द्धचाप का उपयोग अर्द्धकोण के लिए किया था. साइन शब्द की व्युत्पत्ति भी रोचक है. अर्द्धचाप के लिए संस्कृत के ज्या को अरबी में 'ज़ेब' कहा गया. जब अरबी ग्रंथों का लैटिन अनुवाद हुआ, तो ज़ाइब, जिसका अर्थ वक्षस्थल भी होता है, शाब्दिक अनुवाद में साइनस वक्र रेखा या चोग़े की तह हो गया.

भारत की ज़िज खगोल विज्ञान से नाममात्र की पहचान अलबरूनी (973–1048) के माध्यम से हुई,

जेन्होंने *ज़िज–ए मसूदी* लिखी, जिसे *क़ानून अल मसूदी* के नाम से भी जाना जाता है. 13वीं शताब्दी में मंगोलों की मध्य एशिया तथा ईरान पर विजय के साथ बहुत से विद्वान, जिनमें खगोलविद भी थे, भारत आए, जहां का वातावरण उन्हें राजनीतिक एवं बौद्धिक रूप से अनुकूल लगा. भारत की पहली ज़ेज ऐसे ही एक पनाह लेने वाले मुहम्मद बिन उमर ने तैयार की. इस ग्रंथ का नाम दिल्ली के सुल्तान नासिरुद्दीन अबुल मूसा महमूद बिन शम्सुद्दीन इल्तुतमिश (शासनकाल, 1246–65) के नाम पर *ज़िज–ए–नासिरी* रखा गया. 1351 से 1388 तक दिल्ली के शासक फ़िरोज़ शाह तुग़लक़ के काल में ज़िज–खगोलिकी ने अपनी जड़ें जमाई. इसी दौरान लाने–ले जाने में आसान और घुमाए जा सकने वाले उपकरण, उस्तरलाब या एस्ट्रोलैब का प्रचलन भारत में प्रारंभ हुआ. फ़िरोज़शाह स्वयं एस्ट्रोलैब बनाने में माहिर थे. उनके समय के जीवनी लेखकों के अनुसार, वह अपने पास हमेशा यह यंत्र रखते थे. उन्होंने इसकी आकृति को अपने झंडे पर भी चित्रित करवाया था. कहा जाता है कि उत्तरी तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में वह स्वयं इसका प्रयोग करते थे. (शायद इस प्रकार का यंत्र डिज़ाइन की चुनौती के बतौर बनता था, भ्रमणशील खगोलविद् शायद ही इसका प्रयोग करते हों.) इस यंत्र को दिल्ली के नज़दीक फ़िरोज़ाबाद एक सबसे ऊंची मीनार पर रखा गया था. आने वाले वर्षों में इस प्रकार की कई एस्ट्रोलैब बनाई गईं तथा अरबी और फ़ारसी की ज़िजों की प्रतिलिपियां बनीं और उन पर अक्सर टीकाएं होती थीं.

इसके साथ ही फ़िरोज़शाह ने यंत्रीकृत खगोलिकी को संस्कृत में लिखवाए जाने के भी प्रयास किए. शाही दरबार के महेंद्र सूरी नामक ज्योतिषविद ने 1370 में एस्ट्रोलैब पर *'यंत्रराज'* शीर्षक से एक ग्रंथ तैयार किया. यह संस्कृत में लिखा जाने वाला तथा पूरी तरह यंत्रीकरण को समर्पित और अनेक परवर्ती टीकाओं का विषय बनने वाला पहला ग्रंथ था. लगभग 1400 में पद्मनाभ ने एक ऐसे एस्ट्रोलैब नामक यंत्र का वर्णन किया, जिसका डिज़ाइन सूरी के यंत्र से भिन्न था और इसलिए वह एक अलग स्रोत से लिया गया था. इससे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि उन्होंने एक ऐसे यंत्र ध्रुव–ब्राह्मण–यंत्र का वर्णन किया, जो समय की गणना *पोलर फ़िश* तारों के समूह से करता है. इसमें *अल्फ़ा* एवं *बीटा उर्सा मायनरस* भी सम्मिलित हैं. सारिणी तीन में उन संस्कृत ग्रंथों की सूची दी हुई है, जो सिर्फ़ खगोलीय यंत्रों पर लिखे गए हैं.

दिल्ली की खगोलकीय सहित सभी सांस्कृतिक गतिविधियां तैमूर के आक्रमण (1398–1399) के फलस्वरूप थम गई थीं और उनके वंशजों द्वारा साम्राज्य स्थापित किए जाने की प्रतीक्षा कर रही थीं.

बाबर के पुत्र हुमायूं (शासनकाल, 1530–56) के बारे में कहा जाता है कि वह वेधशाला के एस्ट्रोलैब यंत्र, गोले तथा अन्य उपकरणों के उपयोग में माहिर थे. उनकी बहन के अनुसार, उन्होंने एस्ट्रोलैब यंत्र का उपयोग अपने विवाह हेतु लग्न चुनने के लिए किया था. उनके संरक्षण में इस यंत्र का उत्पादन लाहौर में किया जाने लगा और एक परिवार पीढ़ियों तक यंत्र निर्माण में लगा रहा. इस परिवार के संस्थापक (उस्ताद) शेख़ अल्लाह–दाद अस्तुरलाबी हुमायूंनी लाहौरी या शेख़ अल्लाह–दाद थे, जो लाहौर में हुमायूं के एस्ट्रोलैब यंत्रों के मुख्य निर्माता थे. ये सभी यंत्र पूरी तरह तत्कालीन फ़ारसी नमूनों के आधार पर बनाए गए थे. यह ज्ञात होता है कि क़रीब डेढ़ शताब्दी तक इन यंत्रों की बनावट एक जैसी रही, यानी ये यंत्र केवल सजावट के लिए थे, वास्तविक उपयोग के लिए नहीं. इनमें से कुछ यंत्र इतने बड़े थे कि उनके द्वारा अवलोकन असंभव था.

हुमायूं के खगोलविद् मुल्ला चांद ने अकबर के जन्म के समय का निर्णय करने के लिए एक ऐसे ही यंत्र का उपयोग किया था. चांद अकबर के दरबारी खगोलशास्त्री भी थे. बाद के संदर्भों (*ज़िज– ए–शाहजहांनी* और *ज़िज–ए–मुहम्मद शाही*) से ज्ञात होता है कि चांद ने उलूग़ बेग की ज़िज पर एक तहसील (टीका) तैयार की थी, हालांकि उसकी कोई प्रति आज मौजूद नहीं है. अबुल फ़ज़ल के अनुसार, अकबर के समय में 86 प्रकार की ज़िजें ज्ञात थीं.

शाहजहां के दरबार के खगोलविद, फ़रीदुद्दीन मसूद बिन हाफ़िज़ इब्राहिम मुनज्जिम (मृ.–1627) ने उलूग़ बेग के अवलोकनों के आधार पर *ज़िज–ए–शाहजहांनी* की गणना की थी. उन्होंने उस समय तक बनी सभी संकलित ज़िजों का विस्तार से वर्गीकरण भी किया था. नित्यानंद ने (1639) इस ज़िज का संस्कृत अनुवाद किया. रोचक तथ्य यह है कि शाहजहां ने एक वेधशाला के निर्माण का विचार भी किया था और मुल्ला महमूद जौनपुरी से उसकी योजना तैयार करने को कहा. परंतु यह विचार छोड़ देना पड़ा, क्योंकि सारा धन मलिका मुमताज़ के स्मारक के लिए चाहिए था, जो ताजमहल के नाम से प्रसिद्ध हुआ.

जयसिंह की वेधशाला

18वीं शती में राजा जयसिंह सवाई ने (1688–1743) यंत्रों पर एक प्रबंध, *यंत्र–प्रकार* लिखा, जो 1724 से पहले पूरा हो गया, इसमें 1729 तक कुछ और तथ्य जोड़े गए. 1732 में उनके खगोलशास्त्री जगन्नाथ ने अल तुसी रचित *अलमाज़ेस्त* के अरबी पाठों को *सम्राट सिद्धांत* के नाम से संस्कृत में अनूदित किया, इसमें पूरक परिशिष्ट जोड़ते हुए बहुत से यंत्रों का वर्णन किया गया है.

जयसिंह ने ईंट–पत्थर की कई वेधशालाएं (टेलिस्कोप से पूर्व की) बनवाईं. उन्होंने 1721–24 के दौरान बनी वेधशाला से भी बड़ी वेधशाला, 1728–34 में अपनी राजधानी जयपुर में बनवाई. 1723 और 1734 के मध्य उन्होंने मथुरा, उज्जैन तथा वाराणसी में कुछ छोटी वेधशालाओं का निर्माण करवाया. (इनके निर्माण की सभी तारीख़ें अनुमानित हैं.) वाराणसी की वेधशाला का निर्माण मानमंदिर महल की छत पर हुआ है, जो जयसिंह के पूर्वज मानसिंह (1550–1614) द्वारा बनवाया गया था; यह संभव है कि उन्होंने किसी पुरानी वेधशाला का पुनरुद्धार किया हो. जयसिंह की वेधशाला 'शहीद शहज़ादे' उलूग़ बेग के नमूनों के आधार पर बनाई गई थी. यद्यपि समरक़ंद की वेधशाला दिल्ली एवं जयपुर की वेधशालाओं से तीन सौ वर्ष पहले बनाई गई थी, तथापि उलूग़ बेग के यंत्र जयसिंह के यंत्रों की तुलना में ज़्यादा सही थे.

मुग़ल साम्राज्य के सुनहरे युग में भव्य भवनों एवं बगीचों का निर्माण हुआ. मुग़लों के परवर्ती शासनकाल में षड्यंत्रों के चलते सांस्कृतिक गतिविधियां सिमटकर हवेली–केंद्रित हो गईं. पतन के इस दौर में कुलीनों के आमोद–प्रमोद का समय संगीत और कविता में ही गुज़रता था. जयसिंह इसके अपवाद थे. यद्यपि वह षड्यंत्र के विरुद्ध भी नहीं थे, किंतु उन्होंने अपने समकालीन शासकों के बजाय महान मुग़लों से भवन तथा बगीचों के निर्माण की प्रेरणा पाई. यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि समस्त सल्तनत एवं मुग़लकाल में जयसिंह की वेधशालाएं ही वास्तविक खगोलीय प्रयास हैं.

निस्संदेह खगोल विज्ञान में जयसिंह की सच्ची रुचि थी, किंतु यह उनके लिए आश्रय भी था और संभवतः यह उनका एक राजनीतिक वक्तव्य भी हो. 1720 का साल मुहम्मद शाह के लिए हर्ष का वर्ष

था, क्योंकि वह 'राजा बनाने वाले' सामंतों के पंजों से मुक्त हो गए थे. 25 नवंबर 1720 को एक भव्य दरबार का आयोजन किया गया. वहां हिंदुओं से लिए जाने वाले जज़िया के विरुद्ध जंयसिंह ने सफलतापूर्वक अभियान छेड़ा एवं जज़िया कर को समाप्त करने की दलील दी. संभवतः इसी दरबार में (या हो सकता है कुछ महीनों पश्चात जुला. 1721 के शाही दरबार में) जयसिंह ने अपनी वेधशाला बनाने की अनुमति बादशाह से ली. एक तरह से दिल्ली वेधशाला, जयसिंह के समर्थन से निर्मित, नेतृत्व का तो नहीं, लेकिन सुव्यवस्था की पुनर्स्थापना का स्मृति चिह्न है. औरंगज़ेब के निरंकुश शासन के पश्चात दिल्ली में यही एक कार्य उल्लेखनीय था. ठीक उसी प्रकार, जयपुर तथा वहां की वेधशाला जयसिंह के राजसी स्वप्न का प्रतीक है. उनके खगोलीय कार्य के नामकरण में एक विडंबना है. *ज़िज–ए–मुहम्मद शाही* (1728 में पूर्ण) संभवतया एकमात्र सच्ची श्रद्धांजलि है, जो राजा जयसिंह ने अपने निष्प्रभावी, किंतु आकर्षक बादशाह को दी थी.

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जाए, तो जयसिंह के खगोल विज्ञान की असाधारण विशेषता उसका काल–दोष है. जब जयसिंह परिदृश्य में आए, तब एक शताब्दी पहले से यूरोप में दूरदर्शी यंत्र का प्रयोग होता आ रहा था. पेरिस तथा ग्रीनविच में वेधशालाओं का निर्माण हो चुका था तथा कई महत्त्वपूर्ण आविष्कार किए जा चुके थे. दूरदर्शी यंत्र भूतकाल से अपने आप में एक क्रांतिकारी परिवर्तन था. इसने खगोल विज्ञान को आंखों के दायरे से मुक्त किया. इसलिए यह भविष्य का एक महत्त्वपूर्ण यंत्र बन गया. पीतल तथा ईंट–पत्थर के उपकरण पुराने होकर चलन से बाहर हो गए थे, भले ही वे प्रारंभिक दूरबीनों से ज़्यादा बुरे भी नहीं थे. जयसिंह यूरोपीय विकास के महत्त्व को पहचानने में चूक गए. अपनी प्रेरणा के लिए, समरक़ंद से परे देखने की उन्होंने रत्ती भर आवश्यकता नहीं समझी. उनके लिए यूरोपीय खगोलशास्त्री यूरोप के उलूग बेग थे और एक निष्ठावान अनुसंधानकर्ता की तरह उन्होंने अपने परिणामों की तुलना उनके परिणामों से की.

तदनुसार अंततः 1728 में, जब जयसिंह की खगोलीय सारिणियां तैयार हो गईं तो उन्होंने अपने ख़र्च पर एक प्रतिनिधि मंडल पुर्तगाल भेजा. आगरा के जेसुइट मिशन के प्रधान पादरी फ़ादर इमैन्युएल डी. फ़िगरेडो की अगुवाई में यह प्रतिनिधिमंडल 1728 में लिस्बन के लिए रवाना हुआ तथा डेढ़ वर्ष पश्चात 1730 में वापस आया. अपने साथ यह प्रतिनिधिमंडल बहुत सी गणित संबंधित पुस्तकें और संभवतः कुछ दूरदर्शी यंत्र लेकर लौटा. जयसिंह ने कुछ यंत्रों को आज़माया और उनमें कुछ कमी पाई. सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि प्रतिनिधिमंडल अपने साथ फ़िलिप दे ल हाइरे (1640–1718) की लगभग महत्त्वहीन पुस्तक *टेबुले एस्ट्रॉनॉमिके* लेकर आया. ये सारिणियां पेरिस की वेधशाला में तैयार की गई थीं तथा 1687 में मूल रूप से प्रकाशित की गई थीं. इसका संशोधित संस्करण 1702 में आया था. जयपुर में सारिणियों का स्वागत उत्साहपूर्वक किया गया और तत्काल इनका अनुवाद किया गया. यद्यपि जयसिंह की सारिणियों में अधिकतर आंकड़े संभवतः उनके अपने थे, फिर भी उन्होंने दे ल हाइरे के अपवर्तन सुधारों, कई स्थानों के भौगोलिक निर्देशांकों और संभवतया समय के समीकरण को अपनाया. शीघ्र ही यह पाया गया कि हाइरे की सारिणियां अंतिम सत्य नहीं हैं. कुछ स्थानों पर अवलोकनों से वे मेल नहीं खा रही थीं. पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग करते हुए जयसिंह ने इन विसंगतियों के लिए हाइरे के उपकरणों के 'अशुद्ध व्यास' को उत्तरदायी माना. उन्होंने चंद्रनगर (बंगाल) की फ़्रांसीसी फ़ैक्ट्री से जेसुइट पादरियों को सलाह मशविरे के लिए आमंत्रित किया. फ़्रांसिस जे पौन्स (1698–1752) के साथ फ़ादर क्लॉड बूदियर (1686–1757) जयपुर आए और उन्होंने दे ल हाइरे की

सारिणियों के त्रुटिपूर्ण होने की पुष्टि कर दी. जयसिंह ने यूरोप से दो जेसुइट गणितज्ञों की यात्रा का भी प्रबंध किया और फ़ादर एंतोन गैबल्सबर्गर (1704–41) तथा आंद्रियाज़ स्त्रोब (1703–52), 1740 में जयपुर आए. जयसिंह ने एक अन्य प्रतिनिधिमंडल को यूरोप भेजने की योजना बनाई थी, किंतु 1743 में उनकी मृत्यु के साथ उनकी सारी योजनाएं समाप्त हो गईं.

वैज्ञानिक परामर्श के लिए पुर्तगाल का चुनाव जयसिंह की एक भूल थी. इसकी संपदा बहुत पहले ही भारत पहुंच चुकी थी तथा इसकी शैली का उपयोग मुग़लों ने अपनी शान–शौक़त के लिए किया था. उच्च वैज्ञानिकता से वंचित पुर्तगाल जयसिंह को ज्ञान का कोई प्रकाश नहीं दे पाया, इसलिए नहीं कि यह कैथॅलिक राज्य था, बल्कि इसलिए कि खगोल विज्ञान के क्षेत्र में इसका अस्तित्व नहीं के बराबर था. 18वीं शताब्दी का खगोल विज्ञान फ़्रांस और इंग्लैंड का है. जयसिंह के लिए यह संभव था कि वह यूरोप की इस संपदा का अनुकरण करें तथा पेरिस और लंदन से कुछ अच्छी गुणवत्ता वाले यंत्र मंगवाएं, प्रेक्षण में उनका उपयोग करें या फिर शाही दरबार में अपनी स्थिति का प्रयोग करते हुए किसी भी व्यापारिक कंपनी से बतौर उपहार खगोल विज्ञान के यंत्रों को प्राप्त करें. किंतु जयसिंह ने ऐसी इच्छा की ही नहीं. यदि उन्होंने ऐसा किया होता, तो यह एक लाभकारी अनुभव होता; वह दक्षिण आकाश को परखने वाले प्रथम आधुनिक सुव्यवस्थित खगोलविद होते.

18वीं शताब्दी के भारत का वैज्ञानिक माहौल, फ़्रांस और इंग्लैंड से बिल्कुल विपरीत था. यूरोप को आधुनिक खगोल विज्ञान की आवश्यकता थी और इसके लिए उसने तकनीकी विकास किया. पारंपरिक कारीगरों को खगोलविदों के साथ मिलकर आवश्यक परिशुद्धता के यंत्रों को बनाने के लिए प्रेरित किया गया. दूसरी ओर, जयसिंह के भारत को आधुनिक या मध्ययुगीन खगोल विज्ञान की ज़रूरत नहीं थी. खगोल विज्ञान उनके लिए केवल फलित ज्योतिष के सहायक के रूप में एक खेल था, इसीलिए उपलब्ध तकनीकी विज्ञान को अनदेखा कर दिया गया. जब जयसिंह को पीतल के यंत्र नहीं मिले, तो उन्होंने हार मान ली एवं ईंट–पत्थर के यंत्र बनवाए. यह पूर्व की लंबी परंपरा के अनुकूल था, जिसमें राजा–महाराजा भव्य महल, मंदिर या मस्जिद बनवाते, जयसिंह ने भी यही किया.

जयसिंह की विज्ञान संबंधी इमारतें लंबे समय तक अस्तित्व में नहीं रहीं. 1745 में जयसिंह की मृत्यु के दो वर्ष पश्चात मुहम्मद शाह ने फ़ादर स्त्रोबल को दिल्ली आने का निमंत्रण दिया और उन्हें दिल्ली की वेधशाला का कार्यभार संभालने के लिए कहा. उन्होंने इनकार कर दिया. 1764 में वेधशाला को नेस्तनाबूद कर दिया गया. यह तब हुआ, जब भरतपुर के जाट राजा सूरजमल के पुत्र जवाहर सिंह ने दिल्ली को लूटा. इसके 150 से भी अधिक वर्षों के पश्चात 1911 में सम्राट जॉर्ज V के दिल्ली दरबार के अवसर पर वेधशाला आकर्षक दिखे, इसलिए तत्कालीन जयपुर नरेश ने इसका पुनर्निमाण किया. (आज दिल्ली तथा जयपुर की वेधशालाएं जीर्णशीर्ण दशा में हैं तथा सैलानियों के आकर्षण केंद्रों के अलावा कुछ नहीं हैं). जयसिंह द्वारा किए गए वैज्ञानिक प्रयत्नों के लिए, जो हालांकि बड़े पैमाने पर अप्रासंगिक थे, इससे बड़ी विडंबनापूर्ण बात क्या होगी कि उनके पोते ने उनकी वेधशाला को तोपों के कारख़ाने में बदल दिया तथा पूर्वजों की 400 किग्रा की पीतल की एस्ट्रोलैब को निशाना साधने के काम में लिया.

आधुनिक खगोल विज्ञान का आगमन

यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि ब्रिटेन का पहला व्यापारिक जहाज़ उसी वर्ष भारत पहुंचा, जिस वर्ष नीदरलैंड में दूरदर्शी यंत्र का आविष्कार हुआ. शांतिकाल में व्यापारिक आवश्यकताओं ने आधुनिक

खगोल विज्ञान के विकास में एक प्रेरक काम किया. पेरिस (1667) में तथा ग्रीनविच (1675) में समुद्र में देशांतरों की समस्या हल करने के लिए वेधशालाओं का निर्माण किया गया और (ब्रिटिश) ईस्ट इंडिया कंपनी में रोज़गार पाने के लिए बहुत से युवकों ने एस्ट्रोनॉमर रॉयल (शाही खगोलविद्) से प्रशिक्षण लिया. कंपनी की नौकरी लाभदायक थी और खगोलशास्त्र का ज्ञान भी लाभदायक था. आधुनिक खगोल विज्ञान यूरोपीय लोगों के साथ भारत आया. औरंगज़ेब के पश्चात (1707) मुग़ल साम्राज्य के पतन के साथ ही समुद्रपारीय वैश्यों ने क्षत्रिय महत्त्वाकांक्षाएं (क्षेत्रीय तथा सामरिक) विकसित कर लीं और खगोलशास्त्र की मदद लेते हुए अपने भावी साम्राज्य से स्वयं को परिचित करने के उद्देश्य की पूर्ति में संलग्न हो गए. (याद रहे कि यद्यपि मुग़ल शासक चश्मों और दूरबीनों को उपहार में प्राप्त करते थे, जयसिंह ने आधे मन से ही टेलिस्कोप का प्रयोग किया और ये उपकरण मध्ययुगीन भारत में अनुपयोगी ही बने रहे.)

यह एक विडंबना ही थी कि भारत में टेलिस्कोप का प्रयोग व्यावहारिक के बजाय केवल खगोल विज्ञान के लिए किया गया और ऐतिहासिक अनिवार्यता न होकर इतिहास के रोमांस की परिधि में ज़्यादा आता रहा. केपलर के प्रारंभिक अनुयायी, जेर्मिया शार्कले (1626–1655), एक अंग्रेज़ प्रेक्षक थे, जिन्होंने 1651 में पश्चिमी भारत के सूरत में बुध के संक्रमण को देखा. इसके बावजूद वह न तो आंतरिक और न ही बाह्य गमन का समय निश्चित कर सके. इसलिए उनके अवलोकन वैज्ञानिक महत्त्व के न होकर मात्र उत्सुकता का विषय बनकर रह गए. आने वाले प्रेक्षणों के अधिक विशिष्ट प्रतिनिधि के रूप में जेसुइट पादरी ज़्यां रिचो (1633–93) द्वारा किए गए कार्य हैं, जिन्होंने 1689 में पांडिचेरी से यह खोज निकाला कि चमकीला तारा अल्फ़ा सेंटैरी वास्तव में एक न होकर दो हैं. इसके लिए जेसुइटों द्वारा किए गए समर्पित कार्य को धन्यवाद देना चाहिए, जिनके पास प्रशिक्षण, समय और समूचे देश में विचरण करने का अवसर था, इसलिए औपनिवेशिक मोर्चे के बजाय फ़्रांसीसी वैज्ञानिक मोर्चों पर ज़्यादा सफल रहे. भारत का पहला विश्वसनीय नक़्शा फ़्रांसीसी भूगोलविद्, ज़्यां बूरिन्योन् द आन्विल (1697–1782) द्वारा संकलित किया गया था. इनका 1737 में बनाया गया दक्षिण भारत का नक़्शा 1719 में जेसुइट फ़ादर ज़्यां वेनांत बूशोत् (1655–1732) के क्षेत्र–कार्य पर आधारित था.

भारत में दूरदर्शी यंत्र से जुड़ी खगोल विद्या का प्रारंभिक अभिलिखित उपयोग छुटपुट या व्यक्तिगत जिज्ञासा से प्रेरित था. 1757 की पलासी की लड़ाई के साथ स्थिति बदली, अब ईस्ट इंडिया कंपनी जागीरदार या भूस्वामी बन गई थी. 1764 में मेजर जेम्स रेनल कंपनी के सर्वेक्षक नियुक्त किए गए. खगोल विज्ञान का प्रयोग नए राज्य की सेवाओं में हासिल की गई ज़मीनों के सर्वेक्षण और सैनिक अभियानों के लिए मार्ग निर्धारण के लिए अंतःक्षेत्रों के सर्वेक्षणों में किया जाने लगा. इस दृष्टि से 1761 और 1769 का शुक्र का संक्रमण सही समय पर हुआ था. फ़्रांस और इंग्लैंड के बीच प्रतिस्पर्द्धा थी, अतः उन्होंने बहुत से यंत्रों को ख़रीदा तथा औपनिवेशिक भारत को खगोल विज्ञान के प्रति जागरूक बनाया.

भारत में आधुनिक खगोल विज्ञान के संस्थान स्थापित करने का कारण तारों के प्रति प्रेम न होकर कोरोमंडल तट का भय था. चट्टानों और पत्थरों से भरा हुआ तथा वर्ष में दो बार मानसून द्वारा प्रताड़ित यह पूर्वी तट कई जहाज़ों की क़ब्रगाह बन जाता था. इसका सर्वेक्षण वास्तव में जीवन और मृत्यु का प्रश्न बन गया था. इसीलिए साधन संपन्न प्रशिक्षित सर्वेक्षक खगोलविद् माइकेल टॉपिंग (1747–96) को 1785 में इंग्लैंड से मद्रास लाया गया. अगले वर्ष सोच–समझकर किए गए प्रयत्न स्वरूप मद्रास के एगमोर में एक छोटी सी निजी वेधशाला बनाई गई. इसके संस्थापक विलियम पेट्री (मृ.–1816) कंपनी

के एक प्रबुद्ध एवं प्रभावी अधिकारी थे, जो बाद में मद्रास के गवर्नर पद पर कुछ माह तक कार्यरत रहे, अंत में वह प्रिंस ऑफ़ वेल्स द्वीप (पेनांग, मलेशिया) के गवर्नर रहे.

मैसूर के टीपू सुल्तान की 1799 में सेरिंगपट्टनम की लड़ाई में हार के पश्चात ईस्ट इंडिया कंपनी की सरहदें पूर्वी तट से पश्चिम तक फैल गईं. जैसे पलासी के युद्ध की वजह से रेनेल जैसे खगोलशास्त्री भारत को मिले, ठीक उसी तरह सेरिंगपट्टनम युद्ध के बाद लैंबटन भारत को मिले. ब्रिगेड मेजर विलियम लैंबटन ने पूर्व में न्यू ब्रंसविक कनाडा में सर्वेक्षण कार्य किया था; उन्होंने 1800 में भारतीय प्रायद्वीप का त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण देश में पुराने (सेकेंड हैंड) यंत्रों द्वारा किया. 1 जनवरी 1818 को सर्वेक्षण को ग्रेट ट्रिगॅनोमेट्रिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया (जी.टी.एस.) के नाम से पूरे देश और उससे परे फैली हुई सीमाओं तक विस्तृत कर दिया गया. 1878 में इसे सहायक सर्वेक्षणों में मिला दिया गया, ताकि भारतीय सर्वेक्षण विभाग (सर्वे ऑफ़ इंडिया) का गठन हो सके. इन दोनों नामों का अक्सर पारस्परिक उपयोग किया जाता है. इस प्रकार, 18वीं शताब्दी के अंत में भारत ने आधुनिक खगोल विज्ञान के प्रवेश को औपनिवेशिक सहायक के रूप में देखा. 19वीं शताब्दी के अपने व्यापारिक और राजनीतिक हितों को बढ़ाने के लिए ब्रिटिश सरकार ने विज्ञान का व्यापक उपयोग किया. भारतीय आधुनिक विज्ञान के संपर्क में तब आए, जब उन्हें सस्ता श्रम उपलब्ध कराने के लिए सहयोगी भूमिका सौंपी गई. एक बार आधुनिक विज्ञान से परिचित होने के पश्चात अंततः भारतीयों ने अपने अधिकारों के तहत अंतर्राष्ट्रीय विज्ञान संघ के पूर्णकालिक सदस्य के रूप में स्वयं को स्थापित करने के लिए कठिन संघर्ष किया.

मद्रास वेधशाला (1786)

जैसा पहले बताया गया है, खगोलीय उद्देश्य की पूर्ति हेतु मद्रास के एगमोर में एक निजी वेधशाला का निर्माण किया गया. इसके संस्थापक विलियम पेट्री (मृ.–1816) थे. वह एक ज्ञानी एवं प्रभावशाली कंपनी अधिकारी थे. बाद में वह कुछ महीनों के लिए मद्रास के गवर्नर भी रहे. इस वेधशाला का उपयोग टॉपिंग द्वारा मध्याह्निक संदर्भ के रूप में किया गया तथा इसे पेट्री के अनुग्रह पर 1790 में कंपनी ने ले लिया. दो वर्ष पश्चात यह वेधशाला नुंगमबक्कम (मद्रास) के परिसर में स्थापित की गई, जहां अभी भी उसके कुछ अवशेष हैं. इसके 100 वर्ष बाद 1899 में खगोलीय गतिविधियां कोडैकनाल स्थानांतरित हो गईं और मद्रास की वेधशाला पूरी तरह से मौसम विज्ञान संबंधी वेधशाला हो गई. पेट्री द्वारा वेधशाला को वसीयत में दिए गए यंत्रों में से एक यंत्र, पेंडुलम घड़ी है, जिसे जॉन शेल्टन ने 1769 के शुक्र संक्रमण के उद्देश्य से बनाया था. यह कैप्टन जेम्स कुक द्वारा अपनी यात्राओं में उपयोग की गई घड़ी के समान ही है. यह अभी भी कोडैकनाल में टिक–टिक कर रही है तथा भारत में आधुनिक खगोल विज्ञान के प्रवेश की प्रत्यक्षदर्शी है.

प्रारंभिक वर्षों में मद्रास वेधशाला ने भारत के ग्रेट ट्रिगनोमेट्रिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया (जी.टी.एस.) के लिए न केवल मध्याह्निक संदर्भ संयंत्र उपलब्ध कराए, वरन काम करने वाले लोग तथा अन्य यंत्र भी उपलब्ध कराए. ब्रिटेन की सागर–पार बढ़ती संलग्नता ने दक्षिणी आकाश के परिचय को आवश्यक कर दिया था. अतः 13 वर्षों के अथक श्रम के उपरांत 1843 में नए प्राप्त संक्रमित उपकरण और भित्तिपाद (दोनों ही डोलॉन्ड द्वारा निर्मित और 4 इंच वाले दूरबीनों सहित) की सहायता से ग्रीनविच के पूर्व सहायक टॉमस ग्लैनविल टेलर (1804–1848) ने 11,000 दक्षिणी तारों का अपना प्रसिद्ध सूचीपत्र प्रस्तुत किया. शाही खगोलविद सर जॉर्ज बिडेल एयरी ने 'आधुनिक युग का महान केटलॉग' बतलाकर

इस सूचीपत्र का स्वागत किया. (इसे 1901 में संशोधित किया गया).

1850 में मद्रास वेधशाला को इसका पहला स्थिर परा–मध्याह्निक यंत्र प्राप्त हुआ, जो छह इंच के एपर्चर लेंस वाला टेलिस्कोप था. इसका निर्माण पेरिस के लेरीबूर्ज़ एवं सेक्रेटन ने किया था. यह बताने के लिए कि हाल में खोजे गए शनि के वलय वास्तव में पारभासी हैं, कैप्टन विलियम स्टीफ़न जेकब (1813–62) ने इस यंत्र का प्रयोग किया. (इसी प्रकार की एक खोज थोड़े समय बाद मॉल्टा में विलियम लेसल ने 20 इंची परावर्तक का प्रयोग करते हुए स्वतंत्र रूप से की). मद्रास का दूसरा एकमात्र टेलिस्कोप, जिसका लेंस आठ इंच का था, 1861 में मंगवाया गया था. इसे ट्रॅफ़्टन और सिम्स ने बनाया था. (ये दोनों दूरदर्शी यंत्र {टेलिस्कोप} अब कोडैकनाल में हैं).

जहां तक व्यावहारिक खगोल विज्ञान का प्रश्न है, मद्रास की वेधशाला पहले से ही अनावश्यक हो गई थी. दक्षिणी अफ़्रीका और ऑस्ट्रेलिया में वेधशालाओं का निर्माण होने से इसमें अंग्रेज़ खगोलविदों की भी दिलचस्पी ख़त्म हो गई. मद्रास में अबाध रूप से 30 वर्षों तक, यानी 1861 से लेकर जीवनपर्यंत, नार्मन राबर्ट पॉगसन (1829–91) द्वारा किया गया अध्ययन बेकार गए अवसरों का एक त्रासदीपूर्ण गवाह है. वह मद्रास के ऐसे खगोलविद् थे, जिनका सर्वेक्षण से कोई संबंध नहीं था. उनकी विक्षिप्तता शाही खगोलविद् के दर्प का मुक़ाबला करती थी. यदि पॉगसन को स्वयं पर छोड़ दिया जाता, तो उन्होंने अर्जिलैंडर के सर्वेक्षण को दक्षिणी आकाश तक फैला दिया होता और परिवर्तनीय तारों का एटलस बनाया होता. लेकिन उनका दुराग्रहपूर्वक निष्कर्ष निकालने और प्रकाशित कराने से रोक दिया गया. पॉगसन की लंबी अवधि में एक भी नया उपकरण नहीं ख़रीदा गया.

जी.टी.एस. तथा मद्रास की वेधशाला का काम देखकर दो स्थानीय शासक आधुनिक खगोल विज्ञान को संरक्षण देने के लिए आगे आए. इसकी वजह यह नहीं थी कि वे नए विकास के प्रकाश में पारंपरिक खगोल विज्ञान को नया रूप देना चाहते थे या उनकी इच्छा थी कि उनकी प्रजा खगोल विज्ञान का अध्ययन करे. वे तो मात्र ब्रिटिश सरकार के प्रयत्नों के लिए धन उपलब्ध कराना चाहते थे. जब 1831 में अवध के नवाब ने वेधशाला बनाने का निर्णय लिया, तो उन्होंने गवर्नर–जनरल से एक जी.टी.एस. में कार्य कर रहे एक अधिकारी (मेजर जेम्स डॉलिंग हरबर्ट, 1791–1833) की निदेशक के रूप में मांग की. नवाब की सनक के अनुसार ख़रीदे जा सकने वाले अच्छे से अच्छे उपकरण लखनऊ वेधशाला में लाए गए, किंतु जैसे ही नवीनता समाप्त हुई तथा उपकरण पुराने होकर घिस गए, वेधशाला बंद कर दी गई. 1849 में वेधशाला को ख़त्म ही कर दिया गया तथा 1857 में इसे लूट लिया गया. वेधशाला के समस्त वर्गीकृत और अवर्गीकृत अभिलेखों को दीमक चाट गई. इस प्रकार, एक प्रथम श्रेणी की, लेकिन बेकार पड़ी वेधशाला का अंत हो गया, जिसे वास्तव में स्थापित करने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी. त्रिवेंद्रम में परिस्थितियां कुछ इससे अलग थीं. यहां ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने सूत्रपात किया था, जिन्हें ब्रिटेन के राजा ने ख़ुशी से उपकृत किया. 1837 में जॉन काल्डकॉट (1813–1847) को खगोलविद के रूप में नियुक्त कर एक वेधशाला स्थापित की गई. इसका हश्र भी लखनऊ के समान ही हुआ. लेकिन ख़ुशी की बात है कि त्रिवेंद्रम के चुंबकीय विषुवत और मद्रास प्रेज़िडेंसी के निकट होने से यह वेधशाला जॉन ऐलन ब्राउन (1817–79) के नेतृत्व में चुंबक तथा मौसम विज्ञान के क्षेत्र में रुके हुए कार्यों को पूरा कर सकी. इस कार्य हेतु विज्ञान की प्रगति के लिए बने ब्रिटिश संघ ने मार्गदर्शन दिया.

खगोल भौतिकी का प्रारंभ

जब मद्रास में पारिस्थितिक खगोल विज्ञान अपने पैर घसीट रहा था, यूरोप में एक नया विज्ञान, खगोल भौतिकी जन्म ले रहा था. भारत में 1868, 1871 एवं 1872 में हुए सूर्यग्रहण के प्रेक्षण के लिए स्पेक्ट्रोस्कोप (वर्णक्रमदर्शी) तथा फ़ोटोग्राफ़ी तकनीक का प्रयोग किया गया था, जिसने यूरोपीय प्रेक्षकों को भी आकर्षित किया. फ़्रांसीसी खगोल भौतिक वैज्ञानिक, पियर जूल्स सेज़ार जैसेन (1824–1907) ने 1868 के पूर्ण सूर्यग्रहण का अध्ययन करते हुए एक नए तत्त्व के कारण एक नई वर्णक्रमीय रेखा को खोज निकाला. स्वतंत्र रूप से कार्य कर रहे जोसेफ़ नॉर्मन लॉकयर (1836–1920) ने इसे हीलियम नाम दिया. ग्रहण के पश्चात शिमला में अपने प्रवास के दौरान जैसेन ने पहला स्पेक्ट्रोहेलिओस्कोप (वर्णक्रमी सूर्य चित्रदर्शी) बनाया, जिससे सूर्य का प्रतिदिन परीक्षण करने में सुविधा मिली. 9 दिसंबर 1874 के शुक्र के संक्रमण से भारत में खगोल भौतिकी का संस्थानीकरण हुआ. नया खगोल विज्ञान प्रारंभ करने में राज्य के लिए कोई बड़ा जोख़िम नहीं था. पहल तथा दबाव यूरोप के सौर भौतिक वैज्ञानिकों से आया था, जिन्हें अनुसंधान हेतु भारत के धूप भरे दिन चाहिए थे. शासन भी इसमें रुचि रखने लगा, क्योंकि यह बताया गया कि सूर्य का अध्ययन मॉनसून की सफलता व असफलता की भविष्यवाणी करने में सहायक होगा. प्राचीन काल से ही मॉनसून भारत की जीवन रेखा रहा है.

देहरादून वेधशाला (1878–1925)

जब भारत में बसे कर्नल जेम्स फ़्रांसिस टेनंट (बाद में लेफ़्टिनेंट जनरल तथा रॉयल एस्ट्रोनॉमिकल सोसाइटी के अध्यक्ष) ने 1874 के संक्रमण के समय के भारत में उपलब्ध उपकरणों की सहायता से एक सौर–भौतिक वेधशाला स्थापित करने के लिए शासन से अनुरोध किया, तो उसे अस्वीकृत कर दिया गया. लॉकयर ने सेक्रेट्री ऑफ़ स्टेट लॉर्ड सेलिसबरी से अपने परिचय का उपयोग करते हुए जब ऐसा ही अनुरोध किया, तो इस बार शासन का रुख़ अनुकूल था. सेलिसबरी ने 28 सितंबर 1877 को वाइसरॉय को लिखा, 'लॉकयर के सुझावों पर विचार कर और यह देखते हुए कि पृथ्वी की घटनाओं के संदर्भ में सूर्यमंडल की स्थितियों का अध्ययन, भौतिक अन्वेषणों का एक महत्त्वपूर्ण भाग बन चुका है; मैं भारत में (शुक्र के प्रेक्षण के लिए) उपलब्ध उपकरणों से सूर्य के गोले के छायाचित्र लेने के लिए एक निपुण व्यक्ति को नियुक्त करने के विचार को वांछनीय मानता हूं.' तदनुसार भारत में 1878 के प्रारंभ से ही देहरादून में सर्वे ऑफ़ इंडिया के तत्त्वावधान में नियमित रूप से सूर्य के चित्र लिए जाते रहे और उन्हें प्रति सप्ताह इंग्लैंड भेजा जाता था. देहरादून में सूर्य के छाया–चित्रण का कार्य उत्साह के बजाय मात्र कर्तव्य पालन की दृष्टि से 1925 तक जारी रहा. दो फ़ोटो–हीलियोग्राफ़्स में से बड़े का प्रयोग बंद हो गया और 1898 में ऊपर जाकर देखने पर 'गुंबज़ में मधुमक्खियों के छत्तों' को पाकर लॉयकर अत्यंत दुःखी हुए.

सेंट ज़ेवियर्स कॉलेज की वेधशाला, कलकत्ता (1879)

धूप भरे भारत ने महाद्वीप के खगोलशास्त्रियों का ध्यान आकर्षित किया. शुक्र के संक्रमण का इतालवी अध्ययन दल, पॉलेर्मो वेधशाला के प्रो. पिएरो ताक्किनी के नेतृत्व में बंगाल में आकर ठहरा, जिसका मुख्य उपकरण स्पेक्ट्रोस्कोप था और जिसे किसी भी अंग्रेज़ दल द्वारा एक उपकरण नहीं माना गया. कलकत्ता के सेंट ज़ेवियर्स कॉलेज में विज्ञान के प्राध्यापक, बेल्जियम के जेसुइट फ़ादर यूजीन लाफ़ों (1837–1908), इतालवी दल के एक सहयोजित सदस्य थे, जो स्वयं को एक शोधकर्ता तो नहीं मानते

थे, पर वह एक प्रेरक शिक्षक और विज्ञान संचारक थे. कॉलेज में यूरोपीय, एंग्लो–इंडियनों, राजाओं, ज़मींदारों और प्रभावशाली भारतीयों के पुत्रों को शिक्षा दी जाती थी. फलस्वरूप, इन क्षेत्रों में लाफ़ों का गहरा प्रभाव था और इसका उपयोग उन्होंने विज्ञान की सेवा के लिए किया. ताक्किनी ने लाफ़ों को यूरोपीय प्रेक्षणों के पूरक के रूप में ख़राब मौसम के कारण सौर–अध्ययन में आई रिक्तता की पूर्ति किए जाने के उद्देश्य से कलकत्ता में एक सौर–वेधशाला स्थापित करने का सुझाव दिया. लाफ़ों ने शीघ्र ही चंदे से 21,000 रुपये एकत्र कर लिए, जिसमें बंगाल के लेफ़्टिनेंट गवर्नर के 7,000 रु. भी शामिल थे और कुछ ही वर्षों में वर्तमान विस्तृत गुंबज का निर्माण हुआ और उसे एक नौ इंच के अपवर्तक; जिसे म्यूनिख़ के स्टाइनहिन ने बनाया था और जिसमें ब्राउनिंग द्वारा एक वृहद प्रतिवर्ती स्पेक्ट्रोस्कोप रूपांतरित किया गया था से सुसज्जित किया गया. सेंट ज़ेवियर्स कॉलेज की वेधशाला ने उल्लेखनीय तो नहीं, परंतु अत्यंत श्रमसाध्य कार्य किया और इसके लिए विज्ञान के जेसुइटों की जानी–मानी संपूर्णता और समर्पण के प्रति आभारी होना चाहिए. लगभग इसी समय अन्य कारणों से पूना (वर्तमान पुणे) में एक शोध वेधशाला अस्तित्व में आई.

तख़्तसिंहजी वेधशाला, पूना (1888–1912)

सभी वेधशालाओं में यह सबसे अधिक व्यक्तिगत वेधशाला थी. अपने नाम के बावजूद यह बॉम्बे सरकार की मिल्कियत थी और कावसजी दादाभाई नेगामवाला (1857–1938) नामक एक व्यक्ति के लिए बनाई गई थी. नेगामवाला एक प्रतिभाशाली छात्र थे. जनवरी 1878 में उन्होंने एल्फ़िंस्टन कॉलेज बंबई (वर्तमान मुंबई) से भौतिक एवं रसायन शास्त्र में एम.ए. किया था. इसके लिए उन्होंने बॉम्बे यूनिवर्सिटी का सर्वश्रेष्ठ सम्मान 'चांसलर का स्वर्ण पदक' दिया गया था. 1882 में वह प्रायोगिक भौतिकी के नए सृजित व्याख्याता पद पर 250 रुपये प्रतिमाह के वेतन पर नियुक्त होकर महाविद्यालय में पुनः आए. अक्तूबर 1882 में भावनगर के महाराजा एल्फ़िंस्टन कॉलेज आए, तो नेगामवाला ने उनसे एक स्पेक्ट्रोस्कोपी प्रयोगशाला खोलने के लिए दान देनें का अनुरोध किया.

सरकार ने भी महाराजा द्वारा दिए गए 5,000 रुपये के दान के बराबर सहायता देकर नेगामवाला को उपकरण ख़रीदने हेतु सौर भौतिकी समिति तथा स्पेक्ट्रोस्कोपी यंत्रों के श्रेष्ठ निर्माताओं से परामर्श करने के लिए इंग्लैंड भेजा. इंग्लैंड में नेगामवाला ने खगोलीय अध्ययन के पक्ष में प्रयोगशाला में उपयोग में लाए जाने वाले स्पेक्ट्रोस्कोपी यंत्र को निर्भीकता से ठुकरा दिया. एस्ट्रोनॉमर रॉयल की अनुशंसा एवं सलाह पर उन्होंने सारा पैसा भारत में लाए जाने वाले सबसे बड़े परावर्ती दूरदर्शी यंत्र (रिफ़्लेक्टर टेलिस्कोप) हेतु निर्धारित कर दिया. (आठ दशक तक यह 20 इंच का ग्रब्ब दूरदर्शी यंत्र भारत का सबसे बड़ा यंत्र रहा. हालांकि आधे समय तक यह संदूक में बंद पड़ा रहा. पुणे की खगोलीय स्थिति को देखते हुए वेधशाला तथा नेगामवाला, दोनों को 1888 में कॉलेज ऑफ़ साइंस (अब कॉलेज ऑफ़ इंजीनियरिंग) में स्थानांतरित कर दिया गया. नेगामवाला उस ब्रिटिश वैज्ञानिक दल के सदस्य थे, जो 1896 में नॉर्वे में हुए पूर्ण सूर्यग्रहण का अध्ययन करने के लिए गया था. भारत में दिखाई देने वाले 1898 के पूर्ण सूर्यग्रहण के अध्ययन हेतु नेगामवाला को 5,000 रुपये सरकार ने दिए तथा शेष उतनी ही राशि 100 से लेकर 500 रुपये तक दिए गए चंदे से इकट्ठा हुई. (जमशेदजी नवरतनजी टाटा ने 250 रुपये दिए थे). इस ग्रहण हेतु सर नॉर्मन लॉकयर तथा शाही खगोलविद् सर डब्ल्यू.एच.एम. क्रिस्टी भी भारत आए, जिन्हें सरकार ने यहां की वेधशालाओं पर रिपोर्ट देने को कहा था.

नेगामवाला के लिए सबसे अच्छी बात यह हुई कि लॉकयर ने उनकी प्रतिभा को पहचाना. लॉकयर ने नेगामवाला की भूरि–भूरि प्रशंसा करते हुए लिखा, 'जहां तक मैं जानता हूं, नेगामवाला भारत के एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं, जो वास्तविक रूप से सौर भौतिकी संबंधी कार्यों से व्यावहारिक रूप से परिचित हैं.' लॉकयर की सिफ़ारिश पर नेगामवाला को शिक्षण कार्य से मुक्त कर वेधशाला का पूर्णकालिक निदेशक बना दिया गया. उनसे कहा गया कि वह नियमित रूप से लॉकयर को आंकड़े भेजें. यदि लॉकयर के वश में होता, तो वह नेगामवाला को कोडैकनाल में मद्रास के खगोलविद् चार्ल्स मिशी स्मिथ के स्थान पर निदेशक बनाते, क्योंकि स्मिथ के बारे में उनके विचार अच्छे नहीं थे. नेगामवाला तो कोडैकनाल नहीं गए, लेकिन उनके सेवानिवृत्त होते ही वेधशाला बंद कर दी गई एवं 1912 में उनके सारे उपकरण कोडैकनाल भेज दिए गए.

कोडैकनाल वेधशाला (1899)

यद्यपि मद्रास में खगोल विज्ञान संबंधी सुविधाओं को आधुनिक बनाने के लिए अंग्रेज़ी हलक़ों में समय–समय पर चर्चाएं होती रहती थीं, किंतु 1891 में पॉगसन की मृत्यु के पश्चात इस मामले को गंभीरता से लिया गया. अंततः 1893 में यह तय किया गया कि दक्षिण भारत की पालनी पहाड़ियों में स्थित कोडैकनाल में एक सौर भौतिकी वेधशाला खोली जाए और मिशी स्मिथ को इसका निदेशक बनाया जाए. समस्त खगोलीय गतिविधियां मद्रास से कोडैकनाल स्थानांतरित हो गईं और नई वेधशाला मद्रास सरकार से स्थानांतरित होकर ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के मौसम विज्ञान संबंधी विभाग को सौंप दी गई.

वेधशाला को प्रारंभ करने के लिए ग्रीनविच ने (स्थायी ऋण पर) एक फ़ोटोहीलियोग्राफ़ यंत्र भेजा, जो उन पांच में से एक था, जिन्हें हेनरी डॉलमेयर ने 1874 में आरंभिक संक्रमण अभियान के लिए बनाया था. लेरबूर तथा सेक्रेटन द्वारा बनाए गए छह इंच के अपवर्तक दूरदर्शी यंत्र को पुनः नया रूप देकर सूर्य की दैनिक फ़ोटोग्राफ़ी हेतु लगाया गया. (यह आज भी वैज्ञानिक कार्यों में उपयोग में आने वाला सबसे पुराना यंत्र होगा). 1907 में जॉन एवरशेड के आगमन (प्रारंभ में सहायक निदेशक के रूप में) के साथ ही वेधशाला के स्वर्णिम युग की शुरुआत हुई. निस्संदेह एकांत वैभव में काम करने के लिए भारत आना पसंद कर, एवरशेड ने कोडैकनाल को विश्वस्तरीय वेधशाला बना दिया. उन्होंने हाल में प्राप्त स्पेक्ट्रोहीलियोग्राफ़ को सक्रिय किया, अपने साथ लाए प्रिज़्मों की सहायता से प्रिज़्मेटिक कैमरा बनाया और पुर्ज़े जोड़कर कई स्पेक्ट्रोग्राफ़ यंत्रों को तैयार किया. 1911 में अंततः उन्होंने एक सहायक स्पेक्ट्रोहीलियोग्राफ़ बनाकर उसे उपयोग में आ रहे उपकरण में लगा दिया, जिससे सूर्य की तस्वीरें न केवल कैल्शियम स्पेक्ट्रल लाइन (वर्णक्रमीय रेखा) के प्रकाश में, वरन सूर्य के धब्बों (एवरशेड प्रभाव) के दौरान भी ली जा सकती थीं. 1923 में एवरशेड की सेवानिवृत्ति के पश्चात वेधशाला धीरे–धीरे पिछड़ती चली गई और महज़ कामचलाऊ रह गई. यह बड़े परिश्रम से रोज़ाना सौर तस्वीर लेती रही (यदि मौसम अनुकूल हुआ तो) तथा संसार की अन्य वेधशालाओं से आदान–प्रदान करती रही. इस प्रक्रिया में आठ पूर्ण सौर युगों की अवधि के सूर्य चित्रों का वांछनीय संग्रह तैयार हुआ.

निज़ामिया वेधशाला (1901)

1899 में मद्रास वेधशाला के ख़त्म होते ही स्थितीय खगोल विज्ञान में जो शून्यता व्याप्त हुई थी, उसे

हैदराबाद की निज़ामिया वेधशाला ने भरा. इंग्लैंड में शिक्षित एक कुलीन नवाब ज़फ़र जंग इसके निर्माता थे. नवाब ने एक छोटा–सा दूरदर्शी यंत्र ख़रीदा और हैदराबाद में अपनी जागीर फिसलबाना में एक वेधशाला प्रारंभ की. दूरदर्शिता का परिचय देते हुए उन्होंने निज़ाम की अनुमति से उस वेधशाला का नाम निज़ामिया रखा और यह सुनिश्चित किया कि उनकी मृत्यु के बाद उस वेधशाला को सरकार अधिगृहीत कर ले. इसके बाद उन्होंने 15 इंच का एक ग्रब्ब अपर्वतक प्राप्त किया. अपनी जिज्ञासा हेतु उन्होंने आठ इंच का एक खगोलीय कैमरा या एस्ट्रोग्राफ़ भी प्राप्त किया, जो वेधशाला का प्रमुख यंत्र बना. ज़फ़र जंग की मृत्यु 1907 में हुई और योजनानुसार उनकी वेधशाला को सरकार ने अधिगृहीत कर लिया. इस प्रकार, यह एक विडंबना ही थी कि वेधशाला को औपचारिक स्थापना हेतु संस्थापक की मौत का इंतज़ार करना पड़ा.

अगले ही वर्ष औपचारिक रूप से वह वेधशाला खगोल भौतिक संबंधी चार्ट एवं कैटॅलॉग के एक अंतर्राष्ट्रीय एवं महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रम कार्ते–दु–सियेल से जुड़ गई. विभिन्न आकाशीय क्षेत्रों को संपूर्ण विश्व की 18 वेधशालाओं के लिए निर्धारित कर पूरे आकाश का चित्रांकन करना इस कार्यक्रम का उद्देश्य था. निज़ामिया से कहा गया कि वह चिली की सेंतियागो वेधशाला के कार्य को अपने अधिकार में ले ले, क्योंकि इसे जो क्षेत्र (17° से 23° दक्षिण) दिया गया था, उसमें वह संबंधित कार्य करने में असफल रही थी. अंत में इस वेधशाला ने पोस्टडम क्षेत्र (36° से 39° उत्तर) का कार्य भी किया. इसी दौरान (मार्च 1908) में 1,000 रुपये प्रति माह (1,200 पाउंड प्रतिवर्ष) के वेतन पर आर्थर ब्रुनेल चेटवुड बी.एस.सी. को निदेशक बनाकर इंग्लैंड से लाया गया. चेटवुड का कार्यकाल सफल नहीं रहा. बेगमपेट में एस्ट्रोग्राफ़ (भौगोलिक चित्र लेने का यंत्र) स्थापित करने के अलावा वह कुछ नहीं कर सके. 1914 में उन्होंने नौकरी छोड़ दी. इसके पश्चात उन्हें किसी ने भी याद नहीं किया.

भौगोलिक चित्र संबंधी विज्ञान का गंभीरतापूर्वक अध्ययन 1914 में रॉबर्ट जॉन पोकॉक (1889–1918) के आगमन से शुरू हुआ. पोकॉक ऑक्सफ़ोर्ड के एक प्रभावशाली प्रोफ़ेसर हर्बर्ट हॉल टर्नर (1861–1930) के मेधावी प्रिय छात्र थे और विशेष वित्तीय सहायता लेकर ऑक्सफ़ोर्ड से सीधे आए थे. पहली उपयोग में लाई जाने वाली पट्टिका (प्लेट) 9 दिसंबर 1914 को ली गई तथा 1917 में परिणामों का प्रथम संकलन प्रकाशित हुआ. 1946 में कार्य समाप्ति तक 7 लाख, 63 हज़ार, 542 तारों का अध्ययन कर लिया गया था तथा निष्कर्षों को 12 खंडों में प्रकाशित किया गया. ये आंकड़े बाद में वेधशाला में खगोलविदों द्वारा तारों और युग्म तारों की गति संबंधी सूचना प्राप्त करने के काम में लाए गए.

पोकॉक इस वेधशाला के अंतिम यूरोपीय निदेशक थे. 1918 में उनकी असामयिक मृत्यु के पश्चात उनके पूर्व सहायक (राव साहिब) टी.पी. भास्करन (1889–1950) निदेशक बने, जिन्हें औपचारिक नियुक्ति के लिए चार वर्ष इंतज़ार करना पड़ा. भास्करन भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी (आई.एन. एस.ए.) के संस्थापक सदस्य थे. यह अकादमी 1935 में नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ़ साइंसेज़ इन इंडिया के नाम से स्थापित हुई थी. (1970 में संस्था का नाम बदला गया) अकादमी के अभिलेख में उनका नाम टी.पी. भास्कर शास्त्री दर्ज है.

एस्ट्रोग्राफ़िक (भौगोलिक चित्र) कार्य के अलावा निज़ामिया ने दूसरे कई छोटे–छोटे उल्लेखनीय कार्य किए. 1922 में एक बहुप्रतीक्षित 15 इंची ग्रब्ब अपवर्तक (रिफ़्रेक्टर) स्थापित किया गया. इसका उपयोग विभिन्न चर तारों तथा चंद्रग्रहण के प्रेक्षण के लिए किया गया. सूर्य का अध्ययन भी 1939 में प्राप्त 'हेल

स्पेक्ट्रोहेलियोस्कोप' (सूर्यकेंद्रीय वर्णक्रम मापक) की सहायता से किया गया. वेधशाला ने कुछ सामुदायिक कार्य भी किए. उसने मानक समय का निर्धारण किया और सरकार के लिए उर्दू एवं अंग्रेज़ी भाषा में कैलेंडर बनाए.

भारतीय प्रतिक्रिया

जिस प्रकार ब्रिटिश सरकार को आधुनिक विज्ञान की आवश्यकता थी, उसी प्रकार उन्हें भारतीयों की भी ज़रूरत थी. अतः भारतीय स्थानीय लोगों को पाश्चात्य शिक्षा से परिचित करवाया गया. प्रशासन का वैज्ञानिक अंश बढ़ने के साथ–साथ स्थानीय लोग लिपिक पद से तरक़्क़ी करते हुए डॉक्टर, इंजीनियर और अंत में वैज्ञानिक तक बनने लगे. जनवरी 1876 में फ़ादर लाफ़ां के सहयोग से डॉ. महेंद्रलाल सरकार ने कलकत्ता (वर्तमान कोलकता) में एक संगठन की नींव रखी. इसके लिए उन्होंने भारतीयों तथा अंग्रेज़ सरकार का समर्थन लिया, जिसका नाम कुछ विचित्र रूप से 'इंडियन एसोसिएशन' रखा गया. यह शिक्षित भारतीयों का राजनीतिक संगठन था और यह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का पूर्ववर्ती संगठन था. इसका उद्देश्य मूल शोधों के आधार पर सभी क्षेत्रों में प्रगति के लिए भारतीयों में विज्ञान का विकास करना था. एक धनी दानकर्ता (कुमार कांति चंद्र सिंह बहादुर) ने 1880 में इस संगठन को सात इंच वाला मर्ज़–ब्राउनिंग विषुवतीय टेलिस्कोप (दूरदर्शी यंत्र) उपहार में दिया. किंतु इसे अपने उपयोगकर्ता का 30 वर्षों से भी ज़्यादा इंतज़ार करना पड़ा. अवलोकन संबंधी वेधशाला भारतीयों के मार्गदर्शन के लिए कुछ अधिक कर पाने में असमर्थ रही.

1910 में हेली धूमकेतु ने कलकत्ता के खगोल विज्ञानप्रेमियों को सक्रिय कर दिया, जिन्होंने एस्ट्रोनॉमिकल सोसाइटी ऑफ़ इंडिया की स्थापना की. उस समय संस्था में ईसाई मिशनरियों, कुछ सामान्य जानकार व्यक्तियों तथा वैज्ञानिकों सहित कुल 192 मूल सदस्य थे. इसके अतिरिक्त कुछ धनवान संरक्षक भी थे इसके पहले अध्यक्ष बंगाल के एकाउंटेंट जनरल, हर्बर्ट जेरॉल्ड टॉमकिंस (1869–1934) थे, जो इस संस्था के 10 वर्ष के अस्तित्व में प्रेरक शक्ति रहे. यह स्पष्ट नहीं है कि संस्था औपचारिक रूप से बंद हो गई या फिर निष्क्रिय हो गई. इस समिति की उपलब्ध अंतिम पत्रिका का अंक जून 1920 का है (1973 में हैदराबाद में एक नई संस्था का निर्माण हुआ, तो इसका नाम पुनः उपयोग में लाया गया).

खगोल विज्ञान की भारतीय संस्था (आई.ए.सी.एस.) के एक सक्रिय सदस्य चंद्रशेखर वेंकट रमन (1888–1970), उपमहालेखाकार तथा अंशकालिक शोधकर्ता थे, जिन्होंने कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) विश्वविद्यालय में नए बने पद, 'पालित प्राध्यापक' पर भौतिकी के प्रोफ़ेसर के रूप में कार्य करने हेतु अपनी लाभप्रद सरकारी नौकरी छोड़ दी. कार्य सचिव, ग्रंथपाल तथा चर तारों के अध्ययन हेतु बनाए गए विभाग के निदेशक के रूप में उन्होंने उक्त संस्था की सेवा की. उन्होंने संस्था की पत्रिका में लेख लिखे तथा चर्चाओं में भी वह भाग लेते रहे. उन्होंने इस संस्था में एक सात इंच का टेलिस्कोप लगाया तथा उसका प्रयोग प्रारंभ करवाया. रमन जीवनपर्यंत खगोल विज्ञान में रुचि लेते रहे एवं उत्साह प्रदर्शित करते रहे. इस संस्था के दूसरे सदस्य नागेंद्रनाथ धर (1857–1929) एक उपन्यायाधीश थे, जिन्होंने हुगली में अपनी कार्यशाला में दूरदर्शी यंत्र के लिए लेंस–प्रणाली, ऑप्टिक्स बनाई तथा संस्था की बैठकों में अपनी तकनीकों की चर्चा की.

उस समय सर्वाधिक समर्पित एक सज्जन एस्ट्रोनॉमिकल सोसाइटी के दायरे के बाहर कार्यरत थे. जेसोर ज़िले (अब बांग्लादेश में) के बागचर गांव में जमींदार परिवार में जन्मे राधागोबिंद चंद्र ने मैट्रिक

परीक्षा में तीन बार अनुत्तीर्ण होने के पश्चात स्कूल छोड़कर कलेक्टोरेट में प्रतिमाह 15 रुपये पर पोद्दार (सिक्का परीक्षक) की नौकरी प्रारंभ की. खगोलशास्त्र से उनका परिचय एक बांग्ला पुस्तक और आकाश का व्यावहारिक ज्ञान उन्हें तारों के ऐटलस का संपादन कर रहे एक वकील (कालीनाथ मुखर्जी) से मिला. उन्होंने हेली धूमकेतु को दूरबीन से देखा और 1912 में लंदन से 13 पौंड में तीन इंच लेंस का टेलिस्कोप ख़रीदा. इसके बाद वह चलायमान सितारों के नियमित पर्यवेक्षक एवं अमेरिकन एसोसिएशन ऑफ़ वेरिएबल स्टार ऑब्ज़र्वर (ए.ए.वी.एस.ओ.) के सदस्य बन गए. इस संस्था ने उन्हें 1926 में एक छह इंच एपर्चर का दूरदर्शी यंत्र दिया, जो मूल रूप से संस्था के संरक्षक एवं मित्र चार्ल्स डब्ल्यू. एल्मर का था. चंद्र ने इसका सदुपयोग करते हुए 1954 तक 37,215 प्रशिक्षित दृष्टि वाले प्रेक्षण लिए. इसके बाद वह अंततः सेवानिवृत्त हो गए. उनके इस महत्त्वपूर्ण कार्य का महत्त्व इस बात में निहित है कि उन्होंने अधिकांश प्रेक्षकों से कहीं अधिक दूरी वाले प्रेक्षण करके जिन तारों का उन्होंने अध्ययन किया था, उनके पहले के विवरणों को बहुत विकसित लौकिक संपूर्णता प्रदान की. सेवानिवृत्त होने पर चंद्र से कहा गया कि वे अमेरिकी एसोसिएशन के उस टेलिस्कोप को नैनीताल के मनाली कल्लत वैनू बापू (1927–82) को सौंप दें. ब्रिटिश इंडिया में यह एल्मर–चंद्रा टेलिस्कोप चुनिंदा (हालांकि एकमात्र नहीं) अमेरिकी टेलिस्कोपों में से था, जो आज कवलूर में है.

19वीं शताब्दी के ब्रिटिश भारत में एक ख़ास क़िस्म का वैज्ञानिक कार्य दाबा गार्डन्स की एक निजी खगोलीय तथा मौसमी वेधशाला ने किया, जो आंध्र प्रदेश के विशाखापट्टनम में थी. 1841 में अपने ही मकान में एक धनवान ज़मींदार गौड़े वेंकट जग्गाराव (1819–1856) ने इसे स्थापित किया था, जो पहले मद्रास (वर्तमान चेन्नई) जाकर खगोल विज्ञानी टॉमस ग्लेनविल टेलर से शिक्षा ग्रहण कर चुके थे. जग्गाराव की मृत्यु के पश्चात ज़मींदारी और वेधशाला उनके दामाद अंकितम वेंकट नरसिंह राव (1827–92) को विरासत में मिली, जिन्होंने अपनी पत्नी की इस जागीर की देखरेख करने के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी के उप–ज़िलाधीश पद से इस्तीफ़ा दे दिया. उन्होंने इस वेधशाला को 1874 में छह इंची कुक भूमध्यवर्ती, संक्रमण चक्र तथा एक नक्षत्रिक घड़ी से सुसज्जित किया. उन्होंने अपने सूर्यग्रहण, शुक्र और बुध का संक्रमण तथा धूमकेतुओं के अध्ययन ब्रिटेन के खगोलविदों और रॉयल एस्ट्रोनॉमिकल सोसाइटी को प्रेषित किए. नक्षत्र एवं तारों के चित्र लेने के लिए उन्होंने उपकरण भी प्राप्त किए, लेकिन उन्हें स्थापित करने से पहले ही उनकी मृत्यु हो गई. वह विशाखापट्टनम में सरकार के मानद मौसम संवाददाता भी थे. 1911–12 में एक वर्ष के लिए उनके पुत्र राजा ए.बी. जग्गाराव बहादुर (1921) भारत की एस्ट्रोनॉमिकल सोसाइटी के उपाध्यक्ष थे. यह वेधशाला इसके बाद बंद कर दी गई. (अब यहां डॉल्फ़िन होटल है.)

असाधारण इतिहास वाला एक छोटा दूरदर्शक यंत्र भी विचारणीय है. 1938 में कुख्यात एडॉल्फ़ हिटलर ने नेपाल के राणा को पांच इंच एपर्चर वाला 'ज़िस टेलिस्कोप' उपहारस्वरूप दिया. 1961 में उनके पुत्र नए राणा ने वह टेलिस्कोप एवरेस्ट के नायक तेनज़िंग नोरगे को दे दिया. तेनज़िंग ने उस टेलिस्कोप को दार्जिलिंग के हिमालय पर्वतारोहण संस्थान को दान कर दिया. तेनजिंग इस संस्थान के प्रमुख थे.

यद्यपि अवलोकन संबंधी खगोल विज्ञान के प्रति भारतीयों की प्रतिक्रिया उत्साहपूर्ण नहीं थी, तथापि सैद्धांतिक खगोलीय भौतिकी में उन्होंने लीक से हटकर कार्य किया. जब संपन्न कलकत्तावासी खगोल वैज्ञानिक उत्साही अपनी संस्था का निर्माण कर रहे थे, तब उनसे अपरिचित, पूर्वी बंगाल के पश्च जल के बीच एक प्रतिभासंपन्न बालक खगोलशास्त्र से परिचित हो रहा था. मेघनाद साहा (1893–1955) ने

ढाका कॉलेज की पत्रिका के लिए हेली धूमकेतु पर एक लेख लिखा. कलकत्ता विश्वविद्यालय के भौतिकी के व्याख्याता के रूप में साहा और सत्येंद्रनाथ बोस ने 1920 में आइंस्टीन के सापेक्षता के सिद्धांत के शोधपत्रों के अंग्रेज़ी अनुवाद किए. इसकी समीक्षा लिखते हुए 26 अगस्त 1922 को विज्ञान पत्रिका *नेचर* ने लिखा, 'यदि इसका अध्ययन ध्यान से किया जाए, तो यह अनुवाद उनके लिए, जो इन विषयों में श्रेष्ठतम और अगम्य कार्यों से परिचित होना चाहते हैं और जर्मन भाषा से अनभिज्ञ हैं, उपयोगी होगा'. एग्निस क्लार्क की लोकप्रिय खगोल भौतिकी पुस्तकों से उत्साहित होकर 1920 में साहा ने उच्च तापीय आयनीकरण के सिद्धांत तथा नक्षत्रीय वातावरण पर इसके अनुप्रयोग पर अपना युगांतरकारी कार्य प्रकाशित किया. साहा ने दर्शाया कि सुदूर आकाश के पिंडों के वर्णक्रम को पृथ्वी पर प्रकृति के नियमों की शैली में समझा जा सकता है. उन्होंने संपूर्ण ब्रह्मांड को एक भौमिक प्रयोगशाला में परिवर्तित करते हुए आधुनिक खगोल भौतिकी की नींव रखी. 1923 में भौतिकी के प्राध्यापक के रूप में साहा इलाहाबाद विश्वविद्यालय चले गए, जहां उन्होंने खगोल भौतिकी की शाखा प्रारंभ की तथा दौलतसिंह कोठारी (1906–93) जैसे असाधारण प्रतिभा संपन्न छात्रों को प्रशिक्षित किया. साहा पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने 1937 में पृथ्वी के वातावरण से बाहर जाकर खगोल विज्ञान संबंधी अध्ययन करने पर ज़ोर दिया. 1938 में वह पालित प्रोफ़ेसर के रूप में कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) लौट आए. रमन के समान साहा और बोस आई.एन.एस.ए. के संस्थापक सदस्य रहे. 1937–38 में साहा इसके अध्यक्ष रहे. बोस 1949–50 में और कोठारी 1973–74 में आई.एन.एस.ए. के अध्यक्ष रहे.

मद्रास में सुब्रहमण्यम चंद्रशेखर (ज.–1910) ने पहली बार नक्षत्रीय ढांचे की समस्याओं पर विशिष्ट सापेक्षिक सिद्धांत का प्रयोग किया और ऐसे प्रारंभिक परिणाम प्राप्त किए, जो केंब्रिज विश्वविद्यालय में *चंद्रशेखर मास लिमिट* (संहति सीमा) के नाम से जाने गए. चंद्रशेखर को बहुत समय बाद इस कार्य हेतु नोबेल पुरस्कार दिया गया.

यह आश्चर्य की बात है कि अन्य भारतीय भौतिकीविदों के विपरीत अग्रगामी सापेक्षतावादी विदेशों में प्रशिक्षित हो रहे थे. साहा और बोस के सहपाठी निखिलरंजन सेन (1894–1963) 1917 में कलकत्ता में व्यावहारिक गणित के व्याख्याता बनकर आए. उन्होंने 1921 में डॉक्टर ऑफ़ साइंस की उपाधि ली, किंतु वह बर्लिन गए और वहां प्रोफ़ेसर वॉन लू के निर्देशन में पी.एच.डी. की डिग्री प्राप्त की. सेन पहले भारतीय थे, जिन्हें सापेक्षिकता पर डॉक्टरेट मिली थी. वह आई.एन.एस.ए. (भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान संघ) के संस्थापक सदस्य बन गए. विष्णु वासुदेव नार्लीकर (1908–91) ने 1928 में बंबई के रॉयल इंस्टिट्यूट ऑफ़ साइंस से बी.एस.सी. की उपाधि प्राप्त की और उच्च अध्ययन के लिए केंब्रिज विश्वविद्यालय चले गए. अध्ययन के लिए वित्तीय सहायता मुंबई विश्वविद्यालय, कोल्हापुर राज्य और जे. एन. टाटा फ़ंड ने जुटाई. 1930 में विशेष योग्यता से उन्होंने गणित ट्राइपोस उत्तीर्ण किया तथा अपनी खगोल संबंधी खोजों के लिए उन्हें रेले पुरस्कार भी मिला. कैलिफ़ोर्निया के इंस्टिट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी के प्रस्ताव को ठुकराते हुए उन्होंने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के कुलपति पं. मदनमोहन मालवीय के निमंत्रण को स्वीकार कर लिया और वह 1932 में गणित विभाग के प्रमुख बनकर बनारस आ गए, जहां वह अगले 28 वर्ष तक रहे. उन्होंने अनेक विद्यार्थियों को प्रशिक्षित कर उनका मार्गदर्शन किया. इनमें चमकीले तारों के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र पर सुप्रसिद्ध *वैद्यमापीय* के लेखक प्रह्लाद चुन्नीलाल वैद्य का नाम भी शामिल है. 1955 में अमल कुमार रायचौधरी (ज.–1923) के समीकरणों ने सापेक्षीय

ब्रह्मांडविज्ञान में विशिष्टता के अनुसंधान में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई.

1938 में सेन समूह के बी. दत्त ने गुरुत्वाकर्षण के कारण ध्वस्त होते हुए मिट्टी के गोले का हल प्रस्तुत किया. यह हल 1938 में *जाइत्स्क्रिफ़्ट फ़ॉर फ़िज़िक* के अंक 108 में पृष्ठ क्रमांक 314 पर प्रकाशित हुआ यह ओपनहाइमर और स्नाइडर के ज्ञात हलों से आगे था. 1947 में एस. दत्त मजूमदार (कलकत्ता विश्वविद्यालय) ने आइंस्टीन के सममिति सहित या रहित स्थिर–विद्युतिकी क्षेत्र के समीकरणों पर सटीक हल–शृंखला प्रस्तुत की. ये 'दत्त मजूमदार पापापेत्रू हल' के नाम से जाने जाते हैं.

द्वितीय विश्वयुद्ध के समाप्त होने तक यह स्पष्ट हो गया था कि जल्द ही भारत में ब्रिटिश शासन समाप्त हो जाएगा. इसलिए भविष्य के लिए वैज्ञानिक कार्यसूची निर्धारित करने के लिए योजनाएं बनाई जाने लगीं. यह बात कम लोग जानते हैं कि सुब्रह्मण्यम चंद्रशेखर को शिकागो से कोडैकनाल लाने के लिए 1943–45 के दौरान सरकार ने भरसक कोशिश की. उन्हें सामान्य से तीन गुना अधिक वेतन की पेशकश की गई. चंद्रशेखर किसी वेधशाला के रोज़मर्रा के कार्यों के प्रभारी बनने में कोई दिलचस्पी नहीं रखते थे. उसके बजाय वह विश्वविद्यालय की नौकरी को प्राथमिकता देते थे. यद्यपि मेघनाद साहा यह महसूस करते थे कि चंद्रशेखर को भारत आ जाना चाहिए तथा भारत के युवकों को प्रशिक्षित करना चाहिए, लेकिन ऐसा नहीं हो सका. दौलतसिंह कोठारी से संपर्क किए जाने पर उन्होंने भी अपनी रुचि दिल्ली विश्वविद्यालय में भौतिकी विभाग में काम जारी रखने में दिखाई.

स्वतंत्रता पश्चात का विकास

20 वर्ष पूर्व वेधशालाओं के ब्रिटिश महानिदेशक ने साहा को कोडैकनाल में एवरशेड के नीचे द्वितीय क्रम का पद देने का प्रस्ताव किया था. दिसंबर 1945 में साहा की अगुवाई में पांच सदस्यों की एक समिति, जिसमें वेधशालाओं के भारत के महानिदेशक भी थे, कोडैकनाल गई. यह भारत में खगोलीय तथा खगोलभौतिकी संबंधी वेधशालाओं हेतु योजना बनाने के लिए वहां गई थी. साहा समिति ने खगोलीय सुविधाओं को आधुनिकतम बनाने का सुझाव दिया. यह सिफारिश भी की गई कि दीर्घकालीन योजनानुसार नक्षत्रीय अध्ययन हेतु उत्तरी भारत में एक वेधशाला स्थापित हो तथा उसमें बड़े आकार का टेलिस्कोप लगाया जाए. साहा रिपोर्ट 20 साल बाद सुलभ हुई, जब तमिलनाडु की जावडी पहाड़ियों में स्थित कवलूर में नक्षत्रीय अध्ययन की एक स्पेक्ट्रोस्कोपिक वेधशाला के लिए बापू ने सफलतापूर्वक दलील देकर वहां वेधशाला स्थापित करवाई. उस वेधशाला का नाम बापू वेधशाला रखा गया. साहा रपट के अनुवर्ती के रूप में तथा अपनी पहल की वजह\ से 1955 में कलकत्ता में एक पंचांग इकाई (नशनल अल्मेनक यूनिट) स्थापित की गई; 1979 में इसका नया नाम 'पोज़िशनल एस्ट्रोनॉमी सेंटर' रखा गया. इसका उद्देश्य पंचांग बनाने वाले खगोलविदों की मदद करना था.

1945 में मुंबई में टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च नामक एक संस्था की स्थापना होमी जहांगीर भाभा (1909–66) ने की. भाभा एक प्रसिद्ध प्रतिभासंपन्न भौतिकीविद् थे तथा जवाहरलाल नेहरू के आधुनिक वैज्ञानिक भारत के स्वप्न और उनकी अभिजात्य पृष्ठभूमि के सहभागी थे. इसके अतिरिक्त वह धनी और प्रबुद्ध औद्योगिक टाटा परिवार से भी संबंधित थे (1898 में सर दोराब टाटा का विवाह भाभा की बुआ मेहरबाई से हुआ था). टाटा संस्थान की कार्यसूची का महत्त्वपूर्ण विषय ब्रह्मांडीय किरणों पर प्रयोगात्मक अनुसंधान करना था, जिसमें भाभा की अपनी रुचि थी. वैज्ञानिक विकास के साथ भारत ने

अंतरिक्ष खगोल विज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश किया. भाभा के समर्थन के कारण ही 1960 के दशक में रेडियो एस्ट्रोनॉमी का कार्य गोविंद स्वरूप (ज.–1929) द्वारा सफलतापूर्वक प्रारंभ हुआ.

1947–48 में दक्षिणी एशियाई देश ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के चंगुल से मुक्त हुए. स्वतंत्रता के पहले 50 सालों के दौरान भारतीय खगोल विज्ञान ने वैज्ञानिक मानव शक्ति और सुविधाओं में संपन्नता हासिल की. अब कवलूर, रंगपुर, नैनीताल और गुरुशिखर में ऑप्टिकल वेधशालाएं हैं. कोडैकनाल, उदयपुर तथा नैनीताल में सौर दूरदर्शी यंत्र लगे हैं, ऊटी और खोदाद में रेडियो टेलिस्कोप हैं. कई अनुसंधान संस्थान आंशिक या पूर्णतः खगोल विज्ञान को समर्पित हैं. बंगलोर के इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ एस्ट्रोफिजिक्स तथा रमन रिसर्च इंस्टिट्यूट, मुंबई में टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ़ फ़ंडामेंटल रिसर्च तथा अहमदाबाद में फिजिकल रिसर्च लेबोरेटरी कुछ उल्लेखनीय संस्थान हैं. 1988 में पुणे में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने विश्वविद्यालयों के लिए संसाधन केंद्र को जन्म दिया, जिसे खगोल विज्ञान तथा खगोल भौतिकी अंतर्विश्वविद्यालय केंद्र (इंटर यूनिवर्सिटी सेंटर फ़ॉर एस्ट्रोनॉमी ऐंड एस्ट्रोफ़िज़िक्स) के नाम से जाना जाता है. हान्ले (लद्दाख) तथा पुणे के निकट गिरावलि में नई ऑप्टिकल वेधशालाएं स्थापित की जा रही हैं. इनमें प्रत्येक में नई तकनीकी का 2 मीटर का टेलिस्कोप है.

दक्षिण एशिया के अन्य देशों में इसकी प्रगति तुलनात्मक रूप से संतुलित रही है. इन देशों में खगोल विज्ञान को समर्पित न तो कोई संस्था है और न ही वेधशालाएं, लेकिन खगोल विज्ञान के कई क्षेत्रों के अध्ययन के लिए कुछ संस्थानों, जैसे नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ फिज़िक्स, इस्लामाबाद (पाकिस्तान), द इंस्टिट्यूट ऑफ़ फ़ंडामेंटल स्टडीज़, कैंडी (श्रीलंका) और रिसर्च सेंटर फ़ॉर मैथेमेटिकल ऐंड फ़िज़िकल साइंसेज़, चटगांव (बांग्लादेश) में इस विषय का अध्ययन होता है और शोध भी किया जाता है.

निष्कर्ष

आज़ादी के बाद के काल में विषय के विकास ने ब्रह्मांडीय किरणों पर शोध और रेडियो एस्ट्रोनॉमी के उभरते विज्ञान में उपलब्ध अवलोकन सुविधाओं के कारण अब भारतीयों का ध्यान प्रेक्षणीय खगोलशास्त्र की ओर केंद्रित हुआ है. 20वीं शताब्दी का अंत प्रकाशिक खगोल विज्ञान के पुनर्जागरण का साक्षी है, जो निर्माणाधीन नई दूरबीनों के साथ–साथ विदेशों में प्रेक्षण सुविधाओं में भारतीय समुदाय के सहयोग से संभव हुआ है. किंतु सामाजिक–राजनीतिक परिस्थितियों के कारण दक्षिण एशिया क्षेत्र के अन्य देश काफ़ी पीछे छूट गए हैं.

* * *

जयंत नार्लीकर पुणे स्थित खगोल विज्ञान एवं खगोल भौतिकी अंतर्विश्वविद्यालय केंद्र (इंटर यूनिवर्सिटी सेंटर फॉर एस्ट्रोनॉमी ऐंड एस्ट्रोफ़िज़िक्स) के निदेशक हैं. यह लंदन की रॉयल एस्ट्रोनॉमिकल सोसाइटी के एसोसिएट, विज्ञान की तृतीय विश्व अकादमी के फ़ेलो और भारत की तीन राष्ट्रीय वैज्ञानिक अकादमियों के फ़ेलो हैं. इन्होंने विज्ञान कथा–लेखन भी किया है. 1965 में इन्हें भारत के

राष्ट्रपति द्वारा पद्म भूषण दिया गया. इसके अलावा, इन्हें एस.एस. भटनागर पुरस्कार, एम.पी. बिड़ला सम्मान और साहबदीन ट्रस्ट सम्मान भी मिले हैं.

राजेश कोचर नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ़ साइंस टेक्नोलॉजी ऐंड डेवलपमेंट स्टडीज़ (निस्टैड्स) के निदेशक हैं. यह बंगलोर स्थित भारतीय खगोल–भौतिकी संस्थान, (इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ़ एस्ट्रोफ़िज़िक्स) में प्रोफ़ेसर रह चुके हैं.

खिलौने : भारतीय परिप्रेक्ष्य में

सुदर्शन खन्ना

खिलौने ऐसे उत्पाद हैं, जो विशेष रूप से बच्चों के खेलने और कुछ सीखने के उद्देश्य से डिज़ाइन किए जाते हैं. प्रत्येक समाज अपने ज्ञान को लोककथाओं और खिलौनों के माध्यम से बच्चों तक पहुंचाता है. सौभाग्य से भारत में देशी खेल सामग्री तैयार करने की परंपरा समाप्त नहीं हुई है. मेलों, प्रदर्शनियों एवं खिलौना निर्माण–स्थलों से इस धारणा को बल मिलता है कि एक कुटीर उद्योग के रूप में खिलौना निर्माण का ह्रास होने के बावजूद, देशी, साधारण खिलौने बच्चों को कुछ असाधारण दे सकते हैं.

भारतीय खिलौनों को चार श्रेणियों में बांटा जा सकता है :

1. दस्तकारों द्वारा विकसित और निर्मित खिलौने.
2. मेलों में बिकने वाले कुशल व अर्द्ध कुशल लोक कारीगरों, लोक कलाकारों द्वारा निर्मित पारंपरिक शैली के खिलौने.
3. कारख़ानों में बने खिलौने.
4. सामान्य जन द्वारा विकसित या अपने ख़ास खेल के लिए स्वयं बच्चों द्वारा आविष्कृत खिलौने.

दस्तकारों द्वारा विकसित व निर्मित खिलौने

भारत में खिलौने बनाने की कला और कुटीर उद्योग का जाल पूरे देश में फैला हुआ है. मोटे तौर पर इस तरह के दो विकास व उत्पादन समुदाय हैं : (1) वे समुदाय, जो उपयोगी उत्पादों (बर्तन–भांडों) के साथ–साथ सहयोगी क्रिया के रूप में या अवसर विशेष पर खिलौने भी बनाते हैं. (2) वे सुस्थापित समुदाय, जिनका प्रमुख उत्पाद खिलौने हैं. ये समुदाय टेराकॉटा, लकड़ी, घास–फूस, सरकंडे, गूदा, बांस या लुगदी जैसी विभिन्न सामग्रियों का प्रयोग करते हैं.

राजस्थान में जोधपुर ज़िले के नागौर गांव के कुम्हार आज भी पारंपरिक शैली में टेराकॉटा के विभिन्न उपयोगी उत्पाद बनाते हैं. उपयोगी उत्पाद बनाने की ही तकनीकों का इस्तेमाल कर नियमित व्यवसाय के रूप में वे खिलौने भी बनाते हैं, जिनकी विषय–वस्तु पारंपरिक होने के साथ–साथ समसामयिक भी होती है. प्रचलित कथाओं के आधार पर वे व्यक्तियों एवं पशु–पक्षियों की आकृतियां बनाते हैं. 1990 के दशक के अंतिम वर्षों से कुम्हारों ने नई श्रेणी के खिलौने बनाने की शुरुआत की : मोटरसाइकिल सवार, पायलट, हवाई जहाज़ और चालक सहित ऑटो रिक्शा. ग्रामवासी स्वयं यह परिवर्तन लाए और नए रूपों को कारीगर विशेष की निजी शैली बरक़रार रखते हुए गहरी समझ और रचनात्मकता के साथ विकसित किया गया.

कागज़ से निर्मित एक सरल गतिशील खिलौना

उत्तर प्रदेश में लखनऊ के कारीगरों ने, जो खानदानी कुम्हार हैं, पूर्ण रूप से खिलौना निर्माण का व्यवसाय अपना लिया है और मिट्टी के रंगीन फल तथा तरकारियां बनाने में दक्षता प्राप्त कर ली है. वे मनुष्यों और पशु–पक्षियों की लघु आकृतियां भी बनाते हैं. लगता है कि लघु आकृतियां बनाने का सुझाव उन्हें ब्रिटिश पर्यटकों से मिला. खिलौने बनाने वाले अपनी इस कला पर गर्व करते हैं और स्वयं को 'खिलौने वाले' कहते हैं. उनकी कला इतनी उत्कृष्ट कोटि की है कि वे प्रायः अपने खिलौने फलों को असली फलों के बीच रखकर ग्राहक को फल छांटने व उसका स्वाद चखने के लिए कहते हैं, जिसके कारण विनोदपूर्ण आनंद पैदा हो जाता है और कभी–कभी ग्राहक का मुंह मिट्टी से भी भर जाता है.

उत्तर प्रदेश में वाराणसी (बनारस) के बने हुए लकड़ी के खिलौने काफ़ी प्रसिद्ध हैं. वहां कई लोग और बच्चे लकड़ी के खिलौने बनाने में लगे हुए हैं, प्रमुखतः लट्टू व रसोईघर में काम आने वाले सामानों के छोटे रूप बनाने में. वे अपनी स्थानीय शैली में लकड़ी के कटाव से (टर्न्ड–वुड) रोग़नदार खिलौने तैयार करते हैं. 'टर्न्ड–वुड' से आशय उस प्रक्रिया से है, जिसमें खराद (लेथ मशीन) के उपयोग द्वारा काटने वाले औजार के आगे घुमाकर उसमें से अवांछित लकड़ी को निकालकर मनचाहा आकार दिया जाता है. बिजली की मोटर से एक कारीगर कई खराद अपने घर में ही चला सकता है. बच्चे शिक्षार्थी के रूप में यह कला सीखते हैं. वाराणसी में सैकड़ों लोग खराद वाला रोग़नदार खिलौना बनाने में लगे हैं.

इसी प्रकार का, किंतु विशाल पैमाने का एक खिलौना उद्योग कर्नाटक के चेन्नपट्णा में है. वहां पर टर्न्ड–वुड तकनीक के ज़रिये कई घरेलू इकाइयां और फैक्ट्रियां खिलौने और उपहार सामग्रियां बनाती हैं. खिलौना बनाने की ऐसी ही प्रभावी परंपरा राजस्थान के उदयपुर में, गुजरात के इडर और महुवा क़स्बे तथा मध्य प्रदेश के बुधनीघाट गांव में मौजूद है. राजस्थान के उदयपुर में लगभग 100 घरेलू इकाइयां स्थापित थीं, लेकिन आज ये समुदाय कच्चे माल की कमी की समस्या से जूझ रहे हैं. बुधनीघाट गांव में लगभग 20 घरेलू इकाइयां हैं, जो कई पीढ़ियों से टर्न्ड–वुड पद्धति से विभिन्न प्रकार के लकड़ी के चमकीले खिलौने बनाती चली आ रही हैं. ये खिलौना निर्माता न केवल लकड़ी की अनुपलब्धता से जूझते हैं, बल्कि अपने उत्पादों को बेचने के लिए आवश्यक विपणन या सुविधा की कमी का सामना भी करते हैं.

लकड़ी पर नक्काशीदार खिलौने बनाने की कला भारत के विभिन्न भागों में प्रचलित है. पश्चिम बंगाल के नूतनग्राम गांव में 'बांस की गुड़िया' बनाने में दक्ष एक बड़ा कलाकार समुदाय मौजूद है. वे सामग्री

को तराशकर और रंगकर मनुष्यों, पक्षियों व जानवरों की आकृतियां बनाते हैं. राजस्थान के बस्सी गांव में भी ऐसी ही परंपरा है, जहां के कलाकार गर्व से स्वयं को 'खिलौने वाले' कहते हैं. वे अपने खिलौनों में सैनिक, मां और बेटा, भारत के अन्य लोगों के साथ–साथ, पशु–पक्षी एवं अन्य प्रचलित देवी–देवताओं की आकृतियां बनाते हैं. इस समुदाय के बच्चे भी तराशने और चित्रकारी की कला में माहिर हैं. आंध्र प्रदेश के कोंडापल्ले गांव का कारीगर समूह प्रमुखतः लकड़ियों को तराशकर रंग किए हुए खिलौने बनाने के लिए प्रसिद्ध हैं. वे बाज़ार के दृश्यों, पनघट पर महिलाएं, मछुआरों, ताड़ी निकालते आदिवासी और करतब दिखाते नटों जैसे पारंपरिक और सामयिक विषयों का चित्रण करने वाले खिलौने बनाते हैं.

काष्ठ शिल्पियों का एक विख्यात समुदाय महाराष्ट्र के सावंतवाड़ी में है, जिसे रंगीन फल और सब्जियां बनाने में कुशलता प्राप्त है. प्राथमिक शालाएं कई बार इन खिलौनों को शिक्षण सामग्री के रूप में उपयोग के लिए मंगाती हैं. उड़िया कारीगरों की पशुओं और पक्षियों की सजीव प्रस्तुति की अनूठी कला उनके विषयों के चरित्र को बड़ी जीवंतता से उभारती है.

पक्की मिट्टी (टेराकॉटा) और काष्ठ के अलावा खिलौना निर्माण में अन्य सामग्रियों का उपयोग भी किया जाता हैं. उदाहरण के लिए, घास–फूस और पतला बांस, भारत के विभिन्न भागों में खिलौना निर्माताओं के लिए लोकप्रिय कच्चा माल उपलब्ध कराते हैं.

पंजाब में अमृतसर के उपनगरीय क्षेत्रों में एक कलाकार समुदाय एक स्थानीय घास 'सरकंडा' के उपयोग से अपने उत्पाद बनाते हैं. पुरुष प्रायः 'सूप' बनाते हैं, जबकि महिलाएं बेहद आकर्षक, ज्यामितीय आकार वाले झुनझुने बनाती हैं. वहां सरकंडा घास लगभग निःशुल्क उपलब्ध है और कारीगर इनके लिए हाथों के अलावा शायद ही किसी उपकरण का प्रयोग करते हैं. महिलाएं अपने खिलौने शहर के प्रमुख केंद्रों में जाकर बेचती हैं.

मधुबनी, बिहार की महिलाएं भी स्थानीय सुनहरी घास 'सिक्की' के माध्यम से विविध रंगों के आकार व आकृतियां बनाती हैं. वे घास को विविध रंगों में रंगकर झुनझुने तथा स्त्री–पुरुषों, देवी–देवताओं, सब्ज़ियों, फलों, पक्षियों और पशुओं की आकृतियां बनाती हैं. ये आकृतियां ग्रामीण महिला शिल्पकारों में रूपांकन की गहरी समझ को प्रतिबिंबित करती हैं. बंगाल और असम के पारंपरिक शिल्पकार एक बेहद हल्के सरकंडे 'शोला' को तेज़ धार वाले चाकू से काटकर पशु–पक्षी, फल–फूल और छोटे–छोटे मानव आकार देते हैं. इन्हें रंगों से सुंदरतापूर्वक रंगा भी जाता है.
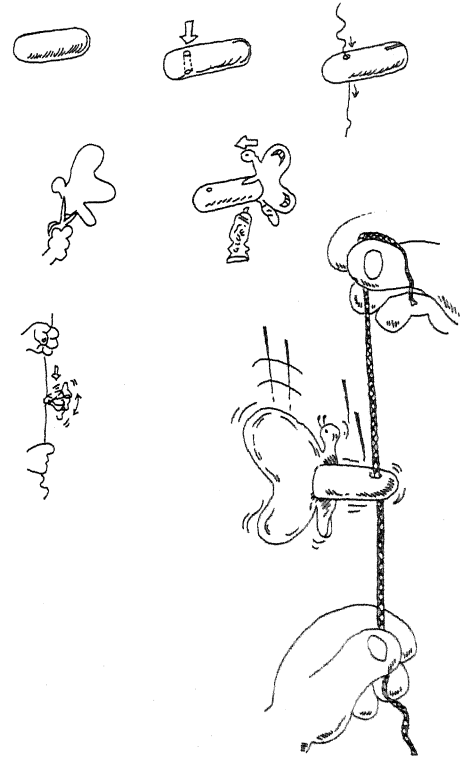
डोरी पर चलता हुआ जुगनू, चिकनी मिट्टी और कागज़ से निर्मित

भारत के अनेक समुदाय काग़ज़ की लुगदी से खिलौने बनाने का व्यवसाय करते हैं. चेन्नई (भूतपूर्व मद्रास) इन लोगों से भरा पड़ा है. नाचने वाली गुड़िया उनकी सबसे लोकप्रिय कृति है. इलाहाबाद (उ.प्र.) के बाहरी इलाक़े में भी ऐसा व्यवसाय करने वाला एक समुदाय मौजूद है. वे बड़े–बड़े आकार की पशु आकृतियां बनाते हैं. इन समुदायों की महिलाएं और बच्चे आम तौर पर झुनझुने और पशु–पक्षियों की आकृतियां बनाते हैं.

उड़ीसा में काग़ज़ की लुगदी और गोबर से खिलौना बनाने का काम पुरी और रघुराजपुर सहित अनेक स्थानों पर किया जाता है. पशुओं और व्यक्तियों के गुरुत्व–संतुलित खिलौने, जिनका सिर हिलता रहता है, इस क्षेत्र की विशेषता है.

उत्तर प्रदेश के आगरा शहर में लगभग 50 ऐसे परिवार हैं, जो काग़ज़ की लुगदी से खिलौने बनाते हैं. यह समूह, जो मूलतः कुम्हार है, अब हज़ारों की संख्या में कबूतर व तोते बनाते हैं. ये हर प्रकार की उपयुक्त तकनीक को अपना लेते हैं और बड़ी ही कुशलता से रबड़ के सांचों तथा पिचकारी (स्प्रे गन) का प्रयोग करते हैं. समस्त परिवार द्वारा अपने घर के आंगन में ही यह काम किया जाता है.

इनमें से कुछ प्रमुख दस्तकारों ने समय की मांग के अनुरूप बदलना सीख लिया है. खिलौनों के अलावा वे स्कूलों में शैक्षणिक सामग्री के रूप में मानव शरीर के विभिन्न अंगों की आकृतियां भी बनाते हैं. अंगों को सही ढंग से प्रदर्शित करने वाले विशेष मॉडल बनाने के लिए इन कारीगरों ने स्नातक व स्नातकोत्तर पाठ्य पुस्तकों का उपयोग कर मानव अंग बनाने की अपनी तकनीकें विकसित की हैं. खिलौना निर्माता के रूप में उनकी कुशलता और अनुभव का इस नए सृजन में अमूल्य योगदान है.

इनमें से प्रत्येक खिलौना निर्माता समुदाय एक ठोस, सतत और पर्यावरण अनुकूलन कार्य पद्धति अपनाता है. ये दस्तकार सिद्ध करते हैं कि स्वप्रशिक्षित व्यावसायिक लोग भी बेहद आसान 'उचित प्रौद्योगिकी' से वैज्ञानिक, रचनात्मक और नवोन्मेषी कार्य कर सकते हैं.

शिल्पकारों द्वारा विकसित और निर्मित गतिशील खिलौने

गतिशील खिलौनों का विक्रय पारंपरिक तौर पर मेलों और प्रदर्शनियों में किया जाता है. यद्यपि प्लास्टिक के सस्ते खिलौने प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं, फिर भी शिल्पकारों को विशेष रूप से निर्मित खिलौने जैसे काग़ज़ के रेंगते हुए सर्प, करतब दिखाते नट, काग़ज़ के पंख फड़फड़ाते पक्षी, घास–फूस से बना मनमोहक सांप, सीटियां, बांसुरी, पनचक्की और भार संतुलित खिलौने बेचते हुए देखा जा सकता है. ऐसे गतिशील और सजीव खिलौने उत्पाद रूपांकन का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण पेश करते हैं और प्रभावी रूप से यह साबित करते हैं कि कैसे विज्ञान और प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल एक विचार को ऐसे उत्पाद में परिवर्तित करने के लिए किया जा सकता है, जो शिक्षाप्रद व मनोरंजक होने के साथ–साथ स्थानीय संस्कृति का आईना भी हो.

कभी–कभी शिल्पकार और पहली पीढ़ी के खिलौना निर्माता नौकरी छूट जाने या फैक्ट्री के वातावरण में स्वयं को अनुपयुक्त पाने पर गतिशील खिलौनों का निर्माण अपना लेते हैं. उन्होंने कुछ हफ़्तों के अनौपचारिक प्रशिक्षण के बाद ही इस नए काम को सीख लिया और बहुत कम लागत से अपना कार्य संचालित करने लगे, यहां तक कि खुद ही अपने उत्पाद बेचने भी लगे. कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो इन

खिलौनों का निर्माण अपने खाली समय में अपनी पारिवारिक आय में वृद्धि के लिए करते हैं. महानगरों में ऐसे कुछ खिलौना निर्माता मौजूद हैं.

इस तरह के नए–नए और कम ख़र्चीले खिलौनों के कई प्रकार मिलते हैं. इसका एक उदाहरण है, मिट्टी और काग़ज़ से बना मछली रूपी खिलौना. इसमें मिट्टी वाले हिस्से में एक छोटा–सा छेद केंद्र से थोड़ा दूर स्थित होता है, जो मछली को उसमें पिरोए गए धागे के सहारे धीमी झटकेदार गति से नीचे आने में मदद करता है. यह खिलौना बंगाल और वाराणसी में बनाया जाता है और चंद रुपयों में बेचा जाता है.

नाचती कठपुतलियां उत्तरी भारत में काग़ज़ से और दक्षिण भारत में ताड़पत्रों से बनाई जाती हैं; ये अभिकेंद्र–बल (सेंट्रीपेटल फ़ोर्स) के सिद्धांत पर आधारित होती हैं. कलाकार उनके चेहरे को रंगकर या उन पर फ़िल्मी सितारों के आकार चिपकाकर उन्हें स्थानीय स्वरूप प्रदान करते हैं.

'डमरूगाड़ी' एक आकर्षक खिलौना है, एक तरह का 'परिवहन यंत्र', जो अब लगभग लुप्तप्राय ही हो चुका है. इसे बंगाल के एक खिलौना निर्माता समुदाय द्वारा मिट्टी का सकोरा, जानवरों की आंत और बांस की किमचियों का इस्तेमाल कर ख़ूबसूरती से बनाया जाता है. सरकंडों की कड़ियों से बना 'फन चलाने वाला सांप' एक कड़ी खींचने से तुरंत लंबा फैल जाता है. दूसरी ओर काग़ज़ का सांप, नीचे की ओर एक रबड़ की गोल तनी से बंधी चिकनी मिट्टी की गिट्टियां लगाकर बनाया जाता है. रबड़ की यह तनी, जो आमतौर पर साइकिलों के पुराने टायर–ट्यूब काटकर बनाई जाती है, में एक लोच होती है, जिसके कारण इस खिलौने में रेंगने और फन चलाने की क्रियाएं होती हैं. भारत के लगभग हर हिस्से में बनाए एवं बेचे जाने वाले ये काग़ज़ के सांप बहुत आसान तरीक़े से ऊर्जा के मुक्त होने की क्रिया, गति और त्वरण जैसी वैज्ञानिक अवधारणाओं को दिखाते हैं.

बांसुरी, घूमने और आवाज़ करने वाले खिलौने, पंख फड़फड़ाती चिड़िया तथा बांस का स्प्रिंग लगाकर बनाए जाने वाले खिलौने ऐसे विभिन्न गतिशील हस्तनिर्मित खिलौनों में आते हैं, जो भारत की समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा का अंग हैं. ऐसा कोई औपचारिक सर्वेक्षण उपलब्ध नहीं है, जो इस तरह के खिलौना निर्माताओं की संख्या बता सके, लेकिन हर शहर में मेलों और प्रदर्शनियों में वे दिखाई देते हैं, हालांकि इनकी संख्या तेज़ी से घट रही है. इन गतिशील खिलौनों को बनाने में लगे स्वप्रशिक्षित शिल्पकार, जो अक्सर निरक्षर होते हैं, स्पष्टतः रचनात्मक योग्यता रखते हैं और विज्ञान व प्रौद्योगिकी के सिद्धांतों पर आधारित व उन्हें प्रदर्शित करने वाले खिलौनों की अभिकल्पना में सक्षम हैं. विज्ञान के शिक्षक इन खिलौनों का इस्तेमाल बहुत आसानी से अपनी कक्षाओं में कर सकते हैं.

कारख़ानों में निर्मित खिलौने

1999 में खिलौना निर्माण के संगठित क्षेत्र ने जो उत्पादन किया, उसका अनुमानित मूल्य पांच अरब रुपये से अधिक रहा. यह विश्व खिलौना बाज़ार का एक बहुत ही छोटा अंश है. आंकड़ों के मुताबिक़, भारत में 200 से अधिक लघु उद्योग इकाइयां तथा 1,000 से अधिक कुटीर उद्योग इकाइयां खिलौना निर्माण में लगी हैं. आधुनिक भारत में उभरते एक बड़े मध्यम वर्ग के चलते कारख़ाना निर्मित खिलौनों के क्षेत्र में तेज़ी से वृद्धि हो रही है. अनुमानतः इस वर्ग के लगभग 10 करोड़ बच्चे इन्हें ख़रीद सकते हैं.
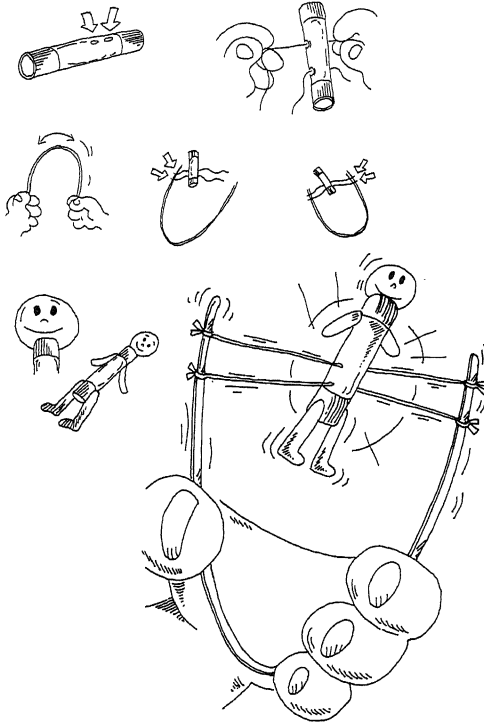
ब्रेक डांसर– धागे की रील, कागज़, डोरी और छड़ी का कल्पनाशील प्रयोग

खिलौना उद्योग की बड़ी व्यावसायिक उत्पादन इकाइयों द्वारा इस क्षेत्र में अब तक कोई उल्लेखनीय अनुसंधान तथा विकास कार्य नहीं किया गया है. हालांकि टॉय एसोसिएशन ऑफ़ इंडिया से प्राप्त जानकारी के मुताबिक़, दिल्ली के निकट एक खिलौना नगर (टॉय सिटी) और एक अनुसंधान व विकास केंद्र स्थापित किए जाने की योजना है, जो इस आर्थिक क्षेत्र को गति प्रदान करेगा.

बच्चों द्वारा निर्मित खिलौने

बच्चे भी विविध प्रकार के कच्चे माल, जैसे कागज़ की कतरनें, पत्तियां, बेकार बटन, माचिस की खाली डिबिया, सिगरेट के डिब्बे, रबड़बैंड, ख़ाली बोतलों के कॉर्क या ढक्कन का इस्तेमाल करके तरह–तरह के नए–नए खिलौने बनाते हैं. कोई भी वस्तु, जो भरपूर मनोरंजन या गतिविधि प्रदान कर सके, बच्चों का ध्यान खींचकर खिलौना बन जाती है.

नए खिलौने बनाने की कोशिश में बच्चों द्वारा प्रदर्शित मौलिक व रचनात्मक क्षमता प्रभावित करती है. नई चीज़ बनाने की प्रक्रिया में, उन्हें बहुत जानकारी हो जाती है : एक कल्पना को वास्तविकता में बदलना, सामग्रियों के गुणों को समझना तथा सटीकता, शुद्धता और बारीकियों का महत्त्व. मित्रों के साथ खिलौने बनाने और उनसे खेलने की प्रक्रिया में विचारों के आदान–प्रदान और खिलौना निर्माण के दौरान प्राप्त सफलताओं और असफलताओं पर आधारित नई खोजों के ज़रिये बच्चे बहुत कुछ सीख लेते हैं.

केरल के 12 वर्षीय संजीव की कहानी में बच्चों के स्वयं अपने खिलौने बनाने की सूझबूझ का एक अच्छा उदाहरण मिलता है. उसने घर पर ही एक बांस की छड़ी पर लगे छोटे से ताड़पत्र के पंखे और डोरी से एक घूमने वाला खिलौना बनाया, जिसका एक सिरा बड़े खोखले किए हुए बीज में रख दिया. जब डोरी को खींचा जाता, तो ताड़ का पत्ता घूमने लगता. संजीव ने बताया कि बीज रबड़ के पौधे का है. ऐसे बीज में आमतौर पर कुछ गूदा रहता है; पर खोखले किए गए उस बीज के कवच, जिसे इस खिलौने के आधार के रूप में इस्तेमाल किया गया, पर किसी प्रकार की खरोंच या कटे का निशान नहीं दिखाई दिया. फिर इस बीज को कैसे खोखला किया गया? संजीव का स्पष्टीकरण आंखें खोल देना वाला है : "हम बीज को चींटियों की बांबी में एकाध दिन के लिए छोड़ देते हैं और चींटियां यह काम कर देती हैं. हम खोखला कवच उठा लेते हैं और यह खिलौना बना लेते हैं."

* * *

सुदर्शन खन्ना अहमदाबाद स्थित नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ़ डिज़ाइन (एन.आई.डी.) में सीनियर डिज़ाइन प्रशिक्षक हैं, जो विगत 25 वर्षों से 'भारतीय खिलौनों और खिलौने वालों' के लिए कार्य कर रहे हैं. इन्हें 1995 में बच्चों में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के प्रयासों के लिए एन.सी.एस.टी.सी.–डी.एस.टी. का राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हो चुका है. सुदर्शन इंटरनेशनल टॉय रिसर्च एसोसिएशन (आई.टी.आर.ए.) के बोर्ड के सदस्य हैं और बच्चों, अध्यापकों, खिलौने वालों तथा वैज्ञानिकों के लिए अनेक कार्यशालाएं आयोजित कर चुके हैं.

खेलकूद

राहुल सप्रा

भारत में भी खेलकूद संसार के अन्य देशों के समान ही दैनंदिन जीवन का हिस्सा रहे हैं, परंतु वे कभी भी यूनान (ग्रीस) में ओलंपिक खेल की तरह एक संगठित स्पर्द्धा का स्वरूप नहीं ले पाए. यूनान के समान भारत में खेलों को पूरी तरह से प्रतिस्पर्द्धा की दृष्टि से नहीं देखा गया. भारत में खेलों की रस्मी और शैक्षणिक भूमिका ही अधिक रही. खेलकूद यहां किसी लक्ष्य की प्राप्ति के साधन मात्र ही रहे, न कि अपने आप में एक लक्ष्य, इसीलिए वे पूर्णतः प्रतिस्पर्द्धात्मक कभी नहीं बने. इसके अलावा, भारतीय दर्शन में इस बात पर ज़ोर दिया गया कि कर्म तो किया जाए, लेकिन किसी पुरस्कार की कामना न रखी जाए, शायद इस विचारधारा ने भी भारतीय खेलों के स्वरूप को प्रभावित किया.

प्राचीन भारत में खेलकूद

यद्यपि प्राचीन भारत में खेलों के विषय में बहुत अधिक लिखा नहीं गया है, परंतु ऐसे पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध हैं, जो इंगित करते हैं कि विभिन्न खेल भारतीय संस्कृति के अनिवार्य अंग थे. *द वंडर दैट वॉज़ इंडिया* में ए.एल. बाशम ने लिखा है कि पोलो और हॉकी किसी न किसी रूप में यहां खेले जाते थे. मुक्केबाज़ी और कुश्ती भी लोकप्रिय थे, यद्यपि ये संभ्रांत युवाओं के सामान्य शौक़ नहीं थे, परंतु निम्न जाति के पेशेवर मुक्केबाज़ों का शग़ल थे, जो वे दर्शकों के मनोरंजन के लिए प्रदर्शित करते थे. हां! तीरंदाज़ी योद्धा वर्ग (क्षत्रियों) का एक बहुत पसंदीदा खेल था और महाकाव्यों में इस प्रकार की स्पर्द्धाओं के सजीव विवरण मिलते हैं. प्राचीन साहित्य में चंद्रगुप्त मौर्य (ई.पू. 321–297) के दरबार में तलवारबाज़ी की प्रतियोगिता के संदर्भ मिलते हैं और बाद में मध्यकालीन दक्कन प्रदेश में भी द्वंद्व युद्ध बहुत प्रचलित हुए. 14वीं शताब्दी के मध्य में भारत आए पुर्तगाली यात्री नूनिज़ ने अपने विवरण में लिखा है कि विजयनगर के दो कुलीनों में विवाद होता था, तो वे राजा व उसके दरबारियों की उपस्थिति में जीवन पर्यंत द्वंद्व युद्ध करते थे. अहिंसा के सिद्धांत के बावजूद, जानवरों को लड़ाना एक लोकप्रिय खेल रहा. भारतीय बटेर, मुर्ग़ा और मेढ़ा वे जानवर थे, जिन्हें लड़ाया जाता था. सांड, भैंस और हाथियों की लड़ाइयों के भी विवरण मिलते हैं. एक और प्रकार की स्पर्द्धा सांडों से लड़ाई थी, जो दक्षिण तक सीमित रही. स्पेन की सांडों से लड़ाई की तुलना में, जहां युद्ध की अपेक्षा सांड का पक्ष काफ़ी कमज़ोर रहता है, यहां सांड अधिक लाभप्रद स्थिति में प्रतीत होता है. ये लड़ाइयां चरवाहों के बीच अधिक लोकप्रिय थीं, जो अखाड़े में शस्त्र रहित प्रवेश करता था और सांड पर क़ाबू पाने के लिए उसे जकड़ता था, यह लगभग वैसा ही होता था, जैसा अमेरिकी रोडियो में काउबॉय करते हैं. सांड से युद्ध युवाओं के पुरुषत्व की एक कठिन परीक्षा माना जाता था, क्योंकि कहा यह जाता है कि इस युद्ध को देखने वाली कन्याएं सफल प्रतियोगियों में से अपने पति का चुनाव करती थीं.

चौसर
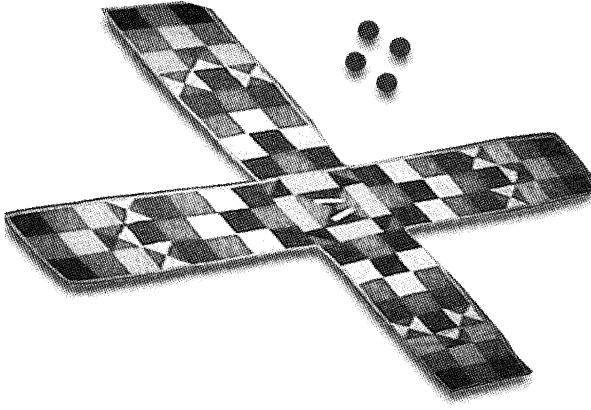
शतरंज का खेल भी संभवतः इसी काल में विकसित हुआ. बाशम ने लिखा है कि पट्टिका पर पासों की सहायता से कुछ खेल खेले जाते थे. ईसाई कालगणना की प्रारंभिक शताब्दियों में इसी प्रकार का एक खेल एक जटिल खेल के रूप में विकसित हुआ, जिसमें एक राजा मोहरा और चार अन्य प्रकार के मोहरे होते थे, जो प्राचीन भारतीय सेना के अंगों के समकक्ष होते थे, जैसे एक हाथी, एक घोड़ा, एक रथ या जहाज़ और चार पैदल. चूंकि यह खेल ऐसे मोहरों से खेला जाता था, जो सेना के अंगों का प्रतिनिधित्व करते थे और खेल की रणनीति भी युद्धरत सेना का संकेत देती थी, इसलिए यह खेल *चतुरंग* कहलाया, यानी 'चार सैन्य–दल.' छठी शताब्दी में फ़ारसियों ने इस खेल को सीख लिया और जब फ़ारस पर अरबों ने विजय प्राप्त कर ली, तो यह खेल शतरंज के नाम से संपूर्ण मध्य–पूर्व में प्रचलित हो गया, जो 'चतुरंग' का फ़ारसी अपभ्रंश है. प्राचीन भारत में चारदीवारी के अंदर खेला जाने वाला सर्वाधिक प्रसिद्ध खेल जुआ था. महाकाव्य *महाभारत* की पूरी कथा उस द्यूतक्रीड़ा, चौसर (पासों का खेल) के चारों ओर घूमती है, जिसमें युधिष्ठिर अपने चचेरे भाई दुर्योधन से अपना राजपाट हार जाते हैं.

रामायण और *महाभारत,* दोनों में धनुर्विद्या, आखेट एवं तैराकी और सामान्य तौर पर शारीरिक कौशल में वैशिष्ट्य जैसे खेलों के विभिन्न संदर्भ मिलते हैं. *महाभारत* में राजा पांडु के आखेट पर जाने का एक संदर्भ है, जिसमें वे भूल से हिरन के वेश में आए एक ऋषि को मार देते हैं. इसके बाद भीम का विवरण मिलता है, जो अपने भाइयों और धृतराष्ट्र के 100 पुत्रों से शारीरिक कौशल में श्रेष्ठ थे. वह एक कुशल तैराक भी थे. पांडवों और कौरवों ने अपने गुरुओं कृपाचार्य तथा द्रोणाचार्य से धनुर्विद्या और अन्य अस्त्र–शस्त्रों के प्रयोग की शिक्षा ली थी. प्रशिक्षण की समाप्ति के समय उन्होंने धनुर्विद्या और अस्त्रों के उपयोग में दक्षता के अपने कौशल का सार्वजनिक रूप से एक प्रतियोगिता में, राज परिवार की उपस्थिति में, प्रदर्शन किया था.

महाभारत में वर्णित खेलों के प्रदर्शन और प्राचीन यूनान में होने वाली ओलिंपिक प्रतियोगिताओं या यूनानी महाकाव्यों (जैसे *इलियड* और *ओडीसी*) में वर्णित खेल स्पर्द्धाओं में एक मूलभूत अंतर है. प्राचीन भारत में खेलकूद केवल प्रदर्शन के ही लिए नहीं थे, वरन वह शिक्षा का एक हिस्सा थे. यूनानी महाकाव्यों में खेलों के प्रतिस्पर्द्धात्मक स्वरूप पर अधिक ज़ोर है. होमर के *इलियड* के 23वें खंड में धार्मिक एवं प्रतिस्पर्द्धात्मक पक्ष सम्मिलित हैं, जबकि *ओडीसी* के खंड आठ में ओडीसियस तथा फ़ीशियनों के बीच की स्पर्द्धाएं निश्चित ही प्रतियोगिताएं हैं. ओडीसियस को खिलाड़ी (एथलीट) के रूप में अपना कौशल प्रदर्शन करने के लिए फ़ीशियनों ने चुनौती दी थी.

प्राचीन भारत में महिलाओं से भी अपेक्षा की जाती थी कि वे खेलों के साथ–साथ कलाओं में भी दक्ष हों. कामशास्त्र में 64 कलाओं का विवरण हैं, जिनका अध्ययन उस स्त्री के लिए आवश्यक था, जो

गणिका (एक गुण संपन्न सार्वजनिक स्त्री) का पद चाहती है. इनमें से तीन कलाएं विशेष रूप से खेलों से संबंधित हैं. ये हैं– तलवार और लाठी चलाने का अभ्यास, द्वंद्व, धनुर्विद्या में निपुणताएं; मुर्गों, बटेरों व भेड़ों को लड़ाने की कला; तथा युवा वर्ग के खेलों में कुशलता.

मध्यकालीन भारत में खेलकूद

ए. रशीद की पुस्तक *सोसाइटी ऐंड कल्चर इन मिडीवल इंडिया* में मध्यकाल में भारत में खेले जाने वाले विभिन्न खेलों का विवरण मिलता है. मैदानी खेलों में चौगान (पोलो) बहुत लोकप्रिय था. यह घोड़े पर चढ़कर एक छड़ी (स्टिक या क्लब) तथा गेंद से खेला जाता था. सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक़ पोलो खेलने के शौक़ीन थे, माना जाता है कि वे पोलो खेलते समय घोड़े से गिर पड़े और उनकी मृत्यु हो गई. सुल्तान सिकंदर लोदी भी पोलो के शौक़ीन थे. इस बात का उल्लेख भी मिलता है कि सुल्तान बहलोल लोदी सात वर्ष की उम्र में गेंद (गुए) से खेलते थे. शायद यह फुटबॉल का एक प्रकार था. ईद के त्योहार पर कुश्ती के दंगल आयोजित किए जाते थे. रशीद बांग्ला साहित्य में वर्णित 'धोपरी' का उल्लेख करते हैं, जो ग्रामीण क्षेत्रों में खेली जाने वाली एक तरह की हॉकी का प्रकार था. यह मुड़े हुए बांस की छड़ी और गेंद से खेली जाती थी. 'गेरू' एक अन्य लोकप्रिय खेल था. यह कई लड़कों द्वारा खेला जाने वाला खेल था, जिसमें एक गेंद अपनी प्रतिद्वंद्वी टीम पर फेंकना और सामने वाली टीम द्वारा उसे पकड़ना होता था. 16वीं सदी के फ़ारसी शब्दकोश में बच्चों के अन्य खेलों का संदर्भ है, जैसे *ज़िकसार* और *गिर्द–ने*. *ज़िकसार* में एक बालक मुंह में हवा भरकर उसे फुला लेता है और दूसरा उसके दोनों गालों पर मारकर हवा बाहर निकलवाता है. *गिर्द–ने* बच्चे का लट्टू घुमाना या गाड़ी खींचना था, जो *फ़ार्लूक* भी कहलाता था. पतंग उड़ाना तो हमेशा से ही बेहद लोकप्रिय रहा. 16वीं सदी की एक प्रेमगाथा *मधुमालती* में पतंगों की क़तारों का संदर्भ है.

हालांकि सुल्तानों और कुलीन वर्गों के घर से बाहर वाले पसंदीदा खेल 'शिकार' या 'बाज़ पक्षी की सहायता से शिकार' होते थे. शम्सुद्दीन इल्तुतमिश, बलबन, अलाउद्दीन ख़लजी, मुहम्मद बिन तुग़लक़ और फ़िरोज़ शाह जैसे सुल्तान शिकार के अभियानों में विशेष रुचि लेते थे. अमीर ख़ुसरो ने ऐजाज़–ए–ख़ुसरवी के एक भाग, जिसका शीर्षक है– *नामा–ए–मीर शिकार* में इस काल में शिकार के खेल की विस्तृत जानकारी दी है. इन शिकारों पर सैकड़ों सेवक सुल्तानों के साथ जाते थे. इस खेल का मुख्य शिकारी *मीर शिकार* या *शिकार–बक़* कहलाता था. शिकार के अलग–अलग स्थान होते थे, जो *शिकारिस्तान* और *शिकारगाह* कहलाते थे. एक तो पक्षियों से भरा होता था और दूसरा मांसभक्षी और जंगली जानवरों से. लेखक बरनी ने फ़िरोज़ शाह द्वारा शिकार में ली जाने वाली रुचि का उल्लेख करते हुए लिखा है कि पिछले सुल्तान पक्षियों को सर्दी के चार महीनों में बाज़ों की सहायता से मारते थे, फ़िरोज़ शाह वर्ष भर शेरों, जंगली जानवरों तथा पक्षियों का शिकार करते थे.

© 2000, एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (इंडिया) प्रा.लि.
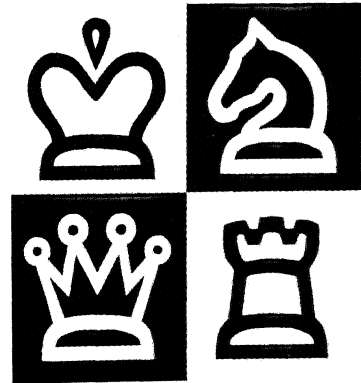
सोसाइटी ऐंड कल्चर इन मिडीवल इंडिया (1206–1707) शीर्षक पुस्तक में एम.पी. श्रीवास्तव ने लिखा है कि शिकार करना

मुग़लों का एक ख़ास शौक़ था. अकबर शिकार और जंगली हाथियों के प्रशिक्षण में बहुत रुचि लेते थे और नरवर के जंगलों में घोड़े पर बैठकर शिकार का पीछा किया करते थे. शाही महिलाओं में जहांगीर की बेगम नूरजहां ही एक ऐसी स्त्री थीं, जो शिकार में आनंद लेती थीं और अपने पति के साथ शिकार पर जाती थीं. लगभग सभी मुग़ल शहंशाह जानवरों की लड़ाइयां देखने के शौक़ीन थे. हाथियों की लड़ाई देखना उनका प्रिय मनोरंजन था. यह लड़ाई अक्सर सप्ताह में दो दिन, मंगलवार और शनिवार को आयोजित होती थी. जहांगीर हाथियों की लड़ाई देखने के ख़ास शौक़ीन थे और अपने शासनकाल में उन्होंने इस बात को सुनिश्चित किया कि इनका आयोजन रोज़ाना हो. कबूतरों की लड़ाई सामान्यजन और कुलीन वर्ग, दोनों के मनोरंजन का साधन थी. अकबर को यह विशेष रूप से पसंद था और वे इसे इश्क़बाज़ी कहते थे. उनके पास 20 हज़ार से अधिक कबूतर थे और जहांगीर के पास हवाई खेलों के लिए 10 हज़ार कबूतर थे. मुग़ल मछली के शिकार और नौकायन का भी आनंद लेते थे. सामान्य जनता के लिए मुक्केबाज़ी मनोरंजन का एक प्रमुख साधन था.

मध्ययुग में शतरंज चारदीवारी में खेला जाने वाला एक बेहद लोकप्रिय खेल था. *तारीख़–ए–अफ़ग़ानी* के लेखक लिखते हैं कि शतरंज अफ़ग़ानों के पसंदीदा खेलों में से एक था. यहां तक कि महिलाओं को भी यह खेल सिखाया जाता था. अमीर ख़ुसरो ने शतरंज और *नर्द* को समर्पित एक अध्याय में इस खेल को एक भारतीय द्वारा आविष्कृत माना है. अकबर और जहांगीर, दोनों इस खेल का आनंद लेते थे. कहा जाता है कि अकबर यह खेल अपने हरम में खेलते थे, जिसमें मोहरों के स्थान पर दासियों का उपयोग किया जाता था और फ़तेहपुर सीकरी के महल में बनाए गए शतरंज के चौगान में इसे खेला जाता था. अन्य लोकप्रिय खेल, जो पुरुष व महिलाएं दोनों खेलते थे, चौपड़ और ताश थे. यह माना जाता है कि ताश का खेल (गंजीफ़ा) मुग़ल शहंशाह बाबर ने सर्वप्रथम भारत में शुरू किया था.

भारत में खेलकूद सिक्खों के सरंक्षण में फले–फूले. सिक्खों के दसवें गुरु, गुरु गोबिंद सिंह खेलकूद के महान संरक्षक थे. उन्होंने अपने शिष्यों को कबड्डी, कुश्ती, तैराकी, तीरंदाज़ी, घुड़सवारी तथा नौकायन में भाग लेने को प्रोत्साहित किया. घुड़सवारी तथा तीरंदाज़ी जैसे खेल, जो पहले केवल उच्च वर्ग तक सीमित थे, अब आम लोगों में भी लोकप्रिय हो गए. गुरु गोबिंद सिंह स्वयं बेहद माहिर खिलाड़ी थे. वह घुड़सवारी तथा धनुर्विद्या के विशेषज्ञ थे.

19वीं शताब्दी और आधुनिक भारत

सोसाइटी ऐंड कल्चर इन नॉर्दर्न इंडिया (*1850–1900*) नामक पुस्तक में शिव एस. दुआ ने लिखा है कि 19वीं शताब्दी में शतरंज और चौपड़ के विभिन्न प्रकार, चारदीवारी में खेले जाने वाले बहुत लोकप्रिय खेल थे. चौपड़ कपड़े से बने एक पट पर खेला जाता था, जो धन (क्रॉस) के आकार में रखे हुए चार आयतों से इस प्रकार बनता था कि उनकी भुजाएं मिलने से बीच में एक बड़ा वर्ग बन जाए. प्रत्येक आयत में 24 वर्ग आठ–आठ की तीन पंक्तियों में बने होते थे, जो 12 लाल तथा 12 काले होते थे. धन (क्रॉस) को 'चौपड़', भुजाओं को 'पांसा' तथा वर्गों को 'खाने' कहा जाता था. इस पट पर दो भिन्न खेल भी खेले जाते थे, दोनों का एक ही नाम था–चौपड़, परंतु उनमें तकनीकी रूप से भिन्नता थी. जो पांसे से खेला जाता था, उसे 'पांसा' कहते थे और जो कौड़ियों से खेला जाता था, उसे 'पचीसी' (सीप की मुद्रा) कहते थे. इसी प्रकार का धन (क्रॉस) के आकार में बने पट पर खेला जाने वाला एक खेल 'चौसर' कहलाता था.

खेल चाहे चारदीवारी में खेले जाने वाले हों या मैदान में, केवल कुलीन वर्ग तक सीमित नहीं थे, वरन उनका आनंद सभी वर्ग के लोग लेते थे. ताश का खेल ऐसा खेल था, जो अमीरों के भवनों में, मध्यम वर्ग के *चंडी–मंडलों* में और पेड़ों की छाया में खेला जाता था. ताश के पत्ते दो प्रकार के होते थे– मुग़ल और पाश्चात्य. प्रथम प्रकार के *गंजीफ़ा* कहलाते थे. ये गोलाकार होते थे और एक गड्डी में 96 पत्ते होते थे, जो 12–12 की आठ शृंखलाओं में बंटे होते थे. पाश्चात्य प्रकार के 52 पत्तों का ताश, जो चार शृंखलाओं में विभाजित था, भी चलन में आने लगा था.

पतंग उड़ाना, कबूतर लड़ाना और कुश्ती अत्यधिक लोकप्रिय मैदानी खेल थे. पश्चिमोत्तर प्रांतों और पंजाब में पतंग उड़ाना एक कला माना जाता था. पतंगों को बहुत ऊंचाई तक उड़ाना ही एकमात्र उद्देश्य नहीं था, बल्कि पतंगों को आपस में (पेंच) लड़ाया जाता था. इस खेल का मुख्य मनोरंजन प्रतिद्वंद्वी की पतंग की डोर को हाथ को आरी जैसा संचालित करके अपनी डोर से काट देने के कौशल में निहित था. गांवों में कुश्ती भी बहुत लोकप्रिय खेल बना रहा. यह सभी मौसमों में खेला जाता, परंतु सर्दियों में इसका आनंद विशेष रूप से उठाया जाता था. लगभग प्रत्येक गांव में कुश्ती लड़ने वालों की एक टोली होती थी. उनके खेलने का अखाड़ा किसी पेड़ की छांव में एक छोटा सा मैदान होता था, जहां लोग इस खेल को देखने के लिए एकत्रित हो जाते थे. बड़े माने जाने वाले गांवों में वार्षिक कुश्ती दिवस आयोजित किया जाता था, जिसमें आसपास के गांवों के लोग आते थे. गांव वालों के चंदों से प्रतियोगिताएं आयोजित की जातीं और पुरस्कार दिए जाते.

दुआ ने लिखा है कि उत्तरी भारत में लड़कियां एक खेल खेलती थीं, जो पश्चिमी देशों के *जैक्स* या *जैकस्टोन्स* के समान था. यह कई प्रकार से खेला जाता था, परंतु सर्वाधिक प्रचलित स्वरूप वह था, जो अक्सर पांच छोटे गोलाकार पत्थरों से (जिन्हें गिट्टि या गुट्टा कहते थे) खेला जाता था. लड़के भी कई खेल खेलते थे. कंचे भी कई प्रकार से खेले जाते थे, इनमें दो प्रकार बहुत प्रचलित थे; एक रूप *एकपारी– सबसारी* कहलाता था, इसमें गोलियां एक गड्ढे या *गल्ले* में डालनी होती थीं. दूसरा था *अकल ख्वाजा*– इसमें गोलियां दो गड्ढों में डाली जाती थीं. खिलाड़ी किसी दूसरी गोली को मारने पर या उसे गड्ढे में डाल देने पर एक अंक गिनता था. *अंधा बादशाह* और *आंख–मिचौनी* बंद आंखों के खेल थे और बहुत उत्साह से खेले जाते थे. इसके कुछ अन्य प्रकार भी थे, जैसे *बारो–छापजा, एक–तारा* और *दो–तारा. घूम* एक ऐसा खेल था, जिसमें खिलाड़ी एक मैदान में किसी खंभे से बंधी रस्सी पकड़कर खंभे के चारों ओर दौड़ते थे. गुल्ली–डंडे का खेल *टिप–केट* के समान था; गुल्ली दोनों ओर नोंकदार एक छोटी सी लकड़ी होती है और डंडा बड़ी लकड़ी, जिससे गुल्ली पर चोट मारी जाती है. यह खेल कई प्रकार से खेला जाता था और कई नामों से जाना जाता था जैसे– हरल, नामा सद्रा, एरिदरी, एकू–दुकू तथा कई–काटा. कंचे और गुल्ली–डंडा आज भी प्रचलित खेल हैं, विशेषकर भारत के ग्रामीण बच्चों में.

कबड्डी, जिसे 1990 में बीजिंग में आयोजित एशियाई खेलों में शामिल किया गया, भारत में पुराने समय से एक अत्यंत लोकप्रिय खेल रहा है. यह हमेशा से युवाओं का एक पसंदीदा खेल रहा है, जो दो दलों में बंट जाते हैं और ज़मीन पर एक रेखा खींचकर पाला बना देते हैं. प्रतिद्वंद्वी दलों के बीच की सीमा रेखा होती है. एक दल में से एक खिलाड़ी सीमा रेखा पार करके जाता है और दूसरे दल के किसी सदस्य को छूने का प्रयत्न करता है. अपेक्षा यह रहती है कि यह क्रिया एक सांस में की जाए और इसलिए खिलाड़ी कबड्डी–कबड्डी बोलता रहता है, जिससे प्रकट हो कि सांस टूटी नहीं है. यदि वह
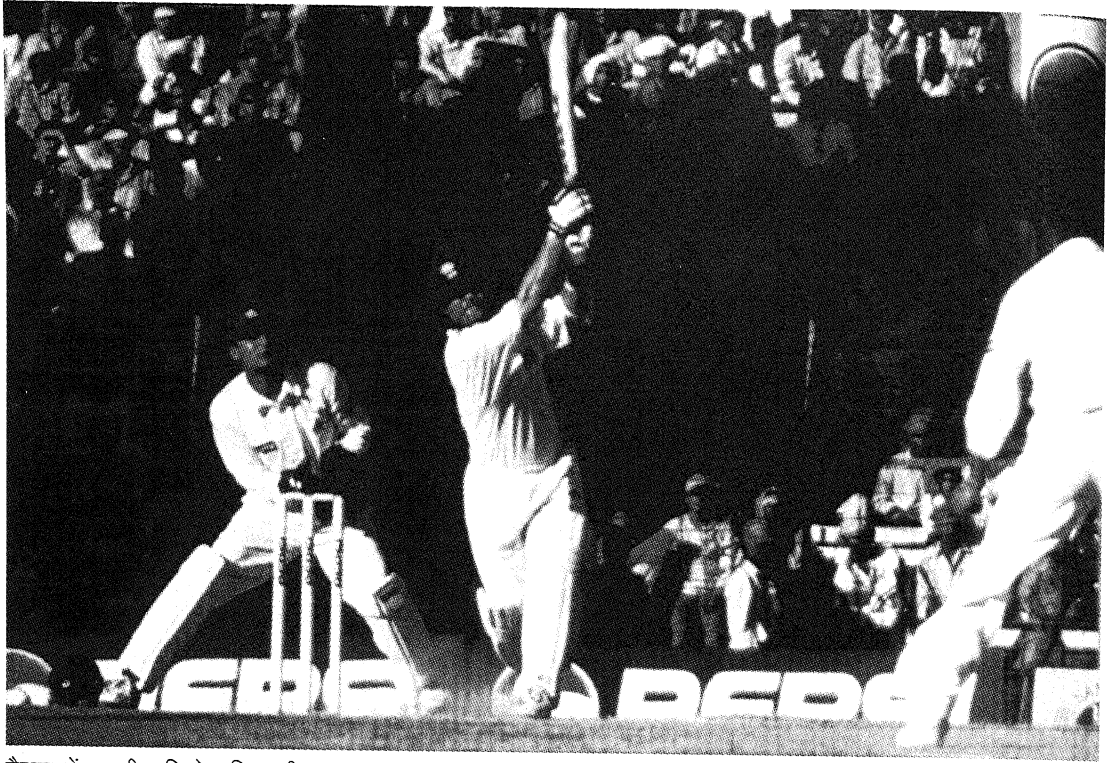
मैदान में भारतीय क्रिकेट खिलाड़ी
सौजन्य : *आउटलुक*

दूसरे दल के खिलाड़ी को छूकर सफलतापूर्वक लौट आता है, तो उस खिलाड़ी को एक अंक मिल जाता है, किंतु यदि उसकी सांस टूट जाती है और वह दूसरे दल के खिलाड़ियों द्वारा पकड़ लिया जाता है, तो उसे शेष खेल के लिए मरा हुआ मान लिया जाता है. *सालदू* और *गेल्ला–चुट्ट* कबड्डी के दूसरे रूप हैं, जो अभी भी क्रमशः निकोबार द्वीप समूह तथा त्रिपुरा में खेले जाते हैं. *सालदू* में, परंपरागत कबड्डी के समान कोई सीमा रेखा नहीं होती, परंतु एक मध्य रेखा होती है. परिणामतः खेल का यह मैदान बजाय परंपरागत कबड्डी के मैदान के काफ़ी बड़ा होता है. *गेल्ला–चुट्ट* भी *सालदू* के जैसा ही खेल है. *फिसल–बंद* या किसी तालाब के किनारों की ढाल या नदी के किनारों या किसी पहाड़ी की ढलान पर फिसलना बच्चों के मनोरंजन का एक और खेल है. यह शायद आजकल के *स्लिपरी–स्लाइड* का अपरिष्कृत रूप है.
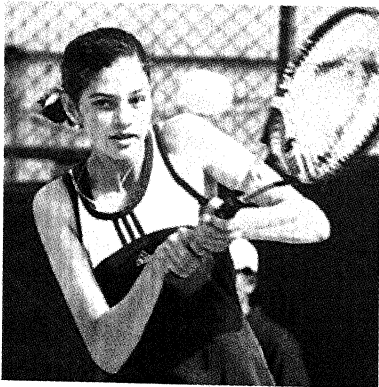
एक युवा टेनिस खिलाड़ी
सौजन्य : *द हिंदू*

ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ क्रिकेट, हॉकी, फुटबॉल तथा टेनिस जैसे खेल भारत में शुरू हुए. ये नए खेल शीघ्र ही भारतीय समाज के अभिन्न अंग बन गए. लिखित प्रमाण के अनुसार, क्रिकेट का प्रथम खेल भारत में 1721 में खंभात में अंग्रेज़ व्यापारियों द्वारा खेला गया. *कलकत्ता क्रिकेट क्लब,*

जिसकी स्थापना ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारियों ने 1792 में ईडन गार्डंस में की थी, भारत में स्थापित प्रथम क्रिकेट क्लब माना जाता है. *ओरिएंट क्लब* पहला भारतीय क्लब था, जिसने 1886 में इंग्लैंड का दौरा किया. रणजीतसिंहजी विभाजी पहले भारतीय थे, जो मेर्लबोर्न क्रिकेट क्लब (एम.सी. सी.) के लिए 1895 में खेले और उस सत्र में वे ही पहले थे, जिन्होंने 3,000 रन बनाए. मोहन बाग़ान, जो सबसे पुराना फुटबॉल क्लब है, 1889 में स्थापित हुआ, जिसके पश्चात 1891 में मोहम्मडन स्पोर्टिंग की स्थापना हुई. शिमला में 1888 में प्रारंभ की गई डूरंड कप प्रतियोगिता, फुटबॉल एसोसिएशन (एफ़. ए.) कप, जो इंग्लैंड में 1871 में प्रारंभ हुआ, के बाद संसार में दूसरी सबसे पुरानी प्रतियोगिता है. टेनिस भी एक लोकप्रिय खेल बन गया और सरदार निहाल सिंह पहले भारतीय थे, जो 1908 में विंबलडन में खेले.

पारंपरिक खेलकूद

ऊपर वर्णित विभिन्न खेलों के अलावा कई परंपरागत खेल हैं, जो भारत में अभी भी लोकप्रिय हैं. भारतीय व्यायाम (जिम्नास्टिक्स) एशिया अथवा संसार के नक़्शे पर तो अपना स्थान नहीं बना पाए, परंतु जिम्नास्टिक के कुछ लोकप्रिय देशी स्वरूप विद्यमान हैं, जैसे *मल्लखंभ*, जो महाराष्ट्र में अत्यधिक प्रचलित है. यह व्यायाम का एक ऐसा प्रकार है, जो ज़मीन पर गड़े एक खंभे के साथ में किया जाता है. *मल्ल* का अर्थ है व्यायामकर्ता (जिम्नास्ट) और *खंभ* का अर्थ है खंभा. यह खेल 800 वर्षों से अधिक पुराना है, क्योंकि इसका प्रारंभ 12वीं शताब्दी में हुआ था, जिसका उल्लेख प्राचीन साहित्य *मनसोल्लास* में मिलता है. इसकी वर्तमान लोकप्रियता इस तथ्य से आंकी जा सकती है कि मल्लखंभ की राष्ट्रीय प्रतियोगिता में लगभग 14 राज्य भाग लेते हैं. महाराष्ट्र का दूसरा प्राचीन खेल है *आट्या–पाट्या*. इस खेल में खेल का क्षेत्र नौ खाई या धारियों में विभक्त होता है, जो एक लंबी केंद्रीय पाटी के दोनों ओर खिंची होती हैं. प्रत्येक खाई पार करने पर खिलाड़ी को एक अंक मिलता है, जिसे प्रतिद्वंद्वी दल अवरोधित करके खड़ा होता है.
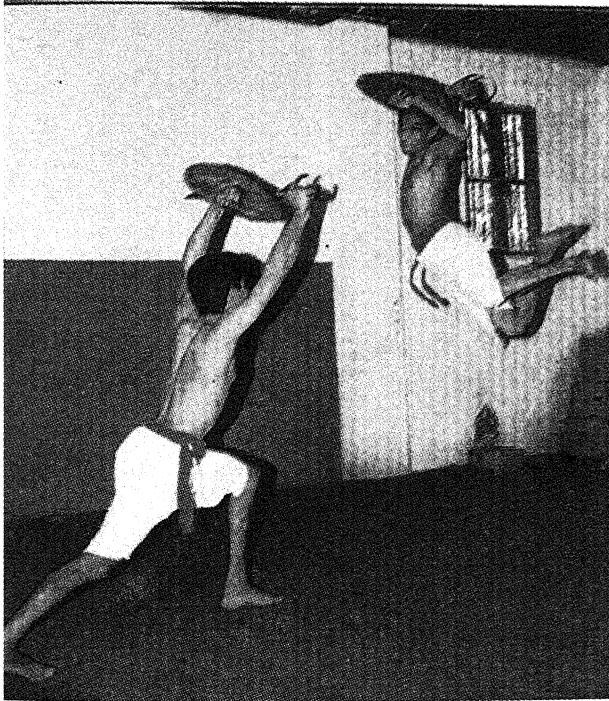
कालरिपायट्टू
सौजन्य : ई.एस. नारायणन

कई प्रकार की युद्ध कलाएं और स्पर्श खेल हैं, जो आदिवासी संस्कृति से उपजे हैं. *कालरिपायट्टू* 16वीं शताब्दी में उत्तरी मालाबार के सरदार ताचोली ओथेयनान के शासनकाल में अत्यधिक लोकप्रिय था. आज *कालरिपायट्टू* के प्रदर्शन में शारीरिक शिक्षा, नक़ली द्वंद्व युद्ध और लड़ाइयां

शामिल होती हैं, जो हथियारों से या उनके बिना लड़ी जाती हैं. *सीलांबम* युद्ध–कला का एक और प्रकार है, जो तमिलनाडु में प्रचलित है. यह खेल आधुनिक *पटेबाज़ी* (फेंसिंग) से मिलता–जुलता है. *थांग–ता, सरित– सड़क* और *चैबी–गाड–गा* युद्ध कला के अन्य प्रकार हैं, जो मणिपुर में प्रचलित हैं. कुश्ती के भी विभिन्न प्रकार देश में विद्यमान हैं. *मुकना* एक प्रकार की कुश्ती है, जो 15वीं शताब्दी से मणिपुर में खेली जाती रही है और इसमें टांगों के प्रयोग की ही अनुमति है. *इंचाई* और *इंबुआन* इसी खेल के भिन्न रूप हैं, जो मिज़ोरम में लोकप्रिय हैं. नागालैंड में कुश्ती का एक स्थानीय रूप मिलता है, जिसमें खिलाड़ी एक–दूसरे के कमरबंद कसकर पकड़े रहते हैं.

जल–क्रीड़ाएं केरल, मणिपुर तथा निकोबार द्वीप समूह में प्रचलित हैं. केरल में ओणम त्योहार के दौरान *चंदन वेल्लम* या 'सर्प–नौका दौड़' आयोजित की जाती है. उपयोग में लाई गई नावें विशाल आकार की होती हैं और एक दल के लगभग 100 सदस्य इसमें बैठ सकते हैं. *हियांग टन्नाबा* एक वार्षिक नौका दौड़ है, जो मणिपुर के *लाइ–हराओबा* त्योहार के दौरान आयोजित की जाती है. *आसोल–आप* भी एक प्रकार की नौका दौड़ है, जो निकोबार द्वीप समूह में प्रचलित है. यह खेल आधुनिक नौकायन (केनोइंग) के समान है.

* * *

राहुल सप्रा श्री गुरु तेग़ बहादुर ख़ालसा महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी के व्याख्याता हैं तथा इन्होंने खेलों सहित विभिन्न विषयों पर लेख लिखे हैं.

गणित का इतिहास

आर.सी. गुप्ता

सिंधु घाटी में गणित (2300 से 1700 ई.पू.)

पूर्व सिंधु घाटी काल के गणित के अध्ययन हेतु बहुत कम सामग्री उपलब्ध है. सिंधु घाटी सभ्यता में नगर केंद्रों, नगरीय प्रशासन, लिपि और नाप–तौल की केंद्रीकृत पद्धति सहित एक संपूर्ण सभ्यता के सभी लक्षण मौजूद थे. पुरातत्वीय प्रमाण यह दर्शाते हैं कि नगर नियोजन के सिद्धांतों को अपनाया गया था. सुव्यवस्थित जल निकास पद्धति के साथ यहां की सड़कों का जाल यह दर्शाता है कि सर्वेक्षण और समतलीकरण के मूलभूत सिद्धांत उस समय ज्ञात थे. सिंधु घाटी सभ्यता की संस्कृति और समाज को उस समय के हिसाब से काफ़ी विकसित माना जा सकता है. पुरातत्वीय साक्ष्य, नगर–केंद्र निर्माताओं के व्यावहारिक अंकगणित और क्षेत्रमिति के पर्याप्त ज्ञान को प्रमाणित करते हैं. भवनों की रूपरेखा और उनकी विस्तृत संरचना के आयामों के संयोजन में पूर्णांकों व भिन्नों का प्रयोग आवश्यक था. मोहेंजोदाड़ो के भग्नावशेष, पर्याप्त चौड़ी व समानांतर गलियों, भवनों, समुचित जल आपूर्ति व्यवस्था के साथ निजी स्नानागारों, बड़े सार्वजनिक स्नानागार, एक आराधना भवन, स्तंभीय सभाकक्ष और जल निकास व्यवस्था का संकेत देते हैं. सिंधु घाटी सभ्यता के लोग सही परिमापों और कोणों की रचना करने की तकनीकों से निश्चित ही परिचित रहे होंगे. इनसे परिष्कृत चिह्नित मापीय उपकरणों के उपयोग का पता चलता है. यहां पाए गए उपकरणों में मोहेंजोदाड़ो की सीपी की बनी दशांश मापनी, लोथल की हाथीदांत से बनी मापनी और हड़प्पा व कालीबंगा से मिली मापनी छड़ें शामिल हैं. इनमें से मोहेंजोदाड़ो की मापनी सबसे अधिक उल्लेखनीय है. यह एक संकरी पट्टी का टुकड़ा है, जिस पर समान दूरी पर नौ रेखाएं सूक्ष्मतापूर्वक खुदी हुई हैं (रेखाओं के बीच की दूरी 0.67 सेमी और औसत त्रुटि मात्र 0.007 सेमी है). मापनी पर शून्य को एक वृत्त से दर्शाया गया है और प्रत्येक छठी रेखा पर एक मोटा बिंदु अगली सबसे बड़ी उप इकाई को दर्शाता है.
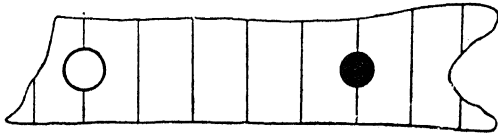
मोहेंजोदाड़ो के एक मापक का रेखाचित्र

दुर्भाग्यवश सिंधु लिपि अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है. कई प्रयत्न किए जा चुके हैं, अनेक तर्कसंगत सिद्धांत प्रतिपादित किए जा चुके हैं और कई गणितीय मूल्यांकनों से प्रयास किया जा चुका है. अनेक शिल्पों पर संभावित अंकों के चिह्न एक दशमिक आधार की ओर संकेत करते हैं, लेकिन द्विभाग और अष्टभाग आधार भी हो सकता है. घोड़े की नाल के चिह्न 'U' की व्याख्या, 5, 20 या 100 को निर्दिष्ट करने के लिए भिन्न प्रकार से की गई है. छोटे अंक संभवतः पास–पास खींची गई खड़ी रेखाओं द्वारा व्यक्त किए गए थे.

मिट्टी के बर्तनों और अन्य वस्तुओं पर चार या आठ पंखुड़ियों से अलंकृत अभिकल्पनाएं और संकेंद्री तथा प्रतिच्छेदी वृत्तों की संरचनाएं मिलती हैं. ये और बहुत से अन्य शिल्पों के आकार दर्शाते हैं कि यहां के निवासियों को रेखागणित के सरल आकारों, जैसे वर्ग, आयत, त्रिभुज और वृत्त की रचना विधि तथा प्रारंभिक गुणधर्म का ज्ञान था. घन और साहुल पिंड की आकृति के सिंधुकालीन बाट आश्चर्यजनक शुद्धता से बनाए गए थे. निर्माण में प्रयुक्त पकी हुई ईंटों की एक उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि उनकी लंबाई, चौड़ाई और मोटाई का अनुपात हमेशा 4:2:1 था, जो मज़बूत जुड़ाई के लिए सुविधाजनक है. यह भी ज्ञात होता है कि सिंधु घाटी के चक्राकार पत्थर या योनि पत्थर, वास्तव में इतिहास में प्राचीनतम ज्ञात मापक उपकरण हैं.

वैदिक युग में गणित (2000–800 ई.पू.)

वैदिक युग के प्रारंभिक भारतीय कालानुक्रम के संबंध में भिन्न–भिन्न मत हैं. इनमें एकरूपता के लिए आर.सी. मजूमदार की अध्यक्षता में गठित कालानुक्रम समिति ने निम्नलिखित कामचलाऊ तिथियां सुझाई हैं :

ऋग्वेद काल	2000–1500 ई.पू.
अन्य संहिताएं एव ब्राह्मण काल	1500–800 ई.पू.
वेदांग ज्योतिष	500 ई.पू.
शुल्वसूत्र	500 ई.पू. और बाद का
महाभारत और रामायण	200 ई.पू.–200 ई.

1950 में दक्षिण एशिया में विज्ञान के इतिहास पर आयोजित एक संगोष्ठी में ये तिथियां स्वीकृत की गई थीं.

ऐसा कहा जाता है कि वैदिक आर्यों ने दूसरी सहस्त्राब्दी ई.पू. के आरंभिक वर्षों में भारतीय उपमहाद्वीप में प्रवेश किया था और वे संस्कृत भाषा को अपने साथ लेकर आए थे. यद्यपि हाल के कुछ ऐसे मत भी हैं, जिन्होंने संस्कृत भाषा और वैदिक काल की उपस्थिति इससे भी पहले स्थापित करने का प्रयत्न किया है, परंतु यह ज्ञात है कि वैदिक संस्कृति की मौखिक परंपरा को चारों वेदों– *ऋग्वेद*, *यजुर्वेद*, *सामवेद* और *अथर्ववेद* में लिपिबद्ध किया गया था. बल्कि अपने मूलग्रंथों (संहिताओं) और पूरक ग्रंथों (ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिषदों) के साथ कई वैदिक शाखाएं भी थीं. इनमें गणितीय विषय–वस्तु का स्वरूप मुख्यतः संख्यात्मक है.

मनुष्य के हाथों में 10 अंगुलियां होने के कारण संभवतः वैदिक लोगों द्वारा गिनती के आधार के रूप में 10 का उपयोग किया गया था. संख्याओं के संस्कृत शब्द दशमलव पद्धति पर गढ़े गए हैं. *ऋग्वेद* में दशगुणोत्तर पद बहुतायत से पाए जाते हैं, जैसे दस– दश, शत्– सौ, सहस्त्र– हज़ार और अयुत्– दस हज़ार.

वैदिक महर्षि मेधातिथि द्वारा 1012 तक की सरल गणना के लिए एक निश्चित दशमलव श्रेणी विकसित की गई थी. इस उद्देश्य के लिए आवश्यक 13 शब्द हैं, एक, दश, शत्, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत (10^6 या दस लाख), अर्बुद, न्यर्बुद, समुद्र, मध्य, अंत और परार्द्ध (10^{12}).

10 को आधार मानकर वैदिक भारतीयों ने दशमलव पैमाने की खोज की. अंकों को निर्दिष्ट करने के लिए उन्होंने अंको का नामकरण किया.

- **एक** (1) **द्वि** (2) **त्रि.........** (3) **नव** (9)
- **दश** (10) **विंशति** (20) **त्रिंशत.......** (30) **नवति** (90)
- **शत** (100) **सहस्र** (1000) **अयुत.......** (10000)

गिनती

वैदिक साहित्य की कई रचनाओं में इसके बार–बार उल्लेख से स्पष्ट होता है कि यह सूची काफ़ी लोकप्रिय थी. अधिक व्यापक उपयोग के लिए बाद में निम्नलिखित सात पद और जोड़े गए– उसस (1013), व्युस्ति, उदेस्यत, उद्यत, उदित, सुवर्ग और लोक (10^{19}). अनेक संहिताओं में सरल भिन्न 1/2 (अर्द्ध), 1/3 (तृतीया), 1/4 (पद), 1/8 (शफ), 1/12 (कुष्ठ) और 1/16 (कला) पाए गए हैं, जबकि यौगिक भिन्न 3/4 (त्रिपद) *ऋग्वेद* में मिलते हैं.

अनेक श्रेणियां भी वेदों में पाई गई हैं – [1,3,5,7_ _ _ _], [19,29,39 _ _ 99], [2,4,6, _ _ 18, 20 _ _ 100], [4,8,12,16_ _ 96,100] और [,5,10,15_ _ _ 100]. कुछ विद्वानों का अनुमान है कि *अथर्ववेद* में प्रयुक्त शब्द 'क्षुद्र' शून्य को दर्शाता है, जबकि रिक् और अंरिक् क्रमशः धनात्मक और ऋणात्मक संख्याओं को दर्शाते हैं.

उनके उपयोग के संदर्भ से यह स्पष्ट है कि वैदिक रेखागणित का उद्भव और विकास अनेक अनुष्ठानों को संपन्न करने में वेदियों तथा अग्नि या चितियों के निर्माण से संबद्ध है. तीन पवित्र अग्नियां थीं– वर्गाकार आकृति की *आहवनीय*, वृत्ताकार या वर्गाकार आकृति की *गर्हपत्य* और अर्द्धवृत्ताकार आकृति की *दक्षिण*. इन अग्नियों की परंपरा अवश्य ही *ऋग्वेद* से भी प्राचीन है. किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए संपन्न किए जाने वाले अनुष्ठानों के लिए *कृष्ण यजुर्वेद* में, जिसे *तैत्तिरीय संहिता* भी कहते हैं, निम्न चितियां निर्धारित हैं–

प्रयोग चिति (समद्विबाहु त्रिभुज)– शत्रु के आक्रमण को निष्फल करने के लिए
उभयतः प्रयोग (समचतुर्भुज)– शत्रु के आक्रमण से रक्षा के लिए
रथ चक्र (वृत्ताकार)– शत्रु पर विजय के लिए
परिशय्य (संकेंद्री वृत्त)– भूमि प्राप्त करने के लिए
द्रोण (गर्त, वर्ग या वृत्त)– भोजन प्राप्ति के लिए
श्मशान (समलंब चतुर्भुज)– पूर्वजों के निवास, पितृलोक में जाने के लिए
छंदस चिति (छंदों से निर्मित)– पशुओं की प्राप्ति के लिए और
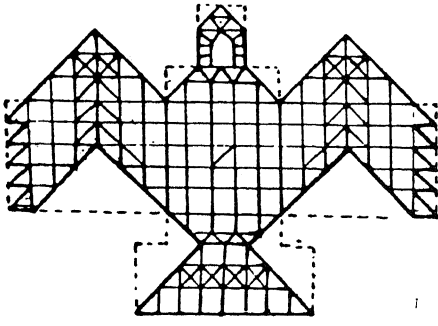
श्येन–चिति

श्येन चिति (बाज़ की आकृति)– मृत्यु पश्चात स्वर्ग में जाने के लिए, क्योंकि बाज़ अपनी ऊंची उड़ान के लिए जाना जाता है.

इनमें से अंतिम चिति का निर्माण सबसे जटिल था और यह कई प्रकार की थी.

महावेदी का आकार एक समलंब चतुर्भुज था, जिसकी समानांतर भुजाएं (24 इकाई और 30 इकाई लंबी) 36 इकाई की दूरी पर थीं. इसकी रचना *तैत्तिरीय संहिता* के साथ ही *शतपथ ब्राह्मण* में दी गई है, जिसमें वेदी को बढ़ाने का समाधान भी है, यदि उसका क्षेत्रफल एक वांछित अनुपात में बढ़ाया जाए. ग्रंथों में रेखागणित के निश्चित तथ्यों की विवेचना से प्रतीत होता है कि लोगों को पाइथागोरस प्रमेय और त्रिक अंकों (तीन अंक a,b,c, पाइथागोरियन त्रिक अंक होते हैं, यदि $a^2+b^2=c^2$) का ज्ञान था. शतपथ ब्राह्मण में एक आयत को समान क्षेत्रफल के समलंब में बदलने की विधि दी गई है. वस्तुतः, इस ग्रंथ में (जिसे पुरातन भारतीय संस्कृति का विश्वकोश माना गया है) यथार्थ विज्ञान के संबंध में बहुत सी जानकारी दी हुई है. इसमें समय का सूक्ष्म विभाजन, जैसे, मुहूर्त (एक दिन का 1/30वां भाग) को बारीकी से दर्शाया गया है आरण्यक और उपनिषद दार्शनिक ग्रंथ हैं, परंतु वे लौकिक ज्ञान को आध्यात्मिक ज्ञान का सहायक मानते हैं.

वेदांग युग या सूत्रकाल (800–200 ई.पू.)

वेदों को ईश्वरीय उत्पत्ति माना गया है. उनसे निकट से जुड़े हुए छह वेदांग हैं, अर्थात शिक्षा (ध्वनि विज्ञान), कल्प (विधि–विधान), व्याकरण, निरुक्त (शब्द व्युत्पत्ति), छंदस (छंद शास्त्र या पिंगल) और ज्योतिष. मानव लिखित ये ग्रंथ उन भाष्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो वेदों को सही ढंग से समझने, पाठ करने और उनकी व्याख्या करने में मदद करते हैं. उस समय प्रचलित मौखिक वैदिक ज्ञानार्जन पद्धति के अनुरूप ही ये रचनाएं अधिकांशतः सूत्रबद्ध की गई थीं, जिन्हें विषय–सामग्री को कंठस्थ करने में सुगमता की दृष्टि से संक्षिप्त रखा गया था.

कल्पसूत्रों (800 ई.पू.–200 ई.पू.) को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है– *श्रौत, गृह्य और धर्म. श्रौतसूत्र* विविध वैदिक अनुष्ठानों और यज्ञों की विधियों को सुव्यवस्थित करते हैं. इस तरह ये यज्ञ–भवन ही आर्य–संस्कृति और विज्ञान की धर्मसभाएं थे. *श्रौतसूत्र* का अंतिम भाग *शुल्वसूत्र* है, जिसमें विविध प्रकार की वेदियों और चितियों को बनाने का गणितीय ब्योरा दिया गया है. वैसे *शुल्वसूत्र* स्वतंत्र रूप से उपलब्ध रहे हैं. ये विश्व की सबसे प्राचीनतम रेखागणितीय पुस्तकें हैं. दर्जनों ऐसे ग्रंथों में *बौधायन* (सबसे पुराना), *अपस्तंभ, कात्यायन* और *मानव* मुख्य हैं.

शुल्वसूत्रों में विभिन्न स्थितियों में वर्गों, आयतों, त्रिभुजों, समलंब चतुर्भुजों, समानांतर चतुर्भुजों और पंचभुजों की रचना–विधियां दी गई हैं. अनेक ज्यामितीय प्रमेयों का स्पष्ट प्राक्कथन है या उनके निष्कर्ष रचना–विधियों में अंतर्निहित हैं. उदाहरणार्थ, यह ज्ञात था कि समचतुर्भुज के विकर्ण एक–दूसरे को समकोण पर द्विभाजित करते हैं. फिर भी, यह याद रखा जाना चाहिए कि प्राचीन भारत में कुछ स्वयंसिद्ध अभिगृहीतों पर प्रभावशाली संरचना खड़ी करके गणित का विकास करना उद्देश्य नहीं था.

आरंभिक भारतीय अंक

ब्राह्मी अभिलेख (300 ई.पू.)	[illegible]
ग्वालियर अभिलेख (870 ई.पू.)	[illegible]
देवनागरी अभिलेख (1100 ई.पू.)	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ०
आधुनिक	1 2 3 4 5 6 7 8 9 0

तथापि स्वयंसिद्ध न होने के बावजूद, वैदिक रेखागणित प्रमाणित किया जा सकता था और वास्तव में *शुल्वसूत्रों* में अनेक रचना–विधियों के प्रमाण अंतर्निहित थे. 2 के वर्गमूल के लिए शुल्वमान 577 / 408 सचमुच विलक्षण है.

भाषाविज्ञान भारत में पूर्णतः सुव्यवस्थित प्राचीनतम विज्ञान था. पाणिनी का व्याकरण ग्रंथ *अष्टाध्यायी* (600 ई.पू.) तकनीकी कुशलता का श्रेष्ठतम उदाहरण है और वैज्ञानिक परिशुद्धता तथा पूर्णता की उनकी प्रतिभा को दर्शाता है. उनकी तकनीक आधुनिक गणित, कंप्यूटरों, और प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र जैसे विज्ञानों में प्रयुक्त प्रविधियों से तुलनीय है. उनका भाषिक शून्य (लोप), रिक्त स्थान या स्थिति के निर्माता के रूप में प्रयुक्त होता है. उदाहरणार्थ, संयोजनीय क्रिया 'अत्ति' (खाता है), क्रियार्थक धातु अद् (खाना) से सप (अ) के लोप होने से इस तरह बनती है :

अद्+ति = अद्+सप+ति
= अद+(अ)+ति = अद+0+ति = अत्ति
(व्याकरण नियम के अनुसार द त में बदल जाता है)

संभवतः भाषाई शून्य के विचार ने बाद में गणितीय शून्य के विकास को प्रभावित किया.

वैदिक रेखागणित की ही तरह धार्मिक उद्देश्यों के लिए आकाशीय विज्ञान की भी आवश्यकता थी. वैदिक काल में खगोल विज्ञान का विकास विभिन्न अनुष्ठानों के लिए निर्धारित तिथियों (चंद्र तिथियों) और समय ज्ञात करने के लिए हुआ. लागध का *वेदांग ज्योतिष*, वैदिक खगोल विज्ञान की एक पुस्तिका है. इसका काल विवादास्पद है, परंतु उसमें दर्ज घटनाएं लगभग 1200 ई.पू. के समय का संकेत देती हैं. ज्योतिष का एक और प्रारूप *वेदांग* है, जिसका श्रेय शेष को जाता है. किंतु *अथर्वन ज्योतिष* बाद में लिखी गई एक अलग प्रकार की रचना है.

वेदांग ज्योतिष का पंचांग, पांच वर्षीय चक्र (युग) पर आधारित है, जिसमें 62 चंद्र मास और 1830 दिन होते हैं. इस ग्रंथ से पता चलता है कि उस समय के भारतीय, अंकगणितीय संगणनाएं सुगमता से कर

लेते थे. ग्रंथ में पाई गई उक्ति, 'गणितम मूर्धनि स्थितम' (वैदिक विज्ञानों में गणित सबसे ऊपर है) से स्पष्ट है कि गणित को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता था.

वैदिक छंद–शास्त्र का सहायक विज्ञान, छंदों को सुमधुर और लयबद्ध करने से संबंधित है. पिंगल के *छंद सूत्र* (लगभग 200 ई.पू.) को एक वेदांग ही माना गया है, यद्यपि यह वैदिक के अलावा अवैदिक छंदों से संबंधित बाद की रचना है. इसका गणितीय महत्त्व इस तथ्य में है कि इसमें क्रमचय और संचय की परिकल्पना पर सामग्री है. विषय को छह प्रकार के अभिनिश्चयों में प्रतिपादित किया गया है, जिनमें एक स्थिति में सभी परिवर्तनों की खोज और किसी ख़ास परिवर्तन के क्रमांक की गणना शामिल है. पिंगल की a^n की गणना विधि से ज्ञात होता है कि शून्य के चिह्न का तब उपयोग होता था.

बौद्ध तथा जैन विचारधारा (600 ई.पू. से 300 ई. तक)

ईसा से छठी शताब्दी पूर्व में वैचारिक क्रांति के फलस्वरूप कुछ नए मत उभर कर आए. बौद्ध धर्म गौतम बुद्ध के दर्शन और उपदेशों पर आधारित था. इसका धार्मिक साहित्य पाली में लिखित तीन पिटकों– (पिटारियों) *विनय, सुत्त* और *अभिधम्म* में है. *विनय पिटक* संख्यान (अंक गणित) को एक उत्कृष्ट कला मानता है. कच्चायन के पाली व्याकरण में, दशगुणोत्तर संख्याओं के *कोटि* (10^7) तक और इसी क्रम में *असंख्येय* (10^{140}) तक के नाम दिए हुए हैं. बौद्ध धर्मावलंबियों ने विश्व की सबसे बड़ी, 60 दशगुणोत्तर पदों की सूची निर्मित की, जिसमें *महाबलक्ष* (10^{58}) और *असंख्यम* (10^{59}), अंतिम दो हैं. दुर्भाग्यवश कुछ मध्यवर्ती पद बहुत पहले भुला दिए गए.

ललितविस्तार (ई.पू. प्रथम शताब्दी) में गणितज्ञ अर्जुन और राजकुमार गौतम के बीच हुआ संवाद दिया गया है, जिसमें गौतम ने *तल्लक्षण* (1053) तक की शतांश गणना श्रेणी के अपने ज्ञान का प्रदर्शन किया और आगे की आठ शृंखलाओं, 10^{421} तक का उल्लेख किया, जो एक विशाल संख्या है. अनुक्रम संरचना सुसंगत है.

दिलचस्प बात है कि *ललितविस्तार* में पाई गई 64 *लिपियों* की सूची में दो गणितीय लिपियां, *संख्यालिपि* और *गणनालिपि* शामिल हैं. लंबाई की सूक्ष्म इकाई *परमाणु रज* तक जाती है, जिसकी 7^{10} एक अंगुली की चौड़ाई है. *शून्यवाद* का बौद्ध तत्त्वज्ञान एक विचार का संकेत देता है:

$$[\ldots [\{(s-x)-y\}-z] \ldots]$$

यह विचार उपरोक्त समीकरण के गणितीय शून्य के तुल्य है, जहां कोई वस्तु या 's' समूह x, y, z घटकों से बना है.

जैन धर्म में, ऋषभनाथ से महावीर तक (लगभग 500 ई.पू.) 24 तीर्थंकरों का उल्लेख है, जिनके बाद 11 *अंगों,* 12 *उपांगों,* इत्यादि के रूप में जैन विधान संकलित किए गए. परंतु वर्तमान विधान भिन्न तिथियों के बाद के संस्करण हैं. धर्म साहित्य *अनुयोग* कहलाने वाले चार वर्गों में विभाजित है, जिनमें से गणितीय विज्ञान को समर्पित एक *करणानुयोग* या *गणितानुयोग* है. गणित को अपने धार्मिक सिद्धांतों का अनिवार्य अंग मानने की अनूठी विशिष्टता जैनियों में है. उनका विश्वास है कि गणित निर्णायक मोक्ष की प्राप्ति और एकाग्रता व चिंतन के संवर्धन में मदद करता है.

जैनों ने वैदिक और बौद्ध धर्म के ब्रह्मांड के स्वरूप को समुद्रों और भूमि के असंख्य संकेंद्रित वलयों तक विस्तार दिया था, जिनकी अनुक्रमिक चौड़ाइयां हर बार दुगुनी हो जाती थीं.

उत्तराध्यन सूत्र में a^n को 12वें घातांक तक ज्ञात किया गया और *अनुयोगद्वार सूत्र,* संख्याओं के क्रमिक वर्गों और वर्गमूलों से संबंधित है. इन विषयों की उनकी विवेचना यह दिखाती है कि पूर्णांकों और भिन्नीय घातांकों के लिए बने नियमों से वे भलीभांति परिचित थे.

$$a^m \times a^n = a^{m+n}\;;\;(a^m)^n = a^{mn}$$

जैनों की उच्च कल्पनाशक्ति, समय के दोनों ही मापों, सूक्ष्म और स्थूल, में प्रतिबिंबित होती है. $(84{,}00{,}000)^{36}$ वर्षों के एक काल को *ज्योतिष करंडक* में *शीर्षप्रहेलिका* कहा गया है.

जैन गणित की एक अनूठी विशेषता *अनंत* का विस्तृत वर्गीकरण और उसकी दार्शनिक विवेचना है. संख्यात्मक अनंत (गणनानंत) को मिलाकर 11 प्रकार के अनंतों का उल्लेख है. संख्याओं की जैन प्ररूपविद्या की 21 श्रेणियां हैं. बी. दत्ता के अनुसार, उनका उच्चतम गणनीय अंक, *उत्कृष्ट–संख्यात,* अलेफ़–नॉट अंक से तुलनीय है, जो आधुनिक गणित में अगणनीय समूह के घात को निर्दिष्ट करता है.

महाकाव्यों और सिद्धातों का पूर्व–शास्त्रीय काल (200 ई.पू.–320 ई.)

रामायण और *महाभारत,* ये दोनों महाकाव्य, भारतीयों के विचारों और कार्यों को 2000 से भी अधिक वर्षों से प्रभावित करते आ रहे हैं. *रामायण* की रचना आदिकवि वाल्मीकि ने की थी. इसकी गणना श्रेणी महायुग (10^{60}) तक है और राम की सेना की विशालता दर्शाने के लिए प्रयुक्त की गई थी. श्रेणी का मूलांक एक लाख है.

सर्वज्ञान–कोश जैसे विशाल महाकाव्य *महाभारत* के अनुसार, 'जो इस महाकाव्य में नहीं है, वह और कहीं भी पाया नहीं जा सकता.' निःसंदेह यह दावा भारतीय विज्ञानों पर लागू नहीं है. कौटिल्य का *अर्थशास्त्र,* भारतीय राजनीतिक सिद्धांतों और प्रशासकीय व्यवस्थाओं पर एक विस्तृत ग्रंथ है, जिसमें सभी प्रकार की इकाइयों के साथ मापविद्या शामिल है. इसमें सूर्यघड़ी की कील की छाया की लंबाई की सहायता से दिन का समय ज्ञात करने की विधि दी गई है.

ईस्वी सदी के प्रारंभ में विकसित संख्याओं के स्थानिक मान की भारतीय दशमलव प्रणाली, वैदिक दशमक गणनाओं और अशोककालीन संख्याओं के साथ व्याकरण तथा दार्शनिक सिद्धांतों में शून्य की अवधारणा की वैचारिक पराकाष्ठा है. ब्राह्मी लिपि के समान ही संख्याओं के स्थानिक मान निकालने की दशमलव प्रणाली का आविष्कार भी एक सुविचारित क़दम था. यद्यपि इस वैज्ञानिक उपलब्धि, जो संभवतया विश्व को भारत की महानतम देन है, की सही तिथि और स्थान कभी भी ज्ञात नहीं हो सकेगा. स्थानिक मान निकालने की इस पद्धति के पहले से उपयोग में किए जाने के प्रमाण वसुमित्र (प्रथम शताब्दी) और यवनेश्वर (149) के लेखों और जैन रचनाओं, जैसे *अनुयोगद्वार सूत्र, परिकर्म, समता कम्म पामज्या* और बहुत–सी अन्य रचनाओं में मिलते हैं. परंतु जीवन के अन्य क्षेत्रों (जैसे पुरालेखशास्त्र) में इस पद्धति के उपयोग की पैठ व विस्तार अपेक्षाकृत कम थे.

ज्या (साइन) के नाम से मूलभूत त्रिकोणमितीय फलन का आविष्कार, विश्व गणित को भारत का दूसरा महान योगदान है. खगोलीय वृत्त पर ग्रहों की स्थिति के संबंध में खगोलशास्त्र पर परिचर्चाओं से इसकी प्रेरणा मिली थी. बेहतर भारतीय *ज्या* ने न केवल यूनानी *जीवा* (कॉर्ड) को अपदस्थ किया (जैसे कि भारतीय अंक प्रणाली ने दूसरी प्रणालियों का स्थान लिया), बल्कि पूर्णतः विकसित त्रिकोणमिति के विज्ञान का आविर्भाव भी किया.

प्राचीनकाल में भारत में गणितीय खगोलशास्त्र की अनेक विचारधाराएं थीं. उनका विकास मुख्यतः भिन्न खगोलीय मापकों, सिद्धांतों और प्रणालियों को अपनाने के कारण हुआ था. अनेक पारंपरिक संस्कृत ग्रंथ (*सिद्धांत* कहलाने वाले) आज भी उपलब्ध हैं. ये *सूर्य, पितामह* (या ब्रह्मा), *वशिष्ठ, पुलिश, रोमक* (रोमस) और *सोम* के नामों से संबद्ध हैं. बहुतसा गणित जैसे, त्रिकोणमितीय तालिकाएं और संबंधित सूत्र इनमें मिलते हैं. परंतु इन्हें *अपौरुषेय* रचनाएं माना गया है और इसलिए इनकी तिथियां अत्यधिक अनिश्चित हैं. उनमें से अधिकतर मूल स्वरूप में उपलब्ध नहीं हैं और कुछ विभिन्न रूपांतरों में उपलब्ध हैं. वराहमिहिर (छठी शताब्दी ई.) ने *सूर्य, वशिष्ट, पुलिश, रोमक* और *पैतमा* सिद्धांतों को साररूप में प्रस्तुत किया है.इनके अन्य रूपांतर तथा *सोम सिद्धांत* बाद के संकलन हैं.

शास्त्रीय काल (320–750 ई.)

320 ई. में चंद्रगुप्त I द्वारा गुप्त साम्राज्य की नींव रखने के साथ ही भारतीय इतिहास का शास्त्रीय काल प्रारंभ हुआ. दो शताब्दियों तक चले गुप्त शासन ने जीवन के सभी क्षेत्रों में विकास देखा. कला, विज्ञान, संस्कृति, धर्म और साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में विशिष्ट उपलब्धियों से यह उल्लेखनीय था और सही अर्थों में भारत का स्वर्णकाल कहलाता है. गुप्त राजाओं द्वारा संरक्षित नालंदा (मगध में) विश्वविद्यालय ने एशिया के सभी हिस्सों से हज़ारों विद्यार्थियों को आकर्षित किया. पाठ्यक्रम में दर्शनशास्त्र (हिंदू और बौद्ध), खगोल–विज्ञान, गणित और चिकित्सा शास्त्र शामिल थे.

भारत के महान गणितज्ञ और खगोलशास्त्री आर्यभट्ट I (476–550), गुप्त साम्राज्य की राजधानी कुसुमपुर या पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) से जुड़े थे. 23 साल की आयु में ही उन्होंने चार भागों– *गीतिका, गणित, कालक्रिया* एवं *गोल* में *आर्यभटीय* की रचना की थी. यह प्राचीन स्वयंभू (ब्रह्म–सिद्धांत) पर आधारित एक शोध पुस्तिका है. इसकी गणितीय विषय–वस्तु की लघुता के बारे में भास्कर I (629 ई.) का कहना है कि विभिन्न विषयों पर मस्कारी, पूरन, मुद्गल और पुतना द्वारा लिखित अनेक गणितीय ग्रंथ लिखे गए थे और इसलिए इस संक्षिप्त रचना में आर्यभट्ट द्वारा सभी विषयों का समावेश कर पाना प्रत्याशित नहीं था. दुर्भाग्यवश इन ग्रंथों की अभी तक खोज नहीं हो सकी है और इनमें से कुछ आर्यभट्ट काल से पहले के हो सकते हैं. भास्कर I ने प्राकृत ग्रंथों से भी बहुत से गणितीय नियम उद्धृत किए हैं, जैसे, r त्रिज्या वाले गोले के आयतन के लिए :

$(-b) = a + b$; और $V = (9/2)\ r^3$

चूंकि ये प्राकृत में हैं, इसलिए प्राचीन भारतीय गणित के जैन मत के हो सकते हैं.

आर्यभटीय में नई विधियां और अचर–संख्याएं (लेखक के स्वयं के प्रेक्षण पर आधारित) हैं, जिन्हें संक्षेप में अभिव्यक्त किया गया है. इनके लिए आर्यभट्ट ने संख्याओं की एक नई वर्णांक पद्धति आविष्कृत की

थी. इस पद्धति ने उन्हें 24 ज्या अंतरों की उनकी सूची को सिर्फ़ एक द्विपदी सूत्र में व्यक्त करने में भी समर्थ किया. उनका कथन, 'यदि वृत्त का व्यास 20,000 इकाइयां हो, तो परिधि 62,832 इकाई के निकट होगी' दर्शाता है कि π का सबसे सही मान (3.1416) उस समय भारत में ज्ञात था. संसार में पहली बार आर्यभट्ट ने अनिर्धार्य समीकरण $by = ax \pm c$ को हल करने की सामान्य विधि दी. ये गणितीय उपलब्धियां उनकी महान मौलिकता को दर्शाती हैं.

आर्यभट्ट I ने, विशेषकर अपने घूमते अधिचक्रों और त्रिकोणमितीय विधियों के प्रयोग से भारतीय ज्योतिष में क्रांतिकारी परिवर्तनों का सूत्रपात किया. दुर्भाग्यवश परवर्ती रूढ़िवादी विद्वानों ने उनके पृथ्वी के दैनिक घूर्णन जैसे कुछ विचारों को स्वीकार नहीं किया. उन्होंने *आर्यभट्ट सिद्धांत* अथवा *अर्द्धरात्रिका तंत्र* (अर्द्धरात्रि में दिन प्रवृत्ति पर आधारित गणना विषयक, जिसके अनुसार दिन का आरंभ अर्द्धरात्रि से होता है) नामक ग्रंथ भी लिखा था, जो गुम हो चुका है और कुछ मुक्त छंद (जो किसी भी ग्रंथ का भाग नहीं हैं) भी लिखे थे.

उनके शिष्यों में लाटदेव महान विद्वान और खगोलशास्त्र के शिक्षक बने. दक्षिण भारत में अनेक टीकाकारों के भाष्यों द्वारा *आर्यभटीय* की लोकप्रियता झलकती है. उनके सम्मान में भारत के प्रथम अंतरिक्ष उपग्रह (1975 में छोड़ा गया) का नाम आर्यभट्ट रखा गया था.

भारतीय *ज्योतिष शास्त्र* में, विशेषकर *फलित ज्योतिष शास्त्र* में अवंति के वराहमिहिर (505–587) का नाम सर्वोच्च स्थान पर है. पूर्ववर्ती लेखकों के विचारों के समावेश के कारण उनके कार्य ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं. व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि के लिए फलित ज्योतिष पर उनकी विश्वकोशीय रचना *वृहद संहिता* है, जिसमें उनके कुछ गणितीय नियमों से परिचित होने का पता चलता है. इन नियमों में से एक द्विपद गुणांकों के संख्यात्मक मूल्यों की तालिका ज्ञात करने की विधि है. परंतु वे उस संरचना की ओर ध्यान नहीं दे पाए, जिसे बाद में मेरुप्रस्तर (या पास्कल का त्रिभुज) के नाम से जाना गया. अभी हाल ही में ताकाओ हायाशी ने प्रतिपादित किया कि वराहमिहिर ने विभिन्न सुगंधित द्रव्यों को मिलाने के लिए चार के क्रम के सर्वविकर्णीय जादुई वर्गों का उपयोग किया था. ज्योतिष पर वराहमिहिर का एकमात्र ग्रंथ, *पंच सिद्धांतिका* है, जिसमें पांच प्राचीन सिद्धांतों– *सौर* (जिसे वह सर्वश्रेष्ठ मानते थे), *पुलिश, रोमक, वशिष्ट* और *पैतमा* का सार है. चूंकि इन सिद्धांतों के मूल ग्रंथ खो चुके हैं, इसलिए अध्येताओं के लिए उनका यह सार एक वरदान है.

वराहमिहिर की मृत्यु के कुछ ही समय बाद ब्रह्मगुप्त (598–665) का जन्म हुआ, जो अपने युग के सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ थे. उन्होंने व्याघ्रमुख के शासनकाल में 628 में वृहद ग्रंथ *ब्रह्मस्फुट–सिद्धांत* की रचना की थी, जिनका शासन पश्चिम भारत में था और राजधानी भिल्लमाल (वर्तमान माउंट आबू, राजस्थान, के निकट भीनमाल) में थी. ग्रंथ का 12वां अध्याय गणित पर है और अंकगणित, बीजगणित और रेखागणित की व्याख्या करता है. ब्रह्मगुप्त की शैली सुसंबद्ध और संक्षिप्त है. उदाहरण के लिए मात्र एक श्लोक (संख्या 33) में निम्न सूत्र समाहित हैं.

$$(+a) \times (-b) = -ab = (-a) \times (+b);$$
$$(+a) \times (+b) = (-a) \times (-b) = +ab;$$
$$(-a) \times 0 = 0 \times (+b) = 0 \times 0 = 0.$$

चक्रीय चतुर्भुज और उसके विकर्ण

ये नियम न केवल ब्रह्मगुप्त की प्रतिभा के परिचायक है, अपितु यह भी सिद्ध करते हैं कि उस समय भारत गणित के क्षेत्र में काफ़ी उन्नत था. वह एक चक्रीय चतुर्भुज के क्षेत्रफल के लिए सममित सूत्र देने वाले संसार के पहले गणितज्ञ थे (श्लोक 21).

$$\text{क्षेत्रफल} = \sqrt{(s-a)(s-b)(s-c)(s-d)}$$
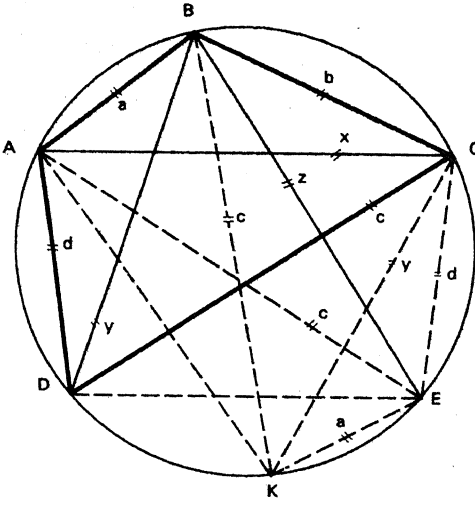
यहां a, b, c, d चतुर्भुज की भुजाएं हैं और s अर्द्ध–परिमाप है. सी.बी. बॉयर इसे संभवतः 'सर्वाधिक उत्कृष्ट परिणाम' मानते हैं, परंतु इससे भी अधिक सुंदर ब्रह्मगुप्त के चक्रीय चतुर्भुज के विकर्ण संबंधी पद हैं. ब्रह्मगुप्त ने *खंड–खाद्यक* (665) में समान और असमान अंतरालों, दोनों के लिए द्वितीय क्रम के अंतर्वेशन के नियम दिए हैं, जिनमें से एक वर्तमान में न्यूटन–स्टर्लिंग फ़ॉर्मूला के समतुल्य है. उनके ग्रंथों के अरबी अनुवादों द्वारा (जो बग़दाद में हुए) अरबवासियों ने पहली बार विकसित ज्योतिष विज्ञान सीखा.

भास्कर I, ब्रह्मगुप्त के समकालीन थे और उन्होंने 629 में वल्लभी में *आर्यभटीय* पर एक प्रामाणिक टीका लिखी. इससे पहले आर्यभट्ट I की शिक्षाओं का महत्त्व सथापित करने और उनके प्रसार के लिए उन्होंने *महाभास्करीय* की रचना की थी. इस ग्रंथ में एक उच्च परिष्कृत सूत्र है.

$$\text{Sin } A^\circ = 4A\,(180-A)/\,[40500-A\,(180-A)]$$

इस सूत्र द्वारा किसी भी कोण का ज्यामान (साइन–मान), बिना ज्या सारिणी के ज्ञात किया जा सकता है यही कारण है कि यह इतना लोकप्रिय हुआ था.

1881 में पेशावर (अब पाकिस्तान में) के पास बख्शाली गांव में प्राचीन भारतीय गणित पर एक पांडुलिपि पाई गई थी. इसकी तिथि विवादास्पद है, परंतु हाल ही में ताकाओ हायाशी ने उसका समय सातवीं शताब्दी का निश्चित किया है. इसका सूत्र है :

$$\sqrt{(a^2 + x)} = (a + x/2a) - e^2/2\,(a + e)$$

जहां $e = x/2a$ है. यह दर्शाया गया है कि सामान्य विधि की अपेक्षा इस सूत्र का बारंबार प्रयोग बेहतर परिणाम देता है.

शास्त्रीय काल में गणितीय विज्ञानों के कई अभिनव परिवर्तनों के संचयीकरण की आवश्यकता थी. आठवीं शताब्दी के मध्य में श्रीधर ने गणित में कुछ अत्यंत ही उपयोगी ग्रंथ लिखकर यह कार्य किया. उनकी *पाटी गणित,* प्राचीन भारतीय गणित पर एक आदर्श पुस्तक है. यह योग से *जीव–विक्रय* तक 29 *तर्क गणितों* और मिश्रणों से लेकर गणित के शून्य तक 9 *व्यवहारों* (निर्धारणों) से संबंधित है. उनकी 18 दसगुणी पदों की सूची मानक गणना माप बन गई थी (ध्यान रहे कि हिंदुओं के लिए 18 एक पवित्र संख्या है). उनके गणितीय नियम उपयुक्त उदाहरणों सहित हैं.

नव जैन रचनाओं से भास्कर II तक (750–1200)

राष्ट्रकूट वंश (लगभग 730–880 ई.) के समृद्ध शासनकाल में प्राचीन प्राकृत ग्रंथों पर लिखे वृहद भाष्यों से जैन गणित अत्यधिक समृद्ध हुआ. वीरसेन (लगभग 800 ई.) द्वारा *सतखंडगम* पर रचित टीका *'धवला'* में 72,000 श्लोक हैं तथा *कषायपाहुड़* की टीका *जयधवल* में 60,000 श्लोक हैं (जिनमें से 40,000 श्लोकों की रचना उनके शिष्य जिनसेन ने की थी). वीरसेन द्वारा $2n$ के रूप में अभिव्यक्त संख्याओं के लिए *अर्धच्छेद* में यह विधि है कि, किसी दी हुई संख्या N (2^x की तरह) में कितनी बार क्रमशः 2 का भाग दिया जाए कि वह संख्या 1 में लघुकृत हो जाए. जैसे $N=8$ लिया, अब $8/2=4$, $4/2=2$ और $2/2=1$ किया. यहां $8=N$, को 3 बार 2 से विभाजित किया गया है. इसलिए 8 का अर्धच्छेद 3 है, 2^n पर आधारित अंक रचना आधुनिक लघुगणक के तुल्य हैं, जिसका आधार 2 है और यह उस समय की दृष्टि से उल्लेखनीय है. *वर्गिता–समवर्गिता* की उनकी परिभाषा तेज़ी से अपसरित होती श्रेणी का उदाहरण है, $t_{n+1} = (t_n)^{t_n}$

t_1 एक पूर्णांक है, जो 1 से बड़ा है. जैन विद्वान लघुगणकों और घातांकों के नियमों के समान प्रक्रियाएं करने में सक्षम थे. वृत्त के चापकलन के लिए वीरसेन जिस नियम को उद्धृत करते हैं, वह π के मान 355/113 से उनके परिचय को दर्शाता है.

अमोघवर्ष I (814–878) के शांतिपूर्ण शासनकाल में, एक अन्य जैन गणितज्ञ महावीर ने 850 ई. के आसपास *गणितसार संग्रह* की रचना की. दक्षिण भारत में इसने एक पाठ्यपुस्तक का काम किया, जहां वल्लभ और वरदराजा ने इस पर टीकाएं लिखीं तथा पावलूरी मल्लण (11वीं शताब्दी) ने इसका तेलुगु में अनुवाद किया. यह घोषणा करते हुए कि 'जो कुछ भी तीनों लोकों में अस्तित्व में है, वह गणित से पृथक नहीं हो सकता', महावीर ने गणित की विश्वव्यापक उपयोगिता पर बल दिया. महावीर की इस विस्तृत रचना में अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित और क्षेत्रमिति का अध्ययन किया गया है. एक दिए गए भिन्न को इकाई भिन्नों के योग में बदलने हेतु वह एक व्यावहारिक नियम भी देते हैं. उनका अत्यंत विद्वत्तापूर्ण कथन कि 'एक ऋणात्मक संख्या स्वभाव से विषम वर्ग होती है, जिससे कोई भी (वास्तविक) वर्गमूल निकाला नहीं जा सकता', स्पष्ट करता है कि सदियों बाद औपचारिक रूप से परिभाषित होने से पहले काल्पनिक राशियों का ज्ञान था. वह द्विघाती स्वरूप में परिवर्तनीय सभी प्रकार के समीकरणों को हल करने में दक्ष थे और उन्होंने इसके अनेक उदाहरण भी दिए.

वह पहले भारतीय थे, जिन्होंने परावलय के परिमापन का अध्ययन कर उसे *आयत–वृत्त* नाम दिया था. उन्होंने एक गोलीय खंड का वक्र पृष्ठ निकालने का नियम दिया और शंकुछिन्नक ठोसों के आयतन के लिए ब्रह्मगुप्त के नियम का सरलीकरण किया. शुद्ध गणित में उनके योगदान में परिमेय आकृतियों की रचना शामिल है. उदाहरणार्थ, एक दिए गए परिमाप P के समकोण त्रिभुजों की परिमेय भुजाएं $p(m-n)/2m$, $pn/(m+n)$, और $p(m^2+n^2)/2m(m+n)$ होंगी.

नेमिचंद (10वीं शताब्दी) अगले प्रमुख जैन विद्वान थे, जो व्यापक अंतरानुशासनिक ज्ञान रखते थे. मनोरंजक और संक्षिप्त शैली से युक्त उनके ग्रंथों *त्रिलोकसार, गोम्मतसार* और *लब्धिसार* में उन्होंने ढेर सारी जानकारियां एकत्र कीं. गोविंदस्वामिन (लगभग 825 ई.), वटेश्वर (लगभग 900 ई.) और मुंजाल (लगभग 932 ई.) उस समय के विशिष्ट ग़ैर जैन विद्वान थे. जयदेव ने (लगभग 1000 ई.) अनिर्धार्य समीकरणों को हल करने की प्रसिद्ध भारतीय चक्रीय विधि का वर्णन किया था.

प्राचीन भारतीय गणित में महानतम नाम भास्कर II का है, जिनकी *लीलावती* (1150) इस विषय की सबसे लोकप्रिय रचना है और आज भी भारत के सभी संस्कृत विद्यालयों में पाठ्यपुस्तक के रूप में प्रयुक्त होती है. उन्होंने मानक *बीजगणित* की रचना भी की थी. शैक्षणिक उदाहरण देने के लिए दोनों ही रचनाओं में उदाहरण और मनोरंजनात्मक प्रश्न शामिल हैं. त्रिभुजों की समरूपता का प्रयोग कर उन्होंने पाइथागोरियन प्रमेय का अत्यंत संक्षिप्त प्रमाण दिया था. *खहर* के द्वारा, जिसे $a/0$ से परिभाषित और निर्दिष्ट किया गया है, जहां a घनात्मक है, अंकगणितीय अनंतता की एक सरल धारणा का परिचय कराया गया है. वह जानते थे कि $\propto \pm v = \propto$, जहां n परिमित है और $\propto$ उसका *खहर* अनंत है.

लीलावती का अंतिम अध्याय संचयन (गणितीय संचय) को समर्पित है, ऐसा विषय, जो गणित के आधुनिक इतिहासज्ञ एस. कुनॉफ़्फ़ के अनुसार, पश्चिम की अपेक्षा भारतीय गणित अधिक उन्नत था. भास्कर का *सिद्धांत–शिरोमणि* भारतीय खगोलशास्त्र का आदर्श ग्रंथ है. स्वरचित भाष्य में उन्होंने गोले के पृष्ठ और आयतन निकालने की अपरिष्कृत समाकलन विधि का प्रयोग किया था. त्रिकोणमिति पर उनकी पुस्तिका, *ज्योतपत्ति* में कई नवीनताएं सामने आईं, जो भारत में पहली बार प्रकट हुई थीं, जिनमें ज्या के लिए योग और अंतर के प्रमेय भी शामिल हैं. उनके ग्रंथों पर लिखे गए अनेकों भाष्यों और परवर्ती फ़ारसी अनुवादों से स्पष्ट होता है कि वे अत्यंत लोकप्रिय थे

उत्तर भारत में मध्यकालीन गणित (1200–1850)

1193 में मुहम्मद ग़ोरी के हाथों पृथ्वीराज चौहान की पराजय के बाद उत्तरी भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना हुई. तभी से कला और साहित्य में देशज संस्कृति तथा सृजनात्मक भावना का पतन प्रारंभ हुआ. मुस्लिम शासकों ने अरबी तथा फ़ारसी संस्कृति और विज्ञान को संरक्षण दिया. प्रमुख भारतीय खगोलशास्त्रियों को बहुधा मुस्लिम शासकों के शाही दरबारों की सेवा करनी पड़ती थी. अनंतदेव (भास्कर II के एक भाई का पोता), तब तक स्वतंत्र रहे देवगिरि के राजा सिंघना की सेवा में थे. 1222 के एक शिलालेख में, *ब्रह्मस्फुट–सिद्धांत* के चुनौतीपूर्ण 20वें अध्याय (संचय शास्त्र पर) पर उनकी टीका का उल्लेख है. ठाकुर फेरू (1265–1330) दिल्ली सल्तनत के दरबार में थे. उनकी विभिन्न रचनाओं में *गणित सार* शामिल है (प्राकृत में), जिसमें भारत में पहली बार माया वर्गों का विचारणीय प्रतिपादन किया गया है.

गणितीय मनोरंजनों में माया वर्ग सबसे पुराने हैं. एक माया वर्ग, पूर्णांकों की एक वर्ग रचना होती है जिसमें पंक्तियों, स्तंभों और विकर्णों का योग एक जैसा होता है. एक वर्ग जिसमें n श्रेणी के 1 से n^2 तक के क्रमिक पूर्णांक होते हैं, n कोटि का वर्ग कहलाता है.

1 से n^2 तक के पूर्णांकों का योग $n^2(n^2+1)/2$ है, इस प्रकार एक चमत्कारी वर्ग में प्रत्येक पंक्ति, स्तंभ और विकर्ण का योग $n(n^2+1)/2$ होगा. नीचे दिए गए उदाहरण तीन और चार कोटि के चमत्कारी वर्गों के हैं

8	1	6
3	5	7
4	9	2

16	3	2	13
5	10	11	8
9	6	7	12
4	15	14	1

1	35	4	33	32	6
25	11	9	28	8	30
24	14	18	16	17	22
13	23	19	21	20	15
12	26	27	10	29	7
36	2	34	3	5	31

नारायण का अचर संख्या 111 का माया वर्ग

नारायण पंडित की *गणित कौमुदी* (1356) हिंदू गणित की सर्वश्रेष्ठ रचना है, जो हर कसौटी पर खरी उतरती है. यह ज्ञात नहीं है कि इसके रचयिता कहां रहते और कार्य करते थे, परंतु पांडुलिपियों का वितरण यह दिखाता है कि वह शायद उत्तर भारत के थे. किसी भी संख्या के भाजकों या गुणनखंडों को निकालने के उनके नियमों में से एक, फ़्रांसीसी गणितज्ञ पियर द फ़र्मा द्वारा 1643 में पुनः खोजा गया. नारायण पंडित किसी वांछित अंक को निकालकर अंकगणितीय विधियों के परीक्षण के नियमों को देने वाले पहले भारतीय थे. उन्होंने कई प्रकार के प्रश्नों का अध्ययन किया. उदाहरणार्थ, उनका एक प्रश्न है, 'एक गाय प्रतिवर्ष एक बछड़ी को जन्म देती है और बछड़ियां स्वयं तीन वर्ष पश्चात जन्म देने लगती हैं. तो हे पंडित, बताओ 20 वर्ष में गाय द्वारा कितने बछड़े पैदा होंगे? (उत्तर 2,745)

क्षेत्रफल और परिमिति को संरक्षित रखते हुए रूपांतरणों की युगों पुरानी प्रथा ने भारतीयों को चक्रीय चतुर्भुज के तीसरे विकर्ण की अद्‌भुत खोज के लिए प्रेरित किया. नारायण पंडित ने इस विषय पर अध्ययन किया और वे इस सुंदर सूत्र को जानते थे, जिसमें चक्रीय चतुर्भुज के विकर्ण x, y, z क्षेत्रफल S और परित्रिज्या R के बीच का संबंध है–

$$R = xyz/4S$$

गणित कौमुदी की एक उल्लेखनीय विशेषता जटिल शृंखलाओं और संख्याओं के जाल (*अंक पाश*) का प्रयोग है. *सूची–पंक्ति* के सामान्य पद को निकालने का नियम एक बहुपदी विस्तार में सामान्य पद के गुणांक को निकालने के तुल्य है. रचना का अंतिम अध्याय चमत्कारी वर्गों पर है, जिनकी व्याख्या विस्तृत है और नई ऊंचाइयों को छूती है. ऐसा कहा जाता है कि चमत्कारी वर्गों को सबसे पहले भगवान शिव द्वारा मणिभद्र को सिखाया गया. नारायण पंडित ने बीजगणित पर भी एक ग्रंथ की रचना की थी.

अगली तीन शताब्दियां मुख्यतः गौण और व्याख्यात्मक कार्यों तक ही सीमित रहीं. 1370 में महेंद्र सूरी (फ़िरोज़ शाह तुग़लक़ के आश्रित) ने *यंत्रराज* नामक ग्रंथ लिखा, जो फ़ारसी सामग्री पर आधारित था. इसमें 90 ज्याएं एक सारणीबद्ध रूप में दी गई थीं, जो भारत में एक नई विशेषता थी. ज्ञानराज का *सिद्धांत सुंदर* (1503), आर्यभट्ट II का *महासिद्धांत* (16वीं शताब्दी) और नित्यानंद का *सिद्धांत राज* (1639) पारंपरिक पद्धति में लिखे गए थे. अकबर के शासनकाल में फ़ैज़ी (1587) द्वारा भास्कर की *लीलावती* का फ़ारसी में अनुवाद किया गया था.

कुछ विद्वानों ने अर्जित ज्ञान सामग्री को देशज रचनाओं के साथ मिलाकर संस्कृत में पारंपरिक शैली के उत्कृष्ट ग्रंथों की रचना की. मुनीश्वर का *सिद्धांत सार्वभौम* (1646) और कमलाकर का *सिद्धांततत्त्व विवेक* (1658) नई सैद्धांतिक रचनाओं (गणितीय खगोलशास्त्र पर पारंपरिक संस्कृत पुस्तिकाएं) के विशिष्ट उदाहरण हैं. मुनीश्वर एक बहुसर्जक लेखक थे और *लीलावती* पर उनकी टीका श्रेष्ठतम मानी जाती है. भारत में सभी सैद्धांतिक रचनाओं में कमलाकर की रचना सबसे उत्कृष्ट मानी गई है. इसमें

विविध विषयों की व्याख्या की गई है, जिनमें यज्ञों के लिए अति आवश्यक *अग्निकुंडों* की गणना और संरचना विधि भी सम्मिलित है.

जयपुर के महाराज जयसिंह के दिल्ली सल्तनत से अच्छे संबंध थे और उन्होंने ज्योतिष के मुस्लिम तथा यूरोपीय कार्यों की सहायता से भारत में ज्योतिषशास्त्र के सुधार और पुनरुत्थान के गंभीर प्रयास किए. उनके प्रमुख पंडित जगन्नाथ सम्राट ने यूक्लिड के *ऐलीमेंट्स* का *रेखागणित* (1718) के रूप में और टॉलेमी के *अलमागेस्ट* का *सिद्धांत–सम्राट* (1732) के रूप में अनुवाद किया, दोनों ही *अल–तुसी* (13वीं शताब्दी) के अरबी अनुवादों पर आधारित थे. उन्होंने *सिद्धांतसार–कौस्तुभ* की रचना भी परंपरागत पद्धति पर की. कुछ वर्षों बाद जयपुर में ही जैन विद्वान टोडरमल ने नेमिचंद की रचनाओं पर टीकाएं लिखीं.

कलकत्ता मदरसा (1781 में स्थापित), एशियाटिक सोसाइटी (1784 में स्थापित) और बनारस संस्कृत महाविद्यालय (1791 में स्थापित) का उद्देश्य आधुनिक पद्धति से पारंपरिक कलाओं और विज्ञान का अध्ययन करना था. इस प्रकार, 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में शैक्षिक परिदृश्य सचमुच विशिष्ट था, क्योंकि जिस समय भारतीय पाश्चात्य विज्ञान को सीखने का प्रयत्न कर रहे थे, यूरोपीय भी समृद्ध भारतीय कला, विज्ञान और साहित्य का गंभीरतापूर्वक अध्ययन कर रहे थे. डेविड हेअर, राममोहन राय और सेरामपुर के मिशनरियों ने पाश्चात्य ज्ञान को भारत में लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की. गुलाम हुसैन जौनपुरी का *जामी–इ–बहादुर ख़ानी* (1833) फ़ारसी में गणितीय विज्ञान पर एक विश्वकोश जैसा ग्रंथ है. कलन पर रामचंद्र की रचना (1850) को भारत के बाहर भी सराहा गया (उनकी व्याख्या बीजीय थी).

आर्यभट्ट काल का परवर्ती भाग (1400–1850)

भौगोलिक दूरी के कारण दक्षिण भारत की परंपरागत संस्कृति उत्तर भारत की तुलना में मुग़लों के प्रभाव से अपेक्षाकृत कम प्रभावित हुई. लगभग 1400 से 1850 के बीच दक्षिण में समृद्ध हुए उत्तर आर्यभट्ट कहलाने वाले काल में भारतीय रचनात्मक मानस ने देशज गणित में नई ऊंचाइयां प्राप्त कीं.

संगमग्राम (कोचीन के पास वर्तमान में इरिंजलाकुड) के माधव इस काल के पहले महान विद्वान थे. निम्न गणितीय नियम में वह सामान्य बुद्धमान व्यक्तियों की ओर संकेत देते हैं–

'नौ निखर्व (अर्थात नौ के बाद 11 शून्य) व्यास के एक वृत्त में, बुद्धिमान व्यक्तियों द्वारा परिमाप का माप 2827, 4333, 88233 लिया गया है.'

यह π = 2827, 4333, 88233 / 9 $\times$ 10^{11} मान की ओर सूचित करता है.

जो दशमलव के बाद 11 अंकों तक सही मान देता है और सभी प्राचीन और मध्ययुगीन भारतीय मानों में श्रेष्ठ है. इसने उन्हें एक बेहतर साइनस–टोटस $R = 3437' 44'' 48''$ पाने में भी समर्थ बनाया, जिसके लिए उन्होंने *कटपयादि* पद्धति में व्यक्त 24 ज्याओं की सारणी दी है.

ज्यामितीय सूत्रों, त्रिकोणमितीय समिकाएं और द्वितीय क्रम के ज्या अंतरों पर आधारित सारणीबद्ध ज्या की गणना की पारंपरिक विधियों की तुलना में माधव ने घात श्रेणी का उपयोग कर सारणी बनाने की एक कारगर विधि खोजी. वे ज्या और कोज्या की घात श्रेणियों को बनाने के नियमों को जानते थे, जो शताब्दियों बाद यूरोप में फिर से खोजी गई. वह $\pi/4 = 1 - 1/3 + 1/5 - 1/7 + \ldots$ श्रेणी को भी

जानते थे, जो कि प्रायः जर्मन गणितज्ञ गॉटफ़्रीड विलहेल्म लीबनिज़ के बाद, जिन्होंने इसे 1673 में पुनः खोजा था, लाइबनिट्ज़ श्रेणी के नाम से जानी जाती है. इस श्रेणी का उपयोग कर भारतीयों ने अधिक सामान्य श्रेणियों की तुल्य श्रेणी ज्ञात कर ली थी.

$$\arctan x = x - x^3/3 + x^5/5 - \ldots$$

इसका श्रेय स्कॉटिश गणितज्ञ और खगोलज्ञ जेम्स ग्रिगोरी (1638–1675) को दिया जाता है.

उपरोक्त वर्णित विविध उपलब्धियों को सूचित करने वाले माधव के मौखिक सूत्रों का ज़िक्र आर्यभट्ट काल के विद्वानों, जैसे नीलकंठ, सोमयाजी (लगभग 1500) और शंकर वरियर (लगभग 1530) ने किया है. *महाज्ञानयान प्रकार* (महा ज्याएं गणना करने की विधि) के अज्ञात लेखक ने इस उद्देश्य के लिए घात–श्रेणी विधि दी है और इसका श्रेय माधव को या उनके शिष्यों या अनुयायियों को दिया है. उनकी *चंद्रवाक्यानि* (चंद्रमा की स्थितियों की जानकारी देने वाले पारंपरिक ग्रंथ की परिष्कृति), *स्फुटचंद्रप्ति, वेनवरोह* (1403) तथा *अगणित ग्रहचर* (1418), ये सभी खगोलशास्त्र की रचनाएं हैं.

अलत्तूर के परमेश्वर (लगभग 1360–1455) माधव के शिष्य थे. वह सौर–मंडल के एक उत्साही प्रेक्षक थे और उन्होंने एक नई खगोलीय पद्धति *दृग्गणित* आविष्कृत की थी. वह एक बहुकृतिक लेखक और भाष्यकार थे. *महाभास्करीय* पर गोविंदस्वामी द्वारा लिखे भाष्य पर परमेश्वर की विस्तृत टीकाओं में कई नए परिणामों, जैसे ज्या फलनों का तीसरे क्रम का *टेलर श्रेणी प्रसार* और *पुनरावृत्तीय प्रभाव सन्निकटन* के लिए आधुनिक व्युत्क्रम कोटिज्या (सेक) विधि से मिलती–जुलती विधियों का समावेश है. नीलकंठ की *ज्योतिर्मीमांसा* ऐतिहासिक रूप से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह तत्कालीन विविध भारतीय खगोलशास्त्रीय विधियों की विवेचना करती है. *आर्यभट्टीय* पर उनकी टीका न केवल व्याख्यात्मक है, अपितु उसमें कई व्युत्पत्तियां शामिल हैं. उदाहरणार्थ, यह सहजता से सिद्ध करती है कि द्वितीय क्रम ज्या का अंतर, ज्या के स्वयं के समानुपाती है. उनके *तंत्रसंग्रह* में गोले के अंदर से कार्यविधि का उपयोग कर गोलीय खगोल त्रिभुज के संपूर्ण हल प्राप्त किए गए हैं. गोले के अंदर से कार्य करने का अर्थ, गोले के अंदर प्रक्षेपित आकृतियों के अध्ययन से है, उन विशेषताओं की व्युत्पत्ति के उद्देश्य से है, जो गोले के पृष्ठ पर नियंत्रण रखती हैं. उनके शिष्य, शंकर वेरियर (1500–1560) ने तंत्र संग्रह पर दो व्याख्याएं लिखीं, जिसमें से बृहद् टीका, *युक्तिदीपिका* के नाम से जानी जाती है.

शंकर ने प्रसिद्ध पुस्तक *लीलावती* पर विस्तृत टीका *क्रियाक्रमवारी* की रचना भी की, जो उनकी मृत्यु के पश्चात अंततः महिपमंगल नारायण द्वारा पूरी की गई. *युक्तिदीपिका* तथा *क्रियाक्रमकारी* संस्कृत के सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं और उत्तर–आर्यभट्ट काल की उपलब्धियों के बारे में जानकारियों के भंडार हैं. पुतुमाना सोमयाजी की *कर्ण पद्धति* उत्तर–आर्यभट्ट काल की उपलब्धियों का अच्छा सारांश देती है. मालाबार के शाही परिवार के शंकर वर्मा (1838) द्वारा उनकी *सद्रत्नमाला* में इस परंपरा को जारी रखा गया. ईस्ट इंडिया कंपनी (मद्रास, कार्यालय) के चार्ल्स एम. व्हिश ने 1835 में एक शोध–पत्र प्रस्तुत कर उत्तर–आर्यभट्टीय उपलब्धियों की ओर आधुनिक विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया.

विश्वविद्यालयों की स्थापना से स्वतंत्रता तक (1857–1947)

1857 में भारत के तीन प्रमुख शहरों– कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता), मद्रास (वर्तमान चेन्नई) और बंबई (वर्तमान मुंबई) में विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई थी. 1830 के आसपास पहली बार प्रारंभ की गई

पाश्चात्य शैक्षिक पद्धति और वैज्ञानिक विधियां धीरे–धीरे सारे देश में फैल गईं. बनारस संस्कृत कॉलेज के बापूदेव शास्त्री (1821–1890) ने यूरोपीय गणित के अपने ज्ञान के लिए बहुत ख्याति अर्जित की. उन्होंने प्राचीन भारतीय मूलपाठों की आधुनिक व्याख्याएं भी प्रस्तुत कीं. उनके उत्तराधिकारी सुधाकर द्विवेदी (1855–1910) भी उतने ही योग्य साबित हुए. यूरोपीय ग्रंथों के अपने अध्ययन के आधार पर द्विवेदी ने आधुनिक विषयों, जैसे समीकरणों के सिद्धांत (1897) और कलन–अवकलन (1886) तथा समाकलन (1895), दोनों पर संस्कृत में पाठ्यपुस्तकें लिखीं. उनकी *गणकतरंगिणि* (1892) में उनके समय तक के पारंपरिक खगोलशास्त्रियों और गणितज्ञों के जीवन और कार्यों का उल्लेख है.

1907 में वी. रामास्वामी अय्यर और अन्य उत्साहियों, जैसे आर.पी. परांजपे ने, जो भारतीय वरिष्ठों में से एक थे, भारतीय गणितीय सभा की स्थापना *ऐनालिटिकल क्लब* के नाम से पूना (वर्तमान पुणे) में की. अगले ही वर्ष प्रतिष्ठित गणितज्ञ, वकील और शिक्षक सर आशुतोष मुखर्जी की पहल से *कलकत्ता मैथेमैटिकल सोसाइटी* की स्थापना हुई. उनके सक्रिय नेतृत्व में सोसाइटी और कलकत्ता विश्वविद्यालय ने भारत में गणित के सर्वांगीण विकास में ठोस योगदान दिया. श्यामदास मुखोपाध्याय 1910 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से पी.एच.डी उपाधि पाने वाले पहले भारतीय थे.

उत्तरी भारत में गणेश प्रसाद (1876–1935) अपने समय के सबसे विशिष्ट गणितज्ञ थे. उनके शोध के विषय थे, विभव सिद्धांत, गोलीय प्रसंवादी और फुरियर श्रेणी. उन्होंने दो बार कलकत्ता विश्वविद्यालय में काम किया, पहले व्यावहारिक गणित के रासबिहारी घोष प्राफ़ेसर के रूप में (1914–1917) और बाद में शुद्ध गणित के प्राफ़ेसर के रूप में (1923 के बाद से 1935 में उनकी मृत्यु तक). इस बीच वह बनारस में प्राफ़ेसर रहे, जहां उन्होंने *बनारस मैथेमैटिकल सोसाइटी* की स्थापना की (1950 में इसका नामकरण *भारत गणित परिषद* हुआ और इसका कार्यालय लखनऊ स्थानांतरित हुआ). गणित के इतिहास में उनकी गहरी रुचि का परिचय उनके अन्वेषक ग्रंथ *19वीं शताब्दी के कुछ महान गणितज्ञ : जीवनी और कार्य* (दो भाग, 1933, 1934; तीसरे भाग की पांडुलिपि गुम हो गई थी), से मिलता है. इस क्षेत्र में उनके प्रभाव को उनके शिष्यों विभूति भूषण दत्ता (व्यावहारिक गणित में डी.एस.सी.) और ए.एन. सिंह (शुद्ध गणित में डी.एस.सी.) के कार्यों में देखा जा सकता है, जिन्होंने संयुक्त रूप से प्रसिद्ध पुस्तक *हिंदू गणित का इतिहास* (दो भाग, 1935, 1938) लिखी. इसका तीसरा भाग उनकी मृत्यु के बाद शोध पत्रिका में प्रकाशित हुआ है.

इसमें कोई संदेह नहीं कि एक स्वशिक्षित प्रतिभा श्रीनिवास रामानुजन (1887–1920) भारत में जन्मे महानतम गणितज्ञ थे. बर्नोली अंकों (1911) पर प्रकाशित उनके शोध पत्र ने विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया, परंतु केंब्रिज विश्वविद्यालय के जी.एच. हार्डी ने उनकी असली योग्यता को पहचाना और उन्हें वहां आमंत्रित किया. 1914 में रामानुजन इंग्लैंड पहुंचे और उनके शोध कार्य के आधार पर केंब्रिज ने उन्हें स्नातक की उपाधि प्रदान की (जो उन्हें भारत में बिना परीक्षा उत्तीर्ण किए नहीं मिल सकती थी). 1918 में वह रॉयल सोसाइटी के सदस्य चुने गए. 1919 में गंभीर रूप से बीमार पड़ने के बाद वह भारत लौट आए.

बीमारी और निराशा के दौर में भी रामानुजन ने गणित में अपना एकनिष्ठ शोध जारी रखा. अंक विज्ञान में विभाजक फलनों और प्रतिरूपक फलनों के क्षेत्र में उन्होंने असाधारण योगदान दिया. हार्डी ने टिप्पणी की थी कि रामानुजन के कार्यों में गहरी और अजेय मौलिकता है और उनकी नोटबुकों की

श्रीनिवास रामानुजन

सामग्री का अर्थ निकालने में यूरोपीय गणितज्ञों को 50 वर्ष लगेंगे. मृत्यु के तीन माह पूर्व भी उन्होंने काल्पनिक थीटा फलनों पर उच्च कोटि का शोध कार्य किया. लेकिन उनका अंतिम रचनात्मक कार्य 1976 में ही प्रकाश में आया, जब ट्रिनिटी कॉलेज, कैंब्रिज में जी.ई. एंड्रयूज़ ने उनकी खोई हुई नोटबुक फिर से खोज निकाली.

भारत में रामानुजन के कार्य को टी. विजयराघवन, सर्वदमन चावला, एस.एस. पिल्लई और हंसराज गुप्ता जैसे कई ख्यात गणितज्ञों ने जारी रखा. केवल 18 वर्ष की आयु में (1925 में) चावला ने वॉन स्टैउट्स के प्रमेय को नए ढंग से सिद्ध किया और अगले 6 दशकों में 300 से भी अधिक सार्थक शोध आलेख प्रकाशित किए. भारत के विभाजन के पश्चात वह संयुक्त राज्य अमेरिका में जाकर बस गए. अनुसंधान को प्रोत्साहित करने हेतु इलाहाबाद (1930), बंगलोर (1934) और कलकत्ता (1935) में राष्ट्रीय विज्ञान अकादमियों की स्थापना की गई, जिनमें से कलकत्ता अकादमी को 1946 में दिल्ली स्थानांतरित कर दिया गया था. 1931 में भारतीय सांख्यिकी संस्थान (आई.एस.आई.) की स्थापना पी.सी. महालनोबिस द्वारा की गई. उनके कुशल नेतृत्व में गणितीय सांख्यिकी, ख़ासकर बहुचर विश्लेषण और अभिकल्पना सिद्धांत, जिनका आविर्भाव भारत में ही हुआ था, के क्षेत्र में तीव्र प्रगति हुई. 1936 में कलकत्ता विश्वविद्यालय में जब एफ़.एम. लेवी गणित के प्राध्यापक बने, तब गणित में अध्ययन और शोध के लिए कई नए क्षेत्र खुल गए. एस.एम. सुलेमान (1886–1941) ने आइंस्टीन के सिद्धांत के विकल्प के रूप में सापेक्षता का एक नया सिद्धांत प्रस्तावित किया और प्रकाश का एक नया सिद्धांत भी विकसित किया.

डी.आर. कापरेकर ने मनोरंजक संख्याओं के सिद्धांत में मौलिक योगदान दिया. बी.आर. सेठ (1907–1979) ने प्रत्यास्थता और प्लास्टिकता के क्षेत्र में विशिष्ट कार्य किया. 1940 में *हिल पुरस्कार* जीतने वाले पी. एल. भटनागर (1912–1976) ने प्लाज़्मा भौतिकी और चुंबक द्रव्य गति के क्षेत्र में योगदान दिया. 1943 में अताउल हाकिम डॉक्टरेट की उपाधि पाने वाले पहले भारतीय मुस्लिम बने, उनके शोध–प्रबंध का शीर्षक था, *द अरब्ज़ ऐंड मैथेमैटिक्स.* कानपुर के हरिश्चंद्र 20वीं शताब्दी के एक अन्य विशिष्ट गणितज्ञ थे. भौतिकी में पी.एच.डी. करने के बाद उन्होंने अपना ध्यान गणित पर केंद्रित किया और ली–बीजावली, प्रसंवादी विश्लेषण और अवकल समीकरणों के भव्य संश्लेषण में सक्रिय रहे. 1983 में प्रिंस्टन विश्वविद्यालय, अमेरिका में उनका निधन हो गया.

* * *

डॉ. आर.सी. गुप्ता इंप्रूव्मेंट ऑफ़ मैथेमैटिक्स टीचिंग, कलकत्ता के उपाध्यक्ष और भारत की मैथेमैटिक्स टीचर्स ऑफ़ इंडिया, चेन्नई के अध्यक्ष, भारत की राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के आजीवन सदस्य भी हैं.

कई प्रतिष्ठित पुस्तकों के लेखक और संपादक, डॉ. गुप्ता को अनेक सम्मान मिले हैं, जिनमें भारतीय विज्ञान परिषद द्वारा प्रदत्त विशिष्ट सेवा अवॉर्ड (1996), कुंद कुंद अकादमी इंदौर द्वारा अरहत वकन प्रथम पुरस्कार (1992), देवी सहाय मिश्रा स्वर्ण पदक (1957) और राजा शंकर सहाय स्वर्ण पदक (1956) शामिल हैं.

जन–संपर्क

दीपक मुखर्जी

किसी कंपनी, कॉर्पोरेशन या ऐसे ही किसी संगठन, जैसे सरकार या धर्मार्थ संस्था द्वारा किया जाने वाला मत–प्रबंधन (अथवा जनमत–प्रबंधन) जन–संपर्क कहलाता है. जन–संपर्क का इस्तेमाल सभी संगठनों के लिए (बल्कि कुछ व्यक्तियों के लिए भी) परमावश्यक है. जाने–अनजाने में हर कोई भिन्न–भिन्न जन समूहों से विभिन्न स्तरों पर संबंधित होता है. जन–संपर्क का उद्देश्य किसी इकाई को किसी विशिष्ट समूह के मत के अनुसार प्रस्तुत करना होता है. वाणिज्य के क्षेत्र में, किसी कंपनी के बारे में लोगों को जितनी अधिक जानकारी होगी, उतनी ही उस समूह विशेष को यह निर्णय लेने में आसानी होगी कि उस कंपनी के उत्पाद या शेयर ख़रीदे जाएं या नहीं. इसलिए, किसी भी ऐसे संगठन के लिए, जो जन समूह से प्रतिक्रिया या संसाधनों की प्राप्ति की अपेक्षा रखता है, आवश्यक है कि वह जन समूह से प्रत्यक्ष संवाद स्थापित करे और उनके निर्णय में सहायता करने के लिए उन्हें क़ानूनी तौर पर संभव सारी सूचनाएं सही रूप में पहुंचाए.

सूचनाओं की सत्यता तथा उनका क़ानून सम्मत होना जन–संपर्क के महत्त्वपूर्ण बिंदु हैं. सूचनाएं तो निरंतर प्रवाहित होती रहती हैं, चाहे वे मौखिक शब्दों के रूप में हों अथवा अख़बार या टेलीविज़न पर आकस्मिक संदर्भ के रूप में. ऐसी आकस्मिक सूचना अक्सर किसी कंपनी या मुद्दे के बारे में जनमत बनाने का कार्य कर देती है और यह सब संबंधित संगठन द्वारा किए जाने वाले जन–संपर्क करने के पहले ही हो जाता है. अधिकांशतः ऐसा अनिष्टकारी ख़बरों के प्रसार के मामले में होता है. त्रासदियां और दुर्घटनाएं हर एक को प्रभावित करती हैं. यदि एक वायुयान दुर्घटनाग्रस्त होता है, जिसमें सैकड़ों यात्री मारे जाते हैं, तो टिकट ख़रीदने वाली जनता के यह मान लेने की संभावना अधिक होती है कि दुर्घटना वायुयान कंपनी द्वारा सुरक्षा व्यवस्था में लापरवाही के कारण हुई. दुर्घटना के बाद एयरलाइन द्वारा अपनी सुरक्षा व्यवस्थाओं का ब्योरा प्रस्तुत करने तक बहुत देर हो चुकी होती है. एक प्रतिस्पर्द्धी बाज़ार में, जहां उपभोक्ताओं को अपनी पसंद की एयरलाइन चुनने की स्वतंत्रता है, एक कमज़ोर सुरक्षा व्यवस्था से संबंधित एयरलाइन की छवि, उसका व्यवसाय नष्ट कर सकती है. इसलिए, एक अच्छी छवि बनाने के लिए एयरलाइन को अपनी सुरक्षा व्यवस्था का प्रचार निरंतर करना पड़ेगा. कोई दूसरी एयरलाइन यह दावा नहीं कर पाएगी कि चूंकि पहली एयरलाइन का एक विमान दुर्घटनाग्रस्त हो चुका है, इसलिए वह यात्रा की दृष्टि से सुरक्षित नहीं है. ऐसा करना क़ानून के ख़िलाफ़ होगा, क्योंकि इसका संबंधित एयरलाइन के व्यवसाय पर गंभीर प्रभाव पड़ सकता है और यह लोगों की नौकरी और निवेशकों के धन खोने का कारण बन सकता है. स्पष्टतः, अच्छे जन–संपर्क का आधारभूत तत्त्व समय पर, सत्य तथा क़ानूनी तौर पर उचित सूचनाएं देना है, ताकि उपभोक्ता समूह अपने सामने प्रस्तुत तथ्यों को विश्वसनीय माने.

इसी बात से जन–संपर्क की प्रक्रिया के बारे में एक और सीख उभरती है. जब तक कि प्रसारित सूचना प्रकट व्यवहार पर आधारित नहीं होगी, लोग उस पर विश्वास नहीं करेंगे. उदाहरण के लिए, इस बात को भले ही कितनी बार प्रचारित किया जाए कि भारत में सड़क यातायात सुरक्षा बढ़ी है, परंतु लापरवाह चालकों का व्यवहार इस कथन को ग़लत सिद्ध करता दिखाई देता है. यदि ऐसा संदेश बार–बार दोहराया जाए, जिसकी सत्यता संदेहास्पद हो, तो लोग सूचना के स्रोत पर भी संदेह करने लगते हैं. एक बार कोई सूचना का स्रोत अपनी विश्वसनीयता खो देता है, तो उसके पास कुछ कहने या उस विश्वास को पुनः पाने के बहुत कम अवसर रह जाते हैं.

इसलिए, जन–संपर्क के कार्य में जन–संपर्ककर्ता से अत्यधिक ज़िम्मेदारी का भाव तो अपेक्षित है ही, यह भी ज़रूरी है कि उसमें ऐसा साहस हो कि वह ग़लत बात कहने से इनकार कर दे. वास्तव में यह आसान है. अच्छे जन–संपर्ककर्ताओं में ये दोनों बातें होनी चाहिए. सफल होने के लिए उनमें इन गुणों के साथ एक अच्छा समय बोध होना भी ज़रूरी है. पेशेवर जन–संपर्ककर्ताओं के लिए यह आवश्यक है कि वे लक्षित समूह के परिवेश को ध्यान में रखकर दी जाने वाली सूचना का महत्त्व पहचानें. यदि एक कंपनी सर्दी के मौसम में एयर कंडीशनर बेचना चाहे, तो कम ही लोग उनमें रुचि लेंगे. इसी प्रकार, आइसक्रीम बेचने वाली कंपनियां सामान्यतः सर्दियों में नए फ़्लेवर प्रस्तुत नहीं करतीं. ज़्यादा लोग नए 'फ़्लेवर' पर ध्यान नहीं देंगे और गर्मी का मौसम आने तक तो वे नए 'फ़्लेवर' एक पुरानी कहानी बनकर रह जाएंगे और तब दूसरी कंपनियां भी उनके नए–नए 'फ़्लेवर' प्रस्तुत करेंगी. परंतु, यदि एक कंपनी एक नया माइक्रोवेव ओवन बनाती है, तो यह जानकारी श्रम बचाने वाले साधन या खाना पकाने के एक वैकल्पिक तरीक़े के रूप में ख़रीदने वाले लोगों के लिए हर समय उपयोगी है.

भारत में जन–संपर्क के तौर–तरीक़ों में 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से बहुत परिवर्तन आया है. समाजवादी जीवन पद्धति की मांग थी कि कुछ लोग बहुसंख्यक लोगों के लिए निर्णय लें. परिणामस्वरूप, एक ऐसा वातावरण बना, जहां जन प्रतिनिधि के रूप में सरकार यह तय करने लगी कि कंपनियां क्या और किस मूल्य पर माल बेचेंगी और यह भी तय करने लगी कि लोग सरकारी नियंत्रण द्वारा क्या ख़रीद सकते हैं. यह माना गया कि बाज़ार आधारित प्रणाली में गुणकारिता पर दुष्प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि बहुत सी कंपनियां एक जैसी वस्तुओं का उत्पादन करने लगेंगी; इसलिए सरकार ने श्रेणियों के अनुसार लाइसेंस जारी किए और इस प्रकार एक ही श्रेणी में वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करने वाली विभिन्न कंपनियों की संख्या सीमित कर दी. 1980 के दशक के मध्य से यह स्थिति बदलने लगी. इसका प्राथमिक कारण यह था कि टेलीविज़न और अन्य जनसंचार साधन लोगों के बीच अचानक बहुत तेज़ी से पहुंच रहे थे. अब सूचना केवल संपन्न और शिक्षित लोगों तक सीमित नहीं रही. सामान्यजन भी संसार के अन्य भागों में अपने जैसे लोगों की जीवन शैली से परिचित होने लगे. उन जीवन शैलियों को अपनाने की अभिलाषा ने वर्तमान जीवन प्रणाली के प्रति उनमें असंतोष को जन्म दिया और 1980 के दशक से भारत में सरकारें जल्दी–जल्दी बदली जाने लगीं, क्योंकि लोग अपने चुने हुए प्रतिनिधियों से यह मांग करने लगे कि या तो वे उनकी ज़रूरतें जल्दी पूरी करें या पद छोड़ दें.

भारत में जन–संपर्क प्रणाली में हुए परिवर्तन को समझने के लिए देश के आर्थिक और राजनीतिक परिदृश्य के विकास की समझ अत्यंत आवश्यक है. नियंत्रित अर्थव्यवस्था में, जहां किसी उत्पाद या सेवा के कुछ ही आपूर्तिकर्ता थे, सूचना प्रबंधन की बहुत कम ज़रूरत थी, क्योंकि जो भी उपलब्ध था, वह सीमित मात्रा में था और हर कोई हर प्रकार से उसकी जानकारी रखता था. जब अर्थव्यवस्था उदार

हुई और वस्तुओं व सेवाओं के अचानक बहुत से आपूर्तिकर्ता आ गए, जनसमूह अचानक उपलब्ध विकल्पों को देखकर भ्रमित हो गया. वाहन उद्योग भारतीय उपभोक्ताओं की परिपक्वता तथा जन–संपर्क की प्रासंगिकता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है. जब भारत में कारों के केवल दो मॉडल बनाए जाते थे, तब उपभोक्ता उनमें से एक ख़रीद पाता था या वह भी नहीं. निर्माताओं को कोई परवाह नहीं थी. यदि उपभोक्ता ने एक मॉडल ख़रीदा भी, तो निर्माता उसे बिक्री के बाद की सेवाएं देने की चिंता नहीं करते थे.

1991 के बाद आर्थिक उदारीकरण के साथ उपभोक्ता के सामने अनेक विकल्प हैं : छोटी कार बनाम बड़ी कार; एक छोटी कार बनाम दूसरी छोटी कार : एक बड़ी कार बनाम दूसरी बड़ी कार. कुल मिलाकर परिदृश्य ऐसा बना कि लोग दो कारें रखने लगे, जिन लोगों के पास एक बड़ी कार थी, उन्होंने दूसरी छोटी कार भी ख़रीद ली या एक और बड़ी कार ख़रीद ली. कंपनियों को ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए बाध्य होकर जन–संपर्क का सहारा लेना पड़ा. लक्षित समूह की प्रकृति अचानक बदल गई. छोटी कार के ग्राहक वास्तव में बड़ी कार के ग्राहक हो सकते थे, जिन्हें दरअसल दो छोटी कारों की ज़रूरत थी या छोटी कारों के मालिक वे लोग हो सकते थे, जो आर्थिक परिस्थितियों के अनुकूल होते ही बड़ी कार के मालिक होने का इंतज़ार कर रहे थे. इसलिए अन्य गतिविधियों के साथ–साथ, कार कंपनियों ने ऐसे 'विशेषज्ञों' को प्रायोजित करना शुरू किया, जो कारों के बारे में लिख सकते थे. लेखकों को कार कंपनियों द्वारा समाचार पत्रों में अपने उत्पादों की अनुकूल समीक्षा लिखने के लिए पारिश्रमिक दिया गया. निश्चित ही, ऐसे लेखकों को दूसरी कार बनाने वाली कंपनियां भी पारिश्रमिक दे सकती थीं, जो दूसरे लेखकों और अन्य संचार माध्यमों का भी उपयोग कर सकती थीं. वास्तविक लाभ तो ख़रीददार को होना था. ख़रीददार अब अधिक अच्छे उत्पाद की अपेक्षा करते हैं और ख़रीद के बाद अच्छे स्तर के सेवाओं की भी. जन–संपर्ककर्ता कर्मचारी आपस में इस बात के लिए प्रतियोगिता करते हैं कि प्रतिस्पर्द्धी उत्पाद की तुलना में अपने उत्पाद की श्रेष्ठता प्रभावी ढंग से बताएं– ये सब ग्राहक के अधिकतम संतोष के लिए होता है.

जन–संपर्क में अक्सर बहुत गंभीर तत्त्व निहित होते हैं. उदाहरण के लिए, रासायनिक कंपनियों को जन समुदाय को इस बात के लिए आश्वस्त करना होता है कि उनके आवास के निकट फ़ैक्ट्री बनने से उनकी जान या स्वास्थ्य को ख़तरा नहीं होगा. दुर्भाग्य से, विश्व इतिहास में स्थानीय आबादी के प्रति अनेक रासायनिक कंपनियों के ग़ैर ज़िम्मेदार व्यवहार के निंदनीय सबूत भरे पड़े हैं. सूचनाओं तक आसान पहुंच से दुनिया सिमट कर छोटी हो गई है; अब बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए हानिकारक उत्पाद या प्रक्रियाओं को भारत जैसे विकासशील देशों में लाना आसान नहीं है. पर्यावरण संगठनों की अब विश्वव्यापी शाखाएं व समर्थक मौजूद हैं और तुरंत न सही, पर वे ऐसी घुसपैठिया कंपनियों का स्थानीय जनता द्वारा किए जा रहे विरोध का समर्थन करते हैं. ऐसे समय में, ये 'घुसपैठी' कंपनियां व्यापक जन–संपर्क अभियान चलाकर स्थानीय जनता को यह विश्वास दिलाने की कोशिश करती हैं कि वे ज़िम्मेदार नागरिक और पड़ोसी बनने के इरादे रखती हैं. चाहे ऐतिहासिक साक्ष्य कितने ही घिनौने हों, इन कंपनियों के जन–संपर्क अभियान अपने प्रचार के द्वारा ऊंचे वेतन की नौकरियों से स्थानीय आर्थिक विकास के प्रलोभन का लाभ उठाने में सफल हो जाती हैं. सत्य यह है कि वैज्ञानिक अनुसंधानों के तीव्र विकास और प्रबंधकीय कौशल ने रसायन उत्पादन प्रक्रियाओं को स्थानीय

जनसंख्या के लिए निरापद होने के साथ–साथ स्थानीय अर्थव्यवस्था के लिए मूल्यवान भी बना दिया है.

जन–संपर्क का एक मज़ेदार पक्ष भी है. उदाहरण के लिए, 'कोला युद्ध' को लीजिए. बाज़ार पर क़ब्ज़ा करने के अभियान में कोला कंपनियां अपने जन–संपर्क अभियानों में उपभोक्ताओं को यह विश्वास दिलाने के लिए अपने श्रेष्ठतम प्रयास करती हैं कि उनका कोला प्रतिद्वंद्वी के कोला से बेहतर है. परिणामतः, कोला कंपनियां यह जानने के लिए व्यापक शोध करती हैं कि किस चीज़ को उपभोक्ता मनोरंजन समझते हैं और फिर उस मनोरंजन का हिस्सा बनने का प्रयास करती हैं, ताकि उपभोक्ता उनके उत्पाद को ऐसी घटनाओं का हिस्सा माने और अगली बार जब उन्हें प्यास लगे, तो वे उस आनंद को याद करें. इसे विचारों का संयोजन कहते हैं. यह सूत्र दोनों के लिए अच्छा है. उपभोक्ताओं को श्रेष्ठ मनोरंजन मिलता है और कोला कंपनियों के व्यवसाय में भारी वृद्धि होती है.

कॉर्पोरेट प्रणाली में जन–संपर्क के व्यवसाय की क्या स्थिति है? इसका आदर्श उत्तर है कॉर्पोरेट रणनीति की नज़दीकी परख. इसका सामान्य आशय है प्रबंध निदेशक या अध्यक्ष के कार्यालय से सीधे संबंधित होना. बहरहाल, यह हमेशा सच नहीं होता और पूरी तरह व्यापार की प्रकृति पर निर्भर करता है. कोला कंपनी जैसे किसी व्यवसाय में यह बात समझ में आती है कि जन–संपर्क का पेशा विपणन क्रिया के साथ जुड़ा हुआ है, क्योंकि वहां व्यवसाय की संपूर्ण सफलता उपभोक्ताओं तक प्रभावशाली पहुंच पर निर्भर होती है. रसायन उद्योग में, पेशेवर जन–संपर्ककर्ता प्रबंध निदेशक या अध्यक्ष के कार्यालय से सीधे संबद्ध होते हैं. यह इसलिए कि पेशेवर जन–संपर्ककर्ता ठीक निवेश के निर्णय के स्तर से ही अधिकतम योगदान कर सकें. परंतु, महत्त्व इस बात का नहीं है कि जन–संपर्क की प्रक्रिया को निगम संरचना में किस सोपान पर रखा जाता है, आवश्यक यह है कि कंपनी की सफलता में सशक्त योगदानकर्ता के रूप में इसे उचित मान्यता दी जानी चाहिए.

पेशेवर जन–संपर्ककर्ताओं के जीवन में टेलीविज़न और समाचार पत्र महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं. मीडिया ही वह साधन है, जिसके माध्यम से विभिन्न संगठन व्यापक लक्षित समूह से संवाद स्थापित करते हैं. भारतीय अर्थव्यवस्था को बाहरी प्रतिस्पर्द्धा के लिए खोलने के साथ एक नए, ज़्यादा पेशेवर पत्रकारों का ऐसा वर्ग उभरा है, जिनकी विस्तृत सूचनाओं तक स्वतंत्र पहुंच है. इससे उन्हें तथ्यों का अधिक सावधानी के साथ शोध करने के ऐसे संसाधन मिले हैं, जो उनके पूर्ववर्तियों को उपलब्ध नहीं थे, जिन्हें चतुर पेशेवर जन–संपर्ककर्ता, किसी भी कहानी को इच्छित मोड़ देने के लिए बहला सकते थे. औद्योगिक घरानों द्वारा दुरुपयोग की दुर्भाग्यपूर्ण धारणा यही है. एक स्वतंत्र और ज़िम्मेदार मीडिया भारतीय प्रजातंत्र का आधार है और इस कारण अब भारत के पेशेवर जन–संपर्ककर्ताओं से अपेक्षाएं काफ़ी बढ़ गई हैं.

भारतीय बाज़ार में बढ़ती हुई प्रतियोगिता के कारण अनुभवी जन–संपर्ककर्ताओं की मांग भी तेज़ी से बढ़ी है. उद्योगों के सभी क्षेत्रों को ग्राहकों की शिकायतों या ऐसे उपभोक्ताओं का सामना करना पड़ रहा है, जिन्हें अचानक बहुत सारे विकल्प उपलब्ध हो गए हैं. अब उपभोक्ताओं के सीमित संसाधनों में से अपने लिए एक भाग खींच लेना अधिकाधिक प्रासंगिक बनता जा रहा है. इसी कारण कंपनियां ऐसे पेशेवरों की सेवाओं का भी उपयोग कर रही हैं, जो या तो स्वतंत्र रूप से या किसी परामर्शदाता संगठन के हिस्से के रूप में कार्य करते हैं. ऐसे विशेषज्ञ सेवा प्रदाता या तो संस्था के आंतरिक

संसाधनों को पूर्णतः प्रतिस्थापित कर देते हैं या आंशिक रूप में उनके पूरक बन जाते हैं या संस्था में ही पूर्णकालिक जन–संपर्क विशेषज्ञों की नियुक्ति का मार्ग प्रशस्त कर देते हैं.

* * *

दीपक मुखर्जी महाप्रबंधक, लुसेंट टेक्नोलॉजीज़ बंगलोर, *बेल लैब्स रिसर्च ऐंड डेवलपमेंट प्रोग्राम* से जुड़े हुए हैं और इन्हें संचार विशेषज्ञ के रूप में 17 वर्ष का कार्य अनुभव है, जिसमें संयुक्त राष्ट्र संघ की सेवा भी शामिल है. यह अतिथि प्रवक्ता के रूप में देश के विभिन्न प्रबंध संस्थानों में व्याख्यान देते हैं और प्रमुख समाचार पत्रों के लिए लिख चुके हैं. श्री मुखर्जी एक जाने–पहचाने रंगकर्मी भी हैं.

जाति व्यवस्था

टी.एन. मदान

परिचय

दक्षिण एशिया में सामाजिक संगठन को स्पष्ट करने के लिए 'जाति' शब्द का प्रयोग, विशेषकर हिंदुओं में, 16वीं शताब्दी के मध्य में शुरू हुआ. 'कास्ट' शब्द (लैटिन शब्द कास्टस अर्थात 'चेस्ट' या पवित्र से बना) आइबेरियाई भाषाओं में प्रचलित था, और वंश की शुद्धता को इंगित करता था. इस शब्द का उपयोग पुर्तगाली प्रेक्षकों ने पश्चिमी और दक्षिण–पश्चिमी भारत में हिंदू समाज की सामाजिक श्रेणियों के व्यावसायिक वर्गीकरण का वर्णन करने के लिए किया. सामाजिक ऊर्ध्वाधर दूरियों को बनाए रखने के प्रयासों में ये वर्ग भोजन और, संभवतया, विवाह के संबंध में परस्पर निषेध का व्यवहार करते थे. कालांतर में 'कास्ट' शब्द अंग्रेज़ी और प्रमुख यूरोपीय भाषाओं, विशेषकर डच तथा फ़्रांसीसी में, इसी विशेष अर्थ में स्थापित हो गया. जाति को सामान्यतः एक प्राचीन, सतत और विशिष्ट संस्था माना जाता है, जो जटिल सांस्कृतिक विचारधारा द्वारा पोषित है.

वर्ण और जाति

जाति समाज संबंधी स्थूल और सूक्ष्म दृष्टिकोणों, जो क्रमशः सिद्धांत और व्यवहार अथवा विचारधारा और मौजूदा सामाजिक यथार्थ का प्रतिनिधित्व करते हैं, में अंतर समझ लेना आवश्यक है.

स्थूल स्तर पर वर्तमान हिंदू समाज के अध्येता एक प्राचीन चतुर्वर्णीय सामाजिक आर्थिक श्रेणियों की व्यवस्था, जिन्हें वर्ण कहा जाता है, का उल्लेख करते हैं, जिसका संबंध *ऋग्वेद* (रचनाकाल 1500 ई.पू.– 1200 ई.पू., इसे 150 ई.पू. में लिपिबद्ध किया गया) में संरक्षित मौखिक परंपरा से जोड़ा जा सकता है. 'वर्ण' एक संस्कृत शब्द है, जिसके कई अर्थ हैं, जिनमें वर्णन, वरण, वर्गीकरण और रंग भी शामिल हैं. *ऋग्वेद* के रचनाकार आर्यों (आर्य : श्रेष्ठ, विशिष्ट) द्वारा प्रयोग में लाए इस शब्द का आशय रंग ही था. ये भारोपीय लोगों की शाखा से संबंधित थे, जो लगभग 3,500 वर्ष पूर्व पश्चिमोत्तर भारत (सिंधु घाटी और पंजाब के मैदान) में आए और माना जाता है कि उन्होंने यहां के श्याम–वर्णीय स्थानीय निवासियों को, जिन्हें वे दह (शत्रु) या दास (सेवक) कहते थे, अपने अधीन कर लिया. यह भी संभव है कि 'दह' में ईरान से आए प्राचीन अप्रवासी भी शामिल हों. 20वीं शताब्दी के कुछ लेखकों द्वारा प्राचीन द्विध्रुवीय प्रजातीय वर्गीकरण को मात्र त्वचा के रंग तक सीमित कर देने की प्रवृत्ति भ्रामक है और यह उचित ही है कि यह प्रवृत्ति आजकल प्रचलन में नहीं है.

आर्य और दास; शारीरिक लक्षणों, संस्कृति और भाषा के आधार पर विभाजित, परस्पर विरोधी जातीय समूह थे. धीरे–धीरे ही उनका समन्वय भीतर से एक बहुलतावादी समाज व्यवस्था में हो सका– जिसमें

आर्यों की सामाजिक–सांस्कृतिक परंपरा ने उल्लेखनीय योगदान दिया. समाज का पुजारी, योद्धा और सामान्यजन की तीन श्रेणियों में विभाजन, इसी व्यवस्था का एक भाग था. प्रारंभ में वर्ण की सदस्यता मुख्यतः व्यक्तिगत कुशलता पर आधारित दिखाई देती है; यह जन्म, प्रतिष्ठा या संपत्ति पर आधारित नहीं थी. उत्तर ऋग्वेद काल तक, हालांकि सामाजिक स्थिति का वंशानुगत सिद्धांत स्थापित हो गया था.इसलिए *ऋग्वेद* के 'पुरुष (सार्वभौमिक मानव) सूक्त' में, जिसे मूल पाठ में बाद में जोड़ा गया माना जाता है, एक आत्मोत्सर्गी क्रिया से वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन है– 'विराट पुरुष के मुंह से ब्राह्मण, भुजाओं से राजन्य, जांघों से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए.' यहां चारों समूहों का श्रेणीबद्ध क्रम स्पष्ट है. फिर भी, विवादास्पद प्रश्न यह है कि यह विचारधारा किस सीमा तक सामाजिक यथार्थ को दर्शाती थी.

वर्ण व्यवस्था में सबसे उच्च स्थान प्राप्त ब्राह्मण, पुरोहित और पवित्र ज्ञान (वेदों) के अधिकारी तथा शिक्षक थे. इनके बाद श्रेणी में दूसरे स्थान पर शासक वर्ग राजन्य (राजकुल) था, जो सामाजिक दृष्टि से ज़रा भी कम नहीं था. इन्हें बाद में क्षत्रिय कहा गया, यानी, जो सत्ता–संपन्न थे और योद्धाओं की हैसियत से देश (क्षेत्र) की रक्षा के लिए उत्तरदायी थे. धार्मिक सत्ता और लौकिक शक्ति का एक जटिल तथा परस्पर समर्थन करने वाला संबंध स्पष्टतः एक दीर्घ अवधि में स्थापित हुआ.

इन दो ऊंची श्रेणियों के ठीक नीचे वैश्य ('विश' से बना, जिसका आशय है 'भूमि पर बसे हुए'), जो कृषक और व्यापारी थे. ये तीनों वर्ण दो बार जन्म लेने वाले (द्विज) माने जाते थे, क्योंकि इनके पुरुष सदस्यों का बचपन में एक दीक्षा संस्कार किया जाता था. उनका यह दूसरा जन्म उन्हें विशिष्ट संस्कारों में भाग लेने और पवित्र ज्ञान अर्जित करने के योग्य बनाता था. इसके साथ ही वे, अन्य सामाजिक रूप से श्रेष्ठ श्रेणियों के समान ही, शूद्रों (व्युत्पत्ति अस्पष्ट; संभवतया किसी स्थानीय दास जाति का नाम) की सेवाएं प्राप्त करने के अधिकारी हो जाते थे, जो वर्ण व्यवस्था में चौथे और सबसे निचले स्थान पर थे. कुछ हीन काम करने, जैसे मृत पशुओं को फेंकना आदि, के कारण शूद्रों के लिए 'दो जन्म लेने वाले' वर्णों से किसी भी प्रकार का भौतिक संपर्क वर्जित था. उन्हें अस्पृश्य मानकर, इस पृथ्वी के सबसे अधम प्राणियों के रूप में, 'पंचम श्रेणी' में रखा गया.

वर्ण व्यवस्था में, ब्राह्मण प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से सर्वसंपन्न थे. विशिष्ट पहचान, द्विजीय–प्रतिष्ठा, धार्मिक अधिकार और बहुसंख्यक वैश्य तथा शूद्रों पर प्रभुत्व, जो समुदाय में बहुसंख्यक थे. यह प्रत्याशित ही था, क्योंकि ब्राह्मण ही इस विचारधारा के रचयिता भी थे. यह वर्गीकरण ज़रूरत से ज़्यादा व्यवस्थित जान पड़ने के कारण, किसी भी समय के सामाजिक यथार्थ का सही चित्र प्रस्तुत करने के लिए, अधिक उपयुक्त नहीं माना जा सकता.

चार वर्ण, और व्यक्तिगत जीवन चक्र की चार काल्पनिक अवस्थाओं या आश्रमों (ब्रह्मचर्य, शिक्षा और कठोर अनुशासन के वर्ष; गृहस्थ, पारिवारिक और सांसारिक जीवन; वानप्रस्थ, उत्तरदायित्वों से मुक्ति; और संन्यास, सभी सांसारिक बंधनों का त्याग) को एक श्रेष्ठ और नैतिक जीवन की मूलादर्श–संबंधी रूप–रेखा माना जा सकता है. वास्तव में, हिंदू जीवन पद्धति को परंपरागत रूप से वर्ण–आश्रम–धर्म कहा जाता है. धर्म या सदाचार, लक्ष्योन्मुख आचरण (पुरुषार्थ) की ब्राह्मण अवधारणा का केंद्रीय मूल्य है, जो राजनीतिक, आर्थिक लक्ष्यों (अर्थ) तथा ऐंद्रिक सुखों (काम) के विवेकपूर्ण अनुसरण को पूर्णतः तर्कसंगत मानती है.

यह एक ब्राह्मण विचारधारा है, किंतु ऐसा कहने का यह आशय नहीं है कि यह केवल विद्यमान सामाजिक यथार्थ की अनुषंगी है. वर्ण व्यवस्था ने उपमहाद्वीप के संपूर्ण लिखित इतिहास में संगठन और लोगों के अंतरसमूह संबंधों को समझने के लिए एक आधार और मुहावरा उपलब्ध करवाया है. विस्मयकारी क्षेत्रीय विविधता और समय के साथ हुए परिवर्तनों के बावजूद इन संबंधों का उपयोग वर्ण व्यवस्था से मिलते–जुलते प्रतिमान दिखाने के लिए किया जा सकता है. इसमें एक समस्या यह है कि दक्षिण भारत में क्षत्रिय स्पष्ट रूप से अनुपस्थित हैं और लंबे समय तक उत्तर भारत में भी एक बिखरी हुई श्रेणी रहे हैं. बहरहाल, पुरोहितीय प्राधिकार और राजकीय सत्ता के शास्त्रीय प्रतिमान के समानांतर, सूक्ष्म स्तर पर उतने ही महत्त्वपूर्ण सामाजिक स्तर और प्रभुत्व के संबंध हैं, जहां वर्ण के बजाय जातियों से सामना होता है.

यद्यपि 'कास्ट' शब्द का उपयोग मुक्त रूप से वर्ण और जाति (शाब्दिक अर्थ 'जन्म से निर्धारित अस्तित्व का प्रकार'), दोनों के लिए किया जाता है, लेकिन अधिकांश विद्वानों के दिमाग़ में भारतीय जाति व्यवस्था के बारे में लिखते समय 'जाति' शब्द ही होता है. इसका स्पष्ट कारण यह तथ्य है कि प्राचीन काल से वर्तमान तक प्रेक्षकों की पहुंच 'अंतर्जातीय' संबंधों तक ही रही है. (यहां से, 'जाति' और 'कास्ट' शब्द पर्यायवाची के रूप में प्रयोग किए जाएंगे).

भारतीय स्तरीकृत समाज का सबसे पुराना वर्णन, लगभग 3000 ई.पू. भारत आए एक यूनानी यात्री मेगस्थनीज़ द्वारा किया गया माना जाता है. उन्होंने आगे दिए गए क्रम में सात सामाजिक विभाजनों का उल्लेख किया है : 'सोफ़िस्ट', कृषक, पशुपालक, हस्तशिल्पी, खुदरा व्यापारी, योद्धा 'सुपरिंटेंडेंट्स' और राज्य के पार्षद. इस सूची में ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों को पहचाना जा सकता है, लेकिन इसमें शूद्र नहीं हैं. व्यावसायिक विशेषीकरण, सजातीय विवाह और श्रेणीक्रम के सभी सिद्धांतों का उल्लेख किया गया है. 'सोफ़िस्ट', एक अल्पसंख्यक समुदाय हैं व 'प्रतिष्ठा और सम्मान के सर्वोच्च स्थान' के अधिकारी बताए गए हैं. यह माना जा सकता है कि वर्ण–क्रम की जाति–व्यवस्था में बदलने की प्रक्रिया शुरू हो चुकी थी.

यूनानी यात्री उन लोगों में पहले थे, जिन्होंने पूर्व ईसाई युग में जाति व्यवस्था का वर्णन किया. 1030 ई. के आसपास, एक ईरानी यात्री, अबू रेहान मुहम्मद अलबरूनी ने भारत पर समाजशास्त्रीय अध्ययन लिखा. फ़ारसी साम्राज्य की चार स्तरीय सामाजिक व्यवस्था के बारे में प्रारंभिक कथन देते हुए, उन्होंने हिंदू समाज के सामाजिक स्तरीकरण के बारे में लिखा और उल्लेख किया कि इन विभाजनों को वर्ण कहा जाता था. उन्होंने *पुरुष सूक्त* की व्याख्या की और एक पांचवीं श्रेणी अंत्यज (सबसे अंत में जन्मे) का भी वर्णन किया है. यह शिल्पियों और अन्य कामगारों की आठ उपजातियों (जिसमें चमार, मदारी, टोकरियां बनाने वाले, मछुआरे और शिकारी शामिल थे) से मिलकर बनी थी, जो पहले चार वर्णों की बस्तियों के बाहर रहते थे. अंत में, चार और वर्णों को सूचीबद्ध किया गया है (जिनमें डोम और चांडाल शामिल हैं), जो अप्रतिष्ठित कार्यों (जैसे सफ़ाई करना आदि) में लगे थे. इसलिए उन्हें वर्ण का दर्जा नहीं दिया गया था. उन्हें शूद्र पिताओं और ब्राह्मण माताओं की अवैध संतान माना जाता था. अलबरूनी ने ब्राह्मणों के महत्त्व और अन्य वर्णों के कर्मकांडों तथा प्रथाओं का भी वर्णन किया है.

यह स्पष्ट है कि उनका सामना जिससे हुआ, वह जाति व्यवस्था थी. यद्यपि यह तब उतनी विकसित नहीं थी, जितनी बाद में हुई. उनकी सूचना, लिखित सामग्री और व्यापक जानकारी रखने वाले

संदेशवाहकों से ली हुई थी और शायद सीमित रूप से व्यक्तिगत प्रेक्षण पर आधारित थी. जाति के एक सामाजिक संगठन के रूप में, बिना ब्राह्मण विचारधारा के समर्थन के, जाति के क़ायम रहने की क्षमता, जैन धर्म द्वारा पहले ही प्रदर्शित की जा चुकी थी. यह विचारधारा, जो ब्राह्मण रूढ़िवादिता के विरोध में पांचवीं शताब्दी ई.पू. में कभी उदित हुई थी, अपने सदस्यों की जातियों के उत्पत्ति के मूल से जुड़ी रही और, वास्तव में इसने अपनी एक जाति व्यवस्था का विकास कर लिया. वैदिक काल के उत्तरार्द्ध में सामाजिक– सांस्कृतिक परिवर्तनों के बीच उदित हुआ (लगभग जैन धर्म के साथ ही), और प्राथमिक रूप से व्यक्ति के एक नैतिक अभिकर्ता होने पर बल दिए जाने के कारण, बौद्ध धर्म इस दिशा में अधिक सफल रहा.

इस्लाम में परिवर्तित होने वालों में, व्यावसायिक समूहों के रूप में जातियों के बने रहने ने क्षेत्रीय विविधताओं में जटिलता और बढ़ाई. यह कश्मीर घाटी से बेहतर और कहीं दिखाई नहीं देती. यहां के सामाजिक संगठन में, 13वीं सदी में इस्लाम के आगमन से ठीक पहले तक, बहुलता और उदारता थी. ब्राह्मणों और अस्पृश्य शूद्र जातियों के अलावा यहां जनजातीय समूह थे, सामाजिक–आर्थिक श्रेणियां थीं, शासकीय कर्मचारी और दमार थे (एक ऊर्ध्वगामी, ग्रामीण भू–स्वामी वर्ग, जिसके सदस्य राजपुत्रों या क्षत्रियों तक से अंतर्विवाह की कामना करते थे). तुलनात्मक रूप से एक छोटे समय में बड़ी संख्या में इस्लाम में परिवर्तन का परिणाम यह हुआ कि (आंशिक रूप से पलायन के कारण) ब्राह्मणों को छोड़कर सभी जातियां विलुप्त हो गईं.

आधुनिक समय में 20वीं सदी के मध्य तक अंतर्विवाही मुस्लिम जातियां एक–दूसरे को तथा मुस्लिम और ब्राह्मण भूस्वामियों, दोनों को वस्तुएं और सेवाएं उपलब्ध कराती पाई जाती थीं. ये जातियां वंशानुगत व्यवसाय अपनाती थीं जैसे लुहार, बढ़ई, कुम्हार, और भिश्ती. इनमें से कुछ ने धर्म परिवर्तन के पहले के अपने नाम भी नहीं बदले जैसे नवीद (नाई). ब्राह्मणों की दृष्टि से (जो भट्ट या पंडित के नाम से जाने जाते थे), कश्मीर का सामाजिक संगठन शास्त्रीय जाति व्यवस्था का एक क्षेत्रीय रूपांतर था. यह उनके लिए आनुष्ठानिक प्रदूषण से मुक्त रहना नैतिक रूप से अनिवार्य बनाता था. मुस्लिमों ने इसे व्यावसायिक समूहों का एक अधिक स्थिर प्रतिमान माना और उन्होंने ब्राह्मणों के सार्वभौमिक और आध्यात्मिक विचारों का अनुमोदन नहीं किया.

यद्यपि भारत में वर्ण और जातियां लगभग 3,000 वर्षों से विद्यमान हैं. तथाकथित पारंपरिक व्यवस्था ने, जिसका पिछले लगभग 100 वर्षों में व्यापक रूप से अध्ययन और वर्णन किया गया है, 18वीं सदी के प्रारंभ में मुस्लिम शासन के अंतिम दशकों के दौरान और पश्चिमी उपनिवेशवादी शासन की स्थापना के ठीक पहले आकार लेना शुरू किया. वर्ण और जाति का संबंध आमतौर पर मिश्रित एकीकरण और विखंडन की प्रक्रिया के आधार पर ही विकसित और प्रलेखित किया गया है. लिखित परंपराओं के अनुसार, नई जातियां अंतर्वर्णीय या अंतर्जातीय विवाहों के कारण बनती हैं, विशेषकर तब जब ये नियमों का उल्लंघन कर होते हैं. उल्लेखनीय रूप से प्रकृति के विपरीत, जब एक निम्नतर वर्ण का पुरुष उच्चतर वर्ण की स्त्री से विवाह करता है (प्रतिलोम विवाह). एक उच्चतर वर्ण के पुरुष और निम्नतर वर्ण की स्त्री का सम्मिलन 'प्रकृति के अनुकूल' (अनुलोम) माना जाता था. इस प्रक्रिया का एक विशिष्ट लक्षण विभिन्न श्रेणियों के परस्पर व्यापन या मिश्रण से नई जातियों का बनना है. कुछ लेखकों का तर्क है कि छोटी जातियों के 'जाति संकुल' में सम्मिलित होने की प्रक्रिया भी जारी रही होगी.

जाति व्यवस्था के लक्षण

जाति व्यवस्था क्षेत्रीय या स्थानीय जातियों की व्यवस्था रही है, जिसमें हर एक का अपना इतिहास है, चाहे यह कश्मीर में हो, तमिलनाडु, बंगाल या गुजरात में हो. इतिहास अलग हो सकते हैं, लेकिन सामाजिक संगठनों का स्वरूप नहीं. हर जगह जातियां परंपरागत रूप से अंतर्विवाह करती रही हैं. हर जाति एक या अधिक वंशानुगत व्यवसायों से जुड़ी थी, किंतु कुछ व्यवसाय जैसे कृषि या ग़ैर पारंपरिक नागरिक सेवाएं जाति निरपेक्ष थे. जाति–विशिष्ट खान–पान संबंधी ऐसे नियम भी थे, जिनमें क्या खाया–पिया जा सकता है या किन के साथ खान–पान के संबंध रखे जा सकते हैं, ऐसे निर्देश थे. इसके अलावा हर जगह जातियां ऊर्ध्वाधर रूप से श्रेणीबद्ध थीं, जिसमें ब्राह्मण अपनी मूलभूत शुद्धता के कारण सबसे ऊपर और शूद्र सबसे नीचे थे. शूद्र, जिन्हें मानव उच्छिष्ट और मरे जानवर हटाने पड़ते थे, 'अस्पृश्य' थे.

यह मानना तर्कसंगत जान पड़ता है कि जाति व्यवस्था, इसकी अपरिवर्तनीयता की मान्य छवि के विपरीत, हमेशा से विभिन्न जातियों द्वारा स्वयं को सामाजिक व्यवस्था में ऊपर उठाने के प्रयासों के लक्षणों से युक्त रही है. ऐसे प्रयास निम्न किंतु अशुद्धता की रेखा के नीचे वाली जातियों की अपेक्षा शुद्ध मानी जानी वाली जातियों में अधिक सफल रहे हैं. अस्पृश्यता को भारत के संविधान के अंतर्गत अवैधानिक घोषित कर दिया गया. यह क़ानून स्वतंत्रता के बाद बना और 1949 में स्वीकार किया गया.

जो जातियां ऊर्ध्वगामी गतिशीलता की आकांक्षा रखती हैं, उन्हें दो मार्ग उपलब्ध रहे. पारंपरिक तरीक़ा है शुद्ध (उच्चतर) जातियों के जीवन के कुछ महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को अपनाना. इन तत्त्वों में शामिल हैं शुद्ध जाति के दर्जे में प्रवेश करने के अनुष्ठान; जनेऊ पहनना, जो ऐसे दर्जे का प्रतीक है; शाकाहार; मद्यत्याग, अप्रतिष्ठापूर्ण या हेय माने जाने वाले कार्यों का निषेध और विधवा विवाह का निषेध. सामाजिक स्थिति को सुधारने की इस बहुतत्त्वी प्रक्रिया को एम.एन. श्रीनिवास ने 'संस्कृतिकरण' कहा है. लेन–देन की यह योजना जातियों के बीच की दूरी को कम करके सामाजिक संपर्क बढ़ाने की आशा के साथ, एक ख़ास ढंग के बढ़ावे पर ज़ोर देता है. यह प्रक्रिया धीमी होती है और हमेशा सफल नहीं रहती. सफलता का पहला निर्णायक परीक्षण होता है, उच्चतर जातियों द्वारा ऊपर की ओर गतिशील जाति के लोगों द्वारा बनाया गया भोजन ग्रहण करना और दूसरा, समान दर्जे वाली जातियों द्वारा उस जाति को ऐसी सेवाएं प्रदान करना, जो 'अप्रतिष्ठापूर्ण' समझी जाती हैं.

पारंपरिक मूल्यों के दायरे में, सामाजिक रूप से महत्त्वाकांक्षी जातियों ने, जब कभी संभव हुआ, आनुष्ठानिक शुद्धता के साथ, अन्य धर्मनिरपेक्ष मानकों को भी अपनाया है. इन मानकों में शामिल हैं संख्या बल, आर्थिक संपन्नता (विशेषकर भूमि के स्वामित्व के रूप में), और इन जातियों की गांव के मामलों और स्थानीय राजनीति में शक्ति के केंद्र के रूप में पर्याप्त समूह–शक्ति एकत्र करने की क्षमता. ऐसी जाति को आमतौर पर 'प्रभुत्वशाली जाति' कहा जाता है. दर्जा और प्रभुत्व में अंतर करना महत्त्वपूर्ण है, यद्यपि व्यवहार में दोनों आमतौर पर समान हैं. वर्तमान सामाजिक परिवर्तन के पक्षों में से एक महत्त्वपूर्ण पक्ष, पारंपरिक स्तर और सामान्य स्तर (आर्थिक, राजनीतिक) को अलग करता है. इसके अलावा, संख्या बल कभी–कभी प्रतिगामी भी हो जाता है, क्योंकि कभी–कभी इससे प्रधानता की क्षमता रखने वाली जाति गुटों में बंट जाती है.

जाति के सिद्धांत

आज जाति को हम जिस रूप में देखते हैं, वह भारतीय और पाश्चात्य संस्कृतियों और मानसिकताओं के टकराव का परिणाम है. जाति को पाश्चात्य सामाजिक समूहों का रूपांतरण मानने वाले सिद्धांतों से लेकर इसकी अद्वितीयता पर और इसलिए इसके अतुलनीय चरित्र पर बल देने वाले बहुत से सिद्धांत हैं.

जे.एच. हटन ने एक दर्जन से ज़्यादा ऐसे तत्त्वों का संग्रह किया है, जिन्हें उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर माना जा सकता है कि इन्होंने जाति व्यवस्था के उद्‌भव और विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया होगा. इन तत्त्वों में शामिल हैं उपमहाद्वीप का भौगोलिक अलगाव, शुद्धता और अशुद्धता के धार्मिक विचार, कर्म के बारे में विश्वास, और सामाजिक विशेषाधिकार प्राप्त 'वर्गों' का उदय, जिसने अपेक्षाकृत कठोर और अत्यंत विषमताओं वाली व्यवस्था को न्यायोचित सिद्ध किया. इन अध्ययनों से होने वाले लाभों में से एक मुख्य लाभ यह था कि जाति को सामाजिक रूप से विनिर्मित वास्तविकता माना जाने लगा. इस दृष्टिकोण ने सामाजिक यथार्थ की एक गहरी समझ दी.

जाति के मूलभूत तत्त्वों के संदर्भ में इसके संपूर्ण चरित्र पर लुई ड्यूमॉन्ट ने प्रकाश डाला. लिखित और मौखिक परंपराओं में साकार कथित हिंदू सांस्कृतिक परंपरा की व्यापक निरंतरता को स्वीकार करते हुए, ड्यूमॉन्ट ने आनुष्ठानिक शुद्धता व इसकी विरोधी प्रदूषण की अवधारणा को आधार बनाते हुए जाति व्यवस्था के सभी मुख्य लक्षणों को निरूपित किया. एक उच्चतर जाति व्यावसायिक रूप से, और अन्यथा परंपरा से, नीचे वाली जातियों से कर्मकांडीय दृष्टि से शुद्धतर है. उन्होंने यह भी कहा कि जातियों का सामाजिक श्रेणीकरण सिद्धांततः पश्चिम के व्यक्ति पर केंद्रित सामाजिक स्तरीकरण के समान नहीं है. इस प्रकार पारंपरिक रूप से श्रेष्ठतम मूल्य 'धर्म' या सदाचार के दायरे में निम्नतर मूल्य 'अर्थ' या आर्थिक व राजनीतिक विवेकपूर्ण लक्ष्य प्राप्ति, और 'काम' अर्थात दैहिक संतुष्टि, भी समाहित हो जाते हैं.

कुछ विद्वानों के अनुसार, आनुष्ठानिक शुद्धता पर विशेष बल के कारण अन्य महत्त्वपूर्ण विचारों की उपेक्षा हुई है, जैसे गुण या वस्तुओं का आवश्यक स्वभाव, जिनसे नैतिक और सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त होती है. जनजातीय समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के प्रवक्ता, विशेषकर मैक्किम मैरियट मानते हैं कि जाति व्यवस्था एक व्यापक नैतिक व्यवस्था है, जो समूहों और वर्गों से बनती है.

जाति व्यवस्था में निरंतरता और परिवर्तन

19वीं शताब्दी में कई विद्वान यह तर्क देते रहे कि यद्यपि भारत का लंबा अतीत रहा है, इसका कोई इतिहास नहीं है. जाति व्यवस्था की स्थिरता के लिए इसके कठोर और अपरिवर्तनीय स्वभाव का उदाहरण दिया जाता है. कहना आवश्यक नहीं है कि यह अति सामान्यीकरण है. जाति, निश्चित रूप से, एक प्राचीन संस्था है, लेकिन सहस्राब्दियों तक इसका विद्यमान रहना इसके स्वयं को ढालने में सक्षम और परिवर्तनीय चरित्र को प्रमाणित करता है. ब्राह्मणों की सर्वोच्चता और उनके द्वारा समर्थित मूल्यों को चुनौतियां ई.पू. पहली सहस्राब्दी में ही मिलनी शुरू हो गई थीं. बौद्ध व जैन विचारधाराएं इन विरोधी विचारधाराओं में अधिक जानी–पहचानी हैं, जो बाद में स्वतंत्र धर्मों के रूप में विकसित हो गईं. उत्तर–बौद्ध धार्मिक भक्तिवाद ने, जो दक्षिण भारत में तीसरी सदी में उदित हुआ व उत्तर में फैला,

स्पष्टतः जाति को नकारा और कई मध्यकालीन व आधुनिक, सांप्रदायिक एवं सुधार आंदोलनों ने भी यही किया. पूरी दूसरी सदी में इस्लाम के सामाजिक समतावाद का प्रभाव भी काफ़ी था, यद्यपि बंगाल और कश्मीर को छोड़कर कहीं भी सामूहिक धर्म परिवर्तन नहीं हुए.

ब्रिटिश उपनिवेशी शासन ने 19वीं शताब्दी के दौरान परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों को पैदा किया, और जाति का प्रभाव कम किया (नए व्यवसाय और वृत्तियां प्रारंभ करके जो सिद्धांततः जाति निरपेक्ष थे) और साथ ही इसे सुदृढ़ भी किया (जातियों की देशव्यापी गणना करके और पारंपरिक क़ानूनों और प्रथाओं को संहिताबद्ध करके). इतिहासकार आमतौर पर इस बात से सहमत हैं कि आनुष्ठानिक स्तर और राजकीय श्रेणी पर आधारित श्रेणीक्रम की भावना 19वीं सदी में और व्यापक हो गई.

19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान 'जाति', भारतीय समाज की विस्फोटक राजनीति का लक्षण बन गई. ऐसा विशेषकर मुसलमानों और निम्न जातियों में निम्नतम हिंदू, जो 'अस्पृश्य' कहे जाते थे और जिन्हें अनुसूचित जातियों का दर्जा दिया गया, के लिए पृथक निर्वाचक मंडलों की मांग के संदर्भ में हुआ. महात्मा गांधी ने इन लोगों के उत्थान को राष्ट्रीय आंदोलन का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व बना दिया; उन्होंने एक प्रस्तावित संविधान द्वारा इन जातियों का हिंदू समाज से पृथक्करण रोकने के लिए 1932 में आमरण अनशन कर अपना जीवन भी दांव पर लगा दिया था.

एक समतावादी और धर्मनिरपेक्ष समाज का लक्ष्य होने के बावजूद यह अपेक्षित ही था कि स्वतंत्रता के बाद जाति आधारित राजनीति प्रमुख होगी. अनुसूचित जातियों (और अनुसूचित जनजातियों) के लिए विधायी संस्थाओं, नागरिक सेवाओं, और शैक्षणिक संस्थाओं में 'आरक्षण' का प्रावधान देश के क़ानून में लिख दिया गया. वास्तव में, भारतीय संविधान के अनुसार अनुसूचित जातियों के लिए राज्यों और केंद्र (संघ) के विधानमंडलों के निम्न (प्रत्यक्षतः निर्वाचित) सदनों में, क्रमशः संबंधित राज्यों में और पूरे देश में उनकी जनसंख्या के अनुपात में स्थान आरक्षित रहेंगे. इसे एक अस्थायी प्रावधान होना था, लेकिन इसे तब से समय–समय पर बढ़ाया गया है. सबसे आख़िरी बार 1999 में, जब इसे फिर से 10 सालों के लिए बढ़ा दिया गया. यह आरक्षण कोटा वर्तमान संसद के निम्न सदन (लोकसभा) में कुल स्थानों का लगभग 15 प्रतिशत है.

जातियों का विशिष्ट समुदायों या समान लौकिक हितों वाली जातियों या संघों के रूप में, प्रतिद्वंद्वी जातियों, या संघों से प्रतिस्पर्द्धा करने के लिए समूहीकरण जल्द ही (1950 के दशक में) चुनावी राजनीति का महत्त्वपूर्ण लक्षण बनकर उभरा. प्रकट रूप से प्रगतिशील कार्यक्रमों वाले राजनीतिक दलों ने इन संगठनों का तुरंत 'वोट बैंकों' के रूप में इस्तेमाल किया. जहां कुछ समाजशास्त्रियों ने इन घटनाओं को जाति की संस्था को नया जीवन देने वाली माना. अन्य ने यह प्रश्न उठाया कि क्या जातियों को 'जातियां' कहना उचित होगा जबकि वे अंतरनिर्भरता के पारंपरिक संबंधों (और अधीनीकरण) को छोड़कर राजनीतिक और आर्थिक लाभों के लिए प्रतिस्पर्द्धा का विकल्प चुन रही हैं.

सामाजिक परिवर्तन की गतिशील प्रक्रिया की एक और अवधारणा ड्यूमॉन्ट द्वारा प्रस्तुत 'तत्त्वीकरण' के संदर्भ में थी, अर्थात संबंधों के संसार (या संरचना) का ऐसी संरचना या संबंधों से प्रतिस्थापन, जहां जातियां 'ठोस' या 'अभेद्य खंडों' के रूप में दिखाई देती हैं, जो केवल प्रतिस्पर्द्धी हो सकती हैं, क्योंकि वे स्वयं को आत्मनिर्भर और समान मानती हैं. ऐसे समूहों को जातियां कहा जा सकता है, किंतु ये अब दर्जागत समूह नहीं रहे, जिन्हें पुराने अर्थों में जातियां कहा जा सके और न ही अब पारंपरिक ढांचा

विद्यमान है. ड्यूमॉन्ट इस तरह के परिवर्तन को ज़्यादा महत्त्व नहीं देते, क्योंकि इसका क्षेत्र राजनीतिक–आर्थिक गतिविधि है, जिन्हें वे (जैसा ऊपर बताया गया है), मूल्यों के क्षेत्र में सम्मिलित मानते हैं. क्षेत्रों के इस वर्गीकरण से समकालीन परिवर्तनों के स्रोतों का अवमूल्यन हुआ है. यह संतोषप्रद नहीं है. इसके अलावा, सूत्र में निहित पारंपरिकता बनाम आधुनिकता का तर्क अति–सामान्यीकरण है.

जाति की राजनीति में 1990 में 'पिछड़े वर्गों' को आरक्षण देना मील का पत्थर था, यह जाति की पहचान पर आधारित था, और इसमें पहले से आरक्षण प्राप्त अनुसूचित जातियों के अलावा अन्य जातियां शामिल थीं. इस क़दम से सरकारी नौकरियों में आरक्षित कोटा लगभग 27 प्रतिशत बढ़ गया और कुल स्थानों का लगभग आधा हो गया (अनुसूचित जातियां 15 प्रतिशत, अनुसूचित जनजातियां 7.5 प्रतिशत, अन्य पिछड़े वर्ग 27.5 प्रतिशत), यह एक सीमा है, जिसे उच्चतम न्यायालय ने न लांघने का आदेश दिया है. 'मंडलीकरण' के नाम से जाने गए (बी.पी. मंडल के नाम पर, जो भारत सरकार द्वारा 1978 में गठित समिति के अध्यक्ष थे, जिसने अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण की सिफ़ारिश की थी), इस निर्णय का सामाजिक न्याय और सदियों पुराने, जाति के आधार पर वंचित रहने की क्षतिपूर्ति के नाम पर बचाव किया गया. मंडलीकरण की आलोचना पिछड़ेपन की पहचान के लिए मनमाने मापदंडों पर आधारित होने, अवसर की समानता के संवैधानिक आश्वासन के विपरीत होने और प्रतिभा और योग्यता को कम महत्त्व देने के कारण भी की गई है.

यद्यपि आरक्षण के समर्थक आमतौर पर कहते हैं कि वे जाति को एक सामाजिक संस्था के रूप में मान्यता देने के विरोधी हैं, इस क़दम का तात्कालिक परिणाम जाति स्थिति को निहित स्वार्थ के रूप में स्थायी बनाना है. केंद्रीय और राज्य सरकारें समय–समय पर जाति प्रकोष्ठों के दबाव में दूसरे भी कई समुदायों के नाम अन्य पिछड़े वर्गों की श्रेणी में जोड़ती रही हैं. उच्चतम न्यायालय के निर्देश के अनुसार सरकार के लिए यह आवश्यक है कि वह पिछड़ी जातियों के संपन्न सदस्यों (क्रीम लेयर) को पहचाने और उन्हें आरक्षण के लाभों से दूर रखे, लेकिन इसे लागू कर पाना कठिन है.

संवैधानिक और विधायी उपायों के अतिरिक्त, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण और धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रियाओं ने भी जाति व्यवस्था पर गहरा प्रभाव डाला है. इन प्रक्रियाओं ने आमतौर पर इसे जातियों में निहित धार्मिक मूल्यों के शिथिलीकरण और आर्थिक गतिविधियों के चरित्र में मूलभूत परिवर्तन के माध्यम से कमज़ोर किया है. एक तरफ़, जातियों के बढ़ते आंतरिक विभेदीकरण से श्रेणी क्रम समाप्त होता जा रहा है (शैक्षिक स्तर, व्यावसायिक अनुसरण, आय और जीवन शैली के संदर्भ में) और दूसरी तरफ़, अंतर के संदर्भ में बाहरी (अंतर्जातीय) संबंधों को पुनर्परिभाषित किया जा रहा है. इस प्रवृत्ति को अक्सर जाति का जनजातिकरण कहा जाता है. जातिगत अंतर्विवाह अब भी प्रचलित हैं, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, जहां भारत के लगभग तीन–चौथाई लोग रहते और काम करते हैं. विरोधाभासी रूप से, उच्च जातियों के मूल्य अक्सर उनके संस्थानगत और श्रेणीगत परिमाणों से अलगाव और समाज में उनके फैलाव के कारण बरक़रार रहते हैं. ऐसा तमिलनाडु में देखा गया है, जहां बहुत से ब्राह्मण मूल्यों को आज संभ्रांतवर्गीय मूल्य माना जाता है. संक्षेप में, जाति अपने 20वीं सदी के अवतार में बहुत परिवर्तित हो चुकी है, लेकिन यह समाप्ति से बहुत दूर है.

निष्कर्ष

एक अकथित और स्पष्ट धारणा यह है कि जाति पूरे दक्षिण एशिया में हिंदू समाज की एक विशिष्ट संस्था है (बांग्लादेश और नेपाल सहित). इस धारणा को स्वीकारना या अस्वीकार करना इस बात पर निर्भर करता है कि इसके लिए संस्थाओं के रूप पर बल दिया जाता है (संरचनात्मक दृष्टिकोण) या उनके विषय पर (सांस्कृतिक दृष्टिकोण). संरचनात्मक दृष्टिकोण का चरित्र, वर्गीकरण और सामान्यीकरण करने वाला है. उदाहरणार्थ जाति के आधार पर अफ़्रीकी–अमेरिकियों और यूरोपीय–अमेरिकियों से संबंधित अवधारणाओं की चर्चा निःसंकोच नहीं की जाती है. सांस्कृतिक दृष्टिकोण समाज का ठेठ रूप निर्धारित करता है और दूसरे समाज से भिन्नता रेखांकित करता है. वह इस भिन्नता को तुलना का आधार बनाता है.

भारत में, जैसा पहले बताया गया है, हिंदू धर्म के अलावा अन्य धर्मों के अनुयायी– बौद्ध, जैन और सिक्ख– जाति मूल्यों और भेदभावों का सिद्धांततः खंडन करते हैं, लेकिन व्यवहार अक्सर सिद्धांतों से अलग होता है. सिद्धांत और व्यवहार में इस अंतर का एक बड़ा कारण है कि जाति धर्म परिवर्तन के कारण बौद्ध और सिक्ख मतों में भी प्रवेश कर गई, विशेषकर हिंदू अनुसूचित जातियों के धर्म परिवर्तन के साथ, विशेषकर हाल के समय में. इसका एक विडंबनापूर्ण परिणाम यह मांग है कि जो आरक्षण के लाभों के हकदार हैं, उन्हें हिंदू समाज से निकल जाने के कारण इस सुविधा से वंचित नहीं किया जाना चाहिए.

मुसलमान, जो जनसंख्या का लगभग 13 प्रतिशत हैं, आनुष्ठानिक शुद्धता के हिंदू मूल्य को पूरी तरह ख़ारिज कर चुके हैं, किंतु अनुवांशिक व्यवसाय और व्यावसायिक समूह में ही विवाह करने की प्रवृत्तियां, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, सामान्य हैं. आनुष्ठानिक शुद्धता के उनके अपने मूल्य हैं, किंतु कुछ मामलों को छोड़कर ये सामाजिक भेदभाव के आधार नहीं हैं. मुस्लिम व्यावसायिक समूहों को जातियों का समानांतर कहा जा सकता है. दक्षिण भारत में ईसाई धर्म में परिवर्तित होने वालों के वंशजों में जाति के मूल के विद्यमान रहने को उनके सामाजिक संगठन का लक्षण अनिवार्य रूप से नहीं माना जा सकता.

20वीं सदी के अंत में, भारतीय मूल के हिंदू बड़ी संख्या में हर दिशा में रोज़गार की तलाश में विदेश चले गए. अकेले संयुक्त राज्य में लगभग 10 लाख पहली पीढ़ी या दूसरी पीढ़ी के अप्रवासी हैं. उनमें आनुष्ठानिक शुद्धता और अशुद्धता की धारणाएं लगभग समाप्त हो गई हैं. कुछ खान–पान संबंधी वर्जनाएं (शाकाहार, गोमांस नहीं खाना) विद्यमान हैं, लेकिन इन्हें धार्मिक विशेषता के बजाय सांस्कृतिक माना जाता है. जाति में विवाह, यद्यपि किसी तरह अनिवार्य नहीं हैं, अभी भी अंतर्जाति या अंतर्धर्म विवाह की तुलना में यह ज़्यादा प्रचलित है, लेकिन यह पारंपरिक जातिगत मूल्यों की अभिव्यक्ति के बजाए जातीय पहचान को बनाए रखने की रणनीति अधिक है. जाति भारत में विशेषकर गांवों में विद्यमान है किंतु वह भी अपने पूर्व रूप से काफ़ी परिवर्तित हो चुकी है. इसके निकट भविष्य में समाप्त होने की संभावना नहीं है. लेकिन, राजनीति से इसके वर्तमान संपर्क के बावजूद, यह निश्चित रूप से अतीत की संस्था है भविष्य की नहीं.

* * *

टी.एन. मदान दिल्ली विश्वविद्यालय के आर्थिक विकास संस्थान में समाजशास्त्र के मानद प्राध्यापक हैं और पेरिस विश्वविद्यालय, नांतेर से डॉक्टरेट की मानद उपाधि हासिल कर चुके हैं तथा ग्रेट ब्रिटेन एवं आयरलैंड के रॉयल एंथ्रोपोलॉजिकल संस्थान के मानद फ़ेलो हैं. इन्होंने अनेक पुस्तकों का लेखन–संपादन किया है, जिनमें नवीनतम है– *मॉडर्न मिथ्स लॉक्ड माइंड्स : सेक्यूलरिज़्म ऐंड फ़ंडामेंटलिज़्म इन इंडिया* (1997). इनके सम्मान में एक ग्रंथ *ट्रेडीशन, प्लूरलिज़्म ऐंड आइडेंटिटी* (1999) भी प्रकाशित हो चुका है.

जैव विविधता

टी.एन. खोशू

परिचय

मानव जाति जिन छह प्रमुख पर्यावरणीय संकटों का सामना कर रही है, उनमें सबसे गंभीर है जैव विविधता की क्षति. अन्य पांच संकट हैं– जनसंख्या विस्फोट, भू–अवकर्षण एवं ऊपरी मिट्टी का क्षय, सीमित होते वन, जलवायु परिवर्तन, जिसमें ओज़ोन छिद्र भी शामिल है तथा एड्स महामारी.

जैव विविधता प्रजातीय प्रचुरता का ही नया नाम है, अर्थात भूमि, मीठे पानी तथा समुद्र में पाए जाने वाले विभिन्न पेड़–पौधे, प्राणी व सूक्ष्म जीव. जैव विविधता जैव मंडल का प्रमुख अंग है. जैव मंडल को इस तरह परिभाषित किया जा सकता है, 'यह धरती का ऐसा जीवित आवरण है, जिसमें कई अंतर्संयोजन, अंतर्संबंध तथा अंतर्राश्रित उपतंत्र हैं.' जैव मंडल का यह तंत्र जब तक कोई प्राकृतिक और/या मानव निर्मित व्यवधान न हो, अपने आप में आत्मनिर्भर तथा स्वपुनर्जनित होता है. जैव मंडल का यह तंत्र सौर ऊर्जा रूपी ईंधन से संचालित है.

जैव विविधता का एक उप–समूह आनुवंशिक वैविध्य है, जो एक वंश की प्रजातियों में तथा उनके बीच पाई जाने वाली विविधता है. उदाहरण के लिए, *ओराइज़ा* वंश में 22 प्रजातियां एवं 70 हज़ार से ज़्यादा कृष्ट चावल की क़िस्में हैं, जिनका वानस्पतिक नाम *ओराइज़ा सैटाइवा* है. मनुष्य समेत सभी जीवों का अस्तित्व आनुवंशिक विविधता तथा जैव विविधता पर निर्भर है. मानव जाति का भविष्य अपरिवर्तनीय रूप से कृषि, पशुपालन, मत्स्यपालन, चिकित्सा तथा जैव उद्योग व अन्य चीजों से जुड़ा है. एक संतुलित अनुमान के अनुसार, एक निम्न मध्यम वर्ग का भारतीय कम से कम 75 प्रजातियों का प्रतिदिन भोजन, पेय, मसालों, वस्त्र, आवास, मनोरंजन आदि में उपयोग करता है. कृषि, आवास, उद्योग, सड़कों, रेलवे तथा हवाई अड्डों के लिए जंगलों की कटाई के कारण जैव विविधता को संकट पैदा हुआ है. चरागाहों में अत्यधिक चराई, वनों की कटाई व उनमें आग लगना, ईंधन के लिए पेड़ों की बेतरतीब कटाई और लकड़ियां एकत्रित करना, उवर्रकों का अविवेकपूर्ण उपयोग, फ़सलों में ज़रूरत से ज़्यादा सिंचाई, मीठे पानी और समुद्री जल से मछलियों का अत्यधिक दोहन, जलासिक्त क्षेत्रों का भरना तथा निकासी, घटिया जल प्रबंधन, शहरीकरण तथा वायु एवं जल का प्रदूषण अन्य ऐसे कारनामे हैं, जिनसे जैव विविधता को ख़तरा है.

जैव विविधता, मिट्टी, वानस्पतिक आवरण, जल, वायु के रासायनिक संयोजन के संरक्षण तथा जलवायु के नियमन के द्वारा जैव मंडल के स्वास्थ्य को सुनिश्चित करती है. जैव भार के निर्माण, संसाधन और उपयोगिता तथा भोजन के लिए पशुओं का उपयोग, ऊर्जा, संकर्षण आदि का आधार जैव विविधता है.

सौजन्य : सी.बी. अरुण कुमार

यह संसाधन, हालांकि नवीनीकरण योग्य है, फिर भी प्राकृतिक आवासों में मानवीय हस्तक्षेप के कारण यह सीमित हो सकता है. यदि ऐसा हुआ, तो संपूर्ण मानव सभ्यता संकट में आ जाएगी.

अतः मानव जाति का जैव विविधता के बिना अस्तित्व नहीं है, जबकि जैव विविधता का अस्तित्व मानव जाति के बग़ैर भी संभव है. दीर्घकालीन हितों तथा मानव समेत संपूर्ण जीव मंडल के कल्याण के लिए जैव विविधता को बचाए रखना ज़रूरी है.

प्रमुख घटक

जैव विविधता के तीन प्रमुख घटक हैं– जैव विविधता स्वयं, पारिस्थितिक प्रणालियां तथा जैव विकास. जैव विविधता एक मूलभूत संचित पूंजी है. जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण मूलभूत क्रियाएं प्रकाश संश्लेषण व साथ ही कार्बन, फ़ास्फ़ोरस, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, गंधक के जैव भू–रसायन चक्र व अन्य चक्र पारिस्थितिक क्रियाओं के अंतर्गत आते हैं. जल चक्र तथा मृदा निर्माण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, क्योंकि ये दोनों जीवन के रखरखाव व स्थायित्व के नाजुक बिंदु हैं. जैव विकास की मूलभूत क्रियाएं परिवर्तन, पुनर्संयोजन तथा प्राकृतिक चयन हैं, जो क्रमशः जाति निर्माण, प्रतिस्पर्द्धा, परभक्षण, परजीविता, सहपरोपकारिता, सहअनुकूलन व सह मूल्यांकन और अंत में प्राकृतिक चयन तथा योग्यतम की उत्तरजीविता की ओर ले जाती हैं. जैव विकास जीव विशेष, जनसंख्या, समुदायों और पारिस्थितिक तंत्रों के परिमार्जन तथा सतत नवीनीकरण को सुनिश्चित करता है.

सौजन्य : सी.बी. अरुण कुमार

जलवायु परिवर्तन तथा जैव विविधता का क्षय अंतर्संबंधित है. वर्षा, वाष्पन, वाष्पोत्सर्जन, वायु आवृत्ति, आंधी और वन आच्छादन की प्रकृति तथा विस्तार में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव जीवों की समष्टि तथा वनों के संयोजन एवं वितरण पर पड़ता है. इसके कारण वन्य प्रजातियों का देशांतरण, प्रवालों (कोरल्स) की वृद्धि, समुद्र के स्तर में वृद्धि, कृषि पारिस्थितिक तंत्रों तथा खाद्यान्न उत्पादन और अंततः सभी मानवों पर प्रभाव पड़ता है.

जैव विविधता के स्तर

जीव विशेष, आबादी, समुदाय तथा पारिस्थितिक तंत्र, जैव विविधता की आधारभूत इकाइयां हैं. जीव विशेष के स्तर पर यह इकाई आनुवंशिक विविधता होती है, सही अर्थों में जीन का वैविध्य. जाति विशेष के जीवों का समूह, जिनमें परस्पर अंतर्प्रजनन होता है, आबादी कहलाता है. पौधों, प्राणियों तथा सूक्ष्म जीवों की आबादी के समूह, जो किसी पारिस्थितिक क्षेत्र विशेष में क्रियाशील रहते हैं, समुदाय का निर्माण करते हैं. किसी पारिस्थितिक क्षेत्र में परस्पर क्रियाशील समुदायों के एक बड़े समूह को पारिस्थितिक तंत्र कहते हैं. जल तथा थल के आवास स्थलों पर पाए जाने वाले पारिस्थितिकी तंत्रों से जैव मंडल का निर्माण होता है. अतः किसी भी संगठन में जीव विशेष से पारिस्थितिक तंत्रों तक और पारिस्थितिक तंत्रों से जैव मंडल तक क्रमशः जटिलता बढ़ती जाती है. जींस (जीवों में आनुवंशिक भिन्नता का कारक) तथा पारिस्थितिक तंत्रों के बीच जो सूत्र होता है, उसे डी.एन.ए. (डी–ऑक्सीराइबोस न्यूक्लिक एसिड) अथवा जीवन अणु कहते हैं, जिसकी उत्पत्ति 3.6 से 4 अरब वर्षों पूर्व हुई. जेम्स डी.

वॉटसन तथा फ़्रांसिस क्रिक ने इसके कोड को 25 अप्रैल 1953 को पृथक किया. तब से जेनेटिक कोड की सर्वव्यापकता स्थापित हुई.

मोटे तौर पर कहा जाए, तो जैव मंडल अथवा जैव विविधता की दो प्रमुख अवस्थाएं हैं : स्वस्थ अवस्था, जहां जैव संवर्द्धन होता है तथा अस्वस्थ अवस्था, जहां जैव क्षय होता है. एक प्रजाति सैकड़ों जीवों की इकाइयों से अरबों आबादी की भिन्न प्रजातियों, पेड़–पौधों, प्राणियों व सूक्ष्म जीवों की लाखों प्रजातियों, हज़ारों वंशों, सैकड़ों कुलों तथा अंततः केवल पांच जैविक जगतों (मोनेरा, प्रोटिस्टा, फ़ॅन्जाई, प्लांटी और एनिमेलिया) तक आते–आते संख्या अवश्य घटती नज़र आती है, लेकिन पदानुक्रम तथा संगठन, दोनों दृष्टि से जटिलता में ग़ज़ब की वृद्धि दिखाई देती है. जैव विविधता, मिट्टी, पानी, वन, प्रकाश–संश्लेषण, गैसों के सही मिश्रण, पारिस्थितिक प्रक्रियाओं, जैव भू–रसायन चक्रों तथा जलवायु की स्थिरता के द्वारा सुनिश्चित करती है. जब प्राकृतिक वरण विधि आनुवंशिक विविधता पर क्रियाशील होती है, तब जैव समृद्धता होती है, यही जैव विविधता का मूल है. इसी तरह, विभिन्न स्तरों पर सतत आनुवंशिक तथा जैव विकासीय परिमार्जन और जैव वैविध्य का नवीनीकरण होता रहता है, ताकि नई पारिस्थितिक चुनौतियों का सामना हो सके.

मानव निर्मित परिवर्तनों के कारण जैव मंडल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, फलस्वरूप जीवों का क्षय हुआ है, जो एक अपरिवर्तनीय प्रक्रिया है. अंततः इसका परिणाम जैवभार के उत्पादन तथा उससे संबंधित जैविक अभिक्रियाओं की क्षति है. जैव क्षय आज मानव जाति के सामने सबसे बड़ा धर्मसंकट है, जो उसी के क्रियाकलापों की देन है और मानव को दूसरी प्रजातियों से पृथक करता है. संक्षेप में जैव विविधता में वर्तमान संकट यह है कि मानव जाति और शेष प्रजातियों के बीच के टकराव को कैसे हल किया जाए.
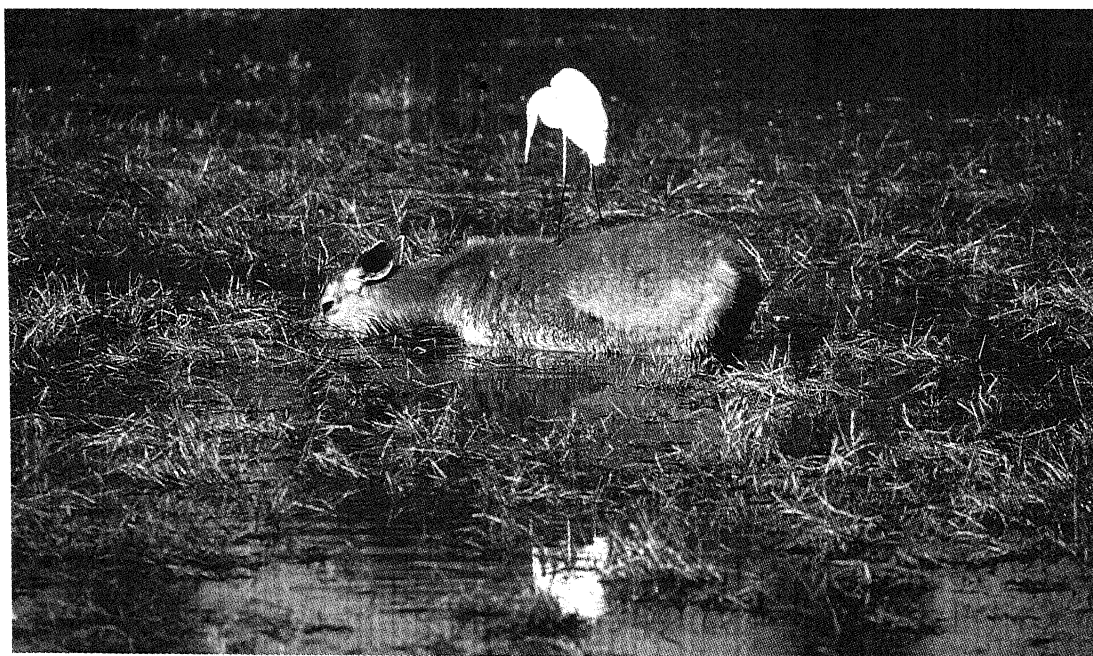
सौजन्य : वेंकट राम नरसैया
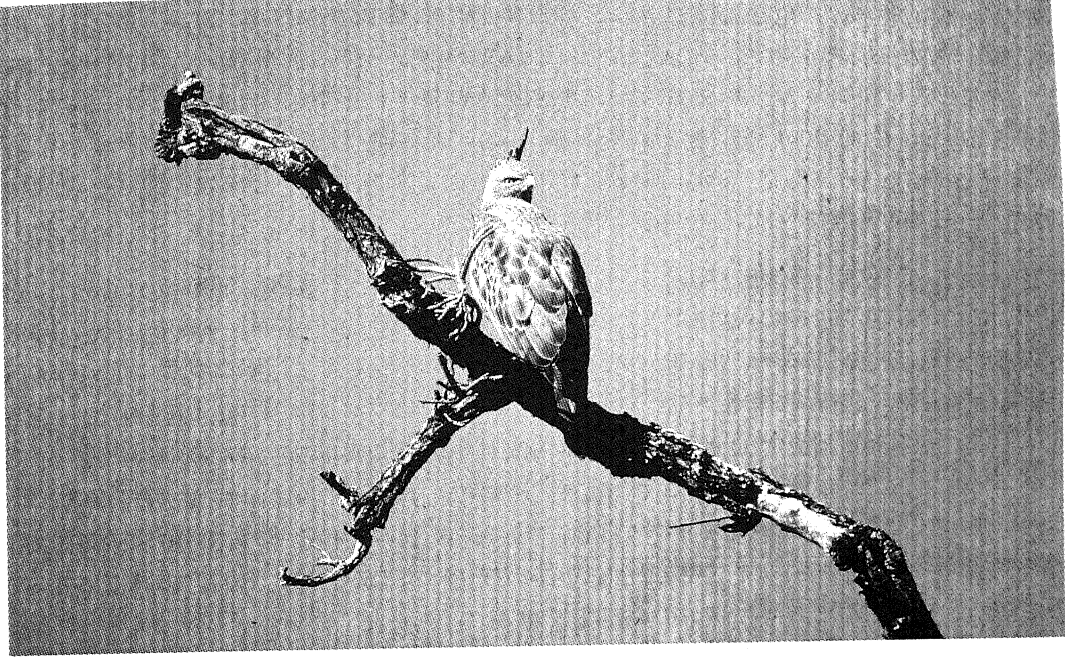
सौजन्य : वेंकट राम नरसैया

जैव विविधता का विस्तार

विश्व की अधिकांश जैव विविधता उष्णकटिबंधी तथा उपोष्णकटिबंधी वनों में स्थित है. भू–वैज्ञानिक काल के दौरान उष्णकटिबंधीय क्षेत्र स्थिर रहे, और वहां जैव विविधता की बड़ी हानि नहीं हुई. दूसरी ओर, हिमाच्छादन की अनेक घटनाओं के फलस्वरूप शीतोष्ण एवं अन्य क्षेत्र प्रभावित हुए, अतः जीव उत्तरी व दक्षिणी गोलार्द्धों से चलकर (क्रमशः दक्षिण या उत्तर की ओर) उष्णकटिबंध तथा उपोष्णकटिबंध की ओर आए. इस प्रक्रिया में कुछ वनस्पतियों तथा प्राणियों की प्रजातियां पूरी तरह नष्ट हो गईं. फिर भी, हिमाच्छादन के मंद होने के बाद शीतोष्ण क्षेत्रों में जीव पुनः बसने लगे. देशांतरण की इस आवाजाही में कई प्रजातियां तो पूरी तरह से नष्ट हो गईं और कई नई पैदा हो गईं और केवल वे ही प्रजाति अस्तित्व में रहीं, जिनमें दूसरों से प्रतिस्पर्द्धा करने की योग्यता अंतर्निहित थी.

उष्णकटिबंधों का गर्म तापमान एवं नमी का उच्च स्तर शीतोष्ण कटिबंधों के निम्न तापमान की तुलना में अस्तित्व दर बढ़ाने के लिए अनुकूल होता है. कड़ाके की सर्दी में अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए विशेष लक्षण, जैसे तंद्रावस्था, शीतनिष्क्रियता या देशांतरण की आवश्यकता होती है. ऐसे अनुकूलन को प्राप्त करना सामान्यतः कठिन होता है. इस वजह से कुछ प्रजातियों की संख्या उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों की तुलना में शीतोष्ण कटिबंधों में कम हो जाती है.

उष्णकटिबंधों में सौर ऊर्जा अधिक उपलब्ध होने से जैवभार का उत्पादन अधिक होता है. इस कारण से यहां अधिक उत्पादकता तथा संसाधनों का व्यापक आधार होता है, इसलिए उष्णकटिबंधों में जैव विविधता की अधिक संभावना होती है.

शीतोष्ण तथा उष्णकटिबंधीय वनस्पतियों में प्रमुख अंतर यह है कि शीतोष्णकटिबंधों में प्रजातियों की संख्या कम, परंतु आबादी अधिक होती है, जबकि उष्णकटिबंधों में आबादी छोटी (कभी एकल या पृथक

जीव विशेष) परंतु प्रजातियों की संख्या अधिक होती है तथा वे परस्पर संबंधित पीड़कों (पेस्ट्स), रोगों तथा परजीवियों के दबाव में रहते हैं. शीतोष्ण क्षेत्रों में ये कड़ाके की ठंड के कारण विलुप्त हो जाते हैं. उष्णकटिबंधों के जीव अधिक विजातीयता विकसित करके इन रोगों, पीड़कों तथा परजीवियों का सामना कर लेते हैं. शीतोष्ण क्षेत्रों में प्रजातियों की संख्या घट रही है, लेकिन जो प्रजातियां बनी हुई हैं, उनकी आबादी बढ़ रही है. परिणामस्वरूप शीतोष्ण क्षेत्रों की तुलना में उष्णकटिबंधों में स्थानिक अथवा विरल प्रजातियों की संख्या अधिक होने लगती है.

उष्णकटिबंधों के जीवों को शीतोष्ण क्षेत्रों के जीवों से पुरातन होने के कारण प्रजनन विज्ञान सहित बढ़ते विशिष्टीकरण के साथ स्थानीय अनुकूलन विकसित करने हेतु काफ़ी अधिक समय मिला. परिणामस्वरूप, उष्णकटिबंधीय तथा उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में विश्व के शीतोष्ण क्षेत्रों की तुलना में अधिक जैव वैविध्य पाया जाता है.

भारत में जैव विविधता

भारत की जैव विविधता के अनुमान काफ़ी विविध एवं परस्पर विरोधाभासी हैं. भला हो वनस्पति और प्राणी सर्वेक्षणों का, जिनकी मदद से इस संबंध में विश्वसनीय जानकारी मिल सकी. भारत में अब तक लगभग 12 लाख प्रजातियों की पहचान की जा चुकी है.

विश्व संरक्षण निगरानी केंद्र (डब्ल्यू.सी.एम.सी., 1993) के अनुसार, विश्व स्तर पर अब तक कुल 16 लाख प्रजातियों का वर्णन किया जा चुका है. हालांकि डब्ल्यू.सी.एम.सी. के एक अनुमान के अनुसार, विश्व स्तर पर लगभग 1 करोड़ 70 लाख प्रजातियां होनी चाहिए, यानी वर्तमान में ज्ञात प्रजातियों से 11 गुना अधिक. यह वृद्धि प्रमुख रूप से उष्णकटिबंधों तथा उपोष्णकटिबंधों से है. तथापि विश्व स्तर

सौजन्य : वेंकट राम नरसैया

पर प्रजातियों की संख्या का अधिक सही आंकड़ा 1 करोड़ 20 लाख है (डब्ल्यू.सी.एम.सी., 1993). यद्यपि भारत में पूरे विश्व का कुल 2.4 प्रतिशत भूभाग है, तथापि विश्व जैव विविधता में भारत का योगदान प्रजातियों के 8 प्रतिशत के आसपास है.

विलुप्ति का भंवर : मुख्य संकट

विलोपन के छह प्रमुख प्रसंग हैं :

• ओर्डोविसियन (लगभग 50 करोड़ वर्ष पूर्व), जब 50 प्रतिशत प्राणी कुल, बहुत से ट्राइबोलाइट्स समेत ख़त्म हुए थे.

• डेवोनियन (लगभग 40 करोड़ वर्ष पूर्व), जब ऐग्नेथंस, प्लेकोडर्म मछलियों तथा कई ट्राइलोबाइट्स सहित 30 प्रतिशत प्राणी कुल विलुप्त हुए.

• परमियन (लगभग 25 करोड़ वर्ष पूर्व), जब पुनः 50 प्रतिशत प्राणी कुल, जिनमें 95 प्रतिशत से भी अधिक समुद्री प्रजातियां, कई वृक्ष, उभयचर, अधिकांश ब्रायोज़ोअंस तथा ब्रेकियोपोड्स व सभी ट्राइलोबाइट्स ख़त्म हुए.

• ट्राएसिक (लगभग 18 करोड़ वर्ष पूर्व), जब सरीसृप व समुद्री मोलस्क सहित 35 प्रतिशत प्राणी कुल ख़त्म हुए.

• क्रिटेशियस (6.5 करोड़ वर्ष पूर्व), जब प्रबल सरीसृपों (डायनोसोर) तथा कई समुद्री प्रजातियों, फ़ोरामेनीफेरंस व मोलस्क सहित विलुप्त हुए; तथा

• प्लिस्टोसिन (लगभग 10 लाख वर्ष पूर्व), जब बड़े स्तनधारी व पक्षी विलुप्त हुए.

ये सभी विलुप्तियां पृथ्वी पर होने वाले बड़े परिवर्तनों के कारण हुईं. वर्तमान में विलुप्तियां हालांकि इतने बड़े पैमाने पर नहीं हो रही हैं, पर मामला काफ़ी गंभीर है और इसका संपूर्ण कारण मनुष्य है. वर्तमान विलुप्तियों का यह दौर पहले से भिन्न है, क्योंकि पुनर्स्थापन कहीं नज़र नहीं आता. यद्यपि संकटापन्न प्राणियों के बारे में कुछ अनुमान अवश्य है, लेकिन वर्तमान दौर में विलुप्त हो चुके प्राणियों के बारे में अब तक वास्तविक आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं.

हर प्रजाति या पारिस्थितिक तंत्र का उद्भव और विकास पुनर्संगठन के चरण की स्थापना से होता है. इसमें नए वातावरणीय कारक अग्रगामी प्रजातियों को जन्म देते हैं. ये प्रजातियां पूरी तरह अवसरवादी होती हैं. इसके बाद एक नई अवस्था उभरती है तथा नवीन जैव विविध सत्ता उत्पन्न होती है. इसके बाद संरक्षण की अवस्था आती है, जिसमें संघटन होता है और चरमोत्कर्ष की स्थिति आती है. अंतिम अवस्था जीर्णावस्था होती है, जिसमें आग, आंधी तथा महाप्रलयकारी प्राकृतिक आपदाएं घटित होती हैं. इसके बाद नए चक्र तथा नए पुनर्संगठन का चरण प्रारंभ होता है. वनस्पतियों तथा प्राणियों के क्रमिक विकास का सरसरी तौर पर अध्ययन करने पर दिखाई देता है कि किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में कभी भी किसी प्रजाति अथवा समुदाय की प्रजातियों अथवा समुदायों में स्थिरता या दृढ़ता नहीं पाई जाती. उद्भव तथा विलोपन का क्रमिक चक्र ही जैव विकास का नियम तथा आधार है.

इसलिए एक प्रजाति या पारिस्थितिक तंत्र उत्पन्न होकर, वृद्धि करके चरम सीमा तक जाता है और फिर कम होता जाता है. संकटापन्न प्रजातियों को संरक्षण देने के क्या प्रयास किए जा रहे हैं? प्रयास नीचे जाते रुझान को रोकने तथा शीर्ष को पठार में बदलने के हो रहे हैं. यह महज़ प्रजातियों को

संरक्षण देने या उनके इर्द–गिर्द घेराबंदी के लिए बाड़ लगाने भर से नहीं होगा. इसे स्थान व काल में संरक्षण जीव विज्ञान की सहायता से दीर्घकालिक रणनीति विकसित करके किया जा सकता है. प्रयास आनुवंशिक–क्रम विकास मूलक (जेनेटिक इवॉल्यूशनरी) होना चाहिए, न कि घेराबंदी विन्यासित. संरक्षण जीव विज्ञान संयुक्त विधाओं वाला विषय है, जिसकी उत्पत्ति संरक्षण एवं जैव विविधता के स्थायी उपयोग की ज़रूरतों के जवाब में हुई है.

बाघ का संरक्षण

भारत में विलुप्ति के भंवर में जा चुकी वनस्पति प्रजातियों का सही आंकड़ा उपलब्ध नहीं है. सिर्फ़ बाघों के मामले में एक श्रेष्ठ उदाहरण है, जिससे बहुत कुछ सीखा जा सकता है.

सन 1900 में बाघों का विस्तार पश्चिम में केस्पियन सागर से लेकर पूर्व में जावा द्वीप तक तथा उत्तर में साइबेरिया से दक्षिण में भारतीय उप महाद्वीप के छोर तथा सुमात्रा और बाली तक था. बाघों की आठ विशिष्ट उपजातियां थीं. हालांकि तीन उपजातियां विलुप्त हो गई हैं : बाली बाघ (1937 में आख़िरी बार देखा गया), केस्पियाई बाघ (1950 के दशक में विलुप्त हुआ), तथा जावा बाघ (1972 में अंतिम बार देखा गया). इ. लिंडेन (1994) के अनुसार, साइबेरियाई बाघों (बाघ की सबसे शानदार उपजाति) की संख्या 150 और 200 के मध्य है, 30 से 80 तक दक्षिण चीनी बाघ है तथा लगभग 650 सुमात्रा बाघ हैं. साइबेरियाई तथा दक्षिण चीनी उपजाति क़रीब–क़रीब समाप्त हो चुकी है. इसकी वजह तथा प्रजातियों के संरक्षण से जुड़े स्थानीय संबंधित अधिकारियों और लोगों के प्रयासों में कमी और बाघ की हड्डियों, मांस, जननांगों (सभी देशी औषधियों के लिए) तथा फ़र और खाल की अत्यधिक मांग

सौजन्य : वेंकट राम नरसैया
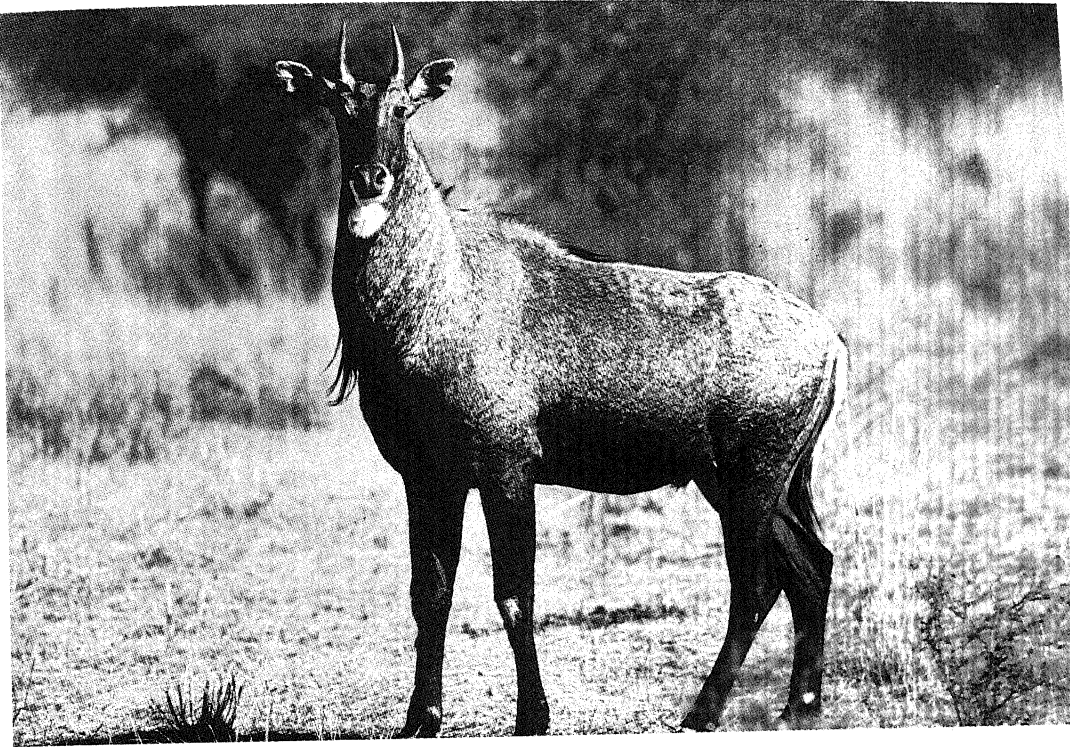
सौजन्य : वेंकट राम नरसैया

थी. भारत–चीनी प्रजाति की संख्या 1,000 से 1,700 है, लेकिन बाघों की सर्वाधिक संख्या (3,000 से 4,500 के क़रीब) भारत में है. प्रजाति के रूप में बाघों के बचे रहने की उम्मीदें केवल भारत में दिखाई देती हैं.

यद्यपि बाघों की कुल संख्या भारत में पर्याप्त लगती है, पर वास्तव में इनकी देश में उपस्थिति केवल 20 बाघ आरक्षित क्षेत्रों (टाइगर रिज़र्व) में है. इन अभयारण्यों में जींस के आदान–प्रदान की कोई संभावना नहीं है. ऊपरी तौर पर, अधिकांश बाघ अभयारण्यों में, जहां बाघों की संख्या इष्टतम से कुछ कम होती है, वहां समान जीन प्रारूप की प्रतिकृति एकमात्र उदाहरण है. स्पष्ट तौर पर, भारत में बाघ संरक्षण का कार्य संख्या तक न होकर आनुवंशिक वैविध्य के विस्तार व प्रकृति से जुड़ा है. आनुवंशिक विभिन्नता को बनाए रखने के लिए प्राणियों की न्यूनतम संख्या सुनिश्चित होनी चाहिए. छोटी आबादियों का प्रायः विषमयुग्मता की स्थिति में तीव्र पतन हो जाता है, फलस्वरूप इनके आनुवंशिक विचलन (जेनेटिक ड्रिफ़्ट) तथा अंतःप्रजनन (इंटरब्रीडिंग) कम हो जाते हैं. छोटी आबादियों के परिणाम बहुत ही भयंकर होते हैं. प्रजातियों के आवश्यकता से अधिक दोहन से आवास की गुणवत्ता और संघटन सहित पारिस्थितिक तंत्र की बनावट बदल जाती है. इन परिस्थितियों के जनसांख्यिक परिणामस्वरूप आनुवंशिक विभिन्नता बनाए रखने के लिए आवश्यक न्यूनतम जीवों की संख्या में अक्सर कमी हो जाती है. विकासवाद की भाषा में कहें, तो यह आनुवंशिक–क्रम विकास मूलक लचीलेपन को क्षति पहुंचाता है. इसलिए वहां आनुवंशिक विभिन्नता, आनुवंशिक विचलन और अंतःप्रजनन अवसाद में कमी के कारण विलुप्तता की प्रवृत्ति अधिक होती है.

इन परिस्थितियों में विलुप्तता का भंवर निर्मित हो जाता है (यदि वह पहले से निर्मित न हुआ हो). कालानुक्रम के अनुसार ये हैं, निम्न प्रभावी जनसंख्या परिमाण, अधिक जनसांख्यिक विभिन्नता, प्राकृतिक वास के विखंडन के कारण आबादी का बंट जाना, अधिक अंतःप्रजनन अवसाद, अधिक आनुवंशिक विचलन तथा अनुकूलन योग्यता में कमी. यदि कठोर सुधारात्मक उपाय नहीं अपनाए जाते हैं, तो कमोबेश बाघ विलुप्तता के भंवर में पहुंच चुके होंगे.

आनुवंशिक वैविध्य का विलोपन

प्रागैतिहासिक काल में फ़सलों की क़रीब 75 प्रतिशत क़िस्में नष्ट हो चुकी हैं. यही भेड़, बकरी, पशु, घोड़े, सूअर, भैंस, मुर्ग़ी, ऊंट, गधे तथा खरगोश आदि की नस्लों के लिए भी सत्य है. पालतू बनाने की क्रिया पौधों से प्रारंभ होकर प्राणियों तक पहुंची है. प्राणियों का उपयोग पहले भी और आज भी मांस, दूध, भारवाही, रेशे, फ़र, ख़ाल व खाद के लिए होता रहा है. सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि पशुधन को कभी भी भुनाई जा सकने वाली दौलत समझा गया है.

बड़ी संख्या में प्राणी अब विलुप्ति के कगार पर हैं. ये नस्लें महत्त्वपूर्ण जीनों का खज़ाना हैं. इसी कारण से 1993 में खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ़.ए.ओ.) ने प्राणियों के जनन द्रव्य (जर्मप्लाज़्म) के संरक्षण का कार्यक्रम बनाया.

ऐसी ही स्थिति नैसर्गिक तथा कृत्रिम मत्स्य उत्पादन की भी है. समुद्र तथा मीठे जल के स्रोतों से मछलियों के अत्यधिक निष्कर्षण के कारण इनके सार्वभौम संकट की स्थिति पैदा हो गई है. इसका एक ही विकल्प है मत्स्यपालन के बाद मत्स्य खेती. क्रस्टेशियाई जंतुओं का जलीय कृषि द्वारा उत्पादन भी सही दिशा में एक क़दम है. इससे समुद्री जीवों की प्राकृतिक आबादी बची रहेगी.

मानव समाज तथा जैव विविधता का प्रसार

पूर्वी अफ़्रीका के उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में वंश ऑस्ट्रेलोपिथिकस तथा होमो (जिसका संबंध मानव 'होमो सेपियन' से है) का उद्भव एवं क्रमिक विकास हुआ. यहां से मानव का देशांतरण बेबिलोनियाई क्षेत्र में हुआ, फिर कुछ पश्चिम में यूरोप तथा अन्य पूर्व में एशिया की ओर चले गए. एक बार एशिया में पहुंचने के पश्चात कुछ दक्षिण में चले गए और अंततः ऑस्ट्रेलिया पहुंचे, और अन्य उत्तरी एशिया की ओर गए तथा प्लीस्टोसीन हिमाच्छादन के दौरान बेरिंग स्ट्रेट को पार करते हुए उत्तरी अमेरिका महाद्वीप और वहां से मध्य अमेरिका और अंत में दक्षिण अमेरिका चले गए. जीवाश्म तथा पुरातत्वीय प्रमाणों द्वारा भी प्रागैतिहासिक काल के इस वैश्विक देशांतरण की पुष्टि होती है.

पिछले 10 लाख वर्षों में हुए क्रमिक विकास तथा विविधता के आधार पर मानव इतिहास को तीन प्रमुख समाजों में बांटा जा सकता है. इनमें प्रथम शिकारी एवं भोजन एकत्र करने वालों का समुदाय था, जिनके भोजन, आवास एवं वस्त्र के स्रोत के रूप में जैव विविधता सबसे प्राथमिक संसाधन रही. जैव विविधता मानव अस्तित्व के साथ जुड़ी थी. दूसरा संसाधन पाषाण थे, जिनसे आदिमानव परभक्षी प्राणियों पर अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए औज़ार बनाते थे. उस समय की मानव जाति मुख्यतः ख़ानाबदोश थी और अनुमान के अनुसार, वह क़रीब 80 हज़ार पेड़–पौधों व प्राणियों की प्रजातियों पर आश्रित थी.

इसके बाद कृषि आधारित समाज (लगभग 10 हज़ार वर्ष पूर्व) आया, जब मानव ने कृषि को अपनाया. धीरे–धीरे प्रजातियों पर निर्भरता घटने लगी, जो 1,500–2,000 से अधिक नहीं थी. मानव जाति द्वारा जिन पेड़–पौधों तथा प्राणियों की पहचान करने के साथ उन्हें पालतू बनाया गया, जहां भी मानव गए वे उनके साथ गए. अधिक उत्पादन एवं बेहतर गुणवत्ता के लिए जंगली पौधों का चयन बढ़ता गया. समय के साथ, सक्रिय चयन और पालतू बनाने की विधियों से ये जंगली प्रजातियां मैदानी जातियों तथा खेती योग्य प्रारंभिक क़िस्मों में परिवर्तित हो गईं.

तीसरे प्रकार के समाज का जन्म 18वीं शताब्दी के मध्य में भाप के इंजन के आविष्कार तथा कोयले के ऊर्जा के मुख्य स्रोत के रूप में स्वीकारे जाने से हुआ. इसके साथ ही आधुनिक औद्योगिक समाजों का विकास हुआ. विगत 250 से 275 वर्षों में समाज मात्र 30 प्रजातियों पर ही निर्भर हुआ है. वास्तव में, मानव जाति का अधिकांश भाग आज केवल चार (गेहूं, चावल, मक्का तथा आलू) और अधिक स्पष्ट कहें, तो आठ वनस्पति प्रजातियों (जौ, शकरकंद, बाजरा तथा कसावा) तथा तीन प्राणी प्रजातियों (सूअर, मवेशी तथा कुक्कुट) पर आश्रित है. प्राणियों की इस सूची में भेड़, बकरी तथा भैंस को शामिल कर विस्तार दिया जा सकता है. कृषि एवं शहरी व्यवस्था में जी रही मानव जाति को पौधों और प्राणियों की उच्च उत्पादक क़िस्में निर्भरता प्रदान करती हैं. इतनी कम प्रजातियों पर मानव जाति की बढ़ती निर्भरता आनुवंशिकी और वैज्ञानिक जनन के बढ़ते प्रयोग का प्रतिफल है तथा अब जैव प्रौद्योगिकी द्वारा अनुपूरित है. दूसरे शब्दों में, कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए विज्ञान एवं तकनीकी के बढ़ते उपयोग का परिणाम ही गहन कृषि है.

पूर्व के शिकारी एवं भोजन एकत्र करने वाले समाजों से लेकर आधुनिक औद्योगिक समाजों तक जैव विविधता का आधार 80 हज़ार से मात्र 30 प्रजातियों (उनमें भी मुख्य रूप से 14) तक सिमटकर रह गया है. इस दौरान जैव विविधता उच्च से निम्न स्तर तक तथा जैव उत्पादकता निम्न से उच्च स्तर तक पहुंची है. यह कृषि में विज्ञान तथा तकनीकी के उपयोग के फलस्वरूप हुआ है. आज जैव उत्पादकता अत्यधिक सीमित प्रजाति संख्या के साथ 5.7 अरब लोगों का भरण–पोषण करती है, जबकि प्रारंभिक समय में 1 से 2 करोड़ लोग 80 हज़ार प्रजातियों पर निर्भर थे.

जंगली से खेती योग्य फ़सलों के पौधों में परिवर्तन तथा जानवरों को पालतू बनाने का कार्य मुख्य रूप से विश्व के उष्णकटिबंधीय, उपोष्णकटिबंधीय तथा समशीतोष्ण अथवा शुष्क क्षेत्रों में कुछ विशिष्ट केंद्रों पर हुआ. रूसी वैज्ञानिक एन.आई. वेविलोव (1951) को समकालीन लोगों में सबसे पहले पादप भूगोलवेत्ता के रूप में मान्यता मिली, जिन्होंने इन परिवर्तनों के गूढ़ अर्थ को प्रस्तुत किया. इस क्षेत्र के बाहर केवल उत्तरी यूरोप एक ऐसा स्थान था, जहां रेनडियर को पालतू बनाने का कार्य किया गया था.

फ़सल प्रजातियों तथा पालतू जानवरों के भारतीय उद्भव केंद्र में 167 फ़सल प्रजातियां तथा पालतू जानवर, जैसे झेबू, बैल, मुर्ग़े, भैंस तथा ऊंट थे. पौधों में चावल, गन्ना, एशियाई ग्वार क़िस्में (दलहन, फलियां), आम, ककड़ी, बैंगन, नींबू, केला, जूट, कपास (ट्रीकॉटन), कटहल, इलायची, काली मिर्च, अदरक, हल्दी, लघु धान्य, चौलाई की भाजी, कद्दू, एमार्फोफ़ेलस, अरबी, एलोकेसिया, सौंफ, बांस तथा कई औषधीय, सुगंधीय तथा सजावटी पौधों की प्रजातियां उल्लेखनीय हैं.

यद्यपि स्वदेशी प्रजातियों में, जिनका कृषि–जैव विविधता के क्षेत्र में काफ़ी योगदान रहा है, भारत संख्या की दृष्टि से सातवें क्रम पर आता है. तदापि इस सूची में कुछ अत्यंत प्रभावी प्रजातियां भी

शामिल हैं, जो गुणवत्ता की दृष्टि से कृषि जगत में अपना प्रभाव जमाए हए हैं. भारत परोक्ष रूप से घोड़ों, बकरी, मवेशी, भेड़ों, सुरागाय (याक), गधों, तंबाकू, आलू, लाल मिर्च, चौलाई के दानों, मक्का, सोयाबीन और ताड़ के देशीकरण का भी केंद्र रहा है. इनमें से कुछ प्रजातियों का प्रवेश भारत में बहुत पहले ही हो चुका है. इन प्रजातियों का क्रमिक विकास भारतीय क्षेत्र में हुआ तथा भारतीय स्थितियों के अनुकूल होने के कारण मनुष्य की आवश्यकताओं के लिए लंबे समय से इनका चयन हो चुका है. भारत का विश्व कृषि तथा पशुपालन के क्षेत्र में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण जीन्स उपलब्ध कराने में भी योगदान रहा है, जिसकी वजह से मानव कल्याण के क्षेत्र में सार्थक बदलाव आया है.

ग़रीब राष्ट्रों की तुलना में समृद्ध औद्योगिक राष्ट्रों का जैव विविधता तथा आनुवंशिक वैविध्य में अल्प योगदान रहा. कई मुख्य खाद्य फ़सलों का उद्‌भव नम उष्णकटिबंधीय वनों में नहीं, बल्कि अर्द्धशुष्क तथा शुष्क क्षेत्रों में हुआ है. उपरोक्त दोनों क्षेत्र आज विश्व के भूख व अकाल से पीड़ित क्षेत्र हैं.

इन क्षेत्रों के अध्ययन से कुछ बिंदु उभरे हैं– विविधता और उद्‌भव के केंद्र उष्णकटिबंधों, उपोष्णकटिबंध, शुष्क व अर्द्धशुष्क पट्टी में पाए जाते हैं, जो कई उपयोगी जीन्स के भंडार हैं. ये क्षेत्र उच्च जनसंख्या घनत्व तथा निम्न कृषि उत्पादकता वाले भी हैं, हालांकि फ़सल प्रजातियों की खेती तथा पशुपालन यहीं प्रारंभ हुआ. उष्णकटिबंधीय तथा उपोष्णकटिबंधीय अफ़्रीका आंशिक रूप से आज भी भूखग्रस्त क्षेत्र हैं. कई केंद्र आदिवासी क्षेत्रों में पाए जाते हैं तथा आदिवासियों के उत्थान व कृषि उत्पादकता बढ़ाने का दायित्व स्थानीय सरकारों का होता है. हालांकि इन क्षेत्रों के मूल निवासियों को ग़रीबी के दलदल से मुक्त कराने के लिए हर तरह की मदद दी जानी चाहिए, साथ ही इन आदिवासियों से जुड़ी फ़सलों तथा प्राणियों की आनुवंशिक संपत्ति के संरक्षण के लिए भी क़दम उठाए जाने चाहिए. यह संपत्ति हज़ारों वर्षों में हुए आनुवंशिक चयन का परिणाम है. अगर अब भी इस दिशा में कार्य नहीं किया गया, तो मानवता को अपूरणीय क्षति होगी. आदिवासियों तथा स्वदेशी लोगों के पास फ़सलों और पालतू जानवरों के रूप में जीन्स का ख़ज़ाना है, हालांकि इन फ़सलों व प्राणियों की नस्लों की उत्पादकता निम्न स्तर की है.

इन चयनित जंगली पौधों व प्राणियों की बुनियादी गुणवत्ता के रूपांतरण का श्रेय प्रारंभिक मानव (विशेषकर महिलाओं) को जाता है, जिन्होंने इन प्रजातियों की जंगली अवस्था में पहचान की. सहज बुद्धि से उन्होंने सही पौधों व प्राणियों का चयन किया. जैव विविधता के संरक्षण एवं उपयोग में महिलाओं की भूमिका प्रमुख रही है. वे उत्पादन से जुड़ी रहीं, जिससे खाद्यान्न की सुरक्षा प्राप्त हुई. महिलाएं पानी (जो स्वयं जैव भार से संबंधित है) तथा वास्तविक जैवभार (बायोमास) के रूप में वनों से लकड़ी, औषधि एवं ईंधन भी एकत्रित करती हैं. वे जैव संसाधनों तथा घरेलू उद्यानों के दैनिक प्रबंधन से भी जुड़ी रहती हैं (एफ़.ए.ओ. 1993).

उच्च जैव विविधता तथा उच्च सांस्कृतिक विविधता के बीच गहरा संबंध है. यहां संस्कृति शब्द का उपयोग मिश्रित अर्थ में इतिहास, संस्कृति, धर्म, दर्शन, भाषा, तथा समाज में विद्यमान देशी चिकित्सा पद्धतियों को दर्शाने हेतु किया गया है. संस्कृति एवं जैव विविधता, दोनों में समृद्ध देशों में इंडोनेशिया, भारत, मैक्सिको, ज़ायरे, ब्राज़ील तथा ऑस्ट्रेलिया का कुछ भाग आता है. इससे प्रमाणित होता है कि संस्कृति और जैव विविधता परस्पर एक–दूसरे को आधार एवं दृढ़ता प्रदान करती आई हैं.

सौजन्य : वेंकट राम नरसैया

भारत जलवायु, भौमिक (मिट्टी द्वारा निर्मित या प्रभावित), जैविक, कृषि, जातीय, सांस्कृतिक, भाषाई, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा ऐतिहासिक विविधता की दृष्टि से भाग्यशाली है. इन वैविध्यों ने टिकाऊ जैव औद्योगिक विकास के लिए परस्पर दृढ़ता व आधार प्रदान करने में सहयोग दिया है. इससे आर्थिक स्थायित्व प्राप्त हुआ है. इन स्थितियों ने अल्पकालिक लाभ देने के बजाय टिकाऊ एवं दीर्घकालिक लचीलापन सुनिश्चित कराया. इस संबंध में अग्रणी अमेरिकी पर्यावरणविद् एल्डो लियोपोल्ड (1949), जो वन्य जीव पारिस्थितिकी (वाइल्ड लाइफ़ इकॉलॉजी) के जनक समझे जाते हैं, के शब्द सार्थक लगते हैं, 'कोई चीज़ तभी सही है, जब वह एकता, स्थायित्व तथा जैविक समुदाय के सौंदर्य को सुरक्षित रखती है. विपरीत रुझान होने पर वह ग़लत है.'

पिछले 10 हज़ार सालों में उद्भव और विविधता के इन केंद्रों पर फ़सल के पौधों तथा पालतू जानवरों की गुणवत्ता एवं गुणात्मकता में जो बुनियादी बदलाव आया, उसका श्रेय पूरी तरह मनुष्य को जाता है. उदाहरण के लिए, जंगली मकचरी का आधुनिक मक्का में रूपांतरण वर्तमान काल के स्पेनिश भाषी मेक्सिकी तथा मध्य अमेरिकी लोगों के प्रयत्नों का प्रतिफल नहीं है, बल्कि इन क्षेत्रों के मूल निवासियों 'मायन' का है. इसी तरह, बारहमासी खरपतवार पत्तागोभी (*बी. ओलरेशिया*) का रूपांतरण आधुनिक पत्तागोभी (जो संपूर्ण पौधे का विशाल कलिका में परिवर्तन है), फूलगोभी तथा ब्रॉकोली (जो क्रमशः सफ़ेद या हरे करोड़ों छोटे फूलों के गुच्छों से बने बड़े व संघनित पुष्पक्रम हैं), ब्रसेल स्प्राउट (पत्तियों के जोड़ पर सबसे छोटी पत्तागोभी), काले (रूपांतरित पर्ण) तथा कोहलरबी (कंदयुक्त तना) हैं. इन

सौजन्य : वेंकट राम नरसैया

उत्परिवर्तनों को कई वर्षों में सावधानीपूर्वक पृथक कर व चयनित कर उगाया गया, जिससे वर्तमान की छह प्रमुख सब्ज़ियों को प्राप्त किया जा सका.

जंगली पूर्वज क़िस्मों तथा कृषि में प्रचलित क़िस्मों के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि उपरोक्त क़िस्में अपने जनकों से काफ़ी भिन्न हैं; ये मुख्यतः मनुष्य का ही सृजन और कौशल हैं. सारांश में ये मनुष्य द्वारा निर्मित व गढ़ी गई कृतियां हैं, इन्हें जंगली से कृषि योग्य बनाने या पालतू बनाने के लिए इनमें किए गए गुणात्मक परिवर्तनों का श्रेय ठेठ देशी लोगों को जाता है, परंतु उत्पादन एवं उत्पादकता के लिए हुए ज़्यादातर गुणात्मक परिवर्तन विज्ञान आधारित (आनुवंशिकी तथा पादप जनन) रहे हैं तथा इनका श्रेय आधुनिक मानव जाति को जाता है.

फ़सलों तथा पालतू जानवरों का आवागमन

फ़सल के पौधे तथा पालतू जानवर कभी स्थिर नहीं रहे, बल्कि अपने उद्‌भव एवं विविधता के केंद्रों से दूर अपने खोजकर्ताओं, प्रवासियों तथा आबादी के स्थानांतरण के साथ भ्रमण करते रहे. यह आवागमन अब विकासशील तथा औद्योगिक कहलाने वाले देशों से तथा उनकी ओर चलता रहा है. प्रवर्तित फ़सलों की खेती अब प्रायः इन विविधता एवं उद्‌भव के केंद्रों से दूरस्थ क्षेत्रों में होने लगी है. कुछ मुख्य फ़सलें बन गईं तथा कुछ मामलों में ऐसा भी हुआ कि उन्हें उनके उद्‌भव वाले देशों को ही निर्यात किया गया. प्राणियों तथा पौधों की कुछ प्रजातियां सर्वव्यापी हो गईं तथा उनकी खेती व पालन सभी क्षेत्रों में होने लगा. यह भौतिक तथा शारीरिक लक्षणों को प्राप्त करने के लिए अत्यंत सावधानीपूर्वक किए गए चयन के फलस्वरूप संभव हो सका. कृत्रिम चयन की इस प्रक्रिया में उत्परिवर्तन की दर बहुत अधिक होने से, सही क़िस्मों के मेलजोल से बेहतर लाभों को पाया जा सका.

उष्णकटिबंधीय अफ़्रीका आज पर्यावरण के सताए शरणार्थियों का घर बन गया है. क्योंकि सभी आधारभूत संसाधन पूर्ण रूप से नष्ट हो चुके हैं, जिन पर कृषि निर्भर थी. इसलिए इन लोगों के पास जीविकोपार्जन को सुनिश्चित करने वाले तरीक़े नहीं हैं. धरती पर जनसंख्या का दबाव ग़रीबी को बढ़ाता है; भू–क्षरण तथा मरुस्थलीकरण वैश्विक जलवायु की रचना को भी प्रभावित कर सकते हैं. पर्यावरण की इस उपेक्षा से जैव विविधता का क्षय हुआ और अंततः देशांतरण हुआ. इसके बाद अन्य सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिणाम आते हैं.

विकासशील एवं औद्योगिक राष्ट्र

जैव विविधता संरक्षण को व्यापक दृष्टि से देखने पर प्रतीत होता है कि विकासशील तथा औद्योगिक राष्ट्रों के बीच विभेद हुआ है. यद्यपि विकासशील देश ही मुख्य रूप से खेती योग्य पौधों तथा पालतू जानवरों के वास्तविक निवास स्थान रहे हैं, लेकिन आज ये प्रमुखतः निर्धन देश हैं. ये जैव विविधता की दृष्टि से समृद्ध, लेकिन तकनीकी दृष्टि से ग़रीब हैं. दूसरी ओर, औद्योगिक देश जैव विविधता में निर्धन तथा तकनीकी तौर पर समृद्ध हैं.

जैव विविधता, तकनीकी तथा उत्पादकता के बीच संयोजन

यह बड़ी विडंबना है कि जहां एक ओर विकासशील देशों ने विश्व को अधिकांश कृषि–जैव वैविध्य प्रदान किया है, वे स्वयं निम्न उत्पादकता एवं उच्च जनसंख्या घनत्व वाले क्षेत्र हैं. इन राष्ट्र समूहों ने ही परंपरागत 'भुखमरी वाला क्षेत्र' निर्मित किया है. आनुवंशिकी तथा जनन विज्ञान का उपयोग कर औद्योगिक देश अपनी उत्पादकता को बढ़ाने में सफल रहे. निम्न जैव विविधता तथा निम्न जैव उत्पादकता रूखे पारिस्थितिकी तंत्र में विद्यमान रहते हैं. हरित क्रांति के पहले कृषि उच्च जैव विविधता तथा अपेक्षाकृत निम्न जैव उत्पादकता के लक्षणों से जानी जाती थी. विश्व कृषि की स्थिति उच्च जैव उत्पादकता के साथ निम्न जैव विविधता की ओर बढ़ती चली गई, इसी का परिणाम है हरित क्रांति. आज यह अनुभव किया जाता है कि जिस हरित क्रांति ने हमें औद्योगिक कृषि की देन दी, उससे हमें लाभ हुआ है तथा कई विकासशील देशों में भीषण भुखमरी अब वास्तविकता नहीं रह गई है. हालांकि इसमें अधिक निवेश की आवश्यकता है तथा ये पूर्णतया पर्यावरण हितैषी भी नहीं हैं. इसलिए अब प्रश्न यह है कि हरित क्रांति से तुरंत आर्थिक व सामाजिक लाभों को पाने तथा पर्यावरण की क्षति व प्रदूषण के नियंत्रण योग्य प्रबंधन के बीच संतुलन कैसे क़ायम किया जाए. अन्य विषयों में कृषि, पशुपालन, मत्स्यपालन तथा वानिकी का स्थायित्व भूमि व जल की गुणवत्ता को सुरक्षित रखने वाले कृषि विज्ञान के तौर–तरीक़ों के साथ–साथ उच्च जैव उत्पादकता तथा उच्च जैव विविधता के संयोजन की क्षमता पर निर्भर करेगा. पूरी दुनिया में कृषि को इस लक्ष्य की ओर बढ़ाना होगा. अतः जैव विविधता, जैव उत्पादकता तथा जैव प्रौद्योगिकी के बीच संबंध बनाए रखने के लिए स्पष्ट दृष्टि की आवश्यकता है.

जैव प्रौद्योगिकी को नियंत्रित करने वाली संस्थागत संरचनाओं को जैव विविधता को संरक्षित करने वाली संस्थाओं के महत्त्व को कम नहीं आंकना चाहिए तथा उन्हें स्थानीय समुदायों के अधिकारों एवं विशेषाधिकारों को किसी भी क़ीमत पर नज़रअंदाज़ नहीं करना चाहिए. यद्यपि जैव प्रौद्योगिकी से जुड़ी संस्थाएं उन्नत विज्ञान एवं तकनीकी का इस्तेमाल कर रही हैं, परंतु संरक्षण वाले क्षेत्र साधारण एवं
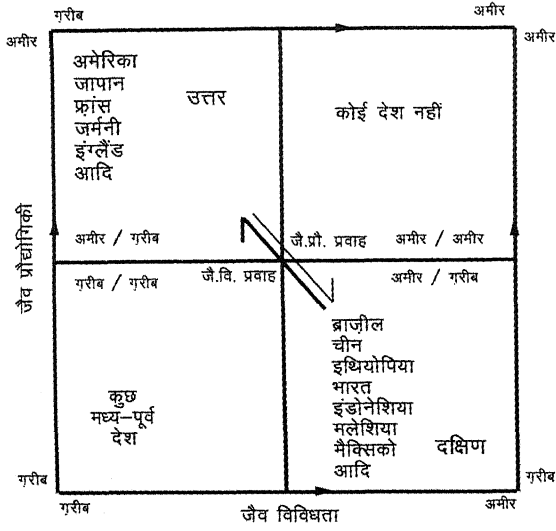
सौजन्य : टी.एन. खोशू

समयपरक विज्ञान तथा तकनीकी के अभाव में क्षीण हो गए हैं.

विश्व के देशों को चार समूहों में बांटा जा सकता है–

- अल्प जैव विविधता तथा अल्प जैव प्रौद्योगिकी
- अल्प जैव विविधता, परंतु प्रचुर जैव प्रौद्योगिकी
- प्रचुर जैव विविधता, परंतु अल्प जैव प्रौद्योगिकी और
- प्रचुर जैव विविधता तथा प्रचुर जैव प्रौद्योगिकी

प्रथम समूह में पश्चिम एशिया के देश, जैसे सऊदी अरब, दूसरे समूह में उत्तर के देश, जैसे अमेरिका, जापान, जर्मनी, फ़्रांस, स्वीडन तथा ब्रिटेन. तीसरे समूह में दक्षिण के देश जैसे इंडोनेशिया, भारत, चीन, मलेशिया, ब्राज़ील, मेक्सिको तथा अन्य उष्णकटिबंधीय, उपोष्णकटिबंधीय एवं शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्र आते हैं. चौथे समूह के अंतर्गत कोई भी देश नहीं है. वर्तमान में जैव विविधता का प्रवाह तीसरे समूह (दक्षिण) से दूसरे समूह (उत्तर) की ओर है. जैव प्रौद्योगिकी के प्रवाह का विस्तार और प्रकृति उत्तर से दक्षिण की ओर है, परंतु यह दक्षिण से उत्तर की ओर जैव विविधता के प्रवाह के बराबर नहीं है. यह एक विषम आदान–प्रदान है और तब तक जारी रहेगा, जब तक दक्षिण के देश जैव प्रौद्योगिकी में आत्मनिर्भर नहीं हो जाते. इस आदान–प्रदान में निहित महत्त्वपूर्ण कारक के अनुसार कुछ देशों (जैसे भारत तथा चीन) के पास चौथे समूह (प्रचुर जैव विविधता तथा वर्तमान में काफ़ी हद तक प्रौद्योगिकी में समृद्ध) में प्रवेश करने की क्षमता है, जबकि उत्तर के देशों की स्थिति चौथे समूह में प्रवेश कर सकने की नहीं है. इसका कारण है, उनके पास प्राकृतिक रूप से उपलब्ध लाभदायी कृषि–जैव विविधता का न होना, हालांकि उनके पास जीन कोष, बीज कोषों व अन्य कोषों के रूप में श्रेष्ठ प्रयोगशाला सुविधाएं हैं. इन देशों के पास प्राकृतिक आवास स्थलों में परिचालित होने वाली विशेष प्रकार की दीर्घ अवधि की सतत पारिस्थितिक प्रक्रियाओं तथा जैव विकास का लाभ नहीं है, जो जैव विविधता को परिवर्तन, पुनर्संयोजन तथा प्राकृतिक चयन के माध्यम से परिमार्जित और नया करते रहते हैं. ये तीनों जैव विकास के मूलभूत तत्त्व हैं. प्राकृतिक चयन प्रक्रिया के क्रमिक सोपान, जो पौधे व प्राणी प्रजनन के माध्यम से कृत्रिम चयन तथा जैव विकास की ओर ले जाते हैं, सर्वज्ञात हैं. दोनों में ही भरण का स्रोत उत्परिवर्तन, पुनर्संयोजन तथा चयन है, जो जैव विविधता की तीन मूलभूत प्रक्रियाएं हैं. आनुवंशिक पुनर्संयोजन की शक्ति अद्भुत होती है. अनियंत्रित अवस्था में प्राकृतिक चयन मुख्य रूप से एक समयानुवर्ती, निरुद्देश्य तथा बिना पूर्व अनिर्दिष्ट प्रक्रिया है. क्रमिक विकास की गति अविश्वसनीय रूप से धीमी या अविश्वसनीय रूप से तेज़ होती है, क्योंकि उसे पर्यावरणीय स्थितियां नियत करती हैं. यह प्रक्रिया जैव संपत्ति को परिमार्जित करती है, नया करती है और बढ़ाती है.

जीन–प्रचुर विकासशील देशों को, जो तकनीकी दृष्टि से ग़रीब हैं, संगठित होना चाहिए ताकि जैव विविधता के विभिन्न पहलुओं, जिनमें वैज्ञानिक, तकनीकी, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा क़ानूनी मुद्दे शामिल हैं, साथ ही संग्रहण, आपूर्ति तथा कच्चे माल के मूल्य निर्धारण के बारे में एक समझौते तक पहुंचा जा सके. जहां तक औषधीय पौधों का संबंध है, विकासशील देशों में बड़े पैमाने पर परीक्षण एवं भूल सुधार और सावधानीपूर्वक अवलोकन के पश्चात ऐसे पौधों का चयन किया गया, जो प्रभावोत्पादक थे. उन्होंने संपूर्ण अर्क का उपयोग किया. यह स्वदेशी चिकित्सा पद्धति का आधार रहा है, जिसे अब विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ.) से विधिवत मान्यता भी मिल चुकी है. औद्योगिक देशों की शुरुआत यहां से हुई तथा उन्होंने जैव सक्रिय यौगिकों को पृथक कर उनका परिमार्जन, परीक्षण तथा व्यापारीकरण किया. यही आधुनिक चिकित्सा तथा औषधि उद्योग का आधार है.

सौजन्य : वेंकट राम नरसैया

इस तरह विकासशील देशों ने उच्च जैव वैविध्य, लेकिन अल्प उत्पादकता के साथ बुनियादी जीन कोषों का विकास कर लिया. दूसरी ओर, औद्योगिक देशों ने कृषि योग्य क़िस्मों में उच्च उत्पादकता लेकिन अल्प जैव विविधता के साथ सुधार किया.

जैव विविधता को लेकर भ्रांतियां

शुरुआत से ही जैव विविधता संरक्षकों के दो वर्ग रहे : एक ओर खेती पर गुज़ारा करने वाले विकासशील देशों के कृषक व आदिवासी तथा दूसरी ओर दुनिया भर के प्रजनक एवं आनुवंशिकीविज्ञ. पहले समूह के लिए तो यह अस्तित्व का प्रश्न था. वे लोग अत्यधिक शक्तिशाली, रोग तथा पीड़करोधी, लेकिन अल्प उत्पादक आदिम क़िस्में, मैदानी क़िस्में अथवा ठेठ जंगली क़िस्मों का उपयोग करते थे. प्रजनन को तथा आनुवंशिकविज्ञों के लिए यह मुख्य रूप से विज्ञान तथा समाज को सेवाएं उपलब्ध कराने का प्रश्न था. इसका उत्कृष्ट उदाहरण अमेरिका के कृषि विज्ञानी नॉर्मन इ. बोरलॉग का है, जिन्हें 1970 में नोबेल शांति पुरस्कार मिल चुका है तथा उन्हें हरित क्रांति का जनक समझा जाता

है. उन्होंने मेक्सिकी बौने गेहूं की उन्नत प्रजनन क़िस्मों का उपयोग किया था. इससे विकासशील देशों में हरित क्रांति के युग का सूत्रपात हुआ.

जैव विविधता को लेकर कई भ्रांतियां व्याप्त हैं. कई प्रचलित भ्रांतियों अथवा मिथकों में कुछ ये हैं कि जैव विविधता और उसके उद्देश्यों का पूर्ण ज्ञान उपलब्ध है; यह धारणा है कि सभी प्रजातियों को बचाया जा सकता है; जैव विविधता संसाधन को यदि बचाना है, तो उसका उपयोग नहीं किया जा सकता; जैव विविधता केवल संरक्षित क्षेत्रों में ही पाई जाती है तथा ये क्षेत्र सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करने योग्य होते हैं; और यह कि अधिकांश जैव विविधता उष्णकटिबंधीय तथा उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाई जाती है, अतः इसका महत्त्व केवल इन क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए (यूनेस्को, 1994).

वास्तविक स्थिति यह है कि केवल 16 लाख प्रजातियों का वर्णन ही अभी तक हुआ है तथा बड़ी संख्या की पहचान अभी बाकी है. इसके लिए यह आवश्यक है कि सभी अज्ञात प्रजातियों को बचाकर उनकी पहचान करने की दिशा में शीघ्र क़दम उठाए जाने चाहिए. वास्तव में, यह किसी को भी ज्ञात नहीं है कि कितनी प्रजातियां मौजूद हैं अथवा अदृश्य हो चुकी हैं, अथवा विलुप्ति की ओर जा रही हैं अथवा संकटापन्न हैं. इस बारे में गंभीर अध्ययन अभी तक शुरू नहीं किया गया है. जैव विविधता पर बढ़ते ख़तरों को देखते हुए, यह संभव नहीं है कि प्रत्येक प्रजाति को बचाया जा सके. कुछ प्रजातियों की क्षति अवश्यंभावी है तथा सभी प्रजातियों का संरक्षण वैयक्तिक आधार पर व्यावहारिक नहीं होगा. केवल एक ही रास्ता है कि संपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र को संरक्षित करके अधिक से अधिक प्रजातियों को बचाया जाए.

यद्यपि संरक्षण के प्रयास प्रगति पर हैं, यह अत्यंत आवश्यक है कि स्थानीय समुदायों की भागीदारी बढ़ाकर पारिस्थितिकी तंत्र के संरक्षण हेतु प्रयास किए जाएं. साथ ही नए आर्थिक विकल्प उपलब्ध कराने चाहिए, ताकि संरक्षण को सुनिश्चित किया जा सके.

जैव विविधता केवल संरक्षित क्षेत्रों के भीतर ही नहीं, उनके बाहर भी पाई जाती है. इसलिए यह ज़रूरी है कि विविधता का संरक्षण करते समय खेती योग्य एवं पालतू प्रजातियों के साथ–साथ उनके जंगली संबंधियों का भी संरक्षण किया जाए.

हालांकि जैव विविधता पूरे विश्व में पाई जाती है, यह उष्णकटिबंधीय तथा उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में अधिक सघन है. जैव विविधता की क्षति के प्रभाव सार्वभौमिक हैं, अतः इसके संरक्षण एवं उपयोग के लिए स्थानीय, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय तथा वैश्विक रणनीति की आवश्यकता है.

* * *

डॉ. टी.एन. खोशू देश के अग्रणी पर्यावरण वैज्ञानिकों में से एक है और देश की सभी प्रमुख विज्ञान अकादमियों के फ़ेलो हैं. यह पद्म भूषण तथा संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रमों (1996) के सस्कावा पर्यावरण पुरस्कार और अन्य कई पुरस्कारों तथा भारत सरकार के इंदिरा गांधी पर्यावरण पुरस्कार (1993) से सम्मानित हैं.

भारत ज्ञानकोश

सरल, सुबोध और रोचक ढंग से भारत को जानें–

एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका द्वारा पहली बार विश्व के किसी एक देश या क्षेत्र पर केंद्रित प्रकाशन, उसी देश की राष्ट्रीय भाषा में प्रस्तुत.

भारत के इतिहास, भूगोल, राजनीति, जनजीवन, साहित्य, धर्म, दर्शन, कला एवं संस्कृति, खेल और विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी पर व्यापक जानकारी उपलब्ध.

छह खंडों में विभाजित भारत ज्ञानकोश में 3,000 से अधिक पृष्ठों पर 13 लाख से ऊपर शब्द और 1,100 से अधिक चित्र दिए गए हैं. पाठकों की सुविधा के लिए प्रत्येक खंड को दो भागों में बांटा गया है. पहले भाग में 2,500 से अधिक प्रविष्टियां, अ से ज्ञ तक वर्णानुक्रम में हैं. दूसरे भाग में सिनेमा, वन्यप्राणी, धर्म, राजनीति, विज्ञापन कला और खेलों आदि पर 40 से अधिक विशेष लेख हैं.

भारत ज्ञानकोश की बोधगम्य शैली, गहन, किंतु सरल जानकारी और चित्रों व रेखांकनों से हर आयुवर्ग के पाठक लाभान्वित होंगे.

ISBN 81-7154-993-4

मास्टर कोड: 3745

ENCYCLOPÆDIA Britannica

PopulaR prakashan